दीवादांडी
सफलसुकानी
शारदा रत्न
शारदा शिखर
शारदा शिरोमणि
शारदा-सुधा
शारदा ज्योत
શારદા
સંજીવની
શારદા
પરિમલ
શારદા
સૌરભ
શારદા
ઉર કે
સૂર
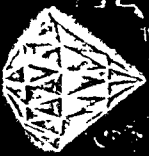
नमो जिणाणं
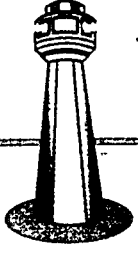
॥ श्री छगन-रत्न-गुलाब-हर्षद-कांति गुरुभ्यो नमः ॥
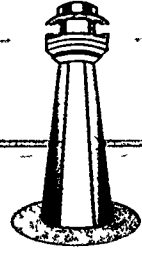
सिंहगर्जना की स्वामिनी बा. ब्र. पू.
श्री शारदाबाई महासतीजी के हृदयस्पर्शी प्रवचनों

जिनशासन के सफल खेवैया आचार्य सम्राट्
बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. की जय हो, विजय हो ।

शासन शिरोमणि, प्रवचन की पारसमणि, आशीर्वाददात्री
बा. ब्र. पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी अमर रहें ।

प्रवचनकार

खंभात संप्रदाय के जैन ज्योतिर्धर
बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. की
सुशिष्यारत्ना प्रभावक प्रवचनकार
बा. ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

: प्रेरणादायिनी :
सुशिष्या बा. ब्र. विदुषी पू. श्री वसुबाई महासतीजी

'दीवादांडी' - शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी आवृत्ति, प्रत : ३०००

प्राप्तिस्थान

शा. मांगीलाल उदेराम नंगावत

संकल्प : सेल्स डिपार्ट. : ४१२/२, बार्डलिया कम्पाउन्ड, वस्ता देवडी रोड़, सुरत-३९५ ००४
घर : १२, महावीर सोसायटी, सुमुल-डेरी रोड़, सुरत - ३९५००४
(ओ) २५३२६८७/२५३२६८८(फेक्स) (९१ ०२६१) २५३२६८५(घर) २४८६११०/२४८६३८९

शा. रोशनलाल चंपालाल कोठारी

विजय लक्ष्मी फैबरीक्स
३०१६, गोलवाला मार्केट, दूसरा मजला, सुरत - ३९५००१
दूरभाष (घर) २६८४३४७ (ओ) २३२०५७१

शा. धरमचंदजी देरासरीया

ठे. होस्पिटल रोड़, मारु दरवाजा बाहर, देवगढ़, मदारीया, जीला राजसमथ (राज.)
दूरभाष : S.T.D. (०२९०४) २५२०२७ (घर) (०२९०४) २५२०६१

१०, मोगरा वाडी

रोशनलाल पब्लिक स्कूल के पास, उदयपुर, दूरभाष : S.T.D. (०२९४) २४८५९५१

लागत मूल्य : रू. १००/- ज्ञानप्रचार अर्थे मूल्य : रु. २५/-

संपर्कस्थान

नरेन्द्रभाई साकरलाल साड़ीवाला

डुंमाल ट्रान्सपोर्टनगर गोडाउन नं. ५
पूणाजकातनाका के सामने, सुरत - बारडोली रोड़, सुरत
दूरभाष (घर) २६५४५२७ (ओ) २८५१७८२

शा. नानालाल मांगीलाल कोठारी

३, श्रीनाथ सोसायटी, पोदार एवन्यू के पास,
युनियन की गली, घोड़ दोड़ रोड़, सुरत दूरभाष (घर) २६६११३१ (ओ) २६५११३१

शा. बाबुलाल रोशनलाल सिंघवी

विमल ज्योति फैबरीक्स
६, दर्शन मार्केट, रींग रोड़, सुरत - ३९५००२
दूरभाष (घर) २६८५५३० (ओ) २३२०७६८

मुद्रक : सस्तु पुस्तक भंडार नडियाद - पिन : ३८७००१ फोन : (घर) २५५४२४३ (ओ) २५६६२५८

अनुवादक : दशरथभाई रावत

"श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः"

॥ श्री रत्न शारदा गुरवे नमः ॥

दीवादांडी

विमोचक : श्री प्रकाशचंद्र शीवलाल पोखरणा

खंभात संप्रदाय के साध्वीरत्ना बा. ब्र. पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी के सुशिष्या पू. वसुबाई महासतीजी आदि ठाणा-१० के सानिध्यमें

दीवादांडी हिन्दी आवृत्तिका विमोचन : ता. २-१-२००५, रविवार, सुरत
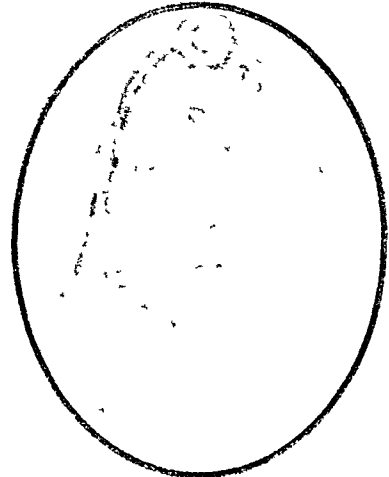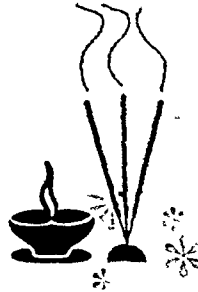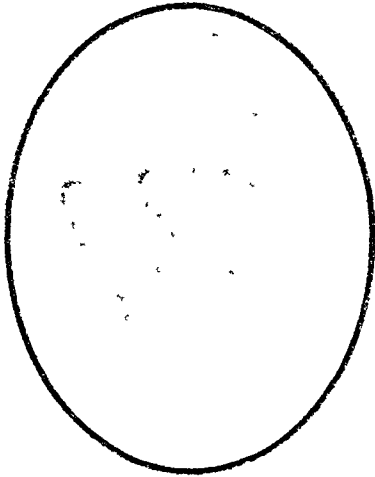
स्व. श्री गोकुलचंदजी हेमराजजी पोखरणा
(मोखुन्दावाले) स्व. दि. 27-11-2003

स्व. सुंदरबाई गोकुलचंदजी पोखरणा
(मोखुन्दावाले) स्व. दि. 2-12-2000

पूज्य माता-पिताश्री,

अविस्मणीय जीवन जिके दिखाया आपने, सुखको छलकाया नहि, दु :ख को दिखाया नहीं, कठिन परिश्रम, संपूर्ण विवेक, उत्कंठ धर्मप्रेम, स्वधर्मी एवं स्वावलंबी के उच्चत्तम संस्कार आपने हमे दिये है, उसका ऋण हम कभी नही चूका सकतें, साथ भले ही छुटगया, आत्मा के समीप हो आप, जीवन पंथ को प्रकाशित करते, स्वयं प्रकाशित दिप हो आप, आपकी विदाई हमारी वेदना है, आपके दिखाये मार्ग से हम कभी चलित न हो यही प्रभु से प्रार्थना है, प्रभु आपके दिव्य आत्माको परमशांति प्रदान करे यही अभ्यर्थना....

आपका परिवार

प्रकाशचंद्र, महेन्द्रकुमार, शीवलाल, सुरेशकुमार, पुखराज, एवं समस्त पोखरणा परिवार (मोखुन्दावाला)

RAJHANS GROUP OF INDUSTRIES

निवेदन
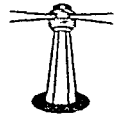
नम्र निवेदन है कि महान् विद्वान बा. ब्र. गुजरात सिंहनी श्री शारदाबाई महासतीजी के १६ पुस्तक गुजराती में प्रकाशित हुए हैं, उनमें ६ का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । उसमें 'शारदा शिरोमणि' 'सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न' 'शारदा ज्योत' और 'शारदा शिखर' यह सब दो भागों में हमने प्रकाशित करवाया हैं । उसमें शारदा शिरोमणी, सफल सुकानी आदि पुस्तक आप तक पहुँचा ही होगा और यही **(दीवादांडी)** भी आप तक पहुँच रही है । अब आपसे निवेदन है की इसकी मूल किमत से २०% में ही हम आप तक यह पुस्तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे आप जान सकते हैं कि किसी दानी के सहयोग से ही यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सकता है, तो हमारा आपसे अनुरोध है कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद आपकी श्रद्धा हो तो आप भी इसमें सहयोगी बने और दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरणा दें, जिससे हम ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करवा कर आप तक पहुँचाने की कोशिश कर सके । आपसे इसलिए निवेदन कर रहे हैं कि यह बहुत ही बड़ा अर्थ का मामला है, हम व्यक्तिगत संपर्क कर नहीं सकते, मगर इस पुस्तक द्वारा निवेदन कर रहे हैं । यदि आपकी आत्मा संपूर्ण जगे तो ज़रूर इस महान कार्य में यथा-योग्य सहयोग प्रदान करावे, तो हमारा अगला कार्य सरल बनेगा । हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है, आपके आत्मा में छूपी दान-भावना तीव्र बने । इस आशा और विश्वास के साथ ।

'दीवादांडी' किताब प्रकाशन में आर्थिक योगदान के लिए विमोचक और प्रकाशक के हम शुक्रगुज़ार है ।

विमोचन वक्त पर पू. वसुबाई महासतीजी आदि ठाणा पधारें उसके लिए हम एहसानमन्द है ।

इस समय पर दशरथभाई रावत का आभार मानते है की उत्कृष्ट सेवा भाव से आपने गुजराती का हिन्दी अनुवाद करने का काम किया हमारी समिति आपके वहुत ऋणी है ।

आपके

शारदा प्रवचन संग्रह समिति-सुरत

॥ श्री महावीराय नमः ॥
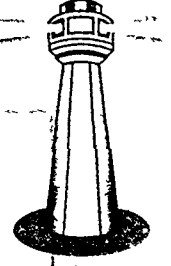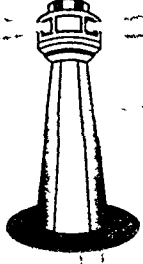
प्रकाशक

मातुश्री दिवालीबहन ऊकमलजी बागरेचा परिवार
हस्ते रमेशभाई उकमलजी बागरेचा
२५/२६, रवि ऐपार्टमेन्ट, कैलासनगर, सगरामपुरा-सुरत (गुजरात)
फोन : (घर) ०२६१-२४६२६२०
श्रीमती पवनीबहन रमेशभाई बागरेचा, शुभेच्छा

प्रकाशक का निवेदन

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि बा. ब्र. परम पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी का सुशिष्या, प्रखर व्याख्याता, शांत और सरल स्वभाव के प. पू. वसुबाई महासतीजी श्री धानेरा स्थानकवासी जैन संघ, कैलासनगर-सुरत के संवत २०६० के चातुर्मास के लिए पधारे, तब मेरा और मेरा परिवार के साथ परिचय पूज्यश्री के साथ हुआ ।

पूज्य वसुबाई महासतीजी से हमको मालूम हुआ कि गुरुणीमैया प. पू. शारदाबाई महासतीजी के गुजराती के प्रवचन पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करवा के हिन्दीभाषी समाज के लोगों के लाभार्थे शारदा प्रवचन संग्रह समिति-सुरत ने दानवीर दाताओं के सहयोग से ज्ञान-प्रचार के साथ ये कार्य कर रहे है । तब परम पूज्य वसुबाई महासतीजी की प्रेरणा और अनुमोदनासे हमने **"दीवादांडी"** हिन्दी पुस्तक का प्रकाशक के लाभ लेने की इच्छा व्यक्त की और तब हमने शारदा प्रवचन संग्रह समिति को यह पुस्तक का प्रकाशक के लाभ देने के लिए बिनंती की । उस बदल तब प्रमुख श्री मांगीलालजी ने हम को प्रकाशक के लिए लाभ दिया उसके लिए हम आभार की लागणी व्यक्त करते है ।

सौजन्य

गुरु गुण-वैभव

अद्‌भुत शासन दीपावक, प्रवचन प्रभावक, मोक्षमार्ग के अखंड उपदेशक, शासन का छत्र, स्नेह का शिवालय, जैनशासन का पीठ राहबर, स्थंभनपुरी का स्थंभ, शासन-गगन का चमकता चाँद, वीर के वारसदार, जीवन-नैया के नाविक, आह्लादकारी स्मृतिओं के सर्जक, कुशल कारीगर, जैनों की जवाहीर, धर्मशासन की शान, धर्म के पथदर्शक, सर्वहित-चिंतक, सौम्यता के शिखर, खंभात की ख्याति बढ़ानेवाले, प्रेरणा की प्याऊ, धर्ममार्ग के देशक और दर्शक, गुणरत्न रत्नाकर, कलिकाल में साक्षात् सरस्वती का अवतार, शासन का स्तंभ समान और संघ के सूत्रधार, श्रुतज्ञान की गंगोत्री के वाहक, गुजरात-सौराष्ट्र के वल्लभवाणी के जादुगर, शासन का शणगार, नितनया का अणगार, प्रवचन के पारसमणि, शासन शिरोमणि, ज्ञान के गुणमणि, दर्शन के दिनमणि, चारित्र चूडामणि, प्रतिभाशाली, अनुभव के लब्धि, तपत्याग की तरवरती संयम मूर्ति, हजारो के हितस्वी, करोडें के कल्याणकामी, वात्सल्य वारिधि, करुणा और अहिंसा के अवतारी, सात्त्विकता और सरलता की मूर्ति, इस युग के एक भाग्यवान विभूति, लोकप्रिय सतीजी, जिनशासन की ज्वलंत ज्योति, वात्सल्य की वीरडी, जीवनबाग का बागवान, जीवनकला के कुशल शिल्पी, महावीर के सच्चे अनुयायी, गुजरात-सौराष्ट्र के मरकत-मणि, प्रशांत मूर्ति, यशस्वी और यशनामी, निराभिमानता की निधि, सम्यक्त्व, रत्नझवेरी, अद्वितीय पुण्य प्रभावी, सहनशीलता के स्वामी, स्वाध्याय की सेज पर मुनिजीवन की मौज उडाते, लाखों के लाडले, तेजस्वी तारिका, गुणों की गंगा, विश्रांति का पेड़, परोपकार की प्रतिमा, भव्यजीवों के तारणहार, कल्याण के रस्ते को बनानेवाले, शासन के हीरा, कुथीर को कंचन करनेवाले, वीरल व्यक्तित्व को पानेवाला, वीरल वीरांगना, कांतिवंत कोहीनूर हीरा, वेरिस्टर जैसे बुद्धिमान धर्मदाता, मोक्षमार्ग के फरिस्ता, पावनकारी प्रतिमा, वचनसिद्धि को पानेवाला, दया के दीपक, निखालसता का अजोड़ नमूना, भारत के भानु, ज्ञानगंगा का पवित्र झरना, कलियुग का कल्पवृक्ष, अनंतानंत उपकारी, ममतालु मैया, गौरवशाली गुरुणीदेव - ये विराट गुण-वैभव के स्वामी, विरल विशेष गुणों के सुभग संगम, ख्यातनाम सतीजी यानी महाश्रमणी बा.ब्र. विदुषी

पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी

॥ श्री कांतिऋषिजी गुरवे नमः ॥

ज्ञान प्रकाश है । विद्या विवेक है । तब ज्ञानरूपी प्रकाश की हाजरी में अज्ञानरूपी अंधेरा कहाँ टिक सकता है ? ज्ञानी के पास प्रकाश है, तो सन्मार्ग और उन्मार्ग का विवेक भी है । ज्ञान में तो करोड़ों भव के कर्मो के मात्र श्वाछोच्छ्वास जितने अल्प काल में तोडने की ताक़त है । सुवर गन्दकी में आनन्द पाता है । अज्ञानी उपभोगीय सामग्री में डूबा रहता है । हंस मानसरोवर में मोती का चारा चरता है । ज्ञानी चिंता-रहित होकर चिंतन के सरोवर में रहकर तत्त्व की अनुभूति करता है और आनन्द पाता है ।

प्रचंड मेधावी प्रखर प्रतिभाशाली विदुषी शारदाबाई म.स. के प्रवचनों उनके कालधर्म के बाद भी समाज में आदरणीय, पठनीय और चिंतनीय बनते है । 'दीवादांडी' प्रवचन संग्रह अशांति में, अस्वस्थता में बारबार पढ़ने से, सोचने से परम शांति-समाधि का सबको अनुभव है । ऐसा शुभ प्रयास शारदा प्रवचन प्रकाशन समिति कर रही है । उसमें प्रगति करती रहे ऐसी शुभ मंगल शुभेच्छा ।

A. C.
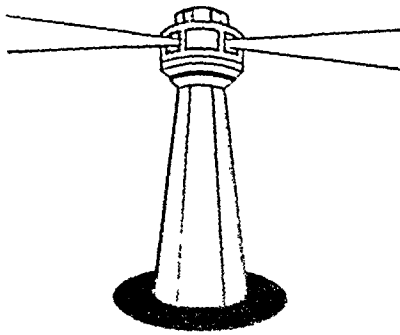
पू. आचार्य गुरुदेवश्री

बा. ब्र. अरविंदमुनि म.सा.

साणंद.

ता. १४-१२-०४
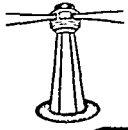
स्वप्न साकार
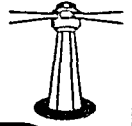
'दीवादांडी' शारदा प्रवचन हिन्दी आवृत्ति

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि व्याख्यान वाचस्पति गुजरात सिंहनी बा. ब्र. पू. श्रीगुरुणी मैया श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्यारत्ना प्रखर व्याख्याता बा. ब्र. पू. श्री वसुबाई महासतीजी आदि ठा. २४ का मुंबई आगमन हुआ । उस समय हिन्दीभाषी धर्म-प्रेमीयों से बातचीत होने पर उनकी इच्छा सन्मुख आई कि (पू. शारदाबाई महासतीजी के ग्रन्थो की हिन्दीभाषी क्षेत्रों में बड़ी माँग है, परन्तु अब तक मात्र 'शारदा शिरोमणि' और 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', 'शारदा शिखर' हिन्दी में प्रकाशित हुई है । अतः यदि उनकी नई पुस्तक **'दीवादांडी'** हिन्दी में अनुवादित करवा कर प्रकाशित करने के योजना बनाई जाये तो असंख्य हिन्दीभाषी को उनकी अमूल्य वाणी का लाभ मिल सकता है । ज्ञानप्रचार कि इस योजना को पू. महासतीजी के समक्ष रखते ही यह काम श्री मांगीलालजी नंगावत और नरेन्द्रभाई साड़ीवाला ने यह कार्य करने कि तैयारी बताई क्योंकि इससे पहले मांगीलालभाई और नानाभाई ने 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह का प्रकाशक बन कर अनुभव लिया हुआ था । उनके साथ रोशनलालजी कोठारी, नरेन्द्रभाई साड़ीवाला व बाबुलालजी सिंघवी ने भी अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया । इन पाँचो भाईओं ने एक समिति का गठन किया और 'शारदा प्रवचन संग्रह समिति' नाम रखा और काम बराबर तेजी से होने लगा ।

हम आपको यह विदित करना चाहते है कि हमारा 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' का जो अनुभव था उस आधार पर उस वक्त कि जो भूले हुई उसको ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के प्रकाशन में ऐसी कोई भूल न हो ऐसी कोशिश कि फिर भी मानव मात्र भूल के पात्र है । भूल होना स्वाभाविक है उसके लिए क्षमा चाहते है ।

हमे आनंद तो इस बात का है कि अगला पुस्तक 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत' 'शारदा शिखर' जन जन तक पहुँचाया, साधु-साध्वीओं व छोटे गाँवों के उपाश्रय, साधनाभवन, स्वाध्यायी भाईओं को बिना शुल्क वितरण किया । आज काश्मीर से कन्याकुमारी तक की माँग है । हररोज़ पत्र आया करते है मगर हम उन सबकी माँग पूरी नहीं कर पा रहे है क्योंकि 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' ६००० (छ हजार) प्रत छपवाई थी, शारदा रत्न, शारदा ज्योत, शारदा शिखर ३००० प्रत भी छपवाई जो पूरी हो गई, उसका कारण पुस्तक की कीमत हमने खरीद कीमत में सिर्फ २०

प्रतिशत ही रखी थी। यह काम आप उदार दान-दाताओं की सहायता से ही बना है, हमारा उसमें कोई योगदान नहीं है। उसी अनुभव के आधार पर हमने यह तिसरा काम हाथ पर लिया है। इस पुस्तक कि कीमत भी हमने २०% - बीस प्रतिशत ही रखी, इसमें दाताओं का अच्छा सहयोग मिला और दाताओं की लाईन लग गई। हम उन सभी दाताओं के खूब खूब ऋणी हैं। जिन्हों ने खुद तो दान दिया और दूसरों से भी दिलवाया। इसी पुस्तक में हमारे सहयोगी दाताओं कि अलग से नामावली है, उन्होंने किसी प्रकार कि अपेक्षा के बिना दान भी दिया और दूसरों से दान भी लाये। हम उन महानुभावों का किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करें! उनकी प्रशंसा के लिए कोई शब्द नहीं है। इस काम मे हमें निःशुल्क - निःस्वार्थ भाव से 'सस्तुं पुस्तक भंडार' ने भी अपना खुद का काम समझकर ही समय समय हाजर रहकर इस पुस्तक प्रकाशन में बहुत ही अच्छा सहयोग दिया। विशेष हम आप से यह बात भी कह देना चाहते है कि महासतीजी ने शुद्ध शास्त्र वाणी में व्याख्यान गुजराती में दिया है, उसका अनुवाद हमने करवाया है। यदि अनुवादक कि शब्दरचना में परिवर्तन होता हो तो वह भाव भूल अनुवादक व प्रेस कि है, उसमें महासतीजी के उच्चारणों में कोई भूल नहीं है।

अंत में हमारी समिति के अथाग प्रयत्नों से इस हिन्दी पुस्तक **'दीवादांडी'** को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया, उसमें दान दाताओं का बहुत ही बड़ा सिंह-भाग है। हम उनके तो आभारी है ही, मगर समिति के सभ्यों ने भी एक-राग से काम किया, तभी यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सका और साथ साथ हम उन दान-दाताओं को भी कैसे भूल सकते, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशक तथा विमोचक बनने का भार उठाया। अब पुस्तक आप तक पहुँचने कि तैयारी में है, तो आप से हमारा अनुरोध है। आप इस पुस्तक से खूब ज्ञान-ध्यान प्राप्त करें और आपकी आत्मा का कल्याण करें और दानवीर बने, शीलवान बने।

हमने इस पुस्तक के चन्दे मे आप सब दाताओं से संपर्क किया। उसमें आपके साथ हमारी समिति का व्यवहार बराबर न हुआ हो व आपके हृदय को ठेस पहुँचाई हो तो हम सब आपसे क्षमा-याचना करते हैं, क्षमा करें।

शाह मांगीलाल उदेराम नंगावत *(प्रमुख)*
शाह रोशनलाल चम्पालाल कोठारी *(उपाध्यक्ष)*
शाह नानालाल कोठारी *(मंत्री)*
शाह बाबुलाल सिंघवी *(सहमंत्री)*
शाह नरेन्द्रभाई साड़ीवाला *(कोषाध्यक्ष)*

॥ श्री महावीराय नमः ॥

शुभकामना संदेश

खंभात संप्रदाय के देदीप्यमान भास्कर आचार्य श्री रत्नचन्दजी म. सा. की सुशिष्या स्वनाम धन्य, शारदाबाई महासतीजी ओजस्वी प्रवचनकारों की रत्नावली की बेजोड़ रत्ना थी । वे अपने सतत पर्यटनशील जीवनक्रम में अपने ज्ञान, साधना एवं अनुभूतियों से जन-जन को लाभान्वित करती रही । उनके प्रवचन सहज रूप में ऐसे अनुभूत सत्यों को उजागर करते जो सहसा श्रोतावृन्द के जीवन को झकझोर डालते ।

श्री शारदाबाई महासतीजी के प्रवचन कई पुस्तकों के रूप में प्रकाश में आ चुके हैं । मुलतः गुजराती भाषा में प्रकाशित पुस्तकें जिसमें 'शारदा शिरोमणि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत' और 'शारदा शिखर' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है । हिन्दी जगत में आपका प्रवचन साहित्य निःसंदेह बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ है, क्योंकि आपके प्रवचन मैत्री, समता, शील, सेवा, सद्भावना, त्याग, औदार्य, विनय, करुणा आदि विविध विषयों पर आधारित है । सरल, सुगम, रोचक शैली के प्रवचन सहज रूप से सर्वजनोपयोगी भी हैं ।

श्री साधुमार्गी जैन संघ - सुरत की ओर से श्री शारदा प्रकाशन समिति का आभार व्यक्त करते हैं । समिति ने श्री शारदाबाई महासतीजी के प्रवचनों से निर्झर आगमवाणी से सजी गुजराती भाषा की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशित किया, जिसकी फलवता असन्दिग्ध है । हिन्दी भाषा में प्रकाशित साहित्य की लोकप्रियता और बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए **'दीवादांडी'** शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी संस्करण का प्रकाशन करने का निर्णय समिति ने लिया है, यह आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रेरणा देते है ।

साथ ही शारदा प्रवचन संग्रह समिति (हिन्दी) सुरत के सदस्य भी साधुवाद के पात्र है, जिन्हों नें आर्यावर्त की संस्कृति का चरम ध्येय - भव बन्धन से मुक्ति को ध्यान में रखते हुए सत्-साहित्य के माध्यम से मानव का ऐहिक तथा पारलौकिक उत्थान करने में सहयोगशील बने हैं ।

आशा है सभी पाठक तत्त्वगवेषणा की दृष्टि से इस ग्रंथ का अध्ययन करेंगें । सभी को सत्य का साक्षात्कार हो, श्रेयस् की उपलब्धि हो, यही मंगल-कामना है ।

श्री साधुमार्गी जैन संघ
सुरत

उत्कृष्ट वैरागी बालकुमारी शारदाबेन (उम्र वर्ष : १६)

जन्म :
सं. १९८१
मार्गशीर्ष वदी नवमी
ता. १-१-१९२४
मंगलवार
साणंद

दीक्षा :
सं. १९९६
वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता.१३-५-१९४०
सोमवार
साणंद

जिन्होंने मात्र सोलह वर्ष की नाजुक वय में संयम लेकर रत्नयत्र की रोशनी झलका दी, वीरवाणी का शेष देशोदेश में गुँजित कर दी, शासन की शान बढायी हैं । ऐसे पुस्तक प्रवचन कर्ता, प्रवचन प्रभाविका, शासनदीपिका महान विदुषी बा.ब्र. पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी के चरण कमल में हम सबका कोटि-कोटि वंदन

जय गुरुनाना | जय महावीर | जय गुरु विजय शांति

सूरज की एक किरण अधकार मिटा देती है ।
बसत की एक बहार मुरझाया फूल खिला देती है ।
सतो की एक नजर सोये हुए भाग्य को जगा देती है ।
ज्ञान की एक किरण आदमी का जीवन बदल देती है ।

I-30, 32, बोम्बे मार्केट, सुरत
PH. : (O) 2350739 (R) 2323819

❖ महावीर सिल्क पेलेस
4-24, बोम्बे मार्केट सुरत
2333873

❖ विजय शांति सिल्क पेलेस
B-8, बोम्बे मार्केट, सुरत
93273 83164

स्व. सोहनबाई गेहरीलालजी महेता के
[पांचवी पुण्य स्मृति के उपलब्ध में]

कुशल देवी, सविता,
संतोष महेता

हिम्मतसिंह, अरुण, विरेन्द्र,
राहुल महेता

जय जिनेन्द्र

श्री महावीराय नमः

शाह भणशाली अमुलखचंदजी मानमलजी

सांचोर - राजस्थान

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि

परम पूज्य बा. ब्र. श्री शारदाबाई महासतीजी

के प्रवचनों का गुजराती में से

हिन्दी में अनुवाद करवा के

दीवादांडी

पुस्तक तैयार करके

समाज को अर्पण

करने का उत्तम प्रयास करने वदल

शारदा प्रवचन संग्रह समिति (हिन्दी) सुरत को

हमारी शुभकामना

॥ श्री महावीराय नमः ॥

'दीवादांडी'

प्रस्तुत पुस्तक 'शारदा प्रवचन संग्रह' ज्ञान के प्रचार-प्रसार में उपयोगी बने यही मंगल भावना

शाह मानमलजी शिवानीजी

सांचोर

(राजस्थान)

शुभेच्छा

॥ श्री महावीराय नमः ॥

बाल ब्रह्मचारिणी प्रतिभाशाली विदुषी

प्रखर प्रवकता

शारदाबाई महासतीजी का

व्याख्यान-संग्रह 'दीवादांडी' को मेरी

शुभ भावनाएँ

शाह प्रेमचंदजी

अचलाजी

महेता

सांचोर

(राजस्थान)

व्याख्यान - १४

व्याख्यान - १५

व्याख्यान - १६

व्याख्यान - १७

व्याख्यान - १८

व्याख्यान - १९

व्याख्यान - २०

व्याख्यान - २

व्याख्यान - २२

व्याख्यान - २३

व्याख्यान - २४

व्याख्यान - २५

व्याख्यान - २६

व्याख्यान - २७

व्याख्यान - २८

व्याख्यान - २९

व्याख्यान - ३०

व्याख्यान - ३१

व्याख्यान - ३२

गुजरात सिंहनी बाल ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म	: विक्रम सं. १९८१ मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी मंगलवार, वीर सं. २४५१, ई. सन् १९२४, दिनांक : १-१-१९२४ मध्यरात्री में अढ़ाई बजे ।
जन्म स्थान	: साणंद ।
माता-पिता	: धर्मस्नेही श्रीमती शकरीबहन और धर्मप्रेमी श्रीमान वाडीभाई ।
भाई-भाभी, बहन	: सर्वश्री नटवरभाई प्राणलाल भाई अ.सौ. नारंगीबहन, अ.सौ. इन्दिराबहन, अ.सौ. गंगाबहन, अ.सौ. विमलाबहन, अ.सौ. शान्ताबहन, अ.सौ. हसुमतिबहन।
वंश और गोत्र	: शाह ।
शिक्षा	: गुजराती ६ श्रेणी साणंद में ।
दीक्षा	: विक्रम सं. १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, सोमवार तदनुसार दिनांक . १३-५-१९४० प्रातः ८-३० बजे ।
दीक्षा स्थल	. साणंद, अहमदाबाद से २२ कि.मी., गुजरात ।
दीक्षादाता गुरु	: जैन ज्योतिर्धर, ज्ञानदिवाकर बा. ब्र. पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब ।
दीक्षादात्री गुरुणी	: वात्सल्यमूर्ति, पारसमणि समान पूज्य गुरुणीदेव श्री पार्वतीबाई महासतीजी।
सप्रदाय	: खंभात ।
भाषाज्ञान	: गुजराती, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत ।
शास्त्रीय ज्ञान	: जैन आगम बत्तीस शास्त्र तथा सिद्धांत, थोकड़ा ।
शिष्या समुदाय	: पूज्य सुभद्राबाई महासतीजी, बा.ब्र.वसुबाई महासतीजी आदि ठाणा ३९।
विशिष्ट चारीत्रिक गुण	: सरल, गम्भीर, निड़र, वक्ता, अद्भुत, जागृति, यशस्वी, समतामूर्ति, विशाल दृष्टि, परमपुण्यप्रभावक, संप्रदायक की खेवैया, संतो की दीक्षादात्री, मात्र दो वर्ष के संयमपर्याय मे प्रारम्भ करके अंतिम दिवस तक प्रवचन प्रभावना की एकधार अमृतवर्षा की तथा अंतिम समय में स्वमुख से मांगलिक, नवकार मंत्र सुनाकर लगातार गुरुदेव का अजपाजाप किया।
प्रवचन प्रकाशन	: शारदा सुधा, शारदा संजीवनी, शारदा माधुरी, शारदा परिमल, शारदा सौरभ, शारदा सरिता, शारदा ज्योत, शारदा सागर, शारदा शिखर, शारदा दर्शन, शारदा सुवास, शारदा सिद्धि, शारदा रत्न, शारदा शिरोमणि आदि लगभग सवा लाख प्रतियाँ उनकी उपस्थिति में प्रकाशित हुई तथा उनकी चिर विदाय के पश्चात् 'शारदा शिरोमणि' की दूसरी आवृत्ति तथा हिन्दी आवृत्ति प्रकाश में आयी तथा 'सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह' की दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। और हिन्दी में ६ हजार 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह। और अंग्रेजी में ३ हजार प्रकाशित हुई है।
विहार-यात्रा	: गुजरात. सौराष्ट्र, काठियावाड, महाराष्ट्र आदि ।
अंतिम पयाण	: विक्रम सं. २०४३, वैशाख शुक्ल षष्ठी, बुधवार तदनुसार १४-५-१९८६ को संध्याकाल छ. बजे मलाड़-बम्बई में। (अपनी दीक्षा जयंती के दिन) ।

व्याख्यान वाचस्पति बालब्रह्मचारी विदुषी

'पूज्य शारदाबाई महासतीजी की जीवन रेखा'

'प्रेरणादायी वैराग्यमय जीवन'

सृष्टि की सुन्दर फूलवारी में अनेक पुष्प खिलते हैं और मुर्झा जाते हैं, लेकिन पुष्प की विशेषता और महत्ता इसीमें होती है कि वह अपने सौरभ से दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है तथा लोगों को ताजगी और प्रफुल्लता से भर देता है। संसार में अनेक जीव जन्म लेते हैं, लेकिन उसीका जीवन सार्थक होता है, जिसका आकर्षक व्यक्तित्व सदैव दूसरों के जीवन को नयी और सही राह दिखाता है। जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार जैसे उच्चतम संस्कारों का खजाना जगत के समक्षु रखते हुए मुमुक्षु जीवों को यह विरासत सौंपने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करते हैं, प्रमाद की गाढ़ी निद्रा से जागृत करके कर्तव्य की राह पर आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हैं और जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध प्रदान करते हैं। जो अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के साथ दूसरों का जीवन भी उज्ज्वल करते हैं - ऐसे शासन रत्नों में जैनशासन की साध्वी के रूप में, जिनशासन का डंका देश-विदेश में जिन्होंने गूँजाया, वे गौरववंत गुजरात की भूमि में जन्मी, प्रखर व्याख्याता, अप्रतिम उदारता की मूर्ति, क्षमा, तप, त्याग और संयम मार्ग की दृढ़ उपासिका, आर्जवता तथा मार्दवता से मुमुक्षों का मन मोह लेने वाली बाल ब्रह्मचारी विदुषी पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी हैं।

"सुमनोहर भूमि साणंद की, गूँजती ध्वनि जहाँ सदा आनन्द की,
मस्ती मनाने निजानंद की, जन्मी विरल विभूति शारदा गुरुणी।"

पूज्य शारदाबाई महासतीजी का जन्म अहमदाबाद के नजदीक साणंद शहर में संवत १९८१ की मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी, तदनुसार मंगलवार दिनांक : १-१-१९२४ की मध्यरात्रि के पश्चात् अढ़ाई बजे हुआ था। धन्य हे वह भूमि ! किसे ज्ञात था कि साणंद सहर में खिला यह पुष्प, अपने सद्गुणों की सौरभ जगत के कोने-कोने तक बिखरा कर, आत्मा का अपूर्व आनन्द प्राप्त करेगा। शासन प्रेमी, धर्मानुरागी पिता वाडीभाई और सद्गुणों से सुशोभित रत्नकुक्षि माता शकरीबहन भी धन्यवाद के पात्र है कि जिन्होंने जिनशासन को उज्ज्वल करने वाली, संप्रदाय की शान बढ़ानेवाली शारदाबहन के जीवन में सुंदर संस्कारों के ऐसा बीज बोए कि आज वह बीज विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल कर चारों दिशा में अपनी महक फैला रहा है। सचमुच ही, जब शारदाबहन का जन्म हुआ तब किसने सोचा था कि यह नन्हीं बालिका भविष्य में जैनशासन में धर्म की धुरी ग्रहण करके माता-पिता का नाम दुनिया में रोशन करेगी ! गौरववंती माता शकरीबहन ने पाँच पुत्रियों और दो पुत्रों को जन्म दिया। जैनशासन की शान बढ़ाने वाली, प्रव्रज्या का परिमल प्रसारित करने वाली, रत्नत्रयी की रोशनी फैलाने वाली महान विदुषी बा. ब्र. पूज्य शारदाबाई महासतीजी के तेजस्वी जीवन की यहाँ संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश है।

जिनका जीवन शक्कर जैसा मधुर तथा गुणरूपी पुष्पों की सुवास से महकता हुआ था, ऐसे माता-पिता ने अपनी लाड़ली पुत्री शारदाबहन को बाल्यावस्था में पहुँचते ही शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाठशाला भेजा। साथ ही धार्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए जैन-शाला में भी भेजते रहे। संस्कारी माता-पिता के सुसंस्कारों के सिंचन तथा

खंभात संप्रदाय की महान रत्ना विदुषी वाणीभूषण शासन प्रभाविका

स्व. बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

जन्म :
सं. १९८१
मार्गशीर्ष वदी नवमी
ता. १-१-१९२४
मंगलवार
साणंद

दीक्षा :
सं. १९९६
वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता.१३-५-१९४०
सोमवार
साणंद

निर्वाण सं. २०४२ वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता. १४-५-१९८६ बुधवार, मलाड, बम्बई

शारदागुरुणी सरस्वती, ज्ञान गुणों की ही है खान ।
अनेक जीव प्रबुद्ध हुए उनका अमृत सुन व्याख्यान ॥
रत्न गुरु के शुभाशीष से, जिन शासन विकसाया था
गौरव बढाकर नारी जाति का शासन शिरोमणि हरि पदपाया था

पूर्व के संस्कारो की किरणों का प्रकाश पुरुषार्थ द्वारा फैलता गया । यह प्रकाश उनके अंतर में ऐसा आलोक बन कर बिखरा कि बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ते हुए, सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए, गरबा गाते हुए भी उनका चित्त कहीं रमता नहीं था । उस समय भला किसे यह कल्पना तक न थी कि इस संसार से विरक्त बालिका के हृदय - समुद्र मे आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना भरा है । वे भविष्य में अपने जीवन के हर सुनहरे क्षण को आत्म-साधना की मस्ती में, प्रवचन-प्रभावना में, जैनशासन की बेजोड़ सेवा करने में सदुपयोग करने वाली हैं और अपनी उत्कृष्ट प्रज्ञा की तेजस्विता से जैन तथा जैनेतर समाज को दान, दया, शील, तप, अहिंसा, सत्य, नीति, सदाचार और सद्‌गुणों का पाठ पढ़ाकर, श्रेष्ठतम जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाली है।

बाल्यावस्था में ही वैराग्यमूलक विचारधारा : शारदाबहन जैन-पाठशाला में सीखते हुए जब महान वीर पुरुषों की तथा चंदनबाला, राजेमती, मृगावती, दमयंती आदि महान सतियों की कथा सुनती तो उनका मन किसी अगम्य प्रदेश में खो जाता और विचार करने लगती कि 'क्या हम भी इन सतियों जैसा जीवन नहीं जी सकते ?' इसी विचार को अपनी सखियों के सम्मुख रखते हुए वे कहती, "सखियों! यह संसार दुःख का दावानल है और संयम सुख का सागर है । चलो, हम दीक्षा ले लें ।" उनकी इस बात से हम कल्पना कर सकते हैं कि जिसके विचार इस नन्हीं उम्र में इतने उत्तम हो उसका भावी जीवन कितना उज्ज्वल बनेगा ? शारदाबहन की विचारधारा वैराग्य से भरपूर तो थी ही, उनकी वैराग्य ज्योति को और अधिक उज्ज्वल बनाने और गहराने वाला एक प्रसंग सामने आया । उनकी बड़ी बहन विमलाबहन का प्रसूति के पश्चात्, अत्यन्त छोटी उम्र में देहान्त हो गया। इस घटना ने बालकुमारी शारदाबहन पर जीवन की क्षणिकता और संसार की असारता की छाप गहरी कर दी । उनके अंतर में हलचल मच गई कि क्या जीवन इतना क्षणिक है ? ऐसे क्षणिक जीवन में नश्वर का मोह छोड अविनाशी की आराधना करने के लिए प्रव्रज्या के पंथ पर प्रयाण करना ही श्रेयष्कर है, हितकारी है । इस प्रसंग ने शारदाबहन के हृदय में संयमी जीवन का आनन्द लूटने की मस्ती पैदा की और वैराग्य दृढ़ होता गया।

शारदाबहन के वैराग्यपूर्ण विचार, वाणी और व्यवहार से माता-पिता को आभास होने लगा कि उनकी प्यारी, लाड़ली पुत्री संसार को सुलगता दावानल मान कर, आत्मिक आनन्द की अनुभूति करने महावीर मेडिकल कोलेज में दाखिल होकर पाँच महाव्रत रूपी दिव्य अलंकारों से विभूषित होने के सुनहरे सपनों में खो रही है ।

रत्न समान रत्न गुरुदेव का समागम : जो आत्मा आध्यात्मिक भाव में रमण करती रहती है और उच्च भावनाओं का सेवन करती रहती है, उसकी भावना को साकार करने के लिए कोई न कोई सहायक मिल ही जाता है । इसीके अनुसार शारदाबहन के दृढ वैराग्य को चुम्बक से आकर्षित होकर खंभात संप्रदाय के गच्छाधिपति कोहिनूर रत्न के समान तेजस्वी, अध्यात्मयोगी, महायशस्वी बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब का साणंद की पवित्र भूमि में पुनित पदार्पण हुआ । उनका वैराग्य और दृढ़ बना । गुरुदेव ने कुमारी शारदाबहन से कहा, "बहन ! तुम्हारी संयम की भावना अति उत्तम और श्रेष्ठ है; परन्तु क्या तुम्हें पता है कि आत्मकल्याण की राह बडी कठिन है । इस किशोर वय में माता-पिता की शीतल छाया और संसार का रा राग छोड़ कर कष्टों और कंटकों से भरपूर संयम मार्ग को स्वीकारना कोई सामान्य बा

आसान काम नहीं है। इस संयम मार्ग के संकटों का तुम सहर्ष सामना कर पाओगी ? क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें आज्ञा प्रदान करेंगे ?'' शारदाबहन ने उत्तर दिया, ''गुरुदेव ! मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ। इस विषम संसार में, जहाँ छः काय के जीवों की हिंसा का ताण्ड़व नृत्य हो रहा हो, जहाँ राग-द्वेष की होली सतत जलती हो, जहाँ पुण्य बेच कर पाप की कमायी होती हो, ऐसा संसार रहने योग्य है क्या ? इसलिए ऐसा संसार का त्याग कर आत्म-प्रकाश प्राप्त करने के लिए संयम अंगीकार करने की मेरी उत्कृष्ट भावना है।'' देखिए, उम्र छोटी होने पर भी उनका उत्तर वैराग्य की कैसी अद्‌भुत छटा फैला रहा है !

गुरुदेव की दृष्टि में शारदाबहन का उज्ज्वल भविष्य : बाल्यकाल के प्रांगण में क्रीड़ा करती बालिका को संयम पंथ पर प्रयाण करने की कितनी तीव्र उत्कंठा है ! उनका अंतर संयमी जीवन का आनन्द पाने के लिए लालायित हो रहा था। इसी कारण अब संसार में व्यतीत होते क्षण उन्हें युगों जैसे महसूस होने लगे। पूज्य गुरुदेव को उनकी दृढ़ भावना से यह निश्चय होने लगा कि 'यह कन्यारत्न दीक्षा लेकर जैनशासन को उज्ज्वल बनायेगी, संप्रदाय की शान बढ़ायेगी और भविष्य में खंभात संप्रदाय में जब कठिन समय आयेगा तब यही संप्रदाय की नैया पार लगायेगी तथा शासन को रोशन करेगी।' उस चातुर्मास में वैरागी शारदाबहन ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में अल्पकाल में ही 'दशवैकालिक सूत्र', 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा 'थोकड़े' कंठस्थ कर लिए। उन्होंने तभी, मात्र तेरह वर्ष की उम्र में कभी ट्रेन में सफर न करने तथा बस से अहमदाबाद से आगे न जाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। ये बातें उनके उच्च कोटि के वैराग्य को सूचित करती हैं।

वैराग्य की कसौटी में शारदाबहन की दृढ़ता : शारदाबहन के माता-पिता, भाई, मामा आदि सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, बहुत डराया-धमकाया, परन्तु शारदाबहन अपने निश्चय से तिल-मात्र भी विचलित न हुई। माता-पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने कहा कि ''हम अन्न-जल का त्याग करेंगे।'' परन्तु जिसके रग-रग में वैराग्य का स्रोत बह रहा हो, जिसके चित्त को चारित्र की चटक लगी हो और संसार रूपी ज्वालामुखी से सुरक्षित बचने के लिए जिसने मेरुपर्वत जैसी अडिग और अड़ोल आस्था और श्रद्धा को धारण कर रखा हो, वह क्या वैराग्य भाव से जरा भी चलित होगी भला ? विविध प्रकार की कसौटियों के पश्चात् भी उनकी भावना में अडिग निष्कंपन देख कर माता-पिता ने कहा कि ''अभी इस सोलह वर्ष की अवस्था में तो नहीं पर इक्कीस वर्ष की उम्र में तुम्हें दीक्षा लेने की आज्ञा देंगे।'' परन्तु शारदाबहन तो उसी समय दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी। अतः उन्होंने पूछा कि ''सत्रह वर्ष की विमलाबहन की मृत्यु को कोई रोक न सका तो मेरी इस जिंदगी का क्या भरोसा ?'' अंत में शारदाबहन की विजय हुई और माता-पिता ने राजी-खुशी से दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान की।

भाग्यवान शारदाबहन भागवती दीक्षा के पंथ पर : संवत १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, तदनुसार दिनांक १३-५-१९४०, सोमवार को साणंद में अत्यन्त भव्यता से शारदाबहन का दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हुआ। खंभात सम्प्रदाय में, साणंद ग्राम से, मन्दिर-मार्गी या स्थानकमार्गी या स्थानकवासी समाज से, बाल कुमारी के रूप में सर्वप्रथम दीक्षा शारदाबहन की हुई। अतएव समस्त ग्राम हर्ष की हिलोर में मग्न हो रहा था। दीक्षाविधि

पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब के मुखारविन्द द्वारा सम्पन्न हुई । गुरुणी पूज्य पार्वतीबाई महासतीजी की शिष्या बनी । इनके साथ ही साणंद की एक अन्य बहन जीवीबहन भी दीक्षित हुई थी । जीवीबहन का नाम पूज्य जसुबाई महासतीजी तथा शारदाबहन का नाम पूज्य शारदाबाई महासतीजी रखा गया । इस प्रकार वैरागी विजेता बनी ।

उनके पूज्य पिता श्री वाडीलालभाई और मातुश्री शकरीबहन, भाई श्री नटवरभाई तथा प्राणलालभाई, भाभी अ. सौ. नारंगीबहन, अ. सौ. इन्दिराबहन, बहनें अ. सौ. गंगाबहन, अ. सौ. शान्ताबहन, अ. सौ. हसुमतीबहन सभी धर्मप्रेमी तथा सुसंस्कारी हैं । साणंद में उनका कपड़े का व्यापार है । जिस परिवार से ऐसा अनमोल रत्नशासन को प्राप्त हुआ हो उस परिवार के सदस्यों का धर्म, दान, दया, अनुकंपा आदि से ओतप्रोत होना स्वाभाविक है ।

गुरु चरण व शरण में समर्पणता : इस विशाल संसारसागर में जीवननैया के कुशल खेवैया मात्र गुरुदेव ही है । पूज्य शारदाबाई महासतीजी ने इसी तथ्य के अनुरूप अपनी जीवन नैया को पूज्य पार्वतीवाई महासतीजी की शरण में सर्वदा के लिए तैरता रख दिया तथा अपना जीवन उनकी आज्ञा में अर्पित कर दिया । पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव से संयमी जीवन की सभी कलाएँ सीखीं । अल्पायु में दीक्षा लेकर भी पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव की आज्ञा में ऐसे समर्पित हो गयीं कि अपने जीवन में कभी भी गुरुआज्ञा का उल्लंघन तो क्या किसी तरह की कोई दलील या अपील तक नहीं की । पूज्य गुरु-गुरुणी की शीतल छत्रछाया में पूज्य महासतीजी का धार्मिक अभ्यास और पुरुपार्थ अत्यन्त प्रबल बना और सुन्दर आत्मज्ञान प्राप्त किया । शास्त्रों का पठन किया । संस्कृत, प्राकृत भापा सीखी । अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को प्रदान करने के प्रयत्न में, अति अल्प काल में ही प्रतिभाशाली और प्रखर व्याख्याता तथा विदुपी के रूप में पूज्य महासतीजी की ख्याति चारों ओर फैल गयी ।

सम्मोहनकारी वीरवाणी की वीणा बजाने की अनोखी शक्ति : पूज्य महासतीजी के व्याख्यान में मात्र विद्वत्ता नहीं वरन आत्मा की चैतन्य विशुद्धि का स्वर उनके अंतर की गहराई से उभरता था । धर्म के तत्त्व का शब्दार्थ, भावार्थ तथा गूढ़ार्थ ऐसी गम्भीर और प्रभावक शैली में विविध न्याय, दृष्टांत द्वारा समझाती कि श्रोतावृंद उसमें तन्मय होकर अपूर्व शांति से शारदा सुधा का रसपान करते । उनकी वाणी में आत्मा के स्वर गूँजते थे तथा उस ध्वनि ने अनेक जीवों को प्रतिबोध प्राप्त करवाया है । सुपुप्त आत्माओं को झिंझोड़ कर संयम मार्ग की ओर प्रेरित किया है । पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तक ने तो लोगों पर ऐसा जादू किया है कि पुस्तक पढ़ कर जैन-जैनेतर अनेक (हजार से अधिक) भाई-बहनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया है । अनेकों ने व्यसनों का त्याग किया । नास्तिक आस्तिक बने, पापी पुनित बने और भोगी योगी बने ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं । ज्यादा क्या लिखूं ? ये पुस्तकें मीसा के तहत, कारावास भोगते जैन भाई तक पहुँची तो इसे पढ़ कर वे आर्तध्यान छोड, धर्मध्यान में जुड़ने लगे, और कर्म का दर्शन (फिलोसोफी) समझने लगे । पूज्य महासतीजी की अंतर वाणी का नाद उनके दिल तक पहुँचने पर जेल धर्मस्थानक जैसा बन गया और वहाँ रहने वाले कैदी भाईयों ने तप, त्याग तथा धर्माराधना की मंगल शुरूआत की । जेल से मुक्त होने पर पूज्य महासतीजी के पास आकर वे पढ़े और अनेकों व्रत, नियम धारण किये । संक्षेप में इस उदाहरण से पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तकों का प्रभाव स्पष्ट होता है, जिसने मानवों के जीवन को परिवर्तित कर दिया ।

गुण रूपी गुलाब से महकता जीवन बाग : पूज्य महासतीजी परम विदुषी ही नहीं अन्य अनेक अमूल्य गुणों से सजी हुई थीं । उनके असीम गुणों का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर की बात है । फिर भी गुरुभक्ति सरलता, निराभिमानता, नम्रता, लघुता, अपूर्व क्षमा, स्नेह गुणानुराग तथा करुणा आदि गुण तो उनके जीवन में रचे-बसे थे । अपने इन गुणों के प्रभाव से उन्होंने अनेक जीवों को धर्म-मार्ग की ओर मोड़ा । उनकी आत्मा में निरन्तर यही भाव रहता कि सर्व जीव शासन के स्नेही कैसे बने, वीर की संतना वीर के मार्ग पर कैसे चलें ? **"दुःख में अजब समाधि साधी, सुख में रहे समभावी, तेजस्वी, यशस्वी गुरुणीदेव भी आत्मभावी ।"** अस्वस्थ होने पर भी प्रवचन की प्रभावना करने में वे कभी न चूकती थी । पूज्य महासतीजी ने सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात आदि क्षेत्रों में विहार करके, अमूल्य लाभ प्रदान किया है, परन्तु उनकी पुस्तकें तो देश, विदेश तक पहुँची हैं ।

पूज्य महासतीजी के प्रतिबोध से ३६ (छत्तीस) बहनों ने वैराग्य प्राप्त करके, उनसे दीक्षा अंगीकार की और जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि कर रही है । पूज्य महासतीजी एक जैन साध्वी के रूप में रह कर पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. तथा पूज्य गुरुदेव श्री गुलाबचन्दजी महाराज साहब के काल-धर्म प्राप्त करने के पश्चात् खंभात संप्रदाय की नैया कुशल खेवैया बनी, जो जिनशासन में विरल है। इतना ही नहीं वरन खंभात संघ के संघपति श्री कांतिभाई की दीक्षा भी पूज्य महासतीजी के पुनित हस्तों द्वारा हुई तथा दीक्षा मंत्र भी उन्होंने ही दिया। आज जिनकी ख्याति महान वैरागी पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. के रूप में है । पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. ठाणा-१३ में से प्रथम चार संतों को दीक्षा की प्रेरणा प्रदान करने का श्रेय भी पूज्य महासतीजी की अद्भुत वाणी को है ।

पूज्य महासतीजी की वाणी ने बम्बई की जनता को इतना आकर्षित कर लिया था कि जब वे अन्य स्थानों पर होती तब भी बम्बई की जनता उनके चातुर्मास के लिए लालायित रहती । कांदावाड़ी आदि अनेक संघ लगातार अपनी विनती लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहते थे । अत: कांदावाडी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती को मान देकर पूज्य महासतीजी तीसरी बार बम्बई में चातुर्मास करना स्वीकार किया । इसीसे ज्ञात हो जाता है कि बम्बई की जनता में उन्होंने कैसे स्नेह और आकर्षण की वर्षा की ।

केसरवाड़ी में केसर की क्यारी के समान महकता चरम चातुर्मास : सं. २०४१ में कांदावाड़ी श्रीसंघ की अत्यन्त आग्रहभरी विनती का मान रख कर पूज्य महासतीजी कांदावाड़ी पधारें । पूज्य महासतीजी के वैराग्य भरे, आत्मस्पर्शी, ओजस्वी और प्रभावशाली प्रवचनों ने जनता के हृदय में ऐसा अनोखा आकर्षण उत्पन्न किया कि चातुर्मास दरमियान व्याख्यान कक्ष हंमेशा जिज्ञासुओं से भरी रहती और उनकी दिव्य, तेजस्वी वाणी की प्रेरणा से तप, त्याग और व्रत-नियमों का एक धारा - प्रवाह बहता रहा । कांदावाड़ी श्रीसंघ में सोलह मासखमण और दो उपवास के सिद्धितप हुए । छ उपवास से लेकर इकतीस (३१) उपवास तक की तपश्चर्या करने वालों की सख्या २०० को पार कर गई । इसी प्रकार उनके हर चातुर्मास में दान, शील, तप और भावना का ज्वार उठता । इस सब का श्रेय पूज्य महासतीजी को ही है । उनका प्रत्येक चातुर्मास ऐसा रहा है जो श्रीसंघ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने की योग्यता रखता

है । परन्तु कांदावाड़ी का चातुर्मास हंमेशा के लिए एक यादगार और चरम चातुर्मास बन गया । इस चातुर्मास को कांदावाड़ी संघ कभी विस्मृत नहीं कर सकता ।

विशेष आनन्द का विषय तो यह है कि आज तक पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों की पुस्तकें दस-दस हज़ार की संख्या में प्रकाशित हुई, परन्तु आज एक भी प्रत उपलब्ध नहीं है । मात्र यही बात इस बात को प्रमाणित कर देता है कि पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों का आकर्षण कैसा है ? पूज्य महासतीजी के सं. २०४१ के कांदावाड़ी चातुर्मास के व्याख्यान 'शारदा शिरोमणि' नाम से १२००० (बारह हज़ार) प्रतियाँ प्रकाशित हुई । सौभाग्य हमारा कि बम्बई में 'शारदा शिरोमणि' का भव्य उद्घाटन पूज्य महासतीजी के सान्निध्य में ता. ६-४-८६ रविवार को कांदावाड़ी में हुआ । एक महीने में समस्त प्रतियाँ बिक गई - यह है पूज्य महासतीजी की वाणी का प्रभाव !

मलाड़ की ओर प्रयाण : 'शारदा शिरोमणि' के उद्घाटन के पश्चात् आयंबिल की ओली तथा वर्षीतप के पारणा के प्रसंग पर मलाड़ में पदार्पण किया । तब किसे मालूम था कि पूज्य महासतीजी का यही अंतिम प्रयाण है ! पूज्य महासतीजी की रग-रग में शासन के प्रति खुमारी, शासन के प्रति अड़िग श्रद्धा तथा शासन के लिए कुछ कर गुजरने की अदम्य इच्छा और उत्साह था । **"शासन के लिए मरना मंजूर लेकिन शासन के लिए कुछ करके जाना ।"** यही उनका जीवनमंत्र था, इसीके लिए उनका रोम-रोम उत्साहित हो उठता था । ओली और वर्षीतप के निमित्त से उनकी जोरदार प्रवचन प्रभावना ने अपना विशिष्ट रूप दिखाया । अनेक आयंबिल तथा नये वर्षीतप प्रारम्भ किये गये। वर्षीतप का पारणा भी बड़ी धूमधाम से हुआ । अंत में वैशाख षष्ठी के दिन, उनकी दीक्षा जयंती का दिवस था, जब वे सुवर्ण संयम साधना के ४६ वर्ष पूर्ण कर ४७ वें वर्ष में प्रवेश करेंगी । मलाड़ संघ इस सुनहरे अवसर का लाभ प्राप्त कर बड़ा उत्साह और अनोखे आनन्द में झूम उठा था । ता. १५-५-८६ बुधवार को दीक्षा जयंती के दिन उन्होंने एक घंटा प्रवचन दिया । व्याख्यान के पश्चात् १३५ जीवों को अभयदान, ५१ अखण्ड अट्ठम (तेला) के प्रत्याख्यान आदि विभिन्न व्रत-प्रत्याख्यान करवाये । दोपहर में १०८ लोगस्स का कायोत्सर्ग, नवकार मंत्र का जाप आदि आराधना की तथा करवाई । पूर्ण दिवस आराधना के कार्यक्रम चले । अंत में संध्या समय ५-१० मिनट पर अत्यंन्त उत्साह से मांगलिक का पाठ सबको सुनाया । दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में अनेक भावक भक्तों का आना-जाना बना हुआ था । लगभग सभी को स्वयंही मांगलिक सुनाते थे । थोड़ी देर बाद ही छाती में दर्द उठा । उस समय सभी शिष्या-वृंद उनके पास थे, कितने ही भाई-बहनों ने पौषध किया था, वे तथा अनेक दर्शनार्थी भी वहाँ उपस्थित थे । सबकी उपस्थिति में उन्होंने स्वयं जावजीव का संथारा ग्रहण किया । प्रसन्न चित्त से आलोचना की, सबसे खमत-खामना किया तथा अरिहंत, सिद्ध, ऋषभदेव, भगवान महावीर का शरण स्वीकार किया । ४६ वर्ष के संयमपर्याय में जाने-अनजाने लगे दोषों की शुद्धि के लिए स्वयं छः महीने दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त किया । तीन बार 'वोसिरामि' शब्द का उच्चारण किया । अंत में "जीव जा रहा है, नवकार बोलो" कहा । देखने वालों तो देखते रह गये कि अंतिम समय में भी कितनी चित्त प्रसन्नता, आह्लाद-भाव, सौम्यता और शांत मुख-मुद्रा । ऐसा देख कर विश्वास न होता था कि ये जो कह रही हैं वह सच है ! परन्तु उन्होंने तो अपना साध्य पा लिया था । आत्मा अन्तरात्मा बन कर नवकार मंत्र का स्मरण करते और कराते अपूर्व समाधिपूर्वक दुनिया को अलविदा कह कर अनन्त की यात्रा पर चल गया । मृत्युंजयी बन गये । **"साणंद शहर में जन्म हुआ, मलाड़ में देह छोड़ा, दीक्षा-**

निर्वाण एक दिन, वैशाख सुदि छठ्ठ बुधवार" सुबह किसे कल्पना थी कि आज का दीक्षा जयंती का शुभ-दिन, संध्या होने तक पुण्यतिथि बन जायेगा !

"कल्याणकारी है आपका च्यवन, मंगलकारी है आपका जन्म,
पावनकारी है आपकी प्रव्रज्या, प्रेरणादायी है आपका निर्वाण ।"

जिनशासन का अनमोल कोहिनूर रत्न कालराजा ने छीन लिया । सोलह कलाओं में खिला हुआ चाँद जगत को अंधेरा करके विलीन हो गया । यह समाचार वायुवेग से प्रसरित हुआ, पर लोग सुन कर अचंभित रह गये कि 'क्या यह सत्य है ?' पूर्ण बम्बई तथा समस्त देश के कोने-कोने में हाहाकार मच गया । इस दुःखद समाचार के मिलते ही श्रद्धालुओं की भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ी । उनका पार्थिव शरीर देख सबके मन में आता कि कैसा अद्‌भुत है इस तेजस्वी मूर्ति का अलौकिक तेज ! ता. १५-५-८६ की दोपहर को उनकी भव्य पालकी निकली तब तीस से पैंतीस हजार भक्तों की विशाल मेदिनी साथ थी । थोड़े से समय में पाँच लाख रुपयों का दान एकत्रित हो गया और आज भी यह प्रवाह जारी है । पूज्य महासतीजी को गये तीन वर्ष ही हुए थे कि तब-तक में मलाड़, खंभात, अहमदाबाद, जोरावरनगर, साणंद, पाटडी, पोपटपुरा आदि गाँवों में एकान्त कर्मनिर्जरा करने, संवर करणी तथा गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए उनके नाम से स्मारक, उपाश्रय आदि गुरुणीमैया का नाम रोशन कर रहे हैं । तीनों वार्षिक पुण्यतिथियों पर भी अनेक प्रकार के तप, जाप, कार्योत्सर्ग, संवर करणी, अभयदान आदि आराधनाओं का भव्य आयोजन हुआ । यह सब गुरुणीमैया का पुण्य प्रभाव है ।

पूज्य महासतीजी की पुण्य प्रभावकता : पूज्य म.सा. तो सबको छोड़ कर चली गई, परन्तु उनके पुण्य का प्रभाव ऐसा है कि उनके प्रवचन का ग्रंथ **'शारदा शिरोमणि'** की बारह हज़ार प्रतियाँ अति अल्प समय में बिक गई, पर उनकी माँग फिर भी इतनी अधिक थी कि श्री कांदाबाड़ी संघ ने द्वितीय संस्करण में ६ हजार प्रतियों का प्रकाशन करवाया । राजस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि स्थानों पर भी इस पुस्तक की बहुत माँग थी, अतः दस हजार प्रतियाँ हिन्दी के संस्करण की निकाली । मलाड़ संघ ने पूज्य महासतीजी का स्मृति ग्रंथ **'दीवादांडी शारदा स्मृति ग्रंथ'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ छपवाई जो आज अनुपलब्ध है, पूज्य महासतीजी की गैरहाजिरी में इसीको ध्यान में रख कर कांदावाड़ी श्रीसंघ ने **'सफल सुकानी - शारदा प्रवचन संग्रह'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ प्रस्तुत की । पूज्य महासतीजी की वाणी का ऐसा अलौकिक जादू और ऐसा प्रचण्ड पुण्य प्रभाव कि व्यक्ति के न रहने पर भी उसकी पुस्तकों के लिए इतनी माँग ! ऐसा तो विरल ही होता है । **"दिव्य देशना का बजाया नाद, देश-देश में पहुँचा साद; करते हैं सभी आपको याद, नहीं भूलती आपकी आवाज् ।"** ऐसी विरल विभूति, शासन की सेनानी, वीर प्रभु की आज्ञा में डूबी योद्धा और

"कृति जिनकी कल्याणकारी, आकृति जिनकी आह्लादकारी,
प्रकृति जिनकी प्रेम-क्यारी, जिनाज्ञा थी जिन्हें प्राण से प्यारी,
ऐसे अनन्त गुणों के धारी, स्वीकारों गुरुणी वन्दना हमारी ।"

"दीप बुझा प्रकाश अर्पित कर, फूल मुरझाया सुवास समर्पित कर,
टूटे तार पर सुर बहा कर, गुरुणी चले पर नूर फैला कर ।"

शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो

- **शा**सन सितारा युग-युग चमके ।
- **र**त्न गुरुदेव की तेजस्वी शिष्या ने ज्ञान तेज प्रसारा ।
- **दा**न दिया अंत तक दिव्य देशना और अभयदान का ।
- **बा**ल ब्रह्मचारी के रूप में संप्रदाय में सर्वप्रथम प्रवज्या पंथ पर।
- **इ**न्द्रिय विजेता बनी, जिन शासन नेता ।
- **म**नीषा थी जिनका मंगलकारी मोक्ष प्राप्त करने की ।
- **हा**र थी हृदय की सबको तारने वालों ।
- **स**मता, सरलता, सौम्यता सहिष्णुता की अजोड़ मूर्ति ।
- **ती**तीक्षा थी उन्हें तरने और तारने की ।
- **जी**वन था जिनका जवाहर-सा जगमगाता ।
- **अ**मरपंथ की पथिक बन जीवन अज्ज्वल कर गई ।
- **म**मता मारी, समता साधी, अहिंसा आराधी ।
- **र**त्नत्रय की पुकार कर, जागृति की झंकार और चारित्र की चाँदनी चमका गई ।
- **र**क्षक बन कर छकाय के आत्मरमणता में रही ।
- **हो** कोटि-कोटि वंदन तारक शारदा गुरुणीमैया के पवित्र चरण कमल में ।

शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो

शासन रत्ना महान विदुषी बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी के पुनीत पदार्पण से पवित्र हुए यशस्वी चातुर्मासों की चमकती सूचि ।

अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष	अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष
१.	१९९६	अहमदाबाद	१९४०	१६	२४.	२०१९	माटुंगा-मुंबई	१९६३	३९
२.	१९९७	खंभात	१९४१	१७	२५.	२०२०	दादर-मुंबई	१९६४	४०
३.	१९९८	खेड़ा	१९४२	१८	२६.	२०२१	विलेपार्ला-मुंबई	१९६५	४१
४.	१९९९	साणंद	१९४३	१९	२७.	२०२२	घाटकोपर-मुंबई	१९६६	४२
५.	२०००	खंभात	१९४४	२०	२८.	२०२३	खंभात	१९६७	४३
६.	२००१	साणंद	१९४५	२१	२९.	२०२४	अहमदाबाद	१९६८	४४
७.	२००२	अहमदाबाद	१९४६	२२	३०.	२०२५	भावनगर	१९६९	४५
८.	२००३	साणंद	१९४७	२३	३१.	२०२६	राजकोट	१९७०	४६
९.	२००४	अहमदाबाद	१९४८	२४	३२.	२०२७	ध्रांगध्रा	१९७१	४७
१०.	२००५	साणंद	१९४९	२५	३३.	२०२८	अहमदाबाद	१९७२	४८
११.	२००६	खंभात	१९५०	२६	३४.	२०२९	कांदावाड़ी-मुंबई	१९७३	४९
१२.	२००७	सुरत	१९५१	२७	३५.	२०३०	माटुंगा	१९७४	५०
१३.	२००८	अहमदाबाद	१९५२	२८	३६.	२०३१	वालकेश्वर	१९७५	५१
१४.	२००९	जोरावरनगर	१९५३	२९	३७.	२०३२	घाटकोपर	१९७६	५२
१५.	२०१०	लखतर	१९५४	३०	३८.	२०३३	बोरीवली	१९७७	५३
१६.	२०११	खंभात	१९५५	३१	३९.	२०३४	मलाड़	१९७८	५४
१७.	२०१२	साणंद	१९५६	३२	४०.	२०३५	सुरत	१९७९	५५
१८.	२०१३	सुरत	१९५७	३३	४१.	२०३६	साणंद	१९८०	५६
१९.	२०१४	अहमदाबाद	१९५८	३४	४२.	२०३७	अहमदाबाद	१९८१	५७
२०.	२०१५	विरमगाम	१९५९	३५	४३.	२०३८	नारणपुरा-अ'बाद	१९८२	५८
२१.	२०१६	साबरमती	१९६०	३६	४४.	२०३९	खंभात	१९८३	५९
२२.	२०१७	खंभात	१९६१	३७	४५.	२०४०	नवरंगपुरा-अ'बाद	१९८४	६०
२३.	२०१८	कांदावाड़ी-मुं	१९६२	३८	४६.	२०४१	कांदावाड़ी-मुंबई	१९८५	६१

श्री खंभात संप्रदाय के शासनरत्न महान संतों की नामावली

क्रम	नाम जन्मस्थल - दीक्षास्थल	संवत	मास	तिथि
१.	स्व. आ. गुरुदेव पू. श्री कान्तिऋषिजी म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
२.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री सूर्यमुनि म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
	निर्वाण-सुरत	२०३८	चैत्र शुक्ल	३
३.	वर्तमान आचार्य बा.ब्र.पू.श्री अरविंदमुनि.म.सा.खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
४.	बा. ब्र. पू. नवीनमुनि म.सा. खंभात	२०१८	मार्गशीर्ष शुक्ल	३
५.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री कमलेशमुनि म.सा. खंभात	२०२२	मार्गशीर्ष वदि	२
६.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री प्रकाशमुनि म.सा. दादर, मुंबई	२०२३	श्रावण शुक्ल	५
	दीक्षा-भावनगर			
७.	बा. ब्र. पू. श्री चेतनमुनि म.सा. बेगमपुरा	२०२३	श्रावण वदि	२
	दीक्षा-भावनगर			
८.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री महेन्द्रमुनि म.सा. पीज, खंभात	२०२७	वैशाख शुक्ल	११
	निर्वाण-अहमदाबाद	२०५५	वैशाख वदि	
९.	स्व. तपस्वी पू. श्री दर्शनमुनि म.सा. वसो	२०२१	वैशाख वदि	११
	दीक्षा-बोडेली			
१०.	बा. ब्र. पू. श्री मृगेन्द्रमुनि म.सा. खंभात	२०३४	माघ शुक्ल	१५
११.	बा. ब्र. पू. श्री जितेन्द्रमुनि म.सा. अंधेरी-मुंबई	२०३०	मार्गशीर्ष शुक्ल	५
	दीक्षा-कोईम्बतूर			
१२.	स्व. शांत स्वभावी पू. श्री [illegible]मुनि म.सा. कच्छ-[illegible]	२०४३	[illegible]	[illegible]
	दीक्षा-माटुंगा-मुंबई			

आचार्य जैन ज्योतिर्धर १००८ बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. के सुशिष्यारत्ना बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी (शारदमण्डल) की नामावली

क्रम	महासतीजी का नाम	जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
१.	बा. ब्र. विदुषी पू. शारदाबाई महा.	साणंद	१९९६	वैशाख शुक्ल	६	सोमवार
		निर्वाण-मलाड़-मुंबई	२०४२	वैशाख शुक्ल	६	बुधवार
२.	स्व. पू. सुभद्राबाई महासतीजी	खंभात	२००८	चैत्र शुक्ल	१०	शुक्रवार
३.	स्व. पू. इन्दुबाई महासतीजी	सुरत				
		दीक्षा-नार	२०११	अषाढ़ शुक्ल	५	गुरुवार
४.	बा. ब्र. पू. वसुबाई महासतीजी	विरमगाम	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	५	शुक्रवार
५.	स्व. पू. कान्ताबाई महासतीजी		२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	१०	गुरुवार
६.	स्व. पू. सद्गुणाबाई महासतीजी	लखतर	२०१३	माघ शुक्ल	६	बुधवार
७.	बा. ब्र. पू. इन्दिराबाई महासतीजी	सुरत	२०१४	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	बुधवार
८.	स्व. पू. शान्ताबाई महासतीजी	मोडासर				
		दीक्षा-नार	२०१४	माघ वदि	७	सोमवार
९.	पू. कमलाबाई महासतीजी	खंभात	२०१४	वैशाख शुक्ल	६	शुक्रवार
१०.	स्व. पू. ताराबाई महासतीजी	साबरमती	२०१४	अषाढ़ शुक्ल	२	गुरुवार
		निर्वाण-माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ वदि	२	शनिवार
११.	बा. ब्र. पू. चंदनबाई महासतीजी	लखतर	२०१७	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	गुरुवार
१२.	बा. ब्र. पू. रंजनबाई महासतीजी	साबरमती				
		दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१३.	बा. ब्र. पू. निर्मलाबाई महासतीजी	खंभात				
		दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१४.	बा. ब्र. पू. शोभनाबाई महासतीजी	लींबड़ी				
		दीक्षा-मलाड़	२०२२	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
१५	पू. मंदाकिनीबाई महासतीजी	माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ शुक्ल	८	रविवार
१६.	बा. ब्र. पू. संगीताबाई महासतीजी	खंभात	२०२६	वैशाख वदि	५	रविवार
१७.	बा. ब्र. पू. हर्षिदाबाई महासतीजी	घाटकोपर-मुंबई				
		दीक्षा-भावनगर	२०२६	वैशाख वदि	११	रविवार
१८.	बा. ब्र. पू. साधनाबाई महासतीजी	खंभात	२०२९	मार्गशीर्ष शुक्ल	२	गुरुवार
१९	बा. ब्र. पू. भावनाबाई महासतीजी	माटुंगा-मुंबई	२०२९	वैशाख शुक्ल	५	सोमवार

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल / दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
२०.	बा. ब्र. पू. प्रफुल्लाबाई महासतीजी विरमगाम दीक्षा-मलाड़	२०३३	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	शुक्रवार
२१.	बा. ब्र. पू. सुजाताबाई महासतीजी दादर-मुंबई	२०३३	वैशाख शुक्ल	१३	रविवार
२२.	बा. ब्र. पू. पूर्वीषाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई दीक्षा-साणंद	२०३७	फाल्गुन वदि	२	रविवार
२३.	बा. ब्र. पू. मनीषाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२४.	बा. ब्र. पू. उर्वीशाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२५.	बा. ब्र. पू. सुरेखाबाई महासतीजी मुंबई दीक्षा-अहमदाबाद	२०३८	वैशाख शुक्ल	६	गुरुवार
२६.	बा. ब्र. पू. श्वेताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२७.	बा. ब्र. पू. नम्रताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२८.	बा. ब्र. पू. विरतिबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
२९.	बा. ब्र. पू. रक्षिताबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३०.	बा. ब्र. पू. हेतलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३१.	बा. ब्र. पू. रोशनीबाई महासतीजी नार	२०४१	माघ शुक्ल	११	शुक्रवार
३२.	बा. ब्र. पू. चाँदनीबाई महासतीजी खंभात	२०४१	माघ वद	३	शुक्रवार
३३.	बा. ब्र. पू. अर्पिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३४.	बा. ब्र. पू. पूर्णिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३५.	बा. ब्र. पू. सुज्ञाबाई महासतीजी जोरावरनगर	२०४२	फाल्गुन शुक्ल	३	शुक्रवार
३६.	बा. ब्र. पू. प्रेक्षाबाई महासतीजी खंभात दीक्षा-नार	२०४३	वैशाख शुक्ल	११	शनिवार
३७.	बा. ब्र. पू. सेजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३८.	बा. ब्र. पू. बीजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३९.	बा. ब्र. पू. हर्षज्ञाबाई महासतीजी	२०४७	मागसर वदि	५	गुरुवार
४०.	बा. ब्र. पू. श्रेयाबाई महासतीजी	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४१	बा. ब्र. पू. श्रुतिबाई महासतीजी	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४२.	बा. ब्र. पू. माधुरीबाई महासतीजी	२०४९	वैशाख शुक्ल	१०	शनिवार
४३.	बा. ब्र. पू. चेतनाबाई महासतीजी	२०५२	महा शुक्ल	१३	शुक्रवार
४४	बा. ब्र. पू. समीक्षाबाई महासतीजी अहमदाबाद	२०५७	महा शुक्ल	११	रविवार
४५.	बा. ब्र. पू. शितलबाई महासतीजी खंभात दिक्षा - विलेपारला	२०५९	महा शुक्ल	८	शुक्रवार

प्रभावक प्रवचनकार महान विदुषी बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महासतीजी का व्याख्यान संग्रह पुस्तक प्रकाशन (गुजराती)

क्रम	नाम अधिकार	स्थल	संवत	प्रत
१.	**शारदा सुधा** 'भगवती सूत्र' का उदायन राजा-चंपकचरित्र	माटुंगा-मुंबई	२०१९	८५००
२.	**शारदा संजीवनी** 'भगवती सूत्र' का तामलीतापस-धनचरित्र	दादर-मुंबई	२०२०	६०००
३.	**शारदा माधुरी** 'भगवती सूत्र' का गोशालक-गुणश्रीचरित्र	घाटकोपर	२०२२	६०००
४.	**शारदा परिमल** 'उत्तराध्ययन सूत्र' का १४वाँ अध्य.-छः जीव.	राजकोट	२०२६	२०००
५.	**शारदा सौरभ** 'ज्ञाताजी सूत्र' थावर्चापुत्र, महाबल-मलयाचरित्र	अहमदाबाद	२०२७	६०००
६.	**शारदा सरिता** 'भगवती सूत्र' जमालिककुमार अग्निशर्मा को गुणसेन (समरादित्य केवली) चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०२९	५५००
७.	**शारदा ज्योत** 'ज्ञाताजी सूत्र' द्रौपदी-ऋषिदत्ता चरित्र	माटुंगा	२०३०	३०००
८.	**शारदा सागर** 'उत्तराध्ययन सूत्र' २०वाँ अध्ययन अनाथी मुनि अंजना चरित्र	वालकेश्वर	२०३१	७७,०००
९.	**शारदा शिखर** 'ज्ञाताजी सूत्र' मल्लिनाथ भगवान-पाद्युम्नचरित्र	घाटकोपर	२०३२	१०,०००
१०.	**शारदा दर्शन** 'अंतगड सूत्र' गजसुकुमाल-पांडव चरित्र	बोरीवली	२०३३	८०००
११.	**शारदा सुवास** 'उत्तराध्ययन सूत्र' २२वाँ अध्य. नेम राजेमति, जिनसेन रामसेन चरित्र	मलाड़	२०३४	८०००
१२.	**शारदा सिद्धि** 'उत्तराध्ययन सूत्र' १३वाँ अध्य. चित्तसंभूति, भीमसेन हरिसेन चरित्र	सुरत	२०३५	८,०००
१३.	**शारदा रत्न** 'उत्तराध्ययन सूत्र' ९वाँ अध्य. नमिप्रव्रज्या, सागरदत्त चरित्र	अहमदाबाद	२०३७	६०००
१४	**शारदा शिरोमणि** 'उपासक दशांग सूत्र' आनंदश्रावक, पुण्यसागर चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०४१	१२,०००

ता. क. आश्चर्य की बात यह है कि बा ब्र महाउपकारी **पू. गुरुणीमैयाश्री शारदाबाई महासतीजी** के देह की उपस्थिति न होने के बाद भी वह हमारे सामने हाजिर हो इस तरह हर साल पुस्तक प्रकाशित होते रहे हैं, वह भी हजार पन्ने के ग्रंथ जैसा। यह है ज्ञान का प्रभाव।

विवरण	स्थल	संवत	प्रत
शारदा शिरोमणि प्रथम आवृत्ति का उद्घाटन ता. ६-४-८६	कांदावाड़ी-मुं.	२०४२	१२,०००
शारदा शिरोमणि दूसरी आवृत्ति का उद्घाटन ता. २४-५-८७	कांदावाडी-मुं.	२०४३	६०००
दीवादांड़ी-शारदा स्मृति ग्रंथ का उद्घाटन ता. १९-६-८८	मलाड-मुंबई	२०४५	१०,०००
शारदा शिरोमणि हिन्दी अनुवाद का उद्घाटन ता. २२-१-८९	कादावाडी-मु.	२०४५	३०००
सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह का उद्घाटन ता. २५-३-९०	कांदावाड़ी-मुं.	२०४६	१०,०००
द्वितीय संवत्सर पुण्यतिथि का रत्नझरूनकाट तूटया तार	चींचपोकली	२०४४	४०००
शारदा सितार का अथवा श्रद्धा सुमन श्रद्धाजलि गीत आदि	मुंबई		
तृतीय वार्षिक पुण्यतिथि पर रत्नप्रकाश अथवा शारदाजीवन पराग	अंधेरी वे.-मुं.	२०४५	४०००
चतुर्थ वार्षिक पुण्यतिथि पर शारदाप्रेरक प्रसंगो की गुणों की गीता	कांदावाडी-मु.	२०४६	४०००

हिन्दी संस्करण

नाम	स्थल	संवत	प्रत
शारदा शिरोमणी - भाग-१	कांदावाडी-मुं	२०४५	३०००
सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी भाग १-२	सूरत	२०४९	६०००
शारदा सिद्धि हिन्दी भाग १-२	सूरत	२०५८	५०००
शारदा रत्न हिन्दी भाग-१-२	सूरत	२०५८	३०००
शारदा ज्योत हिन्दी भाग १-२	सूरत	२०५९	३०००
शारदा शिखर हिन्दी भाग १-२	सूरत	२०६१	३०००
दीवादांडी हिन्दी	सूरत	२०६१	३०००

और अंग्रेजी में सामायिक प्रतिक्रमण पुस्तक सुरत

'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक भाग-१,२,३ [illegible] में उपलब्ध है।

खंभात संप्रदाय की महान रत्ना, विदुषी, वाणीभूषण शासन प्रभाविका

बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

यशस्वी जीवन

तेजस्वी तस्वीर

शासन दीपक बुझ गया, फूल खिला और मुर्झा गया,
सूर्य उदय था, अस्त हुआ, तेजस्वी तारा खो गया,
यह तेजस्वी तारा, सूरज, फूल और दीपक कौन था ?
व्याख्यान वाचस्पति बा. ब्र. पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी

व्याख्यान - १

चातुर्मास की महिमा : बदलती तस्वीर

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त-अनन्त गुणों के सागर, ज्ञान दिवाकर, समता के सुधाकर समान करुणासागर भगवान ने भव्यजीवों के श्रेय एवं हित के लिए श्रेयकारी, पावनकारी, मंगलकारी श्रुतज्ञान की गंगा बहाई । इस द्वादशांगी वाणी में १४ पूर्वो का समावेश हो जाता है । द्वादशांगी असीम और अगाध ज्ञान का अमूल्य खजाना है । आत्मा के परम ऐश्वर्य तथा तेज को प्रकट करने ले लिए शास्त्र परम अवलम्बनभूत है । शास्त्र केवली भगवंतों के विचारों का अक्षयकोष है । संसाररूपी रोगों का नाश करनेवाली वह एक औषधि है । सत्य के सौन्दर्य से भरा हुआ एक स्टीमर है । युवावस्था में मार्गदर्शक है और वृद्धावस्था में आनन्ददायक है । इस लोक में आज भी अद्भुत परिवर्तन लानेवाले महान् बुद्धिवान् मनुष्य मिल जायेंगे, परन्तु आध्यात्मिक दुनिया में अजीब बदलाव कर हृदय-परिवर्तन करानेवाली अगर कोई शक्ति है तो वह है [illegible] वचन की अलौकिक शक्ति ।

चातुर्मास की महिमा

चातुर्मास का मंगल प्रारम्भ आषाढ़ शुक्ल [illegible] दिन से [illegible] है । चातुर्मास यानी आत्म-घर में प्रवेश [illegible] परिवर्तन का मौका तथा प्रत्येक दृष्टि से [illegible] सिंचन करनेवाली धन्य घड़ियाँ । धर्म [illegible]

चातुर्मास का बहुत महत्त्व है। तारक तीर्थंकर भगवन्तों ने जैन मुनियों के लिए विहार की आचार संहिता का आयोजन किया है। मुनियों से नवकल्पी विहार करने को कहा है। किस कारण से ? एक स्थान पर स्थिर रहने से अप्रीति उत्पन्न होती है। राग-मोह से ग्रसित हो जाता है। कभी-कभी तो राग (अनुराग) के कारण खतरा भी पैदा होने का डर होता है, इसलिए इन आठ महीनों में विचरण करनेको कहा है। चातुर्मास कल्प में चार महीनों तक एक ही स्थान पर रहना होता है। इन दिनों में जीवों की उत्पत्ति बहुत होती है।

वीतराग भगवान की आज्ञा में विचरते हुए जैन संत और सतीजियाँ चातुर्मास के चार महीनों में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करते हुए एक स्थान में स्थिर होते हैं। पानी से भरे घनघोर बादल एक ही स्थान पर बरसते नहीं है, परन्तु अलग-अलग स्थानों पर बरसते हैं। भ्रमर एक ही पुष्प का रसास्वादन नहीं लेता बल्कि अनेक पुष्पों का रस चुसकर आनन्द से घुमता है, उसी प्रकार जैन संत अपने ज्ञान का लाभ एक ही स्थान पर बैठकर देते नहीं है। आठों महीने ग्रामानुग्राम विचरण (भ्रमण) करते हैं और चातुर्मास में एक स्थान में रहकर उनकी ज्ञान-गंगा का प्रवाह बहाते हैं। भाग्यशाली आत्माएँ इस वीरवाणी का रसास्वादन कर सकते हैं।

चातुर्मास में जोरदार बारिश आती है, तब किसान बहुत आनन्द के साथ आलस्य -प्रमाद को दूर फैंक देते हैं। नयी चेतना, उत्साह के साथ खेत में पहुँच जाते हैं। निरन्तर परिश्रम करने में संलग्न हो जाते हैं। किसान के लिए यह चार महीने बहुत मूल्यवान् होते हैं। इन चार महीनों में अगर वह कठिन परिश्रम करे तो शेष आठ महीने उसके सुख से बीत सकते हैं। यदि वर्षा आने पर भी प्रमाद को नहीं त्यागे, खेत में बुवाई न करे और कोई फसल उत्पन्न न हो तो उसमें अपराध किसका ? किसानों का ही न ? चार महीने व्यर्थ में गँवा देते तो पूरा वर्ष व्यर्थ जाता है। खेत को हराभरा रखने के लिए किसान को हरदम जागृत होकर रहना पड़ता है। इस प्रकार जीवन भी एक खेत है। धर्मरूपी बीजारोपण का समय यानी चातुर्मास। साधु-साध्वियों के चातुर्मास प्रवेश होते ही श्रावक-श्राविकाओं के हृदय प्रफुल्लित हो उठते हैं। हृदयरूपी क्षेत्र में मंगल धर्म की स्थापना करने के लिए संत जिनवाणी की वर्षा करते है। वह जिनवाणीरूपी वर्षा फलदायी कब होती है ? जब श्रावक जिनवाणी का ठीक ठीक अमल (स्वीकार) करें तब। उसका संपूर्ण लाभ उठाने के लिए आलस्य, प्रमाद, विकथाओं के बादलों को बिखेर डालना पड़ेगा। यदि धर्म का बीजारोपण करना हो, जीवनरूपी खेत को हराभरा और सुशोभनीय बनाना हो तो बहुत ही सतर्क रहकर, जागृत बनकर उस वाणी का लाभ लेना पड़ेगा। चौमासे के चार महीने यदि जिनवाणी के श्रवण बिना, व्रत-नियम से रहित जाए तो समझ लेना कि पूरा साल व्यर्थ गया। इन चार महीनों की कीमत नहीं समझी तो पूरा साल व्यर्थ ही जाएगा। चौमासे में

संत सतियाँजी शाश्वत भाव-संपत्तियों से धर्मोपदेश के बाजार खड़े करेंगे । इस शाश्वत भाव-संपत्ति में मुख्य रूप से दान, शील, तप और भाव आत्म-उपदेशी जिनवाणी के द्वारा बेचा जायेगा ।

शरीर के रोगी (दर्दी) को जैसे डॉक्टर जाँचकर दर्द का निदान कर दवाई देता है तब उस रोगी (दर्दी) को यदि शातावेदनीय का उदय हुआ हो तो उसका दर्द मिट जाता है, वैसे ही आत्मा के दर्दी को गुरु का उपदेश सुनने से उनका भावदर्द दूर हो जाता है और शाश्वत-सुखों को प्राप्त करता है । ऐसी भाव-संपत्ति को ग्रहण करने हेतु बालक, युवक, प्रौढ, वृद्ध आदि श्रावक -श्राविकाएँ खूब उत्साही बनकर अपनी शक्ति अनुसार तन-मन-धन से दान-शील-तप-सदाचार के भाव प्रकट कर लाखों गुना शाश्वत भाव-संपत्ति ग्रहण कर आत्मिक लाभ प्राप्त करते है । ऐसी महान शाश्वती भाव-संपत्ति लेशमात्र भी जिसमें कम नही हो सकती, चोर-डाकू का डर नहीं रहता, बैचेनी नहीं होती, क्लेश-झघड़े बिलकुल नहीं होते, स्वास्थ्य बिगड़ता नहीं, सरकारी टैक्स लगता नहीं और परलोक में साथ आनेवाली ऐसी शाश्वत भाव-संपत्ति का अखूट खजाना पाकर आत्मिक लाभ प्राप्त करने का सुनहरा अवसर जिस में प्राप्त हो वे हैं चातुर्मास के मंगलकारी दिन । धर्म-आराधना से संवर और निर्जरा करके भाव-संपत्ति प्राप्त कर इस भव (जन्म) में एकावतारी बनने का सुअवसर मिला है । इस सुअवसर को पुद्गलानन्द में व्यर्थ न गवाकर किन्तु आत्मानन्दी बनकर धर्माराधना करने हेतु गुरु भगवन्त के उपदेश का प्रवाह निरन्तर बहाते हैं । इस अमूल्य अवसर का लाभ नहीं उठाया तो फिर पछतावा ही करना पड़ेगा ।

चातुर्मास में क्या करेंगे ?

वर्षाऋतु में वर्षा का आगमन होते ही जैसे मयूरों के हृदय आनन्दित हो नाच उठते हैं, वैसे ही संत-सतियाँजी मंगलमय चातुर्मास हेतु पधारते हैं तब भव्यजीवों के हृदय मयूर की तरह नाच उठते हैं । संत चारों महीने एक ही स्थान पर रहते है । इसका क्या कारण है ? जैनधर्म अहिंसा-प्रधान धर्म है। जैनदर्शन में अहिंसा का बहुत गहरा निरूपण किया है । संतों को चातुर्मास में चार महीने एक स्थान पर रहने की भगवान् ने आज्ञा दी है । चौमासे में वर्षा के कारण वनस्पति तथा छोटे-बड़े अनेक जीवों की उत्पत्ति होती है । विहार में विचरण करने पर छद्मस्थ आत्मा से जीवों की यतना (उपयोग) नहीं होती । चातुर्मास में एक स्थान पर रहने की प्रभु की आज्ञा के पीछे **'जीओ और जीने दो'** की परम पवित्र अहिंसा की सद्भावना संलग्न है । दूसरा कारण, चातुर्मास में गृहस्थों को आठ महीने की अपेक्षा थोड़ा अधिक अवकाश (समय) प्राप्त होता है । निवृत्ति के कारण वह ठीक ठीक संतों के व्याख्यान का तथा धर्मध्यान का लाभ ले सकता है । तीसरी बात मुनिराजों के लिए ज्ञानी बताते हैं

कि "तुमने आठ महीने बहुत विचरण किया है, अब ये चार महीने तू अपनी आत्मा में विचरण कर । स्वभाव में स्थिर होकर आत्मा को बोध दे ।"

चातुर्मास में श्रावकों को भी क्या करना है ? - इसका उद्देश्य तय करना है । व्यवहार में देखेंगे तो मनुष्य जब भी कोई काम करता हो तो उसमें उद्देश्य अवश्य समाया हुआ होता है । मान लीजिए कि आपने नये बंगले की जगह ली, परन्तु फिर बंगला कैसा बनाया जाय, उसके खिड़की-दरवाजे कैसे बनाये जाय ? सारी रूपरेखा पहले से तय करते हो और व्यापारी व्यापार की तरह उसमें भी कमाने का उद्देश्य रखता है । बच्चे पढ़े, कॉलेज में जाय, बड़ी बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त करे, उसमें उसका उद्देश्य कमाने का व धन प्राप्त करने का ही होता है । मंगल चातुर्मास के उद्देश्य को समझकर चातुर्मास में क्या करना है ? इसका मन में निर्णय कीजिए कि 'रोज एक घण्टा वीतरागवाणी का लाभ लेंगे । मेरी आत्मा अनन्तकाल से अनेक भोग भोगता आया है, तो अब उसका त्यागकर ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा । चार गतियों में भटकने से आत्मा थक चुकी है, तो अब संतों की शरण में जाकर जन्म-जन्मान्तर की थकान दूर करूँगा । इन्द्रियों के विषयों में शक्ति नष्ट होती है उसे केन्द्रित कर संतो की शरण में जाकर उनके सानिध्य को स्वीकार करूँगा । संतो का सानिध्य पवित्र होता है, इसलिए वहाँ जाऊँगा तो आत्मा को परम शांति मिलेगी और जीवन पवित्र बनेगा ।' जैसे दिन के ताप से व्याकुल मनुष्य चन्द्रमा की शीतल छाया में जाता है तो उसकी व्याकुलता (गर्मी) शांत हो जाती है । दाहज्वर के रोगी को चंदन का विलेपन किया जाए तो उसे शीतलता लगती है । वैसे ही चाँदनी और चंदन से भी संतों का सानिध्य तो और अधिक शीतल होता है । इस संसार में जीव ने आकुलता-व्याकुलता बहुत सहन की, उनमें से शांति चाहिए तो संत के चरण में और वीरवाणी की शरण में जाने से परम शांति मिलती है ।

"संतसमागम से भविष्य उज्ज्वल होय ।
उन चरणों की रज लेने से, जन्म-मरण टल जाय ।।"

"संत-समागम से जीवन उज्ज्वल बनता है और जन्म-मृत्यु के फेरे से मुक्ति मिल जाती है । चौमासे में प्रतिदिन एक घण्टा अवश्य ही संतों के चरणों में जाऊँगा, उनकी पवित्र वाणी का श्रवण करूँगा । यदि जीवन में इतना होगा तो भी जीवन आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँच सकेगा । वर्षाऋतु आने पर वर्षा के आगमन से पूर्व किसान खेत में से सारा कूड़ा-कचरा बाहर निकालकर खेत को स्वच्छ बनाता है और वर्षा का आगमन होते ही उस भूमि में बीजारोपण करते है । समय जाने पर उस एक दाने से मन-मन (२० कि.ग्रा.) अन्न प्राप्त करता है, उसी प्रकार भव्यजीव, धर्म-रसिक आत्माएँ संतों के मुख से बहनेवाली वीतरागवाणी के श्रवण से और संत-समागम से सम्यक्त्व रूप बोधिबीज अपने आत्मप्रदेश में

बोता है। इस सम्यक्त्व बीज में से उसका विकास होने पर अन्त में शाश्वता मोक्ष के सुख को प्राप्त करता है।

एक वर्ष के बारह महीने और तीन ऋतु - शीत, गर्मी और चौमासा। देश के आर्थिक विकास हेतु चौमासा जितना अनिवार्य है उससे भी अधिक अनिवार्य आत्म-शुद्धि और आत्म-साधना हेतु है। चातुर्मास के यह चार महीने आत्मा को संस्कारी और प्रकाशित करने के लिए बहुत ही अनुकूलताएँ देते है। भगवान ने फरमाया है- ''मानवजीवन का प्रत्येक पल मूल्यवान है। जो पल गया वह पुनः वापस मिलता नहीं है, अतः पल-पल जागृत रहना चाहिए और धर्म-साधना में अप्रमत्त रहना चाहिए। प्रत्येक पल अप्रमत्त धर्म-साधना हो सके तो वह उत्तमोत्तम है। ऐसा न हो सके तो क्या वर्ष के चार महीने भी हम उत्साह और आत्मलगन से धर्म-साधना नहीं कर सकते हैं ? अगर हम निश्चय करे तो कर सकते हैं। धर्म-साधना का निर्णय करना चाहिए। इस चार महीनों में प्रकृति शीतल और शांत होती है, वातावरण खुशनुमा रहता है। ऐसे वातावरण का तन और मन पर सानुकूल असर पड़ता है। दूसरी ऋतुओं की अपेक्षा चौमासे में व्रत-तप, धर्माराधना अधिक स्वस्थ, शांत और प्रसन्न चित्त से होते है।

विकार के वमन हेतु तप कीजिए

ज्ञानी संदेश देते है कि 'हे साधक ! चौमासे के चार महीनों में बाह्य और आंतरिक तप से विकारों का वमन करना। सुबह-शाम प्रतिक्रमण-चौविहार करना, रात्रिभोजन का त्याग करना। मन में चिन्तन करना कि मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? मेरा कर्तव्य क्या है ? मुझे यहाँ से कहाँ जाना है ?' इस विचार से आत्म-स्वरूप का ज्ञान होगा। गुरुभक्ति में प्रमाद मत करना। वीतरागवाणी के श्रवण से तेरी आत्मारूपी बल्ब में प्रकाश फैलाना। अनाथ, पंगु, दुःखी, गरीबों के प्रति करुणा रखना, प्रमाद से पाप न हो जाय और आत्म-कर्म से मलिन न बन जाय उसके लिए सदैव सावधान रखना। आज से निश्चय करना कि मुझे अपने जीवनरूपी खेत में समकित का बीजारोपण करना है और व्रत-नियम, तप, विनय-विवेक, आचार और क्रिया से सिंचन करना है ज्ञान-दया-त्याग से जीवनरूपी खेत को नन्दनवन बनाना है। आत्मा का धर्मरूपी वर्षा से गुलाब के फूल जैसा सुवासित और साधना से सौन्दर्यवान बनाएँगे तो जीवनरूपी बगीचा सुगन्धित बन जाएगा।

एक पल भी साधनाविहीन न जाय तो समझना कि मेरा जीवन अब धन्य बना है। मनुष्यजीवन के जो पल जाते हैं वे महामूल्यवान हैं। एक पल भी धर्म-विहीन न जाय और जीवन में तानेबाने की तरह बुन जाय, तब इस जीवन की सच्ची सफलता है। देवभव के पल्योपम और सागरोपम के आयुष्य से अधिक मानवजन्म

के एक पल के आयुष्य को महाकीमती कहा है, क्योंकि मनुष्य चाहे तो पलभर में जो साधना कर सकता है, वह साधना देव सागरोपम या पल्योपम के समय में कर सकते नहीं है। आप एक सामायिक करे तो उसका समय कितना ? (श्रोतागण में से आवाज : केवल ४८ मिनट का।) इतना समय जीव अगर ठीक ठीक शुभ भाव में रहा हो तो ९२५९२५९२५ (९२ करोड़, ५९ लाख, २५ हजार, ९२५) पल्योपम से अधिक देवभव का आयुष्य बंधता है। अब सोचिए कि मनुष्यजन्म के प्रत्येक मिनट से अधिक मूल्यवान है। चौथे आरे का काल (समय) हो तो एक अंतर्मुहूर्त के काल में घातीकर्मो की घटा को बिखेरने की ताकत मनुष्य में है। चाहे कैसा भी देव हो, अरे ! समकिती देव नय-निक्षेपा और छ द्रव्य के चिन्तन में समय व्यतीत करते हो तो भी चौथे गुणस्थानक से आगे जा सकते नहीं है; जबकि मनुष्य तो क्रमानुसार गुणस्थान की सीढ़ी पर चढ़ते हुए - मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है।

आत्मविकास की चरमसीमा तक पहुँचने की ताकत मात्र मनुष्य में है। विकास की चरमसीमा को मनुष्य पार कर सकता है। मनुष्य के अतिरिक्त देव-लोक में बसनेवाले देव और नारकियों चौथे गुणस्थान तक पहुँच सकते है और तिर्यचों पाँचवे गुणस्थानक तक पहुँच सकते है। तिर्यचों में संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों की अपेक्षा पाँचवे गुणठाणा की भूमिका कही है। शेष गुणठाणा की चरण-सीमा में मनुष्यजन्म में आयी आत्माएँ पहुँच सकते है। आत्मविकास की नींव सम्यकृत्व है। एक श्लोक में कहा है कि -

तम्हा कम्माणीअं जे उ मणो दंसणम्मि पजइज्जा।
दंसणवओ हि सफलाणि, हुंति तब नाण चरणाई ।।

कर्मरूपी सेना को जितने की इच्छा रखनेवाले को सम्यक्दर्शन में प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि सम्यक्दर्शन के बिना कर्मो का क्षय (नाश) हो सकता नहीं है। सम्यक्त्वी आत्मा द्वारा किये गये तप, ज्ञान, चारित्र सफल होते है, अतः सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

साधना की कीमत कब ?

सम्यक्त्व का अर्थ है निर्मल दृष्टि, सच्ची श्रद्धा और सच्चा लक्ष्य। सम्यक्त्व मुक्ति महल की प्रथम सीढ़ी है। जिस प्रकार एक के बिना शून्य की संख्याओं की कितनी भी कतार लम्बी की जाय व्यर्थ है। क्योंकि शून्य से कोई संख्या बनती नहीं है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के एक के बिना ज्ञान और चारित्र का कोई उपयोग नहीं है। यदि सम्यक्त्वरूपी एक आगे आ जाय तो जैसे एक आने से शून्य की कीमत अनेक-गुनी बन जाती है, वैसे ही ज्ञान और चारित्र की कीमत भी बढ़ जाती है। सम्यक्त्व आत्मा का स्वाभाविक धर्म है, परन्तु अनादिकाल से दर्शन मोहनीय कर्म

के कारण आत्मा का यह गुण ढँक गया है। जैसे बादल दूर होने पर सूर्य का प्रकाश निकलता है, वैसे ही दर्शन मोहनीय कर्म दूर होने से सम्यक्त्व का गुण प्रकट होता है। समकित की प्राप्ति दो रूप से होती है - निसर्ग से और अधिगम से। जो गुरु आदि के उपदेश बिना स्वयं होती है, वह निसर्ग समकित और गुरु आदि के उपदेश द्वारा होती है वह अधिगम समकित कही जाती है।

बन्धुओं ! यह संसार मोहरूपी राजा का कारागार है। अधिकांश जीव इस कारागार में फँसकर अनेक कष्ट भुगत रहा है। इस कारागार का पहरेदार अज्ञान है। उस कारागार के राग-द्वेषरूपी दो मजबूत दरवाजे हैं। उस पर मिथ्यात्वीरूपी ताला लगाया है। उस में से सम्यक्त्वरूपी रत्न को निकालना बहुत मुश्किल काम है। परन्तु जिन्हों ने यह कठिन काम - सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया है, उनके पुण्य की कोई सीमा नहीं है। इस सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर फिर यदि आत्मा उसे खो देगी तो चौरासी (भवसागर) के चक्कर में फँस जायेगा। बन्धुओं ! सम्यक्त्व की लिज्जत कुछ ओर ही है। शास्त्रों में तो यहाँ तक बताया है कि - **"सम्यक्त्व के साथ जीव नरक में भी हो तो वह प्रशंसनीय है और सम्यक्त्व रहित जीव शायद स्वर्ग में नवग्रैवेयक में हो तो भी वह प्रशंसनीय नहीं है।"** यह बात बहुत ध्यान से सोचिएगा। दो बात है। वैसे तो समकित पाने के बाद जीव नरकगति में नहीं जाएगा, परन्तु यदि समकित पाने से पहले नरकगति में प्रवृत्त हो गया तो जीव को नरकगति में जाना पड़ता है। समकित पाने के बाद जीव सात शब्दों (बोल) में आयुष्य का उच्चारण नहीं करेगा। वे सात बोल कौन-से हैं ? बोलिए आते है ? (१) नरकगति (२) तिर्यचगति (३) भवनपति (४) वाणव्यंतर (५) ज्योतिषी (६) स्त्रीवेद (७) नपुंसकवेद। - इन सात बोल में समकित की नहीं जायेगी। देव में जाय तो वैमानिक में जाय, परन्तु समकित पाने से पहले आयुष्य का बंध पड़ गया हो और फिर समकित पाये तो नरकादि सात बोल में जा सकता है। जैसे कि श्रेणिक महाराजा समकित जीव नरक की भयानक वेदना सह सकते है, वहाँ कोई ऐसा नहीं है कि समकित को कम दुःख और मिथ्यात्वी को अधिक दुःख। दुःख तो दोनों के लिए समान है। परन्तु समकिती आत्मा उन दुःखो को भुगतते समय क्या सोचती ? 'मैंने जो कर्म किये हैं, उन्हें मुझे सहना पड़ेगा। मैंने कर्म करते समय तो पीछे मुड़कर देखा नहीं है, फिर उन कर्मो के फल मुझे भुगतने पड़े इस में क्या आश्चर्य !' भयानक दुःख के वेदन में उसकी जागृत दशा है, इसलिए वे दूसरे चीकने (कोमल) कर्म बांधता नहीं है और पुराने कर्मो को भुगतता है। ज्ञानी कहते है कि - **"कर्म बांधते समय सोचेंगे नहीं तो उसके कड़वे फल भुगतते समय आँखें चकरा जाएगी।"** चिन्तामणि के समान धर्म को त्यागकर जीव पाप-कर्म कर काँच के टुकडे के समान भौतिक-सुखों की मन में आशाएँ रखता है।

चिन्तामणि के आगे काँच के टुकड़े की क्या कीमत ? धर्म के प्रभाव से जीव की उन्नति होती है और परम्परा से शाश्वत-सुख को प्राप्त करता है । किसी को पाँव में काँच लगा हो तो कभी छ महीनों तक खाट में पड़ा रहना पड़ता है । तब फिर पाप कर्मरूपी काँच के टुकड़े लगे हो तो बहुत लम्बे समय तक अति भयानक दुःख भुगतने का समय आता है । पाप बांधते या करते समय जीव को पता न चले, परन्तु जब पाप भुगतने का समय होता है, तब पता चलता है कि पाप क्या चीज़ है ? उसके फल कितने कडुवे हैं ? उसमें भी यदि तीव्र रस से बाँधे गये हो तो भुगतते समय आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है । प्रदेशोदय से कर्म भुगत लिए जाय तो पता नहीं चलता मगर जब विपाकोदय से भुगतने का समय आता है तब बहुत कुछ समझ में आ जाता है । इसलिए ज्ञानी कहते है - "पाप-कर्मरूपी काँच के टुकड़ों का संग्रह करने जैसा नहीं है ।" मैं आपसे पूछती हूँ, कोई मनुष्य अनगिनत काँच के टुकड़े इकट्ठे करे तो क्या उसकी गरीबी हट जाएगी ? (श्रोतागण में से आवाज़ - कभी नहीं) जबकि धर्मरूपी चिन्तामणि का ऐसा अमूल्य प्रभाव है कि वह गरीबी और दुःख को तो दूर करता है, साथ-साथ कर्मरूपी काँच के टुकड़े को फेंककर जीव को शाश्वत-सुख के धाम में पहुँचा देता है ।

हमारी बात यह है कि समकिती जीव नरक में होने पर भी प्रशंसनीय है । समकिती जीव कर्म के उदय से भवसागर में रहा हो फिर भी उसमें लीन (रमता) न होता हो । चाहे कैसे भी भौतिक - सुख उसके पास हो फिर भी समकिती को उसमें तीव्र आसक्ति नहीं होती । सारे (सभी) समकिती जीव दीक्षा ले यह सम्भव नहीं, क्योंकि जहाँ समकित है वहाँ चारित्र की पूजा होती है, मगर जहाँ सम्यक् चारित्र है वहाँ है समकितता । नित्य समकिती को संसार में रहना पड़े तो वहाँ रहेगा जरूर मगर उसमें वह रमेगा नहीं । रहना और रमना में आकाश-पाताल जितना अन्तर है । रहना यानी चारित्र मोहनीय के उदय से है और रमना यानी मिथ्यात्व मोहनीय उदय से है । अतः जीव संसार में रहता है फिर भी उसमें रमता नहीं होगा । वह जीव पाप बहुत अल्प बांधे; जैसे कोई समकिती आत्मा भोजन के लिए बैठा हो । शायद मिठाई परोसी जाय, परन्तु उसमें रस न हो । खाते खाते वह कर्म खपाये (करे) । हमारी बात चल रही है कि समकिती जीव नरक में हो फिर भी प्रशंसनीय है और समकितरहित जीव स्वर्ग में हो तो भी वह प्रशंसनीय नहीं है । मिथ्यात्वी जीव अकाम निर्जरा के कारण स्वर्ग में जाता है, परन्तु वहाँ ईर्ष्या, ममता, माया आदि के कारण दुःखी है, सचमुच समकित अमृत-समान है और मिथ्यात्व महाविष-समान है । देवसभा में इन्द्र महाराज मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशंसा करे तो ईर्ष्यालु देव उसे सह नहीं सकता । उन पर उसे द्वेष आता है ।

संगम द्वारा दिया गया उपसर्ग

एक बार देवसभा में भगवान महावीर की प्रशंसा हुई कि 'मृत्युलोक में वर्धमानकुमार ने सारे संसार का त्याग कर संयम लेकर कर्मों के सामने लोहा लेने निकले हैं। उन्हों ने तप-ध्यान की कैसी लगन लगायी है ? वे कैसे महान साधक हैं ?" यह बात सुनकर समकिती देव सभी आनन्दित हुए। उनके मुख से शब्द निकल पड़े - "धन्य है, धन्य है उस महान साधक को ! उन्हें हमारे कोटि-कोटि प्रणाम !" मगर मिथ्यात्वी संगमदेव को यह बात अच्छी नहीं लगी। 'इन्द्र महाराज हमारे किसी की प्रशंसा करते नहीं है और मृत्युलोक के मनुष्य की प्रशंसा करते हैं ? ला तो जरा, जाकर देखूँ कि उनकी तप-साधना कैसी है ? अटलता कैसी है !' संगमदेव वहाँ से निकला और आया भगवान महावीर के पास। संगम ने छः महीने तक भगवान को उपसर्ग (यातनाएँ) देने में कुछ शेष न रखा, अर्थात् उन्हें बहुत परेशान किया। अरे ! भगवान गौचरी के लिए जाये तो मार्ग में गहरी मिट्टी बना दे। विहार में चलते समय थोड़ी मिट्टी पाँव में आ जाय तो पाँव आगे बढ़ सकते नहीं है। फिर इतनी सारी मिट्टी के ढेले में भगवान कैसे चलते ? अच्छा संग दुर्जन को भी सज्जन बना देता है, परन्तु कई बार अच्छा संग मिलने पर भी दुर्जन तो दुर्जन ही रहता है। संगम ने भगवान को छ महीने तक भयानक उपसर्ग दिये, फिर भी हमारे क्षमासागर प्रभु ने तो उस पर करुणा का ही प्रवाह (धारा) बहाया है। उन्हों ने मोक्ष प्राप्त करने हेतु कितनी कठिन तप-साधना की, परिषह उपसर्गो को सहा, तब मोक्ष मिला। हमें प्रत्येक को मोक्ष चाहिए मगर खाते-पीते मोक्ष मिले तो लेना है। तो क्या ऐसा मोक्ष मिलता है ? नहीं।

बदलती तस्वीर

बन्धुओं ! अगर आपको मोक्ष चाहिए तो पापमय अशुद्ध जीवन को विशुद्ध बनाइए। प्रकृति का परिवर्तन और दुर्गुणों को दफन कर जीवन की तस्वीर को बदल दीजिए। इस देह की तस्वीर तो जीव ने अनेक बार बदली है, मगर अब इस मनुष्यदेह द्वारा जीवन की तस्वीर बदलनी है। हमारी आत्मा ने पृथ्वी, जल, तेउ, वाउ, वनस्पति रूप में देह धारण किया है। चींटी, कीड़े, मच्छर, मकोड़े और मक्खी का देह भी धारण किया है। जबतक आत्मा कर्मरहित नहीं बनती तबतक देह की तस्वीर को बदलनी जाएगी, परन्तु वे तस्वीर ऐसी मिली थी कि जो जीवन की तस्वीर बदल नहीं सकती। अरे ! देवभव में गया वहाँ उसकी शारीरिक शक्ति, बल बहुत अच्छी होने पर भी जीवन की तस्वीर बदल सके उतनी उसमें शक्ति न थी। नारकी के जीव तो भयानक दुःख में पड़े हुए है। मात्र यह मनुष्यदेह की तस्वीर ऐसी मिली है कि जिसके द्वारा जीवन की तस्वीर बदल जाती है।

जड़ता की तस्वीर बदल सकती है तो जीवन की तस्वीर नहीं बदल सकती ?

इस मनुष्यदेह में भी तस्वीर कितनी ही बार बदलती है । अपने बचपन की तस्वीर को देखिए, विद्यार्थी अवस्था की तस्वीर देखिए, युवावस्था की तस्वीर देखिए, उसमें आपको कितना फर्क दिखता है ? अपने बचपन की तस्वीर तो आप पहचान भी नहीं सकेंगे । यह सभी तस्वीरें यदि स्पष्ट और अच्छी आयी होगी तो आपको पसन्द आयेगी । इसकी ओर आकर्षण होगा । इससे आगे बढ़कर यदि बुढ़ापे की तस्वीर होगी तो युवावस्था की तस्वीर के आगे वह तस्वीर बिलकुल भिन्न लगेगी, क्योंकि युवावस्था की तस्वीर में मुख पर तेजस्विता और यौवन का नूर प्रकाशित होता होगा । जबकि बुढ़ापे की तस्वीर में वो नूर (तेज) नहीं दिखेगा । इसी प्रकार हमारे जीवन की तस्वीर को बदलना है । तस्वीर में यदि हँसता मुख होगा तो तस्वीर अच्छी आयेगी और दुःखी मुख होगा तो तस्वीर अच्छी नहीं आयेगी । वैसे ही जीवन की तस्वीर अच्छी बनानी है या बुरी, यह हमारे हाथ की बात है । पत्थर का टुकड़ा किसी शिल्पी के हाथ में जाय तो उसका स्वरूप बदलकर सुन्दर मूर्ति बनने पर लाखों लोगों के लिए पूजनीय बनता है । एक लोहे का टुकड़ा किसी अच्छे इन्जिनियर के हाथ में जायेगा तो वह उसकी मशीनरी बन जाता है, जिसे बेचने पर वह रंक से राजा बन जाता है । कागज़ के टुकड़े को सरकार ने प्रेस में भेजकर सरकारी बैंक की छपाई कर उस कागज़ के टुकड़े को क़ीमती बना दिया । ऐसी जड़ वस्तु की भी यदि तस्वीर (स्वरूप) बदल सकती है, तो क्या हमारे जीवन की तस्वीर नहीं बदल सकती ?

अंगुलीमाल लूटेरा का जीवन कैसा था ? मार्ग में आने-जानेवाले प्रत्येक मनुष्य की ऊँगली काटकर उसका हार बनाकर गले में पहनता था और लोगों को परेशान करता था । परन्तु एक बार बुद्ध का समागम होने पर उसके जीवन की तस्वीर बदल गई । हिंसक से अहिंसक बना । 'उत्तराध्ययन सूत्र' में १८वे अध्ययन में बात आती है । **संयतिराजा** शिकार करने गये । वहाँ बाण से मृग का शिकार किया । वह हिरन मुनि के पास आकर गिरा था, इसलिए राजा को डर लगा कि 'यह हिरन मुनि का होगा। यह मुनि क्रोधित होंगे तो अपने तप के बल से लाखों-करोड़ों लोग जल जायेंगे' इसलिए राजा ने मुनि को प्रणाम कर अपने अपराध की क्षमा-याचना की । तव मुनि ने कहा - "हे राजन् ! *'अभओ पत्थिवा तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।'*- अगर तुझे माफी चाहिए तो अपने जीवन की तस्वीर वदल दे । तेरा जीवन जो हिंसामय है उसे तू अहिंसामय वना दे । पाप से ग्रसित तेरे काले जीवन को पुनित और शुद्ध वना दे, तो तेरे जीवन की तस्वीर कुछ और ही होगी ।" सचमुच मुनि के एक वचन

से राजा के जीवन की तस्वीर बदल गयी । हिंसक से मिटकर अहिंसक बना । भोगी मिटकर योगी और खूनी में से मुनि बना ।

अर्जुनमाली, प्रदेशीराजा सभी को एक बार भगवन्त और गुरुदेव का सत्संग होने पर पाप के दागवाली तस्वीर बदल गयी । उन्हों ने दोषों का दमन किया, दुर्गुणों का दमन किया और सद्‌गुण जीवन में उतारकर ऐसी तस्वीर बदल डाली कि उस तस्वीर को देखने पर दूसरों के जीवन की तस्वीर भी बदल जाती । कहाँ चंडकौशिक के पाप से ग्रसित तस्वीर और कहाँ प्रभु महावीर के संग से परिवर्तित पवित्र निर्मल तस्वीर ! **इस मनुष्यजीवन में अगर कषायों का शमन, विषयों का वमन, इन्द्रियों का दमन और मोह का संहार करेंगे तो जीवन की तस्वीर ऐसी बदल जायेगी कि फिर पुनः पुनः देह की तस्वीरों को बदलने की जरूरत नहीं रहेगी ।** इसलिए इस मनुष्यदेह की जो तस्वीर मिली है उसका सदुपयोग ऐसा कीजिए कि जीवन की तस्वीर बदल जाय । अगर कलाकार के हाथ में पत्थर जाय तो उसकी तस्वीर बदल जाती है तो फिर हमारी जीवन-नैया भी अगर गुरुदेव के चरण में अर्पण कर दें तो क्या जीवन की तस्वीर बदले बिना रह सकती है ? अगर जीव में आर्तध्यान और रौद्रध्यान के बजाय धर्मध्यान आ जाय तो वह उल्टे से सुल्टा देखेगा । फिर उसके जीवन की तस्वीर बदल जायेगी ।

बीड़ी के लिए होनेवाली बेबसी देखकर व्यसनत्याग

एक मनुष्य बहुत बीडियाँ पीता था । एक बार संत ने उसे पूछा - "भाई ! तुम रोज कितनी बीड़ी पीते हो ?" "गुरुदेव ! मैं अधिक तो नहीं, परन्तु लगभग ७० जितनी तो पीता हूँ ।" "इतनी तुझे कम लगती है ।" उपाश्रयों में आते समय बीड़ी पीनेवालों थोड़ी थोड़ी देर में बाहर जाकर आता । संत समझ जाते कि वे क्यों उठता है ? संत तो आपको नखशिख पहचानते हैं । संत ने उसे बीडी से होनेवाली हानि से जागृत किया फिर भी वह बीड़ी छोड़ न सका । संत तो चले गये । चार-पाँच महीनों बाद पुनः संत का उस गाँव में आना हुआ । बीडी का व्यसनी भाई भी उपाश्रय में आया । चार घण्टे होने पर भी जब वह उठा नहीं तो संत को लगा कि आधे-आधे घण्टे में उठनेवाला आज चार घण्टे होने के बावजुद उठा नहीं है । उसका जीवन परिवर्तन हुआ होगा - मानकर संत ने पूछा - "क्या तुमने बीडी का त्याग किया है ?" "गुरुदेव ! अब तो मेरे सामने उसका नाम भी मत लेना ।" "क्यों ऐसा तो क्या हुआ ?" "मनुष्य का जीवन कभी कभी बोध सुनकर परिवर्तित हो जाये तो कभी सामान्य निमित्त मिलने पर भी बदल जाता है ।" संत ने कहा - "भाई ! तुम्हारा जीवन सुधरा किस प्रकार ?"

जड़ता की तस्वीर बदल सकती है तो जीवन की तस्वीर नहीं बदल सकती ?

इस मनुष्यदेह में भी तस्वीर कितनी ही बार बदलती है। अपने बचपन की तस्वीर को देखिए, विद्यार्थी अवस्था की तस्वीर देखिए, युवावस्था की तस्वीर देखिए, उसमें आपको कितना फर्क दिखता है ? अपने बचपन की तस्वीर तो आप पहचान भी नहीं सकेंगे । यह सभी तस्वीरें यदि स्पष्ट और अच्छी आयी होगी तो आपको पसन्द आयेगी । इसकी ओर आकर्षण होगा । इससे आगे बढ़कर यदि बुढ़ापे की तस्वीर होगी तो युवावस्था की तस्वीर के आगे वह तस्वीर बिलकुल भिन्न लगेगी, क्योंकि युवावस्था की तस्वीर में मुख पर तेजस्विता और यौवन का नूर प्रकाशित होता होगा । जबकि बुढ़ापे की तस्वीर में वो नूर (तेज) नहीं दिखेगा । इसी प्रकार हमारे जीवन की तस्वीर को बदलना है। तस्वीर में यदि हँसता मुख होगा तो तस्वीर अच्छी आयेगी और दुःखी मुख होगा तो तस्वीर अच्छी नहीं आयेगी। वैसे ही जीवन की तस्वीर अच्छी बनानी है या बुरी, यह हमारे हाथ की बात है। पत्थर का टुकड़ा किसी शिल्पी के हाथ में जाय तो उसका स्वरूप बदलकर सुन्दर मूर्ति बनने पर लाखों लोगों के लिए पूजनीय बनता है । एक लोहे का टुकड़ा किसी अच्छे इन्जिनियर के हाथ में जायेगा तो वह उसकी मशीनरी बन जाता है, जिसे बेचने पर वह रंक से राजा बन जाता है । कागज़ के टुकड़े को सरकार ने प्रेस में भेजकर सरकारी बैंक की छपाई कर उस कागज़ के टुकड़े को क़ीमती बना दिया। ऐसी जड़ वस्तु की भी यदि तस्वीर (स्वरूप) बदल सकती है, तो क्या हमारे जीवन की तस्वीर नहीं बदल सकती ?

अंगुलीमाल लूटेरा का जीवन कैसा था ? मार्ग में आने-जानेवाले प्रत्येक मनुष्य की ऊँगली काटकर उसका हार बनाकर गले में पहनता था और लोगों को परेशान करता था । परन्तु एक बार बुद्ध का समागम होने पर उसके जीवन की तस्वीर बदल गई । हिंसक से अहिंसक बना । 'उत्तराध्ययन सूत्र' में १८वे अध्ययन में बात आती है । **संयतिराजा** शिकार करने गये । वहाँ बाण से मृग का शिकार किया । वह हिरन मुनि के पास आकर गिरा था, इसलिए राजा को डर लगा कि 'यह हिरन मुनि का होगा। यह मुनि क्रोधित होंगे तो अपने तप के बल से लाखों-करोड़ों लोग जल जायेंगे' इसलिए राजा ने मुनि को प्रणाम कर अपने अपराध की क्षमा-याचना की । तब मुनि ने कहा - "हे राजन् ! *'अभओ पत्थिवा तुब्भं, अभयदाया भवाहि य ।'*- अगर तुझे माफी चाहिए तो अपने जीवन की तस्वीर बदल दे । तेरा जीवन जो हिंसामय है उसे तू अहिंसामय बना दे । पाप से ग्रसित तेरे काले जीवन को पुनित और शुद्ध बना दे, तो तेरे जीवन की तस्वीर कुछ और ही होगी ।" सचमुच मुनि के एक वचन

से राजा के जीवन की तस्वीर बदल गयी । हिंसक से मिटकर अहिंसक बना । भोगी मिटकर योगी और खूनी में से मुनि बना ।

अर्जुनमाली, प्रदेशीराजा सभी को एक बार भगवन्त और गुरुदेव का सत्संग होने पर पाप के दागवाली तस्वीर बदल गयी । उन्हों ने दोषों का दमन किया, दुर्गुणों का दमन किया और सद्गुण जीवन में उतारकर ऐसी तस्वीर बदल डाली कि उस तस्वीर को देखने पर दूसरों के जीवन की तस्वीर भी बदल जाती । कहाँ चंडकौशिक के पाप से ग्रसित तस्वीर और कहाँ प्रभु महावीर के संग से परिवर्तित पवित्र निर्मल तस्वीर ! **इस मनुष्यजीवन में अगर कषायों का शमन, विषयों का वमन, इन्द्रियों का दमन और मोह का संहार करेंगे तो जीवन की तस्वीर ऐसी बदल जायेगी कि फिर पुनः पुनः देह की तस्वीरों को बदलने की जरूरत नहीं रहेगी ।** इसलिए इस मनुष्यदेह की जो तस्वीर मिली है उसका सदुपयोग ऐसा कीजिए कि जीवन की तस्वीर बदल जाय । अगर कलाकार के हाथ में पत्थर जाय तो उसकी तस्वीर बदल जाती है तो फिर हमारी जीवन-नैया भी अगर गुरुदेव के चरण में अर्पण कर दें तो क्या जीवन की तस्वीर बदले बिना रह सकती है ? अगर जीव में आर्तध्यान और रौद्रध्यान के बजाय धर्मध्यान आ जाय तो वह उल्टे से सुल्टा देखेगा । फिर उसके जीवन की तस्वीर बदल जायेगी ।

बीड़ी के लिए होनेवाली बेबसी देखकर व्यसनत्याग

एक मनुष्य बहुत बीडियाँ पीता था । एक बार संत ने उसे पूछा - "भाई ! तुम रोज कितनी बीड़ी पीते हो ?" "गुरुदेव ! मैं अधिक तो नहीं, परन्तु लगभग ७० जितनी तो पीता हूँ ।" "इतनी तुझे कम लगती है ।" उपाश्रयों में आते समय बीड़ी पीनेवालों थोड़ी थोड़ी देर में बाहर जाकर आता । संत समझ जाते कि वे क्यों उठता है ? संत तो आपको नखशिख पहचानते हैं । संत ने उसे बीडी से होनेवाली हानि से जागृत किया फिर भी वह बीड़ी छोड़ न सका । संत तो चले गये । चार-पाँच महीनों बाद पुनः संत का उस गाँव में आना हुआ । बीडी का व्यसनी भाई भी उपाश्रय में आया । चार घण्टे होने पर भी जब वह उठा नहीं तो संत को लगा कि आधे-आधे घण्टे में उठनेवाला आज चार घण्टे होने के बावजुद उठा नहीं है । उसका जीवन परिवर्तन हुआ होगा - मानकर संत ने पूछा - "क्या तुमने बीडी का त्याग किया है ?" "गुरुदेव ! अब तो मेरे सामने उसका नाम भी मत लेना ।" "क्यों ऐसा तो क्या हुआ ?" "मनुष्य का जीवन कभी कभी बोध सुनकर परिवर्तित हो जाये तो कभी सामान्य निमित्त मिलने पर भी बदल जाता है ।" संत ने कहा - "भाई ! तुम्हारा जीवन सुधरा किस प्रकार ?"

"मेरे जीवन में एक घटना घटित हो गयी । मैं एक बार पानवाले की दुकान पर खड़ा था । वहाँ एक भिखारी ने आकर पानवाले के पास बीड़ी माँगी । उसने बहुत याचना कि - "मुझे एक बीड़ी दीजिए न ?" पानवाले ने कहा - "तुझे बीड़ी चाहिए तो थोड़ी देर नाचना पड़ेगा, फिर तुझे बीड़ी मिलेगी ।" भिखारी ने एक बीड़ी के लिए नाचना शुरू किया । थोड़ी देर तक नाचा, पेट के लिए मजदूरी करनी पड़े, यह तो अलग बात है, यह तो व्यसनों का गुलाम नाचने के लिए तैयार हुआ । भिखारी ने नाचने के बाद बीड़ी माँगी तो पानवाले ने कहा - "देख उधर गटर है, उस में से चार घूँट पानी पीकर आ, फिर तुझे बीड़ी दूँगा ।" व्यसनों की गुलामी क्या-क्या करवाती है ? भिखारी गटर के पास जाकर चार घूँट पानी के पी आया, तब पानवाले ने उसे बीड़ी दी ।

इस घटना से मुझे लगा कि एक बीड़ी इतनी बेबसी कराती है ? सरे बाजार नचाये, गटर का गंदा पानी पिलाये । मेरे पास अभी तो पैसे हैं; इसलिए जितना चाहिए उतनी बीड़ी पी सकता हूँ । कल मेरे पाप के उदय से कभी मेरी स्थिति भी भिखारी जैसी हो जाय तो बीड़ी मेरे पास नाच नहीं नचाएगी और गटर का गंदा पानी नहीं पिलायेगी इसका क्या भरोसा ? इससे अच्छा है मैं बीड़ी को ही छोड़ दूँ तो क्या गलत है ? इस बीडी़ के व्यसन में पैसे और शरीर की हानि होती है और पाप बंधते हैं । उसी दिन से मैंने बीड़ी छोड़ दी है । मेरा जीवन परिवर्तित हुआ है । भिखारी की दृश्य-तस्वीर देखकर मेरे जीवन की तस्वीर बदल गयी ।"

किसे चोर और किसे साहूकार कहेगें ?

इसलिए ज्ञानी कहते है कि - "समझिए और पाप से हटिए ।" एक समय ऐसा था कि चोरी करनेवाला चोरी का धंधा भी नीतिमय होकर करता था इसलिए उसे चोर कहना या साहूकार कहना मुश्किल था । चोरी करने का काम करने पर उसे सच्चाई समझानेवाला मिल जाये तो अपने पापमय जीवन की तस्वीर बदल देता । मैं आपसे पूछती हूँ कि आप चोर किसे कहेंगे और साहूकार किसे कहेंगे ? तो आप तुरन्त कह देंगे कि 'चोरी करनेवाला चोर और दुकान पर बैठकर व्यापार करनेवाला साहूकार ।' आप अपनी आत्मा से कभी पूछिएगा कि आप चोर हैं या साहूकार ? मुझे आप में से किसी को चोर नही कहना । मुझे तो सभी को साहूकार कहना हैं । चोरी करनेवाले सभी चोर और दुकान पर बैठनेवाले सभी साहूकार हों ऐसा नहीं हो सकता है । कोई चोर भी होता है और कोई साहूकार भी ।

❑ चोर और विक्रम राजा :

एक चोर बहुत चोरी करता था । वह बहुत बड़ा लूटेरा था । चोरी करने में बहुत बहादुर था । उसे सभी लोग बहादुर चोर कहते । उसने अनेक भयानक चोरियाँ की थी फिर भी उसे कोई चोर के रूप में पकड़कर कैद नहीं कर सकता था । उस समय अवन्ती में महाराज विक्रम का शासन था । विक्रम के शासन में आधी रात में घर के द्वार खुले रखकर लोग सो जाते, फिर भी किसी की ताकत न थी कि उसके राज्य में कोई चोरी कर सके । इस चोर को लगा कि 'विक्रमराजा के राज्य में चोरी करूँ तो ही मैं सच्चा चोर !' वह तो निकला विक्रम के राज्य में । उसके गाँव से अवन्ती आठ मील दूर था । साथ में किसी साथी को लिए बिना ही सिर पर कपड़ा बाँधकर विक्रमराजा को अपनी ताकत (चालाकी) का प्रमाण देने की इच्छा से निकला । दोपहर की गर्मी थी, चलने पर वह थककर चूर हो गया ।

❑ चोर के हृदय में भी आतिथ्य भावना :

मार्ग में बहुत विशाल बरगद का पेड़ आया । वहाँ आने-जानेवाले मुसाफिर विश्राम लेते और अपनी थकान दूर करते । पास में पानी का प्याऊ था । इसलिए पानी पीकर तृषा शांत करते । यह चोर भी उस बरगद के पेड़ नीचे विश्राम करने बैठा । उसे ज़ोरों की भूख लगी थी । मन्द मन्द पवन आ रहा था । चोर अपना डिब्बा खोलकर खाने के लिए बैठा । उसके मन में विचार आया कि 'क्या मैं अकेला खाऊँगा ? अगर कोई और आ जाता तो उसे खिलाकर खाता ।' चोर होने पर भी उसकी भावना कितनी सुन्दर है ? वह ऐसा सोच ही रहा था कि सामने से एक मुसाफिर आता नज़र आया । चोर ने बनिये से कहा - "बैठो भाई !" दोनों साथ में बैठे । बनिये को पता नहीं है कि यह चोर है । बनिये ने उसके भोजन का डिब्बा खोला । दोनों ने अपने-अपने एक-दूसरे का भोजन लिया और खाया । प्याऊ का पानी पीया । बातों-बातों में चोर ने बनिये से पूछा - "भाई ! आप कहाँ से आये ?" "अवन्ती के पास के गाँव में तकाज़ा (कर्जा वसूल करने) कर आता हूँ और अभी अवन्ती जाता हूँ ।" बनिया थोड़ा घबराया । एक तो जंगल था, स्वयं अकेला था और पास में पैसे थे । फिर अन्‌जान मनुष्य का क्या भरोसा ?

❑ बनिये के दिल में व्याप्त घबराहट :

बनिया जन्म से चालाक होता है । उसने बात बदल दी । "मैं तो गाँव में मेरे एक रिश्तेदार की ख़बर पूछने गया था । उस वक्त सोचा कि क्यों न वसूली भी करता आऊँ ? मगर तका़जा (वसूली) हो सका नहीं । आप कौन है ? आपका नाम क्या है ?" चोर भी बड़ा सत्यवादी था । उसने कहा - "मैं बहादुर चोर हूँ ।" चोर का नाम

सुनते ही बनिये का हृदय मारे डर के धड़कने लगा । वह तो काँपने लगा । उसके शरीर से पसीना बहने लगा । अब वहाँ से उसका उठना मुश्किल हो गया था । पास में धन और सामने चोर, फिर पूछना ही क्या ! उसने जल्दी जल्दी खा लिया और डिब्बा बन्द कर वह जाने की तैयारी करने लगा । चोर समझ गया कि यह मुझसे भयभीत हो गया है । उसने कहा - "भाई ! तुम्हें डरने की जरूरत नहीं है । मैं चोर हूँ यह बात सत्य है, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा है कि महीने में एक ही बार चोरी करना । इस से अधिक चोरी नहीं करता, अतः मैं तुम्हें नहीं लूटूँगा । मुझे पता है कि आप वसूली करके आये हो । इसलिए आपके पास पैसे हैं मगर मुझे नहीं चाहिए ।" बनिये की इच्छा तो बरगद की छाँव में विश्राम करने की थी, परन्तु अब विश्राम करने बैठता क्या ? वह तो भोजन समाप्त कर जाने की तैयारी करने लगा । चोर ने कहा - "भाई ! इतनी जल्दबाजी क्यों करते हो ? मैं भी अवन्ती आनेवाला हूँ । हम दोनों साथ में जायेंगे । जंगल में एक से दो भले ।" परन्तु यह बनिया खड़ा रहता क्या ? उसने कहा - "नहीं भाई ! मुझे देर हो रही है, इसलिए मैं तो जाऊँगा ।"

❑ विश्वास दिलाने के लिए किया गया उपाय :

चोर ने कहा - "आपको जाना हो तो जाइए, परन्तु हम एक सौदा करे ।" "किसका सौदा ?" सौदा के नाम सुनते ही बनिया तो काँपने लगा । चोर ने कहा - "आपके पास यह लकड़ी है, वह मुझे बहुत पसन्द आ गयी है । आप कहेंगे उतने रुपये दुँगा, परन्तु मुझे यह लकड़ी दीजिए ।" लकड़ी का नाम सुनते ही बनिया गुस्से हो गया । "भाई ! यह लकड़ी तो किसी को नहीं दी जा सकती । मेरे बाप-दादा के समय की यह लकड़ी है । यह लकड़ी को देखकर मैं अपने पिता एवं अपने दादाजी को याद करता हूँ । यह लकड़ी तो उनकी आखरी निशानी है । उसके मुझे कोई दो-पाँच लाख रुपया दे तो भी उसे नहीं दे सकता ।" बनिये मना किया तो चोर ने उछलकर उसके हाथ में से लकड़ी छीन ली और उसके देखते ही उस लकड़ी के दो टुकड़े कर डाले । लकड़ी भीतर से पोली थी । लकड़ी टूटने पर उसमें से चार कीमती रत्न जमीन पर गिरे । उसे चोर ने उठाकर बनिये को दे दिया । "मैंने आपसे कहा था कि मैं चोर हूँ, परन्तु आपको लूटने का मेरा इरादा नहीं था । परन्तु आपको मुझ पर विश्वास न आया, इसलिए मैंने ऐसा किया । तुम्हारे रत्न तुम्हें मुबारक । अब तुम्हें जाना हो तो खुशी से जाओ । परन्तु अवन्ती के नरेश विक्रम को मेरी ओर से यह सन्देश अवश्य देना कि शुक्रवार रात को साढ़े बारह बजे रूपा चोरी करने आनेवाला है । उन्हें जो व्यवस्था करनी हो वह कर ले, चौकी पहेरेदार रखना हो तो रखे । सैनिकों की टोली मेरे स्वागत के लिए भेजनी हो भेज दे । किले पर गोलियों से भरी बन्दूक लेकर सैनियों को खड़े रखना हो तो रखे, मगर मैं आकर अवन्ती को लूटे बिना वापस जानेवाला नहीं हूँ ।"

❑ **समाचार मिलने पर सतर्क बना विक्रमराजा :**

यह बनिया तो किसी भी प्रकार से उसने छूटना चाहता था, अतः कहा - "ठीक है।" कहकर वहाँ से चलने लगा। जबतक चोर दिखता था तबतक वह धीरे चला, परन्तु जैसे ही चोर दिखना बन्द हुआ कि उसने तो ऐसी दौड़ लगाई कि सीधा घर पहुँच गया। फिर रूपा द्वारा भेजा गया सन्देश विक्रमराजा को दिया। विक्रमराजा को आश्चर्य हुआ कि यह कैसा बहादुर है जो पहले सन्देश कहलवाता है और फिर चोरी करने जाता है ? **इसे क्या कहे चोर या साहूकार ?** यह चोर गाँव में चोरी करने आता नहीं होगा, परन्तु मेरी बुद्धि की परीक्षा करने आता होगा। परन्तु यह विक्रम कहाँ कम बुद्धिवान था ! राजा ने दूसरे दिन गाँव में एलान करवाया कि 'आप अभी घर के द्वार खुले रखकर सो जाइएगा। कोई अपनी अलमारी को ताला लगायेगा नहीं। अपने माल-सामान की आप सूचि बनाइए। संभवतः किसी के घर में चोरी होगी तो राजा की उस वस्तु को अपने भण्डार से प्रदान करेंगे। आज किसी को पहरा करने की आवश्यकता नहीं है। आज रात विक्रमराजा स्वयं राज्य का पहरा देंगे।' जनता में आनन्द छा गया। सारे पहरेदार सो गये और रात को सभी अपने द्वार खुले रखकर निश्चित होकर सो गये।

❑ **चोर को पकड़ने का उपाय :**

शुक्रवार की रात विक्रम के सिर पर मुसीबत के बादल के समान थी। रात होते ही राजा ने भेष बदला। चोर का स्वांग सजा। दुपट्टा बाँधकर कमर पर तलवार लटकाकर गाँव में घुमने लगा। विचार आया कि अवन्ती का किला तो जबरदस्त है। वह कहाँ से आयेगा ? इस किले पर कोई चढ़ सकता नहीं है। और मान लीजिए चढ़ जाय तो उतरना मुश्किल है। मुझे तो लगता है कि वह चोरी करने नहीं बल्कि मेरी परीक्षा करने आता होगा। विक्रमराजा किले की ईंट-ईंट के पास घुम रहे थे। चोर आयेगा तो कहाँ से आनेवाला है ? घुमते-घुमते किले की एक ओर की दीवार टूटी हुई देखी। चोर यहीं से आयेगा ऐसा मानकर चोर की राह देखकर खड़े रहे। विक्रमराजा की धारणा सच हुई। ठीक साढ़े बारह बजे वहाँ रूपा चोर आया और किले पर चढ़ा। किनार टूटी हुई थी इसलिए उस में से धूल गिर ने लगी। राजाजी समझ गये कि जरूर रूपा आया है। चोर चंदनगोह रखकर धीरे-धीरे उतरने लगा। आधे तक उतरा होगा कि उसने नीचे किसी मनुष्य को खड़ा पाया। अतः वापस चढ़ने लगा। उस समय विक्रमराजा ने अपनी बुद्धि से चोर लोग चोर को बुलाते है ऐसी आवाज दी। चोर को लगा कि यह मेरे जैसा कोई ओर चोर चोरी करने आया लगता है। अच्छा हुआ - एक से भले दो। चोर नीचे उतर गया।

~~~~~~~~~~~~ • ~~~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~~~

❑ **यह तो चोर है या साहूकार :**

विक्रमराजा का पहनावा, भाषा सब कुछ चोर जैसा था । अतः चोर उसे पहचान सका नहीं । विक्रमराजा चोर के साथ चोर की तरह मिल गये । दोनों ने साथ (नगर) में प्रवेश किया । नगर के लोग राजा के हुक्म के कारण घर के द्वार खुले रखकर सोये थे । चलते हुए मार्ग में सब से पहले प्रधान का महल आया । विक्रम ने कहा – "आज हम प्रधान के घर में चोरी करेंगे । सब से रिश्वत लेकर उसने बहुत-सारा माल इकट्ठा किया है । जनता के लूटने के बजाय जनता का खून चुसनेवाले को क्यों न लूटे ?" प्रधान के घर के द्वार खुले थे । चौकीदार आराम (चैन) से सोते थे । विक्रम ने कहा – "मैं बाहर पहरा दूँगा । तुम अन्दर जाकर लूट सके उतना लूट लेना, घबराना नहीं । मैं यहाँ खड़ा हूँ । तेरा बाल भी बाँका नहीं होगा ।" चोर अन्दर गया परन्तु दो मिनट में वापस आया । विक्रम ने कहा – "तुम वापस क्यों आये ?" चोर ने कहा – "भाई ! मैं प्रधान के कमरे में गया तो वहाँ प्रधान की पत्नी सो रही थी । मेरे पाँव के स्पर्श से वे नींद से उठ गयी और कहने लगी कि 'कौन हो भाई ?' उसने मुझे भाई कहा तो उस नाते वो मेरी बहन हुई । भाई अपनी बहन के घर में चोरी करेगा क्या ? भाई क्या बहन को लूट सकता है ? उल्टा मैं तो उसके तकिये के नीचे एक सुवर्णमुद्रा छोड़कर आया हूँ । अब चलिए आगे ।" राजा को लगा कि यह तो चोर है या साहूकार ? नादान है कि खानदान ? आज के ज़माने में अनेक बार भाई बहन को लूटता रहता है । बहन ने भाई के घर में पूँजी रखी हो उसे भाई हड़प लेता है । बहन लेने जाय तो कहता है कि 'पूँजी कैसी और बात कैसी ?' सोचिए कि यह तो सगा भाई नहीं है, केवल बहन ने नींद में बोल गयी कि 'भाई कौन हो तुम ?' 'भाई' शब्द सुन ने पर चोरी न कर वह खाली हाथ लौट आया ।

❑ **नमक-हलाली :**

चलते चलते आगे मार्ग में नगरसेठ का घर आया । वहाँ भी न कोई चौकीदार है और न कोई पहरेदार ! खिड़की-द्वार खुले पड़े हैं । विक्रम ने कहा – "मैं बाहर खड़ा हूँ । तुम अन्दर जाओ और लूट सको उतना लूट लो । देखना खाली हाथ मत आना ।" चोर अन्दर गया । घना अन्धेरा है । उसके मन में विचार आया कि सभी तो कहते है कि 'विक्रमराजा के राज्य में चोरी करना तो लोहे के चने चबाने समान है । मगर यहाँ तो कितना अन्धेरा है ? जितनी चोरी करनी हो उतनी चोरी की जा सकती है । इसलिए यहाँ चोरी करना आसान है । चोर कमरे में गया तब पिटारे पर एक कटोरी

रखी थी । उसमें थोड़े सफेद टुकड़े पड़े थे । चोर को लगा कि यह तो मिसरी है, मिसरी तो शुकन कहा जाता है, मिसरी मानकर टुकड़ा मुँह में डाला तो मिसरी के बजाय नमक था । चोर तो वापस आया । विक्रम ने पूछा - "क्यों भाई ! तुम वापस आये ?" "भाई ! उनके कमरे में गया तो एक कटोरी पड़ी थी । उसमें से मैंने जिसे मिसरी मानकर खाया, परन्तु वह तो नमक निकला । जिसका नमक मेरे पेट में पडा हो, उसके घर मैं चोरी कैसे कर सकता हूँ ?" राजा तो यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये । यह तो मनुष्य है कि देव ? चोर है या साहूकार ? आज के जीवों की दशा तो ऐसी है कि जिसका खाया हो उसीका ख़राब करते है ।

❑ चोर की बुद्धि से परीक्षा करते राजा :

रूपा चोर वापस आया । विक्रमराजा ने कहा - "भाई ! प्रधान और सेठ के घर से वापस आये । परन्तु अब तो हम विक्रमराजा के महल में चोरी करे । वे अपने आपको बहुत बड़ा राजा मानते हैं । उन्हें भी तो पता चले कि उनके राज्य में कितना अन्धेर है ? उनके महल से कितना भी लूटेंगे, फिर भी उनके ख़जाने में कहाँ कमी होगी ?" चोर ने कहा - "आपकी बात बहुत सुन्दर है । बाहर के लोग भी ऐसा ही कहते हैं कि विक्रम के राज्य में चोरी करना बहुत ही मुश्किल काम है, मगर यहाँ तो कुछ अलग ही लगता है । मुझे तो लगता है कि लावारिस राज्य हो तो केवल राजा विक्रम का ।" राजा ने कहा - "सच बात है । राजा के महल में हम दोनों साथ में जाये ।" दोनों साथ में महल में गये । राजा विक्रम के महल का कहना ही क्या ? सात मजले का भव्य भवन । इतना बड़ा महल फिर भी एक भी चौकीदार नहीं । एक-एक करके सातवें मजले पहुँचे । वहाँ तो मानो स्वर्ग खड़ा हुआ न हो ! सोने के पायेवाले पलंग पर विक्रमराजा की रानी आराम से सो रही है । विक्रम ने कहा - "यहाँ क्या चोरी करेंगे ?" चोर की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए कहा - "देखो, रानीजी सो रही है, चोरी का अच्छा मौका है । पलंग के चार पाये सोने के हैं, उसे निकालकर ले जाय, परन्तु रानी जाग न जाय और नीचे न गिरे इस प्रकार उसके पाये निकाल दे, तो मैं तुझे सच्चा चोर मानुँगा ।" रूपा ऩे कहा - "इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? यह तो मेरे लिए एक खेल समान है ।"

❑ चोर का चातुर्य :

चोर ने आसपास नज़र की तो एक ओर गद्दों का ढ़ेर पड़ा था । चोर उसमें से एक-एक गद्दा लेकर पलंग के नीचे रखने लगा । उसने गद्दे इस प्रकार रखे थे कि ठीक पलंग की रस्सी को छू गये । राजा तो पास में खडे होकर देख रहे हैं कि चोर

क्या करता है ? कुछ क्षण बाद चोर ने छूरी से आसपास की रस्सी संभालकर काट डाली । रस्सी कट गयी कि तुरन्त रानीजी गद्दे पर आ गयी । रानी को कोई परेशानी नहीं हुई । वे तो सोती रही, फिर चोर ने पलंग के सोने के चारों पाये निकाल लिये । राजा को लगा कि यह है तो चोर मगर बहुत चालाक और बुद्धिमान है ! रानी को किसी प्रकार की हानि न हुई और वस्तु मिल गयी । राजा ने कहा - "भाई ! तुझे अधिक चाहिए तो ले ले । यहाँ धन की कोई सीमा नहीं है ।" चोर ने कहा कि - "मेरी प्रतिज्ञा है कि महीने में एक से अधिक बार चोरी नहीं करना । यह चारों पाये पर्याप्त है । अब हम यहाँ से निकलते हैं ।"

❑ पक्षी द्वारा राजा का परिचय :

राजा और चोर दोनों महल से नीचे उतर गये । नगर से बाहर जाकर एक पेड़ के नीचे बैठे । चोर ने कहा - "चलिए, अब हम सामान के दो हिस्से कर ले । दो पाये आपके और दो मेरे ।" चोर है फिर भी नियत (नीति) कितनी सुन्दर है ! विक्रम ने कहा - "भाई ! मैं तो एक ओर खड़ा था । सारी मेहनत तो तुमने की है, इसलिए तीन तुम्हारे और एक मेरा ।" आपको मिलता तो क्या करते ? (श्रोतागण में से आवाज : अरे चारों ले लेते ।) चोर ने कहा - "नहीं । दो आपके और दो मेरे । क्योंकि यदि चोरी करते समय रानी जाग जाती और हम पकड़े जाते तो दोनों को शिक्षा समान मिलती न ! उसमें अधिक या कम न होता । तो फिर चोरी करने पर जो माल मिला है उसमें भी दोनों ठीक ठीक ही हिस्सेदार है न ।" इस प्रकार दोनों का वार्तालाप चल रहा था कि पेड़ पर से एक पक्षी बोला - "राजा और चोर हिस्से करते हैं - मालिक और चोर हिस्से करते है ।" यह चोर पक्षी की भाषा समझता था । उसने पक्षी की बात सुन ली । तुरन्त अचानक खड़ा हुआ और राजा के चरणों में गिर पड़ा । राजा की गोद में सिर रखकर बहुत रोया । आंसू से राजा के पाँव धो दिये ।

यह देख कर राजा को आश्चर्य हुआ । यह चोर अचानक ऐसा क्यों करता है ? राजा ने पूछा - "भाई ! तुझे क्या हो गया है ? तुम इतना रोते क्यों हो ?" चोर ने कहा - "महाराज ! आप ही अवन्ती के नरेश राजा हो । आपने मेरे साथ छिपकर रहकर मेरे साथ धोखा किया है । साथ में रहने पर भी आप प्रकट हुए नहीं और चोरी करने पर भी मुझे पकड़ा नहीं ।" राजा ने कहा - "तुझे कैसे पता चला कि मैं स्वयं विक्रमराजा हूँ ?" "महाराज ! मैं पक्षी की भाषा जानता हूँ । देखिए,

इस पेड़ पर पक्षी कह रहा है कि 'मालिक और चोर हिस्से कर रहे हैं ।' यह चार पाये आपके महल के हैं, अतः आप इसके मालिक हो और मैं चोर हूँ । इसलिए समझ गया कि आप विक्रमराजा हो ।" राजा ने चोर को गले से लगा दिया । फिर चोर से पूछा - "आप तो साहूकार हो । आप खानीदानी चोर लगते नहीं हो । आपको यह चोरी का, पाप का धन्धा करना क्यों पड़ा ? आपका कुल खानदानी लगता है । आप चोर हो ऐसा लगता नहीं है । इसलिए मुझे आप सत्य बात कहिए ।"

❑ **प्रामाणिक्ता से मिला प्रधानपद :**

"महाराजा ! मैं एक बड़े संपत्तिवान सेठ का पुत्र हूँ । मेरे माता-पिता का बचपन में ही निधन हो गया था । अमलदार ने मेरी सारी पूँजी लेकर मुझे भिखारी बनाकर निकाल दिया । बुरे मित्रों की संगत में मैं भी चोरी करना सीख गया और आज नामचीन (खानदानी) चोर बन गया । यह पाप मुझे व्यथित करता है, इसलिए मैंने अपनी रोजगारी हेतु महीने में एक बार चोरी करने की छूट रखकर दूसरी प्रतिज्ञा की है - चोरी करने पर भी मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता हूँ ।" "भाई ! क्या तुम उस अमलदार को जानते हो ?" चोर ने उसकी जानकारी दी । राजा ने उससे पूछताछ की । फिर बड़ी सजा की धमकी दी तो उसने सारी सच्चाई बता दी । इस चोर की सारी संपत्ति वापस दिलवायी । चोर फिर सेठ जैसा बन गया । राजा को उसके प्रति बहुत आदर हुआ कि चोर होने पर भी कितना इज्जतदार और प्रामाणिक है ? उसे अपना जीवन निभाने के लिए ऐसा धन्धा करना पड़ा था, परन्तु उसकी नीति शुद्ध थी । चोरी करने पर भी उसका हृदय चोर नहीं साहूकार था । राजा ने कहा - "तुम आज से मेरे राज्य के प्रधान हो । तुम्हारे जैसे सत्यवादी और प्रामाणिक प्रधान से अपना शासन बहुत अच्छा चलेगा ।"

इस बात से समझना है कि चोर होने पर भी उसके पास कितनी साहूकारी थी ? राजा के संगत से उसने चोरी का धन्धा बंद कर दिया । उसे प्रधानपद मिला । उसने अपने जीवन की तस्वीर बदल डाली । इस मनुष्यजीवन को पाकर हम भी अपने जीवन की तस्वीर ऐसी बदल डाले कि फिर देह की तस्वीरें बार-बार बदलनी न पड़े । जीवन की तस्वीर यदि बदली जाय तो ही चातुर्मास की महिमा को समझा है ऐसा माना जा सकता है । अधिक अवसर आने पर ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ - २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २

व्याख्यान - २

श्रद्धा की अपूर्व महिमा

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि, शासनपति, सर्वज्ञ भगवन्त ने जगत के जीवों के श्रेय हेतु कल्याणकारी, पावनकारी, मंगलकारी शास्त्रवाणी प्रस्तुत की है । ऐसे शास्त्र का प्रतिपालन करनेवाले भगवान् कैसे है यह बताते हुए 'सूयगडांग सूत्र' में लिखा है कि -

"जमतीतं पडुपन्नं आगमिस्सं च णायओ ।
सव्वं मन्नति तं ताई, दंसणावरणंतए ।।" अ.-१५, गा.-१

जो पदार्थ भूतकाल में जिस अवस्था में थे । वर्तमानकाल में जिस अवस्था में स्थित हैं, भविष्यकाल में जिस अवस्था में होंगे, उन सर्व पदार्थो तथा उनकी तीनों कालों के पर्याय को, द्रव्य से और पर्याय से जीव तथा अजीव सर्व पदार्थो को जाननेवाले तथा छकाय जीव के रक्षक, सर्व के हितचिन्तक, दर्शनावरणीय आदि घातीकर्मो का अन्त करनेवाले, सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, केवलज्ञानी भगवान जीवों के नेता हैं । पतीत-पावन, अधम-उद्धारक, भवदुःख-भंजन समान पंच परमेष्ठि भगवन्त का जिनशासन में एक अनोखा स्थान है । नवकार मंत्र की महिमा कितनी है यह आप जानते हो ? एक श्लोक में भी कहा है कि -

"मंत्र संसारं त्रिजगदनुपमं सर्व पापारिमंत्रं,
संसारोच्छेद मंत्रं विषम विषहर कर्म निर्मूल मंत्रं ।
मंत्रं सिद्धिप्रदानं शिव सुख जननं केवलज्ञान मंत्रं,
मंत्रं श्री जैन मंत्रं जप-जप जपितं जन्म निर्वाण मंत्रम् ।।"

चौदह पूर्व के सार रूप नमस्कार महामंत्र त्रिभुवन में अनुपम है, सर्व पाप-रूपी शत्रुओं को मारने में वज्र समान है, जन्म-मृत्युरूप संसार का नाश करने में समर्थ है ? भयानक विष को भी नष्ट करानेवाला है । जन्मोजन्म के कर्मो को निर्मूल करने में समर्थ है । रिद्धि-सिद्धि और शिव-सुख देनेवाला है । केवलज्ञान को प्रकट करनेवाला है । वार-वार जपा यह मंत्र निर्वाण-सुख को देता है । इस लिए ज्ञानी महर्षि नमस्कार महामंत्र की सव से अधिक महिमा गाते हैं, क्योंकि **नवकार मंत्र कल्याण कुंदन में चमकता नगिना है** । चारित्र्य चंद्र को

चमकानेवाला निर्मल नभ है । आत्मा को जागृत करनेवाला नुपूर है । मोक्ष मन्दिर में प्रवेश करने का नगर है । नियमों का नन्दनवन है और नम्रता की नारंगी है । नवकार मंत्र चौदह पूर्व का सार है । चौदह पूर्व भी नवकार मंत्र का विस्तार है । चौदह पूर्वधारी भी अन्तिम समय में उसका ध्यान धरते हैं और उसकी शरण में जाते हैं । नवकार मंत्र जैसे सारभूत है वैसे नवकार को गिननेवाले भी सारभूत बनते हैं । चौदहपूर्वी भी नवकार मंत्र के ध्यान में एकाकार आत्माओं की प्रशंसा करते हैं । ऐसा उत्तम जिनशासन पाकर जो मनुष्य नवकार मंत्र गिनता नहीं है वह पाप से पुष्ट और पुण्य से हीन होता है । यदि मृत्यु के समय उपयोग नवकार महामंत्र में जूड जाय और उस समय आयुष्य बंध जाय तो देवलोक का बंधता है ।

नवकार मंत्र में मोक्षमार्ग को बतानेवाले अरिहंत भगवन्त, मोक्ष को प्राप्त सिद्ध भगवन्त और मोक्षमार्ग को अमल में लानेवाले आचार्य, उपाध्याय और साधु भगवन्त है, इस प्रकार इस महामंत्र में मोक्ष के प्रणेता, मोक्ष-सुख के भोक्ता और मोक्ष के साधक, ये तीनों का त्रिवेणी संगम होता है । अतः यह महामंत्र मोक्ष की प्राप्ति में सहायक है । कोई मंत्र कहो, तंत्र कहो, यंत्र कहो, ज्ञान कहो या ध्यान कहो - यह सब नवकार मंत्र में स्थित है । परन्तु आप के मन किसका महत्त्व है ? आप किसे मूल्यवान मानते हो ? आप किसका जाप जपते हो ? किसका ध्यान धरते हो ? बोलिए तो सही ? (मौन) आप मुझे उत्तर नहीं देंगे । मैं आप से कह दूँ । आप लक्ष्मी को सर्वस्व मानते हो, इसलिए जाप कहो या ध्यान कहो - सब कुछ लक्ष्मी के लिए करते हो न ? उसके लिए दिन-रात दौड़-धूप करते हो । उसीमें मन लगा रहता है । बोलिए सच बात है न ? (हँसते हैं ।)

देवानुप्रिय ! मनुष्यदेह में मन का स्थान बहुत बड़ा है । इस मन को वश करना बहुत मुश्किल कार्य है । नवकार मंत्र मन को वश करने का एक अनुपम साधन है । धन की रक्षा करने हेतु आप क्या रखते हो ? 'तिजोरी' । धन की रक्षा हेतु यदि जैसे तिजोरी रखते हो, शरीर की रक्षा के लिए जैसे वस्त्र पहनते हो, वैसे ही मन की रक्षा के लिए नवकार मंत्र है । जैसे तिजोरी के बिना प्रायः धन की रक्षा नहीं हो सकती है, वैसे ही नवकार मंत्र के बिना मन की रक्षा भी सम्भव नहीं है । मंत्र मन को वश करने का अंकुश है । जिस का मन नवकार मंत्र में जुड़ता नहीं है, वह विषय-कषाय में भटकता है और दुर्गति के खड्डे में फँसता जाता है । मन मनुष्य के उत्थान और पतन का कारण है । विषय और कषाय जीव को अनादिकाल से संसार में भटकानेवाले हैं । पल-पल आर्तध्यान और रौद्रध्यान कराते हैं । धर्मध्यान या शुक्लध्यान में जुड़ने देता नहीं है । नवकार मंत्र का एक चित्त

से शुद्ध भाव से सदैव स्मरण करने से विषय-कषाय मन्द पड़ जाते हैं, मन पवित्र बनता है और आत्मा धर्मध्यान और शुक्लध्यान में जुड़ती है । धर्मध्यान और शुक्लध्यान में जुड़ने के परिणाम-स्वरूप मोक्षपद की प्राप्ति होती है, अत: दुर्लभ मनुष्यभव में इस पवित्र नवकार मंत्र की आराधना कर लीजिए ।

सभी तीर्थकर भगवन्तों ने भी अपने पूर्वभवों में इस महामंत्र की आराधना की होती है । अत: मनरूपी आँगन में नवकार महामंत्ररूप कल्पवृक्ष उगाने की आवश्यकता है, जो कल्पवृक्ष के मूल रूप में अरिहंत भगवान फल रूप में सिद्ध भगवान, फूल रूप में आचार्य, पत्तों के रूप में उपाध्याय और शाखा रूप में साधु भगवन्त है । कल्पवृक्ष तो जुगलीया के समय में होता है । वह तो केवल सांसारिक कामना पूर्ण करने में समर्थ था । उस कल्पवृक्ष से मिलनेवाले भौतिक-सुख का उपभोग तो मेरी और आपकी आत्मा ने अनन्त बार किया, इससे कोई कल्याण हुआ नहीं । अब तो मन-मन्दिर के आँगन में एक कल्पवृक्ष उगाना है कि जल्दी ही आत्मा का कल्याण हो जाय । ऐसा नवकार महामंत्ररूपी कल्पवृक्ष तो आत्मा के शाश्वत धाम रूप मोक्ष को अर्पण करने की अप्रतिहत शक्ति रखता है । मन-मन्दिर के आँगन में महामंत्ररूप कल्पवृक्ष को उगाने के बाद आत्मा के आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती । मैं आप से एक बात पूछु कि जिसके घर के पास ही कल्पतरु फलीभूत हुआ है उसे दु:ख या दरिद्रता रहती है क्या ? नहीं, वह तो महान सुखी बन जाता है, निहाल हो जाता है । यह तो द्रव्य-कल्पवृक्ष है, फिर भी मनुष्य के दु:ख-दारिद्र्य दूर हो जाते हैं और महासुखी बन जाता है, तो जिसके मन-मन्दिर के आँगन में महामंत्ररूपी भाव-कल्पवृक्ष पनपा हैं, उसे दुर्गति का डर रहेगा क्या ? नहीं । फिर समझिए, कल्याणकारी नवकार मंत्र की श्रद्धा सहित आराधना कीजिए, नवकार मंत्र का आराधक स्वयं पंच परमेष्ठिमय बनता है और पंच परमेष्ठि पद को पाने के बाद उसे संसार का डर रहता नहीं है । **'जिसके मन में है नवकार उसे क्या करे यह संसार ?'** इस नवकार मंत्र की द्रव्य से और भाव से आराधना करनी पड़ेगी । जिसे द्रव्य से और भाव से नवकार मंत्र आ जाय उसके रोम रोम में आनन्द छा जाता है और भविष्य में दुर्गति के द्वार सदा के लिए बन्द हो जाते हैं । जो नवकार मंत्र के माहात्म्य को समझता है वह मनुष्यभव को सफल कर देता है । नवकार मंत्र की श्रद्धा पर एक दृष्टान्त याद आता है ।

❑ वैष्णव सज्जन और संत-समागम :

किसी एक गॉव में महाज्ञानी, परोपकारी जैन साधू पधारे । जैन संत आरम्भ -समारम्भ के त्यागी होते है, कंचन, कामिनी और कुटुम्ब का त्याग वीतराग दशा

प्राप्त करने की जिन्हें लगनी होती है, उन्हें संसार का अनुराग नहीं होता । हजारों मनुष्य उनके दर्शन हेतु आते है, व्याख्यानवाणी का लाभ लेते हैं । वे संत प्रत्येक को धर्म समझाते हैं । एक बार एक वैष्णव सज्जन संत के दर्शन करने आये । दर्शन कर संत के चरणों में एक सौ रुपया की नोट रखकर खड़े होकर रहे । उसे पता नहीं कि ये तो कंचन-कामिनी के त्यागी और शिव-सुख के रागी संत है । अतः महाराज ने कहा - ''भाई ! यह तेरी माया उठा ले, मुझे उसकी बदबू आती है ।'' भाई ने कहा - ''महाराज, आप कैसे संत हो कि सौ रुपये की नोट आप के चरणों में धरने पर भी उसे लेते नहीं हो ? लोग तो पैसे के लिए प्राण भी देते हैं और एक आप है कि मेरे पाँव पड़ने पर भी आप उसे लेते नहीं है ।'' (हँसते हैं ।) ''भाई ! जिसे विष का कटोरा समझकर छोड़ा है उसे ग्रहण करूँ ? जल्दी से उठा ले । मुझे बदबू आती है ।'' आप को रुपयों की दुर्गंध (बदबू) आती है या सुगन्ध ? (श्रोतागण में से आवाज : हमें तो सुगन्ध आती है ।) आप को रुपये अधिक प्रिय है इसलिए सुगन्ध आती है मगर सच्चे त्यागियों को उसकी बदबू आती है । संत ने कहा, इसलिए उस भाई ने सौ रुपये की नोट ले ली और चरणों में गिरकर कहा - ''महाराज ! मुझे कुछ दीजिए ।'' संत क्या देंगे ? वे पैसे आदि भौतिक चीज़ नहीं देते । वे तो हमारे पास से लेते हैं कम और देते हैं ज्यादा । 'बोलिए महाराज, क्या देंगे ? हीरा, माणिक, मोती, रुपये ?' 'नहीं... नहीं... आत्मज्ञान देंगे ।'

❑ संत-समागम से प्राप्त अपूर्व लाभ :

महाराज ने जिज्ञासु भक्त को पाँच नवकार मंत्र सिखाये और कहा - ''तुम इस मंत्र को कंठस्थ कर लेना और उसका स्मरण करना, हम आठ दिन यहाँ पर रहनेवाले हैं । तुम्हें रोज आना है । मैं तुम्हें इस नवकार महामंत्र का स्वरूप समझाऊँगा ।'' उस मनुष्य के हृदय में अपार खुशी हुई । 'अहो ! गुरु महाराज ने मुझे मंत्र दिया । अब मैं निहाल हो गया ।' हम आपको नवकार मंत्र देते तो ऐसे भाव आयेंगे ? आप को बस यही होगा कि यह सब कुछ हमें आता है । इसमें नया क्या ? लक्ष्मीदेवी प्रसन्न हो ऐसा मंत्र दे तो आनन्द होता है ! (हँसते हैं ।) इतना मिलने पर भी भौतिक-सुख की भूख मिटती नहीं हैं । मुझे तो लगता है कि इसे श्रावक कहे या भिखारी ? वह मनुष्य आपके जैसा नहीं था । खाली घड़ा था । वह प्रतिदिन महाराज के पास आने लगा, संत इसकी जिज्ञासा देखकर नवकार मंत्र का, जैनधर्म का और संसार का स्वरूप समझाने लगे । आठ दिन में तो वह ऐसा खो गया कि सच्चा श्रावक बन गया । बारह व्रत स्वीकार किया । मुझे

आप को बारह व्रत स्वीकार (अंगीकार) करवाने हो तो ? आप तो न जाने कितने बहाने बताओगे ? ठीक है न ?

वैष्णव से जैन बना श्रावक आत्मज्ञान प्राप्त कर गया । धीरे-धीरे संतों का समागम होने पर जैनधर्म का गहरा तत्त्वज्ञान प्राप्त किया । उपादान शुद्ध था इस-लिए निमित्त मिलने पर हृदय में जैनधर्म के श्रद्धा का दीया जला । अब तो जो कोई उसके पास आता उसके पास धर्म की बातें करने लगा । अष्ठम पाखी के दिन पौषध करने लगा । प्रतिदिन सामायिक-प्रतिक्रमण करता । जब वह पौषध में या सामायिक में होता है, तब जिज्ञासु कल्याण मित्र उसके पास समझने के लिए आते तब यह श्रावक साधर्मिक और स्नेहियों के समक्ष कभी-कभी संसार की असारता प्रस्तुत करता तो कभी कभी संगम की मधुरता समझाता । कभी-कभी जीवों के हित की भावना समझाता, कभी-कभी नौ-तत्त्व का रसास्वादन करवाता, कभी-कभी जैनदर्शन का सूक्ष्म कर्मवाद प्रस्तुत करता, कभी-कभी नवकार मंत्र की महिमा समझाता, जाप कराता, धून मचाना और कभी आत्मा के उत्थान का क्रम समझाता । इसके पास से विभिन्न रूप से विषयों का विवेचन सुनकर श्रोतागण ज्ञानरस में सराबोर हो जाते । यह श्रावक सब के लिए मानो तत्त्वज्ञान का प्याऊ और आदर्श गुणों कि दानशाला समान बन गया । उसका भोजन तत्त्व-श्रवण, तत्त्व-चिन्तन और तत्त्व-मनन था । पौषधशाला में तत्त्वरसिक कल्याण; मित्रों की रंगत लगती । उसका ऐसा असर हुआ कि उस नगर में लोक निन्दा, कुथली, विकथा आदि मानो बिदा हो गये हो और दान, भक्ति तथा तप-जप के मधुर गीत गुँजने लगे । यह श्रावक संसार की अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त (दूर) रहता और वह नित्य तत्त्व के चिन्तन में मस्त रहता । रात के शांत वातावरण में ध्यान की मस्ती में डूबा रहता था । सोचिए कि यह जीव कैसा हलुकर्मी होगा ? संसार में रहने पर भी उदासीन भाव से रहता था । आप वर्षो से व्याख्यान सुनते है, संत-समागम करते हो, नवकार मंत्र रटते हो फिर भी संसार से विरक्त भाव आता है क्या ?

एक बार इस श्रावक ने पूर्णिमा के दिन पौषध किया था । पूर्णिमा का चंद्र चारों दिशाओं में प्रकाशित हुआ था । जगत के जीव निद्राधीन थे । उस समय श्रावकजी ने पद्मासन लगाकर जिनेश्वर-प्रभु के ध्यान में चित्त को जोड़ दिया और अरिहंत-प्रभु के अनेक गुणों का चिन्तन करने लगे । अहो, कैसा सुहाना प्रभु का समवसरण ! घना अशोक वृक्ष ! चमकता सुवर्ण-सिंहासन और उपर तीन-तीन कंगूरें ! क्या प्रभु आपका रूप ! जगत के जीवों के लिए हितकर, अनुपम जिम

के सौन्दर्य की तुलना में कोई नहीं आ सकते । अद्भुत अतिशयों से सभर और आमर्ष औषधि आदि लब्धियों से निर्भर । करोड़ों देव-प्रभु की सेवा करने के सपने से दौड़ आये हैं । जयनादों की गूँज़ सुनायी दे रही है । मंगल शब्दों का उच्चारण हो रहा है । चौसठ-चौसठ इन्द्र प्रभु-चरणों में गिर पड़े हैं । त्रिभुवन की संपत्ति प्रभु-चरणों में तृण समान दिखती है ।

इस परमात्मा ने तो साधक दशा में प्राणीमात्र के कल्याण की भावना के गीत गाये और मैं उनका सेवक स्वार्थ में फँसा । परमात्मा ने जीवमात्र के जीवत्व के साथ प्रेम जोड़ा और हे आत्मा ! तू जीवमात्र के जीवत्व को भूलकर जड़ का प्रेमी बना । हे आत्मा ! तेरी सगाई जीव के साथ है कि जड़ के साथ ? तुम्हें जड़ के साथ वैराग्य का भाव लाना है, उदासीन बनना है, परन्तु जीवों के प्रति उदासीन मत बनता । हे जीव ! तेरा अनन्तकाल संसार-परिभ्रमण में व्यर्थ गया । तुमने कर्म-दुश्मन के साथ मित्रता की । तेरे शुद्ध सहजात्म स्वरूप को कभी न सोचा ! जीवनचक्र के दुःखमय परिभ्रमण को तुम्हें भूलना नहीं । देखना प्रमाद और अज्ञान नामक चोर धर्म-पुरुषार्थ के अमूल्य मौके को हडप न ले, इसके लिए तुम्हें सदैव जागृत रहना है । इस प्रकार ध्यान में चिंतवना करने से अध्यवसाय विशुद्ध-विशुद्धतर बनने पर अज्ञान के काले बादल हट गये और उस श्रावक को निर्मल अवधिज्ञान प्राप्त हुआ ।

❑ ज्ञान से क्या देखा ? :

अवधिज्ञान के दिव्य प्रकाश में अनेक पदार्थ देखें । देखते-देखते अपने छोटे भाई के जीवन को अवलोकन करते हुए उसके आयुष्य कर्म की स्थिति देखते हुए मात्र छ महीने का आयुष्य शेष रहा देखा । अतः वह रूक गया, मगर अपने मन को मजबूत कर निर्णय किया कि किसी भी प्रकार से मुझे मेरे भाई का शेष जीवन सुधारना है ।

बन्धुओं ! पूरा जीवन गया, परन्तु जिसका अन्तिम समय सुधरा, उसका जीवन भी सुधर जाता है । बहने कुएँ में घड़ा (मटका) डालते है, परन्तु थोड़ी रस्सी हाथ में रखती है, जिससे कि घड़ा वापस आ सके, परन्तु अगर रस्सी छूट गयी तो घड़ा भी पानी में डूब जाता है । उसी प्रकार हमारी जितनी जिन्दगी गयी उतनी गयी, परन्तु जो शेष है उसमें धर्म की आराधना कर आत्मा को उबार लीजिए, नहीं तो भवकूप में यह आत्मा न जाने कहाँ डूब जायेगी ?

इस श्रावक का छोटा भाई बड़े भाई के सहवास (सत्संग) से जैनधर्म के रंग में रंगा था । उसकी दिनचर्या आदर्श थी, परन्तु अभी तक उसे आत्मश्रेय के अनेक

सोपान (शिखरों) सर करने थे । छोटे भाई के हितैषी बड़े भाई ने अपने भाई को अल्पायुषी जानकर कहा कि-"मेरे प्रिय छोटे भाई ! अब तुम इस संसार की माया और ममता को छोड़कर हो सके उतनी धर्मक्रियाओं में अनुरक्त रह । धर्मक्रिया में जरा भी प्रमाद मत कर, उसीमें तेरा कल्याण है ।" इस प्रकार बड़े भाई ने बार बार छोटे भाई को समझाया । यह सुनकर उसके मित्र ने कहा - "भाई ! यह तेरा छोटा भाई तो हमेशा धर्मक्रिया में रत रहता है फिर भी उसे रोज पौषध करने को क्यों कहते हो ?" तब बडे भाई ने कहा - "मित्र ! वह जो आराधना करता है, वह तो सिन्धु में बिन्दु-समान है । अभी सिन्धु जितनी आराधना शेष (अधूरी) है ।" "यह बात आप कैसे भूल जाते हो ?" "मित्र ! यह बात तो सच है, परन्तु यदि वह रोज पौषध कर बैठा रहेगा तो आप का संसार कैसे चलेगा ?" खाने के लिए कमाना भी पड़ेगा न ?" "मित्र, तुम्हारी बात सत्य है । मैं समझता हूँ फिर भी उससे मैं रोज़ पौषध का आग्रह करता हूँ । उसमें गहरा रहस्य छिपा हुआ है, यह बात मैं बाद में बताऊँगा ।"

❑ अन्तिम आराधना में मस्त हुआ छोटा भाई :

देवानुप्रिय ! मनुष्य को ज्ञान हो, परन्तु उसे पचाना (सहना) आना चाहिए । ज्ञान प्राप्त कर पचाना न आये तो ज्ञान चला जाता है । यह गम्भीर श्रावक अभी सत्य यह बात प्रकट करता नहीं है । काल के प्रवाह को बहते कितनी देर ! देखते ही देखते साढ़े पाँच महीने बीत गये । अब तो छोटा भाई भी जड़-चेतन के भेद को ठीक ठीक समझ गया था । अब उसे कोई तकलीफ नहीं थी । अपने ज्ञान द्वारा भाई का भविष्य देखकर भाई ने सत्य बात प्रस्तुत कर दी, अतः छोटा भाई सावधान बन गया । मनुष्य अपनी तस्वीर खिंचवाते और विद्यार्थी अपनी परीक्षा का पेपर लिखते समय कैसा जागृत रहता है ? वैसे ही छोटा भाई जागृत हुआ और बड़े भाई से कहा - "भाई ! अब मुझ से संथारा करवाइए ।" पूर्वजन्म की यात्रा पर जानेवाले अपने प्रिय अनुज को बिदा देने के लिए बड़ा भाई सज्ज हुआ । स्वयं उसने गादी बिछाकर दी । छोटे भाई को अन्तिम बार आराधना करवाता है । छोटे भाई से चित्त में पंच परमेष्ठि को बसाये । सर्व सांसारिक सम्बन्धों को बिसार (भूला) दिया । विश्व के तमाम जीवों के साथ क्षमापना की और मैत्री बाँधकर आत्मभाव में झुलने लगा । बड़ा भाई सोचता है कि 'अहो ! मेरे सहोदर भाई को सद्गति का पथिक बना दूँ, दुर्गतियों की दुर्दशा से उगार (उबार) लूँ और मुक्ति के मार्ग पर चढ़ा दूँ ।' छोटे भाई के मुख में नवकार मंत्र की रट चल रही थी। हृदय सर्व जीवों के साथ आत्म-सम भाव का दर्शन कर रहा था । सारे गाँव में यह बात जल्द ही प्रसारित हो गयी । जन समुदाय पवित्र आत्मा के दर्शन करने

निकला । बड़े भाई ने जो समय कहा था, ठीक उसी समय छोटा भाई आयुष्य पूर्ण होने पर नवकार मंत्र का जाप जपते हुए क्षणभंगुर शरीर का त्याग कर देवों की दिव्य नगरी का निवासी बन गया । अभी तक बड़े भाई ने मन को मजबूत किया था, परन्तु छोटे भाई के जाने पर उसकी आँखों में वियोग के आंसू टपक न सके । सारे गाँव में शोक छा गया । भाई की मृत्यु के बाद सभी स्वजन पूछने लगे - "भाई ! छोटे भाई की मृत्यु होनेवाली है - यह आपने कैसे जाना ?" तब श्रावक ने कहा - "भाई ! देव, गुरु, धर्म का प्रभाव सत्य होता है ।" देखिए, कितनी नम्रता है ? वह यह नहीं कहता है कि मुझे अवधिज्ञान हुआ था । स्वजन और मित्रों ने पूछा कि - "क्या आपको कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान हुआ है ?" श्रावक ने कहा - "हाँ !" "कौन-सा ज्ञान ?" 'अवधिज्ञान ।"

❑ उपकारी के चरणों में प्रणाम करता देव :

बन्धुओं ! निष्काम और निर्मम भाव से की गयी धर्म-साधना का कैसा भव्य प्रभाव है ? नगरजन भी प्रमोद भाव से खूब प्रशंसा करने लगे । "कैसा भ्रातृ प्रेम ! बड़े भाई ने छोटे भाई की मृत्यु सुधार दी । उसका जन्म सफल हुआ, मृत्यु महोत्सव बन गया और परलोक महासुखमय बना ।" इस तरफ देव-पर्याय को प्राप्त किये गये छोटे भाई ने अपना पूर्वजन्म देखा । इतने ऊपर चढ़ानेवाले अपने बड़े भाई को देखा तो तुरन्त दिव्य देहधारी देव पृथ्वी पर उतर आया । पृथ्वी पर प्रकाश का पूँज फैला । देव बडे भाई के चरणों में गिर पड़ा और उसके कृतज्ञतावसित हृदय से शब्द निकल पडे - "हे बड़े भाई ! आप तो मेरे सच्चे बन्धु हो । आपने मुझे धर्म का अमृत पीलाकर अमरत्व दिलवाया है । आप के कितने गुण गाऊँ ? आप तो मेरे जन्मोजन्म के उपकारी हो । आपको मेरे गुरु कहूँ, नाथ कहूँ या जो कोई कहूँ, वो आप ही हो ।" इस प्रकार गुण गाकर उपकारी भाई के उपकार को व्यक्त कर उसके घर में सुवर्ण-मुद्राओं की वर्षा कर देव दिव्य लोक में चला गया ।

संक्षिप्त में - इस दृष्टान्त से मुझे आप को यह समझाना है कि नवकार मंत्र की महिमा इतनी अधिक है कि जो नवकार मंत्र के नामस्मरण मात्र के प्रभाव से वैष्णव जैन बना । उसने आठ दिन के समागम से जीवन को बदल दिया । स्व-कल्याण करते हुए दूसरों को भी कल्याण का मार्ग दिखाया । मैं आप से पूछती हूँ कि आपने कितना संत-समागम किया है ? कितने व्याख्यान सुने ? कितनी बार नवकार मंत्र का जाप किया ? परन्तु अभी तक जीवन में से विषय-कषाय, मोह, माया और ममता के तूफान कम हुए ? नवकार मंत्र के प्रति श्रद्धा हुई ? बोलिए तो सही ? नहीं । क्यों ? आप का मन स्थिर नहीं है, हृदय [illegible]

नहीं है, मुझे तो लगता है कि उस सेठ के इकलौते पुत्र की तरह हृदय में जोंक लेकर आये लगते हो ? सेठ के पुत्र के पेट में जोंक (पानी में रहनेवाली एक जन्तु) कैसे आयी इसे मैं आप को समझाती हूँ ।

❑ जोंक की कथा :

एक गाँव में नगरसेठ का एक इकलौता पुत्र एक दिन घोड़े पर बैठकर जंगल में घुमने गया था । घोड़ा तैश में आ गया और उसे बहुत दूर ले गया । वह मार्ग भूल गया । चैत्र-बैशाख की भयानक धूप पड़ रही थी, बहुत चक्कर लगाये, परन्तु मार्ग मिलता नहीं है । खूब प्यास लगी है । पानी के बिना प्राण चले जाय ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है । सेठ का पुत्र चारों ओर पानी खोजता है । आँखों में अन्धेरा छाने लगा है । ढूँढते ढूँढते वहाँ एक छोटा-सा पानी का खड्डा देखा । पानी शुद्ध नहीं है, परन्तु प्यास बहुत लगी है । कहावत है न - **'भूख न देखे जूठा भात, प्यास न देखे धोबीघाट ।'** वन-जंगल में जोरदार भूख लगी हो, तब कोई बदबुदार कपड़े में बँधी रूखी-सूखी रोटी भी ले दी जाय तो उसे खा जाते न ? या फिर हाँ-ना करते ? (श्रोतागण में से उत्तर : उसे तो बड़े प्यार से खा लेते और वह बहुत मीठा भी लगता ।) (हँसते हैं) तो यहाँ भी ऐसा ही हुआ । सेठ का पुत्र बहुत प्यासा था, इसलिए प्यास बुझाने के लिए डबरा का गंदा पानी भी पी लिया और मार्ग ढूँढता हुआ घर आया । घर आते ही उसे पेट में बहुत दुःखने लगा । न सहा जाय न रहा जाय । ऐसी असह्य पीड़ा होने से वह लोटने लगा, सिर पटकने लगा । माता-पिता ने बड़े बड़े वैद्य और हकीमों को बुलाया । सभी ने जाँचकर दवाई दी, परन्तु पेट की पीड़ा जरा-सी भी कम नहीं हुई । एक अनुभवी मनुष्य वहाँ आया और सेठ के पुत्र से पूछा कि - ''आपकी यह पीड़ा कब से और कहाँ से शुरू हुई है ?'' लड़के ने कहा - ''जंगल में डबरे से पानी पीने के बाद तुरन्त पेट में दुःखने लगा है ।'' यह सुनकर अनुभवी मनुष्य समझ गया कि 'जंगल में डबरे का पानी पीने के बाद से यह बीमारी है, अतः पानी में ही कोई खराबी होनी चाहिए ।'

सेठ के पुत्र द्वारा दिये गये निशान पर अनुभवी वहाँ पहुँच गया । पानी के डबरे में नज़र की तो उस पानी में ढ़ेर सारी जोंक देखी । वही जोंक सेठ के पुत्र के हृदय में चिपक गई होंगी । उसीकी यह असह्य पीड़ा है । इस अनुभवी पुरुष ने घर आकर हुक्के में से पानी निकाल कर सेठ के पुत्र को पीलाया । दो-तीन बार थोड़ा थोड़ा पानी पिलाया । थोड़ी देर बाद लड़के को वमन होनी लगी । चौथी बार सेठ ने पानी पिलाया तो ज़ोर से वमन होने पर एक साथ चार जोंक बाहर निकल गयी और सेठ के पुत्र के पेट की पीड़ा शांत हुई ।

बन्धुओं ! जबतक कलेजे में जोंक चिपकी थी, तबतक सारे प्रयास व्यर्थ गये । जोंक जैसे ही निकली की लड़का स्वस्थ हो गया । उसे तो चार जोंक कलेजे में चिपक गयी थी, परन्तु आत्मा में तो क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि न जाने कितनी जोंक कलेजे में चिपक गयी हैं ? उन जोंकों को अनादिकाल से जीव को कितना परेशान किया है ? उन जोंकों को निकालना है न ? 'हाँ' तो फिर सद्‌गुरु रूपी अनुभवी मनुष्य कि जो वीतरागवाणी रूपी हुक्के का पानी पिलाता है, उसे पीकर कलेजे में चिपकी जोंक को बाहर निकालने का प्रयास कीजिए । दर्द होता हो तो निकालने के लिए तैयार हो जाइएगा । अधिक चर्चा बाद में ।

व्याख्यान - ३

कर्म की करामात

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

ज्ञानी भगवन्त ने मंगलकारी, कर्म के ढेले तुड़वानेवाले, आत्मा की आराधना-उपासना करवानेवाले पावनकारी धर्म की महत्ता समझायी । जब विभाव में जायेंगे और आत्मा स्वभाव में आयेगी तब इस धर्म की पहचान होगी और साथ में कर्म के स्वरूप को अगर जीव ने जाना होगा तो ही कर्मबन्धन कम होंगे । क्योंकि यह सारा संसार कर्म से चल रहा है । कर्मसत्ता का जोर कुछ और ही है । अब कर्म की चंगुल से मुक्त होना है ? (श्रोतागण में से आवाज : हाँ ।) छोड़िए उसकी मरम्मत । इसीलिए आज के व्याख्यान का विषय है **'कर्म की करामात ।'**

कर्म की मायाजाल

आज हमें यह समझना है कि आत्मा चौगति में क्यों भटक रही है ? [illegible] से कौन खेल जाता है ? सब में बलवान कोई है तो वह है कर्म । इस [illegible] ने ऐसी करामात की है कि मनुष्य उससे मुक्त हो सकता नहीं है । [illegible] जीवायोनियों में से एक भी जीव ऐसा नहीं है कि जो कर्म की [illegible] फँसा न हो ! जो इसकी जाल में फँसे हैं, वे संसार में रहे हैं । जो [illegible] जाल से मुक्त हो गये हैं, वे संसार में से सर्वथा मुक्त हैं [illegible]

मानवजन्म आध्यात्मिक [illegible] की एक अमूल्य [illegible] है [illegible] पूँजी इकट्ठी करने के [illegible] मिला है. [illegible]

मनुष्य श्रीमंत (अमीर) है । जीव को मानवता की अमीरी तो मिली मगर इस अमीरी के सोने में साहूकारी की सुगन्ध प्राप्त करनी हो तो सब से पहले कर्जा चुकाकर बहीखाता साफ कर देना चाहिए और लहना (ऋण) को उदारता से माफ कर देना चाहिए । सच्चा साहूकार पहले कर्जा चुकाने की बात को अधिक महत्त्व देता है, फिर उस लहने को लेने की बात करता है । तब उसकी साहूकारी अच्छी लगती है । इससे आगे बढ़कर साहूकारों को और ज्यादा शोभायमान करने के लिए सामनेवाले का कर्जा माफ कर देना है । यही बात आध्यात्मिक जगत में समझने जैसी है । मनुष्य मज़े से यहाँ सुख भोगता है, तो कर्मराज के चोपड़े में उसके उधार खाते में दुःख जमा होता है और मनुष्य हँसते मुख से आनन्द से दुःख सहता है, तो कर्मराज के चोपड़े में उसके खाते में सुख का खाता समृद्ध बनता है । अर्थात् दुःख हमारा लहना है और सुख उसका लहना है । इस भवचक्र में भटकती हमारी आत्मा ने दुःख को तो अनेकों बार सहा है, परन्तु हँसते मुख से हर्ष के साथ दुःख को सह लेने की समझ मनुष्य में है । आध्यात्मिक अमीरी से श्रीमंत (अमीर) माने जानेवाले मनुष्य के हृदय के चोपड़े में जमा-उधार के दो खाते हैं । जमा खाते में सुख है, इसलिए कर्मराज से लहना (ऋण) वसूल करना है और उधार खाते में दुःख है, जो उसे कर्मराज को दूध से धोकर चुकाना है । अब पहले क्या करने जैसा है ? कर्ज को चुकाना है या वसूली करनी है ? जो मनुष्य पहले लहने की वसूली करने से पहले कर्जे में को चुकाता है, वह अपनी आध्यात्मिक अमीरी पर चार चाँद चमका सकता है । कर्म का ऋण चुकाने में तो जरा भी विलंब (देर) करने जैसा नहीं है, क्योंकि उसका ब्याज तो भारी है ।

इस प्रकार हम कर्जा चुका दे इतने से कार्य पूरा नहीं होता है । चोपड़े साफ (ऋण अदाकर) कर कर्मराजा के साथ यदि सम्बन्ध तोड़ देना हो तो उसके ऋण को (लहना) माफ कर देना चाहिए ज़रूरी है । अगर उसका लहना माफ नहीं करेंगे और सुखों का त्याग नहीं करेंगे अर्थात् उन्हें भोगेंगे (उनका उपभोग करेंगे) तो उससे कषाय होगा, राग-द्वेष होगा, तो कर्मराजा का कर्जदार बनने की संभावना पैदा होगी । कर्मराज का चोपड़ा फिर उधार के खाते में लिखा जाता है अर्थात् फिर कर्ज़ा शुरू हो जाता है, इसलिए चोपड़ा चुकता कर साहूकारी की शान और अधिक बढ़ानी हो तो कर्ज़ा चुका दीजिए और लहने को सहर्ष माफ कर दीजिए । ज्ञानी समझाते हैं कि - **"कर्ज़े को चुकाने का मतलब सहर्ष दुःखानुभूति और लहना का समझौता यानी सुख की सहर्ष सलामती ।"** इस प्रकार दुःख को दिया जानेवाला सत्कार (आव-भगत) और सुख के प्रति नफ़रत कर्मराज की पकड़ से छूटने का उपाय है । चोपड़ा पूरा साफ (चुकता) न हो जाय

तबतक चैन से बैठने जैसा नहीं है । क्योंकि कर्मराज के नियम (कायदे) सदा के लिए सावधान है । उसके हाथों से बचकर जो लहने की वसूली करता है और फिर मस्ती से सुख भोगने लगे तो फिर वापस क़र्ज़दार बन जाता है । अतः क़र्ज़े से मुक्त होने के बाद फिर पुनः क़र्ज़दार न बनना हो तो कर्म के लहने को उदारता से जाने देने के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं है ।

ये कर्मराजा बहुत ही क्रूरता से भरी मुत्सद्दी (राजनीति) से अपना शासन चलाता है । कर्म की चालबाजी बहुत कुटिल है । संसार के जीवों को हैरान-परेशान करने के लिए चालबाजी से अपने वश में रखा है । कर्मराजा ने ऐसा तो मायाजाल रचा है कि उसकी भयानकता को समझना बहुत मुश्किल है । वीर भगवान के शासन को प्राप्त आत्मा इस कर्म की भयानकता तो समझ सकता है । इस बिछी जाल को पकड़ना निर्बल और कायर मनुष्य का काम नहीं है । फिर उस जाल को तो तोड़-फोड़ कर नष्ट करने की ताकत तो कहाँ से होगी ? कर्मराजा ने जीव को उस मुसीबत में किस प्रकार फँसाया ? उसने कैसी चालबाजी की है ? उसे समझने के लिए हमारा विषय है 'कर्म की करामात ।' कर्म की करामात अलौकिक है, कर्म की करामात तो अनेक हैं, परन्तु उनमें से चार करामात प्रमुख है । करामात यानी प्रवीणता, चतुराई (चातुर्य) ।

❑ कर्म की पहली करामात :

(१) **"कर्म की पहली करामात यह है कि संसार में विवेकवाले समझदार किसी भी जीव को सदैव के लिए दुःख नहीं दिया है ।"** जीव ने अधम पाप-कृत्य किये हो, हिंसा के तांडव रचे हो, क्रूर-कर्म किये हो, ऐसे जीव को कर्मराजा ने सातवें नरक में भेजा । सात में से संभवतः दूसरा कोई भी नरक हो, सातवें नरक की जघन्य स्थिति २२ सागरोपम की ओर उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की, जहाँ सूर्य-चन्द्र नहीं है, ट्युबलाइट नहीं है । यहाँ घने जंगल में जैसा अन्धकार हो, अमावस्या की रात का घनघोर अन्धकार हो, ये सारे अन्धकारों से भी भयानक अन्धकार सातवें नरक में हो या जिसका वर्णन करना असम्भव है । उस अन्धकार के आगे यहाँ का अन्धकार तो कुछ नहीं है । वह अन्धकार नारकी के जीवों के लिए पीड़ादायक बनता है । परस्पर सभी नारकी भयानक दुःख भुगतते हैं । ऐसे दुःख में ३३ सागरोपम का समय बिताना पड़ेगा । ३३ सागरोपम कोई छोटा समय नहीं है अपितु लम्बा समय है । मान लीजिए कि आप की सौ वर्ष की ज़िन्दगी में एक दशक दुःख का आ जाय, व्यापार-धन्धे में घाटा आये । समय इतना बुरा हो कि एक सप्ताह के भोजन के भी लाले पड़ जाय, बच्चों को पढ़ाना

मुश्किल हो जाय, खाने-पीने के लाले पड़ जाय, तब जीव को कितनी पीड़ा हो जाती है ? 'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?' ऐसा मन में लगता है । इतने दिनों में यदि हम परेशान हो जाते हैं तो फिर सातवें नरक में ३३ सागरोपम तक दुःख कैसे भुगते होंगे ? ऐसे दुःख भी जीव ने भुगते हैं ।

कर्मराजा ने जीव को सातवें नरक में धकेल दिया, परन्तु साथ में करामात कैसी की है ? जीव को वहाँ सदा के लिए न रखा बल्कि वहाँ से उठाकर सीधा फेंका तिर्यच गति में । मनुष्य-योनि में क्यों न रखा ? सातवें नर्क का निकला जीव तिर्यच हो, वह मनुष्य होता नहीं है । तिर्यच गति में धकेला गया इतना ही नहीं मगर उस गति में जाने के बाद नरक गति में जीव ने कैसी रौरव वेदना सही, कैसे दुःख सहे, कैसी भयानक यातनाएँ सही - ये सब कुछ जीव को भुला दिया । दुःखों की हल्की सी रेखा भी याद नहीं आती है । कर्मराजा ने जन्मों को तो बदल दिया अपितु साथ साथ उन जन्मों की विस्मृति ऐसी करवा दी कि वे जीव नरक के दुःखों से सदा के लिए मुक्त होने के प्रयास भी न कर सके । तिर्यच के भव में सातवें नरक में जो दुःख सहे हैं उसकी ही राशि याद आती तो वो आत्मा जरूर उस पाप से वापस लौट गया होता । परन्तु कर्म ने जीव को वो सब भुलवा दिया। उसे नरक की रौरव वेदना, पीडा, मारकूट, छेदन, भेदन सब कुछ उसे नज़र के सामने दिखे तो नरक मे ले जानेवाले पाप जीव फिर कभी - कैसी परिस्थिति में भी न करता । परन्तु वे पाप न दिखते हैं न याद आते हैं, अतः पुनः नरक में जाने योग्य कर्म जीव करता है और नरक में फेंक दिया जाता है । चार गति में जीव को चक्र की तरह फिराने और पाँचवीं गति में न जाने देने और उसके पंजे से न छटकने के लिए जीव को सब कुछ भुला देता है ।

जहाँ जीवों में समझदारी नहीं है, ज्ञान नहीं है, विवेक नहीं है - ऐसे पाँच स्थावर में जीव गया । नरक-निगोद में गया । नरक से अधिक दुःख निगोद में हैं । एक श्वासोच्छ्वास जितने समय में जीव १७॥ भव (जन्म) पूरे करता है और एक अंतःमुहूर्त में उत्कृष्ट ६५५३६ जन्म करता है, अर्थात् अनेक बार जन्म लेता है और अनेक बार मरता है । इन जीवों की कैसी करुणता ? कर्मराजा ने इन जीवों को अनन्तकाल के दुःख दिये । नरक और निगोद के दुःखों की तुलना की जाय तो कुछ बातों में निगोद का दुःख बढ़ जाता है । (१) नरक गति में जीव अधिक रहता है तो सप्तमी नरक में ३३ सागरोपम तक (असंख्यात (अनगिनत) काल) जब निगोद में जीव अनन्तकाल रहता है । (२) नरक में जीवों को शरीर अलग अलग होता है, वहाँ संकीर्णता नहीं है । जबकि निगोद में एक शरीर में अनन्तों जीव होते हैं, अतः वहाँ बहुत संकीर्णता (गीचता) होती है । (३) नारकी की पाँच इन्द्रियाँ

होती है और निगोद को एक स्पर्शेन्द्रिय होती है । (४) नारकी संज्ञी है, उसे मन होता है, जबकि निगोद असंज्ञी है, उसे मन नहीं होता है । (५) नारकी के जीव समकिती भी हो सकते हैं, वहाँ समकित पाने के संयोग (अवसर) भी है जबकि निगोद के जीव एकान्त मिथ्यात्वी होते हैं । समकित प्राप्त होने के कोई अवसर वहाँ नहीं है । (६) नरक के किसी जीव को देव सहायता करते हैं, निगोद के जीवों की सहायता करनेवाला कोई नहीं है । कर्मराजा की क्रूर से क्रूर मज़ाक का अनुभव उस निगोद में होता है । ऐसे निगोद में अनन्तोकाल तक रखा गया ।

एकेन्द्रिय में भी कर्मो ने जीव को कैसी हालत की है ? पृथ्वीकाय में गये तो कभी पत्थर से मारे गये, तो कभी आग से जल गये, कभी वायु ने मारा तो कभी जलद पानी ने ख़त्म किया, आत्म के रूप में जन्म लिया तो निचोड़े गये, बबूल के पेड़ के रूप में जन्म लिया तो हँसिये से काटे गये, हरियाली (हरी) सब्ज़ी के रूप में जन्म लिया तो छुरी से काटे गये, मोसंबी के रूप में जन्म लिया तो मशीन (यंत्र) से पीसे गये, सेव हुए तो चाकू से काटे गये । इस प्रकार पृथ्वी, पानी, तेऊ, वाऊ, वनस्पति आदि में अनगिनत काल तक रखने के बाद जीव बेइन्द्रिय । तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय में गया । मकोड़े-खटमल के रूप में जन्म लिया तो आप के गद्दे के नीचे दबकर मर गये । मकोड़ा आप के पाँव पर चिपक गया, वह मर न जाय इस प्रकार उसे उखाड़ने के प्रयास किये, फिर भी नहीं उखडा़ तो क्या आप उसे खून पीने देंगे ? अपनी जान के बदले में उसे बचाएँगे क्या ? हम कुमारपालराजा जैसे नहीं है । उनके पाँव में मकोड़ा चढ़ गया और चिपक गया । किसी प्रकार भी जब न उखड़ा तो आसपास की चमड़ी काट डाली । चमड़ी के साथ मकोड़े को नीचे रख दिया । इसीका नाम है धर्म । मकोड़ा बनने पर इस प्रकार से मरा । कहीं गुड की जेली के नीचे दब मरा । तिर्यच पंचेन्द्रिय में गया तो वहाँ कितनी यातनाएँ सही ? भूँड़ के अवतार में पकाया गया, काटा गया, कबूतर के अवतार में बिल्ली के मुख में चबाया गया, बिल्ली के रूप में जोड़ियों का शिकार हुआ । फिर बाघ-सिंह के जबड़े में चबाया गया । बैल बना तो लकड़ी का मार खाया - इस प्रकार तिर्यच गति में जीव ने कितने सारे दुःख सहे ?

'कैसे कैसे जुल्म सहे, जानवर बनकर, स्वामी एक ही जाने मेरी आत्मा आत्मा
रोज और अप्रियों के हाथों मार खायी, बहती थी आंसुओं धारा मेरी आँख में ।'

"तिर्यच गति में कर्मो ने जीव को कितना परेशान किया ? फिर भी दूसरे भव में जाने पर पूर्वजन्म के दुःखों का जरा भी स्मरण होता नहीं है । वहाँ से देवगति में गया । आप को लगेगा कि देवगति यानी सुख की गति । आप इतना याद रखिएगा कि देव मरकर देव नहीं होगा और देव मरकर नारकी न होगा । इस

प्रकार नारकी मरकर नारकी नहीं होगा और नारकी मरकर देव नहीं होगा । नारकी-और देव दोनों को त्रिर्छालोक में आना पड़ता है । उन्हें ये स्टेशन तो लेना पड़ता है । देव असंतोष और ईर्ष्या की आग में सेंके जा रहे हैं । मिला है उसमें सन्तोष नहीं है और नहीं मिला है उसे प्राप्त करने की लालसा की कोई सीमा नहीं है । देवगति से कर्म के आधीन मनुष्य गति में गया । मनुष्य में कोई लंगड़ा हुआ, कोई अन्धा, बहरा, तुतला हुआ, यह सब कुछ किस कर्म से मिला ? मैं इतनी सारी मेहनत करता हूँ फिर भी मुझे पैसे क्यों नहीं मिलते ? मैं गरीब क्यों रहता हूँ ? अनेक बेचारे (लोग) टुकड़ा रोटी के लिए घर-धर भीख माँगते हैं । यह सब किस कारण होता है ? यदि उसे (अपने) भूतकाल में किये कर्मो की याद आ जाय कि मैंने ऐसे कुकर्म किये थे इसलिए लंगड़ा, अन्धा, गरीब हुआ हूँ, तो फिर पुनः वह जीव उन कुकर्मों को हाथ नहीं लगायेगा । कर्म की यह करामात है कि मेरे पंजे में से शिकार छूट जायेगा तो ? इसलिए उसने पूर्वजन्म की सारी बातें भूला दी । इन कर्मों ने आत्मा के सर्वनाश में कुछ शेष नहीं रखा । इस कर्म की करामात कबतक ? जबतक जीव देवाधिदेव भगवान की शरण में गया नहीं, जैनधर्म की श्रद्धा पैदा हुई नहीं । या जप-तप किये नहीं, तबतक कर्म उस पर हमले करेगा, परन्तु भगवान की शरण में गया तो मान लीजिए कि जीवन में धर्म आया, फिर वह आत्मा कर्मो के सामने टकरायेगी । कर्मराजा की यह पहली करामात की किसी भी स्थान में वह जीव को सदा के लिए रखता नहीं है और उसके पूर्वजन्म में स्वयं द्वारा भोगे गये दुःखों को भूला देता है.।

❑ **कर्म की दूसरी करामात :**

(२) "कर्म की दूसरी करामात यह है कि कर्म ने इस जगत के जीवों को दुःख तो दिया मगर साथ में करामात यह भी की कि उन दुःखों को बीच में ऐसा अल्प सुख दिया कि जीव उन दुःखों को भूल जाता मगर सुख को न भूलता ।"

जैसे कि मनुष्यभव में जन्म हुआ, परन्तु जन्म के साथ रोगी हुआ अथवा जन्म से ही रोग लेकर पैदा हुआ । परन्तु धनवान के घर जन्मा तो वह यह मानेगा कि मैं रोगी भले ही होऊँ, परन्तु पैसे तो है न ? कर्म ने किसी को भिखारी बनाया, परन्तु साथ में उसे कंठ्यकला ऐसी सुन्दर दी कि उसके मधुर गीत लोग सुनते ही रहते, अतः वह मन से मानता कि चाहे मैं गरीब हूँ, परन्तु मुझे कंठ (आवाज़) जो अच्छा मिला है न ! किसी मनुष्य को कर्म के अधीन कुवड़ा बनाया, परन्तु उसे बुद्धि ऐसी दी कि जिससे वह यह माने कि चाहे मैं कुवड़ा हूँ परन्तु मुझे बुद्धि तो मिली है न ! अष्टावक्रजी के आठों अंग टेढ़े थे फिर भी ज्ञान कितना था ?

किसी को कर्म ने कुरूप बनाया फिर भी काम करने की अद्‌भुत कला दी । किसी को रहने के लिए टूटा-फूटा झोंपड़ा दिया, परन्तु साथ में ताकत इतनी ज़ोरदार दी कि जिससे वह मानने लगा कि मुझे झोंपड़ी भले ही दी हो मगर मेरी बाहु में कमाने की ताकत है, इसलिए मेहनत कर कल मैं कमाऊँगा और सुखी होऊँगा । इस प्रकार दुःख में भी सुख का बुंद दिया, इसलिए वह दुःख को भूलता गया । इस प्रकार सुख की चिनगारी में जीव फँस जाता तो फिर बाहर निकल सकता नहीं था । कर्म की इस चालबाजी को जीव पकड़ सकते नहीं है । जैसे कुत्ता टुकड़ा रोटी की लालच में जाता है, वहाँ उसे डंडे के मार खाने पड़ते हैं, परन्तु अगर रोटी का टुकड़ा मिल जाने पर उस मार को भूल जाता है, वैसे ही इस संसार में जीव कर्म द्वारा फेंके गए अल्प सुख की रोटी के टुकड़े देखकर लकड़ी के मार जैसे दुःखों को भूल जाता है, इसलिए कर्मो का विजय डंका बजता है ।

❑ कर्म की तिसरी करामात :

(३) **"कर्म की तीसरी करामात यह है कि इस संसार के किसी भी जीव को कहीं (कभी) चैन से बैठनें देता नहीं है ।"** कर्मराजा जीवों को किसी भी स्थान में स्थिर रखते नहीं हैं । सिद्ध गति के जीवों के आगे उसकी करामात चलती नहीं है । नहीं तो कर्म जीव को चार गति में चक्कर कटवाता है, परन्तु किसी स्थान पर स्थिर होने देता नहीं है । भगवान ने 'सूयगडांग सूत्र' में फरमाया है कि -

ठाणी विविह ठाणाणि, चइस्संति ण संसओ ।
अणियते अयं वासे, णायएहि सुहीहि य ॥ - अ.-८, गा.-१२

"देवलोक के इन्द्र तथा सामानिक देव आदि उच्च स्थानवाले तथा मनुष्यों में चक्रवर्ती तथा बलदेव, वासुदेव, महामाण्डलिक राजा आदि उच्च पद पर स्थित, भोग (भौतिक) भूमि में स्थित युगल तथा साधारण मनुष्य, तिर्यच आदि को अपने-अपने स्थान एक दिन त्यागने पड़ते है, अर्थात् मृत्यु की शरण में जाकर परलोक में जाना पड़ता हैं, उसमें लेशमात्र संशय नहीं है । वैसे ही सांसारिक-सुख तथा स्वजनों का सहवास भी अनित्य है ।

कर्म की तीसरी करामात यह है कि चाहे अनुत्तर विमान (हवाई जहाज) के देव हो या सप्तमी नरक के नारकी हो, निगोद की अनन्तकालीन कोठरी हो या फिर विगलेन्द्रिय के भव हो, एकेन्द्रिय हो या पंचेन्द्रिय हो, किसी भी जीव को स्थिर बैठने देता नहीं है । प्रत्येक को अपना स्थान छुड़वाकर चैन की साँस

है । परिणामतः जीव को दूसरी (योनि) में जाने के अपना जीवन निभाने के लिए नये सिरे (अत) से सारी मेहनत करनी पड़ती है । शुभकर्म ने उस भव में उसे संसार के अल्प सुख दिये, इसलिए अशुभकर्म द्वारा सर्जित घोर भयानक निंदा को भूल जाता है ।

❑ **कर्म की चौथी करामात :**

(४) "कर्म की चौथी करामात यह है कि जिसने उसकी शरण स्वीकारी उसे सदा के लिए दबाकर रखा और उसके सामने सिर उठानेवाले को सदा के लिए मुक्त कर दिया ।" चार गति में से किसी भी गति के जीवों ने यदि कर्मराजा की शरण स्वीकारी उसके अधीन रहे, उन जीवों को सदा के लिए दबा हुआ रखा है और जिन जीवों ने उसकी शरण को नहीं स्वीकारा, उसके वश में नहीं हुए, उसके सामने सिर उठाया वे सभी उसके पंजे से सदा के लिए मुक्त बन गए । यह है कर्म की चौथी करामात । कर्म की करामात से छूटना कठिन है ।

'कोई तो सुलझाओ उलझन, जिस की गिरे न कोड़ी भी,
हे... ऐसी मिट्टी जैसी चढ़ती चाक पर, मिट्टी कहाँ मिटती है, कोई तो...
सब का सृजन होता कर्म चाक में, फेंक कर गोल पिंड
कोई बनता राय, कोई रंज, कोई छुआ-छुत की जाति ।
हे... नाम-कार्य को गाँव में लाकर, सब की रंगती सूरत.. कोई तो...'

महापुरुष कहते हैं - "सारी गुत्थियाँ सुलझायी जा सकती है मगर कर्मों की गुत्थियाँ सुलझाना मुश्किल है । कर्मराजा लहना दे जाता है और सुखों को लात मारकर फेंक दे तो उसके पासे पार नहीं लग सकते हैं । उन सुखों में यदि फँस गये तो उसके कर्ज़दार बनना पड़ता है । इन कर्मों ने अभी तक जीव की हानि ही की है । अनादि-अनन्तकाल से इस संसार की दुर्गतिरूपी गलियों में जीव को भटकाया है और अनेक दुःख दिये हैं, परन्तु अब उसका नष्ट होना तय है । कौन से दिन ? वीर-प्रभु का विराट शासन और सत्य मार्ग समझानेवाले वीतरागी संत मिल गये हैं । उनकी शरण में जाकर कर्मों का नाश किये बिना कोई उपाय नहीं है । चाहे भले ही अभी सागर जितने दुःखों में सुख का एक बूँद देकर दुःख की और दृष्टि करने दे नहीं है, परन्तु अब इस शासन को पाकर दृष्टि को बदलने की आवश्यकता है । महापुरुषों ने उस कर्मसत्ता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए जो पराक्रम किये हैं, ऐसे पराक्रम कर कर्मसत्ता के सामने सिर उठाकर उसका नाश करना है । अरे ! चरमशरीरी मोक्षगामी जीव तथा दूसरे महान पुरुषों को भी परेशान करने के लिए कर्मसत्ता ने प्रयास करने में कोई कसर छोड़ी नहीं है ।

सनत्कुमार चक्रवर्ती को कर्मों के कारण स्वरूप तो अद्भुत दिया कि जिस की प्रशंसा देव-लोक में हुई, परन्तु कर्म के साथ यह करामात की कि ऐसी सुन्दर काया में महा भयानक सोलह रोग पैदा कर दिये, मगर सनत्कुमार चक्री कर्म की करामात में फँसे नहीं । उन रोगों के कारण शरीर की अनित्यता समझने पर उनकी आत्मा जाग उठी । उन्होंने सोचा कि 'इस कर्मसत्ता ने उसके पंजे में फँसाने के लिए मेरे सामने जाल बिछाया, परन्तु मैं उसके पंजे में फँसनेवाला नहीं हूँ ।' आप को गले में थोड़ा दुःखता है । डॉक्टर को बताने पर उन्होंने कहा कि-"आप टाटा में दिखाइए" तो आप के होंश उड जायेंगे । यहाँ तो चक्रवर्ती को सोलह बड़े रोग हुए हैं । कर्म ने बहुत बड़ी जाल फेंकी, परन्तु हे कर्मसत्ता ! मैं तेरी पकड़ में आनेवाला नहीं हूँ । उस जाल को फेंककर उन्होंने साधुत्व ग्रहण किया और ७०० वर्षों तक मासखमण के द्वार पर मासखमण कर कर्म के कर्ज चुकाने लगे । कर्म-राजा को ईर्ष्या हुई कि क्या अब इसका खाता ख़त्म हो जायेगा ? सनत्कुमार को रोग से मुक्ति दिलाने देवों को स्वयं वैद्य के रूप में धरती पर आना पड़ा । आप देव को प्रसन्न करने के लिए कितनी माला जपते हो ! आप यही सोचेंगे कि 'यदि एक बार देव प्रसन्न हो जाय और मुझसे कहे कि तेरा घर धन से भर जायेगा तो खुश ।' क्या जीवों की भिखारी वृत्ति !

तृष्णा का तरंग और सोना का रंग

आप के जैसा एक बनिया था । उसकी पैसे की भूख मिटती नहीं थी । उस भूख को मिटाने के लिए संतों के पास जाता । संत समझ जाते कि यह असन्तोष का रोगी है । सच्चे संत तो ऐसी बातें कभी सुनते ही नहीं है । संत ने उसे कह दिया कि-"तुम मेरे पास किसी आशा से मत बैठना । यह संतों का काम नहीं है ।" वह बनिया भटकता हुआ जंगल में गया । वहाँ वृक्ष के नीचे एक मस्तराम सन्यासी ध्यान लगाकर बैठे थे । संत ने देखा कि यह भिखारी आ रहा है । थोड़ी देर बाद संत ने आँखों खोली । बनिया झुक-झुककर पाँव छुने लगा । संत ने कहा - "भाई ! तुम भूखे लग रहे हो । तुम्हें किस की भूख है ? तुम जो चाहोगे मैं तुम्हें दुँगा ।" बनिये ने कहा - "अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं इतना माँगता हूँ कि जिसे मेरा हाथ छू ले वह सब सोना बन जाय ।" सन्यासी ने कहा - "तथास्तु ।" बनिया तो खुश-खुश होता हुआ घर चला गया ।

❑ **सोना क्या सच्चा सुख देगा ? :**

यह बनिया खुश होता हुआ घर गया । मन चाहा वरदान मिलने पर वह इतना खुश था कि जाकर जैसे ही घर के द्वार को छुआ कि द्वार सोने के बन

सोफे को छुआ तो वह भी सोने का । बनिये को लगा कि 'संत की शक्ति अलौकिक है । उनका वरदान सफल हुआ है ।' फिर भोजन करने बैठा । थाली में दाल-चावल-रोटी-सब्जी आदि परोसा गया । परन्तु यह क्या ? उसने जैसे ही रोटी हाथ में ली तो यह सोने की बन गयी । दाल-चावल-सब्जी सब सोने के बन गये । अब भूख कैसे मिटायी जाय ? अब क्या करता ? पानी का ग्लास हाथ में लिया तो वह भी सोने का बन गया । बनिये ने पत्नी से कहा - "तू मुझे ग्लास में दूध दे । मैं दूध को हाथ से छुऊँगा नहीं ।" परन्तु दूध पीते समय जीभ को तो छुएगा न ? दूध का ग्लास लिया, परन्तु वह भी छुने पर सोने का बन गया । कॉलेज से लड़का पढ़कर आया । प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरा तो यह क्या ! बनिये का लड़का भी सोना बनकर गिर गया । पत्नी ने पूछा - "आप कहाँ गये थे ? जो ऐसा माँग लाये ?" अब बनिये को सोना अच्छा लगेगा या बुरा ? लड़के को जमीन पर गिरा देखकर माता-पिता रोने लगे । अब क्या करें ? पत्नी सेठ को जब कोई चीज़ देने जाती तो स्पर्श तो होगा ही ? पत्नी भी सोने की बन गयी । अब सेठ अकेले पड़ गये । अब सोना मिलने का आनन्द रहेगा क्या ? सेठ परेशान हो गये । अब क्या किया जाय ? मैं खा-पी सकता नहीं हूँ । कपड़े भी दूसरे बदल सकता नहीं हूँ । आखिर थककर बनिया संत के पास गया । संत पहलेवाली जगह पर नहीं थे । वे थोड़े दूर बैठे थे । वे उन्हें मालूम था कि यह बनिया वरदान माँगकर गया तो है अगर यहाँ आयेगा ज़रूर । बनिया संत को खोजता हुआ वहाँ आ पहुँचा । पैरों में गिरकर संत से कहने लगा - "गुरुदेव ! आप अपनी शक्ति वापस ले लीजिए । मैं तो दुःखी-दुःखी हो गया हूँ ।" बहुत गिड़गिड़ाने पर संत ने वरदानवाली सारी शक्ति वापस ले ली और कहा - "जा, अब तुम्हारा घर पहले के समान हो जायेगा ।" लालची मनुष्य की तृष्णा कैसी होती है ?

सुवण्ण रुप्पस्स उपव्वया भवे, सिया हु केलास समा असंखया ।
नरस्स लुध्धस्स न ते हिं किंचि, ईच्छा उ आगास समा अणंतिया ।।

- उत्त. सू., अ.-९, गा.-४८

लालची को पर्वत जितने विशाल सोने के ढ़ेर दिये जाय तब भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती । क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है । अब वह लालची सोना माँगता क्या ?

सनत्कुमार महर्षि का रोग़ दूर करने हेतु स्वयं देवों को वैद्य का रूप धारण कर आने पर भी रोग़ दूर न हुआ । हँसते मुख से उस रोग़ को सहा तो मोक्ष मिला ।

कर्मों ने उन पर अनेक हमले भी किये, परन्तु वे कर्म महर्षि को अपनी जाल में फँसा नहीं सके ।

ज्ञानी समझाते हैं कि-''कर्म की करामात जीव को अपने पूर्वजन्मों की बाते याद आने देते नहीं है । मान लीजिए कि पुण्योदय से जीव को अपार संपत्ति मिली हो और उसे अपने पूर्वजन्म से सुकृत्य दिखते हो कि-'मैंने ऐसे सुकर्म किये हैं इसलिए लक्ष्मी मिली है ।' तो वह इस जन्म में दान-पुण्य के बारे में सोचेगा । क्योंकि वह समझता है कि मैंने यहि दान-पुण्य नहीं किया तो फिर बाद में क्या ? ऐसे मनुष्य को अभिमान कभी छू भी सकता नहीं है । व्यसनों का गुलाभ नहीं बनेगा । उसे गरीबों के प्रति हमदर्दी होगी, घर के नोकरों के प्रति वात्सल्य भाव ही रखेगा ।

एक बार एक भाई आकर संत के सामने बहुत रोया । संत ने पूछा - ''भाई ! क्या हुआ है ?'' ''गुरुजी ! मैं क्या बात कहूँ ?'' उसने अपने जीवन की कहानी कह सुनायी । ''मैं एक सेठ के घर नौकरी करता हूँ । उस सेठ के जितने गुणगान करूँ कम है । वे सब को अपना मानते हैं । उस सेठ के चार बेटे थे । सब साथ में काम करते थे । धन्धा बहुत अच्छा चलता था और सब में संप, प्रेम भी खुब था । सेठ की साड़ी की दुकान थी । एक दिन मैंने साड़ी की चोरी की, यह दृश्य सेठ के बड़े लड़के ने देख लिया । चारों भाइयों ने दोपहर को भोजन करते समय साड़ी की चोरी की बात कर रहे थे । आज जाँच की जायेगी । बड़े सेठ ने अर्थात् उन चारों लड़कों के पिता ने यह बात सुन ली । उन्होंने पूछा - ''बेटे ! क्या हुआ है ?'' ''पिताजी ! इस नौकर ने एक साड़ी की चोरी की है, इसलिए हम सब शाम को उसकी जाँच लेनेवाले हैं ।'' सेठ ने कहा - ''आप लोग उसकी जाँच मत लेना ।'' ''पिताजी ! हम उसे सीधा कर देंगे ।'' सेठ ने कहा - ''मैं सब से बड़ा हूँ और जबतक मैं बैठा हूँ तबतक तुम्हें ये सब करने की आवश्यकता नहीं है । मैं शाम को दुकान पर आऊँगा ।'' ''पिताजी ! आप मत आइएगा । आप समझते नहीं है ।'' सेठ ने कहा - ''तो क्या तुम लोग सब कुछ समझते हो ? हम में बड़ा कौन है ? तुम या मैं ? तुम लोग तो ३०-४० वर्ष के हो, परन्तु मैं तो ८० वर्ष का हूँ । मैं शाम को दुकान पर आऊँ नहीं तबतक तुम लोग कुछ मत करना ।''

❑ तुम्हें चाहिए चार आंकड़े और नौकर को तीन आंकड़े ? :

नौकर को पता चल गया कि साड़ी की चोरी के कारण उसकी जॉच-पड़ताल होनेवाली है । वह बहुत डर गया । मुझे नौकरी से हाथ तो नहीं धोना पड़ेगा न ? शाम को सेठ तथा चारों लड़के मिले, सेठ ने वड़े लड़के से पृछा

"तुम एक महीने में कितने रुपये उठाते (लेते) हो ?" "२५०० रुपये ।" दूसरे ने २२०० रुपये, तीसरे ने २००० रुपये और चौथे ने रुपये १५०० बताये । सेठ ने पूछा – "और इन नौकरों की कितनी आमदनी है ?" "किसी के ४००, किसी के ३०० तो किसी के २०० रुपये है ।" "बच्चों ! अब सोचिए । आप में से एक भी भाई का खर्च चार आंकड़ों से कम नहीं है और इन नौकरों में से एक भी नौकर की आमदनी तीन आंकड़ों से अधिक नहीं है । क्या आपको पीने के दूध चाहिए तो उस नौकर के बच्चों को दूध नहीं चाहिए ? तुम्हें बच्चों को पढ़ाने के लिए पैसे चाहिए, फीस भरने के लिए भी चाहिए, तो क्या उसके बच्चों के लिए नहीं चाहिए ? आप सब तो मिष्टान्न खाते हो, फिर उसे क्या दाल-रोटी भी नहीं चाहिए ? आप लोगों का जब २५०० रु. में काम पूरा होता नहीं है, तो उसका २५० रु. में क्या कैसे होगा ? क्या उन लोगों के पेट नहीं है ? परिवार नहीं है ? महँगाई नहीं है ? बीमारी नहीं है ? तुम्हारे जैसी सारी समस्याएँ उन्हें भी है, फिर आमदनी के स्तर में इतना भेदभाव क्यों है ? क्या धन्धे में नफा कम होता है ?" "नहीं...नहीं... ।" "एक वर्ष में चार-पाँच लाख रुपयों का नफा होता है, फिर भी नौकरों को पूरी आमदनी भी दी नहीं जाती, फिर ये नौकर चोरी नहीं करते तो क्या करते ? इतनी कम आमदनी देते हो और फिर चोरी करते हुए पकड़े जाए तो जाँच-पड़ताल की बात करते हो ? आप को शर्म नहीं आती ? अपराधी नौकर नहीं, आप हो ।"

❑ सेठ की उदारता : नौकर की सत्यता :

सेठ की बात सुनकर सभी स्तब्ध हो गये । कोई बोल पाता नहीं है । अन्त में बड़े लड़के ने कहा – "पिताजी ! आपकी बात सही है । हम केवल अपने ही सुख का विचार करते हैं, दूसरों का नहीं ।" "आप अभी इन सभी नौकरों को दो-दो महीनों को बोनस दे दीजिए और प्रत्येक नौकर की आमदनी में ५०-१०० रु. बढ़ा दीजिए ।" साथ में यह भी तय कीजिए कि दुकान के किसी भी नौकर के घर में बीमारी आये तो सारा खर्च दुकान उठायेंगी । यह सारी बातें नौकर ने सुन ली । दौड़ता हुआ आया और सेठ के चरणों में गिरकर चीख-चीख कर रोने लगा । "आप मुझे माफ कर दीजिए । मैं अपनी गलती का स्वीकार करता हूँ । मैंने इसके साथ तीन बार तीन साड़ियों की चोरी की है ।" सेठ ने पूछा – "तुमने यह चोरी क्यों की ?" "घर मेरी पत्नी बीमार है, दवाई के लिए पैसे नहीं थे, पैसे के विना डॉक्टर आने को तैयार नहीं थे । मैं क्या करता ? कहाँ जाता ? मैं वहुत परेशान हो गया था । अत: मुझे चोरी करनी पड़ी ।" सेठ ने

कहा - "देखो बेटे ! सुना न ! हमारे यहाँ नौकरी पर आनेवालों को भरपेट मिलेगा तो वे चोरी नहीं करेंगे । अपनी आवश्यकता की पूर्ति न होने पर उन्हें चोरी करनी पड़ती है । अब तुमने आमदनी बढ़ाकर सबकुछ ठीक ठीक कर दिया है ।" आप भी खुले मन से दान का प्रवाह बहाइए । तप कीजिए, शील पालिए, कुछ न कर सको तो खेर, परन्तु अपने हृदय में सहानुभूति तो होनी ही चाहिए न ! सारे नौकरों को बड़े भाई की आज्ञानुसार दो-दो महीनों का 'बोनस' चुका दिया । आमदनी बढ़ाने का विज्ञापन (जाहिर) कर दिया । तब से आज तक फिर कभी दुकान में चोरी हुई नहीं । इस बात से हमें यह सार ग्रहण करना है कि सज्जन मनुष्य ने चोरी की है, परन्तु वह चोरी किस स्थिति में की हैं यह सोचना बहुत आवश्यक है । जिन नौकरों से आप को काम लेना है, उन नौकरों के हृदय अगर आप जीत सकते न हो तो फिर आप लोकप्रिय कैसे बनेंगे ?

चंदना का चमत्कार

हमारा विषय है कर्म की करामात । हमारी नज़र के सामने अनेक करामात हैं तो दूसरी और उन - करामातों को उल्टा कर डालनेवाले महापुरुषों के पराक्रमी जीव का है । कर्मसत्ता को यह पता नहीं है कि मैं जिन्हें परेशान करता हूँ, दुःख देने के प्रयास करता हूँ, उन प्रयासों में कर्मो का नाश करने के बीज उसमें निहित् है । सनत्कुमार को कर्मो ने रोग़ दिये और उन्हें परेशान करने के प्रयास किये, परन्तु उन्होंने उन रोगों के द्वारा समभाव में रहकर परेशान करने आनेवाले कर्मो का नाश कर डाला । सती चंदनबाला के कर्म ने ऐसी करामात की कि वह राजकुमारी थी फिर भी सरे बाज़ार बेची गयी । सेठ ले गये । मूली सेठानी ने कठिन दुःख दिया, फिर भी चंदना ने कर्म को चुनौती दी । 'हे कर्मराजा ! तुमने मुझे सरे बाज़ार बेचा । यदि बेची न जाती तो मैं क्या यहाँ आती ! देखिए, यहाँ आयी तो मूली सेठानी ने हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डाली, तहख़ाने में डाला गया और अनेक कष्ट दिये । यह सब कुछ होने पर ही शासनपति प्रभु महावीरस्वामी मेरे ऑगन में पधारे और मेरे हाथों दान देने का अवसर आया न !' इस प्रकार उसने कर्म को फटकारा, मगर उसकी जाल में फँसी नहीं, तो भगवान की सबसे पहली शिष्या बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । और ऐसे उग्र (श्रेष्ठ) तपस्वी भगवान को दान वहोराने की धन्य क्षण, धन्य पल मिला । वह तो तहख़ाने में बैठी थी । मन में नवकार मंत्र का स्मरण था । माता मूला सेठानी का उपकार मानती थी - 'हे माता ! तुम्हारी मुझ पर कितनी करुणा है ? अगर तुमने मुझे इस स्थिति में रखा होता तो भगवान को दान देने का लाभ भला कैसे मिलता ?' इसने

ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ • - • ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ ृ .

से सब सुल्टा होते देखा तो प्रभु का अभिग्रह उसके हाथों पूरा हुआ और ३६ हज़ार साध्वियों में सब से प्रमुख (वडेरा पट्ट) शिष्या के रूप में उनका नम्बर लगा। जो कर्म उसे परेशान करने आये थे उसे पुरुषार्थ द्वारा उन कर्मों को खपाकर दिया। उसने कर्मों का संपूर्ण कर्ज़ा चुका दिया, परन्तु लहना (ऋण) लिया नहीं।

आपके व्यवहार में अगर कोई कर्जा चुका दे और लहना न ले, तो भविष्य में यह कोठी उठ जायेगी। ज्ञानी कहते हैं - "तेरी इस संसाररूपी कोठी को उठा देने के लिए मनुष्यजन्म मिला है। अग़र यहाँ चोपड़े के हिसाब पूर्ण हो जाय और लेन-देन बन्द हो जाय तो यह कोठी जल्दी ही समाप्त हो जायेगी।" भौतिक क्षेत्र में लेनदार-देनदार दोनों अपना-अपना हिसाब समझकर हिसाब पूरा करने में आनन्द मानते होते है, क्योंकि साहूकार की यह शान है। ग्राहक बिलकुल बन्द हो जाय यह कर्मराजा को पसन्द नहीं है। इसलिए कर्मराजा की मुत्सद्दीगीरी पहचानकर कोई उसके कर्जे से मुक्त होने के लिए प्रयास करता है त कर्मराजा उसका लहना (ऋण) अदा कर क़र्ज़दार बनाता रहता है, अतः कर्मराजा की और से दिये जाते ऋण से मिलनेवाले सुख से सावधान रहने की आवश्यकता है। आज प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन-रूपी आकाश विपत्तियों-रूपी बादल से रहित हो ऐसा चाहता है, परन्तु तूफ़ान आते हैं तब डर जाता है। परन्तु तूफ़ान के बिना बादल भला कैसे बिखरते ? जीवन का आँगन कर्म के कचरे से ढ़ँककर बदसूरत बन गया। **'अब अगर कर्मराजा की जाल से छूटना हो तो सुख को सलाम मारिए और दुःख में हृदय को जोड़ दीजिए।'**

कर्मराजा ने तो मोक्षगामी जीवों को भी परेशान करने में कुछ शेष रखा नहीं है। छ खण्डों के मालिक भरत चक्रवर्ती को ऋषभकूट पर अपना नाम लिख सके उतनी जगह कर्म ने रिक्त न रखी, परन्तु उस प्रसंग ने भरत चक्रवर्ती के मन में कर्म के प्रति नफ़रत पैदा की। कर्म किसी को छोड़ते नहीं है, जैसी करनी वैसी भरनी।

कर्म द्वारा नचाया गया नाच

❑ वृद्धा की करुण कहानी :

एक वृद्धा (बूढ़िया) कंपती हुई चीख रही थी - "माई-बाप, मुझे एक रोटी दीजिए न ! मैं तीन दिनों से भुखी हूँ। मुझे कुछ तो दीजिए, जिससे मेरे पेट की आग को बुझाऊँ।" इस प्रकार करुण स्वर में चीखती हुई एक होटल के पास आयी। होटल में एक युगल वैठा था। उन्होंने इस वृद्धा को देखा। वे होटल में वैठे वैठे गर्म-गर्म मिठाई खा रहे थे। उन्होंने इस वृद्धा की आवाज़ सुनी।

वे वृद्धा ने कहा - ''आप मुझे एक टुकड़ा तो दीजिए, भगवान आप का भला करेगा ।'' यह वृद्धा बहुत याचना करती है, परन्तु उसे कोई देखता तक नहीं । इस युगल को वृद्धा की आवाज़ परेशानी रूप लगा, उनके हृदय में स्थित (संगृहीत) आग भड़ककर बाहर निकली । गर्म-गर्म चाय से भरे कप-रकाबी उस वृद्धा पर फेंके । गर्म चाय पड़ते ही हाथ में फोड़े हो गये और काँच गाल पर ज़ोर से लगा । ''हाय ! भगवान !'' कहती हुई वृद्धा बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी । वह युगल (प्रेमी) तो गाड़ी में बैठकर चला गया । देखिए, कर्मराजा ने वृद्धा को कैसी सज़ा दी ?

कर्म छोड़ेगा नहीं तुझे किसी काल, जन्म जहाँ धरेगा तु, तुझे वहाँ संभालेगा...
होगा जाना यह सब छोड़कर, स्वजन साथ न कोई तेरे आयेगा...
जायेंगे प्राण तेरे कर्म के सहारे, किये जिस प्रकार, फलीभूत होंगे उसी प्रकार...कर्म...

कर्मराजा की कैसी क्रूरता ! वृद्धा की यह स्थिति (हालत) देखकर एक युवक यहाँ आया । वह भाई जैन नहीं सिन्धी था । वृद्धा को गाड़ी में बिठाकर अस्पताल ले गया । युवक डॉक्टर से कहने लगा - ''डॉक्टर साहब ! आप इस वृद्धा की ट्रीटमेन्ट (चिकित्सा) कीजिए । उन्हें जल्दी ही ठीक हो जाय ।'' डॉक्टर ने वृद्धा की मरहम पट्टी की । वृद्धा बहुत रोती है । सिन्धी भाई ने पूछा - ''माँजी ! आप रोइए मत । आपको ठीक हो जायेगा । आपका लड़का या और कोई ढूँढने आयेगा नहीं, उसे समाचार मिले नहीं तबतक मैं आपका बेटा बनकर रहूँगा । आप घबराइए मत ।'' डॉक्टर और उस युवक ने वृद्धा की खूब सेवा की । मोसंबी का रस आदि लाकर पिलाया । ''माँ ! आपका घर कहाँ है ? आपका कोई सगा-सम्बन्धी हो तो उसे मैं समाचार दूँ । आप मुझे पता दीजिए ।'' वृद्धा ने रोते हुए कहा - ''बेटे ! मेरा ठिकाना उपर आभ और नीचे धरती है । मेरे सगे-सम्बन्धी की तो कोई बात करने जैसी नहीं है ।'' ''क्या आप का लड़का नहीं है ? आप ऐसा क्यों कहती है ?'' ''भाई ! मुझे कर्म ने बचाया-नचाया है ! मेरी क्या बात कहूँ ?''

❑ कल्पेश में कल्पित कल्पना :

छोटी उम्र में मेरा विवाह हुआ था । विवाह के तीसरे ही वर्ष मेरे पति को यमराज ने अपने पास बुला लिया । मेरा एक पुत्र है । उसका नाम है कल्पेश ! मेरे लिए कोई सहारा न था । मायके में भाई सुखी थे, परन्तु भाभी का घर में राज था । फिर भी भाई चुपके-चुपके मुझे सहायता करता था । तब मेरा कल्पेश छ महीने का था । कठोर परिश्रम किया, पेट बाँधकर कल्पेश को बड़ा किया । उसे मैट्रीक तक पढ़ाया । मैट्रीक में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण (पास) हुआ । वह पढ़ने

से सब सुल्टा होते देखा तो प्रभु का अभिग्रह उसके हाथों पूरा हुआ और ३६ हज़ार साध्वियों में सब से प्रमुख (वडेरा पट्ट) शिष्या के रूप में उनका नम्बर लगा । जो कर्म उसे परेशान करने आये थे उसे पुरुषार्थ द्वारा उन कर्मो को खपाकर दिया । उसने कर्मों का संपूर्ण कर्ज़ा चुका दिया, परन्तु लहना (ऋण) लिया नहीं ।

आपके व्यवहार में अगर कोई कर्जा चुका दे और लहना न ले, तो भविष्य में यह कोठी उठ जायेगी । ज्ञानी कहते हैं - "तेरी इस संसाररूपी कोठी को उठा देने के लिए मनुष्यजन्म मिला है । अग़र यहाँ चोपड़े के हिसाब पूर्ण हो जाय और लेन-देन बन्द हो जाय तो यह कोठी जल्दी ही समाप्त हो जायेगी ।" भौतिक क्षेत्र में लेनदार-देनदार दोनों अपना-अपना हिसाब समझकर हिसाब पूरा करने में आनन्द मानते होते है, क्योंकि साहूकार की यह शान है । ग्राहक बिलकुल बन्द हो जाय यह कर्मराजा को पसन्द नहीं है । इसलिए कर्मराजा की मुत्सद्दीगीरी पहचानकर कोई उसके कर्जे से मुक्त होने के लिए प्रयास करता है त कर्मराजा उसका लहना (ऋण) अदा कर क़र्ज़दार बनाता रहता है, अतः कर्मराजा की और से दिये जाते ऋण से मिलनेवाले सुख से सावधान रहने की आवश्यकता है । आज प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन-रूपी आकाश विपत्तियों-रूपी बादल से रहित हो ऐसा चाहता है, परन्तु तूफ़ान आते हैं तब डर जाता है । परन्तु तूफ़ान के बिना बादल भला कैसे बिखरते ? जीवन का आँगन कर्म के कचरे से ढ़ँककर बदसूरत बन गया । **'अब अगर कर्मराजा की जाल से छूटना हो तो सुख को सलाम मारिए और दुःख में हृदय को जोड़ दीजिए ।'**

कर्मराजा ने तो मोक्षगामी जीवों को भी परेशान करने में कुछ शेष रखा नहीं है । छ खण्डों के मालिक भरत चक्रवर्ती को ऋषभकूट पर अपना नाम लिख सके उतनी जगह कर्म ने रिक्त न रखी, परन्तु उस प्रसंग ने भरत चक्रवर्ती के मन में कर्म के प्रति नफ़रत पैदा की । कर्म किसी को छोड़ते नहीं है, जैसी करनी वैसी भरनी ।

कर्म द्वारा नचाया गया नाच

❑ वृद्धा की करुण कहानी :

एक वृद्धा (बूढ़िया) कंपती हुई चीख रही थी - "माई-बाप, मुझे एक रोटी दीजिए न ! मैं तीन दिनों से भुखी हूँ । मुझे कुछ तो दीजिए, जिससे मेरे पेट की आग को वुझाऊँ ।" इस प्रकार करुण स्वर में चीखती हुई एक होटल के पास आयी । होटल में एक युगल वैठा था । उन्होंने इस वृद्धा को देखा । वे होटल में वैठे वैठे गर्म-गर्म मिठाई खा रहे थे । उन्होंने इस वृद्धा की आवाज़ सुनी ।

वे वृद्धा ने कहा - "आप मुझे एक टुकड़ा तो दीजिए, भगवान आप का भला करेगा ।" यह वृद्धा बहुत याचना करती है, परन्तु उसे कोई देखता तक नहीं । इस युगल को वृद्धा की आवाज़ परेशानी रूप लगा, उनके हृदय में स्थित (संगृहीत) आग भड़ककर बाहर निकली । गर्म-गर्म चाय से भरे कप-रकाबी उस वृद्धा पर फेंके । गर्म चाय पड़ते ही हाथ में फोड़े हो गये और काँच गाल पर ज़ोर से लगा । "हाय ! भगवान !" कहती हुई वृद्धा बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी । वह युगल (प्रेमी) तो गाड़ी में बैठकर चला गया । देखिए, कर्मराजा ने वृद्धा को कैसी सज़ा दी ?

कर्म छोड़ेगा नहीं तुझे किसी काल, जन्म जहाँ धरेगा तु, तुझे वहाँ संभालेगा...
होगा जाना यह सब छोड़कर, स्वजन साथ न कोई तेरे आयेगा...
जायेंगे प्राण तेरे कर्म के सहारे, किये जिस प्रकार, फलीभूत होंगे उसी प्रकार...कर्म...

कर्मराजा की कैसी क्रूरता ! वृद्धा की यह स्थिति (हालत) देखकर एक युवक यहाँ आया । वह भाई जैन नहीं सिन्धी था । वृद्धा को गाड़ी में बिठाकर अस्पताल ले गया । युवक डॉक्टर से कहने लगा - "डॉक्टर साहब ! आप इस वृद्धा की ट्रीटमेन्ट (चिकित्सा) कीजिए । उन्हें जल्दी ही ठीक हो जाय ।" डॉक्टर ने वृद्धा की मरहम पट्टी की । वृद्धा बहुत रोती है । सिन्धी भाई ने पूछा - "माँजी ! आप रोइए मत । आपको ठीक हो जायेगा । आपका लड़का या और कोई ढूँढने आयेगा नहीं, उसे समाचार मिले नहीं तबतक मैं आपका बेटा बनकर रहूँगा । आप घबराइए मत ।" डॉक्टर और उस युवक ने वृद्धा की खूब सेवा की । मोसंबी का रस आदि लाकर पिलाया । "माँ ! आपका घर कहाँ है ? आपका कोई सगा-सम्बन्धी हो तो उसे मैं समाचार दूँ । आप मुझे पता दीजिए ।" वृद्धा ने रोते हुए कहा - "बेटे ! मेरा ठिकाना उपर आभ और नीचे धरती है । मेरे सगे-सम्बन्धी की तो कोई बात करने जैसी नहीं है ।" "क्या आप का लड़का नहीं है ? आप ऐसा क्यों कहती है ?" "भाई ! मुझे कर्म ने बचाया-नचाया है ! मेरी क्या बात कहूँ ?"

❑ **कल्पेश में कल्पित कल्पना :**

छोटी उम्र में मेरा विवाह हुआ था । विवाह के तीसरे ही वर्ष मेरे पति को यमराज ने अपने पास बुला लिया । मेरा एक पुत्र है । उसका नाम है कल्पेश ! मेरे लिए कोई सहारा न था । मायके में भाई सुखी थे, परन्तु भाभी का घर में राज था । फिर भी भाई चुपके-चुपके मुझे सहायता करता था । तब मेरा कल्पेश छ महीने का था । कठोर परिश्रम किया, पेट बाँधकर कल्पेश को बड़ा किया । उसे मैट्रीक तक पढ़ाया । मैट्रीक में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण (पास) हुआ । वह पढ़ने

में पहले से पारंगत था । उसकी इच्छा कोलेज करने की थी, मेरी स्थिति ठीक नहीं थी, परन्तु जो कुछ थोड़े गहने वगैरह पड़े थे उसे बेचकर कल्पेश को कोलेज में भेजा । उसे शिष्यवृत्ति (स्कोलरशिप) मिलने लगी । में मैट्रीक तक पढ़ी हूँ । मुझे अपने बेटे को पढ़ाने की बहुत अभिलाषा थी । कल्पेश बी.कोम हो गया । हमारे भाग्योदय से उसे बैंक में अच्छी नौकरी मिल गयी । आमदनी भी अच्छी थी । वह मुझे तो तीर्थ-समान मानता था । मुझे पूछकर ही पानी तक पीता । मैं जो कहती वह वैसा ही करता था, मुझे लगता कि 'हाश ! अब मेरी सभी आशाएँ फलीभूत हुई - दुःख के दिन गये और सुख के दिन आये । कर्मराजा की हमारे पर मेहरबानी हुई ।'

❑ घर से निकाला गया :

बैंक में नौकरी करते करते मेरा कल्पेश एक लड़की से प्रेम में पड़ा । मैंने उसे समझाया कि - 'बेटे ! तेरे लिए तो बहुत अच्छी-अच्छी लड़कियों की बातें आती है,' फिर भी वह नहीं माना और एक सिक्ख कन्या से विवाह कर लिया । हम जैन बनिये हैं । मेरी इच्छा कुलवान कन्या लाने की थी, परन्तु आज के पढ़े-लिखे युवक प्रेम में ऐसे फिसल जाते हैं कि बाद में न कुल देखते हैं न जाति । सिक्ख कन्या कुलवधू बनकर घर में आयी । मुझे ज़रा भी अच्छा लगता न था, फिर भी मैंने कभी भी रोकटोक न की । मैं कुछ बोलती भी नहीं, आचार-विचार का आसमान-जमीन जितना अन्तर । यहाँ तक कि घर में मछली आने लगी जो मुझ से सहा नहीं गया । मैंने एक दिन कहा - 'बेटे ! कल्पेश ! मैं सब कुछ सह लुँगी, परन्तु घर में मच्छी का आना में नहीं सहुँगी ।' अब कल्पेश मेरी बात सुनता ही नहीं । वह पत्नी के कहने में आ गया । कुछ दिनों तक चलाया (सहा) । मैंने कहा - 'बेटे ! जैन माता-पिता का लड़का होकर तू यह क्या कर रहा है ? यह मुझ से नहीं सहा जायेगा ।' 'मम्मी ! आप से अगर सहा नहीं जाता तो आप यहाँ से कहीं चले जाइए ।' जिसके खातिर मैंने अपना जीवन समाप्त कर डाला, पूरा जीवन दाव पर लगा दिया, आज वही लड़का मुझ से ऐसे शब्द बोल रहा है ? कल्पेश की पत्नी रोज़ अपने पति के कान भरती, पेट का बेटा ही जब पराया हुआ, अंग अंगार बना तब रोकर किसे सुनाती ? सुख तो ज़िन्दगी में देखा न था और अब तो आशा भी न थी । वे दोनों बैंक में नौकरी करते और मैं घर में मज़दूरी !

एक दिन दोनों बैंक से घर आये । बहू ने कान भरे होंगे इसलिए सामान्य बात में ही वह उस दिन गुस्सा हो गया और मुझे बाल पकड़कर घसीटता हुआ बाहर ले आया और कहा - 'चली जा यहाँ से । तुझे जहाँ मार्ग मिले वहाँ चली

जा।' कर्मों ने मुझे अपने ही घर से बाहर निकलवाया । भाई ! अब मेरे लिए और क्या शेष रहा है ?'' ऐसा कहती हुई सावन-भादो बरसाने लगी ।

वृद्धा की करुण कहानी सुनकर सिन्धी भाई का हृदय काँप उठा । वह भी रो पड़ा । ''मैं तीन दिन से भूखी-थी । मुझे मालूम नहीं था कि होटल में कौन बैठा है ? इसलिए भीख माँगने चली आयी, तो उसने मुझे खाना तो कुछ दिया नहीं, परन्तु मुझ पर कप-रकाबी का प्रहार किया ।'' ''माँ क्या वे आप का बेटा और बहू थे ? ''नहीं ।'' ''वे कौन थे ?'' ''वह मेरा भतीजा था । बचपन में उसकी माँ मर गयी थी । मैंने उसे सँभालकर बड़ा किया है । मेरे लड़के की तरह उसे रखती थी । वह बड़ा हुआ और कल्पेश की तरह विवाह किया । तब भी मैंने बहुत विरोध किया था । आज मुझे मालूम नहीं था कि वह होटल में बैठे होंगे । नहीं तो मैं माँगती ही नहीं । तीन दिनों से घर से निकली हूँ । कोई काम मिलता नहीं है । भूख का दुःख सहा नहीं जाता था । पेट के खातिर मैंने भीख माँगना स्वीकारा । उस भीख का परिणाम यह आया - भाल में कप-रकाबी का घाव और शरीर पर चाय की वर्षा से चमडी उतर गई ।''

❑ सिन्धी युवक की सहानुभूति :

''माँ ! मैं आपके घर जाकर समाचार दूँ ? बेटे से मिलने जाऊँ ?'' ''नहीं बेटे ! मुझे नहीं जाना है । मेरे कर्म बहुत खराब है । मैंने भगवान महावीरस्वामी की वाणी सुनी है, अब मैं वे दुःख सह सकती हूँ । किसी बार रो लेती हूँ, अन्यथा दुःख को पचाना सिखना है ।'' ''माँ ! मैं आप के बच्चे को समझाऊँगा और उसे माता की सेवा का पाठ सिखाऊँगा ।'' ''बेटे ! उसकी पत्नी ने उसे पूरी तरह पाठ पढ़ा लिया है ।'' वृद्धा को थोड़ा ठीक होने पर छुट्टी देने की थी । सिन्धी युवक को लगा कि उस वृद्ध के लिए एक छोटा-सा मकान ढूँढ लाऊँ कि जिस में वह रह सके । एक छोटा-सा मकान किराये पर रखकर दूसरे दिन वह युवक अस्पताल गया । परन्तु वहाँ जाकर देखा तो वृद्धा मौजूद न थी । वृद्धा मारे ड़र के चली गयी थी । शायद वह सोच रही थी कि मेरे कर्म जहाँ मुझे ले जायेंगे वहाँ जाऊँगी । यह है कर्म का खिताब और कर्म की करामात है ।

'तू है तत्त्व अनामत, समझकर हो सलामत ।
जो समझकर कर्म की करामात, तो मत कर झूठी मरम्मत ॥'

हे आत्मा ! तू एक अनामत तत्त्व है, कर्म की करामात समझकर सलामत बनकर झूठी मरम्मत छोड़ दो ।

महापुरुष कहते हैं - ''कर्म बाँधकर पछताने से अच्छा है कर्म के बन्धन के समय अगर - जीव सँभल जाय तो उदय होने पर क्या फ़िक्र ! कर्म की करामात

समझकर सलामत बनकर झूठी मरम्मत छोड़ दीजिए । वह वृद्धा कही चली गयी । वहाँ उस गाँव में एक संत को देखा । संत कें चरणों में गिरकर बहुत रोयी । संत ने पूछा - ''माँजी ! क्यों रो रही हो ?'' ''मैं बहुत दुःखी हूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे कोई मार्ग सुझता नहीं है ।'' संत ने कर्म की फिलोसोफी (तत्त्वज्ञान) समझायी । उस वृद्धा ने पूर्वजन्म में किसी माँ-बेटे को अलग किये होंगे, किसी में बाधा बनी होगी, उसके फल इस जन्म में भुगत रही है । कर्म के कारण दुःखी तो होना ही पड़ता है । अगर कर्मो की करामात से मुक्त होना है तो कर्मों को दुश्मन मानकर उनको नष्ट कीजिए यही भावना । अधिक अवसर आने पर ।

व्याख्यान - ४

कटुवाणी और लोभ के कटुफल

अनन्तज्ञानी भगवन्त आगमवाणी में हमें फरमाते है कि - ''हे आत्माओं ! अनन्तकाल से इस संसार में परिभ्रमण किया, उसका कारण क्या ? ऐसा कभी विचार किया है ? जीव अपनी भूल के कारण अनन्त-दुःखों को सहता हुआ संसार में भटका । निष्काम निर्जरा करते हुए महान पुण्योदय से यह मनुष्यदेह प्राप्त हुआ है । इस मनुष्यभव में आपको बुद्धि मिली, सुन्दर-स्वस्थ शरीर मिला, धन मिला है तो इसका अर्थ क्या है ?

बुद्धेः फलं तत्त्व विचारणं च, देहस्य सारो व्रत धारणं च ।
अर्थस्य सारो फिल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरो नराणाम् ।।

बुद्धि का फल तत्त्व का चिन्तन करना है, व्रत करना, मनुष्यदेह का सार और सत्त्व है । प्राप्त बुद्धि का फल क्या ? तत्त्व का विचार । इस बुद्धि का उपयोग पाँच इन्द्रिय के विषय और भौतिक-सुख को उपभोग करने में करेंगे तो ज्ञानी की दृष्टि से जीवन गँवाने जैसा है । चाहे जितनी भी मेहनत कीजिए, समय का व्यय कीजिए, फिर भी जैसे मिट्टी पीसने (पेरने) से तेल मिलता नहीं है, पानी को मथने से मक्खन मिलता नहीं है और घास को कूटने से चावल नहीं मिलते । वैसे ही ज्ञानी कहते हैं कि - ''तुम लाखों, करोड़ों या अरबों रुपयों की लेन-देन करते हो, टेलिफोन द्वारा काम चलाते हो और अपनी बुद्धि से बहुत धन प्राप्त करते हो - परन्तु उसकी कोई विशेषता नहीं है । यदि विशेपता हो तो उस बुद्धि के द्वारा तत्त्व का चिन्तन करते हो उसका है । कभी अपनी आत्मा से पृछा है -

विचार करूँ ? बोलिए ! ऐसा होता है ? जिसने जीवन में तत्व ढूँढा, उसने मानो सब कुछ ढूँढा है। उसे यह भी ज्ञान होता जाता है कि इस देह का सार व्रत को धारण करने में ही है। क्योंकि जिसकी दृष्टि खुलती है, उसे ही ऐसा लगता है कि यह माया-ममता में जीवन का सार [illegible] नहीं है। अरे ! यह संसार तो भिन्न-भिन्न गतियों में उत्पन्न जीवों को पीसने का प्रेस है। धनवान-गरीब, वृद्ध-युवक प्रत्येक को इस प्रेस में पिसाना पड़ता है। इसलिए ज्ञानी चुनौती देते हैं कि - "अब तो जागिए !" - *"संबुज्झह किं न बुज्झह !"* भगवान महावीर ने जागृत होने की उद्घोषणा करते हुए कहा है कि - 'हे जीव ! तुम स्व को पहचानो, अपनी अनन्तशक्ति को पहचान, परन्तु अभी तक क्यों नहीं समझते ? आत्मा अनन्त-शक्ति का भण्डार है, कवि की कल्पना है कि - 'जब वह समझ में आ जायेगा और करवट बदलेगा तब पहाड़ काँप उठेगा, हवा थम जायेगी, दिशाएँ काँप उठेंगी, और सूर्य-चंद्र उसका परिभ्रमण रुकवा देगा और संसार की प्रत्येक शक्ति उसके चरणों में होगी।' ऐसी शक्ति आत्मा में है, परन्तु उस भेड़ों के टोले में मिल गये सिंह के बच्चे की तरह, जबतक उसे अपनी शक्ति का ज्ञान न था तबतक भेड़ जैसा बनकर रहा, परन्तु जब उसे अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ, तो गर्जना करते हुए भेड़ों के टोले से भाग निकला। वैसे ही आपको भी भगवान के संत, भगवान की वाणी द्वारा गर्जना कर सतर्क (जागृत) करते हैं - 'हे भव्यजीव ! आप विश्व में सर्वश्रेष्ठ प्राणी हो। देवों को प्रिय हो और अनन्त वीर्यशाली (ताकतवर) हो,
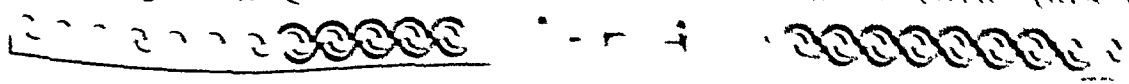
अतः अब स्वरूप की पहचान कर लीजिए ।' स्वरूप की पहचान करने के लिए *'आत्मवत् सर्व भूतेषु'* ऐसी भव्य भावना पैदा कीजिए । दुःख किसी को पसन्द नहीं है । सुख-दुःख पुण्य-पाप के खेल हैं । आज का सुखी मनुष्य पाप के उदय से कभी दुःखी बन जाता है । आप सुखी हो और कोई दुःखी गरीब आपके पास आये, तो आप कुछ दे सको तो अच्छा है, अपितु अगर न दे सको तो दो मीठे शब्द ही बोल दीजिएगा, मगर अनाप-शनाप कटुवचन कहकर किसी से नफरत मत कीजिए । कटुवाणी जीवन में कितना अनर्थ करता है ? इसकी एक कहानी याद आती है ।

सेठ और गरासीया की करुणान्तिका

झालावाड़ के एक गाँव में अनेक राजपूत गरासीया तथा अन्य कोम के लोग रहते थे । गाँव में बनिया का एक घर था । उसका पुण्योदय बहुत प्रबल था इसलिए बहुत सुखी था । गाँव में उसकी अच्छी इज्जत थी । बनिया सुखी था इसलिए गाँव के सभी लोग उन्हें 'सेठ...सेठ...' कहते । उस गाँव में एक गरासीया भी बहुत अमीर था । जमीन-जायदाद भी अच्छी खासी थी । वह एक रजवाडा जैसी शान भोगता था, परन्तु उसे कोई बुरा व्यसन या जुआ खेलने की लत नहीं है । जो लोग जुआ खेलते है उसका घर नष्ट हो जाता है । परन्तु गरासीया को कर्मो के प्रकोप से बाद में जुए की लत लग गयी । उसकी जीवनभर की पूँजी नष्ट हो गयी । घर, पैसे और यहाँ तक पत्नी के आभूषण तक बेचकर जुए में हार गया । अब मात्र एक बीघा जमीन ही शेष रही और गाँव में टूटा-फूटा मिट्टी का एक झोंपड़ा । खाने के भी लाले पड़ने लगे । बहुत नाजुक परिस्थिति आ गयी । तब उसने विचार किया कि-'सेठ के पास जमीन गिरो रख दूँ तो उसके पैसों से घर का पालन-पोषण तो होगा !' उसे अब मन में खूब पछतावा हो रहा था कि 'मैं यदि जुआ नहीं खेला होता तो मेरी यह दशा न होती । एक समय वह राजा के जैसा सुख भोग रहा था और आज यह हालत ! अरे जुए ! तेरे पाप से मेरी यह अवदशा हुई न ?' जब बहुत मुसीबत में आया तब पाँच बीघा जमीन उस सेठ के यहाँ गिरो रख आया और उसमें से जो पैसे मिले उसमें से खाने लगा । परन्तु वह बनिया ऐसा निष्ठुर था कि मनचाहा ब्याज़ लेने लगा ।

सेठ का ब्याज़ भरने में उसकी पाँच बीघा ज़मीन भी साफ हो गयी । अब तो जुआर की रोटी खाना भी नसीब नहीं हो रही थी । हालत बेहद नाजुक हो गयी । उसे चिन्ता होने लगी कि अब क्या करूँगा ? अन्त में वह सेठ के घर नौकरी करने गया । सेठ बहुत घमंडी था । गरासीया से सेठ काफ़ी ज्यादा काम

करवाते थे । गरासीया की कोम स्वाभिमानी होती है । वे किसी के सामने कभी झुकते नहीं है और न ही उल्टा-सूल्टा सुनते हैं । यह गरासीया दुःख के कारण बहुत काम करता है, नम्रता से रहता है । मन ही मन बहुत दुःखी भी होता है कि- 'यदि मैं जुआ न खेलता तो मुझे आज यहाँ गधे की तरह नौकरी न करनी पड़ती ।' कभी आँखों से बड़े आंसू निकल आते । एक दिन अचानक ऐसा काम आ पड़ा कि उसे पैसों की सख्त ज़रूरत पड़ी, अतः सेठ के पास आकर कहा - "मालिक ! आज मुझे कुछ रुपयों की आवश्यकता है । मुझे ११ रुपये दीजिए ना ! मैं और अधिक मज़दूरी कर आपको लौटा दूँगा ।" इस समय सेठ ने ऐसे कटुवचन कहे कि मन ही मन गरासीया जल उठा ।

❑ वचन-कटुवचन का खेल :

भगवान ने कहा - "तू बोल सके तो मात्र मधुर वचन ही बोलना अन्यथा चूप रहना । मगर किसी का कलेजा जल जाय ऐसे वचन मत बोलना ।" आपके पास पैसे हो तो उसका यथाशक्ति दान करना, अन्यथा मत देना । अगर आपके पास ताक़त है, परन्तु हृदय से परिग्रह की ममता छूटती नहीं है, तो मात्र उस दुःखी को आश्वासन के दो मीठे वचन जरूर कहना ।

"मधुर वचन है औषधि, कटुवचन है तीर ।
सवन द्वार वे संचरे, साले सकल शरीर ।।"

मधुर-वाणी औषधि का काम करती है । किसी का दुःख यदि दूर न कर सके तो कुछ नहीं मगर उसे मीठे वचनों से यह तो कह सकते है न कि - "भाई ! दुःख तो सब को आते हैं । यह तो पाप-पुण्य के खेल है । किसलिए ड़रता है ? सदैव समान दिन नहीं जाते । कल तुम्हारे दुःख के दिन चले जायेंगे और सुख के आयेंगे ।" - इतना बोलने पर उस दुःखी को कितनी शान्ति मिलेगी ? सज्जन मनुष्य ऐसी मधुर-वाणी का उच्चारण करता है और दुर्जन तीर समान कटु-वचन बोलता है । उसके बोलने से दुःखी के दुःख में बढ़ावा होता है । अनेक मनुष्यों को ऐसी आदत होती है कि कोई सज्जन यदि गरीबों की सेवा में अपनी संपत्ति का सदुपयोग करता हो तो बीच में जाकर दुर्जन व्यक्ति उस कार्य में बाधा बनता है । 'इतना सबकुछ क्यों देते हो ? अभी जिन्दगी कहाँ खत्म हो गयी है ? अभी सब कुछ दे देंगे तो फिर बुढ़ापे में क्या करोगे ?' इसीका नाम है - **'दाता दान करे और भण्डारी का पेट फूटे ।'**

❑ राजा भोज की प्रधान को सीख :

एक बार राजा भोज गरीबों की सेवा में खुले हाथों दान दे रहे थे, तब प्रधान को लगा कि-'यदि राजा ऐसे ही धन लूटाते जायेंगे तो भण्डार खाली हो जायेगा '

परन्तु राजा को समझाया जाय कैसे ? राजा यदि खुश हो जाय तो ठीक है, नहीं तो रुठने पर मौत की सज़ा भी सुना सकते हैं । अतः बहुत सोचकर प्रधान ने राजा के सिंहासन के सामने दीवार पर लिखा कि - *'आपदार्थ धनं रक्षेत् ।'* - विपत्ति आती है तब धन की आवश्यकता पड़ती है । अतः धन की रक्षा करनी चाहिए । दूसरे दिन राजा सिंहासन पर बैठे कि उनकी नज़र सामने की दीवार पर लिखे वाक्य पर पड़ी । राजा भोज तो बहुत बुद्धिमान थे । वे तुरन्त समझ गये कि यह वाक्य मुझ पर ही लिखा गया है । इसलिए उन्हों ने उसके पास लिखवाया कि - *'भाग्यवानो न कदाचन् ।'* - अर्थात् भाग्यवान को कभी विपत्ति आती नहीं है । तब प्रधान ने फिर से लिखा - *'कदापि कुपितोदैव ।'* - अर्थात् भाग्यवान को विपत्ति आती नहीं है, परन्तु यदि आपका भाग्य कोपायमान होगा तो ? राजा ने पुनः नया वाक्य पढ़ा और पास में लिखवाया - *'संचितोऽपि विनश्यति ।'* यदि भाग्य कोपायमान होगा तो सँभाला हुआ धन भी चला जायेगा । अतः जिसने यह वाक्य लिखे हैं वह मेरे भण्डार खाली हो जाने की चिन्ता कभी मत करे ।

बन्धुओं ! इसीका नाम है दाता । राजा ने प्रधान की आँखें खोल दी । आप ऐसा कभी मत समझना कि पैसे सत्कार्य में खर्च करने से घट जाता है । शुभ-कार्य में खर्च किया हुआ धन कभी नष्ट (व्यर्थ) नहीं होता । वह सफल होता है । किसान खेत में बीज बोने जाता है, तब मात्र एक ही जगह पर बीज का ढ़ेर नहीं करता, बल्कि सारे खेत में अन्न के बीज डालता जाता है और जब अनाज फसल के रूप में पकता है तब दानों के ढ़ेर बन जाता है । वैसे ही आप शुभकार्य में धन का खर्च करोगे तो जितना खर्च करोगे उससे कई गुना अधिक मिलेगा । जब हम इस संसार में जन्मे थे, तो मुट्ठी बन्द कर आये थे और जायेंगे तब भी खाली हाथ ही जायेंगे । सांसारिक जीवन के मौज-शौक और काम-भोग कितने भी भोगोगे - खर्च करोगे, किन्तु उनमें से साथ में कुछ भी आनेवाला नहीं है । अतः यदि खाली हाथ नहीं जाना है, तो हो सके उतना धन का सदुपयोग कीजिए ।

सेठ ने दरबार (गरासीया) को कटुवचन कहे मगर पैसे नहीं दिये । यह शब्द उसे बाण की तरह हृदय में उतर गये । उसे बहुत दुःख हुआ और अपने घर चला गया । क्षत्रिय होने के कारण वह अपमान सह सका नहीं । घर जाकर वह अपने इकलौते बेटे के मर जाने पर रोता हो ऐसे चीख-चीखकर रोने लगा । उसके मन में बहुत पश्चात्ताप हुआ कि-'मैं जुआ खेलने गया था, तब मेरे पड़ोसियों तथा सगे-सम्बन्धियों ने बहुत समझाया था, बिना किसी स्वार्थ के मुझे उपदेश भी दिया,

परन्तु मैंने उनमें से किसी की बात मानी नहीं । उनका कहा मैंने मान लिया होता तो मेरी यह अवदशा न होती । अब तो मर जाऊँगा तब भी उस सेठ के घर नहीं जाऊँगा ।' पत्नी ने समझाया - "स्वामीनाथ ! आप चिन्ता न करे । मेरे पास अभी आपको खिलाने की, कठिन परिश्रम करने की ताकत है । मैं चक्की चलाऊँगी और रोज आधा मन गेहू पीसुँगी तो एक सेर बाजरा मिल जाएगा, उसकी महेरी (एक वानगी) बनाकर पी लेंगे । लड़की तो ससुराल है और बेटा अपने ननिहाल गया है । इसलिए हमदोनों के खाने की व्यवस्था हो जायेगी ।" इस प्रकार सन्तोष मानकर जीवन जीते हैं ।

एक दिन ऐसा आया कि बेटी की सास हरद्वार, काशी, मथुरा आदि स्थानों की यात्रा के लिए गयी थी । साथ में तीस सज्जनों का साथ था । वे घुमते हुए इस गाँव में आ पहुँचे । तब बेटी की सास ने सोचा कि-'यह तो मेरे समधन का गाँव है । अगर मैं उन्हें समाचार नहीं भेजुँगी तो वे नाराज़ हो जायेंगी ।' ऐसा सोचकर समधन को समाचार भेजा कि-'आपकी समधन यात्रा करके आपके गाँव में आयी हैं और चार-छ घण्टे यहाँ ठहरकर जानेवाली है ।' यह समाचार दरबार के घर पहुँचे । परन्तु वे लोग बहुत दुःखी हुए । वे अपना झोंपड़ा बन्द कर बहुत रोये । सचमुच आज अधिकतर घरों की यही अवदशा है । इसलिए आप अपने मौज़-शौक कम करके गरीबों की सहायता कीजिए ।

❑ समधन के स्वागत की चिन्ता :

यहाँ उस दरबार की हालत बहुत गम्भीर हो गयी । 'अगर समधन को नहीं बुलाया जायेगा, तो बेटी को ताने सुनने पड़ेंगे ।' यह सोचकर उसने पत्नी से कहा - "तुम जाकर समधन को बुला लाओ ।" दरबार की पत्नी ने जाकर अपनी समधन से कहा कि - "चलिए समधनजी ! हमारे घर चलिए ।" समधन ने कहा कि - "हम तीस लोग साथ में हैं ।" तब दरबमर की पत्नी ने कहा - "ठीक है, आप सभी साथ में आइए ।" क्योंकि आग्रह तो सबको करना पड़ता है न ? न किया जाय तो घर की इज्जत का सवाल था । उसने बहुत आग्रह किया तब अन्य सज्जनों ने कहा कि - "बहन ! आप अपने समधी के घर जाइए । हमारे सगे-सम्बन्धी भी यहाँ आधे मील की दूरी पर रहते हैं । हम सब लोग वहीं जाते हैं ।" दरबार की पत्नी तो बाहर से तो बहुत आग्रह करती है परन्तु हृदय में तो प्रभु से प्रार्थना करती है कि-'हे प्रभु ! तुम मेरी लाज रखना । सब अपने-अपने सगे सम्बन्धियों के घर जाय ऐसी सद्बुद्धि देना । जहाँ एक को खिलाने की चिन्ता है वहाँ तीस लोगों को भला क्या खिलाऊँगी ? अगर वे लोग आयेंगे तो मेरी इज्ज़त मिट्टी में मिल जायेगी ।' समधन ने आपने साथी यात्रालुओं से कहा कि - "चलिए न ! मेरी समधन इतना आग्रह करती है तो आप सभी साथ चलिए ।" परन्तु सभीने मना

किया कि - "नहीं बहन ! आप खुशी से जाइए । हमें नहीं आना है ।" दरबार-पत्नी की सच्चे अंतःकरण की प्रार्थना ईश्वर ने सुनी । सब अपने अपने सम्बन्धियों के घर चले गये और समधन अकेली ही घर साथ में आयी । समधन घर पर आयी तो हैं, परन्तु उन्हें अब खिलायेंगे क्या ? घर में थोड़ा-सा जुआर भी नहीं है । वह स्त्री ने अपने पति को एक ओर ले जाकर कहा - "आप ऐसा कीजिए, हमारे सेठ के घर जाइए । सेठ उस दिन तो गुस्से में आकर बहुत कुछ बोल गये थे, परन्तु वे आज हमारा लाज अवश्य ही रखेंगे ।"

❑ सेठानी की करुणता और सेठ की क्रूरता :

दरबार ने कहा - "तुम यदि मुझे विष पीने को कहोगी तो मैं पी लूँगा, परन्तु उस सेठ के कटुवचन मुझसे भूले नहीं जाते । मैं उसके घर नहीं जाऊँगा । तुम जाओ ।" अतः वह समधन को बिठाकर कहने लगी कि-"आपके समधी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए मैं सब्जी लेकर आती हूँ ।" समधन ने कहा - "ठीक है । मैं बहुत थक गई हूँ, इसलिए यहाँ विश्राम करती हूँ, आप जाइए ।" और समधन सो गयी । दरबार-पत्नी उस सेठ के घर गयी । उस समय सेठ मौजुद नहीं थे । वे किसी काम से बाहर गये थे । गरासणी को दूर से आते देख सेठ के लड़के ने कहा - "माँ ! चाची आयी हैं ।" सेठानी ने बाहर आकर देखा और कहा - "भाभी! आप आयी है ?" सेठानी और उसका बेटा बहुत दयालु थे । उन्हों ने दरबार की पत्नी को प्रेम से बुलाया और आने का प्रयोजन पूछा । लड़के ने कहा - "चाची ! मेरे पिताजी ने आपको भिखारी बनाया है । पाँच बीघा जमीन भी हड़प ली है, बहुत भारी ब्याज भी लिया है । खेर, परन्तु आप यहाँ किस काम से आयी हो ?" दरबार-पत्नी ने बात कही कि - "मेरी समधन आज हमारे घर पर आयी हैं और उन्हें भोजन खिलाने के लिए वस्तु लेने आयी हूँ ।" लड़के ने कहा - "माताजी ! तुम अभी इन्हें वे सारी चीज़ें दे दो जो उन्हें चाहिए । क्योंकि अगर पिताजी आ गये तो फिर देने देंगे नहीं ।" और माँ-बेटे ने मिलकर घी, आटा, मिसरी, चावल, दाल आदि थेली में भरकर दिया । घी-तेल बोतल में भरकर दरबार-पत्नी सब सामान लेकर सेठ के घर से जैसे ही निकलती है कि दहलीज पर राहु मिल गया । स्त्री को देखकर तुरन्त सेठ पहचान गये और कहा - "तुम क्या क्या लेकर जा रही हो ?" उसने सारी वातें बता दी । और कहा कि - "मालिक ! आज हमारी स्थिति वहुत ही नाजुक है । यदि मैं ये चीज़ें नहीं ले जाऊँगी तो गज़व हो जाएगा । मैं आपके सारे पैसे मज़दूरी करके जल्दी ही लौटा दूँगी । आप मेरी लाज रखिए ।" परन्तु क्या सेठ मानता ? उसने चीखकर कहा - "विलकुल नहीं । सव यहाँ रख दे ।"

❑ **सेठ की निर्दयता से गरासणी ने छोडे प्राण :**

बन्धुओं ! देखिए, माँ-बेटे ने तो सब दे दिया, परन्तु वह राहु समान सेठ उसे ले जाने नहीं दे रहा है । वह कहता है कि - "तेरे पाँव में चाँदी के गहने हैं उसे दे जा ।" गरासणी ने कहा - "मैं उसे कल दे दूँगी, आज नहीं । क्योंकि उसकी समधन ने वे कड़े (गहना) देखे थे और कहा भी था कि 'समधन ! आपके कड़े का आकार बहुत अच्छा है । आपने उसे कहाँ बनवाया है ? मुझे कहिए न ?' तब मैंने कहा था कि 'मैं बाहर जाकर आती हूँ फिर चैन से सब कुछ बताऊँगी ।' अब यदि कड़े मैंने आपको आज दे दिये, तो मेरी इज्ज़त धूल में मिल जायेगी । अतः आप मेरा विश्वास कीजिए । मैं कल आपको अवश्य ही ये कड़े दे दुँगी ।" परन्तु सेठ माने ही नहीं । वह कहने लगा - "नहीं...नहीं...। कड़े देकर ही तुम ये सामान ले जा सकती हो ।" और कटुवचन कहने लगा । एक तो सामान न दिया और उपर से कटुवचन भी सुनने पड़े । इससे गरासणी को बहुत दुःख हुआ कि यह तो मनुष्य है या राक्षस ? उसका शरीर मनुष्य का है मगर वृत्ति राक्षस की है । सेठ किसी तरह माना नहीं तब गरासणी ने कहा - "सेठ ! आपने हमें परेशान करने में और लूटने में कोई कसर छोड़ी नहीं है । आप ही ने हमें भिखारी बनाया है । अब हमारे प्राण के अतिरिक्त आपने कुछ देने लायक शेष छोड़ा नहीं है । इसलिए लीजिए, मेरा प्राण ही दे देती हूँ ।" इतना कहकर सेठ की दहलीज पर ही ज़ोर से सिर पटक-पटककर मर गयी । खून के डबरे भर गये । यह दृश्य देखकर सेठानी और उसका पुत्र काँप उठे । 'अरेरे... इस राक्षस के घर में हम कैसे आ गये ? इससे अच्छा है हम गरीब ही रहते । क्योंकि हमें ऐसे पापी के घर में रहना तो न पड़ता !' धिक्कार है सेठ को !

❑ **पत्नी के पीछे पति और पुत्र की आत्महत्या :**

इस तरफ गरासणी को गये दो घण्टे हो गये, परन्तु अभी तक आयी नहीं, तो समधन ने पूछा - "मेरी समधन अभी तक क्यों नहीं आयी ?" दरबार समझ गये कि 'ज़रूर कोई अनहोनी हुई होगी । क्योंकि सेठ के एक-एक वचन बाण की तरह शरीर को बेध देते हैं । मैं तो पुरुष हूँ । उसे सह सहता हूँ, मगर स्त्रीजाति उसे सह सकती नहीं है । क्यों न मैं स्वयं खोज करूँ ?' वह जैसे ही बाहर निकला कि घर के बाहर दरबार का लड़का जो ननिहाल में गया था मिल गया । वह भी पिता के साथ चल दिया । मार्ग में उसे अनेक लोगों का समूह मिला, जिन्हों ने कहा कि - "दरबार ! आपकी पत्नी ने सेठ की दहलीज पर सिर पटक-पटककर मर गयी है ।" दरबार अब सेठ के घर न जाकर सीधे ही गाँव से बाहर एक कुँए के पास गये और लड़के के साथ कुँए में गिरकर जान दे दी । पिता-पुत्र ने कुँए

में जान दी और पत्नी ने सेठ के घर की दहलीज पर । यहाँ समधन बेचारी घर में बैठ-बैठकर थक गयी और सोचने लगी कि-'समधी और समधन दोनों कब से गये हैं फिर वापस क्यों नहीं आये ? वे घर से बाहर निकली और लोगों का समूह जहाँ खड़ा है और बातें हो रही है, वहाँ पहुँचती है । समधन सारी बात समझ गयी । वह तो घबराकर वहाँ से भाग खड़ी हुई । गाँव के लोग बहुत गुस्से हो गये थे कि-'हमारे गाँव में तीन-तीन लोगों की मौत हुई है । अब इस सेठ को जिन्दा नहीं छोड़ना चाहिए । बाहर निकलते ही उसे मार डालेंगे । क्योंकि ऐसा राक्षस अब हमारे गाँव में नहीं चाहिए ।' अब तो सेठ को अपना मुँह दिखाना भारी पड़ गया था, इसलिए उपर जाकर गले में फँदा डालकर मर गया ।

देवानुप्रिय ! सेठ के अपने साथ क्या ले गये ? सब कुछ यहाँ पड़ा रहा न ? कर्म और अपयश का काला धब्बा लेकर गये । सेठ के लडके को अपने बाप के दुष्कृत्य पर बहुत घृणा हुई और एक साथ तीन लोगों की मौत से काँप उठा । अन्त में सब का अग्निसंस्कार किये गये और तीनों की हड्डियाँ लाकर आँगन में गाढ़ दिया । साथ में वहाँ तीनों का स्मारक बनाकर रोज़ उनके दर्शन करता । एक दिन उसका मित्र छुट्टियों में सेठ के लड़के के घर आता है । आँगन में स्मृति-स्मारक देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि 'यदि किसी सज्जन ने गाँव के भले के लिए या देश के लिए अपना बलिदान दिया हो तो उसका स्मारक बनाया जा सकता है, और वो भी गाँव से बाहर । फिर इसके आँगन में ये तीन स्मारक किसके होंगे ?' पूरा दिन समाप्त हो गया । खाया और घुमने निकले तब उस मित्र ने पूछना चाहा, परन्तु पूछ न सका । परन्तु रात को सोते समय उसने अपने मित्र से पूछा कि - "हे मित्र ! तुम्हारे आँगन में ये तीन स्मारक किसके हैं ? मैं जब से आया हूँ मेरे मन में बस इसी बात का आश्चर्य है ।" तब लड़के ने अपने मृत-पिता की सारी बातें कह सुनायी । सारी बातें सुनने पर मित्र का आश्चर्य के साथ काँप उठा कि-"तेरा पिता ऐसा था ? परन्तु वह तो गया, मगर मुझे आश्चर्य यह होता है कि ऐसे विष समान पिता के घर में तुम्हारे जैसा अमृतरूपी बेटा कैसे पैदा हुआ ? तेरे पिताजी इतने क्रूर थे और तू इतना सज्जन, सदाचारी और नीतिवान ?" मित्र ने उसकी खूब प्रशंसा की । बाप ने ऐसे कुकर्म किये थे कि उसे कोई याद भी नहीं कर सकता था और यह बेटा, कितना सुन्दर जीवन जी गया कि उसका नाम इतिहास के पन्नों में सुवर्णाक्षर से लिखा गया ।

बन्धुओं ! इस बात का सार यह है कि लोभ जीव को दुर्गति में ले जाता है । सेठ ने अगर ऐसे कुकृत्य किये थे तो वे सब लोभ के कारण । पाप का बाप लोभ है । वाणी का विवेक (मर्यादा) रखकर जितना अच्छा कर सको, करना । अधिक बातें अवसर आने पर ।

व्याख्यान - ५

मन की छत को मज़बूत बनाने के लिए क्या करोगे ?

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शनी, जिनेश्वर भगवान ने जीवों को अनन्त-दुःख-परम्परा से मुक्त होने के लिए निवृत्ति-मार्ग का उपदेश दिया है । 'नंदी सूत्र' में बताया है - *'निव्वुइ पह सासणयं.. जिणिंद वर वीर सासणयं ।'* निवृत्ति-पथ मोक्षमार्ग है । जो निवृत्त होता है वह मुक्त होता है । निवृत्ति का अर्थ है मुक्ति, अलग होना, प्रवृत्ति रोकना, प्रमाद तथा कषाय का त्याग करना । आत्मा पर महा-मोह का गहन आवरण आ गया है, इसलिए वह अपने आप को भूल गया है । जैसे भूगर्भ में चारों और मिट्टी और पत्थरों के बड़े बड़े ढ़ेर में रत्न दब गया हो वैसे गाढ़तम मोहनीय कर्म के परत (स्तर) में आत्मा दब गयी है । मिथ्यात्व मोहनीय के नशा ने उसे इतना अधिक दबाया है कि वह जो जड़ समान रहा है उसमें विस्तार हुआ, संकुचित हुआ और अणु समान बनकर एक सूक्ष्म शरीर में अनन्त-जीवों के साथ रहा । कहाँ लोक-व्यापी प्रदेशों का स्वामी विराट आत्मा और कहाँ सूक्ष्म शरीर में अनन्त-आत्माओं के साथ दब-दबकर रहा क्षुद्रतम् जीव ! ऊँट और हाथी के बड़े शरीर में रहनेवाला जीव कभी-कभी नजर में भी न आ सके ऐसी क्षुद्र दशा को प्राप्त करता है । परमात्मा समान आत्मा पामरता (गरीबी) में क्यों पड़ा है ? उसकी ऐसी अधम अवदशा किस लिए हुई है ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए जिनेश्वर भगवान कहते हैं कि - ''आत्मा ने निवृत्ति मार्ग का दर्शन किया नहीं है । वह प्रवृत्ति में ही लगा रहता है ।'' तुमने भी अशुभ-प्रवृत्ति की है । चोर, डाकू और खूनी को अपने ही अपराध उसे क़ैदी बनाते हैं, वैसे ही अपनी अशुभ प्रवृत्ति आत्मा की दुर्दशा करती है । प्रवृत्ति-मार्ग बन्धनकर्ता है और निवृत्ति-मार्ग बन्धन से मुक्ति का मार्ग है । रेशम (मलमल) का कीड़ा अपने द्वारा निकाली गयी लार से बँधता है और अन्त में मृत्यु की शरण में जाता है । वैसे ही अपनी अच्छी या बुरी प्रवृत्ति से जीव शुभाशुभ कर्मों के बन्धन में बँधता है और जन्म-मृत्यु की परम्परा में फँसकर भव बढ़ाता जाता है । भव-परम्परा को घटाने और आत्मा की सुख-संपत्ति को प्रकट करने के लिए निवृत्ति-मार्ग को अपनाना आवश्यक है ।

जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी के स्वस्थ बनाने के लिए रोग के कारण को रोकता है, रोग की उत्पत्ति के मार्ग को ढूँढता है। उसके बाद हुए रोगी को मिटाने का प्रयास करता है। उसी प्रकार जिनेश्वर भगवंत आत्मा के जन्म-मरणादि दुःखों की परम्परा को बढ़ानेवाली प्रवृत्ति को रोकने का उपदेश देते हैं। उनका उपदेश - निवृत्तिमय है। जो आत्माएँ इस मार्ग को ग्रहण करते है, वे प्रवृत्ति से प्राप्त बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाते हैं। सर्वथा मुक्त होकर सिद्ध स्थिति को प्राप्त करते हैं। इस मार्ग को सुनकर, सँभलकर और समझकर फिर श्रद्धा (से) करने से जीव का दृष्टि-विकार चला जाता है। दृष्टि-विकार जाने पर अनन्त-संसार की निवृत्ति हो जाती है। मिथ्यात्व जाने पर अनन्तानुबंधी कषाय जाते हैं। इस मिथ्यात्व का विष, दृष्टि-विकार जैसा ही भयानक पाप है कि जो आत्मा को अनादिकाल से भवभ्रमण के चक्कर में भटकाते हैं। ऐसा मनुष्य सत्मार्ग को कुमार्ग मानता है और कुमार्ग को सत्मार्ग मानता है। मिथ्यात्व मोह का मित्र अनन्तानुबंधी कषाय है। इन दोनों की गांठ-बँधी होती है। जब इस गांठ का बन्धन उग्र रूप में होता है, तब आत्मा क्षुद्रतम अवस्था को प्राप्त कर लोक में भटकता रहता है। अनन्त-भवभ्रमण का मूल यही है। उसका उदय समाप्त हो जाता है जब आत्मा के भव कम तो जाते हैं और जो भव रहता है वह प्रायः मनुष्य और देव का रहता है।

मिथ्यात्व की निवृत्ति होने पर आत्मा का परिभ्रमण परिमित हो जाते हैं। अप्रत्याख्यानी की कषाय का उदय बन्ध होने पर देशविरति प्राप्त होती है। प्रत्याख्यानी कषाय की निवृत्ति होती है तब आत्मा सर्वविरति बनती है। उसकी प्रवृत्ति का बहुत-सा हिस्सा रूक जाता है, इसलिए निवृत्ति बहुत बढ़ जाती है। जब आत्मा में कोई विशेषता आती है और प्रमाद से निवृत्ति होती है, तब वह अप्रमत्त हो जाता है। उसकी प्रवृत्ति रूक जाती है। ऐसी ऊर्ध्वगामी आत्मा संज्वलन कषाय और अशुभयोग से निवृत्त बनकर वीतरागी बन जाती है, तब मात्र शुभयोग रहता है। अरिहंत-प्रभु के, केवली के जीवन में शुभयोग प्रवृत्ति रूप में रहता है। जबकि मोक्ष में जाने का अन्तिम समय रहता है तब वह योगप्रवृत्ति भी रूक जाती है और निवृत्ति परिपूर्ण हो जाती है। चौथे गुणस्थानक से प्रारम्भ की गयी निवृत्ति चौदहवें गुणस्थानक में पहुँचकर पूर्ण हो जाती है। जब निवृत्ति पूर्ण हुई तब आत्मा मुक्त होकर सिद्ध परमात्मा वन जाती है।

संक्षिप्त में अनन्तानुबंधी कषाय और दर्शन-मोहनीय का त्याग कर जीव अनन्त-संसारवर्धक परिणति से निवृत्त हो जाते हैं। अर्थात् जीव समकित को पाता है, उसके वाद उसे अर्धपुद्गल परावर्तन से अधिक समय (काल) भटकना पड़ता नहीं

है । देशविरति होने पर अविरति चली जाती है । सर्वविरति होने पर आरम्भ परिग्रह से निवृत्त होता है । प्रमाद से निवृत्त होने पर अप्रमत्तदशा आती है । कषाय से निवृत्त होने पर वीतराग-सर्वज्ञ बनता है और योग से निवृत्त होने पर सिद्ध, बुद्ध मुक्त बनता है । जैसे-जैसे निवृत्ति बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उत्थान होता है, गुणस्थानक की श्रेणी बढ़ती जाती है । गुणस्थान में वृद्धि निवृत्ति से होती है। यहाँ यदि किसी को शक हो जाय कि फिर चारित्र्य में प्रवृत्त होने का उपदेश क्यों दिया ? साधक साधना के प्रारम्भ से पूर्ण रूप से निवृत्त हो सकता नहीं है । जैसे सर्वविरति बनने की शक्ति न हो तो देशविरति बनता है । उसी प्रकार पूर्ण वीतराग बनने की योग्यता यहाँ न होने पर सरागसंयति बनता है । रागसहित चारित्र्य से यथाख्यात चारित्र्य की प्राप्ति हो सकती नहीं है । कषाय की संपूर्ण निवृत्ति होती नहीं है । कुछ प्रवृत्ति शेष रहती है । यह शेष प्रवृत्ति अशुभ न बन जाय इसके लिए ***'चरणस्स य पवत्तणे'*** चारित्र्य में प्रवृत्त होने को कहा है ।

जीवन में नम्रता, सरलता हो तो कल्याण होना सरल है । बहने रोटी के लिए आटा पीसती है तब पहले कठिन बाँधती है, परन्तु बाद में उसे गूँधकर तैयार करती हैं । नर्म-आटे से ही अच्छी रोटी बनती है । कुँए में से पानी निकालना हो तो घड़ा डालते समय वह सीधा होता है, परन्तु पानी निकालना है तो घड़े और पानी निकालनेवाले दोनों को झुकना पड़ता है - टेढ़ा होना पड़ता है । जबकि हमें तो तीर्थंकर भगवान की वाणी सुननी है, उसे हृदय में अवधारना (उतारना) है ! अनन्त-संसार को भूलना है, कषायों को जीतना है और कर्म की जंजीरों से मुक्त होना है तो फिर कितना विनम्र बनना पड़ेगा ? सोना नर्म बनता है तो ही उस पर अनेकविध आकार दिये जाते हैं । अतः भगवान कहते हैं कि "आप विनम्र बनिये । **'लघुता से प्रभुता मिले, गुरुता से प्रभु दूर ।'** जितनी लघुता, सरलता, नम्रता होगी उतना हमारे लिए मोक्ष नज़दीक है और जितनी अक्कड़ता, वक्रता होगी उतना मोक्ष हमारे से दूर होगा । बाहुबलीजी की साधना कितनी प्रबल थी फिर भी एक अहंकार का काँटा रहने मात्र से केवलज्ञान नज़दीक होने पर भी दूर हो गया । जैसे ही अहंकार गया कि केवलज्ञान पा गये । यह बात हमें जीवन में उतारनी है । हमारे जीवन में जहाँ-जहाँ भूले हैं उसे दूर करनी हैं । वर्षाऋतु का समय आने पर धाबेवाले मकान होने पर भी जाँच करते हो कि कहीं पानी तो गिरता नहीं है न ? अगर गिरता होगा तो मज़दूर को बुलाकर मरम्मत करवा दोगे । मकान चूता होगा तो वहाँ रीपेरिंग करवा देते हो, वैसे हमें अपने जीवन में भी जाँचना चाहिए कि दोष या अवगुण के चूए तो कहीं दिखते नहीं है न ? जब-जब चुए चुए के रूप में पहचाने जायेंगे तब उसे दूर करने के लिए गुरु के चरणों में पहुँच जायेंगे ।

मकान की छत कैसी है ?

आपके मकान की छत मजबूत है या कच्ची ? उसे एक दृष्टान्त से समझते हैं । एक बहुत बड़ा विशाल मकान था । उसमें अच्छे सुखी सज्जन बसते (रहते) थे । मकान जितना विशाल था उसके रहनेवालों के हृदय भी उतने ही विशाल थे । एक बार उनका मित्र बाहर से आया । वह स्टेशन पर उतरा । वहाँ से मकान बहुत दूर था । मार्ग में बीच में इस मित्र का घर आता था । रात के नौ बज गये थे । कोई वाहन मिलता नहीं था । अतः उसे लगा कि 'क्यों न आज की रात मेरे मित्र के घर रह जाऊँ ?' ऐसा सोचकर यह मित्र उसके मित्र के घर गया । मित्र ने उसे अच्छी आव-भगत की, सत्कार किया । यहाँ वस्तु का मूल्य नहीं है, मात्र नम्रता, सरलता, मिठास और प्रेम के दो शब्द सत्कार के लिए पर्याप्त है । मित्र ने प्रेम से उसका सत्कार किया । १० बज गये थे, इसलिए भोजन की आवश्यकता नहीं थी, मात्र सोना ही था । मित्र ने कहा - ''भाई ! अगले कमरे में पलंग है, वहाँ आप सो जाइए ।'' कुछ समय दोनों ने बातें की । फिर आनेवाला मित्र सो गया । क्योंकि ढ़ाई दिन से गाड़ी की यात्रा की थी, इसलिए बहुत थक गया था । वह पलंग पर जाते ही सो गया । एक-दो घण्टे हुए तभी उसके शरीर पर पानी के छींटे गिरने लगे । वह अचानक उठ गया । उसने सोचा कि यह बोक्सींगवाला नया मकान अच्छे धाबेवाला है, फिर छींटे क्यों गिरते हैं ? उसने बाहर जाकर देखा तो वर्षा जो़रदार नहीं बल्कि धीरे-धीरे बरस रही थी । इतनी कम बारिश फिर भी पानी अन्दर कैसे आया ? वह सोचने लगा ।

थोड़ी देर हुई कि उसका मित्र उठकर इस मित्र के पास आया उसने पूछा - ''मित्र ! यह मकान तो धाबेवाला है फिर पानी क्यो गिरता है ?'' मित्र ने कहा - ''आप दूसरे कमरे में पलंग पर सो जाओ ।'' यह भाई तो दूसरे कमरे में जाते ही सो गये । सुबह उठकर देखा तो ज़ोरदार वर्षा हो रही थी । बादल को गड़गड़ाट की आवाज़ आ रही थी, फिर भी एक बूँद भी पानी नहीं गिर रहा था । वह मित्र सोचने लगा कि एक कमरे में ज़ोरदार वर्षा आने पर भी पानी का एक बूँद भी गिरता नहीं है और थोड़े थोड़े बरसते पानी में पासवाला कमरा भर गया है । जब इस कमरे की छत पक्की और मजबूत है इसलिए जोरदार वर्षा में भी छत से एक बूँद पानी गिरता नहीं है ।

हमारी छत कैसी है ?

यह बात हमें समझनी है । पक्की छत पर १५-२० इंच पानी गिरा फिर भी अन्दर आने दिया नहीं और कच्ची छत ने पानी अन्दर आने दिया । यह मकान की

छत की बात है । यही बात आत्मा के लिए सोचना है । मैं आप से पूछती हूँ कि "आपकी छत कैसी है ? कच्ची है या पक्की ? समझकर उत्तर दीजिएगा । (श्रोतागण : कच्ची-पक्की ।) आप सब की बुद्धि बनिये की बुद्धि है, इसलिए कच्ची और पक्की दोनों कहा । अर्थात् मकान की छत कच्ची हो तो दिन या रात में कभी भी पानी गिर सकता है और मुसीबत में फँसा जा सकता है । सामान सारा उठाना पड़ता है, वैसे ही अगर हमारी आत्मा की छत कच्ची होगी तो कितनी मुसीबतें आयेगी ? मामूली निमित्त से भी जीवन में पाप, कषाय, प्रवेश कर जायेंगे । किसी ने हमारा अपमान किया तो क्रोध आ जाता है, नाराज़ हो जाते है । किसी मनुष्य ने आकर नींद बिगाड़ी तो गुस्सा आ जाता है । कोई सम्मान करे तो खुश हो जाते हैं । सामान्य प्रसंग में भी अगर क्रोध आ जायेगा, गुस्सा आ जायेगा तो आत्म-घर में पाप के पानी प्रवेश कर जायेंगे । और अगर आत्मा की छत मज़बूत होगी तो आप भयानक निमित्तों में भी जीवन में पाप की एक बूँद रूपी पानी को आने नहीं देगा । अगर हमें इन सब से बचना है तो इसके लिए एक उपाय है कि आत्मा की छत को मज़बूत बना दे । जिन्हों ने आत्मा की छत मजबूत की है ऐसे स्थूलिभद्र दीक्षा लेकर गुरु की आज्ञा से रूपकोशा के यहाँ चातुर्मास करने गये । रूपकेशा ने दूर से मुनि को देखा । वह तो पागल-सी हो गई । मुनि को देखकर वह नाचने लगी । यह तो मेरा पति आया ! ऐसा मानकर अच्छा सत्कार किया । फिर उनके सामने नाचगान, हाव-भाव नाज़-नख़रे करने लगी । तब मुनि ने क्या कहा ? - "खबरदार ! अगर मेरे पास आयी तो ? जो स्थूलिभद्र तेरे साथ १२ वर्ष रहा था, वह स्थूलिभद्र अब मैं नहीं रहा हूँ । मेरे सामने नाज़-नख़रे मत कर । अगर तुझे जीना है तो मुझ से दूर हट जा । नहीं तो तू मर जायेगी ।" इसे कहते है मजबूत छत । इसी प्रकार श्रावकों के चारित्र की छत भी मजबूत चाहिए । आप के चारित्र की, श्रद्धा की छत मजबूत होगी तो जहाँ भी जाओगे, कैसे भी प्रसंग आयेंगे, परन्तु आप की श्रद्धा चलित न होगी । मगर आप की छत का ठिकाना ही नहीं है, इसीलिए हमें आप को बार-बार कहना पड़ता है । पटरी पर से गाडी कब उतर जाये मालूम नहीं । स्थूलिभद्रमुनि की छत मजबूत थी । एक मुनि सिंह की गुफा के पास चातुर्मास कर के आये । एक मुनि नाग (साँप) के बिल पर चातुर्मास कर आये । एक मुनि कुँए के किनारे चातुर्मास करके आये । इन तीनों मुनियों को चार महीनों तक भोजन-पानी कुछ भी मिला नहीं था । चौविहारा उपवास हुए थे । स्थूलिभद्रमुनि रूपकोशा के घर चातुर्मास रहे । वे संयम में पारंगत थे । इसलिए रूपकोशा वेश्या को भी सच्ची श्राविका बना दी । इसलिए उन्हें भोजन-पानी में तकलीफ न हुई । हम कहते हैं -

"मंगलं भगवान वीरों, मंगलं गौतम प्रभु,
मंगलं स्थूलीभद्राद्या, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ।"

''महावीर-प्रभु मंगल है, गौतमस्वामी मंगल है, स्थूलिभद्र मंगल है और जैन-धर्म भी मंगल है ।'' स्थूलिभद्र को आज सभी याद करते हैं । सदियों तक उनका नाम अमर रहनेवाला है । क्योंकि वेश्या के घर रहने पर भी जिसने चारित्र की ज्योत अखण्ड प्रकाशित रखी थी ।

स्थूलीभद्र और नंदीषेण ने गणिका के संग रहे,
रंग विलास में रंग कर, विष विषय के पीये,
किन्तु पश्चात्ताप कर रास्ते में आ गये... पाप सब से होते हैं । (२)

छद्मस्थ जीव भूल के पात्र है, सभी पाप तो करते हैं । संसार पाप का पिंजरा है । कोई विरल आत्मा ही पाप का पश्चात्ताप करती है । यह पश्चात्ताप ऐसा कि जो भूल एक बार की है उसे पुनः कभी भी जीवन में न करे ऐसी प्रतिज्ञा करे, स्थूलिभद्र १२ वर्ष रूपकोशा के घर पर रहे । वह भूल तो की । स्वयं उनके पिता मर गये तब बुलाने पर भी नहीं आये थे । परन्तु उस भूल का इकरार करने के बाद दीक्षा लेकर गुरु देव ने वहाँ चातुर्मास के लिए भेजा, परन्तु वहाँ चारित्र्य में - ब्रह्मचर्य में ऐसे दृढ़ रहे, ऐसी टक्कर ली कि उनके प्रभाव से स्वयं कोशा सच्ची श्राविका बन गयी । उनकी छत बहुत ही मज़बूत और पक्की बन गयी थी । शायद आप उपाश्रय में कभी-कभी आ सको, परन्तु अपनी आत्मारूपी छत मज़बूत रखना । आप की छत मज़बूत होगी तो ही आप को धर्म से कोई चलित कर पायेगा नहीं । धर्मश्रद्धा से चलित करने के लिए कोई प्रलोभन दे, लालच दे या ड़र बताय (दिखाये), परन्तु वहाँ अगर आप की छत पक्की-मज़बूत होगी तो आप कह दोगे कि-'मेरा धन जाये तो भले जाय, परन्तु मेरे देव तो अरिहंत भगवान ही है । गुरुदेव तो मेरे निर्ग्रथ गुरु है और केवली प्ररूपित धर्म ही मेरा धर्म है ।'

स्थूलिभद्र ने मन की छत कितनी पक्की की होगी कि गणिका के संग रहने पर भी उसके रंग में न रंगकर स्वयं रूपकोशा गणिका को धर्म के रंग में रंग दिया और सच्ची श्राविका बना दिया । आप क्या करेंगे ? आप के मित्र को जैन बनाइए और आप के लड़के-लड़कियों को ऐसे संस्कार दीजिए कि उपाश्रय आने लगे और जैनधर्म में श्रद्धावान बन जाय - तो ही मैं समझुँगी कि आप की छत मज़बूत है । स्थूलिभद्र रूपकोशा के घर चातुर्मास कर आये । सिंह-गुफ़ावासी मुनि सिंह की गुफा में चातुर्मास कर आये । कितना कठिन ? ये मुनि चोमासा करके आये तब गुरु ने कहा - 'दुक्कर' ! साँप के बिल पर चातुर्मास कर आये

कहा कि - "पास का जो मकान है वह मेरा है। तुम वहाँ रहने जाओ और हर महीने मुझे १५० रु. किराया देना।" छोटे भाई ने कहा - "बड़े भाई ! हमारे पिताजी का जब अन्तिम समय था, तब मैं और आप साथ में खड़े थे, तब तो मेरा विवाह भी नहीं हुआ था। उस समय पिताजी ने आप से कहा था कि - 'बेटे ! मैं जाता हूँ। तुम बड़े हो, इसलिए पिता समान हो। इसलिए छोटे को बेटे की तरह रखना। दोनों प्रेम से साथ में रहना। भविष्य में अगर अलग होने का समय आये तो हमारे पासवाला जो मकान है, यह छोटे को दे देना।' पिताजी ने यह बात की थी और आपने उसका सहर्ष स्वीकार किया था। फिर आज आप ऐसा क्यों बोल रहे हो ? जो मेरा मकान है उसका आप किराया लेना चाहते हो ?" यह सुनकर बड़े भाई को गुस्सा आ गया। उसने कहा - "मैं कुछ नहीं जानता। घर क्या और कैसी बात ? तुझे रहने जाना हो तो जा, परन्तु मुझे १५० रु. किराया देना पड़ेगा।" दोनों भाइयों का प्रेम दूध-मिसरी जैसा था। परन्तु अब खीटपीट बढ़ गयी, दोनों भाई बाहर लड़ते और देवरानी-जेठानी भीतर। छोटे भाई की मात्र ५०० रु. आमदनी है और बड़े भाई के पुण्य का उदय है इसलिए धन्धा अच्छा चलता है। छोटा भाई कहता है कि - "पिताजी ! मुझे ऐसा कहकर गये हैं, इसलिए घर मुझे दीजिए।" बड़े भाई ने कहा - "पिताजी ! तुझे क्या खाक घर सौंपकर गये हैं ? तुझे वह घर तो नहीं दुँगा, परन्तु अभी मेरे पास स्थावर और जंगम पूँजी है, उन सब पर भी मेरा ही अधिकार है ? उसमें से तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा। रहना है रह, नहीं तो घर के द्वार खुले हैं।" छोटा भाई कहता है - "मैं अदालत में जाकर भी घर तो लुँगा।" छोटे भाई को मित्रों ने भी उसे कहा था कि-"तुम अपने बड़े भाई के सामने केस कर। हम तुम्हारे साथ हैं, लड़ने के लिए पैसे भी ले जाना।" दूसरी और सज्जन और समझदार लोग झगड़े के समाधान के लिए छोटे भाई को समझा रहे थे, परन्तु झगड़ा शान्त हो ही नहीं रहा था। छोटा भाई अपनी हठ छोड़ नहीं रहा था। मित्रों की सच्ची या झूठी सलाह से कोर्ट में केस किया। १००-१०० रु. का हफ्ता तय किया था। इस प्रकार से छोटे भाई का दस हजार रु. का कर्जा हो गया, फिर भी केस का फैंसला आया ही नहीं। वकील तो कहा करता था कि केस आपके पक्ष में है, परन्तु फैंसला नहीं लाता था। दस हज़ार का कर्ज़ा हो जाने के बावजूद छोटे भाई को कुछ सूझ नहीं रहा था। मामला उग्र होता जा रहा था। समझदार लोगों ने कहा - "भाई ! तेरे सिर पर इतना सारा कर्ज़ा हो गया फिर भी तेरा केस खत्म नहीं हो रहा है।" छोटा भाई बहुत परेशान हो गया। तभी अचानक पता चला कि 'गाँव में जैन साधु पधारे हैं तो क्यों न आज उनके व्याख्यान सुनने जाऊँ ?'

घर से मुझे उन्होंने कभी निकाला नहीं है । यदि मुझे उन्होंने घर से बाहर निकाल दिया होता तो हम कहाँ रहते ? हमारे पास पूँजी तो है नहीं । मुझे नौकरी मिली है, वह भी बड़े भाई की पहचान से । अगर बड़े भाई ने सेठ से कहकर मुझे निकलवा दिया होता तो ? मैं नौकरी से विहीन हो जाता । घर में रखकर मुझे उनके जैसा ही खाना मिलता है । मेरे इस भाई के मुझ पर कितने सारे उपकार हैं ? फिर भी मैं दुष्ट, पापी उनके उपकारों को भूल गया ? उनके उपकार तो जीवन में कभी भुलाये जा सके ऐसे नहीं है । अब मैंने उनके सामने जो केस किया है उसे रद्द कर दुंगा । अरे मैंने घर के लिए झगड़ा किया । वह घर मुझे बड़े भाई को सौंप देना चाहिए । मैं स्वयं जाकर उनकी माफी माँगुंगा ।'' छोटे भाई की छत कच्ची थी वह जिनवाणी के पावर से मज़बूत बन गयी ।

पत्नी ने कहा - ''नाथ ! कल सुबह की राह देखनी नहीं है । कल की किसे खबर है ? हम अभी जायेंगे । आज वे जल्दी सो गये हैं, आप उन्हें अभी जगाइए। सांप को देखने के बाद कोई उसे घर में नहीं रखता है वैसे ही पाप भी आत्म-घर में कैसे रखा जा सकता है ? हम अभी जाकर उनके पैरों में गिरकर माफी माँग लेते हैं ।'' दोनों पति-पत्नी ने जाकर बड़े भाई के कमरे का द्वार खटखटाया, नींद में बाधा पड़ने से बड़ा भाई गुस्से हो गया । किन्तु द्वार खोला तो सामने छोटे भाई-भाभी को देखा । उन्हें देखकर बड़ा भाई गुस्से में आकर बोला - ''रात को भी चैन से सोने देते नहीं हो ? नालायक ! मेरा खून पीने इस घर में रहे हो ? सामने गाड़ी की पटरी दिखती है, वहाँ जाकर सोने आता है या नहीं ? सो जाओ, जाकर सो जाओ, जिससे तेरे नाम की जलन शान्त हो जाय ।'' गुरुदेव के पास जाने से पहले ये शब्द सुने होते तो बड़ा अनर्थ हो जाता ? परन्तु अब जिनवाणी का असर इतना अधिक है कि उसकी आत्मा रूपी छत मज़बूत बन गयी है । उसने मात्र एक ही व्याख्यान सुना था और कितना परिवर्तन हो [illegible] आपने तो कितने व्याख्यान सूने हैं । फिर भी छत [illegible] है ?

छोटा भाई बोला - ''बड़े भाई ! मुझे माफ कीजिए । मैं अधम हूँ, पापी हूँ ।
भाई होने पर भी कोर्ट मैंने केस चलाया । आप को बहुत दुःखी किया । कल
मैं वह कैस रद्द करवा दुँगा । अब यह घर-माल-सामान आदि कुछ नहीं
चाहिए । मेरा किसी वस्तु पर कोई अधिकार नहीं है । अब यह सब आप का है ।
आप अपने बच्चों को जैसे संभालते हो वैसे मुझे भी संभाल लेना । मुझे तो
आप का प्रेम चाहिए ।'' छोटा भाई बड़े भाई के पैरों में गिरकर रो पड़ा ।
आँखों से बड़े-बड़े आंसू गिर रहे थे । ये आंसू नहीं कषाय की कालिमा और
पाप को धोने के आंसू हैं ।

बाद छोटे भाई की पत्नी भी जेठानी के चरणों में गिर पड़ी । ''भाभी ! आप
तो मेरी माता समान है । मैंने आप को दुःखी करने में कुछ शेष रखा नहीं है ।
अब मुझे क्षमा कीजिए और किसी भी प्रकार से अब इस घर से ईर्ष्या-द्वेष को
दूर भगा दीजिए । हम दोनों अब बहनें हैं । मुझे आपका प्रेम और आशीर्वाद
चाहिए । आप दोनों मुझे माफी दीजिए । हमारी भूलों को भूल जाइए ।'' यह
पश्चात्ताप सच्चे हृदय का था । बड़े भाई-भाभी तो देखते ही रह गये । उन्हें कल्पना
में भी यह दृश्य सत्य नहीं लग रहा था । बड़े भाई ने छोटे भाई को और जेठानी
ने देवरानी को गले (से) लगा लिया । फिर दोनों बहुत रोये । ''भाई ! भूल तुम्हारी
नहीं, मेरी है । पिताजी के वचनों का मैंने बहुत बड़ा अपमान-विश्वासघात किया
है । पिताजी ने तुझे वह घर देने को कहा था, परन्तु संपत्ति के नशे में मैंने तुम
से घर का किराया मांगा । मुझे तो तुम्हें पिता का प्रेम देना चाहिए था, उसके
बजाय नफ़रत की । भाई मैं तुझे क्या माफ करूँ ? तू ही मुझे माफ कर । अब
आज से वह घर तुम्हारा है । जो मैं तुम्हें अभी सौंप रहा हूँ । साथ ही मुझ पर
किये गये केस का ख़र्चा - जो कुछ कर्ज़ हुआ है उसे मैं चुका दुँगा । अन्यत्र
कहीं पैसे लेने मत जाना ।'' जेठानी ने कहा - ''पुत्री ! अब रो मत । तुम से
तो अधिक भूल मेरी है । खेर, जो हुआ वह अच्छा हुआ । अब सब भूलकर घर
में प्रेममय वातावरण खड़ा करना है । अब मैं तुम्हें अलग जाने नहीं दुँगी ।'' सुना
न ! जिनवाणी का प्रभाव कैसा और कितना है ? जो झगड़ा बुजुर्ग, मित्र या
संपत्ति से न मिटा, अरे स्वयं वकील से भी न पूरा हुआ, वह जिनवाणी के श्रवण
से समाप्त हो गया और सुलझा भी ऐसा कि बैरभाव को खत्म कर डाला और
मैत्री को सराबोर कर दिया । जिनवाणी के श्रवण से दोनों भाइयों की छत पुनः
मज़बूत हो गयी । अगर जीवन में पापमुक्त बनना है तो चाहे कैसे भी करके
छत को मज़बूत बना लीजिए और मज़बूत बनाये विना कोई मार्ग नहीं है । इस

प्रकार की कोई कसौटी या कष्ट आये तो भी सहनशीलता की छत मज़बूत होगी तो उन दुःख-प्रसंगों में भी अड़िग खड़े रह सकेंगे और छत कच्ची होगी तो मामूली दुःख में भी वह हैरान-परेशान हो जायेंगे । 'मजबूत छतवाले कभी न हारे हैं और कच्ची छतवाले न कभी जीते हैं ।'

जिनवाणी का प्रभाव अलौकिक है । जहाँ बैरी की आग सुलग रही थी वहाँ वात्सल्य का प्रवाह बहाये, मैत्री-भावना से सूर फैलाये, स्नेह की सरिता बहायी । हम भी जिनवाणी को सुनकर, पढ़कर, मननकर जीवन में उतारे (कार्यान्वित करे) और आत्मा को पवित्र बनाइए । विशेष बातें अवसर आने पर ।

व्याख्यान - ६

बाह्य भाव से किया जानेवाला धर्म

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

वात्सल्य के प्रवाह बहानेवाले, मोक्षमार्ग को बतानेवाले, भव्यजीवों के तारणहार, अनन्त उपकारी जिनेश्वरी देव की वाणी का नाम ही है सिद्धान्त । जिनेश्वर की वाणी सर्व दुःखों का नाश करती है । अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती है । आत्मा के उत्थान की ओर ले जाती है । भवोभव सुख और समृद्धि देती है । आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग धर्म-श्रवण से मिलता है । जीवन में परिवर्तन लाने के लिए अवश्य ही धर्म का श्रवण करना चाहिए । भूतकाल में अनेक आत्माओं को धर्म-श्रवण के प्रभाव से मोक्षगति प्राप्त हुई है । जम्बूकुमार ने एक ही बार जिनवाणी का श्रवण किया और निन्यानवे करोड़ की संपत्ति को ठोकर मारकर अपनी आठ पत्नियों को भी बैरागी बनाया । यह भी धर्म-श्रवण का प्रभाव था ।

मानवजीवन के उत्थान के लिए अनेक गुणों की आवश्यकता अनिवार्य है, क्योंकि मनुष्य को मात्र जीवन जी जाने का नहीं है, बल्कि ज़िन्दा जगत के सामने अनेक प्रकार के भव्यतम् आदर्श प्रस्तुत कर जाना है । असंस्कारित सब्जी अनेक लोगों के पैरों तले कुचली जाती है, वही सब्जी संस्कारित अवस्था में आती है, तब स्टेनलेस स्टील की पतेली में उसका स्थान होता है । जैसे कोई भी चीज़ उच्च स्थान पर की ओर आगे बढ़ता है, वैसे उसकी पूर्वभूमिका में उसे सहना होता है । हीरे से मंड़ित सुवर्ण-सिंहासन या सुवर्ण-मुकुट कब उच्च स्थान भोग सके ? पूर्वस्थिति का परिवर्तन लाने के लिए सहा तब ।

आज लोक वृक्ष को चाहते हैं । वृक्ष को देखकर राज़ी होते हैं । क्योंकि वह ठंड़, गर्मी तथा वर्षा की झड़ी सहकर मीठे फल और शीतल छाया देकर परोपकार करता है, इसलिए इसी तरह मनुष्य को समझ लेने की आवश्यकता है । सुख के अव्वल शिखर पर पहुँचना होगा तो विश्वासपूर्वक परोपकार के मार्ग पर आगे बढ़ना पड़ेगा और मार्ग में आनेवाले चढ़ाव-उतार की यातना सहनी पड़ेगी । दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर, दूसरों का सुख छिनकर, दूसरे जीवों का अस्तित्व खतरे में डालकर सुखी बनने की मेहनत कभी भी सुख देने में कारणभूत नहीं बनेगी । शायद पूर्वजन्म के पुण्यबल से सुख मिल जाय, परन्तु उस सुख द्वारा जीवन में शान्ति नहीं होगी । अग्नि शीतलता दे सकती नहीं है, वैसे ही दूसरों को दुःखी करके मिलनेवाला सुख कभी भी शान्ति से जीने देता नहीं हैं ।

अर्थात् उचित समझकर मनुष्य परोपकार में लग जाय और परोपकार करते समय सहनेवाला वह सब कुछ सह ले, तो वह लोगों के हृदय-सिंहासन पर स्थान प्राप्त कर लेता है । परोपकार करने के लिए लाखों या करोड़ों रुपयों की आवश्यकता है, ऐसा नहीं है, बल्कि हृदय के विशुद्ध भाव की तथा पवित्र आँखों से बहते पुनित आंसुओं की है । साथ-साथ करुणा से भरे विचारों की आवश्यकता है । आप सामनेवाले को क्या देते हो ? कितना देते हो, यह देखना नहीं है, परन्तु हृदय के भाव और देने के व्यवहार देखना है । किस भाव से दान देने का व्यवहार है, उस पर से आप के द्वारा दिये गये दान का मूल्यांकन होता है ।

परिग्रह से धर्म प्रकाशित होता है, परन्तु निष्परिग्रही होने के लिए दान-प्रवृत्ति करने से प्रकाशित होता है । दान की प्रवृत्ति में सामनेवाले के दुःख को दूर करने की वृत्ति होनी चाहिए । कोई यदि धन आदि दे तो उसे द्रव्य-दया कहते हैं, परन्तु भाव-दया तो उसे कहते हैं जो धर्म से विमुख और धर्म को पानेवाले जीवों को धर्म के सम्मुख करता है । इस भाव-दया करने के लिए द्रव्य-दया करनी है । महान उपकारी तारक श्री जिनेश्वर भगवन्त द्वारा प्ररूपित धर्म दूसरों तक पहुँचाना है, तो मुझे उस प्रकार का दान करना चाहिए, जिससे लोग मेरे धन की ओर आकर्षित हो और उनकी योग्यता के अनुसार धर्म प्राप्त करवाया जाय । इस भाव से दान किया जाय तो अभिमानादि दुर्गुण प्रवेश करेंगे नहीं । जब-जब परोपकार करते हों तब-तब एक ही भाव रमता हो कि मैं आज जो परोपकार कर रहा हूँ, वह मेरे तारक श्री जिनेश्वर-प्रभु की आज्ञा है । मैं संसार पर उपकार नहीं कर रहा हूँ अपितु परोपकार द्वारा मेरी आत्मा का ही उद्धार कर रहा हूँ । सचमुच, दान लेनेवालों को धन्यवाद के साथ अभिनन्दन है कि मेरे दान का स्वीकार कर

हैं । इस भावना से आगे बढ़ते रहना है और परोपकार गुण को खिलाते रहना है । जिस प्रकार प्रभात के सूर्य के किरण ग्रहण करने के लिए कमल अपना हृदय खोलता है, उसी प्रकार समस्त दुःखों की आवाज़ सुनने के लिए अपने कान सदा खुले रखना । मनुष्य के आंसू का एक बिन्दु अपने हृदय पर गिरने देना और वहीं रहने देना और जिस कारण से वह आंसू गिरा है, उसका कारण जबतक दूर न कर सके तबतक अपने हृदयपट पर पड़े उस आंसू को गिरा देना नहीं । इस आंसू के झरने (बूँदरूपी) से शाश्वत दया के खेत का पालन-पोषण होता है ।

इस बात से समझा जायेगा कि मनुष्यजीवन के उत्थान हेतु परोपकार और दया के गुण पोषना आवश्यक है । महान पुरुष कहते हैं कि - "हे मनुष्य ! तू वैभव में मद सें मस्त होकर दूसरे दुःखित हृदयी मनुष्यों के आंसुओं का मजाक मत उड़ाना और उसकी आशाएँ जलाकर भस्म मत करना, नहीं तो वही भस्म तेरे हृदय को जलाने के लिए समर्थ बनेंगे और तेरे उत्थान-मार्ग में बाधा खड़ी करेंगे । एक समय ऐसा आयेगा तू कल्पांत (चीख-चीख कर रोयेगा) करता रहेगा और संसार तेरे गर्म-गर्म आंसू देखकर मज़ाक करेगा, अतः हे मनुष्य ! तुम जीवन का उत्थान चाहता हो और मोक्ष का सुख प्राप्त करना चाहता हो, तो परमार्थ और परोपकार के पथ पर आगे बढ़ता जा । क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कषाय के मार्ग से दूर होता जा और इन्द्रिय-विषयजन्य सुख से उत्पन्न स्वार्थ के सम्बन्ध तोड़कर प्रभु द्वारा बताये गये आदर्शयुक्त उत्तम जीवन जीने के लिए कृतनिश्चयी बन जा, तभी तुम्हारे उत्थान का मार्ग सुलभ होगा ।

इस बात याद रखिए कि जबतक हृदय में शारीरिक, भौतिक और इन्द्रिय-सुखों की कामना है, तबतक आत्मा की कोई याद नहीं है और आत्मा के विस्मरण में धर्म समझा जाता नहीं है । धर्म के मर्म को समझनेवाले जीव शारीरिक और भौतिक-सुखों के पीछे भटकता नहीं है । योगदृष्टि के खुले बिना जीव धर्म-तत्त्व को समझ सकता नहीं है । बाह्य क्रियाएँ तो भोग दृष्टिवाला भी कर सकता है । एक सेठ जीवराज की बात याद आती है ।

जीवराज सेठ और उन्हें प्रिय वैकुठ

वहुत समय पहले की वात है । उस समय इन्दोर आज की तरह उतना विकसित शहर नहीं था, परन्तु एक छोटा-सा गाँव था । उस गाँव में उस समय पानी के नल भी नहीं थे, ट्युवलाइटें भी नहीं थीं । वड़े वड़े मकान भी न थे । इस गाँव में एक जीवराज नामक सेठ की दुकान थी । यह सेठ वहुत अमीर थे । सात मंजलेवाले वंगले में वह रहते थे । यह सेठ जितने रुपये कमाते थे और

पुरुषार्थ कर धन कमाते थे । उतना ही धर्मकार्य भी करते थे । वे भाल पर आठ-दस तिलक कर के ही दुकान की गद्दी पर बैठते । कोई ग्राहक नहीं होता तब रुद्राक्ष की माला फेरते और भगवान का नाम लेते ।

एक दिन की बात है । नारदजी का विमान (हवाई जहाज) इन्दोर से होकर निकल रहा था । नारदजी की इच्छा इन्दोर देखने की हुई । इसलिए उन्होंने वहीं मैदान में विमान उतरवाया । विमान से उतरकर नारदजी इन्दोर देखने निकले । मैदान के एक कोने में जीवराज सेठ की दुकान थी । दुकान पर सेठ हाथ में रुद्राक्ष की माला लेकर राम-नाम जप रहे थे । नारदजी तो सेठ को अहोभाव से देखते ही रह गये । 'अहाहा... कैसा भक्त है ?' नारदजी ने सेठ के ललाट पर चन्दन के आठ-दस तिलक देखे । हाथ में रुद्राक्ष की माला देखी । नारदजी ने सेठ को भक्त मान लिया और उनकी दुकान पर गये । सेठ ने नारदजी को देखा, वे बहुत खुश हो गये । दुकान से नीचे उतरकर नारदजी के चरणों में साष्टांग दंडवत् प्रणाम किये । नारदजी ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर उन्हें उठाया । सेठ की आँखों में खुशी का महासागर लहराने लगा ।

❑ **जीवराज सेठ और नारदजी :**

सेठ गदगदित होकर कहने लगे - "हे देवर्षि । आज आप मेरे आँगन में पधारकर मेरे जीवन को धन्य कर दिया है । हे परमात्मा ! मुझे तो लगता है जैसे आज मेरे आँगन में स्वयं कल्पवृक्ष आया । अहाहा ! मुझे कामधेनू, कामकुंभ मिल गया है । पधारिए गुरुदेव ! पधारिए ! मुझ गरीब की झोंपड़ी पावन कीजिए ।" नारदजी तो सेठ के विनय-विवेक और भक्ति से पानी-पानी हो गये । सेठ की दुकान की सीढ़ियों चढ़कर नारदजी ऊपर आये । सेठ ने उन्हें सम्मान से और प्रेम से गालीचे पर बिठाये और दो हाथ जोड़कर खड़े रहे । नारदजी ने कहा - "सेठ ! इस संसार में आप कैसे रह गये ? आपके जैसे भक्त को तो वैकुठ (स्वर्ग) में स्थान मिलना चाहिए ।" सेठ ने कहा - "प्रभु ! मेरा ऐसा भाग्य कहाँ कि मुझे वैकुठ में स्थान मिले ? भगवान ! मैं तो अभागा हूँ ।" "नहीं सेठ जी ! नहीं । ऐसा नहीं हो सकता । भगवान आप के जैसे भक्त को वैकुठ में स्थान नहीं देगा तो फिर किसे देगा ? मैं वैकुठ में जाकर भगवान से कहुँगा कि इन्दोर के उस जीवराज सेठ को आप वैकुठ मे तत्काल प्रवेश दीजिए । भगवान तो दयालु हैं; वे आपको तत्काल वैकुठ में प्रवेश देंगे । तो क्या सेठ चलना है न वैकुठ !" नारदजी ने जीवराज सेठ के सामने देखा तो सेठ ने कहा - "भगवन्त ! आप से अब क्या कहूँ ? मेरे तो रोम रोम में राम का नाद गूँज रहा

है । इस संसार में मुझे ज़रा भी चैन नहीं मिलता । मुझे यदि वैकुठ मिल जाय तो प्रभु ! मेरे जन्मोजन्म के फेरे टल जायेंगे ।''

सेठ की बात सुनकर नारदजी प्रसन्न हुए । प्रसन्न क्यों नहीं होते ? आप ऐसी बात करते हों कि महासतीजी ! मुझे मोक्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए । तो मैं प्रसन्न हो जाऊँ । कितनी सुन्दर बात कही, जीवराज सेठ ने ! कितना विवेक ! कितनी सज्जनता ! आप को आता है ऐसा कुछ ? कोई संत आप की दुकान के पास से निकले तो क्या आप बैठे रहते हो या नीचे उतर जाते हो ? (श्रोतागण से आवाज़ : नीचे नहीं उतरते ।) यदि संतों का विवेक करना जब आप नहीं जानते हो, फिर दूसरों का विवेक भला कैसे कर सकते होंगे ? यदि हम में से इतना विवेक भी चला जाय तो समझ लेना कि अभी तक हमने धर्म के स्वरूप को समझा नहीं है । विनय और विवेक के बिना धर्म सम्भव नहीं है। भगवान ने 'दशवैकालिक सूत्र' में फरमाया है कि - *''विणओ मूलो धम्मो ।''* अर्थात् विनय धर्म का मूल है । धर्म का प्रारम्भ विनय से होता है। इसीलिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' में सबसे पहला अध्ययन विनय का बताया है । अगर जीवन में विनय होगा तो दूसरे गुण सहज ही मिल जायेंगे । महापुरुषों का और गुरुदेवों का जीवन में विनय करना तो दूर रहा, परन्तु क्या आप अपने माता-पिता का विनय करते हो ? बुजुर्गों का विनय करते हो ? दिन में तीन-चार बार माता-पिता को प्रणाम करते हो ? (श्रोतागण से आवाज़ : एक बार भी प्रणाम करते शर्म आती है ।) कब पैरों में प्रणाम कर सकते हो ? नम्रता के बिना नमन (प्रणाम) सम्भव नहीं है । आज नम्रता चली गयी है । अभिमान-मिथ्याभिमान बहुत बढ़ रहा है ।

अगर आप को अपने माता-पिता को नमन करते समय शर्म आती है, तो फिर आपके बच्चे क्या करेंगे ? अगर आपको आपके बच्चों ने आपके माता-पिता को प्रणाम करते देखा होगा तो बच्चे आपको प्रणाम कर सकते हैं, परन्तु आपने ऐसा आदर्श दिया नहीं है । बोलिए, दिया है ऐसा आदर्श ? हाँ ! आदर्श दिया है ज़रूर, परन्तु कैसा आदर्श दिया है ? अपमान करने का, तिरस्कार करने का, गालियाँ देने का । याद रखना; आप अपने माता-पिता के साथ जैसा व्यवहार करेंगे ऐसा व्यवहार आपके बच्चे आपके साथ करेंगे । आपके बच्चों को कोन्वेन्ट स्कूल और कोलेजों में भेजकर क्या लाभ पाया ? जो थोड़ी बहुत नम्रता थी, वह भी चली गयी और बन गये अभिमान के पूतले ! अभिमान में कभी नम्रता देखी है ? नम्रता के बिना विनय कहाँ से आता ? विनय के बिना धर्म कहाँ से आता ? विनय की शिक्षा तो बचपन से देना चाहिए ।

❑ जीवराज सेठ का वैकुठ जाने का विचार :

माता-पिता का विनय करनेवाला बच्चा विद्यालय में अपने शिक्षकों का भी विनय करेगा । समाज में बुजुर्गों का विनय करेगा, उपाश्रय में साधु-संतों का विनय करेगा । इस जीवराज सेठ ने नारदजी का कैसा विनय किया ? कितना अधिक विवेक किया ? कहावत है न कि **'विनय वैरी को भी वश कर देता है ।'** शत्रु को वश करने के लिए विनय जड़ी-बूटी है । यहाँ जीवराज सेठ के विनय से नारदजी प्रसन्न हो गये । उनके प्रति शुभभाव जागृत हुआ और नारदजी ने वैकुठ में जाने का विचार किया । जीवराज सेठ को किसी भी तरह से वैकुठ में ले जाने का निर्णय कर नारदजी विमान में बैठे । विमान वैकुठ की ओर रवाना हुआ । जीवराज सेठ नारदजी को विमान में देखते ही रहे । नारदजी तो वैकुठ में पहुँच गये हैं, यह समाचार भगवान को मिला । भगवान ने नारदजी से पूछा - "नारदजी ! मृत्युलोक के क्या समाचार लाये हो ?" नारदजी का मुख थोड़ा गुस्से में था । थोड़ी देर बाद वे बोले - "भगवन् ! मुझे पता नहीं कि आप के राज्य (शासन) में इतना अधिक अन्धेर होगा !"

ऐसा कहकर नारदजी ने तो ज़ोरदार विस्फोट किया । भगवान तो सुनकर थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो गये । फिर मुख पर निर्मल स्मित लाकर जरा हँसते मुख से कहा - "नारदजी ! देवर्षि ! ऐसी क्या बात है कि मेरे राज्य में आप को अन्धेर दिखा ?" "अरे प्रभु ! आप तो अन्तर्यामी होकर मुझ से यह सवाल पूछते हो ? फिर भी ठीक है, कोई बात नहीं । मैं आपको पूरी घटना सुनाता हूँ । अभी मैं मृत्युलोक में गया था, वहाँ इन्दोर देखा । इन्दोर में बसनेवाले जीवराज सेठ से मिला । वाह ! क्या भक्त है ! दिन-रात सदैव आपके ही नाम का जाप करता है । ललाट पर आठ-दश तिलक करता है और आपकी भक्ति करता है । क्या उनका विनय-विवेक है ? वैकुठ में आने की उनकी तीव्र तमन्ना है, तीव्र उत्कण्ठा हैं । उसे वैकुठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए । प्रभु ! आप से कहता हूँ, आप मुझ पर नाराज मत होना, परन्तु आप को ऐसे भक्त की कुछ पड़ी ही नहीं है । आप पापियों को पावन करते हो, परन्तु ऐसे भक्त को..." इतना बोलकर नारदजी रूक गये । भगवान नारदजी की बात समझ गये । भगवान ने आँखें बन्ध कर इन्दोर देखा । इन्दोर में सेठ की दुकान और जीवराज सेठ को देखा । भगवान ने सेठ को बाहर और भीतर से भी देखा । फिर नारदजी से कहा - "हे महर्षि ! यह सेठ वैकुठ में नहीं आयेगा ।" "भगवन् ! वह जरूर आयेगा । मैं उससे पूछकर आया हूँ ।" "नारदजी ! आप भले ही उसे पूछकर आये हो, परन्तु मैं कह रहा हूँ कि वह सेठ वैकुठ में नहीं आयेगा ।" नारदजी गुस्से से बोले -

"भगवन् ! आपकी बात मैं मान सकता नहीं हूँ । माफ कीजिएगा, परन्तु आप मुझे सीधा यही कह दीजिए कि इस सेठ के लिए वैकुठ में कोई स्थान नहीं है । कोई कमरा खाली (रिक्त) नहीं है ।" भगवान को हँसी आ गयी । उन्होंने कहा - "ठीक है, तो आप उस सेठ को ले आइए ।" "भगवन् ! मैं आपका विमान लेकर इन्दोर जाऊँगा और उस सेठ को ले आऊँगा ।" भगवान ने कहा - "ठीक है नारदजी ! आप ले जाइए मेरा विमान ।" नारदजी प्रसन्न होकर अपने स्थान चले गये । भगवान नारदजी को देखते ही रहे । मनुष्य की बाहरी वृत्ति देखकर कई बार मनुष्य मोहित हो जाता है । भगवान जानते थे कि इस सेठ की भक्ति मात्र बाह्याडंबर है । परन्तु नारदजी के कहने पर भगवान को लगा कि - 'ठीक है नारदजी भले ही जाये और सेठ को ले आये ।' आप को भी मोक्षमार्ग में जाना है न ? मोक्ष में जाने की लगन लगी है न ? मोक्ष में ले जानेवाला धर्म ही है । इसलिए मोक्ष चाहिए तो धर्म की शरण स्वीकारिए ।

अब नारदजी भगवान का विमान लेकर जीवराज सेठ को लेने गये । जीवराज सेठ ने नारदजी का स्वागत किया । नारदजी ने कहा - "चलिए सेठ ! तैयार हो जाइए वैकुठ जाने के लिए । भगवान के साथ झगड़ा कर आपके लिए वैकुठ में एक कमरा खाली करवाकर रखा है । यहाँ मैं आपको ले जाने के लिए स्वयं भगवान का विमान लेकर आया, फिर चलिए ।" जीवराज ने कहा - "महर्षि ! आप कितने अधिक करुणावंत हैं ! मेरे जैसे अभागे के लिए आपने कितनी तकलीफ़ उठायी है ? आप दयालु है, परहितकारी हो । आपका उपकार मैं कभी नहीं भूल सकुँगा !" सेठ ने गदगद् स्वर से नारदजी की प्रशंसा की और प्रणाम किये । नारदजी ने कहा - "सेठ ! मेरा उपकार बाद में, पहले आप जल्दी से मेरे साथ चलिए; भगवान आपकी राह देखते होंगे ।" सेठ ने कहा - "वैकुठ में जाने की तो मेरी तीव्र इच्छा है । संसार में अब मुझे कोई रुचि नहीं है, किसी के प्रति राग नहीं है, आसक्ति नहीं है । सचमुच ! अब तो मुझे वैकुठ के सपने आने लगे हैं ।" नारदजी ने कहा - "सेठ जीवराज ! आप भगवान के सच्चे भक्त हो । आप की भक्ति से प्रभावित होकर मैं स्वयं आपको वैकुठ ले जाने आया हूँ । फिर चलिए हम जाते हैं ।"

❑ जीवराज सेठ का वादा :

"महात्मा ! जव आप पहले पधारे थे और मुझे वैकुठ में ले जाने की वात की थी, तब मुझे वहुत आनन्द हुआ था । घर जाकर मैंने तुरन्त अपने वेटे की माँ से कहा था कि - 'अव मैं इस संसार में नहीं रहूँगा । अव मुझे वैकुठ में जाना

है । नारदजी मुझे लेने के लिए आनेवाले हैं ।' मेरी बात सुनकर लड़के की माँ रो पड़ी । रोते रोते उसने कहा – 'आपको वैकुठ में जाना है तो अवश्य जाइए, परन्तु जाने से पहले लड़के का विवाह करवाकर जाइए । मैं आपको फिर वैकुठ जाते नहीं रोकुँगी । अब आपकी वृद्धावस्था है, तब आपको वैकुठ में जाते कैसे रोक सकती हूँ ? परन्तु लड़के का विवाह करवाकर जाइए । अब तो उसका विवाह करीब है । इसलिए विवाह पूर्ण कर फिर आप वैकुठ जाइएगा ।''' ''सेठ ! फिर आपने क्या कहा ?'' ''मैंने कहा कि 'लड़के को विवाह करना होगा तो वह करेगा । अब मेरा मन पल-भर भी संसार में नहीं लग रहा है ।' मेरी बात सुनकर लड़के की माँ गुस्से हो गयी । आपसे क्या कहूँ प्रभु ! आपको भी गालियाँ दी, तब मुझसे रहा न गया । मैंने कहा – 'ठीक है, तुम नारदजी को गालियाँ मत दो । मैं लड़के का विवाह पूर्णकर जाऊँगा ।' बाद में वह शान्त हुई । भगवन् ! आपकी निन्दा मैं कैसे सह सकता था भला ! मैं तो अभी आप के साथ आने के लिए तैयार हूँ, परन्तु लोग आपको गालियाँ दे, आप की निन्दा करे, इसलिए मैं क्या करूँ ?'' नारदजी ने सेठ से कहा – ''सेठ ! आपको क्या करना हैं ?'' ''प्रभु ! आप एक महीने बाद पधारिएगा, तब मैं आप के साथ अवश्य आऊँगा । मुझे तो संसार विष-समान लगता है ।'' ''ठीक है मैं जाता हूँ ।'' ऐसा कहकर नारदजी वहाँ से रवाना हुए ।

जीवराज सेठ को वैकुठ जाना नहीं था, परन्तु दुनिया को यह दिखाना था कि मुझे वैकुठ प्रिय है । जिसे वैकुठ प्रिय हो उसे संसार के आदर-सत्कार या निन्दा की कोई परवा नहीं होती । जीवराज सेठ को संसार की दृष्टि में धर्मात्मा बनना था । जीवराज सेठ की तरह आप भी कहते हो न कि हमें मोक्ष चाहिए, परन्तु कोई देव आपके पास आ जाय और कहे कि चलिए, महाविदेह में सीमन्धर-स्वामी भगवान के पास । तो आप क्या करते ? उस देव के साथ उन्हीं पहने हुए कपड़ों में जायेंगे या फिर घर के सदस्यों को पूछने जायेंगे ? आप कुछ नहीं बोलेंगे तो आपकी दुर्दशा इस सेठ जैसी है । अगर मोक्ष पाना है तो संसार छोड़ना पड़ेगा । चाहते हो संसार और माँगते हो मोक्ष, फिर कैसे मिल सकता है ? मोक्ष प्राप्त करने के लिए संसार छोड़ना पड़ता है और आत्मा को पुरुषार्थ करना पड़ता है । मेहनत के बिना कोई चीज़ मिलती नहीं है । दुनिया की सामान्य वस्तु के दर्शन भी मेहनत के बिना सम्भव नहीं है, फिर हमें तो परमपद प्राप्त करना है, फिर सोचिए, कितनी मेहनत करनी पड़ेगी ? जो चीज़ें नाशवंत हैं, क्षणभंगुर हैं, उसे प्राप्त करने के लिए रात-दिन मेहनत करते हो, परन्तु जो शाश्वत-सुख

देनेवाला, ऐसे मोक्ष के लिए मेहनत नहीं करते । मोक्ष में क्या है ? मोक्ष से कैसा सुख मिलता है ? आदि जानते हो ? आत्मा की अशरीरी, अमोही, अद्वेषी स्थिति प्राप्त करने का मन होता है ? परमानन्द पूर्ण, सच्चिदानन्दमय, आत्मस्थिति प्राप्त करने के मनोरथ जागृत होते हैं ? 'हमें मोक्ष प्राप्त करना है' ऐसा बोलने मात्र से मोक्ष मिलनेवाला नहीं है । इस प्रकार किसी को मिला भी नहीं है । थोड़े समय के लिए जीव को यदि हवा न मिले तो कैसी बेचैनी और घबराहट होती है, इतनी बेचैनी और घबराहट जीव को मोक्ष नहीं मिला इसकी हुई है कभी ? नहीं । अशरीरी बनने की बड़ी-बड़ी बातें करे और शरीर पर अपार मोह करे, अरागी, अद्वेषी बनने की बातें करे और रागद्वेषी की होलियाँ खेले, अनन्त-ज्ञानमय आत्मस्थिति प्राप्त करने की बातें करे और पूरा जीवन पर्यन्त घोर अज्ञान में बिताये, तो फिर मोक्ष मिलेगा क्या ?

मुक्ति का आनन्द पाना होगा तो मात्र बातें करने से नहीं मिलेगा । मुख से मुक्ति-मुक्ति करते रहते हो, परन्तु भीतर से संसार की माया भारी हो, तो मुक्ति कहाँ से मिलेगी ? उस जीवराज सेठ को वैकुठ का ज्ञान न था । मात्र संसार को आड़म्बर कर यह दिखाना था कि सेठ को वैकुठ में जाने की कितनी लगन है ? नारदजी स्वयं लेने आये फिर भी बेटे के अनुराग के कारण नारदजी को वापस लौटा दिया और कहा - 'आप एक महीने बाद आइएगा ।' नारदजी तो वैकुठ में भगवान के पास गये । भगवान नें पूछा - "कहाँ है नारदजी वे सेठ ?" "भगवन् ! वे तो उनके बेटे का विवाह करवा कर फिर आयेंगे ।" भगवान ने कहा - "नारदजी ! वह सेठ विवाह के बाद भी नहीं आयेंगे ।" नारदजी ने सेठ का पक्ष लेते हुए कहा - "भगवन् ! संसारी जीवों को अपना-अपना व्यवहार भी तो संभालना पड़ता है न ? सेठ के हृदय में तो आपका नाम है । उन्हें वैकुठ के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए, वे तो अनासक्त भाव से विवाह का व्यवहार करेंगे ।"

❑ जीवराज सेठ का दूसरा वादा :

एक महीने बाद नारदजी भगवान का विमान लेकर पुनः जीवराज सेठ के घर गये । नारदजी को दूर से देखकर सेठ दुकान पर से नीचे उतर आये और विनय-विवेकपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया । नारदजी ने कहा - "सेठजी ! आपने कहा था न कि महीने बाद आना ? इसलिए मैं पुनः आप को वैकुठ में ले जाने आया हूँ ।" सेठ ने कहा - "अहो ! परम उपकारी ऋषीश्वर ! आप की मेरे प्रति कितनी करुणा है ? आप मेरे वन्दनीय, पूजनीय हो । वैकुठ में मेरी आने की पूर्ण तैयारी है । संसार में मुझे रुचि नहीं है । यह संसार सपने जैसा है ।" नारदजी ने

कहा - "आप को संसार के प्रति इतना अधिक तिरस्कार है, तो अब चलिए उठिए जल्दी । अब देर मत करना ।" "महर्षि ! मुझे तो पलभर का भी विलम्ब नहीं करना है, परन्तु मैंने अपने घर में बात की तो लड़के की माँ ने कहा - 'आप तो मन से वैकुठ में ही हो । आपके लिए तो यह घर वैकुठ ही है । फिर भी अगर आप को वैकुठ में जाना है तो लड़के के घर पौत्र का जन्म हो जाय फिर खुशी से जाइएगा । अभी आप जाओगे तो आप के मन में ऐसा होगा कि अरे... मैंने तो अपने पौत्र का मुँह भी न देखा । ऐसी वासना आप के मन में रह जाय और आप वैकुठ में जाओ यह ठीक नहीं है । अधिक नहीं एक वर्ष रूक जाइए । घर में पौत्र का मुख देखकर पारणा झुलाकर फिर जाना ।'''

सेठ की बात सुनकर नारदजी तो सोच में पड़ गये, फिर पूछा - "फिर अब क्या निर्णय किया है ? मेरे साथ वैकुठ में आना है या नहीं है ?" सेठ ने कहा - "ऋषीश्वर ! जीवन पर्यन्त जिस के साथ रहा, उसकी इच्छा के विपरीत वैकुठ आना मुझे ठीक नहीं लगता है, अन्यथा मुझे किसी के प्रति अनुराग नहीं है । (हँसते हैं) एक वर्ष संसार में रह जाऊँगा । तो उसका मन भी राज़ी (खुश) हो जायेगा । आप कृपया अगले वर्ष पधारिएगा । मैं आप का उपकार भवोभव नहीं भूलुँगा ।" नारदजी को भगवान के वचन याद आये । सचमुच, भगवान कहते थे कि वह नहीं आयेंगे परन्तु नारदजी ने अब एक बार फिर प्रयत्न करने का निर्णय किया, क्योंकि अब प्रश्न इज्ज़त का था । नारदजी ने भगवान की बात को झूठा सिद्ध कर सेठ को वैकुठ में ले जाने की प्रतिज्ञा की थी । जब इज्ज़त का प्रश्न बन जाता है तब उसे सुलझाने के लिए मनुष्य अनेक प्रयास करता है । नारदजी को मन ही मन लगा कि मैं सेठ को वैकुठ में नहीं ले जा सकुँगा, तो मेरा मज़ाक होगा और इज्ज़त जायेगी । स्वयं वैकुठ में जाना सरल है परन्तु दूसरे को वैकुठ में ले जाना दुष्कर (असम्भव) कार्य है ।

❑ नारदजी सेठ का सच्चा रूप पहचान न सके :

सचमुच, नारदजी तो फँस गये और वह भी ऐसे मनुष्य के हाथ में फँसे कि जो दम्भी था, मायावी था, बाहर भक्त होने का आडम्बर करता था, परन्तु भीतर से तो उसे संसार के प्रति अपार आसक्ति थी । नारदजी ने सेठ के बाहरी रूप को ही सच्चा रूप मान लिया और फँस गये । सचमुच ! मायावी मनुष्य की माया-जाल की हमें पता नहीं चलता है । आज दुनिया में जो मनुष्य फँसते हैं, वे बाहर के दिखावे से फँसते हैं, अपितु दुनिया में तो अधिकतर लोग स्वार्थवश और लोभ के वश होकर फँस जाते हैं । नारदजी को ऐसा कोई स्वार्थ नहीं था । उनकी तो

परमार्थ दृष्टि थी । उनमें तो भक्त को मुक्ति दिलाने का भाव था । नारदजी ने सेठ की एक वर्ष की अवधि मान ली और सीधे पहुँच गये वैकुठ ।

भगवान ने कहा - "नारदजी ! इस सेठ को आप अब छोड़ दीजिए । अब वे यहाँ नहीं आयेंगे ।" परन्तु नारदजी न माने । उन्होंने सेठ को वैकुठ में लाने के अपने निर्णय की जानकारी दी । नारदजी भगवान की बात मानने के लिए तैयार न हुए । ज़िद्द यानी हठ, वह ऐसी वस्तु है कि जिसके भीतर अभिमान बैठा होता है । अभिमान मनुष्य को कभी भी गिरा देता है । जमालिकुमार को किसने गिराया था ? भगवान महावीरस्वामी सर्वत्र वीतराग थे । उनकी बात जमालि ने न मानी । आप यह बात अनेकबार सुन गये हो । जमालि के अहंकार ने भगवान की सर्वज्ञता का अनादर किया और परिणामतः जमालिमुनि भगवान को छोड़कर अलग हो गये । अभिमानयुक्त जिद्द के परिणाम भयानक आते हैं । ज्ञानयुक्त ज़िद्द अच्छी, परन्तु अभिमानयुक्त ज़िद्द अच्छी नहीं होती । मनुष्य में ज्ञानयुक्त ज़िद्द होती है, तो जब वह अपनी भूल समझता है तब वह उस ज़िद्द को छोड़ देता है, परन्तु अभिमान होता है, वह अपनी भूल समझने के बावजूद उसे छोड़ता नहीं है ।

नारदजी ने हठ ली है, सेठ को वैकुठ में ले आने की, मन में मान आया है कि यदि मैं सेठ को लेकर नहीं आऊँगा तो मेरी इज्ज़त जायेगी, इसलिए हठ कर बैठे हैं । इस ओर सेठ तो वैकुठ में जाने कि लिए झूठी अवधि (मुद्दत) देते रहे और यमराज का रथ आ गया ।

इस दृष्टांत से हमें क्या समझना है ? मात्र मोक्ष-मोक्ष की बातें करने से मोक्ष नहीं मिलेगा । मोक्ष तो बहुत दूर की बात है, परन्तु आप घर और दुकान से मुक्त होने की इच्छा करते हो ? धन-वैभव और भोग-विलास से मुक्त होने की इच्छा होती है ? जबतक यहाँ के भौतिक-वैषयिक-सुखों से मुक्ति प्राप्त करने की भावना होती नहीं, तबतक कर्मक्षयजन्य मुक्ति की बातें करना व्यर्थ है - आड़म्बर है । यदि किसी को ले जाने से मोक्ष में जा सकते होते, तो फिर सभी मोक्ष में चले जाते अर्थात् सभी को मोक्ष मिल जाता । प्रत्येक तीर्थंकर के हृदय में एक ही भावना होती है कि प्रत्येक जीव मुक्त हो । उनकी तो शक्ति अपूर्व (अपार) होती है । फिर वे क्यों सब को मोक्ष में नहीं ले गये ? तीर्थंकर हो या केवली हो, कोई भी चाहे कैसी भी पूर्ण दिव्य विभूति हो, परन्तु वे तो मार्ग दिखाते हैं, उन्हें मोक्ष नहीं दिलवा सकते । वह तो स्वयं प्राप्त करना होता है उसे प्राप्त करने के लिए प्रवल साधना और पुरुपार्थ चाहिए । अधिक उपदेश वाद में ।

कोई कुम्हार यदि मिट्टी की खान पर ले जाय तो मिट्टी खोदती हूँ, कोयले की खान पर कोयलें और हीरे की खान पर हीरे निकालती हूँ, अन्यथा मेरा कोई अपराध नहीं है ।" दोष खोदनेवाले का है, कोश (चरसा) तो वही है, परन्तु फिर भी हीरे, मिट्टी या कोयले आदि प्राप्त करना खोदनेवाले के हाथ की (बस की) बात है । वैसे ही शुभ में प्रवृत्त होना या अशुभ में, यह हमारे बस की बात है । मन विशुद्ध यदि विशुद्ध होगा तो वृत्ति में वैराग्य आयेगा और वृत्ति में वैराग्य आये तो ही प्रवृत्ति में वैराग्य अपने आप आ सकता है, यह सत्य है, परन्तु मन में यदि सड़न पैदा हो गयी, तो वृत्ति में घुस जायेगी और वृत्ति में घुस गयी तो व्यवहार में भी सड़न आ जायेगी, अतः बहुत सावधानी रखिए ।

ऊँगली पक गयी है और डॉक्टर के पास गये तो डॉक्टर ने कहा कि - "सेप्टी (सड़न) हो गयी है, इसलिए इतनी ऊँगली कटवा दीजिए," तो भविष्य का विचार कर तत्काल करवा देते हो । उसी प्रकार ज्ञानी कहते हैं कि - "मन में पैदा हुआ एक पापी विचार सारे जीवन को बिगाड़ता है, इसलिए मन में पाप को रहने मत दीजिए ।"

जैनदर्शन में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार आदि चार दोष बताये हैं । अतिक्रम यानी पाप करने का परिणाम । व्यक्ति के व्यतिक्रम यानी पाप करने की भावना का दृढ़ होना, अतिचार यानी पाप करने के लिए तैयार होना और अनाचार यानी पाप का सेवन करना । अतिचार तक आया मनुष्य वापस लौट सकेगा, परन्तु जहाँ पाप का सेवन हो गया, तो फिर पाप को भुगते बिना कोई मार्ग जीव के लिए नहीं है । अतः पाप करने की वृत्ति जागृत हो कि तुरन्त उसे नष्ट कीजिए । आपकी वृत्ति में से संसार के राग-द्वेष और कषायरूपी कचरा निकाल फैंकिए । भीतर यदि कचरा (कूडा) भरा होगा तो अच्छी वस्तु में भी कचरा दिखेगा । जैसे किसी मनुष्य को पीलिया हुआ हो तो उसके सामने सफेद वस्तु रखकर पूछने पर वह पीला है यह कहेगा । यह आँखों का दोष नहीं है, परन्तु भीतर-स्थित पीलिया का दोष है । पीलिया का रोगी सर्वत्र पीला देखता है, वैसे ही अवगुणी जीव सर्वत्र अवगुण ही देखता है ।

दृष्टि दृष्टि में फर्क

एक किसान खेत में जोतने का काम कर रहा था । उस समय एक मनुष्य आकुल-व्याकुल होता हुआ आकर कहने लगा - "भाई ! मुझे पानी पिलाइए । मैं बहुत प्यासा हूँ ।" किसान ने उसे पानी पिलाया और कहा - "भाई ! आप इतने अधिक चंचल मनवाले क्यों दिखते हो ?" तब उसने कहा - "भाई ! क्या

बात कहते हैं कि गाँव बहुत बुरा है । गाँव में एक भी [illegible] नहीं है ।
लिए गाँव छोड़कर भाग आया हूँ । आपका गाँव कैसा है ? [illegible]
''भाई ! हमारा गाँव तो तुम्हारे गाँव से भी बहुत बुरा है । [illegible]
नहीं है । गाँव की सीमा से [illegible] ।'' तब किसान ने [illegible]
था । इसने सोचा कि 'हमारा गाँव तो [illegible] बहुत बुरा है । [illegible]
सदाचारी है । लूट-फाट का नाम ही नहीं है । किसान का लड़का [illegible]
भी निकले तो आँख उठाकर भी देखता नहीं है । बहन-बेटियाँ [illegible]
व्यसन नहीं है और मेरे पिताजी ऐसा क्यों कहते होंगे ?' अपने गाँव का [illegible]
को गौरव था । यौवन का गर्म खून था । हाथ में धारिया (एक धारदार हथियार)
लिया, गाँव को बुरा कहनेवाले पिता का गला काट लेने के लिए । [illegible]
मारने जा रहा था कि तभी दूसरा किसान आ गया । वह भी पहलेवाले की तरह
आकुल-व्याकुल था । उसे किसान ने पूछा - ''भाई ! आप चिन्तातुर और व्याकुल
क्यों दिखते हो ?'' तब उस भाई ने कहा - ''भाई ! मेरे अवगुण की क्या बात
करूँ ? हमारे सारे गाँव के लोग ऐसे गुणवान और प्रेमी हैं कि बात मत
पूछिए । मैं एक बुरा मनुष्य हूँ । अवगुण से भरा हूँ । इसलिए मुझे लगा कि मेरे
कारण सारा गाँव बुरा ही बन जायेगा, इसलिए गाँव छोड़कर भाग आया हूँ ।
भैया कहिए आपका यह गाँव कैसा है ?'' तब किसान ने कहा - ''भाई ! हमारा
गाँव - स्वर्गभूमि जैसा पवित्र है । आप हमारे गाँव में रहिए, आप को खुशी
होगी ।'' तव लड़का सोचता है कि 'दोनों के अलग अलग उत्तर देने का कारण
क्या होगा ?' वाद में बाप से पूछा, तब बाप ने कहा - ''बेटे ! जो पहले आया
था वह सबको बुरा कहता था, इसलिए वह स्वयं ही बुरा था । ऐसा बुरा
मनुष्य आ जाय तो सारे गाँव को बिगाड देता । इसलिए उसे ऐसा उत्तर देकर
भगा दिया । यह मनुष्य कहता है कि-'मेरा सारा गाँव अच्छा है, मैं स्वयं बुरा
हूँ ।' इसलिए गुणवान है । ऐसा मनुष्य हमारे गाँव में आयेगा, तो हमें बहुत
लाभ होगा । गुणवान का संग करने से हम भी गुणवान बन जाते हैं ।''

भगवान ने कहा है - ''देवानुप्रिय ! आप वृत्तियों में से विकार को बाहर
निकाल दीजिए । दूसरों के दोष देखने से अच्छा है स्वदोष का निरीक्षण कर
एक-एक दोष को निकाल कर दूर कीजिए, दुर्गुण दूर होगा तो वृत्ति में वैराग्य
ाव आयेगा और जीवन की प्रकृतियाँ सुधरेगी । अन्यथा विकार वृत्ति जीवन को
रवाद करती हैं और ब्रह्मचर्य के भाव आत्मा को आबाद करते हैं । ब्रह्मचर्य
ह्मचर्य का तेज अलौकिक होता है ।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव

एक बादशाह की बेग़म गर्भवती थी, नौ महीने हो जाने के बावजुद उसे प्रसूति नहीं हो रही । वेदना की कोई सीमा नहीं हैं और चीख-चीखकर रो रही है । बादशाह ने वैद्य, हकीमों और डॉक्टरों को बुलवाया । अनेक इलाजों के बावजुद भी कोई इलाज काम में नहीं आ रहा । एक बार कस्तूरबा को प्रसूति हो नहीं रही थी । उनकी वेदना की चीखें सुनकर गाँधीजी ने निर्णय किया कि-'अगर दोनों जीव बच जायेंगे तो मैं जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा ।' स्त्रियों को ऐसा कष्ट सहना पड़ता है, यह पुरुषों की विषयवृत्तियों के कारण । आप भी महात्मा गाँधी के जैसा जीवन पवित्र बनाइएगा और जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन कीजिएगा ।

बेग़म को प्रसूति नहीं हो रही, वेदना की कोई सीमा नहीं और कोई इलाज़ काम में नहीं आ रहा । उस समय चाँपा ने कहा - "बादशाह ! सारी दवाइयाँ फैंक दीजिए । मेरी दवाई लीजिए ।" बादशाह ने कहा - "बेटा ! बड़े बड़े डॉक्टरों के इलाज़ भी काम न आये तो तुम क्या करोंगे ?" तब उसने कहा - "आप चिन्ता मत कीजिए । मैं किसी भी प्रकार से बेगमसाहिबा को दुःख से मुक्त कर दूँगा । लोगों के सामने यह दवाई नहीं दी जा सकती ।" उसने दिखावे के लिए कमरा बन्द कर लिया । दस मिनट तक एक-चित्त से नवकार मंत्र का स्मरण किया, कमरा बन्द करने से ललाट पर पसीना आ गया था । उस पसीने के दो बूँद पानी के ग्लास में डालकर बेगम को पीला दिया । इस पसीने के बूँद बेग़म के पेट में गये और थोड़ी देर बाद पुत्र का जन्म हुआ । बादशाह के महल में खुशी छा गयी । बादशाह ने पूछा - "भाई ! तुमने कौन-सा उपाय किया ? ऐसी कौन-सी दवाई दी कि जो बड़े-बड़े डॉक्टर न कर सके वह तुमने कर दिखाया ?" चाँपा ने कहा - "जहाँपनाए ! यह तो मैं बता नहीं सकता ।" बादशाह ने कहा - "तुम्हें कहना तो पड़ेगा ।" तब चाँपा ने कहा - "बादशाह ! मेरे माता-पिता ने उनके जीवन में संपूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन किया है, शायद काम-वासना को जीत न सके, इसलिए एक दिन की छूट रखी थी । उन्हों ने एक दिन अब्रह्मचर्य का सेवन किया और उसमें मेरी माता को गर्भ रह गया और मेरा जन्म हुआ । मैं छ महीना का था, तब मुझे गुदड़ी में सुलाया था । मैं खेल रहा था और मेरे माता-पिता बैठे थे । उस समय मेरी माता को देखकर मेरे पिता ने थोड़ी छेड़छाड़ करते हुए मेरी माता के गाल पर थप्पड़ मारी । यह देखकर मेरी माता को गुस्सा आ गया - 'स्वामीनाथ ! हम दोनों के बीच में तीसरा जमीन पर सोया है और आप मेरे सामने विकारी दृष्टि से कैसे देख रहे हैं ? देखिए, यह

छ महीने का बच्चा करवट बदलकर सो गया । जब उसे लज्जा आ गयी, परन्तु आप को लज्जा क्यों न आयी ? बच्चे के जीवन में संस्कार कैसे आयेंगे ?'''

देवानुप्रिय ! आज आप जीवन में क्या कर रहे हो ? यह तो छ महीने का बच्चा था और यहाँ तो युवक-युवतियाँ हो, तब भी माँ-बाप के साथ घुमने-फिरने और सिनेमा देखने जाते हैं, फिर आप की संतानें कैसे बनेंगे ? चाँपा ने कहा - ''बादशाह ! मेरी माता को ऐसी लज्जा आ गयी कि उसका प्रायश्चित्त करने के लिए गले में फँदा डालकर मर गयी । मरते मरते मेरे कान में कहती गयी कि - 'बेटे ! शूरवीर और धैर्यवान बनना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, चारित्र्य के लिए सब कुछ न्योछावर कर जाना । तुम्हारे जीवन में संस्कार का सिंचन करने के लिए मैं अपने प्राण का बलिदान देती हूँ ।' मेरी माँ मुझे छ महीने का छोड़कर मर गयी थी, ऐसी वीर माता का मैं पुत्र हूँ, मैंने अभी तक जीवन में ब्रह्मचर्य को खण्डित नहीं किया हैं । मैं अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ । जो मन, वचन, काया से शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके पसीने और मल-मूत्र में ऐसी शक्ति पैदा होती है कि बड़े बड़े असाध्य रोग दूर हो जाते हैं । मेरे पसीने के दो बूँद पानी में डालकर बेगम को दिये, तो उनकी वेदना शांत हो गयी । क्षेमपूर्वक बच्चे का जन्म हुआ । ब्रह्मचर्य में इतनी ताक़त है ।'' आप संसार में रहकर कामना पर विजय प्राप्त कर सकते हो ? वृत्तियों में से विकार जाय तो वैराग्य आते देर लगती नहीं है । आत्म-साधना करने में आज का मनुष्य बहुत दुर्बल बन गया है और पुरुषार्थ भी बहुत अल्प करता है । फिर धर्म कहाँ से आता ? इस जीवन का क्या भरोसा ? 'उत्तराध्ययन सूत्र' में भगवान ने फरमाया है - ''*दुमपत्तए पंडुरए जहा ।*'' वृक्ष पर से पीले पत्ते रात्रि के समय गिर पड़ते हैं, वैसे मनुष्य का जीवनरूपी पत्ता कब गिर पड़े, पता नहीं । इसलिए जीवन में कुछ कर लीजिए, तप कीजिए । ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए और अधिक भावना जगे तो दीक्षा लीजिए ।

बादशाह ने चाँपा के गुण गाये - ''धन्य है बेटे तुम्हें और तुम्हारी माता को कि इतनी छोटी-सी उम्र में तुम इतने प्रभावशाली मनुष्य बन सका ।'' इतिहास के पन्नों में चाँपा का नाम अमर हो गया । आप भी ऐसा बनेंगे तो मनुष्यजीवन सार्थक बनेगा । आज महाराष्ट्र के कोने कोने में शिवाजी के गुणगान गाये जाते हैं । किसका प्रभाव है चारित्र्य का । जिसकी वृत्ति में विकार न हो, उसकी प्रवृत्ति भी पवित्र होती है । चारित्र्यवान आत्मा गिरते को बचाता है, परन्तु कब ? चारित्र्य के पालन के लिए अपनी काया को कुर्बान कर देता है । इस पवित्र भारतभूमि में कितनी सारी पवित्र सतियाँ पैदा हो गयी ? उन्होंने ही तो भारत की शान बढ़ायी है ।

स्त्रीरत्न सोनरानी का सतीत्व

❑ बादशाह का प्रश्न :

सोलहवीं सदी की बात है । एक बार दिल्ली के बादशाह अकबर भरचक सभा भरकर बैठे थे । राजपूत राजाओं को राजकार्य हेतु बुलाया था । राजकार्य से सम्बन्धित बातचीत करने के बाद बादशाह ने ज्ञानगोष्ठि प्रारम्भ की । उसमें बातों बातों में बादशाह ने पूछा - ''हे समस्त राजाओं ! हिन्दू-शास्त्र में सती-सतियों के अनेक दृष्टान्त हैं, तो अभी आपके किसी के घर में ऐसी स्त्रियाँ हैं ?'' यह सुनकर सभा में बैठे सभी राजपूत मौन रहे । सिर झुकाकर बैठे रहे । सभा शांत थी । बादशाह सभा के सामने देख रहे थे । प्रत्येक राजपूत के घर में सती स्त्री थी । मौन बैठने का अर्थ यह नहीं कि उनके घरों में सती स्त्रियाँ नहीं थी, परन्तु बादशाह के सामने कहने कि किसी की ताक़त न थी कि 'हमारे घरों में पहले के जैसी सती-प्रतिव्रता नारियाँ हैं ।' अगर ये लोग 'हाँ' कह दे और बादशाह कसौटी की बात कहे तो मुफ्त में मुसीबत में फँसना पड़े - इससे अच्छा है कि कुछ बोले ही नहीं ! यही सोचकर राजपूत मौन रहे । बादशाह के प्रश्न का कोई उत्तर दे सकता नहीं है, इसलिए बादशाह के मुख पर वक्रता छा गयी । राजपूतों के मुख फीके पड़ गये । सभी सिर झुकाकर बैठे रहे, परन्तु एक राजपूत से रहा न गया । वह कौन था ?

❑ हाड़ा की हिंमत और शर्त :

इस सभा में चांपराज हाड़ा मौजुद था । इससे राजा के वचन सह न गये । क्षत्रिय का तेज उसके मुख पर झलकता है, ऐसा चांपराज हाड़ा खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा - ''जहाँपनाह ! यह पृथ्वी रत्नों से भरी है 'बहुरत्ना वसुन्धरा ।' भारत में से सती स्त्रियों का वंश गया नहीं है । अभी भी इस भारत-

वचन हैं । आपको जिस प्रकार से परीक्षा करनी हो – कीजिए । अगर मेरी पत्नी का शीयल (चारित्र) कोई खण्डित कर दे, तो मैं अपना सिर काटने के लिए तैयार हूँ । मेरी सोनरानी का शीयल खण्डित करना असम्भव है ।''

❑ **बादशाह का आह्वान :**

अकबर बादशाह ने सभा में नज़र दौड़ाई और पूछा – ''बोलिए, इस चांपराज हाड़ा की सती स्त्री के चारित्र्य की परीक्षा करने की किसी में ताक़त है ?'' देवानुप्रिय ! सती के सतीत्व की परीक्षा करना कोई खेल नहीं है । मणिधर नाग के सिर से मणि लेने जैसा और सिंह की अयाल (केसर) लेने जैसा जितना कठिन है, इससे भी अधिक कठिन सती के सतीत्व की कसौटी है । चारों तरफ बादशाह ने दृष्टि की, परन्तु किसी में हिंमत नहीं है । अन्त में बादशाह का एक सेवक शेरखाँ नामक सिपाही था, उसने बीड़ा उठाया । उसने खड़े होकर कहा – ''जहाँपनाह ! मैं जाने के लिए तैयार हूँ ।'' सभी की दृष्टि उस सिपाही पर केन्द्रित हुई । अहो ! यह एक सामान्य सिपाही भला क्या करेगा ? सब कह उठे – ''शेरखाँ ! हाड़ा की शर्त याद है न ?'' शेरखाँ ने कहा – ''जी हाँ ! हाड़ा की रानी का शीयल छ महीने में खण्डित करूँ तो चांपराज हाड़ा का सिर ले लूँ और अगर यह न हो सका तो अपना सिर दे दूँ ।'' शर्त तय हो गयी । साथ में यह भी तय हुआ की 'जबतक शेरखाँ न आये तबतक चांपराज हाड़ा को दिल्ली में नज़रकैद रखा जाय ।' दोनों की मंजूरी पर हस्ताक्षर लिये गये । चांपराज को अपनी पत्नी पर पूरा विश्वास था कि 'यह प्राण छोड़ेगी, परन्तु मेरी सोनरानी चारित्र्य नहीं छोड़ेगी । ऐसी वह पवित्रता की मूर्ति है, साक्षात् देवी है, इसलिए मैं भले ही दिल्ली में रहूँ । मुझे उसे कहने की या समाचार भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है ।' हाड़ा के हृदय में शांति और विश्वास था । बोलिए, आपको अपनी पत्नी पर या पत्नी को आप पर इतना विश्वास है ?

❑ **शेरखाँ का बुंदी-कोटागमन :**

शेरखाँ बीड़ा स्वीकार कर दूसरे दिन बुंदी-कोटा जाने के लिए रवाना हुआ । वहाँ जाकर एक धर्मशाला में ठहरा । बुंदी-कोटा में घुमने लगा । वहाँ के प्रतिष्ठित जनता से शेरखाँ ने पूछा – ''आपके राजा कौन हैं ? वह यहाँ है या नहीं ?'' तब प्रजाजनों ने कहा – ''वह राज्य के काम से दिल्ली गये है । उनका नाम चांपराज हाड़ा है ।'' बाद शेरखाँ पूछता है – ''उनकी रानी कौन है ? उनका रहन-सहन कैसा है ?'' जनता ने कहा – ''भाई ! लगता है आप यहाँ अजनबी हैं । हमारे महाराज की सोनरानी साक्षात् महान पवित्र शक्ति का अवतार है ? उनके अशुची पुद्गलों

में भी ऐसी ताक़त है कि रोगी के रोग दूर हो जाते हैं । भूत-पिशाच भाग जाते है । कोई उनके सामने कुदृष्टि से देख नहीं सकता । यदि देख ले तो जलकर खाक हो जाय ऐसा है उनके सतीत्व का प्रभाव ।" अनेक लोगों से पूछा, परन्तु उत्तर तो एक ही मिला । बुंदी-कोटा में रहकर शेरखाँ ने अनेक प्रयास किये, परन्तु रानी की अड़िगता के आगे उसकी कोई करामात न चली । शेरखाँ सती का मुख देख ही न सका । इस प्रकार चार महीने चले गये, परन्तु शेरखाँ की कोई युक्ति काम में न आयी । इसलिए वह बहुत परेशान हो गया । वह सोचने लगा कि-'मैं बीड़ा उठाकर आया तो हूँ, परन्तु यदि कुछ नहीं हुआ तो चांपराज को सिर देना पड़ेगा । इसलिए कुछ भी करके कोई ऐसी युक्ति करूँ कि जिससे मैं सोनरानी का शीयल खण्डित कर आया हूँ और उसके यहाँ रहकर आया हूँ ऐसा प्रमाण देने के लिए एक-दो चीज़े यदि मिल जाय तो निशानी के रूप में दिया जा सकता है ।'

❑ शेरखाँ वेश्या के घर :

बहुत सोचकर शेरखाँ बुंदी-कोटा की एक बहुत ही चालाक मदनसेना नामक वेश्या के घर गया । उसे अपनी सारी बातें बताकर यह कहा कि - "तुम्हें किसी भी प्रकार से सोनरानी के गुप्त अवयव के चिह्न को देख आ या हाड़ा द्वारा दी गयी कोई भी एक-दो प्रिय वस्तु ले आये, तो तेरा महान उपकार मानुँगा और जीवन पर्यन्त यह व्यवसाय न करना पडे उतना धन दूँगा ।" मदनसेना ने पहले तो जाने का मना किया और कहा कि - "मैं कुछ चाहे कितनी भी चालाक होऊँ, परन्तु उस सती के पास जाकर उन्हें छल सकूँ यह सम्भव नहीं है ।" तब शेरखाँ ने कहा कि - "यदि मेरा तुमने काम कर दिया तो जो तुम चाहोगी मैं दुँगा ।" बहुत गिड़गिड़ाने पर मदनसेना ने काम करने का निश्चय किया, तब शेरखाँ को चैन आया ।

❑ मदनसेना की युक्ति :

मदनसेना बहुत चालाक थी । उसमें भी सोनरानी के जीवन से परिचित थी, इसलिए छल-कपट के बिना तो जीतना सम्भव नहीं था । उसने वेश्या का स्वांग उतारकर क्षत्राणी का स्वांग सजाया और बहुत दूर परदेश से आती हो इस प्रकार नौकर-चाकर और वाहन आदि ठाठबाठ से बुंदी-कोटा में प्रवेश किया और राजमहल में सन्देशा भिजवाया कि 'चांपराज की वुआजी (फूफी) आयी है ।' सोनरानी को समाचार मिलने पर खुश हो गयी । हाड़ा की वुआजी पधारी हैं और वह भी उनकी अनुपस्थिति में, इसलिए उनकी सेवा में कोई कसर न छूट जाय

इसका ख्याल रखना चाहिए । बहुत धूमधाम से बुआजी का स्वागत करवाया । हाड़ा के पास अनेक बार बुआजी की प्रशंसा सुनी थी, इसलिए सोना को बुआजी को मिलने का मन होता था । आज स्वयं बुआजी उसके घर पधारे हैं, इसलिए उसे बुआजी के प्रति बहुत सम्मान पैदा हुआ । सोनरानी में जितनी वीरता थी उतनी सरलता भी थी । बुआजी सोनरानी के साथ मीठी-मीठी बातें करती, प्रेम दिखाती कि सोन का कोमल हृदय पीगल जाता ।

देवानुप्रिय ! आज सच से अधिक झूठ में प्रकाश होता है । झूठा सच्चे को धुँधला बना देता है, इस प्रकार वेश्या के कृत्रिम प्रेम से सोनरानी का हृदय जीत लिया । सीधी-सादी सोना को पता न था कि यह बुआजी के भेष (स्वांग) में विष-भरी वेश्या है । सोन की पति-परायणता और सतीत्व का प्रभाव देखकर वेश्या सोचती कि - 'अहो ! कहाँ इसकी पवित्रता और कहाँ मेरी अधमता !' परन्तु जब-तक यह आवाज़ उसके हृदय तक पहुँचती उससे पहले शेरखाँ की संपत्ति उसकी आँखे चका-चौंध कर देती । बुआजी पूछती है - ''सोन ! मेरा हाड़ा कहाँ गया है ? मुझे तो जल्दी जाना है ।'' तब वह कहती - ''बुआजी ! वे दिल्ली गये हैं । कुछ दिनों में आ जायेंगे । क्या जल्दी है ? बाद में जाइएगा । आप पधारे हो, इसलिए मुझे बहुत खुशी हो रही है और आप अपने भतीजे को मिले बिना कैसे जा सकती है ? आप मिले बिना चली जायेगी तो मुझ पर नाराज़ हो जायेंगे, इसलिए मुझ पर दया कर कुछ दिन और रूक जाइए ।'' वेश्या ने कहा - ''ठीक है, दो-तीन दिन राह देखती हूँ ।'' अब सोन और वेश्या के बीच में गहरे प्रेम की गांठ बँध गयी थी और फिर हाड़ा साहब की बुआजी थी, इसलिए हृदय की सारी बातें सोन कहती । सोन जहाँ जाती वहाँ बुआजी साथ-साथ रहती । एक दिन विशाल हौज़ में एक कपड़ा पहनकर रानी स्नान कर रही थी । कपड़ें भीग जाने से अंगोपांग दिख रहे थे । इस समय रानी की दाहिनी जाँघ पर जो लाखा (एक दाग़) का चिह्न था उसे वेश्या ने देख लिया । वह तो मारे खुशी के पागल-सी हो गयी ।

इस तरफ शेरखाँ की मुद्दत (अवधि) पूर्ण होनेवाली थी । इसलिए वेश्या अब अधिक दिन रह नहीं सकती थी । अतः सोन से उसने कहा - ''सोन ! अब मुझे जाना होगा । क्योंकि घर से निकले बहुत समय हो गया, अब रूकना सम्भव नहीं है । मुझे हाड़ा को मिलने की बहुत इच्छा थी और फिर तुम्हारा आग्रह भी बहुत था, इसलिए कुछ दिन रूक भी गयी, परन्तु वह तो आया नहीं । परन्तु तुम उसे कहना कि बुआजी, आपकी राह देखकर गये ।'' भोली सोन ने कहा - ''बुआजी ! आपका हमारे प्रति बहुत प्रेम है । आपको रोकने की मेरी तो बहुत

इच्छा है, परन्तु आप मना कर रही हो, इसलिए अब क्या कहूँ ? परन्तु बुआजी ! आपके भतीजे की अनुपस्थिति में मुझसे आप की सेवा में कोई कसर रह गयी हो या बुरा लगा हो तो माफ करना और पुनः इस बहू को सेवा का लाभ देने अवश्य पधारिएगा ।'' इतना कहते हुए सोनरानी को आँखों से आंसू निकल आये । बुआजी ने कहा - ''बेटी ! तुम्हारा प्रेम और सहानुभूति ऐसे हैं कि मेरा मन हीं नहीं होता कि मैं यहाँ से जाऊँ । साथ में मेरे भतीजे से न मिलने का दुःख भी है । परन्तु बेटी ! तुमने मेरी सेवा में कोई कसर नहीं रखी है । मुझे भी तुम्हारी बहुत याद आयेगी । परन्तु बेटी ! मेरी एक इच्छा है कि निशानी के रूप में मेरे हाड़ा की तलवार और रूमाल जो तुम्हारे पास है - मुझे दे । क्योंकि घर पर जब मुझे तुम दोनों की याद आयेगी तो उन चीज़ों को देखकर मानुँगी कि मेरा भतीजा और बहु साथ है ।'' ऐसा कहकर सोनरानी के आंसू पोंछने लगी ।

❑ सोनरानी की व्यथा :

बुआजी की बात सुनकर सोन पृथ्वी पर गिर पड़ी । उसे बहुत बुरा लगा, क्योंकि चांपराज हाड़ा जब बाहर जाते तब सोन इस तलवार और रूमाल को प्रेम के प्रतीक रूप में ले जाती और उसकी पूजा करती । इन दोनों चीज़ों को देने का सोना का मन नहीं था । शांत हुई और कहने लगी - ''बुआजी ! आपने तो मेरा हृदय ही माँग लिया । जैसे हृदय को बिना मनुष्य जी नहीं सकता है, वैसे ही मेरे पति द्वारा दी गयी प्रिय वस्तुएँ मुझे अपने हृदय से भी अधिक प्रिय हैं । आप कोई ओर वस्तु माँगिए ।'' यह सुनकर बुआजी का मुँह फीका पड़ गया । तब सोन सोचती है कि 'बुआजी की स्वामीनाथ बहुत इज्ज़त करते हैं । यदि बुआजी को ये वस्तुएँ नहीं दुँगी तो उन्हें बुरा लगेगा और दे देना मेरे लिए मुश्किल है । क्या किया जाय ? परन्तु बुआजी का मनोभाव देखकर सोनरानी ने अनिच्छा से तलवार और रूमाल दे दिया । बुआजी इन चीज़ों के मिलने से बहुत खुश हो गयी । किसी को पता नहीं था कि इसका परिणाम क्या होगा ? वेश्या पूरा नाटक रचाकर अपने घर गयी ।

यहाँ शेरखाँ की अवधि के मात्र चार दिन शेष थे । वह राह देखकर बैठा था । वेश्या ने जाकर सोनरानी के गुप्त-चिह्न का निशान और तलवार तथा रूमाल शेरखाँ को दे दिया । अब शेरखाँ को शरीर में मानो प्राण और पैरों में ताक़त आयी । अपना काम पूर्ण होता देख उसे वहुत खुशी हुई । उसने वेश्या का आभार मान बहुत सी संपत्ति आदि दिया । अव शेरखाँ वस्तुएँ लेकर वुंदी-कोटा से रवाना हुआ ।

❑ दिल्ली में शेरखाँ का आगमन :

शेरखाँ बुंदी-कोटा से निकलकर दिल्ली आ गया । ठीक छ महीने पूरे हुए हैं । अकबर बादशाह की सभा ठाठ-बाठ से बैठी है । शेरखाँ सभा में उपस्थित हुआ । उसके मुख पर आनन्द था । पैरों में तीव्रता था । इस तरफ चांपराज हाड़ा सोच रहा था कि वहाँ क्या हुआ होगा । परन्तु सोनरानी के प्रति उसे अटल विश्वास था । बादशाह ने शेरखाँ की ओर देखकर पूछा - ''शेरखाँ ! बोलिए तुम क्या कर आये हो ?'' सबकी दृष्टि शेरखाँ पर टिकी हुई थी । सबके बीच में शेरखाँ ने कहा - ''जहाँपनाह ! शेरखाँ कोई ऐसा-वैसा नहीं है । उसके पास दूसरा क्या उत्तर हो सकता है ? जीत के डंके बजाकर आया हूँ । चांपराज के महल में छ-छ महीने रहकर खूब मौज़ की है । सोनरानी की ताक़त है कि इस शेरखाँ के सामने टीक पाती ? मैं अपना कार्य सिद्ध करके आया हूँ और साथ में निशानी और प्रमाण लेकर आया हूँ । देखिए चांपराज द्वारा अपनी पत्नी को दिया गया रूमाल !'' वह चांपराज के सामने अहंकारभरी दृष्टि से बोला ।

अपना रूमाल देखकर चांपराज का सिर झुक गया । सारी सभा यह देखकर विस्मित हो गयी । उस समय चांपराज के पास उसका निजी मित्र पहाड़सिंह भी बैठा था । उसको भी सोनरानी के चारित्र्य के बारे में विश्वास था कि सोनरानी अपने शीयल का खण्डन कभी नहीं कर सकती । उसने कहा - ''बादशाह ! रूमाल तो चोरी करके भी लाया जा सकता है ।'' तब शेरखाँ ने हाडा की तलवार दिखाकर पूछा - ''देखिए ! यह तलवार किस की है ?'' तब पहाड़सिंह ने कहा - ''जैसे तुम रूमाल चोरी कर लाये हो वैसे तलवार भी लाये होंगे ।'' अब शेरखाँ से रहा न गया । सभा के बीच में गर्जना के साथ कहा - ''मैं आप सब के सामने चांपराज हाड़ा से पूछता हूँ कि सोनरानी की दाहिनी जाँघ पर लाखा (एक दाग) का निशान है या नहीं ?'' यह सुनकर चांपराज का हृदय बैठ-सा गया । उसे मृत्यु का ड़र नहीं था, परन्तु रानी ऐसा कर सके ऐसा सम्भव नहीं है, फिर भी हुआ कैसे ? इसका ड़र है । हाड़ा सत्यवादी था । अगर सत्यवादी न होता तो कह देता कि नहीं यह तो झूठी और मनगड़त बात है, परन्तु हाड़ा कुछ बोले नहीं । रानी की जाँघ पर दाग है, यह तो उसके पति के अतिरिक्त और कौन जान सकता है ? विचारों के अनेक ज्वार-भाटा में हाडा फंस गया, परन्तु अब कोई उपाय नहीं था ।

❑ सभा में फैली सनसनी :

बादशाह ने कहा - ''हाड़ा ! आप हार गये हो । मस्तक देने के लिए तैयार हो जाइए ।'' यह सुनकर सभाजनों का हृदय काँप उठा । इस पवित्र पुरुष को ऐसी

सज़ा होगी ! चांपराज ने कहा – "बादशाह ! मुझे मृत्यु का ड़र नहीं है । चांपराज का सिर तैयार है, परन्तु मुझे कृपया तीन दिन की अवधि दीजिए । मुझे मरने से पहले एक बार सोनरानी को देखने-मिलने की इच्छा है । उसे पूर्ण कर लेने दीजिए । यह हाड़ा तीसरे दिन शाम को उपस्थित हो जायेगा ।" बादशाह ने कहा – "ठीक है ! परन्तु आप यदि न आये तो ? अगर आप को जाना है तो जाइए, मगर एक ज़मानत के तौर पर एक व्यक्ति को छोड़ जाइए । अगर आप तीसरे दिन न आये तो इस व्यक्ति का सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा ।" हाड़ा सोचता है – सिर के बदले सिर देनेवाला ज़मानत कहाँ से मिलता ? किसे छोड़कर जाऊँ ?

सच्चा मित्र किसे कह सकते हैं ? जो दुःख के समय सहायता करे वही सच्चा मित्र है । आज के मित्र कैसे होते हैं ? – **'बारात में आनेवाले तो बहुत मिल जाते हैं परन्तु जान देनेवाले तो वीरले ही होते है ।'** आज कहते तो है कि 'हम दुःख में सहायता करेंगे', परन्तु दुःख के समय सभी भाग जाते हैं ।

❑ सोनरानी का पतिव्रत और दयनीय स्थिति :

सोनरानी हाड़ा की राह देख रही थी । उसे इस कपट का पता न था । इतने दिन हो गये, 'परन्तु स्वामीनाथ अभी तक क्यों नहीं आये ?' इस विचार में वह डूबी थी कि तभी पसीने से तरबतर, मुख पर व्यग्रता लिए चांपराज ने महल में प्रवेश किया और सोन से थोड़े दूर खड़े रहकर ही कहा – "फट रे रानी ! धिक्कार है तुझे ! ओ अभागिन ! निर्लज्ज ! दुष्ट पापिनी ! कुल कलंकिनी ! तेरे पाप के कारण मेरा मस्तक कल दिल्ली के दरबार में कट जाएगा । कैसी भी हो, परन्तु हो तो स्त्री न ! उस पर भरोसा क्या ? धिक्कार है तुझे और तुम्हारी माता को !" यह सुनकर सोन काँप उठी । मुड़कर पति के सामने देखती है । उनके मुख पर क्रोधाग्नि बरस रही है । पति के पास जाकर पूछती है – "स्वामीनाथ ! मेरा क्या अपराध है ? मुझे इस बात में कुछ पता नहीं ।" सोन को पूछने से पहले राजा ने कहा – "में दिल्ली जाता हूँ । कल मेरा मस्तक कटनेवाला है । अगर मैं नहीं जाऊँगा तो मेरे मित्र का सर उड़ सकता है ।" और वह चलने लगा । वह सोन से प्रेमपूर्वक मिलने नहीं आया था । हृदय का बोज़ हल्का करने आया था । सोन घबरा गई । पृथ्वी पर ढ़ेर होकर गिर पड़ी । थोड़ी देर बाद होश आने पर स्वस्थ हुई । उसे लगा कि मेरे पाप से मेरे पति का सिर जायेगा ? वे मुझे समाचार देने आये होंगे ? क्या मेरे नाथ की मृत्यु होगी ? तो क्यों न मैं उनसे पहले दिल्ली

पहुँच जाऊँ और वस्तु-स्थिति का पता लगाऊँ ? यही एक आदर्श नारी का फ़र्ज है, इसलिए मुझे दिल्ली जाना चाहिए ।'

❑ सोनरानी दिल्ली में :

सोनरानी सामान्य नारी नहीं थी । वह एक वीरांगना भी । अगर अबला होती तो मुँह ढँककर रोने बैठ जाती । इसने तो पानीदार साँडनी मँगवायी । स्वयं यदि चांपराज से पहले न पहुँचे तो मामला यहीं खत्म हो जाता । सोनरानी ने प्रभु को प्रार्थना कि - ''हे प्रभु ! यदि मैंने मेरे पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को भाई और पिता समान माना हो तो हाड़ा से पहले दिल्ली पहुँचा देना ।'' ऐसा कहकर तीव्र गति से चलनेवाली साँड़नी पर सवार होकर दिल्ली पहुँच गयी । किसी सज्जन के घर ठहरी । वहाँ उसे सारे समाचार मिल गये । यह सुनकर सोनरानी थोड़ी देर के लिए स्तब्ध हो गयी । अब उसे समझ में आ गया कि - 'बुआजी ने मुझे इस फँदे में फँसाया और तलवार तथा रूमाल ले गयी और स्नान करते - साथ रहती थी । इसलिए मेरी जाँघ पर का दाग़ देख लिया होगा । उस गद्दार शेरखाँ की मेरे पास आने की हिंमत नहीं हुई, इसलिए धूर्त वेश्या का आश्रय लिया होगा । वही बुआजी बनकर आयी थी, खेर जो हुआ सो ठीक है । अब उसमें से बचने का प्रयास करूँ और हाड़ा राजा को बचा लूँ । अभी तक चांपराज दिल्ली पहुँचा नहीं हैं ।

इस तरफ पहाड़सिंह मित्र की ज़मानत का हिस्सा बना है । चांपराज यदि समय पर न पहुँचे तो अपना मस्तक देने के लिए तैयार रहना है । इसलिए अन्त में अपनी पत्नी की मंजूरी लेने गया । अपना पति मित्र को दिया गया वचन निभाने के लिए अपने जीवन का समर्पण करने जा रहा है । यह देखकर पहाड़सिंह की पत्नी का हृदय गर्व से नाच उठा । ''धन्य है आप को !'' उसने अपने पति के ललाट पर कुमकुम से तिलक किया और आशिष दिये । अहो ! कैसी ये स्त्रियाँ होंगी ! इस जमाने में ऐसी आर्य और वीर नारियाँ मिलना मुश्किल हैं । पहाड़सिंह सभा में गया । सभा भरसक है । चांपराज अभी तक आया नहीं है । उसका इन्तजार हो रहा है ।

❑ सोनरानी की युक्ति :

सोनरानी ने सभा में समाचार दिये कि-''बुंदी-कोटा से एक नर्तकी आय है । वह संगीतकला और नृत्यकला में पारंगत है ।'' पहले राजकुमारियाँ और धनवान पुत्रियों को ६४ कलाएँ सिखायी जाती । उसमें संगीत-नृत्य आदि कलाएँ आ जाती है और ऐसे समय वे बहुत उपयोगी सिद्ध होती है । सोनरानी ६४ कलाओं

में प्रवीण थी और उसमें गाने तथा नृत्य करने की कला तो अद्‌भुत थी। बादशाह नृत्यकला और संगीतकला का शौकीन था। यहाँ पहाड़सिंह के लिए फाँसी का फँदा तैयार किया गया था, फिर भी बादशाह ने कहा - "पहाड़सिंह को थोड़ी देर बाद में फाँसी दी जायेगी, परन्तु नर्तकी से कहिए कि वह जल्दी आये और नृत्य करे।" सारी सभा विस्मित हो गयी। सोन को जो चाहिए था वह मिल गया और तुरन्त नर्तकी का स्वांग सजकर सभा में आयी।

एक ओर फाँसी का फँदा तैयार हुआ है। पहाड़सिंह के सिर पर मौत के नगाड़े बज रहे हैं। इस करुणता भरे वातावरण में सोनरानी ने खुशी का वातावरण सजाया। इतना सुन्दर नृत्य किया और संगीत के मधुर स्वर छेड़े कि देखनेवालों को घण्टा मिनट जैसा लगा। देवानुप्रिय ! जिसे जिसमें रुचि होती है उसमें उसका समय कहाँ-कब चला जाता है इसका पता नहीं चलता। अनुत्तर विमान के देवों का तत्त्व के चिन्तन में तैतीस सागरोपम का आयुष्य कब पूर्ण होता है - इसका पता भी नहीं चलता। इस सभा में नृत्य देखने और संगीत के सूर सुनने में सभी लीन हैं। ऐसे समय पसीने से लथबथ वस्त्रों में और मुँह पर जिस के थकान दिख रही है, ऐसी स्थिति में चांपराज ने सभा में प्रवेश किया।

❑ सोन का नृत्य और चांपराज नाराज :

सोन को नृत्य करती देख नर्तकी के भेष में भी चांपराज उसे पहचान गया। अहो ! मुझ से पहले यह यहाँ कैसे पहुँची ? मैं बहुत जल्दी से घोड़ा लेकर आया हूँ और फिर यह मुझ से पहले यहाँ कैसे आयी होगी ? क्या मैं सपना देख रहा हूँ या सत्य है ? उसे सन्देह हुआ। बहुत ध्यान से देखने पर निश्चय हुआ कि यह तो सोनरानी ही है, दूसरा कोई नहीं है। उसे बहुत क्रोध आ गया। दाँत पीसे। इस पापी रानी ने मेरा मस्तक उड़ाने का कुकर्म किया है और अब पता नहीं क्या शेष रह गया है जो वह इस प्रकार सरे बाज़ार वेश्या की तरह नाच रही है ? उसे जरा भी लज्जा नहीं आती ? तलवार के एक प्रहार से उसके दो टुकड़े कर दूँ। कभी न देखे इस दृश्य को देखकर उसके क्रोध की कोई सीमा नहीं है। परन्तु बादशाह की सभा में उसका कोई बस नहीं था। गुस्सा दबा दिया। सोनरानी भी नृत्य करते करते हाड़ा के मुख के भाव देख रही थी, परन्तु उसे तो अपना कार्य पूर्ण करना था, इसलिए कुछ ध्यान में लिए विना अद्‌भुत नृत्य करती रही। नृत्य पूर्ण होने पर तालियों की बोछार हुई। सारी सभा खुश-खुश हो गयी।

❑ बादशाह की प्रसन्नता :

अद्भुत नृत्यकला देखकर बादशाह सोन पर प्रसन्न हो गये और कहा - "हे नर्तकी ! तुम्हारे इस कला-कौशल्य से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । आज तुझे जो चाहिए माँग ले । मैं देने के लिए तैयार हूँ ।" नर्तकी ने कहा - "जहाँपनाह ! मुझे कुछ नहीं चाहिए, परन्तु कुछ समय पहले यहाँ का एक गुण्डा मेरे घर आया था और मेरी एक लाख सुवर्ण-मुद्राएँ चोरी कर ले गया था । यह मुझे दिलवा दीजिए । इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए ।" बादशाह ने कहा - "दिल्ली का गुण्डा वहाँ पहुँच गया ? हो ही नहीं सकता ? फिर भी कहता हूँ कि क्या तुमने उसे देखा है ? उसका नाम जानती है ?" तब सोन ने कहा - "जी हाँ । वह स्वयं कहता था कि मेरा नाम शेरखाँ है और मैं बादशाह का नौकर हूँ और दिल्ली में रहता हूँ । (सोन ने गुप्त रूप से शेरखाँ को देखा था) उसने कहाँ - "अन्नदाता ! वह यहाँ होगा तो मैं उसे पहचान जाऊँगी ।" ऐसा कहकर सभाजनों की ओर नज़र दौड़ायी और जहाँ शेरखाँ बैठा था वहाँ दृष्टिकर ऊँगली से दिखाकर कहा - "बादशाह ! यही गुण्डा मेरी लाख सुवर्ण-मुद्राएँ ले गया है ।" यह सारा नाटक देखकर चांपराज हाड़ा आश्चर्यचकित हो गया । बादशाह ने कहा - "शेरखाँ ! यहाँ आओ ।" शेरखाँ के होश उड़ गये । लड़खड़ाते पैरों से वहाँ आया । बादशाह ने पूछा - "क्या तुमने इसकी लाख सुवर्ण-मुद्राएँ चुरायी है ?"

शेरखाँ ने कहा - "जहाँपनाह ! मैंने तो इस औरत को कभी सपने में भी देखा नहीं है और न ही उसका घर देखा है और न ही उसे पहचानता हूँ ।" तब सोनरानी ने कहा - "नामदार ! उसे पूछिए तो सही । उसने मुझे कभी देखा नहीं है । मेरी सुवर्ण-मुद्राएँ चुरायी नहीं है, तो फिर मेरे साथ मेरे महल में छ महीने तक रहकर मोज़ कैसे उड़ायी है ?" यह सुनकर शेरखाँ के कपड़े गीले हो गये । शरीर काँपने लगा । (सब हँसते हैं ।) लड़खड़ाती आवाज़ में कहने लगा - "जहाँपनाह ! वह तो मेरी माता-समान है । मैं उसके घर न गया हूँ और न मौज़-मस्ती की है । परन्तु मुझ पर मुसीबत आ गयी थी, इसलिए..." कहता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा ।

❑ सोनरानी की मर्यादा :

सोन ने देखा कि अब मेरा कार्य पूर्ण हो गया है, अतः उसने सामने पर्दा रखकर नर्तकी का स्वांग उतारकर शुद्ध क्षत्राणी का स्वांग धारण किया और पर्दे में रहकर बोली - "शेरखाँ मेरे घर आया ही नहीं हें और न ही मेरा मुख देखा है । उसकी बात सच्ची है, परन्तु...

"मुझ पर गुजरी पिता पादशाह जानकर,
मैं नहीं गणिका, हूँ हाड़ा की रानी ।"

ऐसा कहकर बोली - "मैं गणिका नहीं हूँ, चांपराज हाड़ा की रानी हूँ । परन्तु आप के शेरखाँ ने बुंदी-कोटा में आकर मेरा शीयल खण्डित करने हेतु हो सके उतने हथकण्डे किये और जब उसमें भी सफल नहीं हुआ तो उसने मदनसेना गणिका का संपर्क किया । वह मेरी बुआजी बनकर आयी और मेरे रूमाल और तलवार मुझ पर झूठा प्रेम दिखाकर ले गयी है । मुझे ऐसे भयानक परिणाम का पता न था, परन्तु मेरे पति ने जब कहा कि-'मेरे कारण उन्हें दिल्ली के दरबार (सभा) में सिर कटवाना पड़ेगा । धिक्कार है ऐसी नारी जाति को !' इतने नफ़रत भरे शब्द कहकर वे तो चले आये । परन्तु मैं उनसे पहले आयी और इस घटना का पर्दाफाश किया । शेष घटना आप जानते हैं ।"

शेरखाँ को बादशाह ने हंटर का मार-मारकर पूछा - "बोल ! यह बात सच है ?" शेरखाँ ने स्वीकार किया कि - "सोन सती है । मैंने ही मदनसेना के द्वारा ये सारी वस्तुएँ प्राप्त की हैं ।" राजा को भी पत्ता चल गया कि-'उनकी सोनरानी सच्ची क्षत्राणी और सती है ।' सोनरानी ने कहा कि - "जो हुआ अच्छा हुआ । परन्तु यदि मेरे पति वहाँ नहीं आते तो मुझे कुछ पता न चलता । शायद मैं अपनी जीवनलीला समाप्त भी कर लेती, इसकी मुझे कोई परवा न थी, परन्तु मेरे कारण मेरे पति की इज्ज़त और क्षत्राणी के शीयल पर कलंक न लग जाय इसकी चिन्ता थी । परन्तु अब खुलासा हो गया । अब आपको जो करना है कीजिए ।" ये सारी बाते सुनकर चांपराज का क्रोध शांत हुआ और छाती फुलने लगी । "धन्य है सती !" सती की हिंमत, वीरता और पवित्रता देखकर बादशाह भी बहुत खुश हुए, वे बोले - "बेटी ! तुम तो मेरी पुत्री समान हो । मुझे तो अपना मुख दिखाइए ।" तब सोन ने कहा - "पिताजी ! बस अब समय हो गया है । क्षत्राणी का मुख देखना आसान नहीं है ।" सभा में सोन के शीयल-सच्चाई और प्रतिभा को देख सब एक साथ सच्चे हृदय से आशीर्वाद देकर उनकी जय-जयकार किया ।

❑ आखरी फैसला :

जो फाँसी का फँदा चांपराज के लिए तैयार करवाया था, उस पर शेरखाँ को लटका दिया और चांपराज को छ-छ महीनों में अकबर की 'तहेनात' (सेवा) के लिए आना पड़ता था, उसमें से बादशाह ने मुक्त किया । चांपराज हाडा की कीर्ति चारों ओर फैल गयी और सोनरानी के शीयल की सुगन्ध भी चारों ओर महक

उठी । जबकि संसार के लाखों और करोड़ों लोगों के तिरस्कार के बीच शेरखाँ की जीवन-लीला समाप्त हुई ।

देवानुप्रिय ! मुझे आपको संक्षिप्त में इतना ही कहना है कि जीवन में ब्रह्मचर्य की ज्योत जले तो वृत्ति में वैराग्य आता है और वृत्ति में वैराग्य आयेगा तो प्रवृत्ति में भी वह आयेगा । इस भारत की स्त्रीरत्नों के नाम इतिहास के पन्नों में ज्वलंत (उज्ज्वल) हैं । अधिक चर्चा बाद में ।

(पू. महासतीजी ने अपने ४६ वर्ष के संयमपर्याय में एक हजार से भी अधिक जीवों को साथ में (पति-पत्नी) आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा करवायी है ।)

व्याख्यान - ८

भव्य भावना

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी हमें समझाते हैं कि - 'ओ संसारसागर के प्रवासी ! तू मोहनिद्रा से जाग । जन्म-मृत्यु के अनन्ता-दुःखों को भूलकर मोह, मान, माया, लोभ, विषय-कषाय और आशा-तृष्णा के अहंकार में तुम क्यों फँस गये हो ?'' याद रखना कि यह सभी जन्म-मृत्यु रूपी अनन्ता-दुःख देनेवाले हैं । मेरे बन्धुओं ! एक बात समझ लीजिए, जैसे कोई दर्दी हो, उसे बहुत दर्द हो रहा हो, तब डॉक्टर उसे चौबीसों घण्टे बेहोशी में रखते हैं, परन्तु उससे उसका दुःख दूर चला नहीं जाता, परन्तु उसे बेहोशी में यह पता नहीं चलता । उसी प्रकार इस संसार में ऐशोआराम, गाड़ी-बहू और घर तथा भोगविलासरूपी मोहनीय कर्म ने वेहोशी के इन्जेक्शन दिये हैं, इसलिए आप जन्म-मृत्युरूपी अनन्ता-दुःखों को भूल गये हो । अरेरे... आपको कभी यह लगता है कि कब मैं इस दुःख से मुक्त हो जाऊँ ? अगर इस दुःख का ख्याल आता हो तो उसमें से छूटने की आपको उत्कण्ठा, भावना जगेगी और उसके लिए विभाव में से स्वभाव में आने का पुरुषार्थ करेंगे । जब आपकी आत्मा में रंग लगेगा, तब आप ऐसा नहीं सोचेंगे कि संसार के प्रति राग मुझसे छूट नहीं रहा है । ऐसे निर्माल्य शब्द सिंह समान शक्ति रखनेवाली आत्मा बोल सकती है ? हमारी आत्मा में अनन्त-ज्ञान और अनन्त-सुख समाया हुआ है । और वह सुख सदैव स्वतंत्र है । जब यह शक्ति प्रकट होगी, तब राग-द्वेषरूपी परतंत्रता नहीं रहेगी । हमारी आत्मा को हमें जगाना है । जब हमारी आत्मा अपने स्वरूप को जानेगी तब वह मोक्ष नगर का अधिकारी बनेगी ।

चौथे गुणस्थानक से धर्म की शुरूआत की, विरागी बनकर आत्मा के अंश से अनुभूति कर उसमें आगे ही आगे बढ़ने का जो जीव पुरुषार्थ करता है वह आत्मा अन्त में तेरहवें गुणस्थानक पर पहुँचता है और केवलज्ञान प्राप्त करता है। फिर शेष सारे अघातीकर्म नष्ट होने पर चौदहवें गुणस्थानक में समय मिलते ही पूर्णता को प्राप्त करता है। तथापि यहाँ से सीधा मोक्ष में नहीं जा सकते, परन्तु एकावतारी बनकर महाविदेहक्षेत्र में से मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ अनन्त-सुख और आनन्द हैं, ऐसे मोक्ष नगर का सुख कभी भी विलीन होनेवाला नहीं है। याद रखिए, आत्मा स्वयं वीतरागी बनने की शक्तियोंवाली हैं, परन्तु दूसरा कोई हाथ पकड़कर मोक्ष तक ले जानेवाला नहीं है। वह पुरुषार्थ तो जीव को स्वयं करना चाहिए। क्यों ठीक है न ? अगर आप में ऐसे विचार भरे होंगे कि मुझसे यह संसार छूटेगा नहीं, विषय-कषाय को छोड़ सकुँगा नहीं, मैं विरागी नहीं बन पाऊँगा - आदि। तो फिर आपका जीव कभी भी मोक्ष पानेवाला नहीं है। मैं तो आपसे कहती हूँ कि हमारी आत्मा सिंह समान है, उसे क्या ऐसी निर्बलता अच्छी लगेगी ? याद रखिए, अब आप निर्बलता को झाँड़कर समझ लीजिए कि संसारी उपभोग भयवर्धक हैं और अनन्त-दुःख का कारण है, फिर तो सुख माँगेगा तो कहाँ से मिलेंगे ? बोने है काँटे और प्राप्त करने हैं गुलाब के फूल, यह कैसे सम्भव है ? कर्मरहित बनेंगे तो मोक्ष मिलेगा। इसके लिए बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा। आज अनेक लोग ऐसा कहते हैं कि - 'भोगविलास मुझसे छूटते नहीं हैं। मुझ में वह ताकत नहीं है कि मैं संसार के प्रति अपना मोह छोड़ सकुं। संयम लेकर परिषह कैसे जीत सकता हूँ ?' ऐसी निर्मल बातें करनेवाला कभी भी मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा नहीं।

सचमुच अगर जन्म-मृत्यु के फेरे दुःख रूप लगते हो, तो उसमें से छूटने की उत्कृष्ट भावना जगाओ और विष जैसे संसार के विषय-भोगों को छोड़कर आत्मा को पहचानकर आत्मा में लीन बनिए। मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ कीजिए तो सिद्ध-पद को प्राप्त कर सकेंगे। उस सिद्ध-पद को प्राप्त करने हेतु मन, वचन और काया से शुद्ध बनिए। जैनदर्शन कहता है कि - 'तीन में से एक भी पापमय हो तो कर्म बन्धन होता है,' अतः पवित्र बनिए। जब आप में मानवता के गुण पैदा होंगे, तब आप दूसरे जीवों के लिए धूपबत्ती समान बनेंगे।

❑ तुर्की के राष्ट्रपति की जन्मजयंती :

महान पुरुष कमालपाशा जब तुर्की राज्य के राष्ट्रपति थे, तब एक बार देश में राष्ट्रपति का जन्मजयंती महोत्सव मनाया जानेवाला था। इस जन्मजयंती मनाने का जब दिन आया तब देश के बड़े बड़े धनवान सेठ, साहूकार आदि सब अपने

राष्ट्रपति के चरणों में लाखों रुपये उपहार स्वरूप धरने लगे । आज भी अनेक धनवान प्रधानमंत्री के चरणों में लाखों रुपये धरते हैं, क्योंकि उन्हें मन में होता है कि अगर उनकी दृष्टि हम पर पड़ जाय तो हमारा काम हो जाय, परन्तु यह कमालपाशा आज के राष्ट्रपतियों जैसे नहीं थे । वे दुःखियों के बेली और गरीबों के नाथ थे । वे जनता का पुत्रवत् पालन-पोषण करते थे, इसलिए सारी जनता उन्हें अपने पिता समान मानती थी । कमालपाशा की जन्मजयंती होने से चारों ओर उत्सव का वातावरण छाया था । जनता के हृदय में अपार आनन्द था । इस समारोह के पूरे होने पर सभी लोग अपने-अपने घर चले गये और राष्ट्रपति अपने भवन में ।

कुछ समय बाद एक जर्जरित शरीरवाला वृद्ध मनुष्य राजमहल के द्वार पर आकर खड़ा रहा । वह कमालपाशा को कुछ भेंट धरने हेतु राजमहल में प्रवेश करना चाहता है । तभी पुलिस ने उसे रोका और कहा - "यहाँ खड़े रह, अन्दर नहीं जा सकता ।" तब वृद्ध ने कहा - "साहब ! आज हमारे राष्ट्रपति कमालपाशा की जन्मजयंती है, इसलिए एक छोटी-सी भेंट उनके चरणों में धरना चाहता हूँ ।" पुलिस ने कहा - "कमालपाशा का जन्मजयंती समारोह तो पूर्ण हो गया, कितनी रात हो गयी है ! अब तू कहाँ से आया ?" वृद्ध विनती करता हुआ कहता है - "भाई ! मुझे जाने दीजिए । मुझे माफ कीजिए । मैं छोटे गाँव में रहता हूँ ।" सुबह से चलना शुरू किया था तब अभी यहाँ पहुँचा हूँ । मैं २० मील दूर से चलते हुए आया हूँ ।" पुलिस ने कहा - "मुझे यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि तुम कितने मील दूर से चलकर आये हो ? चला जा यहाँ से ।"

❑ क़ीमत हृदय के भाव की :

बन्धुओं ! यदि उस वृद्ध के पास आपके रुपये का हरा काग़ज़ होता तो पुलिस उसे जाने देती । पुलिस को कहाँ मालूम है कि भले ही उसके पास हरा काग़ज़ नहीं है, परन्तु हृदय के भाव का हरा काग़ज़ तो है न ! आप जानते हो कि चपरासी से लेकर साहब तक सभी जगहों पर आज सड़न हो गयी है । आज न्याय-नीति को तो तड़ीपार कर दिया है । आज कारवालों की क़ीमत है । आप भी मोटरवालों का सम्मान करते हो । आप अगर किसी दुकान पर बैठे हो और कोई मोटर से उतरकर दुकान की ओर आये तो खड़े हो जायेंगे । उनका सम्मान करेंगे, परन्तु यदि कोई गरीब आ जाय तो ? यह वृद्ध मनुष्य मोटर विना आया था, इसीलिए तो उसे राजमहल में प्रवेश नहीं मिलता था । वह मनुष्य अन्दर जाने के लिए बहुत विनती करता है, उसकी आँख में से आंसू बहते हैं, परन्तु यह पुलिस उसे जाने देता नहीं है और उपर से धमकाता है, फटकारता है और कटुवचनों के प्रहार करता

है, यह सब कमालपाशा ने अपने महल के खिड़की से खड़े होकर देखा। वे तत्काल नीचे आये और उस वृद्ध के पास गये। कमालपाशा ने उस वृद्ध के शरीर की ओर या मैले कपड़ों ओर न देखा, परन्तु उसके हृदय की भावना की ओर दृष्टि की।

कमालपाशा में गरीबों के प्रति कितनी सहानुभूति, प्रेम और पवित्रता है। पवित्रता और प्रेम - इन दो शब्दों में अजीब शक्ति है। आपका पुत्र अमरिका पढ़ने के लिए गया है। उसका मित्र उसे दस पन्ने भरकर पत्र लिखता है; उसमें समय का व्यय बहुत किया है, भाषा सुन्दर और अक्षर मोती के दाने जैसे है। कवर भी सुन्दर डीझाईन (चित्र) से आकर्षक बनाया है। इस प्रकार मित्र पत्र लिखता है। उस कागज़ के अन्त में उसकी माता सीधे-सादे शब्दों में हृदय का वात्सल्य भरकर चार पंक्तियाँ लिखती है। पंक्तियाँ चार है, परन्तु उसमें वात्सल्य के प्रवाह बहाये हैं, हृदय का प्रेम भरा है। वह पत्र अमरिका पहुँचा। लड़के ने माता तथा मित्र का पत्र पढ़ा। अगर बेटा मातृप्रेम को नहीं भूला होगा और मातृप्रेम-भरा होगा, तो माता की चार सरल-सादी पंक्तियाँ उसकी आँखों से आंसू बहायेंगी। उसका हृदय उसकी माता के वात्सल्य और अनुराग से भर जायेगा। इसका क्या कारण ? माता के हृदय का प्यार पत्र में शामिल है, इसलिए वे चार पंक्तियाँ पुत्र के हृदय में घर कर जायेगी। जबकि मित्र का सुन्दर आलंकारिक भाषा में लिखित पत्र १० पन्नों का होगा, फिर भी उसके हृदय में स्थान जमा पायेगा नहीं। क्योंकि उसका प्रेम कृत्रिम है, दिखावा है, इसलिए वह कागज़ हवा में उड़ जाता है। याद रखिए, हृदय से निकली बात हृदय तक पहुँचती है। माता का प्रेम हृदय का होता है।

❑ राष्ट्रपति की गरीबों के प्रति सहानुभूति :

कमालपाशा महल से नीचे उतरकर वह उस वृद्ध के पास आये। उसे बहुत प्रेम से गले लगाया और पूछा - "क्या लाये हो इस सेवक के लिए ?" तब उस वृद्ध ने कहा - "साहबजी ! आज आपकी जन्मजयंती है, इसलिए मैं फूल नहीं तो फूल की पंखडी आपको भेंट धरना चाहता हूँ।" राष्ट्रपति गरीब वृद्ध की भावना देखकर बहुत खुश हो गये। फिर पूछा - "भाई ! क्या लाये हो ?" वृद्ध ने कहा - "मैं छोटी-सी कुल्हिया भरकर ताज़ा शहद आपके लिए लाया हूँ और इसे आपके चरणों में धरना चाहता हूँ। आपके जन्मदिन पर आज अनेक लोगों ने लाखों रुपये आपके चरणों में धरे होंगे, परन्तु मैं आज यह शहद आपके लिए लाया हूँ, इसका आप सहर्ष स्वीकार कीजिए।" राष्ट्रपति ने उसमें से एक

उँगली भरकर अपनी जिह्वा पर रखा और दूसरी उँगली भरकर उस वृद्ध के मुँह में रखा । फिर अपनी गाड़ी में बिठाकर उसे उसके घर तक छोड़ आये और कहा - "बाबा ! अब आपको मेहनत करने की आवश्यकता नहीं है ।" और उनकी आजीविका हेतु रुपयों का बँडल (पेकेट) दिया और कहा - "आपको कभी जरूरत पड़ जाय तो इस पुत्र को सेवा का मौका दीजिएगा ।" इसे कहते है जन्मतिथि को मनाना । आप अपने जन्मदिन पर अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर मांगलिक सुनने के लिए आते हो, मिष्टान्न खाते हो, परन्तु आज के बाद आप अपना मुँह मीठा करने से पहले किसी का मुँह जरूर मीठा कराना ।

वृद्ध का शहद कितना मीठा होगा ? वह मिठास शहद की नहीं, हृदय की है। जिस में शहद से भी अधिक मीठे भाव निहित् है । मूल्य भावना का है । गोड़ाउन में सामान भरा हो और बाज़ार में उसके तीन-चार गुने भाव (क़ीमत) हो जाय, तो आपके चेहरे पर रौनक दिखती है, परन्तु यदि सामान भरा हो और उसके भाव कम हो जाय, तो चेहरे का नूर उड़ जाता है । इसी प्रकार धार्मिक साधना में भी भाव का मूल्य है । राष्ट्रपति के मन में सारी बात समझ में आ गयी कि पुलिस ने बाबा को तिरस्कृत किया है फिर भी गया नहीं । अर्थात् मेरे लिए मेरी प्रजा (जनता) अगर जान दे सकती हो तो मेरा कर्तव्य सदा मुझे निभाना चाहिए । और गरीब वृद्ध की गरीबी दूर की ।

कृष्ण-सुदामा की मैत्री

बन्धुओं ! ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त कृष्ण-सुदामा का है । सुनिए, कृष्ण और सुदामा की मित्रता भारतवर्ष में प्रसिद्ध है । उनके जैसी मित्रता इस विशाल संसार में अन्यत्र मिलना असम्भव है । दोनों बचपन में सांदिपनी ऋषि के आश्रम में पढ़ते थे । दोनों साथ में पढ़ते, खेलते और भोजन करते थे । कृष्ण का स्वभाव तो बचपन से ही मज़ाकवाला था, ये बात सब कोई जानते हैं । महाकवि सूरदास ने उनकी बाल्यावस्था की घटनाओं को विविध प्रकार से प्रस्तुत किया है । एक पद्य में लिखा है कि - 'मैया कब ही बढ़ेगी चोटी ।' यह तो आप सब जानते हो । इस पद में चोटी न बढ़ने की फरियाद से माता यशोदा के पास कैसा चातुर्य से अधिक मक्खन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं । कृष्ण ने कहा - "हे माता ! मेरी यह चोटी कब बढ़ेगी ? मुझे दूध पीते पीते न जाने कितने दिन चले गये, परन्तु अभी तक मोटी चोटी छोटी ही है । तुम तो कहती थी कि चोटी नागिन जैसी बड़ी हो जायेगी और स्नान करते समय तथा बाल सँवारते समय वह चोटी पृथ्वी को छू लेगी । परन्तु अभी तक वह बढ़ी ही नहीं है । मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम मुझे कच्चा दूध पिलाती हो, परन्तु मक्खन और रोटी नहीं

खिलाती, इसलिए ऐसा हो रहा है।" कृष्ण ने कितने चातुर्य की बात की ? वह अपने घर में भी मक्खन खाता और दूसरों के घर जाकर भी मीठा-मीठा बोलता कि - **"मैया मुझे मक्खन दो न।"** और वह मक्खन ले आता। लोग उसे पूछते कि - "भाई ! तुझे कितना खाना है ?" तब वे कहते - "मेरा पेट बड़ा है।" इस प्रकार मक्खन इकट्ठा करता और अत्यन्त उदारतापूर्वक स्वयं खाता और दूसरों को भी खिलाता। यह थी बचपन में भी उसकी विशाल भावना। मक्खन पाने के लिए अपनी माता के पास चोटी की फ़रियाद के बहाने कैसी चालाकी दिखाई ! यही कृष्ण जब बड़े हुए तब भी उनकी इस भावना में ज़रा भी कमी नहीं आयी थी।

कृष्ण-सुदामा की मित्रता बचपन से गहरी थी। विद्याभ्यास पूरा होने पर दोनों बड़े हुए तो सुदामा अपने कुलोचित कार्य के अभ्यास में जुड गया और कृष्ण द्वारिकाधीश - तीनों खण्डों का अधिपति बनकर शासन करने लगे। दोनों मित्र साथ में पढ़े, परन्तु दोनों के पुण्य में फ़र्क है। एक को मिली है विद्या और दूसरे को मिली है लक्ष्मी। विद्या और लक्ष्मी एक स्थान पर बड़े भाग्य से ही साथ में टीक पाती है। इस नियमानुसार सुदामा की स्थिति दयनीय रही। फटे-पुराने कपड़े पहने रहते थे। जबकि कृष्ण के रहने के लिए बहुत बड़ा आलीशान भवन है और सुदामा के पास छोटी-सी झोंपडी। सुदामा को सरस्वती मिली है, परन्तु लक्ष्मी नहीं मिली। अपनी ऐसी दयनीय स्थिति से सुदामा की पत्नी अत्यन्त व्यथित है। उसने कहा - "कृष्ण आपके बचपन के मित्र है, जो महान सुख भोगते हैं। आप उनके पास जाईए, वे आपको अवश्य मदद करेंगे।" सुदामा अपनी पत्नी को समझाते हुए कहते है -

"सुख दुःख करि दिन काटे ही बनेंगे भूलि,
विपत्ति परे पै द्वार, मित्र के घर न जाईए।"

आज हम देखते हैं कि मित्रता कैसी होती है ? उसमें भी यदि दोनों समान स्थितिवाले हो तो शायद मित्रता टिक सकती है, अन्यथा असमान स्थितिवाले की मित्रता कभी टिक नहीं सकती। दोनों मित्रों में एक अगर विद्वान है और दूसरा मूर्ख है तो विद्वान मित्र मूर्ख के साथ मित्रता रखने में अपनी बेइज्ज़ती समझता है। इस प्रकार दोनों मित्रों में से अगर एक पर भी लक्ष्मीदेवी की कृपा हो जाय, तो अपने उन गरीब मित्रों के साथ मित्रता रखने में उसे शर्म आती है।

इसलिए सुदामा अपनी पत्नी को बार-बार यह समझाते हैं कि - "वहाँ सम्मान खोने के लिए नहीं जाना है, कृष्ण तो तीनों खण्ड के अधिपति महान राजा बन

गये हैं और मैं तो एक गरीब बाह्मण हूँ । फिर हमें अलग हुए भी अनेक वर्ष बीत गये हैं, इसलिए शायद मुझ न भी पहचाने । वे मेरे सामने भी न देखे, तो मेरे हृदय को ठेस लगे । इसलिए मुझ जैसे निर्धन मनुष्य को विपत्ति के समय में अपने धनिक मित्र के घर नहीं जाना चाहिए । सुख-दुःख के दिन तो चले जायेंगे । उसमें किसी के सामने हाथ फैलाने नहीं चाहिए । तुम मुझे बार-बार द्वारिका नगरी में जाने का आग्रह मत करो ।"

"सिर छक हो सगरे जग को तिय, ताको कहाँ अन देती है सिच्छा,
जो तप है परलोक सुधारत, संपत्ति तिनके नहीं इच्छा ।
मेरे हिये हरि के पद पंकज, बारह हजार ले देखुँ परिच्छा,
और निको धन चाहिए बावरी, ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा ।।"

सुदामा के विचार कितने सुन्दर थे ? क्या आज के ब्राह्मण इतने सन्तोषी है ? निःस्वार्थी और आध्यात्मिक भावनाओं से ऐसे धनवान होते हैं ? (श्रोतागण में से आवाज : नहीं, आज के ब्राह्मणों तो लोभी हैं ।) परन्तु सुदामा ऐसे नहीं थे । उन्हों ने पत्नी से कहा - "हे भाग्यवान स्त्री ! मैं स्वयं संसार का शिक्षक हूँ । और तुम मुझे अभी क्या उल्टा सीखा रही हो ? मेरे जैसा ब्राह्मण तो जप, तप और ज्ञानदान द्वारा अपना परलोक सुधारना चाहता है । उसमें यह संपत्ति की लालसा कहाँ से आयी ? मेरे हृदय में तो धन के अधिक प्रभु का स्थान महत्त्वपूर्ण है । तुम्हें परीक्षा करनी हो तो कर लो । धन तो दूसरे लोगों को चाहिए । ब्राह्मण को धन क्या करना है ? उसके लिए तो भिक्षा ही पर्याप्त है ।" सुदामा ने इतना समझाया फिर भी पत्नी न मानी । उसने कहा - "[illegible] ? दुनिया में सभी समान नहीं होते । कृष्ण तो एक महान [illegible] हैं । वे अपनी सज्जनता नहीं छोड़ेंगे ।" सुदामा ने कहा - "[illegible] में डालने से क्या फायदा ?" परन्तु पत्नी के बहुत कहने [illegible] सुदामा द्वारिका जाने के लिए निकले । पैरों में न ताकत [illegible] का कोई [illegible] वह चलते-चलते द्वारिका पहुँचे ।

द्वारिका नगरी जो पूरी की [illegible] सोने के गढ़ और चाँदी के [illegible] गये । [illegible] इतना सुखी और समृद्ध [illegible] कहाँ से [illegible] हुए महल के द्वार पर [illegible] जैसा लगता है । [illegible] रहा था । सुदामा [illegible] काम है ?" [illegible]

कि-'सुदामा पाण्डे आपसे मिलने हेतु आये हैं ।' वे यदि आने की आज्ञा देंगे तो मैं जाऊँगा, अन्यथा यहीं से वापस लौट जाऊँगा ।" देखिए ! बोलने में भी कितनी नम्रता है ? जिसमें विनय, विवेक आदि गुण होते हैं, वे दुश्मन को भी परास्त किये बिना नहीं रहते । सुदामा ने कहा - 'महाराजा की रहम दृष्टि होगी तो महल में जाऊँगा अन्यथा यहीं से लौट जाऊँगा ।' द्वारपाल समाचार देने के लिए कृष्ण के महल में गया, तब महाराजा अपनी रानियों से घिरकर बैठे थे । एक पंखा डालती है, एक पैर धोती है, तो एक दूध का प्याला लेकर खड़ी है । इन सब के बीच महाराजा कृष्ण वासुदेव मौज-मस्ती करते हुए बैठे हैं । द्वारपाल को देखकर पूछा - "क्यों भाई ! क्या काम है ?" द्वारपाल ने कहा - "महाराज ! सुदामा पाण्डे आपसे मिलने आये हैं ।"

बोला द्वारपाल - सुदामा पाण्डे नाम सुनी,
छांडे राजकाज ऐसे जीकी गति जाने को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोड़ी धाय गहे पांय,
भेटे लपटाय हिय ऐसे दुःख मानै को ?

कहावत है कि - **'अधरत गगरी छलकत भारी, भरी गगरी नाही छलकत ।'** चाहे कैसी भी परिस्थिति क्यों न पैदा हो जाय, सज्जन अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते । कृष्ण वासुदेव तीन खण्डों के अधिपति होने पर भी मैं बड़ा राजा हूँ ऐसा अभिमान जरा नहीं था । द्वारपाल के मुख से 'सुदामा पाण्डे' नाम सुनते ही श्रीकृष्ण अपने सिंहासन से तत्काल खड़े हो गये और मित्र को लेने के लिए स्वयं गये । सुदामा को देखकर कृष्ण ने उन्हें गले से लगा दिया । "अहो मित्र ! आपको यहाँ तक आना पड़ा ?" आपने अपनी माता से कभी पूछा है कि-'माता ! इस पुत्र की सेवा की आवश्यकता है ? जो हो वह खुशी से कहिए ।' (श्रोतागणों में से आवाज़ : कोई पूछता नहीं है ।) जब आप अपनी माता से ही पूछते नहीं हो, फिर दूसरों को पूछने की तो बात ही कहाँ होगी ? श्रीकृष्ण तीनों खण्डों के अधिपति थे और आप तो मात्र तीन कमरे के मालिक । (श्रोतागण : वह भी किराये का ।)

श्रीकृष्ण वासुदेव ३२००० रानियों के स्वामी थे । बड़े लाव-लश्कर के मालिक थे । बचपन के मित्र सुदामा पाण्डे का नाम सुनते ही अचानक महल से खड़े होकर दौड़ने लगे । रानियाँ तो यह दृश्य देखती ही रही । ऐसा कौन आया है, किस के स्वागत के लिए प्रभु स्वयं पागल की तरह भागे ! सुदामा को देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें गले से लगा लिया और रो पड़े ।

चार मिले चौसठ हसे, बीस रहे करजोड़,
तनहु से तनहु मिले, विकसे सात करोड़ ।

श्रीकृष्ण को सुदामा को देखकर रोम-रोम में आनन्द छा गया । उसके बाद कृष्ण अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनका हाथ पकड़कर अंतःपुर में ले गये । सुदामा एक तो बहुत चलकर आये हैं, इसलिए थक गये थे । फिर फटे-पुराने कपड़े हैं । यहाँ श्रीकृष्ण स्वयं सत्ताधीश महाराज है, फिर भी हाथ पकड़कर चलते हुए शर्माते नहीं है । आज अनेक माता-पिता अपने बेटों को पढ़ने के लिए मुम्बई जैसे शहर में भेजते है । पढ़-लिखकर वे बड़े साहब बन गये । और उस समय अपने वृद्ध पिता को आते देख कोई पूछ ले कि 'यह कौन है ?' तो बेटे को पिता कहते भी शर्म आती है । यहाँ श्रीकृष्ण सुदामा को अपने अंतःपुर में ले आये । जिस अंतःपुर में परिन्दे को मना है, वहाँ एक दीन-दरिद्र, फटे-कूटे कपड़े पहने इस ब्राह्मण को स्वयं श्रीकृष्ण हाथ पकड़कर ला रहे हैं । उन्हें देखकर उनकी रानियाँ अत्यन्त चकित हो गयी । उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही । उन्हें लगा कि महाराज को आज क्या हो गया है ? रानियाँ परस्पर मजाक करने लगी, 'ऐसे भिखारी को राजा कहाँ से उठा लाये हैं ?'

❑ मिठास मिष्टान्न में नहीं प्रेम के पाँच दानों में होती है :

कृष्ण-सुदामा दोनों ने महल में प्रवेश किया और कृष्ण ने मित्र को रत्न से जड़ित सोने के सिंहासन पर बिठाकर लम्बा रास्ता काटकर आये होने के कारण थके पैरों को धोने के लिए कृष्ण ने तैयारी की । सुदामा सोचते हैं - 'अहो ! मित्र तो मित्र है । क्या उसका मेरे प्रति प्रेम और भक्ति है ? इतनी सारी रानियाँ सामने खड़ी हैं, नाटक समारोह चल रहा है, वह सब कुछ छोड़कर यह श्रीकृष्ण गोकुलवासी तो मेरे पीछे पागल हुआ है ।' श्रीकृष्ण नीचे बैठे हैं और सुदामा को आसन पर बिठाया है । सुदामा के पैर धोने के लिए पानी मँगवाया । स्वयं पंखा डालते हैं । इस समय श्रीकृष्ण की नज़र सुदामा के पास छोटी-सी एक पोटली थी उसे देख लिया, तो पूछा - "मित्र ! यह क्या लाये हो ?" "भाई ! कुछ नहीं ।" कृष्ण ने कहा - "कहिए तो सही ?" तब सुदामा ने कहा - "मैं आपके पास आने के लिए निकला तब मेरी पत्नी और तुम्हारी भाभी ने तांदुल (चावल) की पोटली बाँधकर आपको प्रेम से उपहार स्वरूप भेजा है । परन्तु आपका राजवैभव देखकर मुझे लगा कि महाराजा को ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं देनी चाहिए ।" कृष्ण ने कहा - "अरे मित्र ! तुम यह क्या कह रहे हो ? सच्चे प्रेम के चावल के पाँच दानों में जो मिठास और स्वाद है वह बिना प्रेम के मिले मिष्ठान्न में भी नहीं है । तुम्हारी छोटी-सी भेंट मेरे लिए तो बहुत महँगी और कीमती है ।" कृष्ण ने वहाँ तांदुल (चावल) खाये और अपनी रानियों को भी दि...

रानियों को भी उस में कोई अलग ही स्वाद मिला । "अहो मित्र ! इतने दिनों तक मुझे ऐसे मीठे भोजन और मेवे-मिष्टान्न खाने में जो स्वाद नहीं आया है वह तुम्हारे हृदय के प्रेमभरे तांदुल (चावल) में हैं ।" देखिए कृष्ण की विशालता ! इतनी अखूट समृद्धि, तीनों खण्डों में उनका शासन है, फिर भी उन्हें गरीब की कितनी कीमत है ?

❑ त्रिखण्ड अधिपति होने पर भी कितनी गुणानुरागता-परदुःखभंजन भावना :

श्रीकृष्ण ने स्वयं मित्र के पैरों में लगे काँटों को निकाले । क्योंकि वे बहुत दूर से खुले पैरों से चलकर आये थे, इसलिए कंकड़ लग गये हैं । काँटे निकालने के बाद फटे कपड़ों को देखकर आकुलता-व्याकुलता अनुभव करते हुए बोले - "हाय मित्र ! आपने कितना दुःख सहा है ? पहले से आप यहाँ क्यों नहीं आये ? इतने सारे दिन कैसे बिताये ? मैं कैसा हत्भागी ! राजसिंहासन पर बैठने के बाद भी मेरे बालमित्र को भूल गया ? तुम्हारी ख़बर न ली, तब तुम्हें यहाँ तक आना पड़ा न ? जिन्हें सरस्वती वर चुकी है ऐसे विद्वान, मेरे परम उपकारी, पवित्र मित्र के पुनित पैर मेरे यहाँ कहाँ से ? मित्र ! तुम मुझे माफ कर । तुम्हारी इस स्थिति का प्रमुख कारण मैं ही हूँ । क्योंकि मैंने तुम्हारी ख़बर न ली तब यह स्थिति पैदा हुई न ? मैं कैसा निष्ठुर की राज्य के सुखवैभव में मस्त बनकर तुम्हें भूल गया ।" कृष्ण ने अपने दोष देखे । पानी लेने गई रानियाँ मज़ाक करने लगी और पानी लाने में देर लग गयी । उससे पहले कृष्ण सुदामा के पैर पकड़कर बैठे थे । मित्र सुदामा की दीन-दुःखी अवदशा देखकर करुणता के सागर इतने रोये कि आंसूओं से सुदामा के पैर धुल गये । सुदामा को होश आया कि मेरे मित्र तीनों खण्डों का अधिपति होने पर भी सत्ता के मद में फँसा नहीं है । उनकी गुणानुराग दृष्टि खिली हुई है । दुःखियों के दुःख दूर करने की भावना हृदय में भरपूर है । इन दोनों मित्रों का प्रेम बनावटी नहीं, सच्चा था । श्रीकृष्ण ने सुदामा के कष्ट दूर कर दिये । विश्वकर्मा (देव) द्वारा निर्माण की गयी द्वारिका नगरी समान उन्हों ने सुदामापुरी का निर्माण करवा दिया । जिसकी सुदामा को ख़बर तक न हुई ।

❑ सुदामा की गरीबी में भी कितनी अमीरी ? :

थोड़े दिन रहने के बाद सुदामा श्रीकृष्ण से अब घर जाने की आज्ञा मांगते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण उन्हें जाने देते नहीं है । यहाँ सुदामा छ महीनों तक रहे और भगवान ने सुदामा की झोंपड़ी थी वहाँ एक अच्छा नगर बसा दिया । सुदामा की झोंपड़ी जगह पर महल बना दिया । सुदामा ने जाने की आज्ञा मांगी तो कृष्ण ने कहा - "मैं तुम्हें छोड़ने आऊँ या वाहन भेज दूँ ?" सुदामा ने कहा - "मुझे

कुछ नहीं चाहिए ।" बोलिए, आप होते तो कुछ शेष रखते ? कृष्ण ने कहा - "मित्र ! माँगों जो चाहो माँग लो ।" सुदामा ने कहा - "मुझे तो एक पैसा भी नहीं चाहिए ।" सुदामा से बहुत बार श्रीकृष्ण कुछ माँगने को कहते हैं, परन्तु वे कुछ भी नहीं माँगते । और आप तो रोज़ पैसे की भीख माँगते रहते हो । सुदामा चलते हुए अपने गाँव में आये तो न अपने गाँव का पता लगा न अपनी झोंपडी का । उन्हों ने सारे नगर में अपना झोंपड़ा ढूंढने की बहुत मेहनत की । अन्त में नगर के लोगों से पूछा - "यह कौन-सा नगर है ? आप कोई मुझे यह तो बताईए के मैं देवनगरी में हूँ या राक्षसपुरी में भटक रहा हूँ ? इस नगर का नाम क्या है ?" नगरजनों ने कहा - "कोई महापुरुष यहाँ आये थे और वे ही सारा नगर बसा गये हैं ।" "फिर मेरी झोंपड़ी कहाँ है ?" उनकी झोंपड़ी के आगे एक पेड़ था, वही उसका निशान था । वहाँ आकर देखा तो झोंपड़ी के स्थान पर बहुत बड़ा महल (बंगला) बन गया है । आखिर लोगों ने उन्हें अपने द्वार पर पहुँचा दिया । उनके आने के समाचार मिलने पर राजरानी समान सुशोभित ब्राह्मिण अपने पति को प्रिय सम्बोधन सहित भीतर ले जाने के लिए तैयार होकर खड़ी है । तब सुदामा उन्हें देखकर कहने लगे -

"हमे कंत तुम जनि कहीं बोलो वचन संभारि ।
इन्हें कुटी मेरी थी, दीन बापुरी नार ॥

सदाचारी ब्राह्मण, रानी समान पत्नी को पहचान न सके । तो उन्हें धमकाते हुए कहा - "तुम मुझे अपना पति मत कहो । जिह्वा संभालकर बोलिए । यहाँ मेरी एक कुटिया थी । और बेचारी दीन, हीन मेरी पत्नी थी, वह कहाँ है ?" पत्नी के रंगढंग बदल जाने से सुदामा उन्हें पहचान नहीं पाये थे । सुदामा की पत्नी ने कहा - "स्वामीनाथ ! यह महल हमारा है और मैं आपकी पत्नी हूँ ।" "परन्तु यह सब कैसे हुआ ?" तब पत्नी ने कहा - "श्रीकृष्ण महाराज यहाँ आये थे, वे ही सब लीला कर गये हैं ।" श्रीकृष्ण ने सुदामा को खबर तक न होने दी और उनके सारे दुःख दूर कर दिये । इसका नाम है सच्ची मित्रता । आपकी मित्रता ऐसी है ? सच्चा मित्र तो उसे कहते हैं कि जो सुख और दुःख में भी आपके साथ रहे । आज नहीं है सुदामा या नहीं है श्रीकृष्ण । महापुरुष आपके जीवन को बनाने के लिए वीतरागवाणी के हथोड़े मारते हैं, परन्तु आप हथोड़े को छूने देते ही नहीं है, फिर आपको आकार कहाँ से मिलेगा । पत्थर हथोड़ा खाता है तो ही उसमें से सुन्दर मूर्ति बन सकती है । वैसे ही जीवन को आकर्षक-सुन्दर बनाने के लिए वीतरागवाणी का पावर जीवन में आयेगा तो ही मानव से महामानव बन सकेंगे । अधिक बातें अवसर आने पर ।

रानियों को भी उस में कोई अलग ही स्वाद मिला । "अहो मित्र ! इतने दिनों तक मुझे ऐसे मीठे भोजन और मेवे-मिष्टान्न खाने में जो स्वाद नहीं आया है वह तुम्हारे हृदय के प्रेमभरे तांदुल (चावल) में हैं ।" देखिए कृष्ण की विशालता ! इतनी अखूट समृद्धि, तीनों खण्डों में उनका शासन है, फिर भी उन्हें गरीब की कितनी कीमत है ?

❑ त्रिखण्ड अधिपति होने पर भी कितनी गुणानुरागता-परदुःखभंजन भावना :

श्रीकृष्ण ने स्वयं मित्र के पैरों में लगे काँटों को निकाले । क्योंकि वे बहुत दूर से खुले पैरों से चलकर आये थे, इसलिए कंकड़ लग गये हैं । काँटे निकालने के बाद फटे कपड़ों को देखकर आकुलता-व्याकुलता अनुभव करते हुए बोले - "हाय मित्र ! आपने कितना दुःख सहा है ? पहले से आप यहाँ क्यों नहीं आये ? इतने सारे दिन कैसे बिताये ? मैं कैसा हत्‌भागी ! राजसिंहासन पर बैठने के बाद भी मेरे बालमित्र को भूल गया ? तुम्हारी ख़बर न ली, तब तुम्हें यहाँ तक आना पड़ा न ? जिन्हें सरस्वती वर चुकी है ऐसे विद्वान, मेरे परम उपकारी, पवित्र मित्र के पुनित पैर मेरे यहाँ कहाँ से ? मित्र ! तुम मुझे माफ कर । तुम्हारी इस स्थिति का प्रमुख कारण मैं ही हूँ । क्योंकि मैंने तुम्हारी ख़बर न ली तब यह स्थिति पैदा हुई न ? मैं कैसा निष्ठुर की राज्य के सुखवैभव में मस्त बनकर तुम्हें भूल गया ।" कृष्ण ने अपने दोष देखे । पानी लेने गई रानियाँ मज़ाक करने लगी और पानी लाने में देर लग गयी । उससे पहले कृष्ण सुदामा के पैर पकड़कर बैठे थे । मित्र सुदामा की दीन-दुःखी अवदशा देखकर करुणता के सागर इतने रोये कि आंसूओं से सुदामा के पैर धुल गये । सुदामा को होश आया कि मेरे मित्र तीनों खण्डों का अधिपति होने पर भी सत्ता के मद में फँसा नहीं है । उनकी गुणानुराग दृष्टि खिली हुई है । दुःखियों के दुःख दूर करने की भावना हृदय में भरपूर है । इन दोनों मित्रों का प्रेम बनावटी नहीं, सच्चा था । श्रीकृष्ण ने सुदामा के कष्ट दूर कर दिये । विश्वकर्मा (देव) द्वारा निर्माण की गयी द्वारिका नगरी समान उन्हों ने सुदामापुरी का निर्माण करवा दिया । जिसकी सुदामा को ख़बर तक न हुई ।

❑ सुदामा की गरीबी में भी कितनी अमीरी ? :

थोड़े दिन रहने के बाद सुदामा श्रीकृष्ण से अब घर जाने की आज्ञा मांगते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण उन्हें जाने देते नहीं है । यहाँ सुदामा छ महीनों तक रहे और भगवान ने सुदामा की झोंपड़ी थी वहाँ एक अच्छा नगर वसा दिया । सुदामा की झोंपड़ी जगह पर महल बना दिया । सुदामा ने जाने की आज्ञा मांगी तो कृष्ण ने कहा - "मैं तुम्हें छोड़ने आऊँ या वाहन भेज दूँ ?" सुदामा ने कहा - "मुझे

कुछ नहीं चाहिए ।" बोलिए, आप होते तो कुछ शेष रखते ? कृष्ण ने कहा - "मित्र ! माँगों जो चाहो माँग लो ।" सुदामा ने कहा - "मुझे तो एक पैसा भी नहीं चाहिए ।" सुदामा से बहुत बार श्रीकृष्ण कुछ माँगने को कहते हैं, परन्तु वे कुछ भी नहीं माँगते । और आप तो रोज़ पैसे की भीख माँगते रहते हो । सुदामा चलते हुए अपने गाँव में आये तो न अपने गाँव का पता लगा न अपनी झोंपडी का । उन्हों ने सारे नगर में अपना झोंपड़ा ढूंढने की बहुत मेहनत की । अन्त में नगर के लोगों से पूछा - "यह कौन-सा नगर है ? आप कोई मुझे यह तो बताईए के मैं देवनगरी में हूँ या राक्षसपुरी में भटक रहा हूँ ? इस नगर का नाम क्या है ?" नगरजनों ने कहा - "कोई महापुरुष यहाँ आये थे और वे ही सारा नगर बसा गये हैं ।" "फिर मेरी झोंपड़ी कहाँ है ?" उनकी झोंपड़ी के आगे एक पेड़ था, वही उसका निशान था । वहाँ आकर देखा तो झोंपड़ी के स्थान पर बहुत बड़ा महल (बंगला) बन गया है । आखिर लोगों ने उन्हें अपने द्वार पर पहुँचा दिया । उनके आने के समाचार मिलने पर राजरानी समान सुशोभित ब्राह्मिण अपने पति को प्रिय सम्बोधन सहित भीतर ले जाने के लिए तैयार होकर खड़ी है । तब सुदामा उन्हें देखकर कहने लगे -

"हमे कंत तुम जनि कहीं बोलो वचन संभारि ।
इन्हें कुटी मेरी थी, दीन बापुरी नार ॥

सदाचारी ब्राह्मण, रानी समान पत्नी को पहचान न सके । तो उन्हें धमकाते हुए कहा - "तुम मुझे अपना पति मत कहो । जिह्वा संभालकर बोलिए । यहाँ मेरी एक कुटिया थी । और बेचारी दीन, हीन मेरी पत्नी थी, वह कहाँ है ?" पत्नी के रंगढंग बदल जाने से सुदामा उन्हें पहचान नहीं पाये थे । सुदामा की पत्नी ने कहा - "स्वामीनाथ ! यह महल हमारा है और मैं आपकी पत्नी हूँ ।" "परन्तु यह सब कैसे हुआ ?" तब पत्नी ने कहा - "श्रीकृष्ण महाराज यहाँ आये थे, वे ही सब लीला कर गये हैं ।" श्रीकृष्ण ने सुदामा को ख़बर तक न होने दी और उनके सारे दुःख दूर कर दिये । इसका नाम है सच्ची मित्रता । आपकी मित्रता ऐसी है ? सच्चा मित्र तो उसे कहते हैं कि जो सुख और दुःख में भी आपके साथ रहे । आज नहीं है सुदामा या नहीं है श्रीकृष्ण । महापुरुष आपके जीवन को बनाने के लिए वीतरागवाणी के हथोड़े मारते हैं, परन्तु आप हथोड़े को छूने देते ही नहीं है, फिर आपको आकार कहाँ से मिलेगा । पत्थर हथोड़ा खाता है तो ही उसमें से हूबहू मूर्ति बन सकती है । वैसे ही जीवन को आकर्षक-हूबहू बनाने के लिए वीतरागवाणी का पावर जीवन में आयेगा तो ही मानव से महामानव बन सकेंगे । अधिक बातें अवसर आने पर ।

व्याख्यान - १

संसार कैसा कारागार है !

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

शास्त्रकार भगवान ने संसार के जीवों के कल्याण हेतु, भव्यजीवों के आत्म-उद्धार हेतु आगममय वाणी प्रकाशित हुई । सिद्धान्त का अर्थ है तीनों कालों में सिद्ध (हुई) भगवान की शाश्वत-वाणी । आप वर्षों तक इस साधना के स्थान में आयेंगे, परन्तु यदि आगम पर श्रद्धा मज़बूत नहीं होगी तो कर्म के दलिये उड़ा नहीं सकेंगे और श्रद्धाविहीन क्रिया कभी सफल नहीं होगी । श्रद्धापूर्वक की एक ही क्रिया करने से भी बहुत लाभ प्राप्त कर सकेंगे । जैसे एक के बिना चाहे कितने भी शून्य क्यों न रखे, परन्तु शून्य की कोई क़ीमत नहीं होगी । परन्तु यदि आगे एक लिखकर फिर जितने शून्य रखोगे, उससे दस गुना क़ीमत बढ़ जायेगी । वैसे ही आप साधना चाहे कितनी भी करते हों, परन्तु यदि श्रद्धा का एक आगे नहीं होगा, तो उसकी क़ीमत एक के बिना शून्य जैसी है । श्रद्धा का एक होते ही उस साधना की क़ीमत अनेक-गुना बढ़ जायेगी । महान पुण्योदय से ऐसी सिद्धांत-वाणी का श्रवण करने का अवसर मिला है तो सुना हुआ एक भी शब्द बाहर नहीं जाना चाहिए । आप समय की पूँजी को खर्चकर यहाँ किस लिए आते हो ? वीतरागवाणी के अमृतमय घूँट पीने । मात्र सुनने से कल्याण होनेवाला नहीं है । मात्र सुनने के लिए जीव ने बहुत कुछ सुना है । भोजन परोसा गया और खाने के लिए बैठे, फिर भी भूख न मिटे तो खाया नहीं है ऐसा कह सकते हैं । वैसे ही सुनने हेतु आये, परन्तु आचरण में न लिया, तो मान लीजिए कि हमने सच्चा सुना नहीं है ।

आत्मा ने अनन्तोंकाल से पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक को निकाला । वह मिथ्यात्व होने पर भी गुणस्थानक नाम क्यों दिया ? सोचिए, जो मिथ्यात्व है वह संसार की जड़ है, फिर भी गुणस्थानक नाम क्यों दिया ? सारे गुण खिलाने, विकसित करने और गुणों की श्रेणी (सीढ़ी) पर चढ़ने के लिए यह पहला कदम है, अतः मिथ्यात्व होने पर भी गुणस्थानक नाम दिया । 'उपासक दशांग सूत्र' में दस श्रावकों का प्रवचन चला है, उसमें प्रत्येक श्रावक के जीवन को देखिए । वे साधु नहीं बने थे, गृहस्थाश्रम में थे, फिर भी उनका जीवन बहुत पवित्र था ।

सिद्धांत में तो यहाँ तक कहा है कि आनन्द श्रावक ने जैनधर्म प्राप्त नहीं किया था उससे पहले भी उनका जीवन बहुत ऊँचा था । उनकी आत्मा इतन उज्ज्वल और प्रामाणिक थी कि समाज, ज्ञाति या गाँव आदि में चाहे कैसी भी मुश्किल परिस्थिति पैदा हो तो सब से पहले राजा के पास जाते । राजा से न सुलझने पर आनन्द को बुलाया जाता । आनन्द आकर जो न्याय देते उसे जनता (प्रजा) सहर्ष स्वीकार कर लेती, उसमें दोमत (कोई शक) नहीं है । ऐसे एक नागरिक के प्रति राजा को इतना अधिक सम्मान था कि मेरे राज्य में ऐसे सत्यवान, न्यायी और प्रामाणिक लोग रहते हैं । राजा और प्रजा एक-जूट होकर उसकी बात का स्वीकार करे ऐसा कब होता है ? जब जीवन में प्रामाणिकता होती है तब न ? मैं आप से पूछती हूँ कि आपके घर ऐसा कोई प्रश्न उपस्थित तो होता होगा, और आप न्याय करते होंगे, तब आपके घर के सभी लोग एक साथ मान्य करते हैं या नहीं ? (श्रोतागणों की आवाज : सभी को मान्य हो यह सम्भव नहीं है ।) आनन्द श्रावक समकित पाने से पहले भी उतने ही प्रामाणिक थे । उनका व्यवहार अच्छा और सरल था, परन्तु मिथ्यात्व मिथ्यात्व में भी फ़र्क होता है । जैसे क्रम बढ़ता गया वैसे गुण की श्रेणी (संख्या) भी बढ़ती गयी । जैसे धान कूटकर उसमें से चावल निकले और तिनके उड़ गये । परन्तु उसमें लाल रंग के जो चावल थे उसकी लाली रह गयी । चावल में अभी तक भूसी और कनकी है, परन्तु धान (शालि) की अपेक्षा वे चावल सफेद है । अब उस चावल को पॉलीश की जाय तो चावल ओर भी श्वेत बनते हैं । परन्तु अभी तक उस में भूसी और कनकी तो है; फिर भी चावल श्वेत हैं । वे अभी तक बिलकुल निर्मल नहीं हुए हैं । वैसे जो गहरा मिथ्यात्वी है वह पकड़ा हुआ छोड़ता नहीं है और दूसरा भी मिथ्यात्व होने पर भी कोई बात सत्य करे तो विचार करे कि इसका कथन सत्य है या मेरा कथन सत्य है ? इस प्रकार मिथ्यात्व मिथ्यात्व में भी फ़र्क है । संत रोज़ कहते हैं कि-'सारा संसार आस्रव का घर है, संसार छोड़ने जैसा है,' फिर आप पकड़ कर बैठ गये हो, उसे छोड़ते ही नहीं है । संसार में अधिक विषय-वासना कैसे बढ़े, संसार का पोषण कैसे हो और संसार फला-फुला कैसे रहे, सभी मुझे अच्छा कैसे कहे, ऐसी ही भावना रहती है न ?

ज्ञानीपुरुषों ने संसार को एक भयानक कारागार की उपमा दी है । भौतिक-सुख में होश खो बैठे हुए तथा भौतिक-सुख के अंति राग से मुसीवत झेलते इस संसारवर्ती जीवों को जागृत करने के लिए तथा संसार से छुड़ाने के लिए और संसार कैसा दोषमय और दुःखमय है, यह समझाने के लिए ज्ञानीपुरुषों ने प्रयास किया हैं । राजा-महाराजा, सेठ, साहूकार जिन्हें पुण्योदय से वहुत साधन-संपत्ति

मिली है ऐसे जीवों को भी प्रभु समझाते हैं कि-"संसार एक भयानक कारागार है ।" ऐसा कौन कह सकता है ? जो स्वयं संसार से तैरना और अन्य भव्यजीवों को संसार से तैराने (पार लगाने) की सोचते हो वे ही कह सकते हैं । जिनकी आँखों के सामने मोक्ष हो, उसे संसार चाहे कितना भी सुख-सामग्रीवाला क्यों न हो, फिर भी संसार सचमुच बुरा है ऐसा जिन्हें लगा है वे ही कह सकते हैं । ऐसी साधक आत्मा प्रशंसा में नहीं डूब सकती । समझदार मनुष्य तो स्वयं कहता है कि हमारे आज के संसार में प्रशंसा योग्य क्या है ? भूतकाल में लोगो को संसार में भी कितनी अनुकूलताएँ थी ? आज बड़े-बड़े सेठ, साहूकार को प्रायः नौकरों की भी नौकरी करनी पड़ती है । बड़े से बड़े सेठ को भी छोटा अफसर धमका सकता है और इस सेठ का नौकर भी अवसर आने पर सेठ को दबा सकता है । आज बहुत सी जगहों पर बाप को बेटे के नौकर या आश्रित की तरह रहना पड़ता है । सेठानियाँ सेठ के समान अधिकार भोगने की भावना रखती हैं । सेठानी हाथ-पैर की थकी होती है, इसलिए रामा (नौकर) उन पर अधिकार जमा सकते हैं । धन भी अपना होने के बावजूद अपना नहीं है, ऐसा कहकर चलाना पड़ता है और फिर भी चोपड़ों पर धन नहीं है ऐसा दिखावा करना पड़ता है । बोलिए, ऐसा संसार छोड़ने जैसा है या नहीं ? और मोक्ष पाने योग्य है या नहीं ?

नवरत्न की बातें तो बहुत कि, परन्तु आचरण में कुछ नहीं आया । जब आचरण में आयेंगी, तब परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा । नवरत्न के भीतर अगर मोक्ष तत्त्व की रुचि हुई हो और करने योग्य लगा हो तो मोक्ष प्राप्त करने के लिए संसार का त्याग करना पड़ेगा । बोलिए, क्या करना है ? मोक्ष लेना है या संसार रखना है ? (श्रोतागण में से आवाज़ : मोक्ष लेना है ।) अगर आप को मोक्ष चाहिए तो आपकी भावना और आपकी सभी क्रियाएँ मोक्ष लक्ष से करनी हो, परन्तु संसार के लक्ष से करनी नहीं चाहिए । मोक्ष में जाना है, कर्म से मुक्ति लेनी है और घाती-अघाती कर्मों से मुक्ति चाहिए तो जीवन में अवश्य ही अच्छा आचरण करना चाहिए । आपकी एक भी क्रिया संसार की ओर वाली नहीं होगी । यहाँ वीतरागवाणी सुनने आते हो, परन्तु वृत्ति में भरा है कि मेरा संसार कैसे फलता-फूलता रहे ! कोई साधु-साध्वी संसारी-सुख के लिए कोई मंत्र-तंत्र करते हो, तो आप दौड़कर वहाँ पहुँच जायेंगे, वहाँ मानते हो कि सुख मिलता है तो ले लेना चाहिए । 'मेरे संसार को ज़रा भी आँच नहीं आनी चाहिए ।' अगर वीतरागवाणी सुनते समय वृत्ति में संसार भरा है, तो वह धर्म नहीं है । संसार के विषयों के पोषण करने के लिए, संसार को हरियाला रखने के लिए किया जानेवाला धर्म धर्म नहीं है । वृत्ति में जबतक वासना नहीं जाती तबतक मोक्ष मिलनेवाला

नहीं है और तबतक वह नाम में है, परन्तु आचरण में नहीं है । हमारा ध्येय मोक्ष का होना चाहिए ।

आप धर्मगुरु के पास जाये, उनकी व्याख्यानवाणी सुने, तो हृदय में ऐसा भाव आना चाहिए कि अब मुझे बिलकुल संसार नहीं चाहिए । अब मेरे जन्म कैसे रूक जायेंगे ? यह ध्येय और यह लक्ष्य आयेगा तो एक क्षण भी आप व्यर्थ नहीं जाने देंगे । प्रभु ने फरमाया हें कि -

असंखयं जीवियं मा पमायए, जरावणीयस्स हु नत्थि ताणं ।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, किण्णु विहिंसा अजया गहिन्ति ।।

- उ. सू., अ.-४, गा.-१

महापुरुष क्या कहते हैं ? हमारा जीवन क्षणभंगुर है । टूटा हुआ आयुष्य पुनः जुड़ता नहीं है । अतः क्षण का भी प्रमाद करने जैसा नहीं है । अतः समझदारी के घर में आ जाईए । **'आनेवाले कल का शत्रु मित्र बन जायेगा और प्रमाद कभी मित्र नहीं बनेगा ।'** इसलिए प्रमाद छोड़ने जैसा है । प्रमाद आत्मा के घर का डाकू है, बड़ा लूटेरा है । संसार के कार्यों में भी आप प्रमादी पुत्र से कहते हों कि-'उठो, अब कबतक सोता रहेगा ?' वहाँ सोये हुए को जगाते हो तो अभी हमें आत्मा-साधना करने का सुन्दर मौका मिला है, फिर भी जीव प्रमाद की शय्या छोड़ता नहीं है । सोते हुए पुत्र को जगाते हो, वैसे प्रमाद की शय्या में सोयी आत्मा को जगाने की आवश्यकता है । हमारी जीवन-डोर टूट जाने के बाद जूड़ती नहीं है, अतः प्रमाद को छोड़कर आज जागृत होने की आवश्यकता है, कल क्या होगा उसकी हमें ख़बर नहीं है, इसलिए समझिए । किसान को दाने (कण) की क़ीमत है, व्यापारी को मन की क़ीमत है और पण्डित को क्षण-क्षण की क़ीमत है । किसान की दृष्टि में एक कण में उसे लाखों कण (दाने) दिखते हैं, क्यों ? एक कण में से पुरुषार्थ करने से और वर्षा आदि अनुकूल संयोग (समय) मिलने से लाखों कण मिलनेवाले हैं, वैसे ही जीवात्मा ने पूर्वजन्मों में लाखों भूलें की हैं, अनाड़ीपन किया है । उन पापों को धोने के लिए सच्ची समझदारी एक क्षण भी बहुत है । उस समझदारी एक क्षण लाखों वर्षों के पाप को सुधारनेवाला है । 'आचारंग सूत्र' में प्रभु ने फरमाया है - ''*खणं जाणाहि पंडिए ।*'' जो क्षण को पहचाने वही पण्डित । पण्डितों का एक-एक क्षण अमूल्य है । आपने लाख रुपये लिखे और बाद में उसमें से एक शून्य निकाल दिया तो कितने रहे ? [illegible] हज़ार लाख में से एक शून्य निकालने से कितना नुकसान हुआ ? वहाँ [illegible] किया है, वैसे आत्मा की प्रत्येक अमूल्य क्षण निकलती जा रही है [illegible]

नुकसान होता है ? इसलिए क्षण को पहचानिए । आप व्यापार में भी कहते हो न कि कमाने का मौका है, समय है इसलिए रुपये कमा लीजिए । वहाँ आत्मा को सोचने जैसा है कि यह तो आस्त्रव के कार्य हैं, ये कार्य करने जैसे नहीं है । (श्रोतागण : ऐसा लगे तो फिर दुकान पर जाता कहाँ से ?) इस संसार में अनेक जीव ऐसे हैं, जो संसार में रहते हैं, मगर वे दावानल में रहते हो ऐसा लगता है । केन्सर के छाले की जो पीड़ा होती है, उससे भी अधिक पीड़ा इस संसार में रहते हुए होती है, उसे तो ऐसा ही लगता है कि यह संसार आस्त्रव है । मैं घोर पाप में फँसा हूँ । इसमें से मैं मुक्त कैसे होउँ ? समकिती आत्मा को शायद चारित्र मोहनीय के उदय से संसार में रहना पड़े तो रहते भी है, परन्तु उनका मन उसमें नहीं रमता । चाहे कितना भी मीठा दूध हो, परन्तु क्या उसे खुशी से पीते हो ? होमियोपेथिक और बायोकेमिक दवाई की पुड़िया आती है, वह मिसरी जैसी ही मीठी होती है, फिर भी क्या आप से कोई पूछता है कि क्या खा रहे हों ? तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं मिसरी खाता हूँ, परन्तु ऐसा कहेंगे कि दवाई खा रहा हूँ । दवाई खानी पड़ती है और खाते हो, परन्तु मीठी होने पर भी उसे खुशी से नहीं खाते, वैसे ही समकिती आत्मा को संसार में रहना पड़े तो रहता है, परन्तु उसमें उसे खुशी या आनन्द नहीं होता । आप का संसार ऊपर से मिसरी जैसा और भीतर से एलुवा जैसा कड़वा है । होमियोपेथिक और बायोकेमिक दवाई मीठी होने पर भी दवाई है, वैसे ही आप के यहाँ अखूट वैभव हो, सोने के हिंडोले में झुलते हों, परन्तु फिर भी क्या उसे स्वर्ग कहेंगे ? नहीं कहेंगे ।

ज्ञानी कहते हैं कि - "ऋषभदेव भगवान जैसा जिसका परिवार हो कि जिस के परिवार में सभी मोक्ष को प्राप्त हुए, ऐसा परिवार हो तो उसे स्वर्ग कह सकते हैं । संसार को स्वर्ग की उपमा दी जाय तो स्वर्ग भी संसार है, परन्तु वहाँ भी सुख नहीं है, दुःख है । वहाँ धन-वैभव के लिए मारामारी है । वहाँ परिग्रह संज्ञा इतनी प्रबल होती है कि कहाँ से लाये और कहाँ से प्राप्त करे ? अर्थात् वहाँ भी सुख नहीं है ।

आप सभी यहाँ आते हो, वह एकान्त आत्मा के सुख के लिए, प्रभु की वाणी मन के रंजन करने के लिए, समय को आनन्द के लिए नहीं । ऐसा तो कई बार सुना है, परन्तु प्रभु की वाणी सुनने का ध्येय यह है कि मोक्षमार्ग में मेरा प्रवेश हो और संसार छूट जाय, मोक्ष में ले जाय वही सच्चा धर्म है । देवलोक में ले जाय वहाँ तक तो धर्म नहीं है । धर्मात्मा के निजगुण में प्रकट हो जायेगी तव **'आत्मा सो परमात्मा'** आत्मा परमात्मा वन जायेगी । जव आत्मा में धर्म का रंग खिल उठेगा, तव वह सोचेगा कि मैं अभी जिस गुणस्थानक में हूँ वहाँ से

आगे बढ़ना है। आत्मा का विकास करना है और गुण का समूह खिलाना है। गुणस्थानक १४ है, उसमें से अमर गुणस्थानक कितने ? (श्रोतगण से आवाज़ : तीसरा-बारहवाँ तेरहवाँ) ये तीन गुणस्थानक अमर है। इस गुणस्थानक में जीव मरता नहीं है। उसे अमर किस लिए कहा है ? तीसरे गुणस्थानक में मिश्र भाव में आयुष्य को जीता है, न मरता है और जो जीव बारहवें गुणस्थानक पर पहुँचा. वहाँ से तेरहवें स्थानक पर जायेगा, तेरहवे गुणस्थानक में जीव मरता नहीं है. परन्तु शैलेशी अवस्था में १४वे गुणस्थानक में जाकर अयोगी अवस्था प्राप्त करता है। तेरहवें गुणस्थानक में संयोगी केवली गुणस्थानक कहा जाता है और चौंदहवें गुणस्थानक को अयोगी केवली गुणस्थानक कहा जाता है। तेरहवें गुणस्थानक में मन, वचन, काया के शुभ योग है। वह गुणस्थानक में केवली को इरियावहिया क्रिया होने से शातावेदनीय कर्म बन्धते हैं। वह पहले समय में वाँधता है, दूसरे समय में वेदता है और तीसरे समय निर्जरी डालता है। अयोगी केवली गुणस्थानक में मन, वचन, काया के योग नहीं है। उस गुणस्थानक की बात करने पर पूर्ण हो ऐसी नहीं है। वहाँ चार अघातीकर्म जो शेष है, उसका क्षय कर आठ कर्म से मुक्त होकर पाँच ह्रस्वअक्षर अ, इ, उ, ऋ, लृ बोले, इतना समय रहकर मोक्ष में चला जाता है। जिसे मोक्षतत्त्व की रुचि जगी हो उसे संसार में रहने पर भी वह बन्धनरूप लगता है। संसार का राग और भोग विष जैसा लगता है। जैसे सोने के पींजरे में फँसे तोते को सोने का पींजरा होने पर भी वह बन्धन रूप लगता है, वैसे ही समकिती आत्मा को संसार बन्धनरूप लगता है। ऐसा होगा तब यह डोलर एरिया मिटकर अध्यात्म एरिया (विस्तार) बन जायेगा। जब अध्यात्म एरिया बन जायेगा तब (श्रोतागण में से आवाज़ : संसार विष समान लगेगा।) में बुलवाती हूँ ऐसा आप बोलते हो, परन्तु आप के हृदय की आवाज़ नहीं होती। मेरी आवाज़ रानी छाप रुपये जैसी नहीं, अपितु झूठे रुपये जैसी आयेगी। सिद्धक्षेत्र में जाना हो तो रानीछाप रुपये जैसा बनिए। अभी लोग कहते हैं कि रानीछाप एक रुपये की कीमत दस-ग्यारह गुनी होती है। आप की कीमत इतनी हो जाय तो आप को कितना अधिक लाभ हो सकता है ? आपके पास से सुना है कि-'महासतीजी ! संसार में कुछ मज़ा नहीं है। सारी माया स्वार्थ की है।' आज प्रत्यक्ष देखते हैं कि जबतक रुपये बहुत होते हैं, तबतक लोग उपस्थित रहते हैं, परन्तु कर्म के उदय से रुपये चले जाय तो फिर बाद में आपका कोई साथी-सगा नहीं होगा। पाँच-पच्चीस देने की बात तो छोडिए, आश्वासन के दो शब्द कहनेवाले भी कोई नहीं होता।

"परेशान करता है यह संसार मुझे, पर नहीं छूटती है माया उसकी (२)
मैं जानता हूँ कि यह संसार स्वार्थी होकर सम्बन्ध है रखता ।
कल यदि मैं बेहाल बनूँ, कोई टुकडा भी रोटी न देगा (२)
तब भी मेरे (२) कहने की ममता का टूटता है न तंतु हाँ न तंतु ॥"

उत्तम मनुष्यदेह को प्राप्त किया है, परन्तु ऐसी वृत्ति हो तो जीवन में मानवता नहीं है । पैसों को सँभालते पाप, करते पाप और छोड़ना न आये तब भी पाप ! अरेरे ! मैंने इतने सारे रुपये इकट्ठे किये, धन्धा-व्यवसाय में अग्रसर हुए, परन्तु अब क्या ? पुत्र अबुध और अज्ञान है । व्यवसाय सँभाल सकने में असमर्थ है, फिर मेरे मरने के बाद इन सब का क्या होगा ?" ज्ञानी कहते है कि - "हाय... हाय... करते जायेंगे तो हाय... हाय... होगा । अपने पुत्र के लिए तुम कुछ कर सकोगे ? मन से मानता है कि मैं अपने बेटे के लिए सब करके जाऊँ ! तुम सब व्यवस्थित करके जाओगे, तब भी पाप का उदय होगा तो सब कुछ चला जायेगा । राजाओं की सत्ता भी चली गयी है ।

बन्धुओं ! आपकी स्थिति का ख्याल कीजिए । देखा जाय तो आपका पुण्योदय बहुत है, परन्तु उस पुण्योदय से मिली सामग्री का उपयोग किस प्रकार कर रहे हो ? यह देखने पर तो ऐसा लगता है कि महान पुण्योदय होने पर और पुण्य से सुन्दर सामग्री मिलने पर भी धर्म के भाव ने स्पर्शित किया है ? आप का भाग्य तो ऐसा है कि इस मुम्बई में बिना बुलाये ही साधु-संत खिंचे चले आते हैं । मैं आप से पूछती हूँ कि यहाँ बैठे हुए भक्तों में किसी को साधु-साध्वी का योग न मिला हो ऐसा हुआ है कभी ? ऐसी सामग्री के योग में आप को धर्म करने का जो उत्साह प्रकट होना चाहिए, वह क्या प्रकट हुआ है ? यह वही बताता है कि आपने गत-जन्म में धर्म तो किया होगा, परन्तु उसमें कुछ कमी रखी होगी । तत्त्वज्ञान प्राप्त करना, तत्त्व के स्वरूप का श्रवण करना, उसका रहस्य जानना और भगवान ने जिसे हेय कहा है उसका त्याग करना और जिसे उपादेय कहा है उसे ग्रहण करना चाहिए । ऐसा धर्म आपको मोक्ष तक ले जायेगा । अतः ज्ञानीपुरुष कहते है कि - "संसार की मूर्च्छा छोड़िए और धर्म में उत्साह प्रकट कीजिए । जैसे सर्प की दाढ़ में विष होता हैं, मगर उसकी जिह्वा या शरीर में विष नहीं होता । वादी (मदारी) सर्प की दाढ़ निकाल दे, तो वह भी हमारे जैसा हो जाता है, वैसे आप की दाढ़ में मूर्च्छा का विष भरा है । सर्प सबके सामने फुफकार करता है और आप चुपके चुपके फुफकार करते हो । (हँसते हैं) जैसे सर्प की दाढ़ में विष है तबतक भय (ड़र) है, वैसे ही आपकी दाढ़ में मूर्च्छा है तब-तक संसार है । दाढ़ में से मूर्च्छा गयी तो संसार गया । वह ममत्व और अहंकार

भाव संसार में भटकाता है और जहाँ अनासक्त भाव है, वहाँ सुख, शांति और आनन्द है। एक करुण कहानी याद आती है -

माँ से विहीन पुत्र

एक माता का एक बेटा था। माता को बेटे के प्रति अपार वात्सल्य था। माता संस्कारी थी, इसलिए उस नाजुक फूल समान बच्चे के जीवन में भी अच्छे संस्कारों का सिंचन कैसे हो इसका बहुत ध्यान रखती थी। माता बच्चे को लेकर प्रत्येक रविवार को बगीचे में या किसी जगह पर घुमने के लिए ले जाती थी। वहाँ जाकर उसे महान पुरुषों के जीवन चरित्र, सोलह सती के चरित्र आदि सुनाती थी। ऐसा करते हुए माता का आयुष्य पूर्ण होने पर बच्चे को पाँच साल का छोड़कर चल बसी। माता के चले जाने से बच्चा बहुत रोने लगा। पिता को पत्नी के वियोग के दुःख से हृदय फट जाता था और दूसरी ओर माता के बिना बच्चे का आक्रन्द (तरस) देखा नहीं जा रहा था। पिता ने हृदय पर पत्थर रखकर बच्चे को छाती से लगा लिया और समझाने लगे कि - "बेटे, तुम्हारी माँ कुछ दिनों में वापस आयेगी। तुम रो मत।" बच्चे का हृदय सरल होता है, इसलिए जैसा-तैसा करके समझाया।

अब पिता सोचते हैं कि 'इस बच्चे के जीवन की अधूरी परवरिश मुझे करनी है। उसकी माता जिस तरह से रखती थी उसे मैं भी वैसे ही रखुँगा। उसे ज़रा भी कमी महसूस नहीं होने दुँगा।' परन्तु बन्धुओं ! पिता पुत्र पर चाहे कितना भी वात्सल्य रखे, मगर माता जैसा वात्सल्य दे नहीं सकता। बाप कमाकर दे, परन्तु हृदय के वात्सल्य का भाव तो माता ही दे सकती है। माँ की तुलना संसार में किसी से नहीं हो सकती। पिता की उम्र कम थी, फिर भी उन्होंने निर्णय किया कि 'मुझे अब विवाह नहीं करने हैं। अगर विवाह करूँ और आनेवाली पत्नी सुशील हो तो ठीक, मगर अच्छी न आयी तो इस बच्चे की ज़िन्दगी का क्या ?'. पैसा बहुत था। नौकर-चाकर-रसोइया (बावर्ची) सब थे, इसलिए अन्य कोई परेशानी नहीं थी। माता के चले जाने के सप्ताह बाद बच्चे ने अपने पिता से पूछा - "पप्पा ! मेरी मम्मी कब आयेगी ? क्यों नहीं आती ?" पिता ने कहा - "बेटे ! अब थोड़े दिनों में आयेगी।" इस प्रकार समझा-बुझाकर झूठा आश्वासन देता है, परन्तु ऐसा कबतक चलता ? दो दिन जाते कि बेटा पुनः पूछता। अब क्या उत्तर दिया जाय ? बेटा फिर पूछता है कि - "पप्पा ! मम्मी कब आयेगी ?" तब एक दिन पिता ने हृदय पर पत्थर रखकर कहा - "बेटे ! तुम्हारी मम्मी तो ऊपर गयी है। अब वह वापस नहीं आयेगी।" "पप्पा ! क्या मेरी मम्मी अब नहीं आयेगी ?" और वह रोने लगा, तड़पने लगा। पिता ने प्रेमपूर्वक [illegible]

हाथ रखा और कैसे भी करके समझाया । इस प्रकार बारह महीने तो चले गये । इस लड़के को उसके पिता ने पढ़ने के लिए पाठशाला-स्कूल में भेजा । लड़का प्रतिदिन पाठशाला जाता है । विद्यालय में एक लड़का उसका खास मित्र बन गया था । एक दिन विद्यालय देर से बन्द हुई । मार्ग में मित्र का घर आता था, इसलिए उसने रमेश से कहा कि – "आज तू मेरे घर चल । भोजन करके जाना ।" तब रमेश ने कहा – "नहीं, मुझे नहीं आना है ।"

❑ वात्सल्य का झरना है माता का प्रेम :

रमेश को उसके मित्र ने बहुत कहा, इसलिए गया । वह लड़का अपनी माता का इकलौता पुत्र था । आधा घण्टा देर होने से उसकी माता द्वार पर राह देखकर खड़ी थी । जैसे ही उसका बेटा आया कि उसे गले से लगा दिया – "बेटे ! आज देर से क्यों आया ? कहाँ गया था ?" लड़के ने कहा – "मम्मी ! आज विद्यालय में बड़े साहब आये थे, इसलिए देर हो गयी ।" यह दृश्य देखकर रमेश को अपनी मम्मी याद आ गयी । 'अहो ! मेरी मम्मी मुझे ऐसा प्यार करती थी । अब तो मुझे कोई प्यार नहीं दे सकता । मेरी मम्मी होती तो मुझे ऐसा ही प्यार करती न ?' रमेश अपने घर आया ।

❑ पप्पा मुझे तो मम्मी चाहिए :

रमेश अपने घर जाकर पलंग पर सो गया । सोते-सोते अपनी माता को याद कर बहुत रोया । इतना रोया कि उसके कपड़े तक भीग गये । जो चद्दर ओढ़ी थी वह भी भीग गयी । उसके पिता ऑफिस से आये और नौकरों से पूछा – "रमेश कहाँ गया है ?" तब नौकर ने कहा – "रमेश पलंग में सोया है । उसे बहुत समझाया, परन्तु खाता नहीं है और पलंग में सोते-सोते रोता है ।" पिता तुरन्त उसके पास गये और कहा – "बेटे रमेश ! तुम क्यों रो रहे हो ? खड़े हो जाओ । हम भोजन कर लेते हैं ।" तब रमेश ने कहा – "पप्पा ! मुझे भोजन नहीं करना है ।" "फिर तुझे क्या हुआ है ? तुम इतना अधिक क्यों रो रहे हो ? तुझे जो चाहिए वह दिलवा दूँ, परन्तु तू रो मत । तुम्हारा रोना मुझसे देखा नहीं जाता ।" तब रमेश ने कहा – "पप्पा, मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए, परन्तु मैं स्कूल से जब घर आऊँ तब छाती से लगाकर प्यार करनेवाली मम्मी चाहिए । मुझे मम्मी ला दीजिए ।" ये शब्द सुनकर बाप तो बेहोश हो गये ! इस तरफ लड़का रोता है । नौकरों ने पंखा लाकर पिता को होश में लाये । बेटा तो किसी भी प्रकार से मम्मी चाहता है । अब मैं क्या करूँ । चिन्ता की कोई सीमा नहीं है ।

पंद्रह दिन जाने पर उसका शरीर तो बिलकुल सूख गया था । जैसे अस्थिपंजर देख लीजिए । चिन्ता मनुष्य को जीते-जी मार डालती है । चिता में जल जाना

अच्छा, परन्तु चिन्ता बहुत बुरी चीज है । एक दिन उसका मित्र उसे मिलने घर पर आया । उसने पूछा - ''मित्र ! तुम क्यों सूख गये हो ? तुम्हारे मुख पर तो नूर दिखता ही नहीं । क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है ?'' तब मित्र की आँखों में आंसू आ गये । कुछ बोल नहीं पाते । रमेश ने कहा - ''चाचा ! मेरे पप्पा मुझे सब कुछ देते हैं, परन्तु मैं एक वस्तु माँगता हूँ, वह देते नहीं हैं । मैंने जब से वह वस्तु माँगी है तब से पप्पाजी न खाते हैं, न पीते हैं, बस रोते रहते हैं ।'' तब मित्र ने कहा - ''तुझे वे क्या नहीं देते ?'' रमेश ने कहा - ''मेरे लिए वे मम्मी नहीं लाते है । मुझे मम्मी चाहिए ।'' ये शब्द सुनकर मित्र की आँख में भी आंसू आ गये । रमेश के पिता को उनका मित्र अलग कमरे में ले गया । रमेश के पिताजी मित्र की गोद में सिर रखकर बहुत रोये । फिर मित्र ने कहा - ''हे मित्र जयंति ! तुम ऐसा करो, विवाह कर लो और लड़के की इच्छा पूर्ण कर दो । क्योंकि वैसे भी तुम्हारी उम्र अभी तो छोटी है ।''

''मित्र ! अगर मैंने अभी तक विवाह इसलिए नहीं है, क्योंकि मान लीजिए कि नयी पत्नी अच्छी-सुशील न आये तो फिर इस लड़के का क्या ? अच्छी मिली तो रमेश को अपने बेटे जैसा प्यार दे सकती है, परन्तु यदि न मिली तो उसे दुःख देगी । बोल, अब मैं क्या करूँ ?'' दोनों मित्रों ने विचार-विमर्श कर तय किया कि 'जयंति को पुनर्विवाह करना । अगर लड़के का भाग्य होगा तो पत्नी अच्छी मिलेगी ।'

❑ मित्र के आग्रह और बच्चे के हठाग्रह से पुनः विवाह :

जयंति ने कहा - ''मित्र ! मुझे विवाह करने का कोई शौक नहीं है, परन्तु बच्चे के कारण करना पड़ रहे हैं । तो तुम कोई अच्छी और संस्कारी तथा मेरे रमेश को प्यार कर सके ऐसी कन्या को ढूँढ़ लाओ । मुझे दहेज या रूप कुछ नहीं चाहिए । परन्तु रमेश उसे मम्मी कहे और वह उसे सँभाले ऐसी कन्या चाहिए ।'' मित्र ने सोचा कि-'धनवान की कन्या आधुनिक होती है, तब गरीब की कन्या भी अच्छी हो ऐसा मान ले यह भी गलत है । क्योंकि संस्कारों से विहीन स्त्री संसार को बिगाड़ सकती है । इसलिए मध्यमवर्गीय कन्या पसन्द की गयी । खोज करने पर एक मध्यम परिवार की कन्या पसन्द की गयी । उसके पिता से वात की तो उन्होंने भी कहा कि - ''ऐसा घर मिलता हो तो क्यों न लूँ ?'' मित्र ने कहा - ''उन्हें एक लड़का है । पैसों की कोई कमी नहीं है ।'' तब लड़की ने वाप ने इसका भी स्वीकार कर लिया । सगाई कर विवाह की तैयारियाँ होने लगी । उस ज़माने में आज की तरह देखने, आने-जाने की प्रथा नहीं थी ।

विवाह का दिन नज़दीक आया तो कन्या की सहेलियाँ कहने लगी - "बहन! अब तो तुम विवाह कर ससुराल जायेगी । प्रभुता में कदम रखेगी ।" आप भी ऐसा ही मानते हैं न ? परन्तु प्रभुता में कदम रखे जाते हैं या पशुता में ? बोलिए तो सही ? पहले तो दो पैर थे, विवाह करने पर चार पैर और बच्चे होने पर चार में से छ और आठ पैर । बोलिए अब ये पैर प्रभुता में होंगे कि पशुता में ? (सब हँसते हैं ।) कन्या की सखियाँ हँसने लगी । पहले तो वे कुछ नहीं बोलती थी, परन्तु विवाह के दो दिन पहले उसकी सखियों ने कहा - "बहन ! तुम विवाह की खुशी में आनन्दित हो रही है, परन्तु क्या तुम्हें पता है कि विवाह करने के बाद तुम तुरन्त माँ बन जायेगी ? तुम्हारे बाप ने क्या देखकर विवाह तय किया है ? क्या मात्र पैसे ही देखे और तुमने कपड़े और आभूषण ? परन्तु तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी सौतन का एक लड़का भी है ? तुम तो छोटी लड़की जैसी हो, परन्तु विवाह के बाद तुरन्त तुझे माँ-माँ के शब्द सुनने पड़ेगे ।" सारी बातें सुनने के बाद उस कन्या को गुस्सा तो बहुत आया, पर उस ज़माने में आज की तरह विरोध नहीं किया जाता था, साथ-में आज विरोध करने का समय भी न था । विवाह हो गये । कन्या विवाह के बाद ससुराल आयी । उसके पति ने उसे कह दिया - "देखो, ये तिजोरियों की चाबियाँ है और सारा घर तुझे दे रहा हूँ । यह सब कुछ गँवा देगी तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा, परन्तु मेरे रमेश को संभालना । मेरा रमेश मम्मी के प्रेम का भूखा है, तुम्हें उसे माता का प्रेम ज़रूर देना । उसे ज़रा भी कमी न आये उतना ध्यान रखना । वह जैसे ही स्कूल से आये कि उसे गोद में उठाकर ढ़ेर सारा प्यार देना । उसे ज़रा भी दुःख होगा तो मेरा हृदय फट जायेगा ।" पत्नी ने पति के मुँह पर तो मीठा-मीठा बोलकर हाँ कहा, परन्तु रमेश को मम्मी के आने पर अपार खुशी हुई । दूसरे दिन स्कूल से लौटा ।

❑ मम्मी के प्यार के लिए तरसता पुत्र :

रमेश के मन में इतनी खुशी थी कि वह सोच रहा था कि 'मैं जैसे ही घर जाऊँगा तो मेरी मम्मी मुझे प्रेम से गले लगा देगी और ढ़ेर सारा प्यार देगी और कहेगी - "बेटे ! तुम आ गये ?" बच्चे का हृदय इतना सरल होता है । उसे कहाँ पता है कि यह मेरी असली माता है या नकली ? घर नज़दीक आया, तो वह धीरे धीरे चलने लगा । माँ की राह देखने लगा । लड़का प्रेम का भूखा था, परन्तु घर में तो स्थिति अलग थी । लड़के ने घर में प्रवेश किया, परन्तु माँ ने उसे बुलाया तक नहीं । मगर मातृप्रेम का भूखा लड़का 'मम्मी मम्मी' बोलता हुआ उसे गले लग गया । तब माता ने उसे धुत्कारते हुए कहा - "अभी तो मैं विवाह कर चली आ रही हूँ और अभी से तुम मुझे 'मम्मी मम्मी' कहकर बुलाते हो ?" इस प्रकार रमेश को प्रेम के स्थान पर तिरस्कार मिला । रमेश सोचता है कि - 'मुझे तो मम्मी चाहिए थी, परन्तु मम्मी तो मुझे 'मम्मी' कहने को मना कर रही

है । मुझे प्यार भी नहीं करती ।' निर्दोष बालक वहाँ से चला गया और अपने कमरे में जाकर बहुत रोया ।

रमेश को उसकी नयी मम्मी बुलाती भी नहीं है । खाने-पीने में भी कुछ ध्यान देती नहीं है । परन्तु जब उसका पति होता तब झूठा प्यार जताती । रमेश के पिता कई बार एकान्त में बैठकर उससे पूछते कि - ''बेटे ! तेरी मम्मी तुझे ठीक तरह रखती है या नहीं ? तुझ से प्यार करती है ?'' लड़का अब थोड़ा समझदार बन गया था, इसलिए कहने लगा - ''जी हाँ पिताजी । मेरी मम्मी मुझे बहुत प्यार करती है । वह मुझे बहुत प्यार से खिलाती-पिलाती है । इतनी अच्छी है मेरी मम्मी ।'' पिता तो बेचारे नौकरी के लिए जाते, उन्हें क्या पता कि पत्नी रमेश के साथ कैसा व्यवहार करती है ? वह जब मौजुद होते तब रमेश को प्यार से बुलाती । इससे पिता को लगता कि पत्नी रमेश को बहुत अच्छी तरह से रखती है । वहाँ लड़का सब कुछ सहकर भी मम्मी के लिए अच्छा-अच्छा ही बोलता है । रमेश कभी भी पिता को सत्य बात कहता नहीं है । वह तो सोचता है कि 'मेरी मम्मी चन्दनबाला की कहानी कहती थी, उसमें वह यह भी कहती थी कि चन्दनबाला सरे बाज़ार बिक गयी, फिर मूला सेठानी ने तहख़ाने में डाल दी और धना सेठ ने आकर पूछा - 'बेटे चंदना ! तुम्हें तहख़ाने में किसने डाला ? हाथ-पेरौं में बैडियाँ किसने पहनायी है ?' तब वह बोली - 'मेरे कर्मो ने मुझे यहाँ डाला है ।' ऐसा कष्ट होने पर भी उसने मूला सेठानी का नाम न दिया, तो मुझे क्यों देना चाहिए ?'' इतने छोटे से बच्चे में ऐसी समझदारी कहाँ से आया ? माता द्वारा दिये गये संस्कारों का फल है ।

❑ पुत्र द्वारा लिखा गया माँ को पत्र :

समय जाते देर नहीं लगती । लगभग ढ़ाई वर्ष बीत गये । एक दिन उसे अपनी माँ की बहुत याद आ रही थी । उसने रोते रोते मानो अपनी माँ से बात करता हो वैसे पूछा - ''प्यारी मम्मी ! प्रेम के पीयूष पिलानेवाली प्यारी मम्मी ! तुम मुझे रोज़ भगवान की, महान सतियों की कहानी कहती थी, वह सब कुछ छोड़कर तुम उपर चली गयी । तुम्हारे द्वारा कही गयी कहानियाँ तो मुझे याद हो गयी है, परन्तु अब तो कहानी कहनेवाला कोई नहीं है । तुम नीचे आकर मुझे नयी-नयी कहानियाँ सुनाओ न ?'' ऐसे बोलते हुए उसका हृदय भर आया । उस समय उसकी नयी माँ नहीं थी । उसे लगा कि 'क्यों न मैं अपनी मम्मी को पत्र लिखुं ? वह पत्र पढ़कर जरूर आयेगी ।' ऐसा सोचकर पिताजी के टेबल से एक पोस्ट कार्ड लिया और बच्चे ने लिखा कि -

''हे प्यारी मम्मी ! तुम तो मुझे ढ़ाई साल से छोड़कर चली गयी हो । तेरे विना मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता । क्या तुझे तेरा ये प्यारा बेटा रमेश याद नहीं

आता ? मैं तो तुम्हारे लिए दिन-रात तड़पता हूँ । तुम्हें मेरी कौन-सी बात बुरी लगी है कि या फिर पापा से कोई झगड़ा हुआ है तो उनसे बात मत करना, परन्तु अपने बेटे रमेश का पत्र पढ़कर तो तत्काल नीचे आ जाओ । मम्मी ! तुम्हारे जाने के बाद पिताजी नयी मम्मी लाये हैं, परन्तु उनसे मुझे तुम्हारे जैसा प्यार नहीं मिलता है । तुम तो मुझे हर रविवार को बगीचे में घुमने ले जाती थी, मैं स्कूल से आता तो तुम मुझे गोद में उठाकर ढ़ेर सारा प्यार करती थी और रात को अच्छी-अच्छी कहानियाँ भी सुनाती थी । नवकार मंत्र बुलवाती थी, परन्तु यह मम्मी तो मुझे न बगीचे में ले जाती है, न नवकार मंत्र का गान करवाती है । महान पुरुषों या सतियों की कथा भी नहीं कहती है । इसलिए पत्र मिलते ही तत्काल यहाँ आ जा ।'' इतना लिखकर पता लिखने का सोच ही रहा था कि उतने में नयी मम्मी बाहर से आ गयी ।

❑ रमेश पर माता का क्रोध :

माता को देखकर रमेश ने पत्र जेब में डाल दिया । माता ने यह देख लिया तो पास आकर पूछा - ''तुमने जेब में क्या चुराया है ?'' रमेश नयी माँ को देखकर ऐसा ड़र गया जैसे कबूतर कुत्ते को देखकर, बिल्ली चुहे को पकड़े तब चुहा जैसे तड़पता है वैसे तड़पने लगा । वह काँपते हुए कहने लगा - ''मम्मी मैंने कुछ भी लिया नहीं है ।'' ''क्या तुमने कुछ लिया नहीं है ? परन्तु मैंने तुम्हें टेबल में से लेकर जेब में कुछ रखते देखा है न ? और तुम झूठ बोलते हो ? जेब में जो डाला है यह निकालकर दिखा ।'' रमेश ने कुछ चुराया तो न था, मगर उसे ड़र था कि मैंने जो पत्र में लिखा है, वह यदि पढ़ लेगी तो गज़ब हो जायेगा ? परन्तु इस शैतान औरत के सामने उस छोटे-से बालक की क्या ताक़त ? पोस्ट कार्ड निकालकर माता को दे दिया । उसमें रमेश ने एक-एक शब्द तोल-तोलकर रखे थे । माता का प्रेम नहीं मिलता, घुमने नहीं ले जाती और भगवान की बातें नहीं करता आदि बातें लिखी है । परन्तु मम्मी दुःख देती है ऐसा कहीं नहीं लिखा है ।

❑ बालक का पत्र पढ़कर नयी माता का हृदय-परिवर्तन :

रमेश का पत्र पढ़कर माता बेहोश होकर गिर पडी । उसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ और सोचने लगी कि - 'अहो ! मैं कैसी दुष्ट नारी हूँ ? धिक्कार है मुझे । मेरी आकृति मनुष्य की है मगर प्रकृति पशु की है । मैंने इस नाजुक बालक को इतना परेशान किया है कि वह जैसे कुत्ते के मुँह में कबूतर, बिल्ली के मुँह में चुहा और शिकारी के हाथ में पक्षी तड़पता है, ऐसे मुझसे ड़रता है । मैंने उसे वात्सल्य नहीं दिया इसलिए अपनी माँ को पत्र लिखता है न ? कैसा प्यारा बच्चा

है । उसके पिता ने मुझे कितना समझाया था फिर भी मैं मानी नहीं ।' रमेश के मन में ड़र था कि माता पत्र पढ़कर न जाने क्या करेंगी ? परन्तु हुआ बिलकुल अलग । रमेश का पत्र पढ़कर नयी माता का हृदय कोमल बन गया । वह बोली - "बेटे ! तुम रो मत ।" 'बेटा' शब्द सुनते ही रमेश के हृदय में बिजली की कौंध गयी । उसके शरीर में स्फूर्ति आ गयी । "बेटे ! मैं तेरी मम्मी हूँ ।" ऐसा कहकर रमेश को सीने से लगा दिया । अपने हाथों से नहलाया, प्रेम से खिलाया और शाम को बगीचे में घुमने के लिए ले गयी । भगवान महावीरस्वामी के जीवन की कहानियाँ भी सुनायी । प्रेम का भूखा रमेश प्रेम मिलते ही प्रसन्न हो गया । दो दिन में तो उसके मुख पर अलौकिक तेज़ आ गया और अब खुश रहने लगा । रोज़ 'मम्मी-मम्मी' कहता हुआ गले मिलकर ढ़ेर सारा प्यार पाता है । उसके पिता ने पूछा - "बेटे ! मैं दो दिनों से तेरे मुख पर अलौकिक आनन्द देखता हूँ । ऐसा आनन्द तेरी मम्मी के जाने के बाद शायद कभी नहीं देखा था ।" रमेश ने उत्तर दिया - "पप्पा ! मुझे मम्मी मिल गयी है । मुझे जो चाहिए वह मुझे मिल गया है, फिर खुशी तो होगी न ?" पिता भी समझ गये कि अब यह सच्ची मम्मी बन गयी है, जो अभी तक नहीं हुआ था । पिता की खुशी का भी कोई ठिकाना नहीं है । उन्हें पत्नी पर भी प्रेम बढ़ गया है । पत्नी समझती थी कि अगर अभी तक मेरे पति का प्यार मुझ पर टिका रहा है इसका एक मात्र कारण है कि रमेश ने कभी भी अपने पिता से कोई फरियाद नहीं की थी । अब इन तीन लोगों का परिवार खुशी से रहने लगा ।

बन्धुओं ! यह पत्नी तो सुशील थी, परन्तु सहेली की बातों में आकर बिगड़ गयी थी । सहेली ने ही उसे भड़काया था कि तुम जाते ही बच्चे ही माँ कहलायेगी और यही बात उसके मन में पैठ गयी थी । इसलिए रमेश कि प्रति उसका व्यवहार ठीक नहीं था । परन्तु लड़के की शुद्ध भावना से उसका हृदय-परिवर्तन हो गया । उसे पश्चात्ताप हुआ कि मैंने अपने बेटे को पराया समझा । संक्षिप्त में कहे तो माता-पिता और बेटा तीनो अब प्रेम से रहने लगे और स्वर्ग जैसा सुख भोगने लगे । चाहे कितना भी धन क्यों न हो, परन्तु जहाँ प्रेम नहीं है वहाँ आनन्द नहीं है । चाहे कितनी भी गरीबी क्यों न हो, प्रेम हो तो गरीबी में भी स्वर्ग सा सुख होता (मिलता) है ।

ज्ञानी कहते हैं कि - "'पर' में सुख नहीं है, सुख 'स्व' में है ।" जबतक माता अपने बेटे को पराया मानती थी तबतक लड़का उसे दुश्मन जैसी मानता था और जब पराये का भाव चला गया और हृदय में प्यार का दरिया भर आया, तो बेटे को अपना माना और कितना सुख पा सकी, इसलिए 'स्व' में स्थिर होईए । अधिक बातें बाद में । अस्तु ।

व्याख्यान - १०

जीवन में सत्य की आवश्यकता

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अहिंसा के अवतार, सत्य के पूजारी, अलख के आराधक - वीतराग भगवन्त ने संसार के जीवों के आत्मिक-सुख हेतु सिद्धान्तरूपी वाणी का उच्चारण किया। आत्मा का सुख स्वाभाविक सुख है। उसे बाहर से लेना नहीं पड़ता है। इस संसार में कोई भी जीव ऐसा नहीं होगा कि जो सुख की अभिलाषा न रखता हो। चींटी से लेकर कुंजर (हाथी) तक प्रत्येक जीवात्मा सुख के अभिलाषी हैं, क्योंकि सुख आत्मा की आवाज़ है।

ज्ञानी भगवन्तों ने फरमाया है कि - "सुख दो प्रकार के हैं : (१) एक अन्तर्रात्मा का सुख और (२) दूसरा पुण्य से मिलनेवाला सुख। अन्तर्रात्मा का सुख प्राप्त करने के लिए आत्मा को सख्त (बहुत) पुरुषार्थ करना पड़ता है। वह सुख एक बार मिलने बाद फिर कभी जाता नहीं है। पुण्य से मिलनेवाला सुख थोड़ी-सी मेहनत से मिलता है। उसे प्राप्त करने हेतु अधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं रहती है। परन्तु वह सुख कब चला जाएगा इसका भरोसा नहीं है। वह सुख जब आता है, तब जीव खुश बनाता है और चला जाता है तब बहुत दुःखी कर डालता है। बन्धुओं ! आज आप जो भौतिक-सुख भोग रहे हो, वे पुण्य के फल हैं। पुण्य हमें जो सुख देता है वह हमें कहकर देता है कि सुख ले जाईए, परन्तु कब ले लुँगा इसका पता नहीं है। जैसे किसी मनुष्य को आपके प्रति प्रेम हो और अच्छे आभूषण और वस्त्र पहनने आपको दे, परन्तु यह भी कहे कि - 'इतने घण्टों में मुझे वापस लौटा देना।' बोलिए अब आप उन आभूषणों को लेने का विचार करेंगे ? मान लीजिए कि आपके घर पर विवाह प्रसंग है। यह आभूषण और वस्त्र बेटे को पहनाकर समधी के घर विवाह के लिए गये और उस समय अनेक लोगों के बीच में आकर वह स्वजन आपसे यह कहे कि - 'ये कपड़े और आभूषण मेरे हैं, मुझे तत्काल लौटा दीजिए।' तो, उस समय आपकी इज्जत का क्या ? अगर ऐसा भविष्य के बारे में सोचे तो कपड़े और आभूषण लेने की इच्छा आपको नहीं होगी। इसी प्रकार ज्ञानी कहते है कि - "पुण्य के उदय से मनचाहा सुख तो मिलता है, परन्तु उसकी शर्त यह है कि धनवान बनिए, सत्ताधीश बनिए या बलवान बनिए मगर धन, सत्ता और बल किस दिन और किस

तिथि को तथा किस समय ले ले - पता नहीं । इस शर्त से आप लेना पसन्द करेंगे ? बोलिए, सोचिए कि पुण्य के सुख अन्त में ऐसे हैं ।

कोई मनुष्य चाहे कितना बड़ा सत्ताधीश हो, बलवान हो या कलाकार हो । वह यह मान ले कि मैं अपनी सत्ता, बल और कला से मनुष्य को क्षणभर में अपने वश में कर दुँगा, परन्तु उसे कर्म कब घिर लेंगे, उस सुखों को कब हथिया लेंगे उसका पहले से नोटिस नहीं आयेगा । इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि - "सुख दो प्रकार के हैं - आत्मिक-सुख और भौतिक-सुख; ये दोनों प्रकारों के सुख में से आपको कौन-सा पसन्द करना है ? आत्मिक-सुख या भौतिक सुख ?" अन्तर्रात्मा में सुख का पाताल (गहरा) कुँआ भरा है । आप उसमें से पानी निकालिए । आपने गहरा कुँआ देखा है ? यह कुँआ बहुत गहरा होता है । यह कुँआ खोदते समय बहुत मेहनत करनी पड़ती है, परन्तु एक बार खोदने के बाद उसमें पाइप लगा दी जाय फिर पानी की तकलीफ बिलकुल नहीं रहती । चौबीसों घण्टे आपको पानी मिल जाता है । वह सदा भरा हुआ रहता है । इस प्रकार आत्मा में अनन्त-सुख भरा है । उस सुख का झरना कभी सूखता नहीं है । बस यही सुख और आनन्द लूँटते रहिए, कभी भी उसका अन्त नहीं आयेगा । मगर उस पर कर्मरूपी मिट्टी और पत्थर की शिलाएँ पड़ी है, उसे जबतक हटाया नहीं जायेगा तबतक सुखरूपी पानी बाहर नहीं आयेगा । बड़ी-बड़ी शिलाओं को तोड़ने के लिए और उखाड़ने के लिए मशीन और गोले-बारुद की आवश्यकता होती है, वैसे ही इस कर्मरूपी बड़ी शिलाओं को हटाकर उसके टुकड़े टुकड़े करने के लिए धर्मकरणी रूपी मशीन और तप रूपी गोले-बारुद की आवश्यकता है ।

आप एक बात तय कर लीजिए कि आपको कौन-सा सुख चाहिए ? आत्मिक-सुख या भौतिक-सुख ? भौतिक-सुख पुण्य के उदय से अल्प मेहनत से मिल जाते हे, भोगने में अच्छे लगते हो, परन्तु अन्त में तो धोखा देनेवाले हैं । यह वात निश्चित है, क्योंकि कर्म ने अभी तक कितने ही मनुष्यों को ठगे हैं यह तो आप जानते है, अत: आप बहुत सोचिए कि अव मुझे कौन-सा सुख प्राप्त करना चाहिए और किस सुख के लिए मैं भटक रहा हूँ ? सुख तो शाश्वत चाहिए मगर पुरुपार्थ निर्बल है । आपको यदि आत्मिक-सुख चाहिए तो आप ऐसे मत सोचिएगा कि आत्मा पर बड़ी-बड़ी शिलाएँ पड़ी हैं, उसे दूर कैसे करेंगे ? मिट्टी को कैसे निकालेंगे ? फिर हम जो मशीनरी देंगे उसका उपयोग आपको करना पड़ेगा । जैसे थाली में भोजन परोसा गया, सब आ गया; फिर निवाला आपको मुँह में डालना पड़ेगा न ? मान लीजिए कि किसीने निवाला आपके मुँह में डाल दिया, परन्तु फिर भी उसे चबाकर गले से नीचे उतारना तो आपको ही पड़ेगा न ? इसी प्रकार आपके

लिए आत्म-सुख प्रकट करानेवाली तीन रत्नरूपी मशीनरी वीतराग ने कही गयी, परन्तु उसे आराधना करने रूप चबाने का काम तो आपको स्वयं करना पड़ेगा। जैसे भूख मिटानी हो तो भोजन करना पड़ेगा, वैसे ही आत्म-सुख प्राप्त करना होगा तो आपको पुरुषार्थ करना पड़ेगा। सन्त आपको मार्गदर्शन देंगे।

आत्मा का अखण्ड और नित्य सुख प्राप्त करने के लिए अन्याय, अनीति, अधर्म और असत्य का त्याग करना पड़ेगा, व्याख्यान का विषय है - 'जीवन में सत्य की आवश्यकता है।' आज का मनुष्य मानता है कि दुनिया का सारा व्यवहार असत्य से चलता है। परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि जितना व्यवहार सत्य से चलता है उतना असत्य से चलता नहीं है। सत्य को भगवान की उपमा दी है। कहा है कि - *"सच्चं खलु भगवं"* - सत्य भगवान है। आज मनुष्य को जीवन टिकाए रखने के लिए भोजन-पानी और हवा (वायु) की आवश्यकता है, वैसे ही जीवन में सत्य की आवश्यकता है। सूर्य का उदय हो तब अन्धकार का नाश होता है और गंदकी सूख जाती है, वैसे ही जीवन में सत्य का सूर्य उदयमान होता है, उसके जीवन में से अन्य दुर्गुणों का नाश होता है और जीवन तेजोमय और सुन्दर बनता है। सत्य के बिना मनुष्य एक कदम भी भर (चल) सकता नहीं है। कैसे ?

जीवन में सत्य - नीति - सदाचार ज़रूरी

आप दुकान से घर आये हो और आपकी श्रीमतीजी आपसे पूछे कि - "आपको भोजन करना है ?" वहाँ यदि मना कर दो तो चलेगा क्या ? वहाँ तो सच बोलना पड़ता है न ? किसी गाँव में जाना हो तो आप किस गाँव में जाना चाहते हैं वहाँ का टिकट लेंगे न ? या दूसरी ? बोलिए, वहाँ सत्य ही बोलना पड़ा न ? सत्य के लिए महान पुरुषों ने अपने जीवन का बलिदान दिया है। आपने हरिश्चन्द्र की फिल्म तो अनेक बार देखी होगी, परन्तु अभी तक कोई हरिश्चन्द्र बना नहीं है। फिल्म देखने से अधिक जीवन में सत्य अपनाना महत्त्व रखता है। मनुष्य चाहे कितना भी समझदार, सयाना और सुन्दर हो, परन्तु अगर उसके जीवन में सत्य, नीति और सदाचार नहीं है तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। कहा है कि -

गंधेन हीनं कुसुमं न भाति, दन्तेन हीनं वदनं न भाति ।
सत्येन हीनं वचनं न भाति, पुण्येन हीनो पुरुषों न भाति ।।

फूल चाहे कितना भी सुन्दर क्यों न हो, मगर उसमें यदि सुगन्ध नहीं है, तो फूल की कोई क़ीमत नहीं हैं। दाँत के बिना मुख की शोभा व्यर्थ है, सत्य के

बिना वचन की क़ीमत नहीं है और पुण्यहीन पुरुष की क़ीमत नहीं है । सत्य और चारित्र के श्रृंगार से मनुष्य की शोभा है ।

आत्मा सद्गुण का भण्डार, सत्य चारित्र्य का श्रृंगार ।
उसकी शोभा अपरंपार, ... उसकी शोभा अपरंपार ॥

जिसकी वाणी में एकान्त सत्य भरा है, वह जहाँ जाता है वहाँ उसके प्रति सभी को श्रद्धा और विश्वास होता है । जिह्वा एक है, वैसे ही वचन भी एक होना चाहिए । पिता का वचन-पालन करने के लिए श्री रामचन्द्रजी वनवास गये । सत्य वचन का पालन करने के लिए श्री हरिश्चन्द्र राजा और तारामती को बिकना पड़ा । इतने वर्षों के बाद भी इतिहास के पन्नों में श्रीरामचन्द्रजी आदि महान पुरुषों के नाम सुवर्ण-अक्षरों से लिखे जा चुके हैं । उन महान पुरुषों की कथा सुनकर अनेक मनुष्य उनके नाम पेट भरते हैं । यह किसका प्रभाव है ? यह महान पुरुषों के जीवन में स्थित सत्य का प्रभाव है । 'जीवन में सत्य की आवश्यकता ।' यहाँ हम सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के जीवन में कैसी विशेषता थी, कैसा जीवन वे जी-गये इसकी चर्चा करते हैं ।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र और तारामती

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाम तो आप सब जानते ही होंगे । सरयू नदी के किनारे अयोध्या नगरी के वे राजा थे । उनकी रानी का नाम तारामती था । तारामती भी एक स्त्री ही थी, परन्तु सत्य के लिए पति के साथ स्वयं भी बिक गयी थी । सत्य के लिए अनेक कष्ट भी सहे थे । पति के साथ सुख में सुखी और दुःख में भी सहर्ष साथ देना भारतवर्ष की पतिव्रता स्त्रियाँ खूब समझती थी और समय आने पर अपना वह फ़र्ज बजाती भी थी ।

हरिश्चन्द्र राजा के जीवन में एक घटना घटित हुई । राजा हरिश्चन्द्र भोग-विलास में अत्यन्त मग्न बन गये थे । राजकाज में कुछ ध्यान देते नहीं थे । जव राजा बेपरवाह हो जाते हैं तव अधिकारी राजा बन जाते हैं और आम जनता को न्याय मिलता नहीं है । ऐसी ही स्थिति अयोध्या की हुई । प्रधान और दूसरे राज्याधिकारी अपनी मनमानी करने लगे । राज्य में अन्याय का अन्धकार छा गया । जहाँ देखिए वहाँ रिश्वतखोरी ही नज़र आ रही थी । एक वार रानी की दासी किसी कार्यवश बाज़ार गयी थी, वहाँ उसने अपने कानों से सुना - "राजा को अपने कर्तव्य का कोई ख्याल है ? वे तो भोगविलास में होश खो वैठे हैं, परन्तु साथ में क्या सती तारामती भी अपना होश खो वैठी है ? अगर वे चाहे तो राजा के होश ठिकाने पर ला सकती है और उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान करा सकती है ।" तव दूसरे

व्यक्ति ने कहा – "भाई ! क्या पता स्वयं तारामती ने ही राजा को इस राह पर नहीं धकेला होगा ? पति को भोगविलास में अन्ध बनाकर स्त्री मनचाहा कार्य कर सकती है ।"

❑ रानी की जागृति :

रानी की प्रिय दासी से ये शब्द सहे नहीं गये । उसने आकर रानी से बात की, तो रानी राजा को भोगविलास से मुक्त कर कर्तव्य की ओर मोड़ने के लिए उपाय ढूँढ़ने लगी । रानी ने सोचा कि 'उन्हें राजकाज में चल रही अन्धाधुन्ध की जानकारी दूँ, तभी उनमें परिवर्तन होगा, भोगविलास में संयम आयेगा और शासन-कार्य में भी ध्यान देंगे । परन्तु दूसरे ही पल विचार आया कि कामान्ध मनुष्य को जनता या शासनकार्य की क्या पड़ी होगी ? रानी ने राजा के दिमाग को ठिकाने लाने के लिए एक उपाय खोज निकाला । राजा हरिश्चन्द्र अपने महल में आये तो रानी ने न तो उनके सामने देखा न सम्मान दिया । तब राजा को लगा कि रानी आज चिन्ता में लगती है । राजा ने पूछा – "महारानी ! आज आप इतने अधिक चिन्तातुर क्यों हो ? क्या आपको किसी बात का बुरा लगा है ? आपको कुछ चाहिए ? आप जो कहें मैं करने के लिए तैयार हूँ । जो चाहिए उसे आधी सेकन्ड में उपस्थित कर दूँ । एक माँगो मैं इक्कीस उपस्थित करूँ । मेरे राज्य में किस चीज़ की कमी है ? तुम तो राजा की रानी और उसमें भी पटरानी हो ! फिर तुझे किस बात की चिन्ता है ?" रानी ने चिन्तातुर मन से उत्तर दिया – "स्वामीनाथ ! आपके राज्य में किसी चीज़ की कमी नहीं है, परन्तु मुझे जो चीज़ चाहिए वह हमारे राज्य में नहीं मिलती है, अतः मैं जो चाहती हूँ वह चीज़ ले आने का वचन दे, तो ही बात कहूँ ।" भोगविलास में आसक्त राजा कहते है कि – "आपसे अधिक क्या चीज़ है ? आप जो कहेंगे वह ले आऊँगा । कहिए, आपको क्या चाहिए ?"

❑ मुझे चाहिए सोने के सींगवाला हिरन :

रानी ने कहा – "मुझे सोने के सींगवाला हिरन ला दीजिए ।" राजा ने कहा – "रानी ! माँग-माँगकर तुमने यह क्या माँगा ? इससे तो अच्छा होता आप हीरे-माणिक-मोती या जवाहिरात के आभूषण माँगने थे न ? सोने के सींगवाले हिरन को आप क्या करेंगे ?" तब रानी ने कहा – "आपको सोने के सींगवाला हिरन देना नहीं है, इसलिए मेरी बात को मज़ाक में उड़ा दे रहे हो । अगर आप ला सकते हैं तो ही कहिए । मुझे ओर कुछ भी नहीं चाहिए ।" राजा ने कहा – "ठीक है, अभी ले आता हूँ । इस में कौन-सी वड़ी बात है ?" रानी कहती है – "आप सोने के सींगवाला हिरन जवतक नहीं लायेंगे तवतक इस महल की सीढ़ियाँ मत

चढ़िएगा ।" कामान्ध मनुष्य का मन कैसा विचित्र होता है ? आये थे भोगविलास की इच्छा से, परन्तु निकल पड़े रानी को खुश करने और अपनी इच्छा को तृप्त करने सोने के सींगवाला मृग लेने ।

देवानुप्रिय ! सारा घरसंसार स्त्री के द्वारा चलता है । स्त्री अगर अच्छी हो तो घर का वातावरण धर्ममय बना सकती है, परन्तु अगर स्त्री भोगविलास का पुतला हो तो घर का वातावरण भी ऐसा ही बनता है । सती तारामती भारत की आदर्श सन्नारी थी । राजा भी आदर्श था, परन्तु हरिश्चन्द्र की विषयवासना के कारण राज्य में अन्धेर फैल गया था । किंवदन्ती ने रानी की नींद उड़ा दी और राजा को कर्तव्य का ज्ञान कराने के लिए तारामती ने यह उपाय ढूँढ निकाला ।

❑ सोने के सींगवाले हिरन की खोज में राजा :

राजा हरिश्चन्द्र सोने के सींगवाला हिरन ढूँढने निकले । ढूँढते हुए वे बहुत दूर निकल गये । बहुत खोज की, वन-वन भटके । इस प्रकार सात दिन और सात रातें बीत गयी, परन्तु कहीं सोने के सींगवाला हिरन नज़र आया ही नहीं । अब राजा थक गये । भूख लगी थी, इसलिए निर्जन वन में एक घने वृक्ष के साये में एक शिला पर बैठे । सात दिन के उपवास हुए थे । राजा ने इच्छापूर्वक भी तप नहीं किया था, परन्तु भोजन न मिला, इसलिए उपवास करना पड़ा और इसलिए उसके चित्त की शुद्धि हुई और उसकी विचारधारा में भी शुद्धता आयी । वे सोचने लगे कि 'अभी तक सोने के सींगवाला हिरन कहीं देखा नहीं है न कभी सुना है । रानी ने भोगविलास की आसक्ति कम करवायी । मुझे अपने मूल स्थान पर लाने के लिए तो रानी ने युक्ति नहीं की होगी ? क्योंकि सोने के सींगवाला हिरन तो संसार में हो ही नहीं सकता, इसलिए हिरन की खोज करना व्यर्थ है ।' ऐसा सोचकर राजा अपने महल में लौटे । सोने के सींगवाला हिरन न लाये तबतक रानी के महल में तो जा नहीं सकते थे । राजा के जाने के बाद महारानी तारामती ने कुछ खाया-पीया नहीं है । वह भी राजा की राह देखकर बैठी थी ।

तारामती ने दासी से कहा - "महाराज थककर भूखे प्यासे आये होंगे, तू भोजन कराने जा ।" तब दासी ने कहा - "रानीजी ! मैं नहीं जाऊँगी आप जाइए ।" तब रानी ने कहा - "मैंने राजा को भोगविलास से मुक्त करने के लिए यह युक्ति रची है कि उन्हें मेरे महल में नहीं आना है और अगर मैं वहाँ जाऊँ तो उनकी कामवासना को प्रोत्साहन मिले या और कुछ ?" दासी ने कहा - "आपको जब राजा के पास एकान्त में जाने डर लगता है, तो फिर मुझे तो आपसे अधिक डर लगे न ?" राजा की कामांधता से सभी परिचित थे, अतः रानी ने कहा - "तो

बात सच है । परन्तु क्या करे ?" तारामती निष्ठुर न थी, उसे राजा के प्रति बहुत दया आयी, परन्तु उनका जीवन सुधारने हेतु उन्हें ऐसा करना पड़ रहा है । अब क्या करे, इस विचार में रानी सो गयी । राजा उनके महल में हैं और रानी भी अलग महल में । अब क्या हुआ यह सुनिए ।

❑ राजा के सत्य की प्रशंसा :

एक बार देवों की सभा बैठी थी । उस समय इन्द्रराजा ने अप्सराओं से कहा कि - "आज आप सब सत्य का नाटक प्रस्तुत कीजिए । जिस से सबको सत्य की महिमा का ज्ञान हो ।" तब देवों ने पूछा - "महाराज ! आज सत्य का नाटक करने का क्या प्रयोजन है ?" तब इन्द्र ने कहा - "मृत्युलोक में राजा हरिश्चन्द्र सत्य बात में इतने अड़िग है कि संसार का सब से चालाक मनुष्य तो क्या स्वयं देवलोक के देव भी उसे सत्यव्रत से ड़िगाने में असमर्थ है ।" यह सुनकर निम्न कोटि के देव को ईर्ष्या हुई कि-'इन्द्र महाराज मनुष्य की इतनी अधिक प्रशंसा करते हैं और हमारी प्रशंसा नहीं ?' उच्च कोटि के देव मनुष्य की प्रशंसा सुनकर खुश होते हैं और निम्न कोटि के देव ईर्ष्या की आग में जल रहे हैं । उसने इन्द्रराजा से कहा - "आपने हरिश्चन्द्र राजा की बहुत प्रशंसा की है, आज मैं उसे ड़िगानेवाला हूँ ।" तब इन्द्र ने कहा - "खुशी से जाइए । परन्तु इतना लिख रखना कि मैं जिसकी प्रशंसा करता हूँ, वह सौ प्रतिशत् दृढ़ मनोबलवाला की करता हूँ, दूसरे की नहीं ।" वह देव इन्द्र के वचन पर विश्वास रखनेवाला न था, इसलिए वह मृत्युलोग में गया ।

❑ ईर्ष्यालु देव द्वारा कसौटी :

देव ने सोचा कि-'इन्द्रराजा ने हरिश्चन्द्र राजा की इतनी अधिक प्रशंसा की है, उसमें सत्यव्रत अत्यन्त दृढ़ होगा, इसमें कोई शक नहीं है । ऐसे मनुष्य को चलित करना सरल नहीं है । फिर भी मैं उसे चलित करूँगा ।' उसे चलित करने की योजना करते हुए यह तय किया कि जैसे लोहा लोहे को काट सकता है, वैसे ही मनुष्य-मनुष्य को हरा सकता है । अर्थात् देवने निश्चय किया कि हरिश्चन्द्र को किसी मनुष्य के हाथों चलित किया जाय । देव ने बड़ी मेहनत से यह देखा कि इस संसार में हरिश्चन्द्र को कौन हरा सकता है ? चारों ओर दृष्टि करने पर देखा कि 'विश्वामित्र ऋषि महान तपस्वी हैं । वे राजा हरिश्चन्द्र को अवश्य चलित कर सकते हैं ।' देव की ऋषि विश्वामित्र के पास जाने की हिम्मत तो न चली, परन्तु उन्हें क्रोधित करने के उपचार शुरू किये । दो देवांगनाओं को स्त्री के स्वांग में विश्वामित्र के बगीचे में जाकर बगीचे को तहस-नहस करने की सूचना देव ने

दी । इन दोनों देवांगनाओं ने बगीचे में आकर पौधों पर से फूल, पत्ते और फल तोड़ डाले और पेड़ों को उखाड़कर फैंक दिया । ऋषि ध्यान में थे, वहाँ जाकर शिष्यों ने सूचना पहुँचायी कि 'हमारे आश्रम के बगीचे में कोई दो स्त्रियाँ बगीचे को तहस-नहस कर रही हैं ।' यह सुनकर विश्वामित्र के क्रोध की कोई सीमा न रही । परन्तु स्त्री जाति को शाप देना भी उन्हों ने उचित न समझा । बल्कि उन दो स्त्रियों को अपनी तपस्या के बल पर पेड़ के साथ बाँध दिया ।

अब राजा हरिश्चन्द्र की क्या स्थिति थी ? राजा सात-सात दिन जंगल में भटक कर अपने महल में लौटे हैं । सात दिनों के कठोर उपवास से राजा का मन पवित्र और शुद्ध बन गया है । उसे ज्ञान हो गया है कि सोने के सींगवाला हिरन मँगवाने के बहाने रानी ने मेरी विषय की आग बुझाने की युक्ति की है । इसलिए रानी के वचनानुसार राजा रानी के महल में न जाकर अपने महल में गये । रानी को पता चला कि राजा वापस लौटे है, परन्तु अब भोजन किसके साथ भिजवाया जाय, इस विचार में सो गयी ।

दूसरे दिन से राजा ने पहले की तरह शासन सँभाल लिया । निश्चित समय पर राज्यसभा में जाने लगे और न्याय-सिंहासन पर बैठकर न्याय देने लगे । राज्य के सारे काम उन्हों ने सँभाल लिये हैं । राजा के जीवन में अचानक परिवर्तन होने से जनता को अज़ीब लगा और राज्य की सुव्यवस्था से जनता को सन्तोष हुआ । रिश्वतखोरी बन्द हो गयी और न्याय-नीति तथा सत्य की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गयी । अयोध्या में आनन्द छा गया ।

❑ सत्य का प्रभाव :

एक दिन प्रातःकाल राजा भ्रमण कर रहे थे, राजा हरिश्चन्द्र को सत्यव्रत से चलित करने आये हुए देव ने राजा को विश्वामित्र के बगीचे की ओर जाने की प्रेरणा दी । राजा बगीचे के पास पहुँचे । वहाँ ऋषि के शाप से पेड़ के साथ बँधी स्त्रियाँ 'हमें बचाईए' की रट लगा रही थी । 'सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के राज्य में ज़ुल्म हो रहे है ।' ऐसा कहती हुई चीख-चीखकर रो रही हैं । राजा इन स्त्रियों की आवाज़ सुनकर वहाँ आये और स्त्रियों को पेड़ से मुक्त करने के लिए स्पर्श किया कि तुरन्त सत्य के प्रभाव से दोनों स्त्रियाँ मुक्त हो गयी । यह है सत्य का प्रभाव ! तप के प्रभाव से बांध भी सकते हैं और सत्य के प्रभाव से छोड़ भी सकते हैं । विश्वामित्र ने जिन्हें तप से बाँधा था हरिश्चन्द्र ने सत्य के प्रभाव से उन्हें मुक्त किया । अर्थात् तप से अधिक सत्य का प्रभाव है ।

❑ विश्वामित्र का प्रकोप :

दोनों स्त्रियों को मुक्त कर राजा तो चले गये, परन्तु विश्वामित्र को इस घटना का पता चलने पर उनके क्रोध की कोई सीमा न रही । उन्हों ने माली से पूछा कि-"राजा ने इन स्त्रियों को कैसे छुडाया ?" तब माली ने बताया कि - "ऋषिवर! यह तो हम जानते नहीं है, परन्तु राजा ने स्पर्श किया कि तुरन्त वे स्त्रियाँ पेड़ से मुक्त हो गयी और कहने लगी कि-देखा, राजा हरिश्चन्द्र के सत्य का प्रभाव ! उनके सत्य के प्रभाव के आगे विश्वामित्र ऋषि की तपस्या का कोई मूल्य नहीं ।' इस प्रकार कहती हुई स्त्रियाँ अदृश्य हो गयी ।" माली से यह सारी बातें सुनने के बाद ऋषि का क्रोध बढ़ गया और ईर्ष्या की आग में जल उठे । 'क्या मुझ से अधिक उसके सत्य का प्रभाव है ? अब मैं उसे दिखा दुँगा कि मेरे तप का प्रभाव कितना है ?' ऐसा सोचते हुए क्रोधित होकर विश्वामित्र हरिश्चन्द्र की राजसभा में गये । देव ने सोचा कि - 'अब मेरे पासे ठीक पड़े हैं । तप और सत्य की अब कैसी लड़ाई होगी यह देखते हैं ।

विश्वामित्र ऋषि राजसभा में पधारे तो राजा अपने प्रधानों के साथ आसन से खड़े हो गये और ऋषि का सम्मान कर उन्हें बैठने के लिए आसन दिया, परन्तु ऋषि तो क्रोध से आये थे, वे बोले - "राजन् ! आप तो मेरे सब से बड़े गुनाहगार हो ।" तब राजा ने कहा - "अगर मैं आपका अपराधी हूँ तो आप मुझे सज़ा दे सकते हो, परन्तु मैंने आपका कौन-सा अपराध किया है यह कृपया कहिए ।" "हे राजन् ! आपने मेरे अपराधियों को छोड़ दिया है, यह आपका अपराध है या नहीं ?" राजा सारी परिस्थिति समझ गये और कहा - "गुरुदेव ! वे अपराधी आपके नहीं थे । जिस राज्य की सीमा में अपराध किया जाय वे सभी उस राज्य के अपराधी होते है ।" विश्वामित्र ने क्रोध में आकर कहा - "मेरे आश्रम के बगीचे में से फल-फूल तोड़े हैं और आप उन्हें राज्य के अपराधी मानते हों ?"

राजा ने कहा - "आश्रम आपका है मगर आश्रम का अधिकारी तो राजा है, इसलिए वे राज्य के अपराधी हैं, आप इनके सज़ा देने के अधिकारी नहीं हैं । सज़ा करने क़ा कार्य राज्य का है, यह राजनीति आपने ही सिखाई है । प्रत्येक मनुष्य अपने मकान की सीमा में हुए अपराध की सजा स्वयं देने लगे तो क़ायदा जैसी कोई चीज़ रहेगी ही नहीं और राज्य में अव्यवस्था फैल जायेगी । यह आपके द्वारा सिखाई गयी राजनीति ही है, इसे आप कैसे भूल जाते है ?" सभाजनों को सम्बोधित कर राजा ने कहा - "बोलिए, आश्रम के फल-फूल तोड़नेवाला राज्य का अपराधी है या ऋषि का ?" सभाजन एकसाथ बोल उठे - "यह अपराध राज्य

का माना जायेगा ।'' ''फिर अपराधी राज्य के थे इसलिए मैंने उन्हें छोड़ दिया इसमें मैंने कौन-सा अपराध किया है ?'' यह सुनकर विश्वामित्र फीके पड़ गये और कहा – ''जनता द्वारा दिये गये न्याय को मैं मान्य रखता हूँ । अब मैं आज्ञा लेता हूँ ।'' और ऋषि खड़े हो गये साथ में राजा और सभाजन भी खड़े हो गये ।

❑ ऋषि का दूसरा उपाय :

खड़े होकर ऋषि ने कहा – ''हे राजन् ! आप राजनीति तो जानते हैं न ? वैसे तो राजनीति की बड़ी-बड़ी बातें करते हो, परन्तु अपने आँगन में आये याचकों को दान देने में समझते नहीं हैं । ऋषि आपके आँगन में दान लेने आये हैं और याचक को दान देना राजनीति में नहीं है ?'' जाते-जाते ऋषि ने दूसरा उपाय किया। राजा ने कहा – ''गुरुदेव ! मैं राजनीति बहुत खूब जानता हूँ । अगर आप याचक बनकर आये हैं तो जो आप चाहेंगे वह मैं देने के लिए तैयार हूँ ।'' ''मैं जो चाहूँगा मुझे मिलेगा ?'' ''गुरुदेव, क्या राज्य आपसे अधिक है ?'' तो मैं मांगता हूँ समुद्र सहित पूरा राज्य । बोलिए देने के लिए तैयार हैं ?'' ऋषि ने समुद्र सहित पूरा राज्य दान में माँगा तो जनता में हाहाकार मच गया । सब कहने लगे – ''ऋषि ने तो कमाल किया । उन्हें राज्य क्या करना है ?'' राजा ने कहा – ''ठीक है, मैं देने के लिए तैयार हूँ । हाथ में पानी की झारी ली । उस समय प्रथा थी कि जितनी पृथ्वी दान में देनी हो उतनी दान देते समय बोलना पड़ता । राजा पृथ्वी का पींड और पानी की झारी हाथ में लेकर ऋषि को समुद्र सहित पूरा राज्य देने का संकल्प करने जाते है कि तभी विश्वामित्र ने कहा – ''राजा ! दान देने के बाद आपकी कोई सत्ता (अधिकार) रहेगी नहीं, आपकी क्या स्थिति होगी इसका विचार किया है ?'' राजा ने भी दृढ़ता से उत्तर दिया – ''हे गुरुदेव ! जो दान देते हैं वे परिणाम की परवा नहीं करते । दान देना तो राजधर्म है । उसे बजाने के लिए तत्पर रहना चाहिए ।'' राजा की दृढ़ता से जनता स्तब्ध हो गयी । क्या हरिश्चन्द्र की प्रतिज्ञा है ? राजा ने तो संकल्प कर लिया है । ऋषि को लगा कि राजा परेशान होगा तो सत्य व्रत से चलित हो जायेगा, इसलिए फिर तीसरा नया उपाय ढूँढ निकाला ।

''हे राजन् ! दान देने के बाद दक्षिणा तो देनी पड़ती है न ? या फिर मुझे याद करवाना पड़ेगा ?'' ''गुरुदेव ! मैं भूल गया हूँ । अभी देता हूँ । भण्डारीजी ! गुरुदेव को भण्डार में से एक हज़ार सुवर्णमुद्राएँ दे दीजिए ।'' तब ऋषि ने कहा – ''हे राजन् ! आपने मुझे राज्य तो दान में दे दिया है, अब राज्य के खज़ाने में से एक पैसा भी देने का आपको अधिकार नहीं है ।'' राजा को अपनी परिस्थिति का ज्ञान हुआ । एक हज़ार सुवर्णमुद्राएँ देने का बोल तो दिया, परन्तु अब दी जाय

कैसे ? तब सभा में से जनता बोल उठी - "राजा द्वारा कही गयी एक हज़ार सुवर्णमुद्राएँ हम दे देते हैं ।" तब ऋषि ने कहा - "दूसरों के द्वारा दी गयी दक्षिणा मुझे नहीं चाहिए । राजा यदि दक्षिणा देना चाहते हैं तो वे अपने पास से दे ।" राजा ने कहा - "मैंने तो पूरा राज्य आपके चरणों में समर्पित कर दिया है । अब मेरे पास कुछ नहीं है । अतः मुझे एक महीने की अवधि दीजिए । तबतक एक हज़ार सुवर्ण-मुद्राएँ आपको दक्षिणा में दुँगा ।" विश्वामित्र ने सोचा कि 'अगर मैं राजा को एक महीने की अवधि नहीं दुँगा तो जनता उत्तेजित हो जाएगी, इसलिए अवधि देना ही ठीक है ।' और ऋषि ने एक महीने की अवधि दी ।

राजा तो राजसभा से चल निकले । तब आम जनता चौधार आंसूओं से रोने लगी, परन्तु कोई कुछ बोल सका नहीं । राजा ऋषि के पास एक महीने की अवधि लेकर रानी के पास जाने के लिए निकले । राजा ने सोचा कि - 'जबतक सोने के सींगवाला हिरन न ला दूँ तबतक रानी के महल में न जाने की प्रतिज्ञा है, अतः वहाँ जाऊँ कैसे और समाचार दूँ कैसे ?' दूसरी क्षण राजा ने सोचा कि - 'रानी ने मुझे कामवासना से विरक्त बनाने कि लिए यह उपाय किया था । मुझे कामवासना तृप्त करने कहाँ जाना है ? फिर भी वहाँ जाना तो नहीं है । केवल रानी को बुलाकर समाचार दे दुँ ।' राजा ऐसा सोच ही रहे थे कि उन्हें सूचना मिली कि रानी पुत्र रोहित के साथ बगीचे में बैठे हैं ।

❑ राजा बगीचे में :

रानी तारामती अपने प्राणप्रिय रोहित को बगीचे में नीति और कर्तव्य के पाठ सीखा रही थी । जिसे राजा ने दूर से देखा । वे तुरन्त रानी के सामने आकर खड़े हो गये । तब रानी ने कहा - "आपने अपना वचन पाला नहीं है और एकान्त में यहाँ किसलिए मेरे पास आये हो ?" राजा ने गम्भीरता से कहा - "मैंने महल में न आने की प्रतिज्ञा की है, बगीचे में नहीं । यहाँ भी मैं नहीं आता मगर मैं एक आवश्यक बात कहने आया हूँ ।" रानी ने देखा कि राजा के मुख पर गम्भीरता है, विकार नहीं । रानी ने कहा - "आपको जो कहना हो जल्दी से कह दीजिए ।" राजा ने विश्वामित्र को राजपाट दान में देने आदि बातें सविस्तार कह सुनायी । "आपसे पूछने का समय नहीं था इसलिए पूछा नहीं ।"

❑ रानी का उत्तर :

रानी ने राजा को प्रोत्साहित करते हुए कहा - "महाराज ! राजपाट तो एक दिन छोड़ना ही था, परन्तु एक ऋषि को दान में देने का सुअवसर प्राप्त हो इससे वड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है ? स्वामीनाथ ! आज मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी

है । मैंने सोने के सींगवाला हिरन लाने को आपसे कहा था, परन्तु वह इस पृथ्वी पर मिलना असम्भव है । मेरी इच्छा तो असम्भव वस्तु को सम्भव बनाने की थी, परन्तु आज आपने इसे सिद्ध कर दिखाया है । कोई राजा याचक को चाहिए उतना धन दे दे, एक-दो गाँव दे दे, परन्तु पूरा राज्य दे दे यह तो सम्भव नहीं है । ऐसी असम्भव बात को आपने सम्भव बना दिया है, इसलिए मेरी इच्छा भी पूर्ण हो गयी है और मुझे सोने के सींगवाला हिरन भी मिल गया है । आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है । ऐसे दानेश्वरी पति की पत्नी होने का मुझे सचमुच गर्व है ।'' राजा सोच रहे थे कि - 'रानी को इस बात को सुनकर दुःख होगा', परन्तु उसके मुख से तो उत्साहवर्धक शब्द सुने तो राजा बहुत खुश हुए । राजा ने कहा - ''तारामती ! आपकी ऐसी उच्च भावना को देखकर मुझे आपके प्रति और अधिक प्यार और इज्ज़त पैदा होती है । दक्षिणा तो अभी शेष है । एक महीने की अवधि दी है और मैं काशी जाकर एक महीने में हजार सुवर्ण-मुद्राएँ कमाकर ऋषि को दे दुँगा, अतः आप रोहित को सँभालिएगा । मैं जाता हूँ । बस यही समाचार देने यहाँ आया हूँ ।''

सती ने कहा - ''स्वामीनाथ ! जहाँ शरीर वहाँ प्रतिबिम्ब । मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ । मैं आपके साथ ही आऊँगी ।'' राजा ने कहा - ''परन्तु ऐसे कष्ट में मैं आपको अपने साथ कैसे ले जा सकता हूँ ?'' रानी ने कहा - ''राजसुख भोगते समय हम साथ रहे और दुःख आने पर मैं आपको छोड़ दूँ, यह इस आर्यनारी का धर्म नहीं है । मैं आपके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हूँ ।'' राजा ने कहा - ''मैं आपको साथ तो ले जाता, परन्तु आपकी कोमल देह इस जंगल के कष्ट सह नहीं सकेगी, इसलिए कहता हूँ कि आप यहीं रहिए ।'' रानी ने कहा - ''मुझे आपके बिना राजसुख फीके लगते हैं । मैं तो आपके साथ ही आऊँगी ।'' राजा ने बहुत समझाया, परन्तु रानी ने साथ आने की जिद्द बरकरार रखी, तब राजा ने कहा - ''दुःख सहने की ताक़त हो तो साथ चलिए । रोहित को जनता को सौंप दीजिए ।'' रोहित अभी तक चुप खड़ा था, परन्तु अब वह बोल उठा - ''पिताजी ! मैं भी आपके साथ आऊँगा । जंगल में जो शिक्षा और संस्कार आपके पास से मिलेंगे वे यहाँ नहीं मिलेंगे ।'' रोहित भी जंगल की राह पर चलने के लिए तैयार हुआ । अब हरिश्चन्द्र राजा, तारामती रानी और रोहित - तीनों अपने-अपने महल से निकलकर जंगल में जाने की तैयारी कर रहे थे ।

❑ विश्वामित्र तारामती के महल में :

तारामती और रोहित जंगल की राह पर चलने की तैयारी कर ही रहे थे कि तभी विश्वामित्र पधारे । उस ऋषि को राजपाट की लालसा न थी बल्कि सत्यव्रत

से चलित कर सत्य के प्रभाव से अधिक तप का प्रभाव है यह बताना था । हरिश्चन्द्र राजा सत्य के खातिर क्षण में राज्य छोड़कर सिंहासन से खड़े हो गये, इसलिए ऋषि को लगा कि - 'राजा तो चले जाएँगे और सत्य का पालन करेंगे, तो उनका प्रभाव बढ़ जायेगा । अतः रानी तारामती के द्वारा उन्हें चलायमान करूँ,' ऐसा सोचकर विश्वामित्र तारामती के महल में आकर कहते हैं - "हे सती ! मैंने राजपाट छोड़कर चले जाने का हुक्म राजा को दिया है, आपको या रोहित को नहीं । आप खुशी से राज्य में रह सकते हो ।" तब तारामती ने कहा - "गुरुदेव ! सती स्त्री का धर्म है पति के सुख में सुख और पति के दुःख में दुःखी बनना, अतः हम तो साथ जायेंगे ।" विश्वामित्र ने कहा - "यदि राजा अभी भी अपनी भूल स्वीकार कर ले तो मैं राज्य वापस लौटाने के लिए तैयार हूँ ।" सती ने उत्तर दिया - "गुरुदेव ! सत्य से अधिक राज्य का मूल्य नहीं है । एक बार वमन किया गया आहार पुनः खाया नहीं जाता, वैसे ही एक बार वचन देने के बाद सत्य-व्रतधारी पुरुष अपने व्रत से चलित नहीं होते । सत्य के लिए काया कुर्बान करने तक तैयार हैं ।" सती ने जोरदार उत्तर दिया । इससे ऋषि निराश हो गये और क्रोध में आकर कहने लगे - "आप सत्य की बड़ी बड़ी बातें करती हों, परन्तु अभी तक आभूषण और गहनें तो उतारे नहीं हैं । राज्य के आभूषण और गहनें पहनने का आपको अधिकार नहीं है ।" सती ने कहा - "गुरुदेव ! मैं आभूषण उतारने की तैयारी में ही थी कि आप पधारे ।" ऐसा कहकर तारामती, रोहित और हरिश्चन्द्र ने सारे आभूषण-गहनें उतारकर दे दिये । बाद में सब ने सादा वस्त्र धारण कर जंगल की राह पर विचरने तैयार हुए । इस तरफ अयोध्या में यह बात त्वरित फैल गयी कि विश्वामित्र ऋषि ने हमारे राजा के पास से राजपाट दान में ले लिया है और राजा जंगल (वनवास) जाने की तैयारी कर रहे हैं । सारे नगर में हाहाकार मच गया ।

❑ प्रजाजन राजा के महल में :

सारे प्रजाजन राजमहल के पासे आये । राजा-रानी और रोहित तीनों सादे वस्त्र पहनकर बाहर निकलते है । तभी प्रजाजन आकर सामने खड़े हो गये । सभी कहने लगे - "हम आपको जाने नहीं देंगे ।" राजा ने कहा - "हम हमारे वचन का पालन करने के लिए जा रहे हैं ।" प्रजाजनों ने कहा - "आप जैसे सत्यवादी पुरुष की जिन्हों ने यह दशा कि है वे जनता को कैसे पालेंगे ? हमें यहाँ नहीं रहना है । हम तो आपके साथ आयेंगे । दूसरा नगर बसायेंगे, परन्तु हम यहाँ तो नहीं रहेंगे । फिर भले ही ऋषि अकेले इस राज्य में शासन करें ।"

देवानुप्रिय ! सोचिए । राजा के प्रति प्रजा का कितना अधिक प्रेम है ? सारी प्रजा चीख-चीखकर रो रही हैं । राजा ने सभी को शांत कर कहा - "हमें देर हो

रही है । आप हमें कृपया जाने दीजिए । आप कुछ भी करेंगे फिर भी हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं ।" बाद में राजा अपनी पत्नी-पुत्र के साथ चल निकलते हैं । सारी जनता उन्हें बिदा करते हुए वे न दिखे तबतक खड़े रहते हैं । बाद में अश्रुभरी आँखों से लौट जाते हैं ।

❑ **सत्यवादी त्रिपुटी जंगल की राह पर :**

राजा-रानी और रोहित जंगल की राह पर चल निकले हैं । हृदय में सत्य की कसौटी की खुशी है । भूख का दुःख खुशी से सह रहे हैं । उस मिथ्यात्वी देव ने सोचा - 'इसने सत्य के खातिर राज्य छोड़ दिया, परन्तु इस दुःख को सहते हुए उसके मन में क्या चल रहा होगा ? यह देखने के लिए कुछ करना पड़ेगा और देव ने बुढ़िया का रूप लेकर सिर पर लड्डू का थाल रखकर साथ में चलने लगे । परन्तु यह क्या, कोई उसकी ओर देखता तक नहीं है । तब बुढ़िया ने कहा - "आप इस भयानक जंगल में भूखे भटक रहे हो, तो यह लड्डू ले लीजिए ।" राजा-रानी ने उत्तर दिया - "हम मेहनत के बिना मिले भोजन का स्वीकार नहीं करते । इसलिए आपके यह लड्डू हम स्वीकार नहीं करेंगे ।" वे रोहित की ओर देखकर पूछते हैं - "बेटे ! तुम तो बहुत छोटे हो, इसलिए तुम्हें तो भूख लगी होगी न ? लो, ये लड्डू ले लो । " रोहित ने उत्तर दिया - "मेरे माता-पिता के लिए जो उपयोगी नहीं, वह मेरे लिए भी व्यर्थ है । मैं यह लड्डू नहीं खा सकता ।" यदि यहाँ कोई आम-बालक होता तो अवश्य लालच में आ जाता, परन्तु यह तो आदर्श माता-पिता की आदर्श सन्तान है । भला वह कैसे लड्डू लेता ? जंगल के कष्ट सहते हुए तीनों काशी में गंगा नदी के किनारे स्थित धर्मशाला में किराया तयकर वहाँ रूके । पास में एक पैसा भी न था । जीवन-निर्वाह के लिए लोगों के यहाँ मज़दूरी कर पेट भरने लगे । राजा ने विश्वामित्र को वचन दिया था कि कुछ भी करके एक महीने में एक हज़ार सुवर्ण-मुद्राएँ देंगे । २८ दिन बीत चुके हैं । अब ऋषि को सुवर्ण-मुद्राएँ कहाँ से दी जाय इसकी चिन्ता हो रही है ।

❑ **विश्वामित्र काशी में :**

ऋषि ने सोचा कि राज्य छोड़कर गये २८ दिन बीत चुके हैं, अब राजा सुवर्णमुद्राएँ कहाँ से देगा ? एक तो खाये-पिये बिना वे दुःखी हो गये होंगे और मैं जाकर उन्हें धमकी दुँगा तो वे राज्य लेने के लिए तैयार हो जाएँगे' ऐसा सोचकर ऋषि काशी में पधारते हैं । ऋषि को आते देख तारामती बाहर निकली और ऋषि को प्रणाम कर कहने लगी - "गुरुदेव ! पधारिए !" राजा मारे शर्म के [illegible] छिपकर बैठे हैं । ऋषि ने क्रोध में आकर कहा - "मैं आपके मीठे मीठे [illegible]

या बैठने नहीं, मैं तो अपनी सुवर्णमुद्राएँ लेने आया हूँ। कहाँ है हरिश्चन्द्र ? उन्हें बुलाइए।" तब तारामती ने कहा - "गुरुदेव ! आपको तो सुवर्णमुद्राओं का ही काम है न ? और फिर अभी तक दो दिन शेष भी है, इसलिए कुछ भी करके हम आपको सुवर्णमुद्राएँ दे देंगे, हमें भी इसकी चिन्ता है। रात को नींद तक नहीं आती। हम लोग बहुत मेहनत करते हैं, परन्तु धन मिल नहीं रहा है।" तब ऋषि ने कहा - "यदि १००० सुवर्णमुद्राएँ देने की इच्छा (नियत) होती, तो बहुत से रास्ते है। बाज़ार में गुलाम के रूप में बिककर भी हज़ार सुवर्णमुद्राएँ एक दिन में ही दी जा सकती है, परन्तु आपको तो केवल बड़ी-बड़ी बातें ही करनी है न ?" तब तारामती ने कहा - "आपने हमें मार्गदर्शन दिया है, इसलिए हम अब बिककर भी दो दिन में सुवर्णमुद्राएँ दे देंगे।"

❑ सत्य के खातिर बिकते हैं बाज़ार में :

तारामती ने राजा से ऋषि के साथ हुई बातचीत को कह सुनाया। राजा कहते हैं - "तुम्हें बेचते समय मेरा क्या हाल होगा ?" रानी ने कहा - "स्वामीनाथ ! यदि वचन दिया है तो इसका ठीक-ठीक पालन कीजिए। कसौटी से पार लगे तो ही हमारी महानता है।" रानी की मक्कमता देखकर राजा का हृदय भर आया। वे बड़ी मुश्किल से रानी-रोहित समेत बाज़ार में गये। राजा-रानी ने बिकने के चिह्न के रूप में सिर पर मिट्टी और उस पर घास रखा और बिकने के लिए खड़े हो गये। देवानुप्रिय ! सत्यव्रत का पालन करने के लिए राजा कैसी कसौटी सहते हैं ? आज है ऐसा कोई वीर ? कोई घर बेचता है, कोई गहनें, परन्तु यहाँ तो क्या बिकता है ?

"राजा हरिश्चन्द्र और तारामती बिकते हैं, सत्य के खातिर।
कोई मन्दिर बेचे, कोई बेचे महल, और कोई बेचता है
गाँव और संपत्ति ॥ राजा..."

पूरा दिन बाज़ार में खड़े रहे। सब कोई उनका मुख देखकर मज़ाक करता, परन्तु हज़ार सुवर्णमुद्राएँ देने के लिए कोई तैयार नहीं है। इस प्रकार शाम हो गयी तब एक दयालु ब्राह्मण आया। उसने देखा कि यह किसी उच्च कुल की स्त्री लगती है और दुःख के कारण स्वयं को बेचने निकली हैं। उसने तारामती से पूछा - "बहन ! कुछ काम-वाम आता है ?" तारामती ने कहा - "सज्जन ! आप जो कहेंगे वह काम मैं करूँगी। सब कुछ मुझे आता है।" ब्राह्मण ने पाँचसों सुवर्ण-मुद्राओं में तारामती को खरीद लिया। तारामती ब्राह्मण के साथ जाने के लिए तैयार हुई कि रोहित ने माँ का आँचल पकड़ते हुए कहा - "माता ! तुम मुझे

अकेला छोड़कर कहाँ जा रही हो ? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा ।'' तारामती ने समझाया कि - ''बेटे ! तुम्हें अपने पिता के साथ रहकर उनकी सेवा करनी है ।'' रोहित ने कहा - ''बड़ा होकर मैं उनकी सेवा करूँगा, परन्तु अभी तो मैं तुम्हारे साथ ही चलुँगा ।'' पुत्र की मीठी-मीठी प्यारी बातें सुनकर तारामती का हृदय भर आया । उन्हों ने कहा - ''बेटे ! तुम्हें आना हो तो खुशी से आ ।'' यह बात ब्राह्मण ने सुन ली, उसने कहा - ''अरे ! बहन ! तुम कैसी बात करती हो ? मैंने तो केवल तुम्हें अकेली को ही खरीदा है, यह लड़का मेरे घर आकर कुछ भी माँगे यह मुझे स्वीकार नहीं है ।'' रोहित ने कहा - ''मान्यवर ! मैं कुछ नहीं माँगुगा । कृपया मुझे अपनी माँ के साथ रहने दीजिए ।'' ब्राह्मण ने कहा - ''और तो कुछ नहीं मगर तीन समय का भोजन तो देना पड़ेगा न ?'' यह शब्द सुनकर राजा-रानी की आँखों में आंसू आ गये । अहो ! कर्म ने हमे कैसी स्थिति में डाल दिया है ? जिस पुत्र को बड़े लाड़प्यार से बड़ा किया है, जिस के लिए अनेक दास-दासियाँ उपस्थित रहती, पानी माँगने पर दूध मिलता था, आज उसके लिए भोजन मिलना भी मुश्किल है । तारामती ने ब्राह्मण से कहा - ''अगर आप उसे भोजन न दो तो ठीक है, परन्तु मुझे जो भोजन मिलेगा उसमें से आधा उसे खिलाऊँगी ।'' 'अब लड़के को खाना खिलाने की मुश्किल नहीं है' यह सोचकर ब्राह्मण ने उस बालक को साथ लेने की हाँ कह दी । ५०० सुवर्णमुद्राएँ ब्राह्मण ने राजा को दे दिये । उसे मूर्च्छा आ गयी । पृथ्वी पर गिर पड़े । तारामती रानी अब रानी मिटकर दासी बन चुकी थी । अत: वह स्वतंत्र न थी । ब्राह्मण से आज्ञा लेकर पति के पास गयी और हवा डाली, होश आया तो कहने लगी - ''नाथ ! मैं जाती हूँ - आप हिम्मत हार जायेंगे तो कैसे चलेगा ? अभी तक ५०० सुवर्णमुद्राएँ कम है । इसलिए मैं जिस मार्ग पर गयी उस मार्ग पर आप भी जाकर ५०० सुवर्णमुद्राएँ ले लीजिए और १००० सुवर्णमुद्राएँ देकर हमारा वचन पूरा कीजिए ।'' इतना कहकर सती चली गयी । राजा चांडाल के पास ५०० सुवर्ण-मुद्राओं में बिक गये और ऋषि को १००० सुवर्णमुद्राएँ दक्षिणा में दे दीं ।

❑ तालाब के पास :

तारामती ब्राह्मण के घर में सारा काम करती है । जिसने पानी का प्याला भी कभी स्वयं नहीं भरा था, परन्तु यहाँ तो रसोई करती है और जूठा बाहर फेंकती है और राजा भी चांडाल के घर सारा काम करता है । पानी भरने भी जाना पड़ता है । एक बार हरिश्चन्द्र पानी भरने गये थे और तारामती भी उसी तालाब पर पानी भरने आयी । दोनों ने एक-दूसरे के कुशल समाचार पूछे । जाते समय हरिश्चन्द्र ने कहा - ''मुझसे यह मटका उठाया नहीं जा सकता है । थोड़ा सहारा दो तो

उसे कंधे पर रख दूँ ।" तारामती ने कहा - "स्वामीनाथ ! हम सत्य के खातिर बिके हैं । फिर यहाँ भी सत्य का पालन करना चाहिए । आप चांडाल के घर पर काम करते हो और मैं ब्राह्मण के घर । मैं आपको कैसे छू सकती हूँ ?" और वह चलने लगी । राजा बड़ी मुसीबत से मटका उठाकर घर आये । चांडाल की पत्नी राजा के पास बहुत काम करवाती थी, परन्तु चांडाल बहुत दयालु था । उसे लगा कि 'अगर यह सेवक इस घर में रहेगा तो यह स्त्री उसे चैन से जीने देगी नहीं, अतः क्यों न इसे स्मशान पर पहरा देने और कर (टैक्स) इकट्ठा करने का काम सौंप दूँ !' और राजा स्मशान के चौकीदार बने । अब तारामती का क्या होगा यह अब देखते हैं ।

❑ तारामती के सिर पर मुसीबत के बादल :

तारामती ब्राह्मण के घर सारा काम कर प्रेम से रहने लगी । अपने विवेक और गुण से ब्राह्मण के घर के सारे सदस्यों के हृदय जीत लिये । परन्तु कर्म सुख से रहने देते नहीं हैं । तारामती युवावस्था के सरोवर में नहा रही थी और सौन्दर्य भी भरपूर था । उसका सौन्दर्य देख ब्राह्मण का पुत्र मोहित हो गया । उसे अपनी पत्नी बनाने के लिए वह समझाने लगा । लालच देने लगा मगर सती ने तो स्पष्ट कह दिया कि - "सत्य के ख़ातिर मैं बिकी हूँ और चारित्र के लिए अपने शरीर को त्याग दुँगी मगर अपना चारित्र नहीं छोडुँगी ।" तारामती को अपने निश्चय में अड़िग देखकर ब्राह्मण का पुत्र उसे दूसरें तरीकों से परेशान करने लगा । कम खाना देने लगा । एक थाली में से दोनों का पेट भरना भी मुश्किल हो गया । कम खाना और काम ज्यादा । परन्तु कबतक हो सकता है ? तारामती अपने प्राणप्यारे पुत्र को फूल चुनने भेजती है । बहुत से लड़के बगीचे में फूल चुनकर पैसे कमाते थे, उसी प्रकार रोहित सबके साथ जाने लगा ।

❑ रोहित को सर्पदंश :

एक दिन फूल चुनते समय न जाने कहाँ से एक सर्प ने आकर रोहित को दंश दिया । उसके मुख से चीख निकल पड़ी । शरीर में विष फैल गया । सारे लड़के परेशान हो गये । तारामती के पास आकर लड़के कहने लगे - "आपके रोहित को सर्पदंश हुआ है ।" "रोहित को सर्पदंश ?" बोलते ही तारामती बेहोश हो गयी और पृथ्वी पर गिर पड़ी । कर्म की विचित्रता तो देखिये ? कहावत है न कि **'मनुष्य जब मुसीबत में फँसता है तब चारों ओर से दुःख आ जाते हैं ।'** विपत्ति कभी अकेली नहीं आती है । तारामती कहाँ राजा की रानी और कहाँ आज की ब्राह्मण की गुलाम ! वे ऐसे दुःखों में भी अड़िग रही । तारामती को

गिरा देखकर ब्राह्मणपुत्र ने कहा - "यह क्या नाटक कर रही है ? बेटे के साथ तुझे भी मरना है क्या ? परन्तु अगर तुम मर गयी हो तो हमारी ५०० सुवर्णमुद्राओं का क्या ?" ब्राह्मण ने जलने पर घी डाला । दुर्जन हमेशा जलने पर घी ड़ालते हैं । तारामती बेहोश थी । उसने ब्राह्मण के शब्द सुने नहीं थे । वह होश में आकर कहने लगी - "मेरे पुत्र को सर्पदंश हुआ है । आप उसे मेरे पास लाइए । मैं अकेली हूँ ।" ब्राह्मण को तारामती के पुत्र की कुछ पड़ी नहीं थी । उसे काम की लालच थी । उसने कहा - "तुझे जाना है तो जा । हम कोई साथ में आनेवाले नहीं है । तुझे जाना है तो अकेली जा और जल्दी ही आ जाना ।" जब कोई साथ में आने के लिए तैयार नहीं हुए तो लड़कों को लेकर तारामती वहाँ आ पहुँची।

❑ तारामती का आक्रन्द :

रोहित के शरीर में विष फैल गया था । वह बेहोश होकर पड़ा है । उसे गोद में लेकर माता उठाने लगी - "बेटे ! मेरे सामने तो देख ? तुम क्यों नहीं बोलते ? मैंने तुम्हें इस छोटी-सी उम्र में काम करने की आज्ञा दी इसलिए नाराज है ? मैंने तो पहले मना किया था, परन्तु तू ही न माना और काम करने लगा । बेटे ! एक बार तो अपनी माँ के सामने देख ? मैं तुम्हारे पिताजी को क्या उत्तर दुँगी ? मैं एक बार तुझे तेरे पिता के पास सौंप दूँ फिर मुझे शांति । परन्तु बेटे ! मुझे कुछ तो उत्तर दे ? अब मैं तुझे अपने से कभी अलग नहीं करूँगी । बेटे ! तुम से तो मुझे कितनी आशाएँ थी ? तुम तो कह रह थे कि मैं कुछ ही समय में दस हज़ार सुवर्णमुद्राएँ कमाकर दे दूँगा, आप दोनों को गुलामी से मुक्त करूँगा । परन्तु तुमने तो वचन का पालन नहीं किया ।" ऐसा कहकर रोहित को हिलाने (उठाने) लगी । छाती से लगाकर रोने लगी, परन्तु यह बच्चा कैसे बोलता ? पास में खड़े लोगों ने समझाया - "बहनजी ! तुम्हारा रोहित तो मृत्यु की शरण में सो गया है । शाम होने को है, अब आप उसका अग्निदाह कीजिए ।" फिर तारामती रोहित को लेकर जाती है ।

हरिश्चन्द्र राजा के घर तारामती रानी, नीच घर भरा पानी,
रोहित को लेकर स्मशान चली, फिर वह डाकिन कहलायी,
कर्म की ऐसी है कहानी, कि रानी रंक के घर बिकी... कर्म की...

सभी लोग फिर धीरे-धीरे खिसकने लगे । देव तारामती की कसौटी में पीछे नहीं हट रहे हैं । परन्तु इस ओर राजा-रानी भी अपने मार्ग से चलित होने के लिए तैयार नहीं हैं । अकेली ही अपने मृतपुत्र रोहित को लेकर भयानक रात में अ[illegible] देने हेतु स्मशान की ओर चलने लगी । उसे तो यह भी पता नहीं है कि अ[illegible]

कैसे दिया जाय ? और पास में एक पैसा भी नहीं था । अतः जंगल में से लकड़े चुनकर लाकर अग्निदाह करना था । अन्धेरे में कुछ दिखता नहीं है । लकड़े आखिर कहाँ से लाती ? चारों ओर भटकने पर सती को ठेस लगी और वह नीचे गिर पड़ी । गिरते ही मुख से चीख निकल पड़ी । यह सुनकर स्मशान का रक्षक वहाँ आया और कहने लगा - "हे बहनजी ! ऐसे अन्धेरी रात में इस भयानक स्मशान-भूमि में तुम क्यों आयी हो ?" सती ने उत्तर दिया - "मेरा इकलौता बेटा सर्पदंश से मर गया है और उसे अग्निदाह देने के लिए आयी हूँ ।" यह सुनकर स्मशानरक्षक ने कहा - "बहनजी ! इस स्मशान की भयानक भूमि में अकेला पुरुष भी जहाँ आ नहीं सकता, वहाँ आपने अकेली ने यह साहस क्यों किया ? क्या आपका पति जीवित नहीं है ? आपके परिवार में, पडोसियों में कोई ऐसा नहीं जो ऐसे समय में काम आ सके ? लगता है तुमने किसी से सम्बन्ध रखा नहीं लगता, नहीं तो एसे समय हर कोई तुम्हें सहयोग देता ।"

तारामती ने कहा - "मेरे पति भी है, परन्तु अभी मेरे लिए उपयोगी नहीं हो सकते । और मैं अभी ऐसी स्थिति में फँस गयी हूँ कि सगे-सम्बन्धी और पड़ौसी मेरे उपयोगी नहीं है । मार्ग में जाने पर अपरिचित मनुष्य मिले और मुझे सहाय दिये बिना वे भी चले गये । परन्तु मेरे क्रूर कर्म के उदय से उनका हृदय भी परिवर्तित हो गया । और मुझे सहायता किये बिना वे भी चले गये ।" स्मशानरक्षक ने पूछा - "लगता है तुम्हारा पति निष्ठुर है । उसका हृदय कठोर बन गया लगता है । वह अभी तेरे लिए उपयोगी नहीं है, तो फिर कब उपयोगी होगा ?" तारामती ने उसे बीच में ही रोककर कहा - "मेरे पति कठोर या निष्ठुर नहीं है । कृपया उनके लिए एसे शब्दों का प्रयोग मत कीजिए । मेरे पति जैसा कोमल हृदयवाला और कोई पुरुष हो ही नहीं सकता । उनके जैसा पुरुष सूर्यवंश में मिलना मुश्किल है । आपके वचन सुनकर मेरे हृदय में दुःख होता है ।" तब चांडाल ने कहा - "बहनजी ! तुझे यह दुःख हो ऐसा कहने का मेरा कोई प्रयोजन ही नहीं है । मुझे तो तुम्हारी दया आयी, इसलिए ऐसा कहा है । अब तुम्हें मेरी सहायता चाहिए तो खुशी से कहना ।" दोनों पति-पत्नी है, परन्तु अन्धेरे में कोई किसी को पहचान सकता नहीं है । कर्म के कैसे ये खेल हैं ? परन्तु राजा के वचन सुनकर सती को लगा कि यह कोई भला मनुष्य लगता है । उसने कहा - "आप कोई सामान्य मनुष्य नहीं हो, अपितु स्मशान के देव लगते हो । आपके पास अगर कोई जड़ी-बुट्टी हो तो मेरे पुत्र का विष निकाल दीजिए न ? मैं आपका यह उपकार जीवनभर नहीं भूलुँगी ।" राजा ने उत्तर दिया - "मैं कोई देव नहीं हूँ । सामान्य मनुष्य हूँ और स्मशान में रक्षक का काम कर रहा हूँ ।" तारामती ने कहा - "आप जो भी

हो, परन्तु मुझे अग्निदाह करना आता नहीं है, इसलिए कृपया आप मेरी सहायता करे ।" स्मशानरक्षक कहता है – "अग्निदाह जल्दी करना ठीक है, क्योंकि घनघोर बादल छा गये हैं । बारिश आअेगी तो लकड़े भीग जायेंगे और बाद में अग्निदाह नहीं हो सकेगा ।" इतने में आकाश में बिजली के प्रकाश से दोनों ने एक-दूसरे के मुख को देख लिया । हरिश्चन्द्र बोल उठे – "कौन – तारामती ?" तारामती ने कहा – "प्राणनाथ आप !" पति को देखकर उसमें हिम्मत आ गयी । उसने कहा – "प्राणनाथ ! अब आप यह सब सँभाल लीजिए ।" राजा ने कहा – "यह क्या ? हमारे रोहित को क्या हो गया है ?" तारामती ने अपनी कहानी कह सुनायी । सारी बातें सुनने पर राजा का हृदय भर आया । परन्तु दूसरे ही क्षण अपने कर्तव्य का ज्ञान होने पर कहने लगे – "तारामती ! इस रोहित को अग्निदाह देना होगा तो एक पैसा टैक्स देना पड़ेगा ।" तारामती ने कहा – "नाथ ! इस कफ़न के लकड़े भी अन्धेरे में बड़ी मुसीबत से इकट्ठे किये हैं । पेट भरने के लिए भोजन तक नहीं मिलता, वहाँ पैसा कहाँ से लाऊँ ? क्या यह पुत्र केवल मेरा ही है ? आपको इससे कोई सम्बन्ध नहीं है ? क्या इतना टैक्स (लगान) माफ नहीं कर सकते ?" राजा ने कहा – "तुम्हारी बात सही है । मैं टैक्स माफ कर भी सकता हूँ, परन्तु मैं अपने मालिक को क्या उत्तर दुँगा ? तुम्हारे पास टैक्स माँगते हुए मेरा हृदय फट जाता है, परन्तु सत्य के खातिर हमने जिस राज्य को ठोकर मारी है, वह क्या एक पैसे में बिक जायेगा ? अब तुम ही कहो – क्या तुम मुझे सत्यव्रत से चुकने की सलाह देती हो ?" राजा के वचन सुनकर तारामती सत्यव्रत में दृढ़ हो गयी । "नाथ ! सत्य के लिए हमारा पुत्र तो क्या दुनिया के सारे पदार्थ तृणवत् है, परन्तु अब मैं तुम्हें टैक्स मैं क्या दुं ?" सोचने पर मार्ग मिला और कहा – "हे स्वामीनाथ ! टैक्स के पैसे के बजाय मेरी साड़ी को फाड़कर आधी दे दुँ तो ?" ऐसा कहकर रानी ने साडी को फाड़कर राजा को दे दिया । यह दृश्य कठोर हृदयवाले को भी पीघला देनेवाला था । इस स्मशान में राजा हरिश्चन्द्र और रानी तारामती के अतिरिक्त और कोई नहीं था, उसने यदि अपनी पत्नी के पास से टैक्स न लिया होता तब भी कौन जाननेवाला था ? फिर भी सत्य के खातिर अपना फर्ज अदा किया । टैक्स के रूप में आधी साडी लेकर राजा ने अग्निदाह की आज्ञा दी । जहाँ अग्निदाह हो रहा है वहाँ जोरदार बारिश आयी और अग्नि बुझ गयी ।

यह बारिश प्राकृतिक नहीं थी, परन्तु जिस देव ने हरिश्चन्द्र और तारामती की कसौटी की थी, उसने यह बारिश बरसायी थी । रोहित को सर्पदंश होने में भी देव की माया थी । रोहित मरा नहीं था । अब उनकी कसौटी पूर्ण हो गयी थी । परीक्षा लेनेवाले देव ने सोचा कि 'गुलामी के दुःखों में पुत्र का वियोग हुआ

तब भी सत्य को छोड़ा नहीं । इससे अधिक कसौटी ओर क्या हो सकती है ?' देव मन में सोच रहा था कि 'कैसी अड़िग सत्यनिष्ठा ! वहाँ देवांगनाएँ पूछती है - "स्वामीनाथ ! आप क्या सोच रहे है ?" देव ने हरिश्चन्द्र की कसौटी की थी, और वे ऐसे दुःख में भी कैसे दृढ़ थे । यह सुनकर देवी के रौगटे खड़े हो गये । "ऐसे सत्यवादी पुरुष के दर्शन करने जाना चाहिए ।" जाकर देव और देवियाँ स्मशान-भूमि में आये और चरण में गिरकर माफी माँगी और कहने लगे - "मैंने आपको बहुत कष्ट दिये हैं । इन्द्र ने आपकी जैसी प्रशंसा की थी आप सचमुच वैसे ही है ।" देव उसके चरणों में गिरकर स्वयं द्वारा जो कष्ट दिया उसके लिए बार-बार माफी माँगने लगा । सत्यवादी राजा ने देव को खड़े करते हुए कहा - "आपने मुझे कष्ट दिया नहीं है, परन्तु मुझे अग्निपरीक्षा में से निकालकर मेरे सत्य को शुद्ध बनाया है । अधिक तेजस्वी बनाया है ।" 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा गया है कि *"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं"* अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है, ऐसे धर्म में जिसका मन है उसे देव भी प्रणाम करते हैं । हरिश्चन्द्र के चरण में देव गिर पड़े और स्मशान में रत्नजड़ित सिंहासन पर राजा-रानी और रोहित को बिठाकर सभी देवों ने मिलकर सत्यवादी हरिश्चन्द्र का - तीनों का जय जयकार किया । इस प्रकार सत्य का जय हुआ । अतः जीवन में सत्य की आवश्यकता है । अधिक समय आने पर ।

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

आगम के व्याख्याता, विश्व में विख्याता और निर्वाणपंथ के नेता समान तीर्थंकर भगवन्त ने घातीकर्मों पर प्रहार कर केवलज्ञान की ज्योत जलायी । केवलज्ञान के प्रकाश में संसार के जीवों को शुभाशुभ कर्मों के अनुसार अनेक-विध सुख-दुःख भोगते देखा है । शुभकर्म के उदय से जीव भौतिक-सुख में मग्न बनकर आनन्द-खुशी करते हैं और अशुभ-कर्म के उदय से जीव ऐसे दुःख सहता है कि जिसे देखकर हमारे हृदय भी काँप उठते है । तब ज्ञानीपुरुष कहते है - "हे जीवात्मा ! इसमें हर्ष या खेद करने जैसा नहीं है । क्योंकि कर्म करते समय

आत्मा कुछ सोचता नहीं है, कर्म के धागे कदम कदम पर जीव बाँधते रहता है। जैसे कर्म जीव ने बँधे (किये) होंगे, ऐसे उसे भुगतने पड़ते हैं। कर्मराजा की सत्ता किसी की शर्म रखती नहीं है। *"जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं, तमेव आगच्छइ संपराए।"* 'सूय. सूत्र।'

ज्ञानी कहते हैं कि - "पूर्वजन्म में जीव ने जैसे कर्म किये होते हैं, उसे उसके फल इस जन्म में या किसी जन्म में भुगतना पड़ता है, फिर कर्म करनेवाले राजा हो या रंक हो, कर्म किसी को नहीं छोड़ते।" वहाँ न किसी की जान-पहचान या रिश्वत चलती नहीं है। स्वयं तीर्थंकर भगवान को भी कर्म ने छोड़ा है ? नहीं। तो फिर हम जैसे सामान्य जीवों का बात ही क्या ? इस संसार में जीव को कदम-कदम पर जाने-अन्जाने कर्म बन्धते जाते हैं। उसमें अनेक जीव ऐसे होते हैं कि जान-बुझकर कर्म बाँधते है और फिर अपने द्वारा किये गये पाप की प्रशंसा करता है। 'देखा न मैं कितना अधिक चालाक हूँ, कितना अधिक बहादुर हूँ' और फिर दूसरों को ऐसा कार्य करने की प्रेरणा (अनुमोदना) भी देता है। शाबाशी देता है, परन्तु उसे पता नहीं कि मेरे ये कर्म मुझे ही भुगतने पड़ेंगे। उस समय कोई छुड़ानेवाला या हिस्सेदार बननेवाला कोई नहीं है। जैसे हमें कोई रोग हुआ हो तो पीड़ा हमें ही भुगतनी पड़ती है न ? घर के सदस्य डोक्टर को लायेंगे, दवाई करवायेंगे, सेवा-शुश्रूषा करेंगे, परन्तु दुःख (पीड़ा) में सहभागी बनने के लिए कोई तैयार होता है ? कोई नहीं। अतः समझिए। इस संसार में मनुष्य अकेला आया है और अकेला ही जानेवाला है। याद रखिए। कर्म बाँधकर एकट्ठी की गयी रिद्धि-सिद्ध साथ में आनेवाली नहीं है और व्यर्थ में कर्म बाँधकर अनन्ता जन्म-मृत्यु बाँधता है। चौरासी लाख जीवयोनि के लायसन्स लेने पड़ते हैं। कर्मसत्ता ऐसे स्थान में ऐसी गति में जीव को धकेल देती है कि फिर उस के दुःख की सीमा ही नहीं आती। इसलिए ज्ञानीपुरुष वार-वार जीव को समझाता है कि - "हे जीव ! कर्म बाँधने से पहले तू बहुत सोच। एक सामान्य वात में भी जीव ऐसा कर्म बाँध बैठता है कि उसे भुगते विना फिर कोई चारा नहीं रहता। कर्माधीन जीव ने चतुर्गति संसार में कितने चक्कर लगाये हैं, यह बताते हुए शास्त्रकार कहते है -

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
एगया आसुरं कायं, अहा कम्मेहिं गच्छइ॥

- उत्त. सू., अ.-३ गा.-३

कर्मानुसार जीव कभी-देवलोक में, तो कभी नरक में, तो कभी असुरकाय में जाता है । जीव ने देवलोक के महान सुख भोगे हैं और कर्मवश नरकगति के अनन्त दुःख भी सहे हैं, फिर भी वह समझता नहीं है । ये सारी बातें बहुत छोटी-छोटी हैं । 'जैनदर्शन' में कर्मबन्ध का निरूपण बहुत सुन्दर है ।

आज मासखमण के धर का पवित्र दिन है । मासखमण का धर यानी क्या ? धर यानी 'धारण' करना - पकड़ना । इस दिन क्या पकड़ना होता है और क्या छोड़ना होता है यह आप कुछ समझे ? आज से तप, क्षमा, दया, सरलता, दान आदि धर्मों को पकड लीजिए और क्रोध, मान, लोभ, हिंसा आदि को छोड़ना । पैसों का ममत्व छोड़कर दान देना । क्रोध को छोड़कर क्षमा धारण करना । आचार-संज्ञा को तोड़ने के लिए तप करना । जिन भाई-बहनों को मासखमण तप की आराधना करनी हो वह आज से ही मंगल प्रारम्भ कीजिए । आत्मा अनादिकाल से खानपान में पड़ा है । आहार-संज्ञा को तोड़ने के लिए तप करने की आवश्यकता है । मासखमण के धर का दिन हमें चेतावनी देता है कि - 'कर्म की कालिमा से मलिन हे जीवात्मा ! आज से तीसवें दिन संवत्सरी पर्व आयेगा, अतः अपनी आत्मा पर लगे कर्मों की मलिनता धोने के लिए जागृत बनकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करने के लिए तैयार हो जाइए । तप करने की शक्ति न हो तो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने का निश्चय कीजिए । **'मोह के सामने मुकाबला करने के लिए धर्मसत्ता के शिखर पर चढ़िए ।'** ज्ञान, दर्शन, चारित्र, दान, शीयल, तप और भाव की आराधना करते हुए, संसार की असारता का चित्र आँख के सामने रखते हुए, अनित्या दिबार-भावना करते हुए - अनेक प्रकार की प्रतिकूलता को सहते हुए आत्मा को बलवान बनाकर आगे बढ़ते हुए कर्मों के टुकड़े कर आत्मा अनन्त-सुख का भोक्ता बनता है । आत्मा को अनन्त-सुख का भोक्ता बनाने के लिए और सिद्ध स्वरूप को प्रकट करने के लिए अनेक प्रकार के युद्ध खेलने पड़ते हैं, क्योंकि एक तरफ धर्मराजा है, उनके हाथ में धर्मसत्ता है और दूसरी तरफ मोहराजा है, उनके हाथ में कर्मसत्ता है । आत्मा और जड़ का सम्बन्ध अनादिकाल का है । फिर भी दोनों एक-दूसरे से अलग है और उनकी प्रवृत्ति भी अलग है । धर्मराजा धर्म के द्वारा आत्मा को कर्मसत्ता से मुक्त बनाना चाहते हैं, तब मोहराजा कर्मसत्ता द्वारा आत्मा के बन्धन से बाँधना चाहते हैं । मन मोहराजा का प्रमुख और आज्ञाकारी सेनापति है । वह सदा उसकी आज्ञा का पालन करनेवाला है । उसके नीचे चार कपाय मन के हुक्म का आदर करनेवाले हैं, उसके बाद पाँच इन्द्रियाँ और उसके विषय उसकी आज्ञा में अड़िग खड़े हैं और अठारह प्रकार के पापस्थान तो आत्मा को डूबाने के

लिए तैयार है । मोहराजा की इतनी अधिक ताक़त, जोर और बल है कि वह आत्मा को धर्म सम्मुख होने देता नहीं है । अगर कोई आत्मा धर्मसत्ता की शरण में जाय तो उसे आत्मा को चैन से बैठने देता नहीं है । इतनी अधिक प्रचंड शक्तिवाले मोहराजा को जीतना सरल नहीं है । वह इतनी सारी युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा जीव को जकड़ रखता है कि आत्मा बन्धन से मुक्त हो सकती नहीं है । एक आत्मा बहुत तप करती है, तब मोहराजा उसे पछाड़ के लिए क्रोध को हुक्म करता है, फिर तो आत्मा का काम तमाम ।

कहा है न कि जो क्रोध सहित करोड़ पूर्व तक तप करे या संयम पाले तब भी उसका फल सफल होता नहीं है । बहुत आराधना की, परन्तु अगर समय आने पर जागृत न हुए, तो मोहराजा अपनी सत्ता के द्वारा आत्मा को ऐसा पछाड़ता है कि किया-कराया सब धूल में मिल जाता है । दान देनेवाले के पास मान को भेजे कि मैं कितना बड़ा दानी हूँ । ऐसा सब को कहता न फिरे तबतक उसे चैन नहीं पड़ता है । अगर इतना देने के बाद भी वह इस प्रकार प्रचार करता फिरे तो मान लीजिए दान किया सब व्यर्थ । तपस्वी आयंबील करता हो, तब समता नहीं रहने देता । 'ऐसी ठंडी रोटी, ऐसी दाल, अन्य कुछ तो ठिकाना ही नहीं । पारणे के दिन रबड़ी न बनायी, मूँग न बनाये, कोई मुझसे शाता पूछता नहीं है । मेरी कोई देखभाल करता नहीं है ।' आदि दुर्भावनाएँ आ जाय तो सब कुछ गया पानी में । इस प्रकार सामायिक करते हुए, माला फेरते, व्याख्यान का श्रवण करते समय आदि किसी प्रकार की धर्मकरणी करते हुए मोहराजा के सैनिक घुमते-फिरते रहते हैं, और उसके प्रमुख सेनापति रूपी मन तो हरदम सभी जगहों पर पहुँच जाता है, चाहे कितनी भी ऊपर चढ़ी उसकी आत्मा उसके सिकंजे में आ जाती है और वह मोहराजा आत्मा को चौरासी के चक्कर में और चारगति के चौगान (मैदान) में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय के विविध प्रकार के स्थानों में धकेल देता है, जिसके पुनः जल्दी से ऊपर आ नहीं सकता है । फिर भी आत्मा मिथ्यात्व के घर से निकलकर समकित के घर में आ जाय तो जब चाहे तब इच्छित स्थान प्राप्त कर सकता है, उसमें कोई शक नहीं है । जिसे मोक्ष में जाने की इच्छा है, मोक्ष का टिकट फड़वाना है, उसे तो मोहराजा के तूफानों के सामने लड़ना पड़ेगा, ताक़त से सामना करना पड़ेगा । मोहराजा के प्रचंड तूफान के सामने लड़ने धर्मराजा की शरण स्वीकारनी पड़ेगी । एक बार मोहराजा के पास से छूटकर धर्मराजा की शरण स्वीकार ली उसका उद्धार अवश्य होता है ।

बन्धुओं ! ऐसा सुनने के बाद मोहराजा को कैसे जीता जा सकता, कर्मबन्धन कैसे छूट सकते हैं, कदम-कदम पर बन्धनेवाले कर्मों से आत्मा कैसे मुक्त हो,

उसके लिए कैसी तैयारी करनी पड़ेगी, उसका विचार कीजिएगा । अन्यथा मोहराजा तूफ़ान मचाने में कोई कसर नहीं रखेंगे । मोहराजा ने तो ऊँचे उठे अनेक लोगों को गिरा दिया है । बड़ों-बड़ों की हालत ख़राब कर दी है । जो मोहराजा को देखकर डरे नहीं, पीछे लौटे नहीं, विषम परिस्थितियों के सामने भी नीड़र रहकर धर्मराजा की शरण में जाकर उनकी शरण ली, वे आत्माएँ अनन्त-सुख के भोक्ता बन गये । अगर मुझे और आप को भी ऐसे सुख के भोक्ता बनना हो, तो ज्ञानी कहते है कि -

ऐसी कभी मत कीजिए मौज़, पीछे से आये कर्म की फ़ौज ।
समझदार तो करता है सच्ची खोज, उसमें बनता है दिवाना रोज़ ॥

हे आत्मा ! तुम्हें मोहराजा के वश में होकर मौज़-मज़ा उड़ाने में होश नहीं खोना है । यह स्थान तो ऐसा है कि थोड़ा होश खोया तो फिर कर्मराजा की बड़ी फ़ौज तुम्हारे पीछे लग जायेगी और तुम्हें ऐसे घिर लेगी कि उसमें से छूटना मुश्किल हो जायेगा । जिसे कर्मराजा की फ़ौज से मुक्त होने की लगनी लगी है, वह तो सदैव सावधान बनकर आत्मा की खोज करता है । जब मोहराजा को वश होकर कई बार कोई व्यक्ति ऐसा भयानक क्रोध करता है कि व्यक्ति काँप उठता है, परन्तु यह तो **'बहुरत्ना वसुन्धरा'** । यह पृथ्वी तो अनेक रत्नों को धारण करनेवाली है । उसमें अनेक जीव क्रोधी होते हैं तो कोई क्षमाशील । उनके सिर पर चाहे कैसी भी मुसीबत आती है फिर भी क्षमा छोड़ते नहीं है । अन्त में उसकी क्षमा और शीतलतारूपी पानी के आगे क्रोधाग्नि को ठंडा हो जाना पड़ता है । इसको स्पष्ट करती हुई एक कहानी आप को सुनाती हूँ ।

क्षमा की शीतलता जरूरी

एक माता के दो बेटे और एक बेटी थी । बड़े पुत्र का नाम विजय और छोटे का नाम सुरेश था । पुण्योदय से संपत्ति बहुत थी, परन्तु संतानों को छोड़कर उनके पिता का स्वर्गवास हुआ था । विजय और सुरेश के बीच में दस वर्ष का अन्तर था । विजय वीस वर्ष का हुआ तब सुरेश दस वर्ष का था । पापकर्म के उदय से सुरेश जन्म से ही गूँगा और बहरा था । परन्तु चाहे कैसा भी बेटा क्यों न हो, वह अपनी माता का तो प्राण-प्यारा होता है । अतः माता सुरेश को प्रेम से बड़ा कर रही थी । विजय बाईस वर्ष का हुआ तो किसी अच्छे खानदान की कन्या के साथ उसका ब्याह कर दिया गया । कन्या का नाम था सुनन्दा । जैसा नाम था ऐसे ही उसमें गुण थे । सुनन्दा वहुत ही सुशील और समझदार थी । बोलते समय उसके मुख से मानों अमृत ढलता, परन्तु उसका पति वहुत क्रोधी था । उसे अपना छोटा भाई पहले से पसन्द नहीं था । परन्तु जवतक माता जीवित हो तवतक

भला उसका क्या चलता ? दोनों भाइयों से शर्मिला नामक बहन बड़ी थी । उसे भी अपना छोटा भाई पसन्द नहीं था । माता जानती थी कि जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक तो सुरेश को पालुँगी, परन्तु बड़े भाई-बहन तो उससे नफरत करते हैं. इसलिए सुरेश का पालन-पोषन सम्भव नहीं है । सुरेश बेचारा बोल सकता नहीं था, न कुछ सुनता था । परन्तु मन से सब कुछ समझता था । मनुष्य का मुख देखकर वह सब कुछ समझ जाता कि उसे मुझ पर प्रेम है या नहीं ?

❑ बहू को सिफ़ारिश करती हुई सास :

बड़ा भाई या बड़ी बहन सुरेश की ओर कभी प्रेम की दृष्टि से देखते नहीं थे या न ही कभी खून की सगाई व्यक्त करते थे । बहन तो कभी-कभी आती, परन्तु भाई तो घर में रहता, इसलिए बेचारा निर्धन जैसा सुरेश बड़े भाई विजय को देखते ही काँप उठता । जैसे परिन्दा बिल्ली को देखकर काँपने लगता, वैसे वह काँपता । सुनन्दा के विवाह के बाद मेहमान तो सभी अपने-अपने घर बिदा हुए । विजय काम के सिलसिले में बाज़ार गया, तो सास-बहू और सुरेश तीनों घर में रहे । सास भोजन कर सोयी थी वहाँ विनयी बहु सुनन्दा सास के पैर दबाने गयी, तब सास ने बहुत नम्रता और मिठास से कहा - "बेटी ! ओ सुनन्दा ! तुम बहुत संस्कारी और सुशील हो और फिर अमीर खानदान की हो, इसलिए तुम्हारे में उदारता भी बहुत है । मुझे तो तेरा मुख देखकर ऐसा लगता है कि तू ही मेरे घर की कुलदेवी है । बेटी ! मैं तेरे पास एक वचन माँगती हूँ । हमारे घर में लक्ष्मी की कमी नहीं है । हम सभी तरह से सुखी है, परन्तु मेरे पूर्वकर्म के उदय से यह मेरा सुरेश जन्म से ही गूँगा और बहरा है । बेचारा पशु जैसा है । उसे खाने के लिए दिया जाय तभी खाता है और एक कोने में बैठा रहता है । मैं जीवित हूँ तबतक तो कोई चिन्ता नहीं, मगर इस जिन्दगी का क्या भरोसा ? मेरे अन्तिम में शायद मैं बेहोश होऊँ या बोल न सकुँ तो मैं जो सिफ़ारिश करना चाहती हूँ वह रह जायेगी । अतः अभी से तेरे पास एक वचन माँगती हूँ कि 'तुम्हें मेरे सुरेश को सँभालना है ।' नहीं तो उसकी हालत (स्थिति) कुत्ते जैसी हो जायेगी। बेटी ! लोग गूँगे पशुओं की दया करते हैं, उसे पालते-पोसते हैं; तो तू क्या एक पशु जैसे गरीब बच्चे को नहीं सँभाल सकेगी ? भगवान तुझे सुखी करेंगे । अन्यथा मेरा बेटा विजय या बड़ी बेटी शर्मिला तो उसकी ओर देखनेवाले नहीं हैं और विजय तो उसे पशुखाने में छोड़ आये ऐसा है । उसके दिल में जरा भी दया नहीं है ।" इतना कहकर सास का कण्ठ अवरुद्ध हो गया और आँखों से [illegible] बड़े आँसू गिर पड़े ।

❑ सुनन्दा द्वारा सास को दिया गया आश्वासन :

विनयवन्त सुनन्दा कहती है - "माताजी ! आप रोईए मत, परेशान मत हो, मैं आप को वचन देती हूँ कि 'अपने छोटे देवर को अपने बेटे की तरह रखूँगी। उसे खिलाकर बाद में खाऊँगी। उसे सुलाकर मैं सोऊँगी। मैं उसके अच्छे-बुरे का ख्याल रखुँगी। मेरे प्राण के समान उसकी रक्षा करूँगी।' माताजी ! आप चिन्ता न करे।" ऐसा कहकर सास को शांत किया। बहू को विवाह कर आये अभी तीन दिन ही हुए हैं और उसके ऐसे अमृत-वचन सुनकर सास को शांति हुई। उन्हें मन में खुशी हुई कि कितनी सुशील, गुणवान और समझदार बहू है ? अन्यथा विवाह करके जो अभी-अभी आयी हो, वह ऐसा वचन कैसे दे सकती है ? दूसरी बहू हो तो ऐसा कह दे कि 'मैं उस मुसीबत में क्यों फँसूँ ! अभी-अभी तो मैं विवाह कर आयी हूँ और मेरे सिर पर ये क्या बोज रखती हो ? आप अपने बेटे को सँभालिए, मुझे क्या !' परन्तु सासु ने सोच कि - 'आज मुझे अपने पुण्योदय से ऐसी गुणवान बहू मिली है।' इस प्रकार छ महीने बीत गये, परन्तु महीने बाद अचानक सास का स्वास्थ्य बिगडा और एक दिन की बीमारी में ही सास ने दम तोड़ दिया। माता समान सास के चले जाने पर सुनन्दा के दुःख की कोई सीमा न रही। वह करुण स्वर में कहने लगी - "हे कालराजा ! अभी तो विवाह किये मुझे छ महीने ही हुए हैं, अभी तो मेरे पैरों की मेंहदी भी सूखी नहीं है और मुझे यह दिन दिखाया ? मेरी माता-समान सास को काल ने उठा लिया ? ओ क्रूर कालराजा ! तुझे ज़रा भी दया न आयी ? तुमने यह क्या कर डाला ?"

❑ सुरेश का करुण रुदन :

बेचारा गूँगा और बहरा सुरेश तो कुछ बोल सकता नहीं है। भाभी के करुण शब्द सुन सकता नहीं हैं, परन्तु उसके मुख के भाव देखकर सब कुछ समझ जाता है। वह भीतर ही भीतर कह उठता है कि - 'मेरा पालन-पोषण करनेवाली वात्सल्यमयी माता मुझे छोड़कर चली गयी !' माता का शव पड़ा है। उसके पेट पर सिर रखकर चौधार आंसुओं से रोते हुए हृदय पुकार उठता है- "हे भगवन् ! तुझे इस पशु-समान लड़के की दया न आयी। अब मेरा क्या होगा ? अरेरे माँ ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी ? मुझे भी अपने साथ ले जा न ? तुम्हारे बिना इस दुनिया में मेरा कौन रिश्तेदार है ?" इस प्रकार वह हृदय से माता को अपनी मनोव्यथा व्यक्त करता है। भाभी उसके सिर पर हाथ रखकर कहती है - "भाई ! हमारी माता चली गई। आप दूर जाकर बैठिए।" ऐसा इशारे से कहती है, परन्तु माँ का प्यार है न ? दूर जाता नहीं है। माता को देख-देख कर रोता

"अगर आपको उसे छोड़ आना है तो पहले मुझे छोड़ आइए । मेरी देह में जब-तक प्राण है तबतक मैं उसे घर से नहीं जाने दुँगी ।" रोज़ घर में क्लेश देखकर सुरेश मन ही मन सोचता - 'अरेरे... भाभी मेरे लिए कितना कुछ सहती है ? मेरे पीछे उसने तो चुनौती स्वीकार ली है ।' इस प्रकार क्लेश में ही क्लेश में तीन वर्ष बीत गये, फिर एक दिन सुनन्दा की माता ज्यादा बीमार हो गयी थी, इसलिए उसे अपने मायके जाना पड़ रहा था । अतः विजय ने पत्नी से पूछा - "अब तुम इस जानवर को क्या करोगी ?" सुनन्दा ने कहा - "मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगी ।" तब विजय ने कहा - "वह तुझे वहाँ परेशान करेगा, इसलिए मेरा कहना मान ले और तू इसे यही छोड़ जा । मैं उसे कहीं छोड़ आऊँगा ।" तब सुनन्दा ने गुस्सा होकर कहा - "नाथ ! आप का कलेजा तो मानो पत्थर है ! अपने सगे भाई के लिए भी आप के हृदय में कोई स्थान नहीं है ।" कहकर वह बहुत रोयी । अपने पति को बहुत समझाया । दूसरे दिन सुनन्दा सुरेश को लेकर मायके आयी । वहाँ उसकी माता ने प्राण त्याग दिये थे । सुनन्दा चीख-चीखकर रोने लगी । अहो प्रभु ! यह क्या किया ? ससुराल से वात्सल्यमयी सास चली गयी और मायके से ममतामयी माता ने बिदा ली । अब मेरा कौन ? सगे-स्नेहियों ने उसे आश्वासन देकर शांत किया । सुनन्दा अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी, इसलिए वृद्ध पिताने अपनी मृत्यु के बाद सारी संपत्ति और पूँजी की वारिश सुनन्दा को बना दिया और सोलिसिटर के पास करवायी गयी वसियत ससुरजी ने विजय के हाथ में दिया । दो दिन रूककर विजय घर आया और सुनन्दा कुछ दिनों तक सुरेश को लेकर मायके में रही, अपनी बेटी को गूँगे सुरेश की सेवा करते देखकर उसके पिता ने कहा - "बेटी ! तुम इस गरीब गाय जैसे लड़के की प्रेम से सेवा करती हो इसलिए मुझे बहुत खुशी होती है ।" "पिताजी ! ये तो आपके संस्कार हैं । यह सुरेश तो मेरे भाई जैसा ही है न ! भाई की सेवा तो करनी ही चाहिए न ? इसमें कुछ विशेष नहीं है ।" पुत्री का विनय, विवेक देखकर पिता को बहुत आनन्द हुआ । कुछ दिन मायके में रहकर सुनन्दा ससुराल आयी ।

❑ अभिमानी शर्मिला के शब्द :

सुरेश को निकाल देने के लिए विजय सुनन्दा को बहुत समझाता और परोक्ष रूप से अनेक प्रयास किये, परन्तु किसी प्रकार सुनन्दा उस बात को स्वीकारती नहीं है, तो विजय को बहुत गुस्सा आया । उसने अपनी बड़ी बहन शर्मिला और बहनोई (जीजाजी) राजेश को पत्र लिखकर बुलाया । दूसरे दिन वे गाड़ी लेकर आ

गये । सुनन्दा ने ननन्द और ननदोई का सत्कार किया । भोजन आदि पूर्णकर सभी दीवानखाने (बैठक) में बैठे । सुनन्दा भी सारे काम पूर्ण कर आकर बैठी । सुरेश भी भाभी की गोद में छुपकर बैठा, तब शर्मिला ने सुरेश की ओर देखकर बोल उठी - "भाभी ! आप इस जानवर को कबतक सँभाल रखेंगे ? विजयभाई को इसके लिए कितनी सारी व्यथा सहनी पड़ती है और आप इसकी इतनी अधिक चिन्ता करती हो यही मेरे लिए आश्चर्य की बात है । अब यह गूँगा हमारे किस काम का है ? मुझे और भाई को इसके लिए कितना नीचा देखना पड़ता है ? आप को तो किसी न किसी की पार्टी या कार्यक्रमों में जाना पड़ता है और आप इसे सँभालने के बहाने कहीं आना-जाना छोड़ दे, यह तो कैसे चल सकता है ?" ननद के वचन सुनकर सुनन्दा स्तब्ध हो गयी । सत्रह वर्ष का सुरेश चिन्ता ही चिन्ता में माता के जाने के बाद गलकर कृशकाय छ-दस साल के छोटे बच्चे जैसा बन गया था । वह बहन के शब्द सुनता नहीं है, परन्तु सब समझता था, इसलिए एरकंडिशन (वातानुकुलित) दीवानखाने में भी मानो जलते रेगिस्तान में आकर बैठा हो ऐसा लगता था । वह सुनन्दा की गोद में अधिक छूप गया, तो शर्मिला की आँखों से नफरत पैदा हो गयी । उसने मुँह बिगाडते हुए कहा - "छी...छी... भाभी ! आप को ऐसा अच्छा लगता है ? उसे मेन्टल (पागल) होस्पिटल में छोड़ आईए ।"

❑ देवर के लिए छोड़ा भाभी ने सुख :

सुनन्दा ने गम्भीर स्वर से कहा - "बहन ! यह पागल थोड़े ही है ? जन्म से गूँगे और बहरे बच्चे को पागलखाने में छोड़ आने का अर्थ क्या ?" विजय ने गुस्से से आँख लालकर कहा - "अब मैं एक क्षण भी उसे घर में रखना चाहता नहीं हूँ । मैं इससे परेशान हो गया हूँ । उसे पागलखाने में छोड़ आने का मैंने फैसला कर दिया है ।" ऐसा कहकर विजय ने फाईल में से कागज़ निकालकर कहा - "स्वीकार-पत्र पर तुम हस्ताक्षर कर दो ।" इस फोर्म को पकड़ते ही सुनन्दा का हाथ काँप उठा और आँख में आंसू लाकर बोली - "आप ऐसा किसलिए कर करे हो ? आखिर यह आप का भाई है । परिवार में उसका हक और अधिकार है ।" "सुनन्दा तुम्हारी दलीले सुनकर मैं परेशान हो गया हूँ । मेहरबानी कर अपनी पुरानी रिकार्ड बन्द करो । पागलखाने के सर्जन के सर्टिफिकेट के बाद हक और हिस्से की बात खत्म हो जाती है और 'हाँ'... बोलते हुए उसने दूसरा पत्र फाईल से निकाला और कहा - "इस सर्टिफिकेट पर तुम्हारे हस्ताक्षर की आवश्यकता है ।" सुनन्दा पत्र पढ़ गयी । उसमें पिता द्वारा मिली सारी संपत्ति का वारिस विजय

''अगर आपको उसे छोड़ आना है तो पहले मुझे छोड़ आइए । मेरी देह में जब-तक प्राण है तबतक मैं उसे घर से नहीं जाने दुँगी ।'' रोज़ घर में क्लेश देखकर सुरेश मन ही मन सोचता - 'अरेरे... भाभी मेरे लिए कितना कुछ सहती है ? मेरे पीछे उसने तो चुनौती स्वीकार ली है ।' इस प्रकार क्लेश में ही क्लेश में तीन वर्ष बीत गये, फिर एक दिन सुनन्दा की माता ज्यादा बीमार हो गयी थी, इसलिए उसे अपने मायके जाना पड़ रहा था । अतः विजय ने पत्नी से पूछा - ''अब तुम इस जानवर को क्या करोगी ?'' सुनन्दा ने कहा - ''मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगी ।'' तब विजय ने कहा - ''वह तुझे वहाँ परेशान करेगा, इसलिए मेरा कहना मान ले और तू इसे यही छोड़ जा । मैं उसे कहीं छोड़ आऊँगा ।'' तब सुनन्दा ने गुस्सा होकर कहा - ''नाथ ! आप का कलेजा तो मानो पत्थर है ! अपने सगे भाई के लिए भी आप के हृदय में कोई स्थान नहीं है ।'' कहकर वह बहुत रोयी । अपने पति को बहुत समझाया । दूसरे दिन सुनन्दा सुरेश को लेकर मायके आयी । वहाँ उसकी माता ने प्राण त्याग दिये थे । सुनन्दा चीख-चीखकर रोने लगी । अहो प्रभु ! यह क्या किया ? ससुराल से वात्सल्यमयी सास चली गयी और मायके से ममतामयी माता ने बिदा ली । अब मेरा कौन ? सगे-स्नेहियों ने उसे आश्वासन देकर शांत किया । सुनन्दा अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी, इसलिए वृद्ध पिताने अपनी मृत्यु के बाद सारी संपत्ति और पूँजी की वारिश सुनन्दा को बना दिया और सोलिसिटर के पास करवायी गयी वसियत ससुरजी ने विजय के हाथ में दिया । दो दिन रूककर विजय घर आया और सुनन्दा कुछ दिनों तक सुरेश को लेकर मायके में रही, अपनी बेटी को गूँगे सुरेश की सेवा करते देखकर उसके पिता ने कहा - ''बेटी ! तुम इस गरीब गाय जैसे लड़के की प्रेम से सेवा करती हो इसलिए मुझे बहुत खुशी होती है ।'' ''पिताजी ! ये तो आपके संस्कार हैं । यह सुरेश तो मेरे भाई जैसा ही है न ! भाई की सेवा तो करनी ही चाहिए न ? इसमें कुछ विशेष नहीं है ।'' पुत्री का विनय, विवेक देखकर पिता को बहुत आनन्द हुआ । कुछ दिन मायके में रहकर सुनन्दा ससुराल आयी ।

❑ अभिमानी शर्मिला के शब्द :

सुरेश को निकाल देने के लिए विजय सुनन्दा को बहुत समझाता और परोक्ष रूप से अनेक प्रयास किये, परन्तु किसी प्रकार सुनन्दा उस बात को स्वीकारती नहीं है, तो विजय को बहुत गुस्सा आया । उसने अपनी बड़ी बहन शर्मिला और बहनोई (जीजाजी) राजेश को पत्र लिखकर बुलाया । दूसरे दिन वे गाड़ी लेकर आ

गये । सुनन्दा ने ननन्द और ननदोई का सत्कार किया । भोजन आदि पूर्णकर सभी
दीवानखाने (बैठक) में बैठे । सुनन्दा भी सारे काम पूर्ण कर आकर बैठी । सुरेश
भी भाभी की गोद में छुपकर बैठा, तब शर्मिला ने सुरेश की और देखकर बोल
उठी - ''भाभी ! आप इस जानवर को कबतक सँभाल रखेंगे ? विजयभाई को
इसके लिए कितनी सारी व्यथा सहनी पड़ती है और आप इसकी इतनी अधिक
चिन्ता करती हो यही मेरे लिए आश्चर्य की बात है । अब यह गूँगा हमारे किस
काम का है ? मुझे और भाई को इसके लिए कितना नीचा देखना पड़ता है ?
आप को तो किसी न किसी की पार्टी या कार्यक्रमों में जाना पड़ता है और आप
इसे सँभालने के बहाने कहीं आना-जाना छोड़ दे, यह तो कैसे चल सकता है ?''
ननद के वचन सुनकर सुनन्दा स्तब्ध हो गयी । सत्रह वर्ष का सुरेश चिन्ता ही
चिन्ता में माता के जाने के बाद गलकर कृशकाय छ-दस साल के छोटे बच्चे
जैसा बन गया था । वह बहन के शब्द सुनता नहीं है, परन्तु सब समझता था,
इसलिए एरकंडिशन (वातानुकुलित) दीवानखाने में भी मानो जलते रेगिस्तान में
आकर बैठा हो ऐसा लगता था । वह सुनन्दा की गोद में अधिक छूप गया, तो
शर्मिला की आँखों से नफरत पैदा हो गयी । उसने मुँह बिगाडते हुए कहा -
''छी...छी... भाभी ! आप को ऐसा अच्छा लगता है ? उसे मेन्टल (पागल) होस्पिटल
में छोड़ आईए ।''

❑ देवर के लिए छोड़ा भाभी ने सुख :

सुनन्दा ने गम्भींर स्वर से कहा - ''बहन ! यह पागल थोड़े ही है ? जन्म से
गूँगे और बहरे बच्चे को पागलखाने में छोड़ आने का अर्थ क्या ?'' विजय ने
गुस्से से आँख लालकर कहा - ''अब मैं एक क्षण भी उसे घर में रखना चाहता
नहीं हूँ । मैं इससे परेशान हो गया हूँ । उसे पागलखाने में छोड़ आने का मैंने
फैसला कर दिया है ।'' ऐसा कहकर विजय ने फाईल में से कागज़ निकालकर
कहा - ''स्वीकार-पत्र पर तुम हस्ताक्षर कर दो ।'' इस फोर्म को पकड़ते ही सुनन्दा
का हाथ काँप उठा और आँख में आंसू लाकर बोली - ''आप ऐसा किसलिए
कर करे हो ? आखिर यह आप का भाई है । परिवार में उसका हक और अधिकार
है ।'' ''सुनन्दा तुम्हारी दलीले सुनकर मैं परेशान हो गया हूँ । मेहरबानी कर अपनी
पुरानी रिकार्ड बन्द करो । पागलखाने के सर्जन के सर्टिफिकेट के बाद हक और
हिस्से की बात खत्म हो जाती है और 'हाँ'... बोलते हुए उसने दूसरा पत्र फाईल
से निकाला और कहा - ''इस सर्टिफिकेट पर तुम्हारे हस्ताक्षर की आवश्यकता
है ।'' सुनन्दा पत्र पढ़ गयी । उसमें पिता द्वारा मिली सारी संपत्ति का मालिक विजय

''अगर आपको उसे छोड़ आना है तो पहले मुझे छोड़ आइए । मेरी देह में जबतक प्राण है तबतक मैं उसे घर से नहीं जाने दुँगी ।'' रोज़ घर में क्लेश देखकर सुरेश मन ही मन सोचता - 'अरेरे... भाभी मेरे लिए कितना कुछ सहती है ? मेरे पीछे उसने तो चुनौती स्वीकार ली है ।' इस प्रकार क्लेश में ही क्लेश में तीन वर्ष बीत गये, फिर एक दिन सुनन्दा की माता ज्यादा बीमार हो गयी थी, इसलिए उसे अपने मायके जाना पड़ रहा था । अतः विजय ने पत्नी से पूछा - ''अब तुम इस जानवर को क्या करोगी ?'' सुनन्दा ने कहा - ''मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगी ।'' तब विजय ने कहा - ''वह तुझे वहाँ परेशान करेगा, इसलिए मेरा कहना मान ले और तू इसे यही छोड़ जा । मैं उसे कहीं छोड़ आऊँगा ।'' तब सुनन्दा ने गुस्सा होकर कहा - ''नाथ ! आप का कलेजा तो मानो पत्थर है ! अपने सगे भाई के लिए भी आप के हृदय में कोई स्थान नहीं है ।'' कहकर वह बहुत रोयी । अपने पति को बहुत समझाया । दूसरे दिन सुनन्दा सुरेश को लेकर मायके आयी । वहाँ उसकी माता ने प्राण त्याग दिये थे । सुनन्दा चीख-चीखकर रोने लगी । अहो प्रभु ! यह क्या किया ? ससुराल से वात्सल्यमयी सास चली गयी और मायके से ममतामयी माता ने बिदा ली । अब मेरा कौन ? सगे-स्नेहियों ने उसे आश्वासन देकर शांत किया । सुनन्दा अपने माता-पिता की इकलौती बेटी थी, इसलिए वृद्ध पिताने अपनी मृत्यु के बाद सारी संपत्ति और पूँजी की वारिश सुनन्दा को बना दिया और सोलिसिटर के पास करवायी गयी वसियत ससुरजी ने विजय के हाथ में दिया । दो दिन रूककर विजय घर आया और सुनन्दा कुछ दिनों तक सुरेश को लेकर मायके में रही, अपनी बेटी को गूँगे सुरेश की सेवा करते देखकर उसके पिता ने कहा - ''बेटी ! तुम इस गरीब गाय जैसे लड़के की प्रेम से सेवा करती हो इसलिए मुझे बहुत खुशी होती है ।'' ''पिताजी ! ये तो आपके संस्कार हैं । यह सुरेश तो मेरे भाई जैसा ही है न ! भाई की सेवा तो करनी ही चाहिए न ? इसमें कुछ विशेष नहीं है ।'' पुत्री का विनय, विवेक देखकर पिता को बहुत आनन्द हुआ । कुछ दिन मायके में रहकर सुनन्दा ससुराल आयी ।

❑ अभिमानी शर्मिला के शब्द :

सुरेश को निकाल देने के लिए विजय सुनन्दा को बहुत समझाता और परोक्ष रूप से अनेक प्रयास किये, परन्तु किसी प्रकार सुनन्दा उस बात को स्वीकारती नहीं है, तो विजय को बहुत गुस्सा आया । उसने अपनी बड़ी वहन शर्मिला और बहनोई (जीजाजी) राजेश को पत्र लिखकर बुलाया । दूसरे दिन वे गाड़ी लेकर आ

गये । सुनन्दा ने ननन्द और ननदोई का सत्कार किया । भोजन आदि पूर्णकर सभी दीवानखाने (बैठक) में बैठे । सुनन्दा भी सारे काम पूर्ण कर आकर बैठी । सुरेश भी भाभी की गोद में छुपकर बैठा, तब शर्मिला ने सुरेश की और देखकर बोल उठी - "भाभी ! आप इस जानवर को कबतक सँभाल रखेंगे ? विजयभाई को इसके लिए कितनी सारी व्यथा सहनी पड़ती है और आप इसकी इतनी अधिक चिन्ता करती हो यही मेरे लिए आश्चर्य की बात है । अब यह गूँगा हमारे किस काम का है ? मुझे और भाई को इसके लिए कितना नीचा देखना पड़ता है ? आप को तो किसी न किसी की पार्टी या कार्यक्रमों में जाना पड़ता है और आप इसे सँभालने के बहाने कहीं आना-जाना छोड़ दे, यह तो कैसे चल सकता है ?" ननद के वचन सुनकर सुनन्दा स्तब्ध हो गयी । सत्रह वर्ष का सुरेश चिन्ता ही चिन्ता में माता के जाने के बाद गलकर कृशकाय छ-दस साल के छोटे बच्चे जैसा बन गया था । वह बहन के शब्द सुनता नहीं है, परन्तु सब समझता था, इसलिए एरकंडिशन (वातानुकुलित) दीवानखाने में भी मानो जलते रेगिस्तान में आकर बैठा हो ऐसा लगता था । वह सुनन्दा की गोद में अधिक छूप गया, तो शर्मिला की आँखों से नफरत पैदा हो गयी । उसने मुँह बिगाडते हुए कहा - "छी...छी... भाभी ! आप को ऐसा अच्छा लगता है ? उसे मेन्टल (पागल) होस्पिटल में छोड़ आईए ।"

❑ देवर के लिए छोड़ा भाभी ने सुख :

सुनन्दा ने गम्भींर स्वर से कहा - "बहन ! यह पागल थोड़े ही है ? जन्म से गूँगे और बहरे बच्चे को पागलखाने में छोड़ आने का अर्थ क्या ?" विजय ने गुस्से से आँख लालकर कहा - "अब मैं एक क्षण भी उसे घर में रखना चाहता नहीं हूँ । मैं इससे परेशान हो गया हूँ । उसे पागलखाने में छोड़ आने का मैंने फैंसला कर दिया है ।" ऐसा कहकर विजय ने फाईल में से कागज़ निकालकर कहा - "स्वीकार-पत्र पर तुम हस्ताक्षर कर दो ।" इस फोर्म को पकड़ते ही सुनन्दा का हाथ काँप उठा और आँख में आंसू लाकर बोली - "आप ऐसा किसलिए कर करे हो ? आखिर यह आप का भाई है । परिवार में उसका हक और अधिकार है ।" "सुनन्दा तुम्हारी दलीले सुनकर में परेशान हो गया हूँ । मेहरबानी कर अपनी पुरानी रिकार्ड बन्द करो । पागलखाने के सर्जन के सर्टिफिकेट के बाद हक और हिस्से की बात खत्म हो जाती है और 'हाँ'... बोलते हुए उसने दूसरा पत्र फाईल से निकाला और कहा - "इस सर्टिफिकेट पर तुम्हारे हस्ताक्षर की आवश्यकता है ।" सुनन्दा पत्र पढ़ गयी । उसमें पिता द्वारा मिली सारी संपत्ति का वारिश विजय

को बनाया गया था । सुनन्दा की और से संपत्ति को जजमेन्ट रूप में वह मुखत्यारनामा था । आखिर यह सब किसलिए ? कागज़ मेज़ पर रखकर वह खड़ी हो गयी और सुरेश का हाथ पकड़कर बोली - "मैं और सुरेश घर से साथ निकलेंगे । जहाँ मेरा देवर सुरेश वहीं में । आप सोलिसिटर के पास ओर एक ड्राफ्ट तैयार करवाइए - डायवोर्स (तलाक) का, मैं उन सारे कागजों पर हस्ताक्षर कर दूँगी । क्योंकि आपको इन लाखों की संपत्ति का वारिश चाहिए न ?" तब विजय ने ज़ोर से कहा - "क्या तुम मुझे धमका रही हो ?" तभी शर्मिला गरज उठी- "भाभी ! आप तो विजय को अन्याय कर रही हो । वह चाहे तो सब कुछ कर सकते हैं ।" सुनन्दा ने कहा - "सच बात है । धनवान लोग दुनिया में क्या कुछ नहीं कर सकते हैं ?" "बहन ! वे नहीं समझेंगे । उसने मेरे साथ विवाह नहीं किया है ।" ये शब्द सुनन्दा के हृदय में तीर की तरह चुभ गये । वह बहुत रोयी । भाई और बहन एक हो गये और कहा - "अगर आप को सुरेश को छोड़ना न हो तो यह घर छोड़कर सुरेश को लेकर चले जाओ ।" बहन का सहयोग मिलने पर विजय सुनन्दा को घर से निकालने के लिए उठा । सुनन्दा ने कहा - "ठीक है, परन्तु मेरी एक बात सुन लीजिए कि मैं आप के साथ ब्याह किया है, सुरेश के साथ नहीं और हँसती हुई कहने लगी - "मेरी इच्छा तो घर को नन्दनवन बनाने की थी, परन्तु नन्दनवन की जगह पर विरान वन बन गया ।" अपने कारण घर में क्लेश देखकर सुरेश का हृदय कट-सा गया । "भगवन् ! मेरी माता मुझे छोड़कर चली गयी तब ऐसा हुआ न ? मेरे कारण दया के अवतार समान मेरी भाभी को कितना कुछ सहना पड़ता है ?' उसे अपनी माता की याद आ गयी । 'ओ...मा... ! तुम किस लिए मुझे छोड़कर चली गयी ? भाई-बहन कोई मेरा नहीं है । अब तो मेरा सब कुछ मेरी भाभी ही है । अगर भाभी न होती तो मेरा क्या होता ? मेरे ही कारण भाभी के सिर पर दुःखों के पहाड़ टूट पड़े । माँ ! मेरी रोती हुई भाभी को आश्वासन देने के लिए एकबार तो आ ? आ माँ ! तुम क्यों नहीं आ रही और कुछ बोल नहीं रही हो ? मेरे सिर पर वात्सल्यपूर्वक हाथ क्यों नहीं रखती ?" ऐसा कहकर आँखों आंसू बहाता हुआ अपनी मूक भाषा में माता को पुकारता है -

"ओ...माँ...ओ....माँ.... वह पंछी बोलता है, सारे मनुष्य बोलते हैं,
मगर तुम क्यों नहीं बोलती मेरी माँ... मुझे कोई बताइए न (२)
कोई कहता है कि गयी तुम आकाश में प्रभु के पास,
ओ भगवान मुझे ले जाओ तुम, पर दे-दो मुझे मेरी माँ...ओ...माँ"

❑ सुरेश की पुकार :

"हे पंछी ! तुम मेरी माता को मेरा इतना सन्देश दे कि तुम्हारा सुरेश तुम्हारे बिना तरस रहा है और सुरेश की रक्षा करनेवाली तुम्हारी पुत्रवधू के सिर पर दुःख के पहाड़ टूट पडे है, अतः तुम जहाँ भी हो वहाँ से आकर अपने सुरेश को ले जा ।" ऐसा कहकर वह बहुत रोता है । सुरेश के मुख के सामने देखा तक नहीं जाता । यह देखकर सुनन्दा बोल उठी - "अहो... इतनी बड़ी इस पृथ्वी पर मुझे और मेरे सुरेश के लिए थोड़ी ज़मीन भी नहीं मिलेगी ? क्या पृथ्वी का एक छोटा-सा टुकड़ा भी झोंपड़े के लिए नहीं मिलेगा ? मैं जाती हूँ ।" तब भाई-बहन ने कहा - "ठीक है जाओ, अगर इन कागज़ात पर हस्ताक्षर करती जाओ ।" सुनन्दा ने हँसते मुख से हस्ताक्षर कर दिया और सुरेश को साथ लेकर घर से कुछ भी लिये बिना चल निकली । घर की साक्षात् कुलदेवी समान सुनन्दा को जाते देखकर लोग कहने लगे कि - "इस विजय को विनाशकाल में विपरीत बुद्धि सूझी है । इस पवित्र स्त्री को घर से निकाल देगा तो दुःखी-दुःखी हो जायेगा । उसकी बहन भी उसके जैसी है, इसलिए अपने भाई तो सच्ची सलाह भी नहीं देती है । इस गूँगे लड़के के पुण्य से तो वे सुखी थे, परन्तु अभिमान में वह होश खो बैठा है ।" पड़ोसी सामने से समझाने गये, परन्तु किसी ने बात न सुनी ।

सुनन्दा सुरेश को लेकर गाँव से बाहर निकली । वहाँ एक कुँआ आया । सुरेश ने इशारा कर भाभी से कहा - "भाभी ! तुमने तो मेरे लिए दुःख सहने में कुछ शेष छोड़ा नहीं है । इस पापी को ज़िन्दा रखने में क्या फायदा है ? तुम मुझे इस कुँए में फेंक दो और अपने घर लौट जाओ ।" भाभी ने उसे इशारे से समझाया - "तुम्हें कुँए में फेंक देने के लिए मैंने अपना घर छोड़ा नहीं है ।" चलते-चलते वे एक गाँव में आये । वहाँ एक झोंपड़ी बाँधकर देवर-भाभी रहने लगा । सुनन्दा के पास कुछ रूपये थे, उसमें से खाना लाकर दोनों ने खाया । सुनन्दा लोगों के घरों में काम कर दोनों के पेट भरने लगी । पास में कुछ रुपये बचे थे, इसलिए पीपरमीट आदि चीज़ों की छोटी-सी दुकान बनायी और उसमें से जो कुछ मिले उसमें से गुज़रान (निर्वाह) करने लगे ।

❑ विजय को मिली कर्म की थप्पड :

इस ओर सुनन्दा के निकलने के आठ दिन में विजय को व्यापार में घाटे पर घाटा होने लगा । शहर से समाचार मिले कि कोठी में आग लगी और सब कुछ जल गया । अपने घर में भी आग लगी और सब खत्म हो गया । व्यापार में घाटा

होने पर घर में कुछ तो हो सकता है, परन्तु जब आग का प्रकोप सभी जगाहों पर लगा हो तब क्या बच सकता है ? विजय निराधार बन गया । तब लोग कहने लगे कि - 'सती सुनन्दा और निर्धन भाई को तुमने निकाल दिया उसका यह फल है और इसीलिए तुम दुःखी हो गये । अब तुम अपनी को ढूँढ लाओ तो ही तेरा भला होगा ।' अब विजय की आँख खुल गयी थी, इसलिए उसे अपनी आदर्श पत्नी की याद आने लगी थी, वह चारों ओर सुनन्दा को ढूँढने लगा । खोजते हुए बारह महीनों बाद उसे सुनन्दा का पता मिला । विजय सुनन्दा की चरण में गिरकर कहने लगा - "सुनन्दा ! तुम चलो । तुम्हारे जाने के बाद आठवें दिन से ही मेरी यह दशा हो गयी है । अब मुझे अपनी भूल का ज्ञान हो गया है ।" सुनन्दा ने कहा - "आपने तो तलाक़ के लिए हस्ताक्षर करवा लिये हैं, इसलिए मैं आप के साथ नहीं आऊँगी । मुझे यहाँ स्वतंत्र जीवन जीने में बहुत शांति मिलती है । आप खुशी से दूसरा विवाह कीजिए ।" विजय ने दुःख की सारी कहानी सुनन्दा को कह सुनायी । तब दयालु सुनन्दा ने कहा - "मैं साथ चलुँगी, परन्तु सुरेश तो जीवन पर्यन्त मेरे साथ ही रहेगा । अगर यह बात आपको मंजूर है, तो ही मैं साथ आऊँगी ।" विजय ने बात स्वीकार ली और तीनों गाँव में वापस आये । सुनन्दा के पास जो थोड़े-बहुत रुपये थे, उसमें से अपना घर था, उसके पास छोटा-सा घर बनाया और वहाँ रहने लगे । अब तो विजय सुरेश को प्रेम से रखता है ।

❑ सुरेश द्वारा दिखाया गया चरु (देग) :

एक दिन सुरेश इशारा कर सुनन्दा से कुछ कहा रहा था कि "यहाँ खोदिए ।" भाभी ने खोदा तो रत्नों से भरा चरु निकला । सुनन्दा ने विजय से कहा - "देखिए, आप के इस लाड़ले भाई ने चरु दिखाया ।" अब तो सुरेश विजय को साँस-प्राण से भी प्यारा हो गया था । पास में धन आने पर विजय ने पहले जैसा बड़ा बंगला बनवाया और पुनः व्यापार शुरू किया । कुछ ही समय में वे पहले की तरह सुखी और समृद्ध बन गये । अब वे सभी खुशी से साथ-साथ रहने लगे। सुनन्दा धर्मिष्ठ थी । वह रोज़ धर्म की आराधना करती थी । उसके साथ विजय भी धर्मिष्ठ बन गया । उसकी सुनन्दा अब भगवान तुल्य थी । वह अपना प्रत्येक कार्य में सुनन्दा की सलाह लेकर करता था । एक बार गाँव में अवधिज्ञानी संत पधारे । सुनन्दा और विजय सुरेश को साथ लेकर गुरु के दर्शन करने लगे । गुरु के दर्शन किये और व्याख्यान सुनने के वाद जव सभी चलने लगे तव भी तीनों बैठे रहे ।

❑ संयम के मार्ग में प्रयाण :

गुरुदेव को लगा कि ये जिज्ञासु जीव कुछ चाहते हैं । तब आज्ञा होने पर सुनन्दा ने गुरु भगवन्त को वंदन कर पूछा - "गुरुदेव ! आज आपने व्याख्यान में कर्म का स्वरूप समझाया । मेरा यह देवर किस कर्म के उदय से जन्म से ही बहरा और गूँगा है, यह आप कृपया हमें कहिए ।" गुरु ने ध्यान लगाकर देखा और फिर कहा - "बहन ! यह तो पवित्र आत्मा है, उसने पूर्वजन्म में चारित्र (सन्यास) लिया था, परन्तु एक बार क्लेश होने पर उसने गुरु की घोर अशातना की थी । उसका प्रायश्चित्त या आलोचना की नहीं, इसीलिए उसकी यह स्थिति (दशा) हुई है ।" सुरेश गुरु के मुख के भाव से कुछ समझा । उसकी श्रोतेन्द्रिय खुल गयी, कान्र से सुनने लगा । अपने पूर्वजन्म में गुरु की की गयी अशातना का फल सुनकर मुख से प्रायश्चित्त लिया । आलोचना कर कर्मों को खपाया । सुनन्दा तथा विजय को बेहद खुशी हुई । सुरेश सुनन्दा के चरणों में गिरकर कहने लगा - "भाभीजी ! तुम तो मेरी माता हैं । अगर तुम नहीं होती तो में जिन्दा न रहता । तुमने मेरे लिए न जाने कितने सारे कष्ट सहे ? तुम्हारा जितना उपकार माना जाय कम है" और वह रोने लगा । सुनन्दा ने कहा - "भाई ! इसमें मैंने कोई विशेष कार्य नहीं किया हैं, मैंने तो भाभी के रूप में अपना कर्तव्य बजाया है ।" ऐसा कहकर अपने लाड़ले देवर को गले से लगा दिया, फिर सुरेश बड़े भाई के चरणों में गिरकर कहने लगा - "बड़े भाई ! मेरे कारण आजतक आपको जो कुछ दुःख सहने पड़े हो, इसके लिए में माफी चाहता हूँ । आप मुझे क्षमा कीजिए ।" विजय गदगद् हो गया औ कहने लगा - "मेरे लाड़ले भाई ! क्षमा तो मुझे तुम्हें देनी है, क्योंकि मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं । मुझे माफ करो ।" इतना कहकर दोनों भाई एक-दूसरे से गले मिल गये । परस्पर माफी माँगी । हर्ष के आंसू बहाये । फिर सुरेश ने कहा - "भाई-भाभी ! आप मुझे 'चारित्र-मार्ग' पर जाने की आज्ञा दीजिए । अपने कर्मोदय से मैंने बहुत दुःख सहे हैं । अब सर्वथा दुःख से मुक्त होने के लिए 'चारित्र' ही श्रेष्ठ उपाय है ।" छोटे भाई का वैराग्य देखकर बड़ा भाई भी अपने आप को प्रायश्चित्त करने हेतु दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए । सुनन्दा तो एक साध्वी जैसी ही पवित्र थी, उसने भी दीक्षा लेने का निर्णय लिया । सभीने सारी संपत्ति दान में खर्चकर पवित्र बनकर तीनों पवित्र आत्माएँ संयम के मार्ग में चल पड़े और उग्र चारित्र पालकर आत्मा का कल्याण किया।

महीने का धर पवित्र दिन है । कर्मों का ज़ंग उखाड़ने के लिए तप की आराधना करनी चाहिए । अधिक बातें बाद में ।

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ • - • २ २ २ २ २ २ २ २ २ २

पंद्रह का धर : अभयदान महान दान है

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

परम कृपालु परमात्मा ने संसार के जीवों के उद्धार के लिए सिद्धान्तरूपी वाणी का उच्चार किया । आज 'पंद्रह का धर' हमें सूचित करता है कि 'हे भव्य-जीव ! आज से पंद्रहवें दिन पर्वाधिराज संवत्सरी महान पर्व हमारे आँगन में आ रहा है । संसार में पर्व तो बहुत आते हैं, परन्तु इस पर्व की अगर कोई विशेषता हो तो वह यह कि अनादिकाल से जीव की विषयसुख के प्रति जो वासना है उसे दूर करनेवाला है । यह पर्व आने से पहले हमें कितनी बार जगाता है । आज से पंद्रह दिन पहले महीने का धर था । 'धर' यानी क्या ? धर अर्थात् पकड़ना । क्या पकड़ना ? भगवान कहते हैं - "हे जीव ! अनादिकाल से अपना मूलस्थान छोड़कर अन्य स्थान में घुमकर कषायों के वश हो गया है । उस अन्य स्थान को छोड़कर अपने मूलस्थान को पकड़ ले और स्वभाव में स्थिर बन जा । संसार की जड कषाय है । राग और द्वेष कर्म के बीज है ।

खेत में किसान बीज बोता है तब फसल पकती है । वैसे ही हमारे जीवनरूपी क्षेत्र में राग-द्वेषरूपी बीज की बोआई करने से पाप-कर्मरूपी फसल पकती है, उसे भोगते समय भी अगर समता न रहे तो नये कर्म बन्धेंगे और परिणामस्वरूप संसार का चक्र फिरा करेगा, परन्तु राग की आग में होश खो बैठे जीवों को होश नहीं कि उसमें कूदेगा तो जलकर खाक हो जायेगा । देखिए, पतंगा प्रकाश देखकर पागल बनता है और उस प्रकाश में उसका जीवन जलकर खाक हो जाता है ।

पतंगा तो समझता नहीं, अगर समझे तो कह देना ।
दीपक में जलने से अच्छा है दूर रहने में ।
समीप रहने में है संताप, मजा है दूर रहने में ॥

ज्ञानी कहते हैं कि - "विषयों की बातें जहाँ होती है वहाँ कभी मत जाइए। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय कैसे भयानक है ? पतंगा जब प्रकाश से जब मिलने जाता है तब उसे पकड़कर कोई दूर फेंक दे, तब भी वह लौटकर वहीं आता है । लक्ष्मी के मोह में पागल बने जीवों की भी यही दशा है । उपाश्रय में आने की फुरसत नहीं है, परन्तु याद रखिए कि काल आयेगा तब क्या करेंगे ? आप ऐसा कह सकते

है कि - 'मुझे फुरसत नहीं है ।' सर्जन डोक्टर को बुलाए और कहे कि 'कुछ भी करके मुझे बचा लीजिए,' तब डोक्टर क्या कहता है ? 'भाई ! उपाय तो करता हूँ, परन्तु टूटी इसकी बुटी नहीं है ।' टूटा आयुष्य फिर जुड़ता नहीं है । वृक्ष पर से पत्ता गिरने के बाद पुनः वृक्ष पर जा सकता नहीं है । पुनः नया आता है, मगर गिरा हुआ पत्ता वापस उपर जा सकता नहीं है । याद रखिए, वैसे ही हमारा पत्ता कब टूट पड़ेगा यह पता भी नहीं चलेगा । इसलिए जीवन में धर्म की कमाई कर लीजिए । राग-द्वेष और मोह का परिणाम पाप है । जिन्दगी छोटी है । उसमें पाप की प्रवृत्ति कम कीजिए और वीतराग बनने के लिए वीतराग-प्रभु की वाणी में मस्त बनना पड़ेगा । वीतरागवाणी मिली है, तो हृदय के प्रत्येक तार में धर्म का रंग लगना चाहिए । धर्म का रंग लगने के बाद खड्डा खोदते समय रत्नों चरु निकलेगा, तब भी लेने का मन नहीं होगा ।

धर्मराजा शासन करते थे, तब की बात है । एक मनुष्य ने किसान के पास से दो बीघा जमीन खरीदी । बारिश आने से पहले वह ज़मीन को जोत रहा था । जोतते-जोतते हल रूक गया । देखा तो उसमें से मूल्यवान रत्नों से भरा चरु था । किसान सोचता है कि 'मैंने ज़मीन ली है, चरु नहीं । इस चरु का अधिकार जमीन के मालिक का है । मेरा नहीं ।' अतः जिससे जमीन ली थी उसके पास जाकर कहने लगा - "भाई ! आपको पास से मैंने जो जमीन खरीदी थी, उसमें जमीन जोतते समय यह चरु मुझे मिला है । इसे आप ले लीजिए ।" तब जमीनदार ने कहा - "भाई, वह जमीन तो तुमने खरीदी है, इसलिए तुम्हारा अधिकार है । मैंने अनेक बार जमीन जोती है, मगर फिर भी चरु क्यों न निकला ? इसलिए तुम उसे ले जाओं ।" तब वह कहता है कि "मैं उस नहीं छुऊँगा ।"

देवानुप्रिय ! विचार कीजिएगा । आप श्रावक हैं । प्रतिक्रमण में रोज कहते है न कि परधन पत्थर समान । यदि रोज नहीं तो संवत्सरी के दिन तो अवश्य कहेंगे । किसान कितना प्रामाणिक है ? उसे मिलता है तब चाहिए नहीं । बोलिए मेरे श्रावक ! इस प्रकार मिल जाय तो परधन पत्थर समान और हाथ में आये तो घर समान । (हँसते हैं ।) क्यों ठीक है न ! धन की इतनी मूर्छा-लालच ! धन की मूर्छा जीव को कहाँ ले जायेगी ? वह किसान कहता है कि- "पराया धन मेरे घर में आये तो मेरे मन के परिणाम बिगाड सकता है और मुझे दुर्गति में ले जायेगा ।" तब जमीनदार कहते हैं - "तब फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए । चलिए राजा को सौंप दीजिए ।"

धन की लालसा (मूर्छा) कितनी अधिक लगी होगी ? वे जीव (आत्माएँ) कितने पवित्र होंगे ? परिग्रह की ऐसी मूर्छा छूट जाय तो समझ लीजिए कि मैंने धर्म पाया है। मैं प्रतिक्रमण करूँ, सामायिक करूँ, वीतरागवाणी सूनुं। ब्रह्मचर्य का पालन करूँ, यथाशक्ति तप करूँ और कभी भी मुझे पराया धन लूटने की अगर हिंसा करके धन कमाने की वृत्ति न हो। भगवन् ! ऐसा मुझे चाहिए। बस इसका नाम है धर्म पाना।

धर्म धर्म करते सारा जग फिरे, धर्म का मर्म न जाने कोई।
धर्म जिनेश्वर चरण ग्रहने के बाद, कर्म न बाँधे कोई ॥

आज मनुष्य धर्म-धर्म की बाँग पुकारता है, परन्तु धर्म क्या चीज है इसका मर्म कोई नहीं जानता। ऐसा केवली प्ररूपित दयाधर्म मिलने के बाद प्रत्येक क्षण में ऐसी जागृति रहनी चाहिए कि मुझसे अब पाप का धन्धा नहीं किया जाना चाहिए, मगर आजका मनुष्य पैसों के लिए जैनधर्म के लिए हानिकारक पाप करने के लिए तैयार होता है। विश्व में बढ़ रहे भौतिकवाद ने मनुष्य की पवित्र भावनाओं को तोड़ डाला है। क्षणिक सुख के साधनों के खातिर मनुष्य संसार और धर्मनीति को त्याग देता है, अभी-अभी एक प्रसंग सुना और देखा उसे आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ।

सुख के साधनों खातिर

एक जैन परिवार बहुत ही संस्कारी था, जिसके घर में कंद-मूल कभी नहीं आते थे। रोज चौविहार करना, सन्तदर्शन के लिए जाना - उनकी दिनचर्या थी। ऐसे खानदानी और संस्कारी परिवार का सरोश नामक लड़का अमरिका पढ़ने के लिए गया। पढ़ाई में वह हमेशा अव्वल रहता था, इसलिए कुछ ही समय में अमरिका से मिकेनिकल इंजीनियर की डिग्री लेकर भारत आया। यहाँ उसे केमिकल फैक्टरी में रु. १,००० महीने आमदानी, रहने के लिए अच्छा मकान और एम्बेसेडर कार तथा वर्ष में एक बार महीने तक प्रवास का सारा खर्च, फोन, नौकर-चाकर सब फैक्टरी की ओर से मिलता था। इतनी सुविधा और हजार रु. की आमदनी मिलने पर भी सरोश के मन में ऐसा लगता कि मैं अमरिका पढ़कर आया फिर भी मुझे एक हज़ार की ही आमदनी ? मेरे लिए तो यह नौकरी सामान्य है। मुझे इससे भी बड़ी नौकरी चाहिए। जैन में संस्कारी परिवार का बेटा है, फिर भी इतना कुछ मिलने पर भी उसकी तृषा शांत न हुई। इससे बड़ी फैक्टरीयों में से उनके लिए नौकरी की ओफर आती, परन्तु उसे यह सब कुछ तुच्छ लगता था। क्योंकि आज का मनुष्य पैसों को प्रतिष्ठा का प्रतीक समझता है इसलिए प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए किसी की भी तरह से धन प्राप्त करने के लिए मारा मारा फिरता है।

सरोश अच्छी नौकरी ढूँढ रहा था । ऐसा करते हुए एक दिन उसने वर्तमानपत्र में विज्ञापन पढ़ा कि ऐसी ही डिग्री प्राप्त इंजीनियर की आवश्यकता है । अगर नौकरी का स्वीकार किया जाय तो प्रतिमास तीन हजार रुपयों की आमदनी, ऐरकन्डिशन फ्लेट, विदेशी गाड़ी, नौकर-चाकर, रसोईया (बावर्ची) और प्रतिवर्ष एक बार विदेश की यात्रा । सरोश को ऐसी ही नौकरी की तलाश थी । परन्तु उसमें पाप का काम था, फिर भी पैसों की लालच में सरोश का मन भटक गया। फिर भी उसे अपने माता-पिता की आज्ञा की चिन्ता थी कि वे इस नौकरी के लिए हाँ कहेंगे या ना । किसलिए थी यह चिन्ता ? कयोंकि उस नौकरी में एक नये प्रकार का कत्लखाना खोलना था । उसमें गाय-भैंस, बकरें, सूअर आदि प्राणियों का कत्ल करने के लिए बड़े-बड़े मशीन की व्यवस्था करनी थी । वह मशीन ऐसा बनाया था कि प्राणियों की कत्ल हो जाने पर एक ओर चमड़ा और हड्डियाँ अलग हो जाय और दूसरी ओर लहू, माँस अलग हो जाय और तीसरी ओर चर्बी और प्राणियों के कलेजे अलग हो जाय और इन सभी वस्तुओं को साफ-सुथरा बनाकर पैक कर विदेश में भेजने की योजना थी । इसके अतिरिक्त उन प्राणियों की पूँछ के बाल से लेकर पैर की खुरी आदि चीजें अलग निकालकर उसे रिफाइन (साफ-सुथरा) कर विदेश में भेजकर बड़ी आय प्राप्त करने की उस कारखाने के मालिक की इच्छा थी । इतनी अधिक आमदनी और भविष्य में आगे बढ़ने की आकांक्षावाले सरोश को यह नौकरी स्वीकारने की इच्छा हुई, इसलिए घर के बुजुर्ग सदस्यों की आज्ञा लिए बिना ही उसने यह नौकरी स्वीकार ली ।

इस तरफ उसके माता-पिता आदि परिवारवालों को पता चला कि सरोश ने ऐसी हिंसावाली-जीवहत्यावाली नौकरी का स्वीकार किया है । साथ में वर्तमानपत्रों में भी पढ़ा कि ऐशिया में पहली और अत्याधुनिक क़त्लखाने में इंजीनियर मैनेजर के पद पर उसकी नियुक्ति हुई है । इस समाचार से उसके परिवारवालों, मित्रों, ज्ञातिवर्ग आदि में बहुत धमाल (चर्चा) मच गयी और उसके पिता से लोग कहने लगे कि "आपके बेटे ने ऐसी नौकरी का क्यों स्वीकार किया है?" परन्तु माँ-बाप का हृदय अब भी इस बात को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है । अहो ! हमारे संस्कारी परिवार में पला बेटा ऐसा नहीं कर सकता । फिर भी चर्चाएं तो होती रही । वर्तमानपत्रों में पढ़ने पर माता-पिता एवं मित्रों ने उसे बहुत धमकाया और विरोध प्रदर्शित करता पत्र भी लिखा । "भाई सरोश ! हमने वर्तमानपत्रों में पढ़ा है कि तुमने ऐसे क़त्लखाने में मैनेजर की नौकरी स्वीकार की है । हमें इससे बहुत दुःख पहुँचा है । भाई ! तुम्हें किस बात की कमी थी जो नर्क में ले जानेवाला पापमय कत्लखाने का कसाई बनने की नौकरी का स्वीकार किया ? तुम अधिक पैसा, बंगला, गाड़ी मोटर और नौकर-चाकर की सुविधा की लालच

में फंसा होगा ! क्या तुझे कुछ सूझता हे कि मेरा परिवार कैसा है और खानदान ! हमारे घर में तो प्याज-आलु आदि कंद-मूल का त्याग है । रात्रिभोजन का त्याग, प्रतिदिन उपाश्रय में जाना आदि कर्म हैं और फिर तुमने विदेश जाने से पहले यह वचन दिया था कि मैं शराब-माँस का सेवन नहीं करूँगा, परस्त्रीगमन नहीं करूँगा । तुमने इन वचनों का पालन अभी तक तो किया है, फिर यह क्या हम तो चींटी की भी दया करनेवाले हैं, और तुमने खून की नदियाँ बहानेवाला, माँस का ढेर लगानेवाला व्यवसाय चुना है ! अरे बेटे ! तुमने यह क्या किया ? तुझे ऐसी हिंसामय और पाप का ढ़ेर (सामान) बँधनेवाली नौकरी का स्वीकार करने की कुमति क्यों की ? हमें इस बात से बहुत दुःख हुआ है । अगर तुम हमारी सच्ची सन्तान हो तो और अपने माता-पिता का मुख देखना चाहते हो तो इस पत्र को पढ़ते ही तत्काल इस्तिफा दे देना ।''

माता-पिता का पत्र पढ़कर सरोश काँप उठा । थोड़ी देर तो लगा कि माता-पिता की बात सही है । परन्तु दूसरी ही क्षण उसका हृदय बदल गया । 'वे तो पुराने ख्यालोंवाले हैं, वे जैसा सोचते हैं ऐसा नहीं होता । यह कोई ऐसा-वैसा कत्लखाना थोड़े ही है कि खून-माँस के ढेर दिखे ? यह तो नये जमाने का कारखाना है । घास चरते प्राणियों को यह पता भी नहीं चलता कि उन पर छूरा चल रहा है और एक बूँद भी खून दिखता नहीं है । इसमें गलत क्या है ? अन्न की कमी है, इसलिए ऐसे कारखानें से भूखमरा कम होगा । माता-पिता और परिवारवाले तो दो दिन चीखकर चुप हो जाएँगे, मगर क्या ऐसी नौकरी छोड़कर मुझे अपना भविष्य बिगाड़ना है ?' पैसों के लिए कैसा दुष्ट विचार है ? कसाई और इसमें क्या फर्क है ? अन्त में उसने योजना बनाकर अपने अधिकारीयों को खुश कर दिया।

बन्धुओं ! देखिए । आप अपनी सन्तानों को विदेश पढ़ने के लिए भेजते हो न, वह किसलिए ? अधिक कमाने की लालसा में न ? उन पैसों की अति आसक्ति कैसा कार्य करती है ? अनेक युवक परदेश में जाकर वहाँ की लड़कियों से ब्याह लेते हैं । परायी मिट्टी खाने लग जाते है । तब माँ-बाप बड़े बड़े आंसूओं से रोते हैं । सरोश के माता-पिता को पता चला कि लड़के ने नौकरी छोड़ी नहीं है । वह बेहोश हो गये । पुनः लिखा - ''बेटे ! तुझे पढ़ने के लिए परदेश भेजा, यही बड़ी भूल थी । हमने तुम्हें पैसे खर्चकर पढ़ाया, इसलिए यह पाप करने के लिए तैयार हुआ न ? तुम यदि यह नौकरी नहीं छोड़ेगा तो इस घर में तुझे कोई स्थान नहीं मिलेगा । आज से तुम हमारे बेटे नहीं और हम तुम्हारे माँ-बाप नहीं। हमारा लड़का कसाई का काम नहीं कर सकता । कसाई तो बहुत कम जीवों का क़त्ल

करता है, मगर तुम तो कसाई के भी कसाई निकले । ऐसे भयानक शस्त्रों के खोज कर असंख्य जीवों की हत्या करेगा । इस पाप से तुम किस जन्म में मुक्त होंगे ? हमारा तो हृदय कुछ काम नहीं कर रहा है ।'' परन्तु यहाँ सरोश का हृदय अब निष्ठुर बन गया है । उसे इसका कोई असर नहीं हुआ ।

सरोश के प्लान से उसके साहबों को सन्तोष हुआ, फिर भी उसे कहा गया कि – ''काम शुरू होने से पहले देश के बड़े बड़े कत्लखानों में खुद जाकर निरीक्षण कर आइए कि वहाँ क्या कमजोरी है और क्या विशेषता है ?'' इसलिए वह गाडी लेकर कत्लखानों का निरीक्षण करने निकला । गाड़ी का ड्राइवर मुस्लिम था । उसका नाम महम्मद था । दोपहर होने पर भोजन का समय हुआ तो एक अच्छी होटल के पास गाडी खड़ी रखकर ड्राइवर से कहा – ''चल, हम दोनों भोजन कर लेते हैं ।'' तब ड्राइवर ने कहा – ''साहब ! मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगेगा । मैं इस्लामी होटल में जाऊँगा ।''

साहब ने कहा – ''ठीक है ।'' दोनों ने भोजन कर लिया । घण्टा विश्राम कर यात्रा प्रारम्भ की और एक शहर के बड़े कत्लखाने में गये । वहाँ की कारवाई देखी। महम्मद सरोश के साथ था । कत्लखाने में कटते-तड़पते प्राणियों को देखकर महम्मद का हृदय काँप उठा । साहब से कहने लगा – ''साहब ! मुझे आपकी गाडी चलानी नहीं है । मुझे नौकरी से मुक्त कर दीजिए ।'' साहब पूछता है –''क्यों क्या हुआ ? किसलिए तुम चिन्ता करते हो ? मेरी आमदनी बढेगी, वैसे तेरी भी बढ़ेगी ।'' महम्मद ने साहब से कहा – ''साहब ! मुझे आमदनी की चिन्ता नहीं है, परन्तु इन गूँगे प्राणियों को कटते-तड़पते देखकर मेरा हृदय काँप उठता है । मैं माँसाहारी हूँ, मैंने कल ही इस्लामी होटल में मज़ेदार भोजन किया था, मैंने बहुत माँस खाया है, मगर इन जीवों की जो कत्ल हो रही है उसे प्रत्यक्ष कभी देखा नहीं है । हम तो बाजार से तैयार भोजन खाते है, परन्तु आज अपने सामने यह दृश्य देख रहा हूँ । इन गूँगे जानवरों की ऐसी दशा ? छोटे छोटे कोमल बच्चों को उनकी माता से अलग कर उसकी माता और उसके प्यारे बच्चों को निर्दयता से काट डालते हैं । यह देखकर मेरा सिर चकरा जाता है । आँखों से अन्धेरा छाने लगा है । अब मुझे पता चला कि मज़ेदार भोजन कैसे बनता है ? न जाने कितने जीवों के प्राण लूटते हैं । थाली में मज़ेदार भोजन पीरोसा जाता है, यह कैसे बनता है इसकी मुझे अभी तक कल्पना मात्र थी, परन्तु आज प्रत्यक्ष देखा और मेरे हृदय में घृणा सी फैल गयी है । मुझे अब यह नौकरी नहीं चाहिए ।''

देखिए, मांसाहारी महम्मद को इतना अधिक असर हुआ मगर वह जैन का बेटा सरोश कहता है – ''महम्मद ! मगर हमें यह हिंसा कहाँ करनी है ? वे तो [illegible]

लोग करेंगे । हम तो मात्र निरीक्षण ही करना है और ओर्डर देना होता है ।'' महम्मद ने कहा - ''आपको ऐसे क़त्लखाने देखने जाना है और मुझे साथ में गाड़ी लेकर आना पड़ता है न ! परन्तु मुझसे यह देखा नहीं जाता । मैंने आज से ही निश्चय किया है कि आज के बाद भविष्य में भी कभी मांस नहीं खाऊँगा । मुझे जैसे अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही प्रत्येक को अपना जीवन प्रिय होता है । किसी को मरना अच्छा नहीं लगता है । बस, मुझे भी यह नौकरी नहीं चाहिए । हमारा यह क़त्लखाना शुरू हो उससे पहले नौकरी छोड़ देनी है ।''

महम्मद के प्रत्येक शब्द से सरोश का हृदय पिघलने लगा । घर आकर भोजन करने बैठा तब भी उसे क़त्लखाना का दृश्य प्रत्यक्ष दिखने लगा । जैसे-तैसे करके खाना खाया । रात को सो गया, परन्तु महम्मद के शब्द अभी तक कानों से जा नहीं रहे थे । 'अहो ! जो रोज़ मांसाहार करनेवाले और सामान्य अनपढ़ ड्राइवर ने भी क़त्लखाना देखकर मांसाहार का त्याग किया और नौकरी से मुक्त होना चाहता है । उसे तो मात्र मेरी गाड़ी ही चलानी है, फिर भी उसने जीवों को कटता देख यह अनुकंपा दिखायी ! जबकि मैंने तो कभी शराब पिया नहीं है, न मांस खाया है । मैं एक जैन का बेटा हूँ फिर भी इतने बड़े भयानक कत्लखाने का मैनेजर बना ? कितने जीवों की हत्या होगी ? मैं कैसा पापी ? मैंने अपने माता-पिता की शिक्षा का भी अनादर किया ? धिक्कार है मुझे ! बस, अब मुझे भी यह नौकरी नहीं चाहिए । देश में ५०० रु. की नौकरी करूँगा, मगर इस पाप का व्यवसाय मैं न करूँगा ।' दूसरे दिन सुबह उठकर ऑफिस में जाकर इस्तिफा दे दिया । सभी साहबों ने उसे बहुत समझाया मगर उसने तो स्पष्ट मना कर दिया । फिर शाम को ही वहाँ से अपने वतन के लिए रवाना हो गया । माता-पिता के पास आकर इस्तिफा की बात की और अपनी भूल का पश्चात्ताप भी किया । वह अपने माता-पिता की गोद में सिर रखकर खूब रोया और भविष्य में ऐसी भूल न करने की प्रतिज्ञा की ।

देवानुप्रियों ! एक मुसलमान महम्मद जैसा ड्राइवर जब गूँगे पशुओं की हिंसा होती देख काँप उठा, तो सरोश भी सुधर गया । अहाहा... पैसों की लालच के पीछे न जाने मनुष्य कितनी हिंसा करता है ? व्याख्यान में प्रतिदिन अहिंसा की बातें सुनकर भी जब बाहर हिंसा का ताण्डव रचता हो, तो उसे भगवान् कहते हैं कि - ''वह सच्चा जैन नहीं है ।'' क्योंकि जैन की रग-रंग में दया होती है। किसी जीव को दबता, कटता देख ले तो उसका हृदय काँप उठता है, परन्तु आज मनुष्य के शौक बढ़ गये हैं । नाजुक पर्स, बूट (जूते) आदि चीजों का उपयोग करता है, परन्तु वह कभी यह सोचता है कि ऐसा मुलायम-नाजुक कपड़ा किससे बनता है ? न जाने कितने सारे कीड़ों का संहार होता है, तब जाकर रेशम की साड़ी बनती है । कितनी सारी मछलियाँ कटकर एक सच्चे मोती की माला बनती

है । ज़रा सोचिएगा । आप गहने और वस्त्र नहीं पहनते मगर जिन्दा जीवों को फाड़कर उसके चमड़े पहन रहे हैं । सच्चा जैन ऐसे हिंसक गहने और वस्त्र नहीं पहनता । वह समझता है कि प्रत्येक जीव को अपना जीवन प्रिय है । मुझे मरना अच्छा नहीं लगता है तो फिर दूसरों को कैसे अच्छा लगेगा ? पहले दवाइयाँ आती थी परन्तु किसी को यह मालूम न था कि ये दवाइयाँ किस में से बनती है, और फिर इतनी हिंसक दवाइयाँ थी भी नहीं । आज दवाई की बोतल या कागज़ पर लिखा होता है कि यह दवाई किस से बनी है । फिर भी शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हिंसक दवाइयों का प्रयोग करने लगे हैं । जब ऐसी हिंसामय दवाइयाँ और वस्त्र खाये-पीये जायेंगे तो मन में पवित्रता कहाँ से रहेगी ? हृदय में कठोरता बढ़ती जाती है और दया आदि को तड़ीपार कर दिया जाता है । जीवदया का धर्म अलौकिक है । समकित के पाँच लक्षण में अनुकंपा भी एक लक्षण है । अनुकंपा हो तभी वह जीवों की दया कर सकता है । ज्ञानी कहते हैं कि - "आपको पाप की निन्दा करनी है, पापी की नहीं, क्योंकि आज का पापी कल पवित्र बन जाता है । आज का क्रूर कल कोमल बन जाता है । शैतान सन्त और हेवान मानव बन जाता है।

पाप को निंदो

रामपुर गाँव में रामसींग नामक एक लूटेरा था । चारों ओर वह सबको लूटता था, जनता को परेशान करता था । किन्तु रामसींग लूटेरा होने पर भी मन से सहानुभूतिवाला था । कई बार कहेजानेवाले साहूकारों में भी न देखी जानेवाली करुणा लूटेरों में देखी जा सकती है । रामसींग एकमात्र बहादुर लूटेरा था । उसकी वहादुरी करुणा से भरी हुई थी । रामसींग के जुल्म से राजा और जनता सभी काफी परेशान थे । राजा ने इनाम घोषित किया कि - 'जो रामसींग को पकड़कर लायेगा उसे महाराजा पाँच हजार रुपयों का ईनाम देंगे ।' रामसींग को पकड़ना यानी पवन को पकड़ना । जैसे पवन को पकड़ना मुश्किल है, वैसे ही इस रामसींग को पकड़ना भी मुश्किल था । फिर भी जब पुण्य खतम होता है, तब किसी भी प्रकार से वह पकड़ा जाता है ।

रामसींग को भी एक बार ऐसा ही हुआ । एक दिन ऐसा आ गया कि सिपाहियों की नज़र से अनेक बार भागा रामसींग सिपाहियों के चंगुल में फँस गया । इनाम प्राप्त करने कि आशा से सिपाही उसे राजदरबार में ले गये । रामसींग को देखते ही महाराज की आँखों से आग बरसने लगी । उन्हें लगा कि 'इसे फाँसी की सजा दी जायेगी तो कुछ क्षण में दुःख सहकर मर जायेगा.

लोग करेंगे । हमें तो मात्र निरीक्षण ही करना है और ओर्डर देना होता है ।'' महम्मद ने कहा - ''आपको ऐसे क़त्लखाने देखने जाना है और मुझे साथ में गाड़ी लेकर आना पड़ता है न ! परन्तु मुझसे यह देखा नहीं जाता । मैंने आज से ही निश्चय किया है कि आज के बाद भविष्य में भी कभी मांस नहीं खाऊँगा । मुझे जैसे अपना जीवन प्रिय है, वैसे ही प्रत्येक को अपना जीवन प्रिय होता है । किसी को मरना अच्छा नहीं लगता है । बस, मुझे भी यह नौकरी नहीं चाहिए । हमारा यह क़त्लखाना शुरू हो उससे पहले नौकरी छोड़ देनी है ।''

महम्मद के प्रत्येक शब्द से सरोश का हृदय पिघलने लगा । घर आकर भोजन करने बैठा तब भी उसे क़त्लखाना का दृश्य प्रत्यक्ष दिखने लगा । जैसे-तैसे करके खाना खाया । रात को सो गया, परन्तु महम्मद के शब्द अभी तक कानों से जा नहीं रहे थे । 'अहो ! जो रोज़ मांसाहार करनेवाले और सामान्य अनपढ़ ड्राइवर ने भी क़त्लखाना देखकर मांसाहार का त्याग किया और नौकरी से मुक्त होना चाहता है । उसे तो मात्र मेरी गाड़ी ही चलानी है, फिर भी उसने जीवों को कटता देख यह अनुकंपा दिखायी ! जबकि मैंने तो कभी शराब पिया नहीं है, न मांस खाया है । मैं एक जैन का बेटा हूँ फिर भी इतने बड़े भयानक कत्लखाने का मैनेजर बना ? कितने जीवों की हत्या होगी ? मैं कैसा पापी ? मैंने अपने माता-पिता की शिक्षा का भी अनादर किया ? धिक्कार है मुझे ! बस, अब मुझे भी यह नौकरी नहीं चाहिए । देश में ५०० रु. की नौकरी करूँगा, मगर इस पाप का व्यवसाय मैं न करूँगा ।' दूसरे दिन सुबह उठकर ओफिस में जाकर इस्तिफा दे दिया । सभी साहबों ने उसे बहुत समझाया मगर उसने तो स्पष्ट मना कर दिया । फिर शाम को ही वहाँ से अपने वतन के लिए रवाना हो गया । माता-पिता के पास आकर इस्तिफा की बात की और अपनी भूल का पश्चात्ताप भी किया । वह अपने माता-पिता की गोद में सिर रखकर खूब रोया और भविष्य में ऐसी भूल न करने की प्रतिज्ञा की ।

देवानुप्रियों ! एक मुसलमान महम्मद जैसा ड्राइवर जब गूँगे पशुओं की हिंसा होती देख काँप उठा, तो सरोश भी सुधर गया । अहाहा... पैसों की लालच के पीछे न जाने मनुष्य कितनी हिंसा करता है ? व्याख्यान में प्रतिदिन अहिंसा की बातें सुनकर भी जब बाहर हिंसा का ताण्डव रचता हो, तो उसे भगवान् कहते हैं कि - ''वह सच्चा जैन नहीं है ।'' क्योंकि जैन की रग-रंग में दया होती है। किसी जीव को दबता, कटता देख ले तो उसका हृदय काँप उठता है, परन्तु आज मनुष्य के शौक बढ़ गये हैं । नाजुक पर्स, बूट (जूते) आदि चीजों का उपयोग करता है, परन्तु वह कभी यह सोचता है कि ऐसा मुलायम-नाजुक कपड़ा किससे बनता है ? न जाने कितने सारे कीड़ों का संहार होता है, तब जाकर रेशम की साड़ी बनती है । कितनी सारी मछलियाँ कटकर एक सच्चे मोती की माला बनती

है । ज़रा सोचिएगा । आप गहनें और वस्त्र नहीं पहनते मगर जिन्दा जीवों को फाड़कर उसके चमड़े पहन रहे हैं । सच्चा जैन ऐसे हिंसक गहने और वस्त्र नहीं पहनता । वह समझता है कि प्रत्येक जीव को अपना जीवन प्रिय है । मुझे मरना अच्छा नहीं लगता है तो फिर दूसरों को कैसे अच्छा लगेगा ? पहले दवाइयाँ आती थी परन्तु किसी को यह मालूम न था कि ये दवाइयाँ किस में से बनती है, और फिर इतनी हिंसक दवाइयाँ थी भी नहीं । आज दवाई की बोतल या कागज़ पर लिखा होता है कि यह दवाई किस से बनी है । फिर भी शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हिंसक दवाइयों का प्रयोग करने लगे हैं । जब ऐसी हिंसामय दवाइयाँ और वस्त्र खाये-पीये जायेंगे तो मन में पवित्रता कहाँ से रहेगी ? हृदय में कठोरता बढ़ती जाती है और दया आदि को तड़ीपार कर दिया जाता है । जीवदया का धर्म अलौकिक है । समकित के पाँच लक्षण में अनुकंपा भी एक लक्षण है । अनुकंपा हो तभी वह जीवों की दया कर सकता है । ज्ञानी कहते हैं कि - ''आपको पाप की निन्दा करनी है, पापी की नहीं, क्योंकि आज का पापी कल पवित्र बन जाता है । आज का क्रूर कल कोमल बन जाता है । शैतान सन्त और हेवान मानव बन जाता है।

पाप को निंदो

रामपुर गाँव में रामसींग नामक एक लूटेरा था । चारों ओर वह सबको लूटता था, जनता को परेशान करता था । किन्तु रामसींग लूटेरा होने पर भी मन से सहानुभूतिवाला था । कई बार कहेजानेवाले साहूकारों में भी न देखी जानेवाली करुणा लूटेरों में देखी जा सकती है । रामसींग एकमात्र बहादुर लूटेरा था । उसकी बहादुरी करुणा से भरी हुई थी । रामसींग के जुल्म से राजा और जनता सभी काफी परेशान थे । राजा ने इनाम घोषित किया कि - 'जो रामसींग को पकड़कर लायेगा उसे महाराजा पाँच हजार रुपयों का ईनाम देंगे ।' रामसींग को पकड़ना यानी पवन को पकड़ना । जैसे पवन को पकड़ना मुश्किल है, वैसे ही इस रामसींग को पकड़ना भी मुश्किल था । फिर भी जब पुण्य खत्म होता है, तब किसी भी प्रकार से वह पकड़ा जाता है ।

रामसींग को भी एक बार ऐसा ही हुआ । एक दिन ऐसा आ गया कि सिपाहियों की नज़र से अनेक बार भागा रामसींग सिपाहियों के चंगुल में फँस गया । इनाम प्राप्त करने कि आशा से सिपाही उसे राजदरबार में ले गये । रामसींग को देखते ही महाराज की आँखों से आग बरसने लगी । उन्हें लगा कि 'इसे फाँसी की सजा दी जायेगी तो कुछ क्षण में दुःख सहकर मर ये ,

इसलिए उसे ऐसी सज़ा करूँ कि वह बहुत पीडित होकर मरे ।' यह सोचकर राजा ने काली काजल जैसी अन्धेरी कोठरी में क़ैद किया । पवन या प्रकाश उसकी कोठरी में प्रवेश नहीं कर सकते थे । उसे अन्नपानी भी न दिये जाय ऐसी आज्ञा की । राजा ने कहा - "उसके अपराधों की लम्बी सूचि देखकर मेरे हृदय में आग फैल जाती है । देहान्त-दण्ड से भी अधिक भयानक सज़ा भी इसके लिए कम है ।" क़ैदखाने में परिन्दा भी न आ सके ऐसी जेल का मेहमान रामसींग जेल से भागकर दरबार की इज्जत की धज्जियाँ उड़ाने की योजना बनाने लगा । उसे लगा कि 'अगर मैं ऐसी जेल से मुक्त हो सकुँ तो लूटेरों की ज़मात में मेरी बहादुरी की प्रशंसा होगी ।' इस रामसींग को एकाद खिड़की का या छेद मिल जाय तो उसमें से निकल भागने की विशिष्ट कला वह जानता था ।

❑ दीवार तोड़कर भागा रामसींग :

बहुत सोच-विचार कर एक दिन रामसींग को जेल से भाग निकलने का मार्ग मिल गया । जेल के पीछे के भाग में एक कच्ची दीवार थी । अपना बल आजमाकर हाथ-पैर की बेड़ियाँ तोड़ डाली और पैर से दीवार पर ऐसी लात मारी कि दीवार में छेद पड़ गया । छेद में से खिड़की ओर खिड़की में से दरवाजा बनाने की कला में वह पारंगत था । एक दिन रामसींग इस छेद में से भाग गया । दूसरे दिन पहरेदार देखने गये तो दीवार में बहुत बड़ा छेद देखा और रामसींग को न देखा । रामसींग लूटेरे की बहादुरी की सभी ने प्रशंसा की और सारे गाँव में यह बात फैल गयी । जिसने भी यह बात सुनी उन सबके हृदय को धक्का लगा । क्या रामसींग दीवार तोड़कर भाग गया ? समुद्र को पारकर किनारे पर आयी नौका जैसे डूब जाती है वैसे और जो आघात (दुःख) होता है वह दुःख राजा के हृदय को हुआ । जैसे समुद्र के पानी में हाथ से छूट गयी मछली पकड़ी नहीं जा सकती वैसे रामसींग को पकड़ना भी असम्भव था ।

❑ राजा का सख़्त हुक्म :

अब गाँव में क्या होता है यह देखने के लिए रामसींग भेष-परिवर्तन कर गाँव में फिरता है । लोग रामसींग के बल-बुद्धि की प्रशंसा करते थे । रामसींग अपनी कीर्तिकथा सुनता, तब बहुत गर्व अनुभव करता था । रामसींग को पकड़ने के सभी ने तीन-तीन दिनों तक गाँव में खोज की, परन्तु सभी असफल रहे । कोई रामसींग को प्राप्त कर सका नहीं । इससे राजा को बहुत गुस्सा आया । उनका क्रोध अब मर्यादा से बाहर था । राजा ने लूटेरे का क्रोध सिपाइयों पर उतारा । राजा ने चौकीदारों से कहा - "रामसींग को भाग जाने में आपका हाथ लगता है । आपने उसे भगा दिया है । आप लोगों का पहरा सख्त होता तो उसकी क्या

यहाँ आया हूँ ।'' एक शेतान के हृदय में जगी सन्तवृत्ति सबको अजीबों-गरीब लगी। दरबार को अभी तक विश्वास नहीं हो रहा था कि इस प्रकार रामसींग स्वयं अपने हाथों पकड़ा जाकर दूसरों को बचा सकता है ! सच स्पष्ट करने के लिए चौकीदार से पूछा गया - ''क्या यही रामसींग है न ?'' चौकीदार ने 'हाँ' कहा, ''उस दिन जेल में डाल दिया था, यह वही रामसींग है ।''

❑ जीवदया का फल :

रामसींग की यह जीवदया के खातिर अपनी जान कुर्बान करते देख राजा चकित से हो गये । भूल तो सब कोई करते है, परन्तु भूल को भूल मान ले वही मनुष्य से महामानव बन सकता है । रामसींग ने अपनी भूल का स्वीकार किया । राजा उस पर प्रसन्न हो गये और अपने निर्णय को बदल डाला । मृत्यु की सज़ा के बजाय अभयदान देते हुए राजा ने कहा - ''हे रामसींग ! धन्य है तुम्हारे जीवन को ! तुम्हारी इस करुणा का पूरा बदला चुकाने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ फिर भी आज से तुम्हें अपने राज्य का एक अच्छा पद देने का वचन देता हूँ ।'' तुम्हारे जैसे करुणावंत और दयालु को मैं दण्डित करूँ तो ईश्वर मुझ पर रूठ जाय !'' ऐसा कहकर राजा ने उसे गले से लगा दिया ।

कहने का आशय यह है कि जीवों को अभयदान देने की भावना ने ही उसका जीवन धन्य बना दिया और इतिहास के पन्ने में उसका नाम सुवर्ण-अक्षरों से लिखा गया । इसीलिए ज्ञानी फरमाते हैं कि - *''दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं''* - दान में कोई महान श्रेष्ठ दान है तो वह है अभयदान ! अतः जीवों की दया कीजिए, 'जीओं और जीने दो' - इस सूत्र को हृदय में उतारिए और हृदय में दया लाईए । यही भव्य भावना हो । अधिक चर्चा बाद में ।

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

चातुर्मास आत्मकल्याण के मौसम के पवित्र दिन हैं । आज का दिन त्रिवेणी संगम के रूप में पहचाना जाता है । अग्नि पर खाक चढ़ जाय तो फूँक मारकर निकाल दी जाती है । उसी प्रकार धर्म-भावनाओं पर चढ़ी खाक को निकालने के लिए पर्व फूँक रूप है । हिन्दु धर्म का आज धार्मिक पर्व है । जिसका नाम है बलेव

(रक्षाबन्धन) । क्षत्रियों के मन दशहरा, वैश्यों के मन दीपावली और शूद्रों के मन होली का त्यौहार है, उसी प्रकार ब्राह्मणों के मन बलेव की महिमा है । संवत्सरी जैसे जैनों के मन 'आलोचना' का पर्व है, ऐसा ब्राह्मणों के लिए बलेव का पर्व है । बलेव के दिन ब्राह्मण समुद्रकिनारे या नदी के किनारे जनेऊ बदलने के लिए जाते हैं । आज का दिन तीन नामों से पहचाना जाता है - उसमें प्रथम नाम है बलेव ।

(१) बलेव :

बलेव ब्राह्मणों का त्यौहार है । परन्तु आज तो केवल आड़म्बर मात्र रह गये हैं । यह त्यौहार संवत्सरी से पहले बीस दिन में आता है । तो जैसे जैन संवत्सरी के दिन क्षमापना करते हैं, बीती बातों को भूलकर एक-दूसरे को क्षमा करते हैं, वैसे ही ब्राह्मण भी एक-दूसरे के बैर भूलकर आज के दिन क्षमापना कर शुद्ध बनते हैं और जनेऊ बदलते हैं । वे जनेऊ किसलिए पहनते हैं ? उसमें भी तथ्य है । जनेऊ के तीन तार (धागे) है । जैनदर्शन के नियमानुसार अशुभ मन, वचन और काया द्वारा कर्म का बन्धन होता है और उसी शुभ परिणति में जुड़ जाय तो मन, वचन, काया से कर्म के बन्धनों को तोड़ता है । साथ ही मोक्ष में जाने के साधन भी तीन हैं । *'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्ग: ।'* सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र - मोक्ष के मार्ग है, वैसे ही ब्राह्मण की जनेऊ के भी तीन तार (धागे) है । वे कहते हैं कि - 'मन, वचन, काया तीन की जोडी है।' साथ ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र की भी जोड़ी है । वे तीन साधन हैं । उसमें अगर एक की भी कमी होगी तो मोक्ष में नहीं जा सकेंगे, गाड़ी रूक जायेगी । 'ठाणांग सूत्र' के तीसरे ठाणे में तीन प्रकार के ऋण बताये हैं - (१) माता-पिता (२) सेठ (३) गुरु का । उसमें दो ऋण से तो मनुष्य मुक्त हो सकता है । माता-पिता की जीवन पर्यन्त सेवा करे, उनकी आज्ञा का पालन करे, तब भी ऋण से मुक्ति नहीं मिलती है, परन्तु यदि अन्तिम समय में उन्हें धर्म सुनाकर सन्तुष्ट करे और सद्गति प्राप्त करवाये, तो माता-पिता के ऋणमुक्त हो जाता है । दूसरा ऋण है सेठ का । जिन्हों ने दुःख में आप को सहायता की हो, आप की लाज बचायी हो, वह जब दुःख में फँस जाय, तो उस समय आप उसके सहायक बन जाय, तो उसके ऋण से मुक्त हो सकते हो । परन्तु तीसरा ऋण गुरुजनों का है । उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि गुरु तो हमारे महा उपकारी है -

गुरु बिना को नहीं मुक्तिदाता, गुरु बिना को नहीं मार्ग ज्ञाता ।
गुरु बिना को नहीं जाड्यहर्ता, गुरु बिना को नहीं सौख्य कर्ता ॥

सद्गुरु के अतिरिक्त हमें कोई मुक्ति की सच्ची राह बतानेवाला नहीं है । अभी हमारे समक्ष अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी या केवलज्ञानी नहीं है । हमें गुरु कि

कोई तारनेवाला नहीं है, परन्तु गुरु कैसा होना चाहिए ? गु + रु जो अन्धकार से प्रकाश में ले जाय वही सच्चा गुरु । यह किसी नामधारी या भेषधारी (सन्यासी) गुरु की बात नहीं है ।

काष्टे च काष्टे तरता यथास्ति, दुग्धे च दुग्धे तरता यथास्ति ।
जले-जले त्वं तरता यथास्ति, गुरौ गुरौ चां तरता यथास्ति ।।

जैसे लकड़े लकड़े में फर्क है । साग-सीसम का लकड़ा, इमली-नीम का लकड़ा, बबुल का लकड़ा और चन्दन का लकड़ा । लकड़े तो बहुत है, मगर उन सबमें चन्दन के काष्ठ की कीमत अधिक है । दूध-दूध में भी अन्तर है । गाय, भैंस या बकरी का दूध । थूहर और आकड़ा का भी दूध है, परन्तु एक दूध शरीर की पुष्टि देता है, जबकि थूहर और आकड़े का दूध हानिकारक है । वैसा पानी पानी में भी फर्क है । किसी गाँव का पानी ऐसा होता है कि यह भोजन को पचाता है और किसी गाँव का पानी भारी होता है, तो वहाँ भूख भी लगती नहीं है । उसी प्रकार गुरु गुरु में भी फर्क होतै है । गुरु तो सत्य कह दे ने श्रावकजी ? 'यह आप को करने जैसा नहीं ।' फिर ऐसा विचार न करे कि 'अगर इसे सत्य कहूँगा तो उसे बुरा लगेगा । मेरा भक्त नहीं रहेगा ।' सच्चे गुरु तो भक्तों का भवरोग़ दूर करने में तत्पर रहते हैं, बच्चे को घबराहट हो रही हो, तो उसकी माता पतासा नहीं देती, परन्तु नीचे सुलाकर नाक दबाकर भी कड़वी दवाई पीलाती है, वैसे ही आपको अर्थ, काम और लोभ की घबराहट (रोग़) हो रही हो तो उसे दूर करने के लिए वीतराग वचन की कड़वी दवाई के घूँट आप के गले में नहीं उतरेंगे तब भी जबरदस्ती पीलाते हैं । आपको पसन्द आये या ना आये परन्तु हम तो सच्चा ही कहेंगे । हम अगर आपको सत्य बात नहीं कहेंगे तो फिर भगवान के अपराधी बनेंगे । अतः गुरु ढूँढना है, तो सच्चे गुरु को ढूँढ़ना । ऐसे-वैसे को गुरु मत मानना ।

हम एक ब्राह्मण की जनेऊ के तीन धागों की बात कर रहे हैं । जैसे हम रजोहरण के बिना एक कदम भी नहीं चल सकते, वैसे ब्राह्मण के जनेऊ के तीन धागों में से एक भी तार टूट जाय तो चलेगा नहीं । धागे सीने के बाद बाद चलते हैं । मन, वचन और काया के धागे शुद्ध होने चाहिए । जैसे क्षत्रिय के लिए दशहरा, जैनों के लिए संवत्सरी, वैष्णवों के लिए जन्माष्टमी, रामनवमी (रामनौंवी) और शूद्रों के लिए होली का महत्त्व है, वैसे ब्राह्मणों के लिए बलेव बहुत महत्त्वपूर्ण पर्व है ।

(२) नारियल-पूर्णिमा :

यह दिन आप को क्या बोध देता है ? जैसे नारियल के ऊपर छिलका है, नीचे नरेली है और भीतर खोपरे का गोला है । खोपरे का गोला नरेली में रहने

पर भी उससे अलग है, उसी प्रकार यह तेरा शरीर नरेली के समान है और भीतर (अन्दर) का जीव खोपरे के गोले के समान है । नरेली और खोपरा अलग है, वैसे हे चेतन ! तुम और देह अलग हो । दोनों के धर्म भी भिन्न-भिन्न है । आत्मा द्रव्य स्वरूप में तीनों कालों में नित्य है, और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है । जबकि शरीर जड़ है, अनित्य है, जबतक देह का राग है तबतक केवलज्ञान और केवलदर्शन नहीं होंगे । शरीर तो साधन है । वह साधन मोक्ष में जाने के लिए बन्धन रूप न बन जाय उसका ध्यान रखिएगा । खेत की रक्षा करने के लिए बाड़ा है, मगर जब बाड़ा की आरिया निगलने लगे, अर्थात् अपनो में ही फूट पड़ जाय तो वह किस काम का ? वैसे ही यह शरीर मोक्ष में जाने के लिए सहायक है । साधन है, परन्तु वह साधन अगर बन्धन बनता है तो किस काम का ? महान पुरुष इस साधन द्वारा अथाह पुरुषार्थ करते थे । जब शरीर काम में नहीं आयेगा ऐसा लगे तो 'संथारा' करते थे और देह को 'वोसरावी' देते, पवित्र बना लेते थे। वे समझते थे कि यह देह नरेली जैसा था । उसका राग छूटेगा तो ही आत्मारूपी खोपरे का स्वाद चखने को मिलेगा और मुक्ति का सुख प्राप्त होगा । देह और आत्मा का ऐसा भेदज्ञान हो जाय तो भव का बेड़ा पार ।

(३) रक्षाबन्धन :

आज का दिन राखी बाँधने की परम्परा वर्षों से चली आ रही है । बहन भाई के हाथ पर राखी बाँधती है । काठियावाड़ गुजरात में ज्यादा-ज्यादा तो पाँच-दस रुपयें की ज़री से मंडित राखी बाँधते हैं, परन्तु मारवाड़ में राखी का बहुत महत्त्व है । वहाँ सोने, चाँदी और हीरे की राखी बाँधते हैं । भाई राखी बँधवाये उसका क्या महत्त्व है यह आप जानते हैं ?

रक्षाबंधन का महत्त्व

❑ अभिमन्यु का प्रसंग :

महाभारत की एक घटना है कि यह राखी बाँधने की प्रथा कब से शुरू हुई । जब अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु युद्ध के लिए जाता है उस समय माता कुन्ता ने अभिमन्यु को अमर राखी बाँधी थी । अभिमन्यु जिस युद्ध के लिए जा रहा था, वह भयानक चक्रव्यूह का अटपटा युद्ध था । अभिमन्यु की आत्मा पूर्वजन्म में उसकी माता के गर्भ में था, उस समय उसके पिता को किसी कारण से या अपराध से श्रीकृष्ण ने मार डाला था । तत्पश्चात् उसके घर पुत्र का जन्म होता है । यह कुमार बड़ा होने पर एक बार गेंद और डंडे से खेल रहा था । तब एक बुढ़िया की छाती में गेंद लगती है, तब बुढ़िया ने कहा था कि - "बिना पितावाले ! इतना ज़ोर क्यों कर रहा है ?" यह वचन सुनकर लड़का काँप

- "क्या मैं बिना पितावाला हूँ ? जिसकी माता-व्यभिचारिणी होती है, उसे बिना पितावाला (यतीम-अनाथ) कहा जाता है । मेरी माँ सती है । घर आकर माता से पूछता है - "माताजी ! मेरे पिताजी कहाँ है ?" यह सुनकर माता की आँखों से सावन-भादों बरसने लगे । वह कुछ बोल नहीं सकती है । जब लड़का बहुत जिद्द करता है, तब कहती है कि - "बेटे ! हमारे राजा श्रीकृष्णजी बहुत न्यायी हैं, दयालु हैं, प्रजावत्सल हैं, परन्तु तुम्हारे पिताजी के साथ पूर्वजन्म का बैर हो या उनसे कोई अपराध हो गया हो - कुछ भी हो, परन्तु तुम जब गर्भ में थे, तब तुम्हारे पिताजी को श्रीकृष्ण ने मार डाला था ।" लड़के को सारी बात समझ में आ गयी । अब वह सतर्क हो गया । "बस, अब तो मैं उस श्रीकृष्ण को ढूँढकर मार डालुँगा । क्योंकि उसीने मेरे पिताजी को मार डाला है ।" माता ने कहा - "बेटे ! हमसे ऐसा नहीं हो सकता । वे तो महाराजा हैं ।" परन्तु यह लड़का तो किसी तरह मानता ही नहीं है । वह तो निकल गया घर के बाहर और पूछने लगा - "क्या तुमने कृष्ण कालिये को देखा है ? क्या तुम मुझे उस कालिये को दिखा सकते हो ?" ऐसा कहते हुए एक दिन उसे स्वयं श्रीकृष्ण भगवान मिलते हैं । वह लड़का श्रीकृष्ण को जानता नहीं था, इसलिए पूछता है - "भाई ! आपने श्रीकृष्ण कालिये को देखा है ?" श्रीकृष्ण ने पूछा - "भाई ! तुझे उनका क्या काम है ?" लड़के ने कहा - "उसने मेरे पिताजी को मार डाला है । मुझे अपने पिता की मौत का बदला लेना है ।"

इन लोगों का पूर्वजन्म से बैर चला आ रहा है । बैर महान कर्मबन्ध का क़ारण है । *'बेराणु बंधिणि महऽभयाणि ।'* अतः किसी के साथ बैर मत बाँधिएगा। पुराना बैर हो तो छोड़ दीजिए और खमत-खामण कर लीजिए । श्रीकृष्ण समझ गये कि जिस मनुष्य को मैंने मार डाला है उसीका यह लड़का होना चाहिए । कृष्ण ने पूछा - "भाई ! मैं तुझे श्रीकृष्ण कालिया दिखा सकता हूँ ।" "फिर तो आपका बहुत बड़ा उपकार होगा । परन्तु वह कृष्ण कितना बड़ा है ?" तब श्रीकृष्ण ने कहा - "श्रीकृष्ण तो तुम्हारे जितना ही है । देखने में रूपरंग में तुम्हारे जैसा ही है, परन्तु वह इस तरह पकड़ा जायेगा नहीं, इसलिए उसे पकड़कर एक पिटारे में डाल देना है । मैं एक पिटारा बनाकर लाता हूँ ।" और कृष्ण सात ढक्कनोंवाली एक चाँदी का पिटारा ले आते हैं और कहते है - "भाई ! तुम इस पिटार में लम्बा होकर सो जा, जिससे श्रीकृष्ण का नाप निकल जाय ।" "कृष्ण सो जाय उतना न ?" यह बेचारा बालक तो पिटारे में सो गया और श्रीकृष्ण ने पिटारा बन्द कर दिया । फिर उसे उठाकर अपने अन्तःपुर में ले आये ।

सत्यभामा पटरानी के महल में पिटारा लाकर रखा गया और सत्यभामा से कहा कि - "इस पिटारे को कोई खोलना नहीं ।" परन्तु जब किसी वस्तु को

खोलने का मना किया जाता है, तब उसे खोलने का बहुत मन होता है । इतनी सुन्दर चाँदी का पिटारा ! अन्दर से सुगन्ध महक रही है । अन्दर क्या होगा ? यह देखने की कृष्ण की पटरानियों को बहुत जल्दी थी । सत्यभामा ने रुक्मिणी से कहा - "बहन ! तुम पिटारा खोलो," तो रुक्मिणी ने कहा - "स्वामीनाथ की आज्ञा के बिना हम नहीं खोल सकती ।" परन्तु हृदय तो वहीं है । सास सब जगहों पर ताले लगाये तो बहू की अधीरता बढ़ जाती है और मौका ढूँढती है कि कब सास बाहर जाय और चाभी का गड्ढ हाथ में आ जाय तो सब देख लूँ, परन्तु अगर सास ताले न लगाये तो बहू को अविश्वास नहीं आयेगा । यहाँ श्रीकृष्ण ने पिटारा न खोलने को कहा था, परन्तु आत्मा मान नहीं रही थी । इतने में कृष्ण की बहन सुभद्रा आती है, तब सभी भाभियाँ इकट्ठी होकर कहती हैं - "ननदजी ! आप आये तो अच्छा हुआ । आप के भाई आज यह नयी चीज़ लाये हैं । इस पिटारे में क्या है यह देखने का मन तो बहुत करता है, परन्तु आप के भाई ने खोलने का मना किया है, मगर आप खोलेंगे तो आप के भाई आप पर गुस्से नहीं होंगे । अतः आप पिटारा खोलिए ।" सभी भाभियों ने सुभद्रा को उत्तेजित कर सजाया । सुभद्रा ने पिटारा खोला - सात ढक्कन खोले, कि भीतर से साक्षात् कामदेव स्वरूप छोटे बच्चे का शरीर है । यह देखकर सुभद्रा को बहुत दुःख हुआ । उस पिटारे में जिस बच्चे का मृतशव पड़ा है, उसका प्राण सुभद्रा के गर्भ में आकर पैदा हो गया है । उस महाभारत की कथानुसार सुभद्रा के गर्भ में स्थित जीव उस लड़के की आत्मा थी । उसे कृष्ण के साथ गहरा बैर बँधा है । जब उसका जन्म नहीं हो रहा था और गर्भवती सुभद्रा आकुल-व्याकुल हो रही थी तब बहन को शांत करने के लिए चक्र-व्यूह के भयानक युद्ध की कहानी सुनाते हैं । उनकी धारणा अनुसार ऐसा कहा जाता है कि भीतर गर्भ में रहा जीव यह सब सुनता है । वह जीव शांत होने पर सुभद्रा को नींद आ जाती है । चक्रव्यूह के छः कोठे कैसे तोड़े जा सकते हैं और कैसे जीता जा सकता है, यह सारी बात कह सुनायी । बहन 'हाँ' भरती नहीं हैं, तब श्रीकृष्ण ने पूछा - "बहन नींद आ रही है ?" तब भीतर रहा जीव कह उठा - "मामा ! मैं जाग रहा हूँ, आप सुनाइए ।" तभी कृष्ण समझ गये कि अवश्य यह मेरा दुश्मन जीव लगता है । अतः चक्रव्यूह की बात बन्दकर दी । एक मात्र सातवाँ कोठा शेष था - यह बात न सुनायी । यह सब होने के बाद सुभद्रा पुत्र को जन्म देती है और वही अभिमन्यु के नाम से प्रसिद्ध होता है ।

यह अभिमन्यु बड़ा होता है तब उसका विवाह उत्तरा के साथ किया जाता है । श्रीकृष्ण मायाजाल रचता है । विवाह के समय अभिमन्यु से कहते हैं कि-

''बेटे ! हमारे कुल में ऐसा रिवाज है कि विवाह करते समय आँखों पर पट्टी बाँधनी पड़ती है ।'' इससे उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह पट्टी बाँधकर किया गया । जिस के कारण परस्पर एक-दूसरे का मुँह देख न सके । उस जमाने में कन्या विवाह के उपरान्त साथ में नहीं आती थी, बल्कि बाद में भेजते थे । उत्तरा और अभिमन्यु के विवाह के बाद कुछ ही समय में इस सात चक्रव्यूह की दुंदुभी बजती है । तब अभिमन्यु चक्रव्यूह की लड़ाई का बीड़ा उठाता है । माता कुंता, अर्जुन और कृष्ण की बहन सुभद्रा को पता चला कि मेरे लाड़ले ने युद्ध का बीड़ा उठाया है, तब आँखों से आंसू बहाती है, वैसे बेटे को छाती से लगाकर कहती है - ''बेटे ! तुमने युद्ध का बीड़ा किसलिए स्वीकारा है ? तुम्हारा तो कल ही विवाह हुआ है, जिस कन्या का हाथ पकड़ा (थामा) है, उसे तो देखा तक नहीं है और चक्रव्यूह का युद्ध तो साक्षात् मृत्यु का मुख है । बेटे ! तुमने यह क्या किया ?'' माता चीख-चीखकर रोती हैं, परन्तु यह क्षत्रिय का बेटा ऐसा-वैसा नहीं था । उसने तो बीड़ा उठाया था, तो उसे पूरा ही करना था । अब अवश्य ही युद्ध में जाना है । इस तरफ उत्तरा को सन्देशा भेजा जाता है कि 'उत्तरा को जल्दी भेज दीजिए । अभिमन्यु युद्ध के लिए जा रहा है ।' उत्तरा को लेने के लिए साँड़णी भेजते है ।

दूसरी ओर उत्तरा सोयी है । वह नींद से अचानक उठ जाती है और अपनी माता से कहती है - ''माता ! मुझे भयानक अनिष्टसूचक सपने आ रहे हैं । मेरी चुनरियाँ काली पड़ गयी है । सपने में मैंने देखा कि मेरी चुड़ियाँ नष्ट हो गयी ।'' (पति मर गया ।) उत्तरा बहुत रोती है । उसकी माता उसे आश्वासन देती है - ''बेटी ! तुम्हारा बाल भी-बाँका नहीं होगा, तुम रो मत । सपने कभी सच नहीं होते ।'' सुबह होते ही उत्तरा के ससुराल से उसे लेने आये कि - ''उत्तरा को जल्दी भेजिए । अभिमन्यु युद्ध में जानेवाले हैं ।' यह उत्तरा तीव्र गतिवाली साँड़णी पर बैठकर ससुराल आती है । उससे पहले श्रीकृष्ण के मन में यह विचार आया कि अगर उत्तरा जल्दी आ जायेगी तो फिर अभिमन्यु उसके मोह में पड़कर युद्ध में जायेगा नहीं और उन्होंने बीच में ही साँड़णी के पैर में खूँटा घुसेड दिया । साँड़णी के पंगु (लँगड़ी) हो जाने पर धीरे-धीरे चलती है और जिस दिन उत्तरा पहुँचनेवाली है उसी दिन अभिमन्यु युद्ध के लिए निकल पड़ता है । अभिमन्यु का रथ और उत्तरा की साँड़णी दोनों गाँव से बाहर आमने-सामने मिल जाते हैं । दोनों की नज़र परस्पर एक हो जाती है । तब अभिमन्यु सोचता है कि - 'अहो ! धन्य है इस स्त्री के पति को ! कि जो ऐसी देवीरूप स्त्री का पति बना है ।' यहाँ उत्तरा भी यही सोचती है कि - 'धन्य है इस पुरुष की स्त्री को कि जो उसकी पत्नी होगी । सचमुच ही बड़ी भाग्यशाली है । परम सौभाग्यवती है कि जिसे ऐसा कामदेव जैसा पति मिला है ।' ये दोनों एक-दूसरे को पहचानते नहीं है ।

कुछ भी हो मगर अभिमन्यु है तो श्रीकृष्ण का भानजा न ! भानजे का वंश भी रखना है । फिर श्रीकृष्ण यह भी जानते हैं कि एक बार यह क्षत्रिय का बच्चा युद्ध में निकल गया तो पीठ दिखाकर आये ऐसा नहीं है । इसलिए गाँव के बाहर पड़ाव डालकर वहीं उत्तरा और अभिमन्यु को छ महीने तक रखते हैं । उत्तरा का सौन्दर्य देखकर अभिमन्यु मुग्ध हो जाता है । परन्तु अभिमन्यु है तो शूरवीर न ! उत्तरा वहाँ गर्भ धारण तो करती है । अब अभिमन्यु को युद्ध में जाने का समय हो गया है । उस सुनहरे सपनों से सजी उत्तरा को छोड़कर अभिमन्यु युद्ध में जा रहा है । उस समय दादीजी कुंतामाता अपने लाड़ले बालपुत्र (पौत्र) अभिमन्यु को आशीर्वाद देती हुई कहती है – ''मेरे प्राणप्रिय लाड़ले पुत्र ! तुम इस नवोढ़ा (पत्नी) को सुनहरे सपने दिखाकर छोड़कर जा रहे हो, तो जल्दी से विजय प्राप्त कर आ जाना । इस युद्ध में दुश्मन तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे ! तुम दीर्घायु हो, अमर रहो, इसलिए यह राखी तुझे बाँध रही हूँ । बेटे ! तुम उसे संभालना।

''कुंता अभिमन्यु को बाँधे अमर राखी,
मेरे लाड़ले बाल-कुमार जल्दी आ जाना घर... कुंता...।''

हे लाड़ले पुत्र ! तुम जल्दी से आ जाना । तुम्हारी माता सुभद्रा चीख-चीखकर रो रही है ।'' कहती हुई कुंता बार-बार आशीर्वाद देती हुई अभिमन्यु के हाथ में अमर राखी बाँधती है । अभिमन्यु अब युद्ध में जाता है । माता कुंता की राखी के कारण अभिमन्यु कहीं फँसता नहीं है । क्षत्रिय का बेटा पूरी बहादुरी से लड़ता है । तब श्रीकृष्ण को लगा कि – 'अहो ! उसके हाथ में जबतक माता कुंता की राखी होगी तबतक अभिमन्यु का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा । क्योंकि उस राखी को बाँधनेवाली कुंतामाता एक पवित्र सती नारी है । अतः अभिमन्यु के पास आकर कहने लगे – ''बेटे ! हम तो क्षत्रिय के बेटे हैं । हमारे हाथों में यह डोरे-धागे अच्छे नहीं लगते । उसे निकाल दे ।'' अभिमन्यु ने कहा – ''मामा ! मैं ऐसे डोरे-धागे को मानता नहीं हूँ, परन्तु यह तो मेरे वृद्ध माता कुंताजी ने हृदय के स्नेह से यह धागा बाँधा है, भला मैं इसे कैसे तोड़ सकता हूँ ?'' तब कृष्ण ने कहा-''फिर ऐसा करो, तुम्हारी तलवार के साथ उसे बाँध डालो ।'' अभिमन्यु ने राखी को तलवार पर बाँध दी । तब श्रीकृष्ण ने माया रचकर चुहे का रूप लिया और धागे को तोड़ डाला । इस तलवार पर बँधी राखी कट गयी । 'अवश्य ही अब मेरे आयुष्य का धागा भी टूट जायेगा । अभी तक मैंने विजय पाया है, परन्तु अब क्या होगा ?' छ-छ विषय चक्रव्यूह के कोठे में अभिमन्यु जीत गया, मगर चक्रव्यूह के सातवें कोठे में उसकी मृत्यु हो गयी ।

देवानुप्रियों ! अभिमन्यु युद्ध में गया तब से राखी बाँधने का रिवाज शुरू हुआ है, ऐसा ग्रंथकार कहते हैं । आप को राखी बँधवाते समय यह सोचना कि इस बधन की रक्षा मुझे किस प्रकार से करनी है ? अनेक बहनें अपने भाई न होने के कारण रोती-बिलखती देखी होगी । आप भी ऐसी बहन के भाई बनना । आपने जिसके साथ पंचायत (समाज) के सामने विवाह किया है, वह आपकी पत्नी है, इसके अतिरिक्त संसार की सारी स्त्रियाँ अगर आप से बड़े हैं तो माता समान और छोटी हैं तो बहन समान है । यह समझकर व्यवहार चलाना कि जिससे कोई बहन भाई के बिना तड़पती न रहे !

आज भी बहन अपना भाई न होने से रोती देखी होगी, मगर कभी ऐसा देखा कि कोई भाई बहन के बिना रोता हो ! बहन को अपने भाई पर अपार स्नेह होता है ! बहन को ठेस लगे तब भी यही कहती है - 'बहुत जीयो मेरे भाई !' समाज में कुछ ऐसे भी वीर भाई जन्म ले चुके हैं, जिन्होंने अपनी सगी तो ठीक बल्कि धर्म की बहन के लिए भी अपना सब कुछ न्योछावर किया है । जूनागढ़ के रा'नवघण की कहानी भी ऐसे ही भाई-बहन के स्नेह की कहानी है ।

रा'नवघण का प्रसंग

रा'नवघण जूनागढ़ का राजपुत्र था । यहाँ उपस्थित अनेक भाई-बहन सौराष्ट्र के रहनेवाले होंगे । यह नवघण सौराष्ट्र का कैसा वीर था, उसका जन्म कैसे हुआ, उसका नाम नवघण क्यों रखा गया और किस-के घर में पला आदि बातें जानने जैसी हैं ।

जूनागढ़ की गद्दी पर राध्यास नामक राजा शासन करता था । उसका दूसरा नाम था महिपाल । देखिए, कितना सुन्दर नाम है ? - महि + पाल । महि अर्थात् पृथ्वी । जो पृथ्वी का पालन करे उसका नाम है महिपाल । इस राजा की तीन रानियाँ थी । एक का नाम सोनलदेवी और दूसरी का नाम सोलंकीरानी । ये दोनों प्रमुख रानियाँ थी । वैसे तो महिपाल सारी रानियों पर समान प्रेम रखता था, परन्तु सोनलरानी बहुत पवित्र थी और राजा की सेवा में हमेशा तत्पर रहती थी, उसकी बुद्धि भी तीव्र थी । इस प्रकार सेवा और बुद्धि में सोनलदेवी श्रेष्ठ थी, इसलिए महिपाल राजा को उसके प्रति अधिक प्रेम था । उस पर राजा के चारों हाथ थे । एक नियम यह भी है जिस में विनय, नम्रता, सेवा का गुण होता है उसके प्रति सामनेवाली व्यक्ति को सामान्य रूप से आकर्षण होता है । कमल में सुगन्ध होती है, तो भ्रमर विन-वुलाये ही उसके पास दौड़ जाता है, कमल भ्रमर को वुलाने नहीं जाता । उसी प्रकार गुणवान मनुष्य को किसी को अपने पास वुलाना नहीं पड़ता, वल्कि अपने-आप सामनेवाला व्यक्ति उसके गुणों से

को प्रेरणा दी । माता की बात सुनकर अनंगपाल के क्रोध की कोई सीमा न रही । वह कह उठा - ''यह तो हमारे सामने एक छोटा-सा बच्चा है, महिपाल अपने आप-को क्या समझता है ? उसे मैं दिखा दुँगा । उसने मेरी माता का अपमान किया है । मैं इसका बदला अवश्य लुँगा'' और उसने बड़ा सैन्य तैयार किया और बिना किसी सूचना के अचानक जूनागढ़ पर हमला कर दिया ।

मनुष्य तो यदि खतरे का पता हो तो सावधान रह सकता है, मगर यह तो अचानक हमला हुआ । महिपाल को जब यह पता चला कि अनंगपाल प्रबल सेना के साथ जूनागढ़ पर युद्ध करने आया है, तो तुरन्त महिपाल सैन्य को तैयार कर शस्त्रों से सज्ज कर दिया और युद्ध शुरू किया । अनंगपाल का सैन्य विशाल था । कुछ दिनों तक हिम्मत से लड़े, मगर अपनी सारी सेना युद्ध में खत्म हो गयी तब जीवन का मोह छोड़कर महिपालराजा युद्ध में शहीद हो गये । अनंगपाल ने जूनागढ़ पर कब्जा कर लिया । अपने पति की मृत्यु के समाचार सुनकर तीनों रानियों ने अपने शील की रक्षा हेतु प्राण त्याग दिया । अगर जीने का मोह करे तो मुस्लिम राजा उसका शील लूट ले, इसलिए तीनों मरने के लिए तैयार हो गयी । तब सोनलरानी ने विचार किया कि पति तो परलोक चले गये है और हमे भी उनके पीछे मरने जा रहे हैं, परन्तु अगर यह नवघण जिन्दा होगा तो किसी दिन अपने पिता का राज्य वापस जीत लेगा और पिता की मौत का बदल भी लेगा । यह सोचकर अपनी वफादार दासी को बुलाकर पुत्र नवघण को सोंपकर सिफ़ारिश की और अग्नि स्नान किया ।

दासी बहुत वफादार थी, उसे लगा कि 'राजपुत्र नवघण को लेकर जूनागढ़ से चला जाना और उसकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है ।' काम बड़ा कठिन था, फिर भी हिम्मत कर अपने भविष्य के राजा को बचाने के लिए उसे टोकरी में डालकर तहखाने में से छिपकर जूनागढ के द्वार से बाहर निकल गयी । अनंतपाल का सख्त हुक्म था कि 'महिपालराजा का एक भी वारिश (वंशज) जिन्दा नहीं रहना चाहिए ।' दासी छ महीने के नवघण को टोकरी में डालकर छुपती-छुपती चल निकली । इस तरफ राजा के सेवक महिपाल राजा के कुमार को ढूँढने लगे । मगर उसका पता चला नहीं । दासी सोचने लगी कि 'अब मैं कुमार को लेकर कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, किसे सौंपुँ कि जिससे उसकी सलामती रहे,' इसकी चिन्ता करती हुई जान हथेली पर लेकर आगे चली जा रही थी । चलते-चलते गीर के पास अलीदार वोडीदार नामक गाँव में आयी । इस गाँव में देवायत नामक एक अहीर रहता था । आसपास के गाँव में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी । दासी ने विचार किया कि 'इस गाँव का मुखिया देवायत अहिर अच्छा व्यक्ति है, इसलिए

उसे सौंप दुँ । वही कुमार की रक्षा करेंगे' और वह दासी देवायत अहीर के घर आयी । देवायत को कोने में ले जाकर कहा - ''भाई ! यह जूनागढ़ की गद्दी का वारिस - नवघणकुमार है । उसे जान जोखिम में डालकर मृत्यु से खेलकर आप के यहाँ लायी हूँ । तुम्हें उसकी रत्न की तरह रक्षा करनी है ।''

'अपने राजा का कुमार सलामत है और अपने यहाँ उसका पालन-पोषण करना है ।' जानके अहीर को बहुत खुशी हुई । ''बहन ! आप चिन्ता न करे । उसे सँभालना अब मेरी जिम्मेदारी है । मैं अपने प्राण देकर भी उसकी रक्षा करूँगा । अगर राज्य का बीज (वारिस) सलामत होगा तो भविष्य में हमें मुस्लिम राजा-बादशाह के सिकंजे से बचायेगा । तुम यहाँ से चली जाओ । तुम्हें कोई देख लेगा तो मुसीबत हो जायेगी ।'' देवायत ने अपनी पत्नी को भी इस बात से ज्ञात किया । उस अहीर की पत्नी भी समझकार थी । समझदार मनुष्य ही ऐसा गुप्त कार्य कर सकते हैं । देवायत को अपनी एक पुत्री और पुत्र था । पुत्र का नाम था उगा और पुत्री का नाम था जाहल । उगा ढ़ाई वर्ष का था और जाहल छ महीने की थी, अतः नवघण और जाहल दोनों समान उम्र के थे । जाहल की माता जाहल को दूधपान कराती थी । बाद में दूधपान बन्दकर नवघण को कराने लगी । अपनी पुत्री को बाहर का दूध पिलाने लगी । इकलौती पुत्री को दूधपान कराना छोड़कर नवघणकुमार को वह प्रेम से दूधपान कराती है । परन्तु कैसा भी है, मगर है तो नवघण राजकुमार न ! बचपन से ही उसकी शूरवीरता नज़र आने लगी थी । नवघण जब दो साल का था, तब खेलने के लिए मैदान जाते समय लकड़े की तलवार बनाकर दूसरे लड़कों के साथ 'मैं राजा हूँ, मैं जीता हूँ' ऐसे खेल खेलता था । देवायत ने उसे पढ़ाने के लिए एक वृद्ध और समझदार ब्राह्मण को रखा । उसके साथ उगा और जाहल भी पढ़ाई करने लगे । उसमें नवघण की बुद्धि तो कुछ और ही थी । गुरु जितना उसे सिखाते नवघण वह सबकुछ तत्काल याद कर लेता । पुनः रटने की उसे आवश्यकता न रहती । नवघण, उगा और जाहल तीनों सगे भाई-बहन की तरह साथ-साथ रहते थे, परन्तु फिर भी नवघण तो कभी छुप सके ऐसा नहीं था । कहते हैं न कि **'कर्म छुपे न भभूत लगाये ।'**

नवघण को अहीर के ग्रामीण कपड़े पहनाये जाते, तब भी उसके ललाट से उसका राजकुमार होना स्पष्ट हो जाता था । बादल में चन्द्र और सूर्य छिपते नहीं हैं, उसी प्रकार यह नवघणकुमार भी छुपा रहता नहीं है । बड़ा होने पर वह जंगल में शिकार करने जाने लगा । जंगल में जाता तब सिंह देखकर उसके साथ युद्ध करता । आज तक गुप्त रखा रत्न अब प्रकाश में आने लगा और देवायत को चिन्ता होने लगी । नवघण को घर में गुप्त रखने जाते हैं, परन्तु नवघण को घर में बैठे रहना अच्छा नहीं लगता । उसे तो घोड़े पर बैठना है, जंगल में जाकर
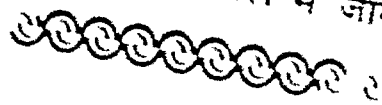
सिंह का शिकार आदि साहस से भरी जिज्ञासाएँ उसमें बढ़ने लगी । कभी-कभी देवायत से नज़र बचाकर अकेला ही जंगल में चला जाता । एकाध वाघ-सिंह से भेंट हो जाती तो उसे मार डालकर आता था । इस प्रकार नवघण देवायत के घर पर लाड़-प्यार से पल रहा है । देवायत को अपने राजा की रक्षा करने का मौका मिला, इससे उसे बहुत खुशी हैं, परन्तु अनंगपाल राजा को इस बात का पता न चले इसकी चिन्ता रहती है ।

❑ देवायत की कसौटी :

देवायत नवघण की रक्षा करता है । एक बार अपने भाई से देवायत का झगड़ा हो गया । देवायत वैसे तो ऐसे मामले का विरोधी था, परन्तु उसका भाई स्वार्थी था । जबकि देवायत परोपकारी, शांत, समझदार और विचारशील था और उसका भाई क्रोधी, छिछला और अविचारी कार्य करनेवाला था । एक ही माता के उदर में पले हो, एक ही माता का दूध पीकर बड़े हुए हो, फिर भी इतना अधिक फ़र्क ।

''एक बाप के दो पुत्र, गुण में होय तब भी भेद ।
उदर में अमृत जीवन, मृत्यु प्रकट हुआ विष ॥''

एक बाप के दो बेटो हो, मगर उनके गुणों में आसमान-ज़मीन का फ़र्क होता है । अमृत मनुष्यजीवन देता है, जबकि विष जीवन का नाश करनेवाला है । उसी प्रकार एक ओर देवायत राजा का रक्षक बना है, तब दूसरी ओर उसीका भाई राजा का भक्षक बनने के लिए तैयार हुआ है ।

बन्धुओं ! ईर्ष्या की अग्नि और अविचारी कार्य कैसे अनर्थ रचना है ? देवायत के साथ झगड़ा होने से उसका भाई क्रोधाग्नि से जलने लगा और देवायत को नष्ट करने और स्वयं को सुखी करने के लिए उपाय खोजने लगा । अनेक विचारों के बाद उसे एक उपाय सुझा कि 'देवायत ने महिपालराजा के कुमार को घर में रखा है, यह बात अनंगपाल से कह दुँ । जिससे देवायत का नाश होगा और मेरा काम होगा ।' ऐसा सोचकर देवायत का भाई जूनागढ गया और किसी भी तरह अनंगपाल से मिलकर कहा - ''महाराज ! आप अन्धेरे में अभी तक बैठे रहे हैं ? मैं आपका हितैषी हूँ । आप का हित चाहकर आप को एक समाचार देने आया हूँ ।'' राजा ने पूछा - ''बोलिए भाई ! क्या समाचार लाये हो ?'' तब उसने बताया कि - ''आप के शत्रु महिपालराजा का पुत्र नवघणकुमार बड़ा हो गया है और अलीदार वोडीदार का मुखिया देवायत अहीर जो मेरा सगा भाई है, उसके घर पर गुप्त रूप में पल रहा है ।''

जूनागढ़ का राजा तो महिपाल की पीढ़ी का एक बच्चा भी जीवित न रहे इसका ध्यान रखता था । उसे जब पता चलता कि दुश्मन यहाँ है तो उसे अथक

परिश्रम से ढूँढकर भी उसका नाश कर देता था । अब जब उसे यह सूचना मिली कि दुश्मन का पुत्र अपनी ही सीमा में पल रहा है, तो फिर तो क्या कहना ? राजा ने कहा - ''मैं तो मानता था कि वह लड़का मर चुका है, परन्तु वह तो ज़िन्दा है ।'' आ रहे रोग और बढ़ते शत्रु - दोनों का जल्दी से ही नाश करना चाहिए । राजा के क्रोध का ठिकाना न रहा । वह सैनिकों को लेकर सीधा गया देवायत के घर पर । देवायत को पता चल चुका था कि मेरे भाई ने जूनागढ़ पहुँचकर राजा को नवघण के समाचार दे दिये हैं । बुद्धिमान मनुष्य तत्काल समझ जाते हैं, इसलिए देवायत ने नवघण को छूपा दिया था । राजा ने गरजकर कहा - ''देवायत ! मुझे पता चला है कि तुम्हारे घर में नवघणकुमार रहता है ।'' देवायत ने कहा - ''माई-बाप ! मैं आप के दुश्मन को अपने घर में कैसे रख सकता हूँ ? वह तो हमारा दुश्मन है । जो दुश्मन को पनाह देता है, वह राजद्रोही माना जाता है । मुझे अपने जीवन को जोखिम में डालकर दुश्मन को अपने घर में रखने की भला क्या आवश्यकता ?'' राजा ने कहा - ''तुम झूठ बोल रहे हो । नवघण तुम्हारे ही घर में है । मुझे जल्दी से सौंप दे ।'' तब देवायत ने कहा - ''महाराज ! जब वह मेरे घर में है ही नहीं तो कहाँ से दूँ ?'' राजा ने लालच देते हुए कहा - ''देवायत ! अगर तुम मुझे नवघणकुमार को देगा तो यह सारी जागीर तुझे दे दुँगा । इस गीर प्रांत में तुम्हारी सत्ता रहेगी । तुम कहोगे वही होगा और राज्य में तुम्हारा सम्मान बढ़ेगा और अगर तुझे इतने से भी सन्तोष न हो तो तुम जो चाहोगे यह देने कि लिए मैं तैयार हूँ । मगर तुम अपनी जिद्द छोड़ दो और इन चीजों का मालिक बन जा । शायद तुम यदि उसे बड़े कर भी लोगे तब भी उसकी ताक़त नहीं कि जूनागढ़ का राज्य ले सके । तुम्हारी पत्नी और लड़के की ज़िन्दगी ज़ोखिम में है । तुम्हें भयानक दुःख सहने पड़ेंगे ।'' राजा की लालच और धमकी का देवायत पर कोई असर नहीं हुआ । उसने कह दिया - ''महाराज ! यह गीर तो क्या, जूनागढ़ का राज्य भी दे दो मगर जब कुमार मेरे घर में है ही नहीं, तो कहाँ से दुँ ?'' राजा को इससे क्रोध आया और उस पर राजद्रोह का आरोप (दोष) लगाकर क़ैदकर जूनागढ़ में ले जाया गया और क़ैदी के रूप में क़ैदखाने में रखा गया ।

☐ रा'नवघण की रक्षा में देवायत के पैर में घुसाया गया शस्त्र :

अब क़ैदखाने में रोज़ राजा आकर देवायत से नवघण के बारे में पूछता और देवायत उसे कुछ नहीं बताता था । इससे राजा गुस्से होकर उसकी पीठ पर कोड़े मारकर नमक छिड़कवाता था । इस प्रकार देवायत को रोज़ मारा जाता था और कठोर परिश्रम करवाता था । उसकी पीठ से लहू के छींटे उड़ते थे । जैसे जैसे समय बीतता जा रहा था, राजा अधिक कठोर बनता जाता था और देवायत को अधिक

से अधिक कष्ट देता था । फिर भी देवायत मानने को तैयार नहीं है । रोज़ रोज़ के मार से शरीर में असह्य पीड़ा होने लगी है । अपने प्राण बचे न बचे उसकी परवा नहीं है, मगर नवघण को बचाने की ही उन्हें चिन्ता है । अन्त में राजा ने देवायत के पैरों पर शस्त्र रखकर निशान बनाये । अहाहा... शस्त्र से पैरों पर निशान बनाकर हडियाँ बैध डाली, तब कैसी पीड़ा हुई होगी ! परोपकारी पुरुष प्राणान्त में भी अपनी परोपकार की भावना छोड़ते नहीं है । देवायत को पैरों में शस्त्र लगने से असह्य पीड़ा हो रही है, इसलिए उसने राजा से कहा - ''आप मुझ इतना कष्ट मत दीजिए । मुझ से अब दुःख सहा नहीं जाता । मैं आप को नवघण मँगवा देता हूँ ।''

राजा को आनन्द हुआ । देवायत ने दुःख से पीड़ित होकर यह शब्द नहीं कहे थे, परन्तु नवघण को बचाने के लिए एक उपाय खोजा था । देवायत ने अपनी पत्नी पर एक पत्र लिखा था । यह पत्र लेकर राजा के सेवक देवायत के घर पर गये । देवायत ने पत्र में लिखा था कि ''मुझसे यहाँ दुःख सहा नहीं जाता, इसलिए तुम **'रा' को रखकर बात करना और नवघण को यहाँ जल्दी भेज देना ।"** उसका पत्र पढ़नेवाले यही समझे कि नवघण को भेजने को कहा है, परन्तु उसका गूढ़ार्थ कोई समझ सका नहीं । परन्तु पति के पत्र पढ़कर चतुर स्त्री समझ गयी । उसने नवघण को छुपा दिया और अपने पुत्र उगा को भीतर ले गयी । राजा के सेवकों से उसने कहा - ''मैं कुछ ही देर में नवघण आपको सौंप देती हूँ । मेरे पति जेल में इतने दुःख सहते हो, वहाँ राजकुमार की रक्षा कैसे करूँ ?'' ऐसा कहकर अपने इकलौते - प्राण-प्यारे पुत्र उगा को छाती से लगाकर कहा - ''बेटे ! आज तुम्हें बलिदान देने के लिए जाना है । तुम्हारे पिता की चिठ्ठी आयी है । तुम जाओगे न ?'' तब उगा ने हर्ष से कहा - ''माता ! तुम चिन्ता मत करों । मैं जाने के लिए तैयार हूँ ।''

"उगा उगारने हेतु माँ रखना मन में आश,
जाते प्रभु के पास में, आनन्द बाजे उर में ।"

''बेटे ! तुम जीवन की आशा छोड़कर अपनी मर्ज़ी से जाने के लिए तैयार हुआ है न ? तुम्हारे हृदय में दुःख तो नहीं है न ?'' माता के इस प्रश्न को सुनकर उगा उत्तर देता है - । सुनिए -

'''रा' का रखनेवाले, जग में जश बहुत बढ़ेगा,
धैर्य को मन में धारण कर, उगा तुझ पेट उगा ।"

❑ प्राण का बलिदान देता शूरवीर उगा :

पुत्र के वचन सुनकर माता के हृदय में अपार खुशी हुई । परन्तु फिर भी पुत्र को मृत्यु के मुख में भेजने का दुःख भी है, ''हे बेटे उगा ! धन्य है तुझे ! यहाँ आ और अपनी इस अभागी माँ को एक बार भेंट ले । तुम्हारे जैसे शूरवीर पुत्र को आज जान-बुझकर मृत्यु के मुख में भेज रही हूँ, परन्तु दूसरा कोई उपाय भी नहीं है । अभी हमारा यही धर्म है कि अपने प्राणों का बलिदान देकर भी राजा की रक्षा करना ।'' और माता रो पड़ी । तब उगा ने कहा - ''माता ! तुम्हारे जैसी शूरवीर क्षत्राणी की आँखों में आंसू अच्छे नहीं लगते । माता ! तुम्हारा दूध पिया है, उसे प्रकाशित करने जा रहा हूँ । राजा को उबारने के लिए एक उगा तो क्या ऐसे हज़ारों उगों का बलिदान करना पड़े तो भी तैयार रहना चाहिए । मैं जिन्दा रहकर भी क्या कर सकनेवाला हूँ । राजा जिन्दा रहेंगे तो प्रजा का पालन करेंगे । मुस्लिम बादशाह के हाथों से हमारा राज्य छुडायेंगे । ऐसे राजा के लिए जो भी करना पड़ेगा उसके लिए मैं तैयार हूँ । मुझे उसका आनन्द है । तुम जरा भी चिन्ता मत करो ।'' उगा के शब्द सुनकर माता ने पुत्र को सीने से लगा लिया और कह उठी - ''शाबाश बेटे शाबाश ! तुम्हारी हिम्मत देखकर मैं खुश हुई हूँ । अब तुम जल्दी जाओ और अपने पिताजी की आज्ञा का पालन करो ।''

इतना कहकर माता ने उगा को राजकुमार के कपड़े पहनाकर देवायत की स्त्री अर्थात् सौराष्ट्र की सती देवी ने नवघण के रूप में हँसते मुख से बेटे को विदा करते हुए कहा - ''नवघण ! राजा के सेवक तुम्हें लेने के लिए आये हैं । तुम्हें नहीं भेजुँगी तो हम निरपराधी मर जायेंगे । तुम्हारी रक्षा करते हुए मेरे पति को जेल में जाना पड़ा है । पैरों को शस्त्र से बेधना पड़ा । हम कबतक सहेंगे ?'' तब उगा ने कहा - ''माताजी ! आपने मुझे रखा इसलिए आपका महान उपकार है । मेरी माता होती तो मुझे मरने देती क्या ? आपको दुःखी करके मुझे जीना नहीं है । मैं जाता हूँ ।'' ऐसा कहकर उगा हँसते मुख से राजा के सेवकों के साथ चल निकला । देवायत की पत्नी ने भी यह अपना पुत्र नहीं, परन्तु नवघण है, ऐसा राजा के सेवकों को यकीन दिलाने के लिए ये शब्द कहे । आनेवाले सेवकों को भी यकीन हो गया कि यही नवघणकुमार ही है ।

नवघण के रूप में उगा को लेकर सेवक जूनागढ़ पहुँच गये । देवायत को समाचार मिला कि राजा के सेवक रा'नवघण को लेकर आ गये हैं । यह सुनकर देवायत के मन में शंका होने लगी 'कि - मेरी पत्नी स्त्री जाति है, इकलौता पुत्र है, इसलिए कहीं पुत्र-मोह में फँसकर नवघण को तो नहीं भेजा होगा न ? यदि ऐसा हुआ तो मेरी सारी मेहनत व्यर्थ जायेगी ।' दूसरे क्षण विचार आया कि 'नहीं-

नहीं, मेरी पत्नी पुत्र के मिथ्या-मोह में फँस जाय ऐसी नहीं है, सच्ची क्षत्राणी है । पुत्र-प्रेम को तिलांजलि देकर उसने अवश्य ही उगा को भेजा होगा ।' कुछ देर में राजा ने देवायत को भरीसभा में बुलवाया । वहाँ नवघण के स्वांग में अपने पुत्र को देखकर देवायत को खुशी हुई । पिता-पुत्र की दृष्टि मिली । दोनों ने नेत्रों द्वारा बात कर खुशी व्यक्त की । देवायत के मुख पर आनन्द की रेखा मानो स्पष्ट दिखायी दे रही थी ! राजा ने पूछा - "यह नवघण ही है न ?" देवायत ने कहा - "हाँ, यह नवघण ही है ।" तत्काल राजा ने क्रोध से दाँत पीसकर तलवार के एक प्रहार से नवघण के रूप में खड़े उगा का सिर धड़ से अलग कर दिया । अपनी नज़र के सामने अपने पुत्र का खून देखकर भी देवायत ने मुख पर ज़रा भी ग्लानि न आने देना और ज़रा भी धक्का न आने देना कोई साधारण बात नहीं है । राजा के सेवक देवायत के सामने नज़र गड़ाकर बैठे थे । अगर ज़रा-सा भी दुःख (धक्का) देख ले तो पकड़ सकते हैं । देवायत की नज़र के सामने उगा का मस्तक धड़ से अलग कर राजा मन में खुश होने लगा कि - 'हाश ! दुश्मन का बेटा मारा गया । अब मुझे किसी का डर नहीं है ।'

❑ ईर्ष्या का परिणाम :

देवायत का भाई बहुत ईर्ष्यालु था । इतना करने पर भी अपना बैर पूर्ण न होने पर उसने राजा से कहा - "देवायत की पत्नी अर्थात् मेरी भाभी आकर तलवार की नोक से अपने हाथों से नवघण की आँख का रत्न (तारा) बाहर निकाल कर आँख में सूरमा लगाकर पैरों में जूते पहनकर नवघण की आँखें पाँव के नीचे रखकर रौंदे तो समझना कि यही नवघण है । अगर वह ऐसा न करे तो वह देवायत का पुत्र है ऐसा समझ लीजिएगा ।" तुरन्त राजा के सेवकों को भेजकर देवायत की पत्नी को बुलवाकर कहा - "अगर यह नवघण ही हो तो आप आँखों में सुरमा लगाकर, पैरों में जूते पहनकर उसके सिर पर खड़े रहकर उसकी आँखों के तारे (रत्न) निकालकर अपने पैरों तले कुचल डालों । तभी हम मानेंगे कि यह नवघणकुमार है, अन्यथा मुझे वहम है कि यह नवघण के बजाय तुम्हारा पुत्र है ।"

❑ कठिन कसौटी से बाहर निकली हुई वीरांगना :

देवायत की पत्नी के सिर पर धर्मसंकट आया । क्या किया जाय ? इस संकट से बचने के लिए हिम्मत के अलावा कोई चारा (मार्ग) नहीं है । वीर नारी ने विचार किया कि - 'मेरा पुत्र मारा गया । मैं पुत्रहीन हो गयी, जिसकी रक्षा के लिए मैंने अपने इकलौते लाड़ले पुत्र का बलिदान दिया । अगर अब हिम्मत हार जाऊँगी तो उसका भी बलिदान देना पड़ेगा ।' उसने प्रभु से प्रार्थना की, हृदय पर पत्थर रखकर आँख में सूरमा लगाया । पैरों में जूते पहने और अपने इकलौते पुत्र के

शव के पास आकर खुशी से मस्तक पर पैर रखकर छुरी से उसने नेत्र निकालकर पैरों तले रौंद डाला, फिर भी आँखों में आंसू या मुख पर ज़रा भी उदासी नहीं आने दी, इससे राजा को यकीन हो गया कि अगर यह उसका पुत्र होता तो देवायत की पत्नी ऐसा और कठोर कृत्य न कर सकती । स्त्रीजाति का हृदय कोमल होता है, ऐसा करते समय उसकी आँखों से आंसू आये बिना नहीं रह सकते । परन्तु यह देवायत का पुत्र नहीं है, स्वयं नवघण ही है, इसका यकीन हो जाने पर राजा को शांति हो गयी, 'हाश ! दुश्मन का काँटा गया ।' देवायत को जेल से मुक्त किया गया । पति-पत्नी ने मुक्ति से चैन की साँस ली और कुमार नवघण की सलामती से चेहरे पर अपार खुशी हुई । पति-पत्नी आनन्द-सहित घर आकर नवघण के सीने से लग गये । नवघण अब शिशु अवस्था से युवावस्था के आँगन में प्रविष्ठ हो गया है । देवायत नवघण को जूनागढ़ की गद्दी पर बिठाने के लिए उपाय खोजने लगे । परन्तु इस राजा के साथ बड़ा सैन्य लेकर बारह वर्ष तक लड़ा जाय तब भी जूनागढ़ को जीतना मुश्किल है ।

नवघण को राजा बनाने के लिए देवायत बहुत चिन्तातुर हैं । अन्त में द्वारपाल के साथ मित्रता की और अपने चार सेवकों को उसके पास नौकर के रूप में भेज दिये गये । दूसरी ओर क्या हुआ ? देवायत ने अपने घर की दीवार चुनने के लिए मज़दूर बुलाये । दीवार चुनने के लिए पिछले बाड़ा में खड्ढा खोदकर उसमें से मिट्टी निकालते थे । दोपहर के समय मज़दूर अपने अपने घर गये थे, तब नवघण सब से नज़र बचाकर बाड़े में आया और कोई देख न ले इसलिए छुपने की जगह ढूँढ़ता था । तभी वहाँ खड्ढा देखा । वह उसमें उतरा और कुदाली लेकर खोदने लगा । तभी खड्ढे में एक बड़ा पत्थर देखा । उसे उठाकर दूर कर कुछ देखा । नवघण ने कहा - ''पिताजी ! इस खड्ढे में कुछ है ।'' देवायत समझ गये । उसने कहा - ''पत्थर अभी ढँक दो ।'' नवघण ने उस पर पत्थर ढँककर धूल डाल दी । देवायत नवघण को लेकर घर आया और मजदूरों को घर जाकर कह आया कि - ''आज कुछ काम करना नहीं है, कल करेंगे ।''

आज देवायत के मुख पर कोई अलौकिक आनन्द की आभा चमकती थी । मानो अपना सारा दुःख चला गया और सुख के सूर्य का उदय हुआ न हो ! बाद में सारा गाँव जब निद्राधीन हुए तब देवायत, उनकी पत्नी, नवघण और जाहल सभी देर रात बाड़े में गये और खड्ढे में से वह पत्थर उठाकर देखा तो उसके नीचे सुवर्णमुद्राओं से भरा चरु निकला । उसे सभी मिलकर घर में ले आये । खड्ढा ढँक दिया । पत्नी अपने पति की खुशी का कारण समझ गयी और उसे लगा कि अब नवघण का भाग्य खुल गया ।

इस तरफ उन अहीरों को काम देखकर क़िले का रक्षक जब देवायत से मिलता तब अहीरों की प्रशंसा करता । तब देवायत कहता कि - "ये तो गरीब हैं । इससे भी उत्साही और साहसी अहीर गीर में अनेक हैं । अगर आपको आवश्यकता है तो भेज दूँ ।" क़िले के रक्षक ने "हाँ" कहा तो दूसरे चार अहीरों को भेज दिया । उनकी भी मेहनत और लगन से किले के रक्षक को सन्तोष हुआ । अतः क़िला-रक्षक दूसरे अहीरों की माँग करने लगा । तो देवायत थोड़े-थोड़े अहीर भेजने लगे। इस प्रकार एक वर्ष में तो जूनागढ़ में रक्षा ख़ाते में अहीरों की संख्या बढ़ गयी।

जाहल के विवाह और नवघण को राज्य सौंपने की देवायत को चिन्ता है । अन्त में सारी तैयारी की और राजा के पास सैनिकों की माँग की, इस ओर जाहल के विवाह अवसर पर अहीरों का सारा समाज इकट्ठा हो गया । उस समय देवायत ने राजा के पास गये और कहा - "साहब ! मैंने अपनी पुत्री जाहल के विवाह की तैयारी की है । हमारा समाज बहुत बड़ा है । हमारे समाज के लोग बहुत खुमारीवाले होते हैं । भोजन आदि बातों में कोई परेशानी हो जाय तो समाज में दो विभाग बन जाय और एक-दूसरे के साथ लड़-मरे ! अतः व्यवस्था हेतु मुझे छोटा-सा लश्कर दीजिए ।" राजा को यह बात अच्छी न लगी । क्योंकि जिसने अपने शत्रु को अपने घर में पाला था, उसे लश्कर कैसे दिया जा सकता है ? उसे क़िले के बाहर लश्कर भेजना ठीक लगा नहीं, परन्तु दूसरे अधिकारीयों ने राजा से कहा - "महाराज ! आपने इस देवायत को जेल में डालकर बहुत कष्ट दिया है, अतः अगर आप लश्कर नहीं देंगे तो सारे अहीर इकट्ठे होकर उस दुःख का बदला लेने के लिए जूनागढ़ पर हमला कर देंगे । इससे अच्छा यह है कि हम अपना लश्कर भेज दें । हमारा लश्कर उसकी देखरेख में हो, तो वह कोई चालाकी-षड्यंत्र नहीं कर सकेगा और मान लीजिए वह ऐसा करे भी तो हमारे लश्कर के कारण कोई परेशानी नहीं होगी । इस समय उसे लश्कर देने में हमारा ही हित है ।"

राजा के गले बात उतर गयी और उसने आधा लश्कर देवायत के घर पर भेज दिया । देवायत और अन्य अहीर लश्कर की बहुत सेवा करते थे, इससे लश्करी सैनिक भी खुशी से झुम रहे थे । बारात आ गयी । सब के मुख पर आनन्द का उदधि (समुद्र) हिलोरे ले रहा है । विवाह हो जाने के बाद कन्यादान के समय एक तेजस्वी युवक जिसने खादी के कपड़े पहने हैं, सिर पर वत्तीस आँटों की धोती बाँधी है, कमर पर कपड़ा (पछेड़ी) बाँधा है । हाथ में सोने की मूठवाली तलवार सुशोभित हो रही है । वह विवाह-मण्डप में आया । इसे देखकर अहीर घबरा गये । सभी उसे देखते रह गये । देवायत ने सभी को शांत रहने को कहा, यह युवक दुल्हे और कन्या के पास आया । उसने पहले दुल्हे को कुछ पैसे दिये और फिर मधुर स्वर में बोला - "बहन ! हाथ बाहर निकाल ! मैं तुम्हें दान देना चाहता

हूँ।" इस समय जाहल ने कहा – "भाई ! दान मुझे अभी नहीं चाहिए। अपने पास रखिए, जब आवश्यकता होगी तब माँग लुँगी। मगर अभी तो उसे अपने पास अमानत के रूप में रखना।" जाहल के प्रेमभरे शब्द से भाईने कहा – "बहन ! जैसी तेरी मर्ज़ी। जब आवश्यकता हो, माँग लेना।" इतने शब्द कहकर अहीरों के सामने अमृतभरी नज़र दौड़ाकर तेजस्वी युवक चला गया। जाहल विवाह के बाद ससुराल गयी।

इस तरफ देवायत ने नवघण को राजा बनाने की तैयारी की। जूनागढ़ की सैना को बहुत शराब पिलाकर बेहोश बना दिया। नवघण ने अहीर के वस्त्र त्यागकर राजवंशी वस्त्र धारण कर कवच आदि शस्त्रों से सजकर अपने पिता तथा अन्य अहीरों के सहकार से अचानक जूनागढ़ के दरवाज़े में प्रवेश कर गया और राजा को पकड़ लिया। बाद में जूनागढ़ पर अधिकार जमा लिया। एक शुभ दिन को नवघणकुमार को राजतिलक किया। नवघण अब कुमार से रा'नवघण बन गया। रा'नवघण देवायत और उनकी पत्नी को माता-पिता समान मानता था। उन्हें ज़रा-सी भी उगा की कमी महसूस न हो इसका ध्यान रखता था। उपकारी का उपकार उसके हृदय में रमा करता था। रा'नवघण राज्य में कुशल होने से देवायत को बहुत शांति हुई और बाद में प्रभु-स्मरण करते हुए दोनों परलोक चले गये। माता-पिता की उपस्थिति में जाहल जूनागढ़ आती भी, मगर माँ-बाप की मृत्यु के बाद उसे और भी उनकी याद आने लगी थी, इसलिए वह वहाँ आती नहीं थी। एक बार ऐसा हुआ कि उस वर्ष पूरे साल में बारिश की एक बूँद भी न गिरी, जिससे जाहल के ससुराल में अकाल पड़ा।

देश में डंका नाखिया, कठिन पड़ा है अकाल,
पुरुष ने प्रमदा छोड़ी, माता ने छोडे बाल।

अन्न के बिना लोग मरने लगे। जाहल के घर पर पशुधन बहुत था। उन सब की रक्षा कैसे की जाय ? जाहल की स्थिति नाजुक हो गयी थी, परन्तु उसे दुःख में भाई के घर नहीं जाना है, ऐसा उसमें खमीर था। उसके पति ने उसे समझाया कि – "हे जाहल ! तुम बहुत सुख में पली है, इसलिए अभी अपने मायके में जा और जब सुकाल होगा तब आना। तुमसे यह दुःख देखा नहीं जायेगा।" परन्तु जाहल एक वीरनारी थी। उसने कहा – "स्वामीनाथ ! आप क्या बोल रहे हो ? क्या आप दुःख सहेंगे और मुझ से नहीं सहा जायेगा ? भूतकाल में सतियों ने कैसे कष्ट सहे है ? रामचन्द्रजी को वनवास मिला तब क्या सीताजी उनके साथ नहीं थे ? नलराजा के साथ सती दमयन्ती गयी थी न ? वे तो राज-वैभव छोड़कर गये थे। उनके जितना सुख तो हमें नहीं है। शायद मान लीजिए कि सुख हो तो भी जहाँ देह हो वहाँ माया रहता है – वह अलग नहीं होता,

प्रकार पत्नी भी पति के साथ अच्छी लगती है, अतः मैं आपके साथ ही आऊँगी ।

स्वामीनाथ ! हमारा पशुधन सब कुछ अकाल में मर जाते हैं । हमारे पास तो खाने के लिए अन्न भी नहीं है । इसलिए बिना किसी विलंब किये हम इस पशुधन को लेकर सिन्ध देश में जाये । वहाँ सुकाल हैं, इसलिए वहाँ जाकर अकाल के कठिन (मुश्किल) दिन निकालेंगे और एक वर्ष के बाद यहाँ सुकाल होगा तब वापस आ जायेंगे । मेरे लिए आप का हृदय बहुत दुःखता है । मुझे साथ लेकर जाने की आप की मर्ज़ी नहीं है, परन्तु मुझे तो साथ रहना है । मुझे मायके जाकर क्या करना है ?'' जाहल की मक्कमता देखकर सिन्ध देश में जाना तय किया ।

बन्धुओं ! जाहल की मक्कमता कितनी है ? आज की स्त्रियाँ अगर अपना भाई अगर ऐसा बड़ा राजा हो तो जंगल के दुःख सहने के लिए तैयार न होता । यहाँ तो जूनागढ़ का रा'नवघण जैसा बलवान भाई था । जाहल जैसी हज़ारों स्त्रियाँ और उसके पति जैसे हज़ारों पुरुष जीवन पर्यन्त उसके राज्य में रहे, तब भी उसे वहाँ किसी बात की कमी न होती । जाहल का नाम सुनकर नवघण खुले पैरों से सामने दौड़कर आते और कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाय ऐसा था और जिसकी छाया में एक तो क्या सैंकड़ो अकाल पड़े तब भी कोई मुसीबत हो ऐसा नहीं था । ऐसे स्थान पर दुःख के समय में भी जाहल को जाना उचित न लगा । वहाँ जाऊँ तो सुख में जाऊँ दुःख में नहीं ।

सारा देश अकाल की लपेट में आ गया था । देश के सभी लोग अन्न-पानी के बिना तड़प रहे थे । ऐसी मुश्किल समय था । परन्तु ऐसे मुश्किल समय में भी नवघण राजवैभव के सुख में अपनी प्राण-प्यारी बहन जाहल को भूल गया । यह संसार ऐसा विचित्र है कि मनुष्य अपने सुख में मग्न बनता है, तब दूसरों के सुख-दुःख की परवा तक नहीं करता । जाहल, उसका पति और उनके सारे आभीरपल्ले (अहीरों के झोंपड़े) में बसते अहीर अपने अपने परिवार और पशुधन साथ लेकर सिन्ध देश में जाने के तैयार हुए ।

सारा सोरठ देश, रोता था लहू के आँसू,
चल निकले विदेश, धन से - तन से पोष ने ।

अपना वतन (देश) छोड़कर कहीं जाना पसन्द नहीं है । ऐसे मुश्किल समय में पापी पेट के पोषने के कारण जाते समय जाहल का हृदय भर आया, परन्तु इसके अलावा कोई रास्ता भी तो नहीं था । या तो देश छोड़ना पड़े या मृत्यु की शरण में जाना पड़े ऐसा था । दोनों में से कोई एक मार्ग लिये विना चले ऐसा नहीं है । सभी अहीरों भी वहुत दुःखी हुए । वहाँ रहनेवाले सारे अहीर मानों एक

ही परिवार के हो इस प्रकार मिलकर सिन्ध देश में जाने के लिए तैयार हो गये । उस समय अपने पशुओं से जाहल ने कहा -

"चलिए इस देश में हमारा कोई आधार नहीं है । इसलिए परदेश का आश्रय लेना पड़ेगा ।" इतना बोलकर उसकी आँखों से चौधार आंसू बहने लगे । सारे अहीर चलने लगे । जाहल की उम्र छोटी थी मगर सभी में उसकी बुद्धि श्रेष्ठ थी । अतः सब कोई उसे पूछकर उसकी सूचना अनुसार चलते थे । जाहल का सम्मान बहुत था । चलते-चलते जाहल की दृष्टि गिरनार पर पड़ी । उसे देखकर अपने भाई नवघण और माता-पिता याद आने लगे ।

"माँ-बाप बिना सम्मान नहीं, आदर न कोई, नवघण नीरखकर जाहल फरी सिन्ध,

पले एक साथ, स्नेह से साथ रहकर, नौ-सोरठ का नाथ, देखेंगे जो होंगे जिन्दा ।"

रोती हुई आँखों से जाहल बोल उठी - "भाई ! मैं जा रही हूँ, इसलिए दूर से तुम्हें देख लूँ । जिन्दा रहेंगे तो फिर मिलेंगे, नहीं तो अन्तिम प्रणाम ।" ऐसा कहती हुई जाहल रो पड़ी । इस प्रकार मन ही मन रोती हुई जूनागढ़ के राजा की बहन सिन्ध की ओर चली । मार्ग में अन्न-पानी की सुविधा मिल जाय वहाँ कुछ दिन रूकते और बाद में चलते । इस प्रकार वे सभी सिन्ध में पहुँचे ।

उस समय सिन्ध में हमीर सुमरा शासन करता था । वहाँ सुकाल था, इसलिए वहाँ लोग सुखपूर्वक आनन्द से दुःख के समय में रहने लगे । अपने गाय-भैंस के दूध-घी में से अपना गुजरान चलाते थे । इस प्रकार करते हुए एक वर्ष तक सिन्ध में बीताया । वर्ष पूरा होने पर जाहल ने सोचा कि 'अब सोरठ में सुकाल हुआ होगा, अब हम सभी अपने देश में जाये ।' तब जाहल का पति तथा अन्य कुछ अहीर कहने लगे कि "सोरठ में सुकाल होने के समाचार सुनकर जायेंगे ।" अतः कुछ दिनों तक वहीं रूक गये । वैसे जाहल की तो रूकने की बिलकुल इच्छा न थी, मगर सब की इच्छा थी, इसलिए नामर्जी से रूकना पड़ा । अब कर्म क्या करता है ?

एक दिन जाहल तालाब पर कपड़े धोने और स्नान करने गयी थी । स्वयं अपने कपड़े धोकर तालाब में स्नान कर रही थी । उस समय हमीर सुमरा फिरता हुआ तालाब के पास आया । जाहल का ध्यान स्नान करने में था । जाहल बहुत ही सुन्दर थी, इसलिए हमीर उस पर मोहित हो गया और सामने देखता रहा । जाहल स्नान कर कपड़े बदल रही थी, उसी समय उसकी नजर हमीर पर पड़ी । उसे लगा कि 'यह मेरे सामने टकटकी लगाकर देख रहा है, अर्थात् मुझ पर उसकी कुदृष्टि हुई है । अतः तुरन्त अपने कपड़े लेकर जल्दी से चली गयी, साथ में हमीर अपना घोड़ा लेकर धीरे धीरे उसके पीछे आ रहा था । जाहल भी जान

थी । वह समझ गयी कि 'यह पापी मेरी इज्ज़त लुटना चाहता है । अब मेरा क्या होगा ? इस पापी के पंजे से मुझे कौन बचायेगा ?' ऐसा सोचती हुई - हमीर के ड़र से काँपती हुई तम्बू में घुस गयी । तभी वहाँ हमीर सुमरा उसके तम्बू के पास आकर खड़ा हो गया । उस समय सारे अहीर इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे, उन्होंने हमीर को देखा तो कह उठे - ''महाराज ! आपने यहाँ पधारने का कष्ट क्यों किया ?'' तब हमीर ने कहा - ''वह स्त्री जो कपड़े धोकर भीतर गयी, वह कौन है ?'' अहीर ने कहा - ''वह अहीररानी है ।'' हमीर ने पूछा - ''आप सभी कौन हैं ?'' ''हम सोरठ के रहनेवाले अहीर है । वहाँ बड़ा अकाल पड़ा है, इसलिए यहाँ आप के सिन्ध राज्य में आये थे ।'' हमीर ने कहा - ''मेरे देश में अकाल पूर्ण करने आये हो, परन्तु अकाल तो अब पूरा हो गया है और सुकाल हुआ है, इसलिए जाने से पहले आपको मुझे कोई उपहार देना चाहिए न ?'' अहीरों ने कहा - ''हमारी शक्ति अनुसार आप को अवश्य देंगे ।'' तब हमीर ने कहा - ''मुझे आप से पैसों की या और किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है । मुझे उस तम्बू में जो स्त्री गयी, उसे उपहार में दे दीजिए ।''

सुमरा के वचन सुनकर अहीर ड़र गये । उन्होंने कहा - ''जहाँपनाह ! आप तो हमारे पिता-समान हो । आप हमारे रक्षक हो । आप को ऐसी बात शोभा नहीं देती ।'' तब क्रोधित स्वर में सुमरा कहने लगा - ''यह रानी आप के तम्बू में अच्छी नहीं लगती । वह तो मेरे राज्य में अच्छी लगेगी । अगर आप हँसी-खुशी से नहीं देंगे तो मैं ज़बरदस्ती उसे उठा जाऊँगा ।'' यह सुनकर सभी अहीर पत्ते की तरह काँपने लगे । जाहल के पति ने भीतर जाकर बात की, तक जाहल ने कहा - ''स्वामीनाथ ! बड़ी आपत्ति आयी है । हम यहाँ से चले जाते तो अच्छा होता, परन्तु अब क्या ?'' फिर सती ने हिम्मत कर कहा - ''उस दुष्ट को मेरे पास भेजिए ।'' अहीर ने कहा - ''हमारी रानी आप को भीतर बुला रही है ।'' उसके रूप में मुग्ध हमीर खुश होता हुआ भीतर गया ।

बन्धुओं ! सती स्त्रियाँ अपना चारित्र्य बचाने के लिए वचन से असत्य बोलना पड़े तब भी बोलती है, मगर काया या मन से कभी भ्रष्ट नहीं होती है । जाहल को अन्दर से तो क्रोध बहुत है, परन्तु बाहर से क्रोध को शांत कर कृत्रिम प्रेम दिखाकर कहने लगी - ''मैंने आप को जब से देखा है तबसे मेरा मन आप में ही रमा रहता है । मुझे इस झोंपड़े में रहकर दुःख सहना अच्छा नहीं लगता । राजमहल के सुख किसे नहीं चाहिए ? मैं अपनी मर्जी से आप की रानी बनने के लिए तैयार हूँ । परन्तु मेरी एक शर्त है । 'मैंने कल ही से हमारे धर्म के नियमानुसार छ महीने तक ब्रह्मचर्य-व्रत पालने की प्रतिज्ञा ली है । वह प्रतिज्ञा ऐसी कठोर है

कि मुझे पुरुष को तो क्या उसके कपड़ों को भी स्पर्श करना वर्जित है । मेरे इस व्रत का भंग होगा तो जीभ (जिह्वा) काटकर मर जाऊँगी, परन्तु मेरे व्रत का खण्डन नहीं होने दुँगी ।'' जाहल के शब्दों को सुमरा पर गहरा असर हुआ । उसने सोचा कि 'छ महीने तो कल चले जायेंगे । अगर बलात्कार करने जाऊँगा तो हाथ में आया हीरा भी चला जायेगा ।' ऐसा सोचकर कहा - ''ठीक है, आप की शर्त मुझे मंजूर है । छ महीनों के बाद आऊँगा ।'' और अहीर भाग न जाय इसलिए राजा ने तम्बू के चारों ओर पहरा लगा दिया । सभी अहीर चिन्ता में डूबे थे । जाहल ने कहा - ''छ महीने के लिए हमें चिन्ता नहीं करनी है, परन्तु आप में से कोई जूनागढ़ जाय और अपने भाई नवघण को समाचार देकर आय, तो यहाँ से मुझे मुक्ति मिल सकती है । अगर वह छ महीने में नहीं आयेगा तो मैं अपने प्राणों का त्याग करूँगी, मगर अपना चारित्र्य खण्डित होने नहीं दुँगी ।'' जाहल के पति ने जूनागढ़ जाना स्वीकार किया । तब जाहल ने विस्तारपूर्वक पत्र लिखकर दिया । जाहल का पति गुप्त रूप से वहाँ से जूनागढ के लिए रवाना हुआ ।

उस समय मोटर-गाड़ी आदि की कोई सुविधा न थी । पैदल-यात्रा करने पड़ती थी । कहाँ सिन्ध और कहाँ सोरठ ? छ महीनों में वापस लौटना भी है । फिर निर्धन अवस्था में मुझे नवघण पहचानेंगे या नहीं ? मेरी बात सुनेंगे या नहीं ? उसकी चिन्ता करता हुआ भूख, प्यास और बिना सोये कष्ट सहते हुए जूनागढ़ पहुँचा । वह नवघण की अश्वशाला में गया, जाकर पूछा - ''क्या यहाँ महाराज आते हैं ?'' तब नौकर ने उत्तर दिया - ''हाँ, सप्ताह में एक बार इस चहिते घोड़े को देखने हेतु आते हैं । कल यहाँ आयेंगे ।'' संसतीया कहने लगा - ''भाई ! मैं एक गरीब और दुःखी मनुष्य हूँ । मुझे दो दिन अपने पास रहने दीजिए न ?'' अश्वरक्षक ने कहा - ''ठीक है, मगर कल जब राजा आये तब तुम्हें कहीं छुप जाना होगा, क्योंकि मैंने तुम्हारी दया खाकर यहाँ रखा है । कोई जान जायेगा तो मैं मारा जाऊँगा ।'' संसतीया कहने लगा - ''ठीक है, आप कहेंगे ऐसा करूँगा ।''

राजा के आने का समय हुआ तो संसतीया छुप गया । रा नवघण अपने चहिते अश्व की देखभाल करने के लिए अश्वशाला में आये । अपने घोड़े को हाथ फेरकर लौट गये, उस समय छुपा संसतीया राजा के मार्ग के बीच में सो गया तो राजा ने कहा - ''भाई खड़े हो जाओ । तुम इस मार्ग में क्यों सोया है ?'' तब उसने कहा - ''बापु ! मुझे और कुछ काम नहीं है, परन्तु मेरा इतना पत्र पहले पढ़िए ।'' भूतकाल के राजा सत्ता के मद में गरीबों को त्याग नहीं करते थे, बल्कि गरीब की बात सुनते थे और उसका दुःख दूर करते थे । आज तो गरीबी हटाने की बातें

की जाती है, परन्तु गरीबाई के बजाय गरीबों को वापस लौटाते हैं ।

रा'नवघण ने पत्र अपने हाथ में लिया । उसे लगता कि ऐसा गरीब और निर्धन मनुष्य किसका पत्र लाया होगा ? ला, ज़रा इसे पढ़ुँ । पत्र खोलकर नवघण पढ़ने लगा । पत्र में जाहल ने अपने दुःख की बात कहते हुए लिखा है कि -

''जाहल चिट्ठी भेजती है, पढ़े नवघण वीर,
सिन्ध में रोका, सुमरे ने, चलने न दे हमीर ।''

''हे मेरे भाई ! सोरठ देश में कठिन अकाल पड़ा । कुँए, नदी में पानी रहा नहीं हैं, खाने के लाले पड़ गये हैं, पशुधन तथा मनुष्यधन मरने लगे । हमारी स्थिति नाजुक हो गयी है, इसलिए सोरठ छोड़कर सिन्ध में आये । अकाल ख़त्म होने पर हमें लगा कि अब सोरठ में सुकाल हुआ होगा ऐसा मानकर कुछ ही दीनों में सोरठ आने की तैयारी में थे, तभी सिन्ध के राजा हमीर सुमरा मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ है और मैंने छ महीने की अवधि दी है । भाई ! तुम तो राज्य-सुख के वैभव में फँस गये हो, परन्तु मैं तुम्हें पूर्व की स्मृति ताज़ा करवाती हूँ । इसे तुम ठीक ठीक पढ़ो ।

''हे नवघण भाई ! पाटण की सेना ने जूनागढ़ पर जंग मचाया था और जूनागढ़ जीत लिया गया । तुम्हारे पिताजी उसमें शहीद हो गये और माता ने अग्नि-स्नान किया, उस समय तुम्हारी रक्षा हेतु सज्जन मनुष्य को ढूँढती हुई तुम्हारी वफादार दासी ने बोड़ीदार गाँव में आकर देवायत अहीर को तुम्हें सौंप दिया । हे भाई ! देवायत ने तुम्हारी रक्षा कैसे की यह सुनो । मेरा भाई उगा दो वर्ष छोटा था तथा मैं और आप समवयस्क थे । तुम्हें छ महीने की अवस्था में मेरे पिता ने मेरी माँ की गोद में सौंपा था ।

मैं माता की गोद में सो रही थी तो मुझे गोद से अलग कर तुम्हें सुलाया । भाई तुम्हारे आने के बाद मैंने अपनी माता के मीठे दूध का स्वाद चखा भी नहीं है । मैं अगर पास में पड़ी रोती रहुँ, तो माँ मुझे खिलाती नहीं और तुम्हें लाड़प्यार करती थी । तुम्हारे प्यार के कारण मैंने अपनी माँ का प्यार खोया, दूध खोया । मैं तो तड़पती-भटकती बड़ी हुई । इस प्रकार तुझे बड़ा करते समय मेरे माँ-बाप ने बहुत कष्ट सहे हैं । यह तुमसे अनजान तो नहीं है । राजा को पता चला कि देवायत के घर में नवघण पल रहा है । इससे क्रोधित होकर राजा देवायत के घर आया और नवघण दिखाने को कहा ।

''उगा दिया बदले में, प्यारे मेरे नरवीर,
समझ ले यदि मन से, नवघण नौ-सोरठ के राजा ।''

इस समय मेरे पिता ने तुम्हें छुपा दिया और 'नवघण मेरे घर में है' ऐसा कहा नहीं। अपने सिर पर मुसीबत मोड़ ली, परन्तु तुम्हें दिया नहीं, इससे क्रोधित होकर राजा ने देवायत को पकड़कर जेल में डाल दिया। जेल में मेरे पिता को बहुत कष्ट दिये गये। उन्हें बहुत मारा गया। शस्त्र से पैरों में निशान किये गये, लहू का बूँद-बूँद तुम्हारी रक्षा के लिए खर्च किया। बाद में मेरे अपने भाई उगा को तुम्हारी रक्षा हेतु नवघण बनाकर राजा को दे दिया। राजा ने पिताजी के सामने नवघण के रूप में खड़े उगा का शिच्छेद करवाया। अपने इकलौते पुत्र की जान देकर भी नवघण तुम्हें जीवित रखा है। भाई ! अपना इकलौता पुत्र किसे प्रिय नहीं होता ? जानवर को भी जब अपने बच्चें प्रिय हैं, तो क्या मेरे माता-पिता को प्रिय नहीं होंगे ? उगा पर उनकी न जाने कितनी आशाएँ बँधी थी ? फिर भी हृदय पर पत्थर रखकर उसे दे दिया।

हे सोरठ-धणी (राजा) ! मेरे भाई को देने के बाद तुम्हारे पर हमारी सारी आशाएँ थी। मैं और तुम हमेशा साथ-साथ घुमते-फिरते, खेलते, खाते-पीते। मेरा और तुम्हारा स्नेह दूध और मिसरी जैसा था। तुम मुझे बहन-बहन कहते हुए एक पल भी मेरे बिना रह नहीं सकते थे। इतना अधिक प्रेम और स्नेह तुम भूल तो नहीं गये हो न ? फिर मैं बड़ी हुई। मेरे विवाह हुए, उस समय क्या हुआ...

"मण्डप में उत्साहित होते, भाई मेरे दिया था एक वचन,
रखनी है उसी वचन की लाज, जाहल के लिए जूनागढ़ के राजा।"

मेरे विवाह के समय भाई मेरे। तुम कपड़ा देने आये थे, वह दिन याद करो। उस समय मैंने कहा था कि - "भाई ! अभी तो कपड़े आदि सामान बहुत है, परन्तु जब आवश्यकता होगी तब माँग लुँगी। तुमने उस वचन को निभाने की कसम भी खायी थी। तो हे भाई ! अब मुझे उस कपड़े की आवश्यकता हुई है। हम यहाँ जीने की आशा से आये थे और जीवननिर्वाह करते थे, मगर अभी हृदय का चैन हर लिया गया है। सभी के प्राण मुसीबत में हैं। हमीर सुमरा ने मेरे तम्बू के आसपास पहरा लगा दिया है और मुझे घिर लिया है। हम यहाँ से निकल सकते नहीं है। अब हम कहाँ जाय ? इसलिए अब तुम्हारे अतिरिक्त और कोई छुडानेवाला नहीं है।

हे भाई ! ननिहाल में मामा नहीं है। माता-पिता का स्वर्गवास हो गया है। अब मायके में भाई भी नहीं है। भाई के बिना तड़पती बहन अकेली है। उसके सिर पर आकाश टूट पड़ा है। तुम तो अब जूनागढ़ के राजा बने हो। फिर अपने दिये गये वचनानुसार आकाश को थिगली देने (इज्जत बचाने) के लिए, जल्दी से आ जाना। मैंने हमीर को छ महीने का वचन दिया है। छ महीने के

बाद एक दिन भी और अधिक जायेगा तो तुम्हारी बहन जिह्वा काटकर गले में फँदा डालकर प्राण का त्याग कर देगी । तुम अपनी बहन को यदि भूले न हो और सच्चा स्नेह हो, तो प्रेम की प्रतीति कराने मेरे भाई तत्काल आ जाओ ।''

बन्धुओं ! जाहल को भूतकाल की सारे बातें याद क्यों करवानी पड़ी ? उसे जूनागढ़ में जाने का मोह न था । इतना दुःख सहा, अकाल पड़ा तो जंगल में रही, परन्तु भाई के घर जाने को मना किया । फिर आज भाई को याद क्यों किया ? यह सब लिखने का प्रयोजन तो एक ही है कि अपने चारित्र्य की रक्षा करने हेतु । क्योंकि नवघण राज-सुख-वैभव में जाहल को भूल गया है, यह जाहल समझती थी । यह सब यदि न लिखा जाय, उसे जाहल की याद कहाँ से आती ? ऐसा सोचकर उसने विस्तारपूर्वक पत्र लिखा है । पत्र में जाहल के आंसूओं की बूँदे भी गिरी हैं । बहन का पत्र पढ़कर नवघण का खून खौल उठा और आँखों में आंसू निकल आये । अहो ! ऐसे कठोर अकाल में भी मैंने अपनी बहन को याद न किया, इसलिए यह हुआ न ? उसे सोरठ छोड़कर सिन्ध में जाना पड़ा न ? जिसने मेरे लिए जान देने जितने दुःख सहे हैं, उनका उपकार भूल गया ? अब तो बहन की रक्षा करने जल्द ही निकलना चाहिए ।

उसने निश्चय किया कि अब चाहे कुछ भी हो जाय, अपने प्राण देकर भी जाहल को हमीर सुमरा के सिकंजे से बचाना है और उसके शील की रक्षा करनी है । उसने अपनी सेना तैयार की । इसके अतिरिक्त सौराष्ट्र से लगभग सभी शूरवीरों को बुलवाकर नौ लाख की सैना तैयार कर सिन्ध पर हमला करने के लिए जूनागढ़ छोड़कर चल निकले । रा'नवघण की सेना पानी के प्रवाह की तरह गति से चला जा रहा है । चलते चलते खोड़ नामक एक गाँव के बाहर पहुँचे । उस समय वरूडी नामक एक चारण की लड़की अपनी सखियों के साथ खेल रही थी । वह रा'नवघण के सामने खड़ी हो गयी । तब नवघण ने बहुत समझाकर कहा - ''बहन ! तुम हमारे मार्ग से हट जा । हमें जल्दी जाना है ।'' नवघण के पीछेर उसकी सारी सेना भी रूक गयी । वरूडी ने कहा - ''ओ मेरे नवघण भाई ! तुम्हें भोजन कराये बिना यहाँ से जाने नहीं दुँगी ।'' तब नवघण ने कहा - ''बहन ! मैं अकेला नहीं हूँ । मेरे साथ नौ लाख की सेना हैं । उन सब को तुम कैसे खिला सकोंगी ?'' तब वरूडी ने कहा - ''सब हो जायेगा । तुम श्रद्धा रखो ।''

वरूड़ी की बात सुनकर रा'नवघण कुछ बोल न सका । उसने आमंत्रण स्वीकार किया । सेना वही रूक गयी । उस समय वरूड़ी ने एक कुल्डिया में चावल पकाये । उस पर कपड़ा ढँक दिया और दो हाथ जोड़कर कह उठी - ''मेरी जाहल बहन अगर सच्ची सती हो तो उसके चारित्र्य के प्रभाव से कुल्डिया में से मेरा भाई नवघण और उनकी सारी सेना खा सके उतने पकवान और

भोजन दीजिएगा ।'' ऐसा कहकर अन्दर से मिष्टान्न निकाला । सारी सेना ने भर-
पेट भोजन किया मगर भोजन कम न हुआ । यह देखकर नवघण को वरूडी पर
श्रद्धा बैठी और उसे नमनकर हमीर सुमरा पर हमला करने जाने की आज्ञा
माँगी । तब वरूडी ने कहा – ''भाई ! तुम सती की रक्षा हेतु जा रहे हो, तुम्हारी
विजय अवश्य होगी । तुम विजय का डंका बजाकर मेरी बहन जाहल
को लेकर जल्दी से आ जाना ।'' जाहल को छ महीने में अब केवल एक-दो दिन
ही शेष रह गये थे । वह सिन्ध में पहुँच गया । वहाँ जाकर हमीर सुमरा के
नगर को घेर लिया । सौराष्ट्र की सेना ने अचानक अपने पर हमला कर दिया है,
जानकर हमीर घबरा गया । दोनों के बीच युद्ध होने पर सुमरा की सेना पलभर
में नष्ट हो गयी । हमीर नवघण की शरण में आया । रा'नवघण विजय की
ध्वजा-पताका फहराकर खुशी से अपनी प्यारी बहन के पास आया । जाहल ने
भाई का प्रेमपूर्वक-सम्मानपूर्वक स्वागत किया । भाई को कई वर्षों के बाद
सामने देखकर वह रो पड़ी । वह बोली – ''भाई ! अगर तुम न आये होते तो
मेरा क्या होता ?'' ''अरे ! इस देह में प्राण है तबतक मेरी बहन का बाल भी
बाँका नहीं होने दुँगा ।''

जाहल को दुश्मन से छुड़ाकर और विजय प्राप्त कर रा'नवघण सुखपूर्वक
जूनागढ़ आया । जाहल और उसके पति का खूब आदर-सत्कार कर संतुष्ट किया
और अपने पास रखा ।

बन्धुओं ! भूतकाल में सतियाँ अपने चारित्र की रक्षा करने के लिए कितना
अधिक कष्ट सहती थी ? ऐसी सतियाँ ही भारत का भूषण (आभूषण) हैं । ऐसे
वीर नारी-रत्नों से यह भारतभूमि पवित्र और शोभायमान है । भारत में ऐसी अनेक
सतियाँ ने अपने प्राणों को देकर भी अपने चारित्र की रक्षा की है । स्त्रियों का
सच्चा सौन्दर्य (आभूषण) चारित्र है । चारित्र के आभूषण के बिना सारे आभूषण
फीके हैं । राणकदेवी, जसमा-ओड़ण पर सिद्धराज ने कुदृष्टि की थी । राणकदेवी
के दो पुत्रों को उसके सामने काट डाले थे, फिर भी अपने चारित्र में अड़िग
रहकर राज्य के लिए न ललचायी, तो आज उसके गुण गाये जाते हैं । जैसे
सतियों ने अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपने चारित्र की रक्षा की है, उसी
प्रकार पुरुषों ने भी ऐसे अवसर पर चारित्र में अड़िग रहना चाहिए । अकेली स्त्रियों
का यही धर्म है ऐसा नहीं । यद्यपि स्त्रियों को जितनी कसौटी आती है, उतनी
कसौटी पुरुषों से लिए नहीं आती । आप नवघण भाई की तरह सच्चे वीर (भाई)
बनना । अधिक भाव अवसर पर ।
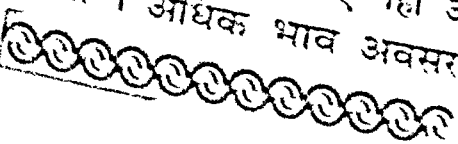
जन्माष्टमी

अनन्त करुणासागर भगवान महावीरस्वामी जिनका शासन वर्तमान में विद्यमान है । उन्हों ने जीवों के कल्याण के लिए और जीवों को तारने कि उत्तम हेतु से वीतरागवाणी की प्ररूपणा की । पहले उनकी 'जो होवे मुझ ऐसी शक्ति, तो सवी जीव करूँ शासनरसी' की उत्कृष्ट भावना से सर्व जीवों को कर्म मुक्त होकर सुखी बनाने की भावना में तीर्थंकर-नामकर्म बाँधा था । जिससे उन्हों ने तीर्थंकरपद प्राप्त हुआ और चारित्र (सन्यास) लेकर केवलज्ञान, केवलदर्शन में लोकालोक के सर्व भाव जाने और देखे । संसारी-जीवों को कर्म से पीडित देखे और हृदय में करुणा प्रकट हुई, इससे उपदेश किया - "हे भव्यजीवों ! अनादिकाल से जीव चारगति, चौबीस दण्डक, चौरासी लाख जीवयोनि में आधि, व्याधि, उपाधि - जन्म, जरा, मृत्युरूप वेदना से पीडित हो रहे है, उसमें से बचिए और शाश्वत-सुख को प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ कीजिए । कर्म के रसिक मिटकर कल्याण के रसिक बनिए ।

बन्धुओं ! जन्माष्टमी का दिन पवित्र दिन माना जाता है । आप इस दिन का महत्त्व समझे नहीं है । इस दिन को गोकुलाष्टमी के बजाय जुआअष्टमी बना दिया है । मैंने सुना है कि पूरे वर्ष जो लोग जुआ नहीं खेलते, वे सप्तमी और जन्माष्टमी के दिन खेलते हैं । कितनी अज्ञानता है ? जुएँ को लेकर अन्याय-अनीति और अधर्म बढ़ते है, धर्म की हानि होती है । आसुरी वृत्तियों का ताण्डव नृत्य होता है, अतः जुआ छोड़िए । जगत में सत्य की ही कीमत होती है । इस संसार में पुरुष तीन प्रकार के होते हैं - (१) धर्मपुरुष, (२) भोगपुरुष, (३) कर्मपुरुष ।

(१) धर्मपुरुष : तीर्थंकर भगवन्त धर्मपुरुष कहे जाते हैं । प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं । वे महान पुरुष उग्र तपश्चर्या कर पुराने कर्मों को दूर कर संयम द्वारा नये आनेवाले कर्मों को रोककर चार घाती-कर्मों को तोड़कर सर्वज्ञता प्राप्त कर, परमात्म दशा प्राप्त करते हैं और निःस्वार्थ भाव से संसार के जीवों को सच्चा मार्ग बताने का उपदेश देते हैं और अधर्मों का निवारण कर धर्म का स्थापन करते हैं । वेशपूजा को छोड़कर गुणपूजा का महत्त्व समझाते हैं और आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान करवाकर मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं ।

करता देख सन्त ने कहा - "भाई ! तुम किसलिए ऐसा उत्तम मानवजीवन हार रहे हो ? इस प्रकार पेड़ या पहाड पर से गिरकर मर जाने से स्वर्ग या नरक से मोक्ष नहीं मिलेगा ।"

सन्त उसे उपदेश देते हैं । मानवजीवन की महत्ता समझाते हैं, इसलिए वह वहीं पंचमहाव्रतधारी सन्त बन जाता है । दीक्षा लेकर उसने निर्णय किया कि - 'जबतक मेरी देह में प्राण हैं तबतक सन्तों की सेवा करूँगा । और जावजीव-पर्यंत मासखमण तप करूँगा । इस प्रकार जावजीव मासखमण करने का दृढ़ निश्चय किया । परन्तु मुझे आपको एक मासखमण कराने के लिए कितने दिनों तक समझाना पड़ता है ? नंदीषेण की आत्मा ने दीक्षा लेकर सन्तों की सेवा की । मासखमण के पारणे के दिन मासखमण की उग्र तपश्चर्या की, मगर अपनी मृत्यु से पहले ऐसा नियाणा (निश्चय) किया कि - 'मेरे तप-संयम का अगर फल हो तो अगले जन्म में मैं स्त्री - वल्लभ बनुँ ।' स्त्रियों से अपमानित हुआ हूँ यह शल्य दीक्षा ली, फिर भी हृदय में था, इसलिए यह निर्णय किया और वहाँ से जीवन समाप्त कर देवलोक में गये ।

❑ वसुदेव का जन्म :

नंदीषेण की आत्मा देव का आयुष्य पूर्ण कर कलियुग में वसुदेव के रूप में पैदा हुए । वसुदेव ने समय जाने पर युवावस्था में कदम रखे । पूर्व में किये गये निश्चयानुसार अनुपम रूप प्राप्त किया । वसुदेव जब घर से बाहर निकलते तब सारे नगर की स्त्रियाँ उसके पीछे पागल बन जाती । कोई यदि भोजन बनाती होती और वसुदेव को देख लेती तो रसोई (भोजन) छोड़कर उसके पीछे भागती, पानी भरनेवाली पनहारिन पानी के मटके कुँए पर छोड़कर या माता अपने पुत्र को छोड़कर वसुदेव के पीछे दौड़ती । एक-दो-तीन बार ऐसा होने पर सारे नगर में हाहाकार मच गया । गाँव के लोग परेशान हो गये, और वे वसुदेव के बड़े भाई समुद्रविजय राजा के पास आकर कहने लगे - "अहो, राजन् ! आपके छोटे भाई वसुदेवकुमार बाहर निकलते हैं, तब हमारी बहु-बेटियाँ और बहन घर के काम-काज छोड़कर उसके पीछे पागल बनती हैं । हम तो परेशान हो गये हैं । अगर आप इसके लिए कोई उपाय नहीं करेंगे, तो हम सब गाँव छोड़कर चले जायेंगे ।" तब समुद्रविजय ने कहा - "मेरा भाई किसी के सामने दृष्टि भी नहीं करता है । वह तो अपने काम से मतलब रखता है । आप सब अपनी बहू-बेटियों को वश में रखिए ।" तब सारे नगरवासियों ने कहा - "कुछ भी हो; आपके भाई को मंत्र-जंत्र आते हैं, उसकी दृष्टि में कुछ तो जादू है, जिस से सारे नगर की स्त्रियाँ उसके पीछे मुग्ध बनती हैं, अगर आप कोई उपाय नहीं करेंगे तो हम सब नगर खाली

वर्षों के पश्चात् कंस की बहन देवकी से आपका भाई जब विवाह करेगा, तब आप समझ लीजिए कि देवकी से विवाह करनेवाला ही आपका भाई वसुदेव हैं ।"

❑ वसुदेव का देवकी से विवाह :

समय जाने पर वसुदेव कंस की बहन देवकी से विवाह करता है । कंस मथुरा के राजा का पुत्र था । वह बचपन से ही अन्यायी और अनीतिवाला था । सन्तों का दुश्मन था । उस समय भरतक्षेत्र में जरासंध नामक राजा प्रतिवासुदेव था । उसकी पुत्री जीवयशा के साथ कंस के विवाह करवाये गये थे । कंस जैसा उद्धत्त और घमण्डी था, उसकी पत्नी जीवयशा भी उन्मादी और उद्धत्त थी । कंस ने राज्य का मालिक बनने के लिए अपने पिता उग्रसेन राजा को कै़द किया था, और स्वयं राजा बनकर प्रजा पर जु़ल्म करता था । अपने बड़े भाई का ऐसा अत्याचार देखकर छोटा भाई संसार से विरक्त होकर साधु बन गया था । इस कंस को अपने ससुर जरासंध के राज्य और अपने बल-पराक्रम का नशा था । वह अभिमान में चूर होकर किसी के दुःख की परवा नहीं करता था । परन्तु ज्ञानी तो कहते हैं न कि - "राजा रावण का भी अभिमान नहीं टिका था ।' किसी का अभिमानन टिका है और न टिक सकेगा ।

यौवनं धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

ज्ञानी कहते हैं - "जिसके पास यौवन, धनसंपत्ति, प्रभुत्व और अविवेक - इन चारों में से एक ही हो तब-भी भयानक अनर्थ हो सकता हैं, तो फिर जब चारों इकट्ठे हो जाय, वहाँ कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है ? कंस में चारों अवगुण विद्यमान थे । उसके अत्याचार से प्रजा बहुत पीड़ित हो रही थी । सारे मथुरा में परेशानी फैल गयी थी । परन्तु दुष्ट कंस को किसी की परवा नहीं थी ।

एक दिन ज्योतिषियों को बुलाकर कंस पूछता है - "अहो ! इस संसार में मेरी समानता कर सके ऐसा कोई बलवान, पराक्रमी राजा है ?" कंस के मदयुक्त वचन सुनकर ज्योतिषियों का सिर चकराने लगा । मन ही मन सोचने लगे - 'अहो ! अभिमान ! तुम मनुष्य के हृदय में प्रवेश कर न जाने कितना कुछ कर सकता है ? तुम मनुष्य की कोमलता, सज्जनता आदि का नाश करनेवाला हो । विनय को तड़ीपार करनेवाले हो और तुम ही संसार में भटका देनेवाले हो । ज्योतिषी कोई उत्तर दे उससे पहले ही कंस कह उठता है - "आप तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं ! मैं कैसे प्रभावशाली हूँ कि मेरा जोप (भाग्य) देखकर ही आप असमंजस में पड़ गये लगते हैं !"

❑ **कंस और ज्योतिषी :**

ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! आपकी क्या प्रशंसा करे ? आप तो ऐसे पराक्रमी और बलवान हैं कि आपने पहले ही बार में धर्म का नाश किया है । न्याय-नीति को तो आपने तड़ीपार कर दिया है । आपकी आज्ञा मात्र से प्रजा काँपती हैं । आपने स्वयं अपने पूज्य पिताजी उग्रसेन को जेल में डाल दिया है । आपके जैसा पराक्रमी कौन हो सकता है ?" ज्योतिषियों के वचन सुनकर कंस खुश होने लगा । अभिमान के नशे में चूर कंस को पता नहीं कि यह मेरी प्रशंसा है या निंदा ? वह और आगे पूछने लगा - "यह तो मुझ में जो है वही आपने कहा है, परन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे जैसा कोई पराक्रमी राजकुमार है ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "साहब ! आपके ग्रह देखते हुए लगता है कि फिलहाल तो किसी बात की मुसीबत नहीं है, परन्तु कुछ वर्षों के बाद आपके कुल का नाश करनेवाला और यदुवंश का उद्धार करनेवाला एक महान पुरुष जन्म लेंगे, उन्हीं के हाथों आपका नाश होगा ।" यह सुनकर कंस कहने लगा - "बस इतना ही न ? इसका क्या यकीन ? उसकी कोई निशानी तो बताइए ?"

ज्योतिषियों ने कहा - "वे बकासुर आदि राक्षसों का वध करेंगे, कालीनाग को नाथकर उसका वध करेंगे । इसके अतिरिक्त और बहुत से कार्य करेंगे ।" तब कंस ने पूछा - "वह पुरुष कहाँ जन्म लेंगे ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! वे और कहीं नहीं मथुरा में ही यदुवंशी वसुदेव की पत्नी और आपकी बहन देवकी के पेट से जो सातवाँ पुत्र जन्म लेगा, वही आपका संहारक होगा । आपके ससुर जरासंध का विनाश कर तीनों खण्ड के स्वामी वासुदेव बनेंगे और साधु-सन्तों की बहुत सेवा करेंगे ।" ऐसी भविष्यवाणी सुनकर कंस का हृदय काँप उठा, फिर भी एक लगाम उसके हाथ में थी इसलिए उसे शांति थी । देवकी के विवाह अभी तक नहीं हुऐ थे । जब उसके विवाह होंगे तब वसुदेव को किसी भी प्रकार से बाँध लुँगा, और फिर ज्योतिषी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य नहीं होगा । ऐसा कंस सोचने लगा ।

एक बार ऐसा हुआ कि कंस की पत्नी जीवयशा देवकी के सिर में कंघी कर रही थी । उस समय कंस के छोटे भाई जो दीक्षा लेकर निकल गये थे, वे घूमते हुए मथुरा नगरी में पधारे और कंस के घर गोचरी के लिए आये । अपने देवर को गोचरी के लिए आया देखकर उत्तेजित हुई जीवयशा क्रोध में आकर बोलने लगी कि - "आपके भाई इतने बड़े राज्य के मालिक हैं, इतने बड़े राजा हैं और तुम घर-घर टुकड़े माँगते फिरते हो ? तुम्हारे में अगर कमाने की ताकत न हो तो कुछ नहीं, घर में बैठकर रोटी खा, परन्तु इस प्रकार घर-घर भीख के टुकड़े माँगकर

वर्षों के पश्चात् कंस की बहन देवकी से आपका भाई जब विवाह करेगा, तब आप समझ लीजिए कि देवकी से विवाह करनेवाला ही आपका भाई वसुदेव हैं ।"

❑ **वसुदेव का देवकी से विवाह :**

समय जाने पर वसुदेव कंस की बहन देवकी से विवाह करता है । कंस मथुरा के राजा का पुत्र था । वह बचपन से ही अन्यायी और अनीतिवाला था । सन्तों का दुश्मन था । उस समय भरतक्षेत्र में जरासंध नामक राजा प्रतिवासुदेव था । उसकी पुत्री जीवयशा के साथ कंस के विवाह करवाये गये थे । कंस जैसा उद्धत्त और घमण्डी था, उसकी पत्नी जीवयशा भी उन्मादी और उद्धत्त थी । कंस ने राज्य का मालिक बनने के लिए अपने पिता उग्रसेन राजा को क़ैद किया था, और स्वयं राजा बनकर प्रजा पर ज़ुल्म करता था । अपने बड़े भाई का ऐसा अत्याचार देखकर छोटा भाई संसार से विरक्त होकर साधु बन गया था । इस कंस को अपने ससुर जरासंध के राज्य और अपने बल-पराक्रम का नशा था । वह अभिमान में चूर होकर किसी के दुःख की परवा नहीं करता था । परन्तु ज्ञानी तो कहते हैं न कि - "राजा रावण का भी अभिमान नहीं टिका था ।' किसी का अभिमानन टिका है और न टिक सकेगा ।

यौवनं धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

ज्ञानी कहते हैं - "जिसके पास यौवन, धनसंपत्ति, प्रभुत्व और अविवेक - इन चारों में से एक ही हो तब-भी भयानक अनर्थ हो सकता हैं, तो फिर जब चारों इकट्ठे हो जाय, वहाँ कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है ? कंस में चारों अवगुण विद्यमान थे । उसके अत्याचार से प्रजा बहुत पीड़ित हो रही थी । सारे मथुरा में परेशानी फैल गयी थी । परन्तु दुष्ट कंस को किसी की परवा नहीं थी ।

एक दिन ज्योतिषियों को बुलाकर कंस पूछता है - "अहो ! इस संसार में मेरी समानता कर सके ऐसा कोई बलवान, पराक्रमी राजा है ?" कंस के मदयुक्त वचन सुनकर ज्योतिषियों का सिर चकराने लगा । मन ही मन सोचने लगे - 'अहो ! अभिमान ! तुम मनुष्य के हृदय में प्रवेश कर न जाने कितना कुछ कर सकता है ? तुम मनुष्य की कोमलता, सज्जनता आदि का नाश करनेवाला हो । विनय को तड़ीपार करनेवाले हो और तुम ही संसार में भटका देनेवाले हो । ज्योतिषी कोई उत्तर दे उससे पहले ही कंस कह उठता है - "आप तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं ! मैं कैसे प्रभावशाली हूँ कि मेरा जोप (भाग्य) देखकर ही आप असमंजस में पड़ गये लगते हैं !"

❑ कंस और ज्योतिषी :

ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! आपकी क्या प्रशंसा करे ? आप तो ऐसे पराक्रमी और बलवान हैं कि आपने पहले ही बार में धर्म का नाश किया है । न्याय-नीति को तो आपने तड़ीपार कर दिया है । आपकी आज्ञा मात्र से प्रजा काँपती हैं । आपने स्वयं अपने पूज्य पिताजी उग्रसेन को जेल में डाल दिया है । आपके जैसा पराक्रमी कौन हो सकता है ?" ज्योतिषियों के वचन सुनकर कंस खुश होने लगा । अभिमान के नशे में चूर कंस को पता नहीं कि यह मेरी प्रशंसा है या निंदा ? वह और आगे पूछने लगा - "यह तो मुझ में जो है वही आपने कहा है, परन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे जैसा कोई पराक्रमी राजकुमार है ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "साहब ! आपके ग्रह देखते हुए लगता है कि फिलहाल तो किसी बात की मुसीबत नहीं है, परन्तु कुछ वर्षों के बाद आपके कुल का नाश करनेवाला और यदुवंश का उद्धार करनेवाला एक महान पुरुष जन्म लेंगे, उन्हीं के हाथों आपका नाश होगा ।" यह सुनकर कंस कहने लगा - "बस इतना ही न ? इसका क्या यकीन ? उसकी कोई निशानी तो बताइए ?"

ज्योतिषियों ने कहा - "वे बकासुर आदि राक्षसों का वध करेंगे, कालीनाग को नाथकर उसका वध करेंगे । इसके अतिरिक्त और बहुत से कार्य करेंगे ।" तब कंस ने पूछा - "वह पुरुष कहाँ जन्म लेंगे ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! वे और कहीं नहीं मथुरा में ही यदुवंशी वसुदेव की पत्नी और आपकी बहन देवकी के पेट से जो सातवाँ पुत्र जन्म लेगा, वही आपका संहारक होगा । आपके ससुर जरासंध का विनाश कर तीनों खण्ड के स्वामी वासुदेव बनेंगे और साधु-सन्तों की बहुत सेवा करेंगे ।" ऐसी भविष्यवाणी सुनकर कंस का हृदय काँप उठा, फिर भी एक लगाम उसके हाथ में थी इसलिए उसे शांति थी । देवकी के विवाह अभी तक नहीं हुऐ थे । जब उसके विवाह होंगे तब वसुदेव को किसी भी प्रकार से बाँध लुँगा, और फिर ज्योतिषी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य नहीं होगा । ऐसा कंस सोचने लगा ।

एक बार ऐसा हुआ कि कंस की पत्नी जीवयशा देवकी के सिर में कंधी कर रही थी । उस समय कंस के छोटे भाई जो दीक्षा लेकर निकल गये थे, वे घुमते हुए मथुरा नगरी में पधारे और कंस के घर गौचरी के लिए आये । अपने देवर को गौचरी के लिए आया देखकर उत्तेजित हुई जीवयशा क्रोध में आकर बोलने लगी कि - "आपके भाई इतने बड़े राज्य के मालिक हैं, इतने बड़े राजा हैं और तुम घर-घर टुकड़े माँगते फिरते हो ? तुम्हारे में अगर कमाने की ताक़त न हो तो कुछ नहीं, घर में बैठकर रोटी खा, परन्तु इस प्रकार घर-घर भीख के टुकड़े माँगकर

वर्षों के पश्चात् कंस की बहन देवकी से आपका भाई जब विवाह करेगा, तब आप समझ लीजिए कि देवकी से विवाह करनेवाला ही आपका भाई वसुदेव हैं।"

❑ वसुदेव का देवकी से विवाह :

समय जाने पर वसुदेव कंस की बहन देवकी से विवाह करता है। कंस मथुरा के राजा का पुत्र था। वह बचपन से ही अन्यायी और अनीतिवाला था। सन्तों का दुश्मन था। उस समय भरतक्षेत्र में जरासंध नामक राजा प्रतिवासुदेव था। उसकी पुत्री जीवयशा के साथ कंस के विवाह करवाये गये थे। कंस जैसा उद्धत्त और घमण्डी था, उसकी पत्नी जीवयशा भी उन्मादी और उद्धत्त थी। कंस ने राज्य का मालिक बनने के लिए अपने पिता उग्रसेन राजा को कै़द किया था, और स़्वयं राजा बनकर प्रजा पर ज़ुल्म करता था। अपने बड़े भाई का ऐसा अत्याचार देखकर छोटा भाई संसार से विरक्त होकर साधु बन गया था। इस कंस को अपने ससुर जरासंध के राज्य और अपने बल-पराक्रम का नशा था। वह अभिमान में चूर होकर किसी के दुःख की परवा नहीं करता था। परन्तु ज्ञानी तो कहते हैं न कि - "राजा रावण का भी अभिमान नहीं टिका था।' किसी का अभिमानन टिका है और न टिक सकेगा।

यौवनं धन संपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

ज्ञानी कहते हैं - "जिसके पास यौवन, धनसंपत्ति, प्रभुत्व और अविवेक - इन चारों में से एक ही हो तब-भी भयानक अनर्थ हो सकता हैं, तो फिर जब चारों इकट्ठे हो जाय, वहाँ कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है ? कंस में चारों अवगुण विद्यमान थे। उसके अत्याचार से प्रजा बहुत पीड़ित हो रही थी। सारे मथुरा में परेशानी फैल गयी थी। परन्तु दुष्ट कंस को किसी की परवा नहीं थी।

एक दिन ज्योतिषियों को बुलाकर कंस पूछता है - "अहो ! इस संसार में मेरी समानता कर सके ऐसा कोई बलवान, पराक्रमी राजा है ?" कंस के मदयुक्त वचन सुनकर ज्योतिषियों का सिर चकराने लगा। मन ही मन सोचने लगे - 'अहो ! अभिमान ! तुम मनुष्य के हृदय में प्रवेश कर न जाने कितना कुछ कर सकता है ? तुम मनुष्य की कोमलता, सज्जनता आदि का नाश करनेवाला हो। विनय को तड़ीपार करनेवाले हो और तुम ही संसार में भटका देनेवाले हो। ज्योतिषी कोई उत्तर दे उससे पहले ही कंस कह उठता है - "आप तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं ! मैं कैसे प्रभावशाली हूँ कि मेरा जोप (भाग्य) देखकर ही आप अस़मंजस में पड़ गये लगते हैं !"

❑ कंस और ज्योतिषी :

ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! आपकी क्या प्रशंसा करे ? आप तो ऐसे पराक्रमी और बलवान हैं कि आपने पहले ही बार में धर्म का नाश किया है । न्याय-नीति को तो आपने तड़ीपार कर दिया है । आपकी आज्ञा मात्र से प्रजा काँपती हैं । आपने स्वयं अपने पूज्य पिताजी उग्रसेन को जेल में डाल दिया है । आपके जैसा पराक्रमी कौन हो सकता है ?" ज्योतिषियों के वचन सुनकर कंस खुश होने लगा । अभिमान के नशे में चूर कंस को पता नहीं कि यह मेरी प्रशंसा है या निंदा ? वह और आगे पूछने लगा - "यह तो मुझ में जो है वही आपने कहा है, परन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे जैसा कोई पराक्रमी राजकुमार है ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "साहब ! आपके ग्रह देखते हुए लगता है कि फिलहाल तो किसी बात की मुसीबत नहीं है, परन्तु कुछ वर्षों के बाद आपके कुल का नाश करनेवाला और यदुवंश का उद्धार करनेवाला एक महान पुरुष जन्म लेंगे, उन्हीं के हाथों आपका नाश होगा ।" यह सुनकर कंस कहने लगा - "बस इतना ही न ? इसका क्या यकीन ? उसकी कोई निशानी तो बताइए ?"

ज्योतिषियों ने कहा - "वे बकासुर आदि राक्षसों का वध करेंगे, कालीनाग को नाथकर उसका वध करेंगे । इसके अतिरिक्त और बहुत से कार्य करेंगे ।" तब कंस ने पूछा - "वह पुरुष कहाँ जन्म लेंगे ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! वे और कहीं नहीं मथुरा में ही यदुवंशी वसुदेव की पत्नी और आपकी बहन देवकी के पेट से जो सातवाँ पुत्र जन्म लेगा, वही आपका संहारक होगा । आपके ससुर जरासंध का विनाश कर तीनों खण्ड के स्वामी वासुदेव बनेंगे और साधु-सन्तों की बहुत सेवा करेंगे ।" ऐसी भविष्यवाणी सुनकर कंस का हृदय काँप उठा, फिर भी एक लगाम उसके हाथ में थी इसलिए उसे शांति थी । देवकी के विवाह अभी तक नहीं हुऐ थे । जब उसके विवाह होंगे तब वसुदेव को किसी भी प्रकार से बाँध लुँगा, और फिर ज्योतिषी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य नहीं होगा । ऐसा कंस सोचने लगा ।

एक बार ऐसा हुआ कि कंस की पत्नी जीवयशा देवकी के सिर में कंधी कर रही थी । उस समय कंस के छोटे भाई जो दीक्षा लेकर निकल गये थे, वे घुमते हुए मथुरा नगरी में पधारे और कंस के घर गौचरी के लिए आये । अपने देवर को गौचरी के लिए आया देखकर उत्तेजित हुई जीवयशा क्रोध में आकर बोलने लगी कि - "आपके भाई इतने बड़े राज्य के मालिक हैं, इतने बड़े राजा हैं और तुम घर-घर टुकड़े माँगते फिरते हो ? तुम्हारे में अगर कमाने की ताक़त न हो कुछ नहीं, घर में बैठकर रोटी खा, परन्तु इस प्रकार घर-घर भीख के टुकड़े

हमारे कुल को लज्जित कर रहे हो - इसलिए तुम्हारा यह भिखारीपन छोड़ दो ।" जीवयशा के घमण्डी वचन सुनकर मुनि ने कहा - "आप मुझे टुकड़े माँगनेवाला भिखारी मत कहिए, मैं भिखारी नहीं हूँ ।

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।
विणयं पाउंकरिस्साभि; आणुपुव्विं सुणेह मे ।।

- उ. सू. अ.-१. गा.-१

मैं बाह्य और आभ्यन्तर संयोगों से मुक्त निर्ग्रंथमुनि हूँ । जिस प्रकार मुझे कल्पना होती है उस प्रकार भिक्षाचरी करता हूँ ।" इस प्रकार शांत मन से मुनि ने जीवयशा से कहा, फिर भी वह ऐसा-वैसा बोलने लगी । तभी एक गाय वहाँ आती है । मुनि का शरीर तपश्चर्या से सूख गया है, इसलिए गाय का सींग लगने पर मुनि पृथ्वी पर गिर जाते हैं । ये मुनि संसारी थे, तब बहुत बलवान थे । भाभी ने ताना मारा था, इसलिए अपना बल दिखाने के लिए उन्हों ने पेड़ को एक मुक्के से जड़मूल से उखाड़ दिया था । इस मुनि को गिरा देखकर जीवयशा मजाक करते हुए कहने लगी - "अहो ! पेड़ को एक मुक्के को उखाड़ देनेवाले मेरे देवरजी ! तुम्हारा वह बल कहाँ गया है जो गाय के सींग के छुने पर पृथ्वी पर गिर पड़े ?"

कुछ भी हो, परन्तु मुनि छद्मस्थ थे । उन्हों ने गाय को एक उँगली से उठाया और तीन फेरे घुमाकर उसे दुःख न हो इस प्रकार धीरे से नीचे रख दिया और कहा - "देख मैं निर्बल नहीं हूँ, हम साधु शक्ति का अपव्यय नहीं करते ।" ३।। इंच की जिह्वा भयानक कार्य करती है । ३।। इंच की जिह्वा ३।। फूट के मनुष्य को जिन्दा जला देती है, इसलिए एक कवि ने कहा कि - "जिह्वा को वश में रखिए भाई, जिह्वा को वश में रखिए ।" ज्ञानी कहते हैं कि - "यह जिह्वा मधुर वाणी बोलने के लिए मिली है । इससे ऐसी मधुर और प्रिय भाषा बोलिए कि मनुष्य शोक में डूबा हो वह भी आनन्द में आ जाते हैं, परन्तु जहाँ आनन्द के झरने बहते हो, वहाँ आनन्द को शोक मे बदलनेवाली भाषा मत बोलिए ।"

जीवयशा के वचन से मुनि कह उठे - "जैनमुनि किसी दिन किसी जीव को दुःख हो ऐसी भाषा नहीं बोलते । भविष्य में ऐसा होगा ऐसा नहीं कहते । मगर यदि बोल दे तो ऐसा हुए बिना नहीं रहता है । मुनि ने कहा - "हे जीवयशा ! तुम इतना अधिक अभिमान किसलिए करती हो ? जो फूल खिलते हैं वह मुरझाने के लिए ही खिलते हैं । सूर्य अस्त होने के लिए उदित होता है । तुम अपने सौभाग्य पर इतना अधिक अभिमान कर रही है, वह खण्डित होनेवाला है । तुम्हारा सौभाग्य तिलक मिटने की तैयारी अब हो रही है । तुम जिसके सिर पर कंधी कर रहे है, वही देवकी तेरे पति को मारनेवाले की माता बनेगी । मैं तुम्हें क्रोध में आकर शाप तो नहीं देता, मगर भविष्य में जो होनेवाला है, वही कहता हूँ । मैं यही कहना

चाहता हूँ कि तुम अभिमान को छोड़कर सावधान बन जा ।" इतना कहकर मुनि चले गये ।

मुनि के वचन सुनकर जीवयशा का मुख फीका पड़ गया । उसका हृदय काँपने लगा । जीवयशा का उदास मुख देखकर कंस पूछता है - "आज आप इतनी उदास-चिन्तातुर क्यों बन गयी हो ?" आज प्रत्येक घर में माता से अधिक पत्नी का महत्त्व है । आप बाहर से आये, एक ओर आपकी श्रीमतीजी बीमार होकर सोयी है, दूसरी ओर माता पलंग में बीमार होकर सोयी हैं । अब आपका चित्त पहले किसकी ओर आकर्षित होगा ? आपकी माता की ओर या पत्नी की ओर ? आप पहले किस से मिलेंगे ? बोलिए । श्रीमतीजी की । (सभा में सब हँसते हैं ।)

कंस जीवयशा की उदासीनता का कारण पूछता है, तब जीवयशा मुनि के पधारने से लेकर भविष्यवाणी तक की बातें कह सुनाती है । यह सुनकर कंस अत्यन्त भयभीत हो जाता है । मुनि और ज्योतिषी के वचन एक समान लगते हैं । फिर भी ज्योतिषी के वचन मिथ्या हो सकते है, मगर तीनों काल में मुनि के वचन मिथ्या नहीं होते । अब क्या होगा ? यह सोचकर कंस भयभीत हो गया । हृदय में भय फिर भी पत्नी से कहता है - "तुम ऐसा ड़र मत रखो । वर्तमान में मेरे समान कोई बलवान दिखाई नहीं देता है । दूसरा, जब देवकी के विवाह होंगे, तब मैं उसे देख लुँगा ।" समय जाते ही देवकी बड़ी हुई और उसके विवाह वसुदेव के साथ करवाया गया । विवाहोपरान्त कंस ने बारात को रोक लिया । इस समय कंस ने अपने बहनोई वसुदेव को कपट से जुआ खेलने के लिए बिठाया । वसुदेव खेलने के मुड़ मे न थे, परन्तु साले के अति आग्रहवश जुआ खेलने बैठे । आप अभी विवाह आदि अवसरों में जुआ खेलते हो यह बात सत्य है न ? बन्धुओं ! जुआ सात व्यसनों में से एक व्यसन है ।

"द्युतं च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चोरी परदार सेवा ।
एतानि सप्तानि व्यसनानि लोके, घोराति घोरे नरके पतन्ति ।।

धर्मराजा जैसे सत्यनिष्ठ पुरुष जुआ खेलने बैठे तो न जाने कितना अनर्थ हो गया ? उसमें धर्मराजा को जुआ खेलने के भाव (दिलचस्पी) नहीं थे । कौरवों ने उन्हें कपट से खेलने के लिए बिठाया और वे खेले; और खेले भी इतने कि सती द्रौपदी तक को भी जुएँ में हार गये । इसी कारण इतना भयानक 'महाभारत' रचा । यहाँ भी कंस ने कपट से वसुदेव को जुआ खेलने के लिए बिठाया । खेलने से पहले कंस ने वसुदेव के साथ ऐसी शर्त लगायी कि मैं यदि हार जाऊँ तो मेरा राज्य आपको सौंप दुँगा और अगर आप हार जाय तो मेरी बहन देवकी की प्रथम सात प्रसवकाल (सौरी) मेरे राज्य में ही बिताना ।" वसुदेव के हृदय में कपट न था, उन्हों ने यही विचार किया कि-'देवकी अपने भाई के घर जन्म दे इसमें मुझे

क्या आपत्ति हो सकती है ? यह तो उसका मायका है ।' इसलिए वचन से बँध गये । फिर यह भी सोचने लगे कि - 'कंस ने ऐसा वचन किसलिए माँगा होगा ?' कंस के कपट को वे जान न सके और वचन से बँध गये । परिणामत: वे जुएँ में हार गये ।

समय जाने पर देवकी के प्रसवकाल का (समय) अवसर आया । देवकी कंस के घर पर आती है । देवकी जिस बच्चे को जन्म दे, उसे तत्काल मार डालना यही कंस का इरादा है । देवकी बच्चे के जन्मसमय में हरिणगमेषी देव उपस्थित ही रहते और देवकी के पुत्रजन्म के उपरान्त तुरन्त वे देव उसे उठाकर ले जाते और मृत-पुत्रीओ को लाकर रख देते । इस प्रकार छ-छ बार देवकी के साथ ऐसा हुआ । देवकी के प्रथम छ पुत्र कहाँ पर पले थे यह आपको मालूम है ?

भद्दीलपुर नगरी, नाग गाहावइ जान,
सुलसा घर बढ़ियाँ, सुन नेमी के वाण ।

पुत्रों के जन्म होतें ही भद्दीलपुर नगर में हरिणगमेषी देव छोड़ आता और सुलसा की कोख से जो मृतपुत्री जन्म लेती उसे देवकी के पास लाकर रख देता । कंस सोचता कि 'ये तो मृतपुत्रियों को ही जन्म देती है ।' फिर भी उसे सातवें गर्भ का भय है । अब देवकी सातवी बार गर्भवती होती है । इस समय कंस बहुत सतर्क था । उसने पहले से ही देवकी और वसुदेव को कारागार में डाल दिये थे और चारों ओर सख्त पहरा लगा दिया था । कंस राह देखकर बैठा था कि कब देवकी पुत्र को जन्म दे और कब मैं उसे मारुँ ! परन्तु जब उत्तम पुरुषों का जन्म होता है तब प्रतिकूल संयोग भी अनुकूल बन जाते हैं ।

देवकी पहले गर्भ धारण करती तब वह सिंह का सपना देखती थी, परन्तु इस बार उसने सात उत्तम सपने देखे थे, इसलिए वसुदेव और देवकी के हृदय में खुशी थी कि इस समय वीर, साहसी, पराक्रमी और साधुसन्तों की भक्ति करनेवाले पुत्र का जन्म होगा, अत: इस समय किसी भी प्रकार की रक्षा करनी है । देवकी ने पहले से ही अपने बचपन की सखी यशोदा जो गोकुल में रहती थी, जो नन्द भरवाड़ की पत्नी थी, उसके साथ संकेत कर रखा था । संकेत भी कैसा था ? देवकी और यशोदा दोनों एकसाथ गर्भवती थी । श्रीकृष्ण जन्म होते ही एक चमत्कार हुआ । महान पुरुषों के जन्म होने से पहले कैसा चमत्कार होता है ? जब भगवान शांतिनाथ माता के गर्भ में आये तब गाँव में महामारी का रोग फैल गया था । लाखों लोग मर गये थे । उस समय भगवान शांतिनाथ की माता ने छत पर जाकर नगर के चारों ओर दृष्टि की तो तत्काल महामारी का रोग शांत हो गया । महान पुरुषों के जन्म से पहले भी ऐसा ही प्रभाव होता है ।

श्रीकृष्ण के जन्म के समय पहरेदार घोर निद्रा में सो गये । सारा नगर सो रहा है, वसुदेव की ज़ंज़ीरे टूट जाती हैं । बाद में श्रीकृष्ण के जन्म के साथ ही टोकरी में सुलाकर वसुदेव गोकुल में यशोदा के घर छोड़ आते है और यशोदा ने उसी समय मृतपुत्री को जन्म दिया था उसे ले आते हैं और उसे देवकी के पास रख देते हैं । इस बात की किसी को कोई जानकारी नहीं है । सुबह होते ही कंस को मालूम हुआ कि देवकी ने बालक को जन्म दिया है । कंस दौड़ता हुआ आया और पुत्र की माँग की, तो देवकी ने मृतपुत्री को दिया । यह देखकर कंस बहुत खुश हुआ और घमण्ड से कहने लगा - "अहो ! मुनि और ज्योतिष दोनों के वचन जूठे हुए । उन्हों ने तो कहा था कि सात पुत्रों होंगे, परन्तु इसने तो सातों मृतपुत्रियों को जन्म दिया है । अब मुझे इस दुनिया में कौन मारनेवाला है ?" कंस ने मृत-पुत्री को भी पैरों से पकड़कर पत्थर पर पटका । मृत-कलेवर (शरीर) पर भी उसने क्रोध करने में कुछ शेष नहीं रखा था ।

अब कंस निर्भय बनकर बेफाम (स्वच्छंदी) व्यवहार करने लगा । उसका अभिमान बढ़ने लगा । वह अपने आपको बहुत ही शूरवीर मानता था । ज्योतिषियों को बुलाकर कहता है - "देखिए ! आपके वचन मिथ्या हुए ।" तब ज्योतिषियों ने कहा - "महाराज ! आप भूल रहे हैं । आपका दुश्मन जन्म ले चुका है और बड़ा भी हो रहा है ।" कंस ने कहा - "इसका प्रमाण ?" तब ज्योतिषियों ने कहा - "आपके पहलवानों और आपके मुख्य मदोन्मत्त बैलों को चुटकी में खत्म कर डालेगा ।"

माता देवकी ने सात-सात पुत्रों को जन्म दिया, मगर उन्हें प्यार से न खिला सकी, न पाल सकी और न ही दूध-पान करवाये । पहले छ पुत्रों की तो देवकी को खबर तक नही हैं, परन्तु सातवाँ पुत्र यशोदा के घर पर है, यह तो वे जानती थी, इसलिए जब कभी अपने पुत्र की याद आती, देवकी चूपके से गोकुल जाकर दूध-पान करवा आती । इस प्रकार करते हुए श्रीकृष्ण ने किशोरावस्था में कदम रखे । इस ओर कंस ने सोचा कि 'क्यों न मैं अपने बैलों को छोड़ दूँ ? अगर मेरा दुश्मन ज़िन्दा होगा तो ज्योतिष के वचन सत्य होंगे ।' यह बैल बहुत उन्मत्त है । उसे छोड़ दिया गया तो वै बैल घुमते-फिरते यमुना के किनारे आये । मदोन्मत्त बैलों को देखकर लोग ड़रने लगे । सभी अपने-अपने घरों में घुस गये । यशोदाजी ने श्रीकृष्ण से कहा - "बेटे ! ये बैल बहुत ही उद्यमी हैं । वे तुझे मार डालेंगे, इसलिए घर में आ जा ।" परन्तु कृष्ण कायर न थे । उन्हें लगा कि बैल कितने सारे लोगों को परेशान करते हैं, उन्हें वश किये बिना चलेगा नहीं । वह यशोदा का हाथ छोड़कर दौड़ा और बैलों के सींगो को पकड़कर चुटकी में मच्छर की तरह मसल दिया । ऐसा श्रीकृष्ण का शौर्य था, पराक्रम था, क्योंकि वे वासुदेव थे ।

देवानुप्रियों ! इस संसार पर हिंसा का ताण्डव बढ़ा । अज्ञानी लोग हिंसा में धर्म मानने लगे । बकरे, हिरन, पाड़े आदि निर्दोष गूँगे प्राणियों की यज्ञ में आहुति देने लगे । तब उस हिंसा का निवारण करने के लिए महावीरस्वामी का जन्म हुआ । उसी प्रकार जब दुष्टों का उपद्रव बढ़ा तब उन दुष्टों का दमन करने के लिए श्रीकृष्ण वासुदेव का जन्म हुआ । श्रीकृष्ण ने छ दुष्टों पर विजय पाया था - (१) कालीयनाग (२) कंस (३) जरासंध (४) दुर्योधन (५) कालयवन (६) नरकासुर ।

❑ प्रथम दुष्ट कालीयनाग :

कालीयनाग भयानक था । उसे वश करना असम्भव था । परन्तु कृष्ण ने खेलते हुए उसकी पीठ पर बैठ गये । एक हाथ में बाँसूरी है । बाँसूरी बजाते-बजाते दूसरे हाथ से उसका मस्तक काट डाला । परन्तु यह क्या नाग का एक मस्तक काटते कि दूसरा मस्तक आ जाता था । दूसरा काटा तो तीसरा । इस प्रकार श्रीकृष्ण कालीयनाग के मस्तक काटते गये और नये-नये मस्तक आते गये । इस प्रकार एक हज़ार मस्तक पैदा हुए, उन सभी को श्रीकृष्ण ने एक हाथ से काट डाले और दुष्ट कालीयनाग का नाश किया ।

❑ दूसरा दुष्ट कंस :

कंस महान पापी और अभिमानी था । वह श्रीकृष्ण का मामा था । वह समझता था कि इस संसार में मेरे जैसा कोई पराक्रमी है ही नहीं, परन्तु कहावत है न कि - **'सेर के माथे सवासेर होता है ।'** यह कहावत श्रीकृष्ण ने सार्थक की । एक दिन श्रीकृष्ण ने कंस के अभिमान को चुर-चुर कर दिया । उसकी सारी ताकत, मस्ती, आतंक को धूल में मिला दिया । जब कंस का वध हुआ तब जीवयशा अपने पिता जरासंध के पास आकर गुस्से से कहने लगी - "पिताजी ! आप तो प्रतिवासुदेव हो । आपके होते हुए मुझे कृष्ण ने विधवा बनाया है । अगर आप शक्तिशाली हो तो कृष्ण का नाश कीजिए, तभी मेरी आत्मा को शांति मिलेगी ।" यह सुनकर अभिमानी जरासंध श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लिए तैयार हुआ । उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने जरासंध का वध किया । जीवयशा स्वयं विधवा हुई और अपनी माता को भी विधवा बनाया । अर्थात् **तीसरा वध किया जरासंध का । चौथा दुष्ट था दुर्योधन ।** उसने भरीसभा में द्रौपदी का चीरहरण किया था । उसका भी श्रीकृष्ण ने वध करवाया । **पाँचवाँ कालयवन और छठ्ठा था नरकासुर ।** इन दोनों का वध करने के लिए भी इस महान पुरुप श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था ।

देवानुप्रिय ! श्रीकृष्ण ने जैसे छ दुष्टों पर विजय प्राप्त किया था उसी प्रकार जीव को भी छ दुष्टों पर विजय पाना है । आत्मा के सामने भी छ दुष्ट खड़े

हैं । उसका नाश करने के लिए आत्मा ही श्रीकृष्ण ही हैं । वे छ दुष्ट कौन से हैं यह आप जानते हैं ? काम-क्रोध-मद-मत्सर-ईर्ष्या और तृष्णा । आप भी इन छ दुष्टों पर विजय पाओ । आपके सामने भी कालीयनाग फुफकार रहा है । आप उसे देख सकते हैं ? मैं आप सब के पास उस कालीयनाग को देखती हूँ । बोलिए, वह कालीयनाग कौन होगा ? आपकी तृष्णा कालीयनाग समान है । कालीयनाग के सिर तो बहुत कम हैं, किन्तु आपकी इच्छा तो कितनी है ? *'इच्छा हु आगास समा अणन्तिया ।'* आकाश का जैसे अन्त नहीं है, उसी प्रकार इच्छा का भी अन्त नहीं है । अगर आपको सुखी होना हो तो काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जड़मूल से नष्ट कीजिए । श्रीकृष्ण को उसकी माता ने जन्म दिया था । आपको भी आपकी माता ने जन्म दिया है । वे भी एक मनुष्य ही है । हम भी मनुष्य है । जो चाहे कर सकते हैं । चाहे भले ही एक पुत्र हो मगर शूरवीर होना चाहिए । एक कवि ने भी कहा हैं कि -

"माता जन्म दे तो भक्त को दे, या दाता या शूर,
नहीं तो अच्छा है बाँझ रहना, पर मत गँवाना नूर ।"

हे माता ! तुम जन्म दो तो ऐसे पुत्र को जन्म देना कि वह या तो भक्त हो, या दाता या फिर हो शूरवीर ! अगर ऐसा पुत्र न हो तो अच्छा है तुम बाँझ ही रहो, परन्तु कायर पुत्र को कभी जन्म मत देना । जिसका चारित्र शुद्ध है, जो विशेष प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वही शूरवीर पुत्र पैदा कर सकता है । विशेष भोग के कीड़े तो कीड़े जैसा ही पुत्र ही पैदा करते है । इसलिए ऐसे पुत्र को जन्म देने के बजाय बाँझ रहना श्रेष्ठ है । श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर अनेक दुःखियों के दुःख दूर किये हैं । उसका जीवन सदा परोपकारमय था ।

'गीता' में अर्जुन को उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा - "हे अर्जुन ! जब पृथ्वी पर पाप का बोझ बढ़ेगा तब पाप का बोझ उतारने के लिए मैं जन्म लुँगा ।" इन शब्दों के आधार पर एक कवि ने उसकी कल्पनाशक्ति से एक रूपक बनाया है । इस कवि की कल्पना है -

कवि की कल्पना का रूपक :

श्रद्धानन्द नामक एक भक्त ब्रह्माजी के पास गया । जाकर कहा - "प्रभु ! एक सन्देश लेकर आया हूँ । मैं कृष्ण के सामने एक फरियाद लेकर आया हूँ ।" ब्रह्माजी ने कहा - "भाई ! तुझे श्रीकृष्ण के सामने क्या फरियाद है ?" ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण से कहा कि - "मृत्युलोक से मृत्युलोक के मनुष्य का पक्ष लेकर श्रद्धानन्द वकील आपके सामने फरियाद लेकर आया है । इसलिए हे श्रीकृष्ण ! आपने कोई वकील तैयार रखा है या नहीं ?" कृष्ण ने कहा - "मेरा कोई वकील

व्याख्यान - १५

पंद्रह अगस्त : आत्म आज़ादी के आलम में

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शास्त्रकार भगवन्त ने जगत के जीवों को जन्म जरा और मृत्यु के दुखों से घिरा देखकर सच्चा सुख कैसे प्राप्त किया जाय, उस लक्ष्य से आगम को प्ररूपणा की । आगम अर्थात् आईना । आत्मा पर अनादिकाल से काम - मोह - क्रोध और कषायरूपी दाग़ लगे हैं, उसे दूर करने के लिए आगमरूपी आईने की आवश्यकता है । वर्षों तक साधना कीजिए मगर जबतक कषाय वृक्ष की जड़ों को नष्ट नहीं करोगे तबतक भव का अन्त नहीं आयेगा । कषाय यानी क्या ? कष + आय । जिससे संसार का लाभ हो । कषाय द्वारा संसार बढ़ता है । भगवान फरमाते हैं - "हे जीव ! कषाय की ज्वाला भभकने का समय आये तब तुम सावधान बन ।" कषाय पर जितना विजय प्राप्त होगा उतना भव का अन्त जल्दी आयेगा । कर्म के बन्धन तोड़ने के लिए मनुष्यजन्म जैसा अन्य कोई उत्तम जन्म नहीं है । कर्मों को रोकने के लिए व्रत-प्रत्याख्यान की आवश्यकता है । घर के द्वार खुले होंगे तो कुडा-कचरा भी जम जायेगा, परन्तु बन्द होंगे तो नहीं जमेगा । उसी प्रकार हमारे जीवन में आस्त्रव के द्वार खुले होंगे तो कर्म का कचरा जम जायेगा । परन्तु व्रत-प्रत्याख्यान द्वारा आस्त्रव के द्वार बन्ध किया जायेगा तो नये कर्म का प्रवाह (आना) रूक जायेगा । कर्मरहित आत्मा बनती है तब आत्मा की आज़ादी मिली माना जायेगा । हमारा विषय है 'आत्म आज़ादी के आलम में ।' आज पंद्रह अगस्त है । आज़ादी का अर्थ जानते हैं ? आ = आत्मा, ज़ा = जाज्वल्यमान, दी = दीया, जब आत्मा में [illegible] न और के [illegible] के दीये प्रकट हो उठते है, तब सच्ची आज़ादी प्राप्त [illegible] सकती है [illegible] ब्रिटीश

जुनून होगा ! बन्धुओं ! अगर आप को परतंत्रता खलती हो, तो स्वतंत्रता प्राप्त करने पुरुषार्थ कीजिए ।

अंग्रेजों ने भारत पर किस प्रकार सत्ता जमायी थी - यह बात जानने जैसी है । मोगल सम्राट जहाँगीर के समय में सर थोमस रो नामक एक अंग्रेज ने एक राजकुमारी को बीमारी से वैदिक चिकित्सा द्वारा स्वस्थ किया । इससे बादशाह ने खुश होकर उसे इनाम माँगने को कहा । तब उसने अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने देने की अनुमति देने कि लिए प्रार्थना की । बादशाह ने प्रार्थना का स्वीकार किया । इस प्रकार व्यापार के बहाने अंग्रेजों ने भारत में कदम रखे और समय जाने पर कुछ वर्षों बाद व्यापार के बजाय राज्य पर अधिकार प्राप्त किया । अंग्रेज भारत-वासियों को बहुत परेशान करने लगे, इसलिए भारत-वासियों को यह परतंत्रता बहुत खलने लगी, परन्तु अंग्रेज सरकार ने ऐसा अड्डा जमाया था कि वे किसी प्रकार भारत को छोड़ जाय ऐसा था ही नहीं । मगर जब महात्मा गाँधी ने नमक के बहाने अंग्रेजों के सामने आंदोलन छेड़ा, तब उसमें अनेक युवकों ने साथ दिया । उस आंदोलन में आज़ादी प्राप्त करने हेतु अनेक बाँके ज़वानों ने अपना खून सिंचा था । अनेक उसमें शहीद हुए थे, तब भारत आज़ाद हुआ है । उसकी आज आप खुशियाँ मनाते हों और ध्वजवन्दन करते हो और मानते हों कि हम स्वतंत्र हुए हैं, परन्तु सचमुच आप अभी तक स्वतंत्र नहीं हुए हैं । स्वतंत्रता का अर्थ आप समझे ही नहीं हैं । आप मोह, माया, ममता और परिग्रह के बन्धन से बँधे हैं । गुलामी दो प्रकार की हैं - एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तर । आज भारत को स्वतंत्रता दिलायी, परन्तु देश में कितनी सारी मुसीबतें आ रही हैं, प्रत्येक दिन नये-नये आक्रमण बढ़ते जाते हैं और प्रजा के सिर पे मुसीबतें आती-जाती है । इस राजकीय गुलामी से मुक्त हुए नहीं है और फिर कर्म की आभ्यन्तर गुलामी तो शेष है । यह गुलामी जबतक नहीं जायेगी तबतक कुछ होनेवाला नहीं है । मैं आपसे पूछती हूँ कि हमने आज़ादी तो पायी, परन्तु आज़ादी पाकर फायदा किया या बरबादी की ? इसका विचार करना । आज भारत में स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता बढ़ गयी है । खैर, जाने दीजिए इस बात को, हमें तो आत्मा की आज़ादी कैसे मिले यह समझना है । ब्रिटीश की गुलामी में भारत २५० वर्षों तक रहा, परन्तु हमारी आत्मा कर्मरूपी ब्रिटीश सरकार की गुलामी के नीचे न जाने कितने कालों से दबी हुई है, यह जानते हैं ? यह परतंत्रता एक हज़ार-दो हज़ार वर्ष की नहीं, अपितु अनन्तकाल से जीव कर्मराजा की गुलामी में पड़ा है । उसे स्वतंत्र बनाने का कभी विचार आया है ?

कर्म-ब्रिटीश ने तो अनन्तकाल से आत्मा को चतुर्गति संसार में भटकाकर हैरान-परेशान किया है । कर्म ब्रिटीश ने आत्मा को नरक में भेजा, वहाँ जघन्य

दस हज़ार वर्षों का और उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम का आयुष्य है । जिस जीव को जितनी स्थिति मिली इतना समय नरक गति के छेदन, भेदन, दहन, भूख-प्यास, गर्मी-ठंड आदि दुःख सहे हैं । तिर्यंचगति में भी पराधीन रूप में कितने कष्ट सहे, पानी के बिना तडपने पर भी मालिक बाँध को बाँधकर ही रखे तो बेचारा पानी कहाँ से पी सकता है ? और भूख लगने पर भी भोजन न दे तो कैसे खा सकता है ? यह तो नरक और तिर्यंचगति की बात हुई । मनुष्यभव में भी अनेक जीव भयानक दुःख सहते है । अज्ञानी जीव कर्म बाँधते समय सोचता नहीं है, परन्तु भुगतने पड़ते हैं, तब कितनी आनाकानी करता है और ज्ञानीपुरुष उदित हुए कर्मों को समता से सहते हैं । अन्यथा कर्मराजा तो उसकी हुकूमत पूर्ण रूप से चलाते हैं । कर्म को शर्म नहीं है ।

महान पुरुषों ने आत्मा को कर्म की जंज़ीरों से मुक्त बनाने के लिए तप, त्याग, संयम, व्रत-नियम इत्यादि कैसी उग्र साधना की, तब केवलज्ञान प्राप्त कर सके । आज के वैज्ञानिक युग में बहुत दूर की वस्तु को देखने के लिए दूरबीन रखना पड़ता है, तब हमारे भगवन्त को दूरबीन की आवश्यकता न थी । उनके पास केवलज्ञान रूपी दूरबीन था । अतः तीनों लोक के पदार्थों को देख सकते थे । यह दूरबीन जिसके पास होता है, वह आत्मा को देख सकता है । आत्मा को देखने के लिए आपका दूरबीन काम में नहीं आयेगा, इसके लिए केवलज्ञान रूपी दूरबीन चाहिए । उस केवलज्ञान को प्राप्त करने के लिए अघोर साधना करनी चाहिए । सब से पहले आत्मा पर आनेवाले कर्म-प्रवाह को रोकने के लिए व्रत-प्रत्याख्यान कीजिए । आज तो व्रत-पच्चक्खाण की बात आये तो कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि - 'हमारा मन मज़बुत है । हम मन से पालते हैं, फिर व्रत-पच्चक्खाण की क्या आवश्यकता है ? समझिए, काया और वाणी पर नियंत्रण रखे बिना मन वश में आयेगा नहीं । व्रत-नियम के द्वारा सब से पहले हमें अपनी काया और वाणी को वश करने हैं । उसके बाद मन से पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा ली जाती है । पाप को रोकने के लिए व्रत स्वीकारने चाहिए । जितना व्रत-नियम में आयेंगे उतना अविरति का द्वार बन्द होगा । जबतक पच्चक्खाण नहीं करोंगे तबतक क्रिया आया करती है । इस बात को आप को श्रद्धापूर्वक और बुद्धिपूर्वक मानना ही पड़ेगा । देखिए, आप को समझाती हूँ । आप के घर में नल है । उसका वह उपयोग नहीं करता, फिरभी उसे उसका टैक्स भरना पड़ता है न ? परन्तु यदि वह नगरपालिका को नोटिस दे दे तो उसे टैक्स भरना नहीं पड़ेगा, उसी प्रकार पच्चक्खाण भी नोटिस है । इसलिए पाप को पच्चक्खाण की नोटिस दीजिए । व्रत स्वीकारने के बाद उसके पालन में दृढ़ रहिएगा, क्योंकि व्रत लेने के बाद बाह्य और आंतरिक - इन दोनों प्रकार के आकर्षण यदि आ जाय तो दृढ़तापूर्वक कष्टों

को सहकर व्रत का पालन करने में अपना सत्व विकसित करना, परन्तु ढ़ीले मत पड़ना, तभी आत्मा की आज़ादी प्राप्त कर सकोंगे ।

❑ कर्मरूपी ब्रिटीश के बन्धन से छूटने के लिए तप के हथियार :

आत्मा की आज़ादी प्राप्त करने के लिए महान पुरुषों ने कर्मरूपी ब्रिटीश की सत्ता को उठा देने के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया । आत्मा को कर्म की कैद से मुक्त करवा कर सच्ची आज़ादी दिलाने के लिए तप कीजिए । शास्त्रकार ने कहा है कि - *"तवेणं भन्ते जीवे किं जणयइ ? तवेणं वोदाणं जणयइं ।"* तप करने से जीव को क्या लाभ होता है ? तब प्रभु ने कहा - "हे गौतम ! तप करने से कर्म कमज़ोर हो जाते हैं अर्थात् - कर्मों का क्षय हो जाता है । जो-जो तपस्वी तप करते हैं उनके कर्मों अवश्य क्षय होनेवाले हैं । तपस्वी तप कर कर्म को खपाकर सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करते हैं । आपको नहीं पाना ? स्वतंत्रता यानी क्या ? स्व = अपना, तंत्र = शासन, हुकूमत, सत्ता । अपनी सत्ता अपने पर हो तभी सत्ता जमा सकते हैं । आज हमारे पर मन और इन्द्रियों ने सत्ता जमायी होने से आत्मराजा स्वतंत्र होने पर भी अपना स्वतंत्र शासन कर सकता नहीं है और आज़ादी का मज़ा ले सकता नहीं है । स्वतंत्रता तो सबको पसन्द है, परन्तु सहना किसी को पसन्द नहीं है । भूतकाल में आत्माएँ कैसी पवित्र थी ? उन्होंने आत्मा को कर्म के सिकंजे से मुक्त कराने के लिए कितना सहा है ? यह पढ़कर तो हमारा कलेज़ा काँप उठता है । हमारे परम पिता महावीर-प्रभु ने आत्मा की आज़ादी पाने के लिए छद्मस्थावस्था में कितने कष्ट सहें । फिर भी मन में ज़रा सा भी दुःख नहीं रखा, इसीलिए सिद्धि के सुखों की सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त की।

सिद्ध दशा यानी सच्ची स्वतंत्रता । जबतक जीव संसार में भटकता है तब-तक वे परतंत्र हैं । आपको तो संसार में रहना है और स्वतंत्र बनना है । हँसना है और आटा खाना है । आग में बसना है और जलना नहीं है । चुले में हाथ ड़ालता है और शीतलता चाहिए, कहाँ से मिलेगी ? वैसे संसार और स्वतंत्रता ये दोनों शब्दों का कभी मेल खाता नहीं है । इस संसार में तमाम प्राणियों को परतंत्रता में पकड़ रखनेवाली और स्वतंत्रता के विरोध में आनेवाली चार परेशानियाँ हैं । स्वतंत्रता अर्थात् जहाँ किसी प्रकार की परेशानी न हो उसका नाम है स्वतंत्रता और जहाँ परायी परेशानी हो उसका नाम है परतंत्रता । जबतक जीव स्वतंत्रता का आनन्द (मज़ा) न लूटे तबतक वह बँधा रहता है । कर्म की परेशानियाँ जाय तब सच्ची स्वतंत्रता आती है । मूल आठ कर्म हैं, उसमें चार घाती हैं और चार अघाती । उसमें सब से प्रथम ज्ञानावरणीय कर्म, उसने अनन्तज्ञान-गुण छुपाया है । ज्ञानावरणीय का दूसरा भाई दर्शनावरणीय है । वह जीव को सत्य वस्तु का ज्ञान होने देता नहीं है । इस कर्म ने अनन्तदर्शन-गुण ढँका हैं । मोहनीय कर्म जीव

को व्याकुल करता है और अंतराय कर्म अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग और अनन्त वीर्य में बीच आते हैं । पास में करोड़ों रुपये हो मगर दान कब दिया जा सकता है ? अंतराय कर्म की सत्ता टूट जाय तब न ? ज्ञानावरणीय आदि चार घातीकर्मों का संपूर्ण क्षय हो तब केवलज्ञान होता है । ये चार घातीकर्म गये तो मान लीजिए कि सच्ची स्वतंत्रता आ गयी । नाम-कर्म और आयुष्य-कर्म से क्या हानि है ? उल्टा ऐसी दशा को प्राप्त आयुष्य यदि लम्बा हो तो लाखों जीवों का कल्याण होता है । श्री ऋषभदेव भगवान जो कर सके वह भगवान महावीरस्वामी न कर सके । क्योंकि उनका आयुष्य कम मात्र ७२ वर्ष का था, जिस में ४२ वर्ष तो साधना के ही थे । जबकि ऋषभदेव भगवान की साधना का समय एक लाख पूर्व का था, अतः उनके आयुष्य से करोड़ों जीवों को लाभ हुआ । कहने का आशय यह है कि अघातीकर्म जीव को हानि पहुँचाते नहीं हैं । आत्मा का अहित करनेवाले हो तो चार घातीकर्म हैं । उन चार घातीकर्मों के जाने पर जीव तेरहवें गुणस्थानक में जाता है और केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त कर सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करता है । अन्यथा बिना समझे चाहे कितनी में मेहनत करेंगे तब भी सच्ची स्वतंत्रता मिलेगी नहीं । सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनेवाले और दिलानेवाले सर्वज्ञ प्रभु महावीरस्वामी कहते हैं - "आप सत्य वस्तु को समझिए और समझने के बाद उसे पाने की शक्ति प्राप्त कीजिए और आगे बढ़िए ।"

ज्ञानावरणीय की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए श्रुत का अभ्यास कीजिए । दर्शन मोहनीय की बेड़ी तोड़कर समकित को सुदृढ़ कीजिए । अविरति की बेड़ी तोड़कर विरति को वरिए । चौथे से पाँचवें गुणस्थानक में आईए और देशविरति बनिए । इससे आगे बढ़कर छठवें में आकर सर्वविरति बनिए । वहाँ से आगे बढ़कर सातवें में आकर प्रमत्त अवस्था की बेड़ी तोड़कर अप्रमत्त बनिए । एसी उच्च कक्षा प्राप्त कर तेरहवें गुणस्थानक में आकर आत्मा की सच्ची आज़ादी पाइए । फिर कहिए कि मैं स्वतंत्र हुआ । संसार के अज्ञान जीवों को सच्ची स्वतंत्रता का ज्ञान नहीं है, इसलिए यहाँ वहाँ भटकते हैं । तेरहवें से चौदवें में गये कि योग का बन्धन भी टूट गया, इसलिए शाश्वत स्वतंत्रता है फिर जन्म-मरण नहीं है ऐसा समझकर कर्म की परतंत्रता को जड़-मूल से नष्ट कीजिए । आज तो स्वतंत्रता चाहिए और स्वच्छंदता बढ़ती जाती है । महात्मा गाँधी को आज आप याद करते हो, परन्तु उनके आदर्श जीवन में कभी अपनाये है ? उन्होंने कभी सिया हुआ कपड़ा पहना नहीं है । प्रथम श्रेणी की यात्रा नहीं की है । स्वादिष्ट भोजन भी खाये नहीं है । उनका जीवन सादा और स्वावलम्बी था, परन्तु आपको तो पैसा बढ़े तो ठाठबाठ बहुत करते हैं । तृतीय श्रेणी में यात्रा नहीं करते, कपड़ों को वोशिंग कंपनी में धोये हुए चाहिए । स्वादिष्ट भोजन, नौकर-चाकर के बिना

यह खेल ! उसकी माता इधर-उधर जाती तो नौकरानी घर के द्वार खोल डालती थी । लड़की को खाने-पीने, उसके कपड़े धोने आदि काम नौकरानी करती है । बाप को अरुणा की बहुत दया आती, वह अपनी पत्नी से कहते भी है कि - "तुम इतनी अधिक कठोर क्यों बन गयी हो ? जैसी है, वह तुम्हारी पुत्री है । उसकी दवाई करवानी चाहिए ।" पत्नी ने कहा - "आप को उसकी दवाई करवानी हो तो कीजिए । मुझे अब कुछ कहेंगे तो मैं कुएँ में गिरकर जान दे दुँगी ।" तब उसका पति उसे कहता - "हे स्त्री ! तुम माँ होकर भी इतनी निष्ठुर क्यों बन गयी है ?" अरुणा के पिता अपनी पत्नी को बहुत समझाते है, परन्तु वह मानती नहीं, तब बाप चुपके से उसे मिल आता । खाना आदि देता । डॉक्टरों से पूछ आता कि ऐसे रोग़ में कौन-सी दवाई काम करेगी ? इस प्रकार दवाईयाँ लाकर नौकरानी को देता । इस प्रकार दवाई कराने पर लड़की वेदनीय कर्म का अन्त आया और उसका सारा पीब सूख गया, दाग़ मिट गये, परन्तु चमड़ी जो गोरी, थी, वह काली पड़ गयी । अब लड़की ठीक तो हो गयी, परन्तु काली होने के कारण माता उसके सामने देखती तक नहीं है ।

काली लड़की को देखकर माता को उसके प्रति घृणा हुई, मगर लड़की को तो अपनी माता के प्रति बहुत स्नेह है, इसलिए दोड़कर 'मम्मी-मम्मी' पुकारती उसके पास जाती, परन्तु माता उसे धक्का लगाकर दूर भगा देती और कहती - "ओ अभागिन ! तुम मेरे पास क्यों आती है ।" तब चीख-चीखकर रोती हुई वह भगवान से कहती - "हे भगवन् ! मैंने पूर्वजन्म में ऐसे कौन-से पाप किये हैं जो मेरी माँ भी मेरे सामने देखती तक नहीं है ? मेरी छोटी बहन को कैसे खिलाती है, प्यार करती है ?" बच्चे को बच्चा प्रिय होता है । इसलिए वह भी अपनी छोटी बहन को खिलाने के लिए दौड़ आती, परन्तु उसकी माता उसे मारकर भगा देती, तब अरुणा बहुत रोती । नौकरानी से कहती - "देखिए न ! मेरी माता मेरी छोटी बहन को खिलाने भी नहीं दे रही है ।" तब नौकरानी समझाती हुई कहती कि - "बेबी ! तुम अभी छोटी हो, इसलिए छोटी को गोद में उठाओ और गिर जाय तो बैबी को चोंट पहुँच सकती है, इसलिए तुझे गोद में उठाने नहीं देती है ।" इस प्रकार समझाने पर अरुणा समझ जाती ।

कुछ समय बाद अरुणा की माता ने लड़के को जन्म दिया । लड़का भी उसकी माता की तरह सुन्दर था । अरुणा अब छ वर्ष की हो गयी थी, परन्तु उसे तो कमरे में ही बन्द रहना पड़ता, खाना-पीना वहीं पर रहता । अब वह ठीक हो गयी है, परन्तु उसकी चमड़ी काली है, इसलिए माता को अच्छी नहीं लगती । कोई उसे पूछता कि - "शीलाबहन ! आपके कितने बच्चे हैं ?" तो वह यही कहती कि - "मेरा तो एक लड़का है और एक लड़की ।" उसका पति भी उसे समझाता कि

- "तुम झूठ क्यों बोलती हो ? क्या तुमने उसे जन्म नहीं दिया है, जो तुम उसे बेटी नहीं मान रही हो ?" तब गुस्से में कहती - "उस अभागिन का नाम भी मेरे सामने मत लीजिए ।" तब पति कहता कि - "अरे, तुमने ही तो उसका नाम अरुणा रखा था. । वह तुझे पहले कितनी प्रिय थी और अब ऐसा क्यों कर रही हो ? तुम अपने सौन्दर्य पर इतना घमण्ड मत करो । अभिमान कभी किसी का सदा काल नहीं रहता है । राजा रावण को भी अपने पर कितना घमण्ड था ? परन्तु एक दिन रावण की सोने की लंका भी खाक में मिल गयी । इसी प्रकार तुम्हारा सौन्दर्य भी कब फीका पड़ जायेगा उसका पता है ? यह लड़की भी तुम्हारी तरह ही सुन्दर थी न ? उसके कर्मों ने उसे यह रोग दिया और वह काली हो गयी । उसी प्रकार अगर तुम्हें रोग हो जायेगा तो तुम क्या करोगी ?" इस प्रकार पति द्वारा समझाने पर भी लड़की के कर्मोदय से उसकी माता को मति सुधरती नहीं है ।

❑ पिता के हृदय में पुत्री के प्रति करुणा :

पति रात-दिन तड़पा करता कि इस लड़की का क्या होगा ? पशु जैसा उसका जीवन ! फिर भी माता ने उस पर ध्यान नहीं दिया ! कभी रविवार की छुट्टी हो और बगीचे में घुमने जाने को कहते तब अरुणा के पिताजी कहते कि - "अरुणा को भी साथ ले चलो ।" तब उसकी पत्नी शेरनी की तरह क्रोध में आकर कहती - "उस अभागिन को अगर साथ में लेना हो तो मुझे नहीं आना है ।" बेचारा बाप क्या करता ? लड़की भी एक कोने में बैठकर रोती रहती, 'अहो प्रभु ! मैंने ऐसे कौन-से पाप किये हैं जो मुझे माता का प्रेम ही नहीं मिलता है ? पिताजी तो कितने अच्छे हैं ? वे चुपके से मेरे लिए सब ला देते हैं, परन्तु मम्मी मुझे अभागिन कहती है । माता को तो अपनी पुत्री के प्रति कितना स्नेह होता है, मगर मेरे साथ तो मानो पूर्वजन्म का बैर न हो ऐसा व्यवहार करती है । मेरी माता ही मेरे लिए दुश्मन बनी है । हे भगवान ! मैं अब क्या करूँगी ? कहाँ जाऊँ ! मेरे पिताजी को भी मेरे लिए कितना कुछ सहना पड़ता है ? पूर्वजन्म में मैंने कैसे पाप-कर्म किये होंगे ? कहा है न कि -

"मिले पापी स्वजन परिवार... मिले शैतान के संस्कार काले कर्मों से (२)
कोई मिले नहीं नहीं तारणहार काले कर्मों से (२)
कूट-कपट बहुत करे, दूसरे भव कष्ट मिले नजर में दिखाता है,
हाँ-अब मुझे नजर आया... कर्मों की फिलोसोफी से... मुझे सच्चा..."

पूर्व के पाप-कर्म का उदय हो तो ही स्वजन अच्छे नहीं मिलते और घर में जब देखो क्लेश-ईर्ष्या होते रहते हैं और जिसके पुण्य का उदय हो उसके घर में जब चाहे देखो आनन्दमय वातावरण ही रहता है । ये सब कर्म के खेल हैं । आप

सब टिकट के रुपये खर्चकर नाटक देखने जाते हों, मगर आप समझे तो वह संसार ही एक नाटक है । जैसे नाटक-फिल्म में एक के बाद एक चित्र बदलते रहते हैं, उसी प्रकार इस संसार में भी एक के बाद एक चित्र बदलते रहते हैं । आज मनुष्य सुखी हो और पृथ्वी को हिलाता हो, वह समय आने पर भिखारी बन जाता है । आज मनुष्य सुन्दर हो, मगर कल काला भी हो जाता है । यह सब नाटक ही है न ?

❑ मैं खाने की नहीं माता के प्रेम की भूखी हूँ :

यह लड़की पहले सुन्दर थी, तब अपनी माता को कितनी प्रिय थी ? उसके कर्मों के कारण चमड़ी काली हो गयी, इसलिए माता ने उसका तिरस्कार किया न ? अरुणा को अपनी बहन और छोटा भाई प्रिय हैं । माँ कभी कहीं जाती तो चुपके से भाई को खिला आती । किसी दिन उसकी माता उसे देख लेती तो लात मारकर भगा देती । "अभागिन ! अगर लड़के को छुएगी तो हाथ तोड़ डालुँगी । और वह चली जाती । धीरे-धीरे लड़का और लड़की समझदार हुए । उन्हें लगता कि यह हमारी बहन है फिर भी माँ उसे बुलाती नहीं है, हमारी तरह उसे गोद में बिठाती नहीं है और वह जब हमारे पास आती है तब माँ उसे मारती है । ये दोनों भाई-बहन अपनी माता की अनुपस्थिति में कुछ खाना पास हो तो दे जाती और बहन से कहते - "बहन ! तुझे माँ कुछ खाना नहीं देती है, इसलिए हमारे हिस्से में से तुम्हारे लिए रखा है, तुम खा लो ।" तब अरुणा कहती - "ओ मेरे प्यारे भाई-बहन ! मैं खाने की भूखी नहीं हूँ, मैं तो माता के प्रेम की भूखी हूँ । मम्मी मुझे प्रेम से माथे पर हाथ फेरे, मुझे प्यार से बुलाये - ऐसा मुझे चाहिए ।" इतना कहकर वह रो पड़ती । अरुणा को रोती देखकर भाई-बहन भी रो पड़ते और माता के आने से पहले अलग हो जाते ।

❑ अपने कर्मों को दोष देती अरुणा :

अरुणा की चमड़ी भले ही काली थी, मगर उसकी आत्मा उज्ज्वल थी । वह किसी को दोष नहीं देती थी । वह एक ही विचार करती है कि - 'मैंने पाप किया है - उसे मुझे ही भुगतने पड़ेंगे । इसमें माता का क्या दोष ? परन्तु माता ऐसी-वैसी है ऐसे दोष नहीं देखती । कर्म के स्वरूप को समझी आत्मा दुःख में भी समभाव रख सकती है । श्रेणिकराजा के पूर्वकर्म के उदय से अपना ही पुत्र कोणिक उसे कैसे कष्ट देता था ? पिंजरे में डालकर खुली पीठ पर नमक का पानी छिड़ककर कोड़े के मार मारता था । उसने नगर में ढंढोरा पीटवाया कि 'जो भाई श्रेणिकराजा को पानी भी पिलायेगा, उसे मृत्युदण्ड की सज़ा मिलेगी ।' राजगृही के राजा, मगध के मालिक और प्रभु महावीरस्वामी के परम भक्त थे,

फिर भी कर्म ने उनकी कैसी दशा की ? फिर भी श्रेणिकराजा की समता देखिए । वे तो एक ही विचार करते कि - 'मुझे ~~श्रेणिक~~ कोड़े मारता हे, जान से तो नहीं मारता है न ? मैंने तो अनेक जीवों को ज़िन्दा मार डाले हैं ।' समकित दृष्टि आत्मा अपना दोष देखती है, पराये नहीं ।

अरुणा भी अपनी माता का दोष देखती नहीं है, बल्कि अपना ही दोष देखती हैं । अब तो माता का आतंक, जुल्म बढ़ गया है । एक दिन शीला अपने पति से कहती है - ''आप तो वीमा कंपनी के एजन्ट हो और चाहो तो अन्य स्थल पर तबादला करवा सकते हो । अब मुझे इस अभागिन को साथ में रखना अच्छा नहीं लगता है । इसलिए नौकरी का स्थान बदल लीजिए और यहाँ एक नौकरानी को रखकर उसके साथ अरुणा को पढ़ने के लिए रखिए, जिससे मैं उससे मुक्त हो सकुँ ।'' पति ने कहा - ''परन्तु वह तुम्हें कहाँ परेशान करती है ? तुम न तो उसे बुलाती हो, न वह तुम्हारे पास आती है । एक कोन में पड़ी रहती है ।'' मगर शीला मानती नहीं है । रोज़ झगड़े होने लगे तो पिता ने तबादला कर दूसरी जगह पर जाने का निश्चय किया । पिता ने अरुणा को छाती से लगाकर कहा - ''बेटे ! तुम मुझे बहुत प्रिय हो, मगर क्या करूँ ? तुम्हारी माँ के सामने मेरा कुछ चलता नहीं है और घर में रोज़ झगड़े होते रहते हैं, इसलिए हम कल ही दूसरे शहर रहने के लिए जाते हैं । यहाँ तुम्हारे पास एक नौकरानी रखता हूँ । तुम उसके साथ यही रहना । बेटी ! रोना मत । मैं तुझे पत्र लिखुँगा और तेरी पढ़ाई का सारा खर्च मैं दुँगा ।'' अरुणा का गला रूँध आया, वह बोली - ''पिताजी ! क्या मुझे अकेले ही रहना पड़ेगा ? मेरे भाई-बहन कोई मुझे नहीं मिलेंगे ।'' पिताजी ने कहा - ''बेटी ! तुझे स्कूल में अपने जैसी अनेक लड़कियाँ मिल जायेगी ।''

❑ भगवान से फरियाद करती अरुणा :

अरुणा यह सुनकर ज़मीन पर गिर पड़ी । **ओ भगवन् ! तुम मुझे ले जाओ । मुझे किसलिए ज़िन्दा रखा है ? यहाँ घर में अकेले रहने से अच्छा है मैं तुम्हारे घर में रहुँ । बोलिए भगवन् ! तुम तो रखोंगे न ?''** पुत्री का आर्तनाद सुनकर पिता का हृदय फट गया । ''पुत्री ! ऐसा मत बोल ! भगवान तुझे सुखी करेंगे । परन्तु पुत्री ! अब मैं जो कहता हूँ वह कर ।'' ''पिताजी ! आप रोइए मत, मैं अकेली रहुँगी ।'' पिता ने शिक्षिका बहन से सिफारिश की कि मेरी अरुणा को सँभालिएगा और मन लगाकर पढ़ाइएगा । उसके लिए जो चाहिए, मैं भेज दुँगा । उसे अकेले अपने घर में अच्छा न लगे तो आप अपने घर ले जाना । इतना कहने के बाद माँ-बाप, भाई-बहन सभी चले गये । अब अरुणा नौकरानी के साथ अकेली रहती है और अपने पिता के पत्र की राह देखती है ।

परन्तु पत्र न मिलने पर सोचती है कि – 'मेरे पिताजी तो मुझे कहते थे कि मैं जाते ही पत्र लिखुँगा, परन्तु लगता है वे मुझे भूल गये हैं । घर का पता भी नहीं दिया है, इसलिए मैं भी पत्र कहाँ लिखती ?' इस प्रकार समय बीतता गया और छ महीने बाद उसके पिता का पत्र आया । उसे पढ़कर अरुणा खुश हो गयी । पिताजी ने पत्र में लिखा था कि – ''पुत्री ! मैं तुझे भूला नहीं हूँ । परन्तु तुम्हारी माता की खिटपीट से तंग आकर पत्र नहीं लिखा था । पुत्री ! मैं जब तेरे पास आऊँगा तो बहुत कुछ लाऊँगा । तुम मुझे पत्र का उत्तर मत लिखना ।'' इसलिए अरुणा पत्र लिख सकती नहीं है । कुछ समय बाद परीक्षा के दिन आ गये । सब लड़कियाँ कहने लगी कि – 'परीक्षा के बाद हम पिताजी के घर जायेंगे, मामा के घर जायेंगे,'' कोई कहता–'घुमने जायेंगे ।' परन्तु अरुणा सोचने लगी कि – 'मेरा कौन है ? मुझे तो सोनापुर ले जाने के लिए आये तो अच्छा है ।' कहकर अरुणा बहुत रोती है।

शिक्षिका बहन कहती है – ''तुम्हारे अपने माता-पिता के पास जाना होगा न ?'' यह सुनकर अरुणा फुट-फुटकर रोने लगी, बेहोश होकर गिर पड़ी । बहनजी समज गये कि इसे अपने माता-पिता के घर में लोग सताते होंगे । बहनजी ने एकान्त में बिठाकर सारी बात पूछी, मगर अरुणा कुछ बोल ही नहीं रही थी । अन्त में बहुत समझाने पर उसने हृदय खोलकर सारी बाते बतायी और बहनजी के गोद में सिर रखकर बहुत रोयी । बहनजी ने भी माता की तरह उसके माथे पर प्यारभरा हाथ रखा, तब अरुणा को लगा मानो अपनी माता का स्नेह न हो ! बहन ने समझाकर कहा – ''पुत्री ! तुम चिन्ता मत करो । तुझे लेने के लिए तेरे पिताजी आयेंगे ।'' छुट्टिया शुरू होने से पहले पिता ने कहा – ''अरुणा को छुट्टियों में ले आऊँ ।'' तब शीला ने कहा – ''ओ अभागिन ! मेरे घर में वह नहीं चाहिए ।'' उसके पति ने कहा – 'अरे ! तुम ज़रा तो सोचो ? वह लड़की अकेली रहती है, परेशान हो गयी होगी । उसे भी छुट्टियों में यहाँ आने का मन तो करेगा न ?' तभी शेरनी जैसी आवाज़ में वह बोली – ''नहीं ।''

अन्त में पिता अरुणा के पास आते हैं । अरुणा अपने पिता को देखकर मारे खुशी से गले से लिपट जाती है । फिर कहने लगी – ''पिताजी ! आप आ गये ? मेरी मम्मी, भाई, बहन सब ठीक हैं न ? उन्हें साथ न लाये ठीक है । मैं आऊँगी । पिताजी ! मुझे मेरी माता की बहुत याद आ रही है ।'' अरुणा के शब्द सुनकर पिताजी बहुत रोते हैं । चार दिन तक वहीं रहकर सब कुछ ला दिया और चार दिन घुमने-फिरने ले गये और फिर मित्र के घर कुछ दिनों तक रही, फिर छुट्टियाँ ख़त्म होने पर अपने घर में नौकरानी के साथ रहने लगी । अब वह पढ़-लिखकर तैयार हो गयी है, समझदार भी बहुत हो गयी है । वह सदैव अपने कर्मों का दोष देखती हुई धर्मध्यान भी करती है । इस प्रकार यह वर्ष खत्म हुआ । परीक्षा

का अन्तिम पेपर लिखकर घर आयी तभी पिताजी का पत्र मिला - उसमें लिखा था - ''बेटी अरुणा ! अपनी परीक्षा पूर्ण कर तुरन्त वहाँ से तुम निकल कर घर आ जाना । मैं तुझे लेने स्टेशन पर आऊँगा । तुम आने में ज़रा भी विलम्ब मत करना । क्योंकि तुम्हारी माता बहुत बीमार है । वह अस्पताल में है ।'' यह पढ़कर उसका हृदय भर आया । क्या मेरी माता बीमार है ? मेरे भाई-बहन क्या करते होंगे ? और वह तुरन्त ट्रेन में बैठकर घर जाने के लिए रवाना हुई । घर आकर सारा काम करने लगी । उसने पिताजी से पूछा - ''मैं अस्पताल में जाऊँ ?'' पिता ने कहा - ''बेटी ! वहाँ जाना ठीक नहीं है ।'' अरुणा ने कहा - ''पिताजी ! मेरी माँ इतनी अधिक बीमार है, परेशान हो रही है और मैं उनसे मिलने भी न जाऊँ तो उन्हें कैसा लगेगा ? मुझे जाने दीजिए ।'' ऐसा कहकर वह अस्पताल में गयी।

माता तो सो रही थी । उसका शरीर चेचक के कारण पीबवाला बन गया है । अरुणा ने कहा - ''माँ ! मैं आयी हूँ । अब तुम चिन्ता मत करना । माँ ! तुझे बहुत पीड़ा हो रही होगी ।'' परन्तु माता कुछ बोल नहीं रही है । अन्त में अरुणा काँपती हुई उसके पास गयी और कहा - ''माँ !'' परन्तु माता तो कहती है - ''देख न ! मेरा मुँह कैसा कुरूप हो गया है ?'' मगर ऐसा नहीं कहती कि - ''अरुणा ! तुम आ गयी ?'' इतनी वेदना में भी शरीर कुरूप बन गया है, इसका दुःख है । फिर अरुणा ने कहा - **''माँ ! तुम भले ही कुरूप बन गयी हो, मगर तेरी माँ तेरा त्याग नहीं करेगी ।''**

बन्धुओं ! इन शब्दों में अरुणा ने अपनी माँ को बहुत कुछ कह दिया है, परन्तु यदि समझे तो ! इन शब्दों ने शीला पर जादु किया । 'अहाहा...! मैंने अपने सौन्दर्य के अभिमान में इस बेटी को न जाने कैसे दुःख दिये हैं ! उसके सामने देखा तक नहीं । मैंने तो उसे घर से निकालकर झोंपड़ी में रखा था, फिर भी आज मेरी सेवा करने के लिए उपस्थित हो गयी है । मैं तो आज इससे भी अधिक कुरूप हो गयी हूँ । अब मेरी माँ मेरा त्याग कर दे तो कैसा दुःख होता है ?' उसका हृदय-परिवर्तन हो गया । उसने अरुणा को गले से लगा दिया । अरुणा प्रेम से माता की सेवा करती और प्रभु से प्रार्थना करती कि - ''हे प्रभु ! मेरी माता को बचा लेना और उसे अच्छा कर देना ।'' उसकी अन्तःकरणपूर्वक की सेवा और प्रार्थना फलीभूत हुई । माता का पीब बिलकुल सूख गया और (शीला) ठीक हो गयी । तब अरुणा ने माता की गोद में सिर रखकर कहा - ''माँ ! तुम्हारी सेवा करते समय मुझ से कोई भूल हो गयी हो तो मैं क्षमा चाहती हूँ ।'' तब माता ने कहा - ''बेटी ! क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए । क्योंकि मैं तो तुझे अभागिन कहती और मार मारकर घर से निकाल देती । परन्तु सच पूछिए तो मैं ही अभागिन हूँ । तुम काली थी इसलिए तुझ पर मुझे बहुत घृणा होती थी । मैंने तुम्हें

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ - २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २

कैसे कर्म बाँध लिये ! उसका फल मुझे यहीं मिल गया । मेरे कर्मों ने मुझे तुम से भी अधिक कुरूप बना दिया है । अब तो तुम मुझे अपने साँसों से भी प्रिय हो ।'' ऐसा कहकर अरुणा को सीने से लगा दिया । अब सभी खुशी से रहने लगे । अरुणा के पिताजी को भी बहुत खुशी हुई ।

बन्धुओं ! इस दृष्टांत से हमें तो कर्म की सत्ता समझनी है । देखिए, मनुष्य-जीवन में भी कर्मरूपी ब्रिटीश जीव को कितना परेशान करता है ? और जीव कैसे दुःख सहता है ? हमारे जैनदर्शन में आत्मा की स्वतंत्रता को महत्त्व दिया गया है । आत्मा की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए यह जानते हैं ? अविरति में से विरति में आना चाहिए । विरति द्वारा आनेवाले कर्म रूकते हैं और पुराने कर्मों का क्षय करने के लिए छ प्रकार से बाह्य और छ प्रकार से आभ्यन्तर - इस प्रकार बारह प्रकारों के तप भगवन्त ने कहे हैं । उसकी आराधना करनी चाहिए । तपश्चर्या करने से पुराने कर्मों का क्षय होता है । इस प्रकार संवर और तपस्वी धर्म की आराधना करने से अनन्तकाल से आत्मा पर लगे कर्म दूर होने पर जिनेश्वर-प्रभु की आज्ञा के पालन से आत्मा को अपना स्वातंत्र्य प्राप्त होता है और जन्म-मृत्यु की गुलामी की ज़ंजीर टूट जाती हैं । कर्म की ज़ंज़ीरों को तोड़कर आत्मिक आज़ादी पाने के लिए तत्पर बनिए । सच्ची आज़ादी किसे कहते हैं ?

❑ **मोह को जीतना ही सच्ची स्वतंत्रता :**

आत्मधन को लूटनेवाला मोह है । अतः मोह पर विजय पर पाईए । मोह पर विजय पाने के बाद सच्ची स्वतंत्रता को जीव प्राप्त कर सकता है । एक प्रधान प्रतिदिन स्नानादि कर एक कमरे में जाते, एक छोटी बेग खोलकर उसके सामने देखकर दस मिनट तक मन में प्रार्थना करते । उस समय उसकी आँखों से आंसू बरस पड़ते । पाँच - दस दिन तक ऐसा हुआ । तब उनकी पत्नी को उन पर शंका हुई कि 'अवश्य मेरे पति किसी और स्त्री के प्रेम में हैं । बेग में उसका फोटा लगता है और उसीके सामने देखकर वियोग के कारण आंसू गिराते हैं । फिर बेग बन्दकर चाभी अपने साथ ले जाते हैं । मैं उसे कैसे देखूँ ? वे तो मेरे कारण उसे घर में नहीं लाते वरना कब की उसे घर में बिठा लेते ।'

एक दिन बेग के पास जाकर प्रधान प्रार्थना कर रहे थे, तभी इसकी पत्नी पीछे से पहुँच गयी और क्रोध से भड़क उठी । खींचकर बोलने लगी - ''आप अपने आप को क्या समझते हो ?'' और हुआ भी ऐसा कि जैसे ही पत्नी ने घर में प्रवेश किया तभी प्रधान ने वेग बन्ध कर दी । ''मुझ से इतना क्या छुपाते हो ?'' तब प्रधान ने कहा - ''मैंने तुम से कुछ गुप्त नहीं रखा है ।'' स्त्री ने कहा - ''नहीं रखा तो यह क्या है ? रोज आप वेग में देखकर रोते हो और बन्द करते

हो । मैं यह सब बीस दिनों से देख रही हूँ और आज भी मैं आयी कि तुमने बेग बन्द कर दी है ।'' प्रधान ने कहा – ''तो क्या तुझे मुझ पर विश्वास नहीं है ? तो यह ले चाभी । अपने हाथों से खोल ।'' प्रधान पत्नी ने बेग खोल दी – अन्दर देखा तो एस सफेद (श्वेत) गर्म चद्दर है । पत्नी ने कहा – ''आप इस चद्दर को देखकर क्यों रोते हो ? स्वामीनाथ ! जो हो आप खुशी से कहिए ।'' प्रधान ने कहा – ''यह बहुत मूल्यवान चद्दर है ।'' पत्नी ने पूछा – ''किसकी यह चद्दर है ?'' प्रधान ने कहा – ''सुन ! हमारी अढ़ारह दोस्तों की टोली है । उसमें मेरे सत्र मित्रों ने गुरुदेव के पास ब्रह्मचर्य का उपदेश यावत् जीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की है । उसके सम्मान में श्री संघ ने उन्हें ऐसी चद्दर ओढ़ाई है । मेरे उन मित्रों को लगा कि हम सत्रह मित्रों ने विषय-वासना का त्याग किया और हमारा मित्र रह न जाय इसलिए उन सभी सत्रह मित्रों ने यह चद्दर मेरे लिए भेजी है । जिससे कि मैं जाग्रत बनुँ ।''

देवानुप्रिय ! बोलिए, आपके मित्र ऐसे हैं ? आपके मित्र आपको फिल्म देखने, बीच में घुमने-फिरने और मैच देखने के लिए ले जायेंगे । परन्तु उससे उद्धार होगा ? सच्चे मित्र तो ऐसे होने चाहिए जो मित्र को संसार के कीचड़ से हाथ पकड़कर बाहर निकाले । गाड़ी मन्द हो गयी हो तो पीछे से धक्का लगाकर पुनः चलती कर देते हैं, उसी प्रकार एक मित्र अगर धर्मक्रिया में मन्द पड़ जाय तो दूसरा मित्र उसे धक्का लगाकर गर्म कर दे (धर्मक्रिया में पुनः ले जाय) और चलता कर दे । उन मित्रों ने प्रधान को चद्दर भेजी है, उसकी पत्नी से वह कहता है – ''मैरे ब्रह्मचारी मित्रों द्वारा ओढ़ी गयी यह चद्दर है । मैं इस चद्दर को ओढ़ने के लायक नहीं हूँ । मैं ऐसी प्रतिज्ञा लेने के लिए कब भाग्यशाली बनुँगा ? धन्य है मेरे उन मित्रों को ! इसलिए मैं इस पवित्र चद्दर के दर्शन कर सोचता हूँ कि मेरे लिए वह दिन कब आयेगा ?'' ''स्वामीनाथ ! इसमें क्या सोचना है ? यदि आपकी इतनी तैयारी है तो मैं भी तैयार हूँ ।'' प्रधान ने कहा – ''मैं तो कब से तैयार हूँ ! चलिए, हम गुरुदेव के पास जाकर प्रतिज्ञा लेते हैं ।'' देखिए, इसका नाम है पति-पत्नी ।

बन्धुओं ! आत्मा की आज़ादी चाहिए तो विषय – वासना के गुलाम मत बनिए । विषय विष से भी भयानक है । जेब में विष से भरी बोतल लेकर घुमेंगे तो इससे विष नहीं चढ़ेगा । पीने से विष चढ़ता है । भगवान ने फरमाया है –

सल्लं कामा विसंकामा, कामा आसी विसोवमा ।
कामे भोए पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइं ॥

– उत्त. सू., अ.-९, गा

कामभोग शल्य समान है । दृष्टि विष सर्प समान है । जैसे दृष्टि विष सर्प किसी को काटता नहीं है, मगर उसके सामने दृष्टि करता है, उसे विष चढ़ता है । उसी प्रकार जिन मनुष्यों ने कामभोग भोग नहीं है, परन्तु उसकी रात-दिन चिन्ता की है, वे मरकर भी दुर्गति में गये हैं । सोचिए कि-दीक्षा न ले सके तो ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा अवश्य ले सकते हैं ।' ब्रह्मचर्य से कितना लाभ होता है ? मन, वचन, काया से जो शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उन्हें देव भी नमस्कार करते हैं । जैसे जैसे क़ामभोग घटेगा, मोह कटेगा, वैसे संसार भी मुक्त होगा और सर्वथा कर्मरहित आत्मा बन जाय, तो मान लीजिए कि आत्मा की सच्ची आज़ादी मिलेगी । अधिक भाव अवसर पर ।

व्याख्यान - १६ | सावन, कृष्ण पक्ष-तेरस

अट्ठाई धर - पर्वाधिराज का स्वागत

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

जिस पर्वाधिराज पर्युषणपर्व की हम बहुत दिनों से राह देख रहे थे वह परम मंगलकारी और आत्मा की उन्नति करानेवाले पर्व का आज बधाई हो गयी है । आज के व्याख्यान का विषय हे - 'पर्वाधिराज का स्वागत ।' हमें हृदय के स्नेह से और खुशी से हमारे प्रमुख मेहमान पर्वाधिराज पर्युषणपर्व का स्वागत करना है । पर्युषणपर्व अर्थात् जीवराजभाई के जीवन की ज्योति को जगमगानेवाला जयवन्तु पर्व । मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दिखानेवाला मंगलकारी पर्व । कर्म के कीचड़ में फँसे हुए को साफ करने के लिए वॉटर वर्क्स, आत्मानन्द के झुले में झुलने का हिंडोला और पामर (निर्धन) प्राणी को पावन बनानेवाला पवित्र पर्व । ऐसे अनुपम पर्व का हमें स्वागत करना है ।

पर्युषणपर्व महान पर्व है । सर्व नदियों में गंगा नदी, सर्व पहाड़ों में मेरु पर्वत, सर्व मंत्रों में नवकार मंत्र और सर्व समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है । उसी प्रकार सर्व पर्वों में पर्वाधिराज पर्युषणपर्व मुगटमणि समान श्रेष्ठ है । दूसरे दिनों की अपेक्षा इस पर्व के दिनों में उत्साह विशेप रहता है । जो आत्माएँ जागृत हैं उनके लिए तो सभी दिन समान हैं, परन्तु जो मोहनिद्रा में सोये हैं, उन्हें जागृत कर नवीन प्रेरणा देने के लिए इस पर्व के दिन का आयोजन किया गया है । इस पर्युषणपर्व के मंगलकारी दिन प्रतिवर्ष आता है और जाता है । भाग्यशाली आत्माएँ इस कल्याणकारी दिनों में धर्माराधन, ज्ञानाराधन, दान, शीयल, तप

और श्रद्धा आदि मंगल तत्त्वों द्वारा अपनी आत्मशुद्धि का भव्य पुरुषार्थ करता है, इससे जीवन में नवीनता, स्फूर्ति और उल्लास का अनुभव होता है। ये दिन इतने पवित्र हैं कि जो मनुष्य उपाश्रय में नहीं आते, उन्हें भी आने का मन होता है। छोटे-छोटे फूल जैसे बच्चों को भी आज उपवास करने का मन होता है।

बन्धुओं ! हम पर्वाधिराज का स्वागत किसलिए करते हैं यह जानते हैं आप ? प्रतिवर्ष आनेवाला यह पर्व मानवजीवन की उजली चद्दर पर लगे क्रोध के काले दाग़ को धोकर पुनः उसे उज्ज्वल बनाकर मैत्री के सेन्ट से सुगन्धित बनाने का काम करता है। अतः उनका स्वागत करते हैं।

आनन्दकारी अमूल्य अवसर आया है आँगन में,
पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का प्रेम से स्वागत करे।
मंगलकारी महोत्सव मनाये, पर्युषण पर्व का आराधन करे,
जग में मिले न ऐसे महान, महिमा बड़ा गवाते, धरे ध्यान,
कर्म मैल को दूर कर आतम निर्मल करें... पर्युषण...

नव-पल्लवित और खिला गुलाब अपनी खुश्बू चारों ओर फैलाता है, उसी प्रकार चारों ओर धर्म पुष्प की सुवास को फैलानेवाला महामंगलकारी पर्युषणपर्व आज आनन्द और मंगल के शुभ सन्देश लेकर आ पहुँचा है। हमारे आँगन में आज पर्व का स्वागत हुआ है। साथ में धर्माराधना करने की मंगल बधाई लेकर आये हैं। पर्युषणपर्व पापी को पुनित बनाता है। दुःखियों के दुःख दूर करता है। हृदय में मैत्री और अहिंसा का पवित्र झरना बहाता है। आत्मा के अलौकिक उत्साह में बल प्रकट करता है। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य सच्चे आत्मिक-सुखों को भूलकर मृगजल के समान अनित्य और दिखनेवाले सुखों के पीछे अन्धी दौड़ लगा रहा है। उसे सत्य और वास्तविक सुख का ज्ञान कराता है। विषयों में विह्वल बने मनुष्य की शान ठिकाने लाता है। अधोगति की गर्त में गिरती आत्माओं का ऊर्ध्वीकरण कर उन्नति के शिखर पर चढ़ाता है। अनेक विकट मार्गोवाली भयानक भवाटवी में मार्ग-भूले जीवनपथिकों को सच्ची राह दिखाता है। मोह की प्रगाढ़ निद्रा में निश्चिततापूर्वक सो रही आत्मा को जागृत करने के लिए एलान करता है। अनादिकाल के मोह तथा कुवासना के संस्कारों को दूर कर आत्मवन में चारों ओर धर्म की खुश्बू फैलाता है।

देवानुप्रियों ! पर्युषणपर्व के दिन आठ हैं और आत्मा को मलिन बनानेवाले कर्म भी आठ हैं। इस पर्व के उत्तम आठ दिन अनादिकाल से आत्मा के साथ युद्ध खेल रहे आठ कर्मरूपी महायोद्धाओं से सामना कर आत्मा को ज्वलंत विजय प्राप्त करवाकर पंचमगति के महान सुखों का भोक्ता बनता है। वासनाओं के

गुलाम बनी आत्मा को स्वत्व का स्वामी बनाता है । इस पर्व में जो जीव तन, मन, धन से और हृदय के उल्लास से स्वागत करता है और आराधना करता है । उसी प्रकार वीतराग-प्रभु के धर्म पर श्रद्धा कर निर्मल सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है, उसका संसार परिमित बन जाता है । वे जीव देर में सात, आठ, नौ या पंद्रह भवों में तो इस परिवर्तनशील संसार में से संसार के समस्त बन्धन की ज़ंज़ीरों को तोड़कर आदि, व्याधि और उपाधि रहित बनकर अक्षय, अव्याबाध और लोकोत्तर दिव्य-सुखों को प्राप्त करता है । इसलिए इस पर्व को महान पर्व कहा जाता है । चौमासे की ऋतु में जैसे अन्न विशेष पकता है, उसी प्रकार इन दिनों में धर्मकरनी विशेष होती है । इन दिनों में जहाँ देखिए वहाँ सर्वत्र धर्ममय वातावरण होता है । इन दिनों में सारा वातावरण तपस्या के नाद से गुँजता और गाजता होता है । जहाँ देखिए वहाँ तप का नाद सुनायी देता है । भवरोग़ दूर करने के लिए तप एक अमूल्य संजीवनी है । हमारे जैनदर्शन में तो तप का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । अन्य धर्म में भी जैनधर्म के तप के बारे में सम्मान है । 'मनुस्मृति' में भी कहा है कि –

यद्दुस्तरं यद्दुरापं, यद्दुर्गं यच्चदुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ।।

जो दुष्कर है, दुष्प्राप्य है, दुर्गम है और दुस्तर है, वह सब तप द्वारा सिद्ध किया जा सकता है । क्योंकि तप दुरतिक्रम है । उसके सामने कोई चीज़ कठिन नहीं है । तपश्चर्या द्वारा आत्मा के तेज़ चमकते हैं । संसार में कठिन में कठिन वस्तु तप से सिद्ध हो सकता है । तप द्वारा महान पुरुषों ने अनेक सिद्धियों और लब्धियाँ प्राप्त की है । बलवान में बलवान और क्रूर में क्रूर व्यक्ति भी तपस्वियों के चरण में झुक जाते हैं । दो हज़ार सिंह का बल एक अष्टापद में है । दस लाख अष्टापद का बल एक प्रति वासुदेव में है । दो प्रतिवासुदेव का बल एक वासुदेव में है । दो वासुदेव का बल एक चक्रवर्ती में है । दस करोड़ चक्रवर्ती का बल एक इन्द्र में होता है । ऐसे बलवान इन्द्र महाराजा का आसन विधिपूर्वक के तप से चलायमान होता है । ऐसे देव भी तपस्वी के चरण में झुकते हैं । तप से अनेक रोग़ और उपद्रव शांत होते हैं । जो आत्माएँ ऐसे उग्र तप करते हैं उसे हमारो कोटि कोटि धन्यवाद् और वन्दन । क्योंकि हम ऐसा तप कर सकते नहीं हैं

बन्धुओं ! इस शरीर को हमने अबतक इतना अधिक खिलाया है कि मेरु जितने ढ़ेर करे तो भी कम लगते हैं और पानी भी इतना अधिक पिलाया है कि स्वयंभूरमण समुद्र भी छिछला लगता है, फिर भी यह शरीर अभी तक खाने-पीने से भरता नहीं है । तप करने से शरीर के अन्दर की धातु तपती है । सोना-चाँदी को तपाने से विशुद्ध बनता है उसी प्रकार तप करने से आत्मा विशुद्ध बनती

है। तप आत्मा को नीरोग़ी बनाने का परम औषध है। तप के द्वारा आत्मा कर्म से बोझ से हल्का बनता है और हल्की बनी आत्मा भवसागर को तैर सकता है। जैनधर्म में तप का स्थान विशिष्ट कोटि का है। विवाह में जैसे चौथे फेरे का महत्त्व अधिक होता है। गाड़ी में गार्ड के डिब्बे का महत्त्व है, क्योंकि उसके आधार पर गाड़ी चलती है। चित्रकार चित्र में अन्तिम बोर्डर मारता है, इससे चित्र शोभा बढ़ जाती है। उसी प्रकार इस मनुष्यजन्म में तपश्चर्या के द्वारा आत्मा की शोभा बढ़ जाती है, अतः तप अधिक मूल्यवान है। गाँव की रक्षा करने के लिए जैसे किले की आवश्यकता है, उसी प्रकार आत्मा की रक्षा करने के लिए तपरूपी किले की आवश्यकता है। क़िताब में दाग़ हो तो उसे रबर से मिटाया जा सकता है, उसी प्रकार आत्मा के असंख्यात प्रदेश पर लगे कर्मों के दाग़ तपरूपी रबर से मिटाया जा सकता है।

आहार-संज्ञा को तोड़ने के लिए ज्ञानियों ने तप करने को कहा है। चारों संज्ञाओं का मूल (नींव) आहार-संज्ञा है। आहार-संज्ञा में से परिग्रह-संज्ञा उत्पन्न होती है। जिह्वा को मन चाहा खाना देने के लिए पैसों की आवश्यकता पड़ती है। पैसे के लिए अनेक प्रकार के प्रपंच करने पड़ते हैं। जिह्वा के स्वाद के कारण अधिक खा लिया जाय, तो शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। इसके लिए पंखे की आवश्यकता पड़ती है और अधिक खाने के बाद दिमाग़ को ताज़ा बनाने के लिए रेडियो सुनने का और टी.वी. देखने का मन होता है। अतः परिग्रह-संज्ञा का कारण आहार-संज्ञा है और जहाँ परिग्रह आया वहाँ परिग्रह को सँभालने के लिए जीव को अनेक प्रकार के भय पैदा होते हैं। परिग्रह को सँभालने के लिए पहेरेदार रखना पड़ता है। सच्चे-झूठ व्यापार किये हो तो इन्कमटैक्सवालों का ड़र रहता है। आहार-संज्ञा से मैथुन-संज्ञा भी उत्पन्न होती है, क्योंकि अति आहार करने से शरीर पुष्ट बनता है और उसमें से विकार उत्पन्न होता है। इस प्रकार सारी संज्ञाओं की जड़ आहार-संज्ञा है। जब तप उस आहार-संज्ञा को दूर करने का प्रबलतम् साधन है, अर्थात् जैनधर्म में प्रत्येक (हर) प्रकार के दोषों का और किसी भी प्रकार के गुनाह का प्रायश्चित्त तप द्वारा दिया जाता है।

देवानुप्रियों ! पेट गोदाम है और जिह्वा दलाल है। दलाल के द्वारा माल-गोदाम में भरा जाता है। गोदाम में माल (सामान) चाहे कितना भी भरा जाय मगर जिह्वारूप दलाल का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिह्वा स्वाद कर्त्ता है और दुःख पेट को भुगतना पड़ता है। यह जिह्वा हरामखोर की जाति है। जिह्वा से स्वाद के चटके किये तो शरीर के प्रत्येक अंग दुःखता है, सिर दुःखता है, हाथ-पैर में जलन होती है, पेट में दुःखता है। इसीलिए हमारे ज्ञानी भगवन्तों ने रसेन्द्रिय को वश में रखने के लिए तप करने को कहा है। तप अनेक रूप में जीव को [illegible]

लाभकारी है, अतः ज्ञानी भगवन्तों ने तप पर बहुत ज़ोर दिया है । तप से क्या लाभ होता है वह 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३०वें अध्ययन (अध्याय) में कहा ह कि -

जहा महातलायस्स, न्निरुद्धे जलागमे ।
उठरिंसिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ।।५।।
एवं तु संजयस्साति पावकम्म निरासवे ।
भवकोडी संचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ।।६।।

जैसे किसी बड़े तालाब में नया पानी आने का मार्ग रोक दिया जाय और उसमें भरा पानी निकाल दिया जाय, फिर शेष कीचड़ सूर्य के ताप से सूख जाता है, उसी प्रकार संयमी आत्माएँ संयम द्वारा नये आनेवाले आस्त्रव पाप-कर्मों को रोक देती हैं और करोड़ों भवों के संचित किये गये कर्मों को तपश्चर्या द्वारा खपाती है।

'पन्नवणा सूत्र' में भगवन्त ने फरमाया है कि - "नरक का जीव एक हजार वर्ष तक कष्ट सहे और जो कर्म खपाये उतने कर्म समझदारीपूर्वक एक उपवास करने से खपता है । नारकी का जीव लाख वर्ष तक दुःख सहे और जितने कर्मों को खपाये (करे) उतने कर्म यहाँ एक छट्ठ करने से खपता है । एक करोड़ वर्ष में नारकी का जीव जो कर्म खपाते हैं उतने कर्म एक अट्ठम करने से खपता है । नरक का जीव कोटि कोटि (करोड़ों) वर्षों में जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म चार उपवास करने से खपते हैं । ऐसा महान लाभ तपस्या में (उपस्थित) है । अग्नि का एक तिनका लकड़े के बड़े गंज को जलाकर साफ कर देता है, उसी प्रकार तप और संयम का एक तिनका करोड़ों भव के इकट्ठे किये गये कर्मों के गंज को जलाकर साफ करता है । ऐसी घोर साधना जिन आत्माओं ने की वे भवसागर तैर गये । 'अनुत्तरोववाई सूत्र' में धन्ना अणगार का अधिकार आता है । उन्होंने कैसा उग्र तप किया उसका सुन्दर वर्णन किया गया है ।

वीरवाणी का चमत्कार

एक बार भगवान महावीरस्वामी ग्रामानुग्राम विचरण करते कासदी नगर में पधारे, भगवान की देशना सुनने के लिए जितशत्रुराजा जाते हैं । जहाँ राजा जाते वहाँ प्रजा की बात ही क्या करना ! नगरजन भी साथ आये । उसी नगर में भद्रा नामक सार्थवाहिनी रहती थी । उसे धन्ना नामक पुत्र था । वह बहुत वैभवशाली था । भूतकाल में जो बहुत धनवान होते हैं वे 'इब्भ' कहे जाते थे । यह धन्ना स्वयं राजा न था, परन्तु रजवाड़ा जैसा सुख-वैभव भोगता था । जिसे रहने के लिए बत्तीस प्रकार के महल थे । उस महलों के तहखाने रत्नों से जड़ित थे । उसके द्वार पर लटकाये गये तोरण आपके घर के तोरण जैसे काच के मनके न थे, मगर सच्चे मोती और मणियों से गूँथे हुए थे । ऐसा वैभवशाली धन्ना राजशाही

सुख भोग रहा है । इस समय भगवान महावीरस्वामी काकंदी नगर में पधारे हैं । जितशत्रुराजा और नगरजन भगवान के दर्शनों के लिए जा रहे हैं । प्रत्येक के मुख पर खुशी है । लोगों के टोले (समूह) धन्ना ने अपने महल के झरोखे से जाते देखा, तो अपने सेवकों से पूछता है - "आज इतनी बड़ी संख्या में लोग कहाँ जा रहे हैं ?" तब उसके सेवकों ने कहा - "जिसके नामस्मरण-मात्र से कर्म की कगार टूट जाती है, जिसके दर्शन से दु:ख दूर होते हैं, ऐसे प्रभु महावीरस्वामी पधारे हैं ।" यह सुनकर धन्ना को खुशी हुई और उस प्रभु के दर्शन करने के लिए गये । उन्होंने भगवान की देशना सुनी । उनके पवित्र हृदय में एक ही बार की देशना ने असर किया । भगवान ने पुद्गल-परावर्तन की बात समझायी । इस जीवात्मा ने अनन्तकाल से कितने पुद्गल-परावर्तन किये, परन्तु अभी तक जीव का अन्त आया नहीं । यह बात सुनकर धन्नाजी को वैराग्य आया । चाहे कितनी भी संपत्ति फिर भी एक दिन छोड़नी ही है । ऐसी संपत्ति मैं इस भव में ही नहीं बल्कि अनन्त-बार पाया और छोड़ना पड़ा । भगवान की वाणी ने धन्नाजी का हृदय छेद दिया । उसका हृदय लोहे का न था, इसलिए जल्दी ही पीघल गया ।

❑ वैराग्य का रंग :

दो हाथ जोड़कर प्रभु से कहा - "हे प्रभु ! मुझे यह संसार असार लगा है ! आप की वाणी मुझे भा गयी है । यहाँ से घर जाकर मेरी माता की आज्ञा लेकर जल्दी से जल्दी आपके पास संयम अंगीकार करने के लिए आ रहा हूँ । आप तबतक वहीं रहना । भगवान ने कहा - *"अहासुयं देवाणुप्पिय ! मा पडिबंध करेह ।"* - हे देवानुप्रिय ! तुझे सुख मिले ऐसा करो, अच्छे कार्य में विलम्ब मत कीजिए । धन्नाजी भगवान की वाणी सुनकर घर गये । पहले जब बाहर से आते तब उनकी दृष्टि पहले अंत:पुर की और जाती थी, आज तो सीधे माता के महल में गये और माता से कहा - "माता ! आज मैंने भगवान की वाणी सुनी, अब मुझे यह संसार असार लगा है । मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिए ।" यह सुनते ही माता पृथ्वी पर गिर पड़ी । अन्त में माता को होश में लाकर समझाया । माता समझ गयी कि अब मेरा पुत्र रूकेगा नहीं । अत: आज्ञा दे दी । माता की आज्ञा मिल गयी, परन्तु बत्तीस कन्याएँ उसे रोकनेवाली थी, फिर भी सभी को समझाकर संपत्ति का त्यागकर धन्नाजी ने भगवान के पास दीक्षा अंगीकार कर दीक्षा ली, उसी दिन भगवान से वंदना-नमस्कार कर कहते हैं - "प्रभु ! आप की आज्ञा हो तो मैं जीवन पर्यन्त छट्ठ के पारणे में छट्ठ करूँ और पारणा के दिन आयंबील करूँ ।" आपके पारणे जैसे उनके पारणे न थे । आयंबील में भी अकेले चावल खाने होते थे । यह एक-दो दिन का सवाल न था, जिन्दगी का सवाल था ।

❑ उग्र तप की साधना :

धन्ना अणगार पारणे के दिन गौचरी के लिए जाता है । जिसने रोज़ नये-नये रसवान भोजन ही खाये थे, वह आज कैसा भोजन लेता है ? लोगों के घर भोजन के बाद बचा तुच्छ-रूखा-सूखा आहार वहोर (ले) लाते हैं और इक्कीस बार अचेत पानी से धोकर उसका रस बनाकर पी जाते हैं । ऐसी उग्र तपस्या कर शरीर जीर्ण-शीर्ण कर दिया हैं । उनके पेट में बहुत बड़ा गड्ढा पड़ गया था । आँखें अंदर चली गयी थी । शरीर में खून और माँस सूख गये थे । वे चलते तब जैसे मुँग और चोड़ाफली की आवाज आती है ऐसे हड्डियाँ खड़खड़ा रही थी । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते समय उन्हें बहुत श्रम करना पड़ता था । उनका शरीर सूख गया था, परन्तु आत्मा का तेज़ झलक रहा था । वे धन्ना अणगार भगवान महावीर के साथ ग्रामानुसार विचरण करते हुए राजगृही नगरी में पधारे ।

श्रेणिकराजा को पता चला कि मेरे त्रिलोकीनाथ पधारे हैं । वे भगवान की देशना सुनने के लिए गये । श्रेणिकराजा भगवान की देशना सुनकर वन्दन नमस्कार पूछते है *'इमेसिणं भंते ! इन्दभूह पामोक्खाणं चउदसण्हं समण साहस्सीणं कयरे अणगारे महादुक्कर कारए चेव महाणिज्जरतराए चेव ?'* - "हे प्रभु ! इन्द्रभूति प्रमुख आप के चौदह हज़ार शिष्यों के महान दुष्कर करनी करनेवाले और महान निर्जरा करनेवाले कौन-से शिष्य है ?" तब भगवान ने कहा - कि - "है श्रेणिक ! मेरे सारे शिष्य मोती की माला समान है । मेरे चौदह हज़ार शिष्यों में कोई ज्ञानी है, कोई विनयवान है, कोई वैयावच्च करनेवाले है और कोई तपस्वी है, परन्तु तुम्हारा प्रश्न उस प्रकार का है कि दुष्कर करनी करनेवाला कौन है । तो हे श्रेणिक ! काकंदी नगर में रहती भद्रा सार्थवाही का पुत्र धन्ना जिसने मेरी एक ही बार देशना सुनकर दीक्षा ली है और उग्र तपश्चर्या कर रहा है । मेरे चौदह हज़ार संतों में दुष्कर करनी करनेवाला हो तो वह है धन्ना अणगार ।" भगवान ने धन्ना अणगार के तप की बात श्रेणिकराजा को कह सुनायी । अब श्रेणिकराजा को धन्ना अणगार के दर्शन की भावना जगी । श्रेणिकराजा ने भगवान को वन्दन कर जहाँ मोती की माला समान चौदह हज़ार संत बिराजते है ऐसे पवित्र संतों को वन्दन करते करते वहाँ धन्ना अणगार बिराजमान है वहाँ आये । आकर क्या किया !

"धन्नं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, नमंसइ वंदइत्ता नमंसइत्ता एवं वयासि धन्नेसिणं तुमं देवानुप्रिया ! सुपुण्णे सुकयत्थे सुकयलक्खणे सुलद्धेणं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले त्तिकट्टु ।" धन्ना अणगार को वन्दन

नमस्कार कर कहते हैं - "हे देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं, महान पुण्यशाली हों । आपने संयम लेकर तुरन्त ही तप की आराधना कर ली है । आपने जीवन-साधना का फल प्राप्त कर लिया है । आप कृतार्थ हों, कृतलक्षण हो । आपने तप के साथ सम्यक्त्व चारित्र की आराधना कर ली है ।" इस प्रकार श्रेणिकराजा धन्ना अणगार की स्तुति की, वन्दन-नमस्कार कर भगवान के पास आये । अन्त में धन्ना अणगार ने संथारा किया । नौ-मास की दीक्षापर्याय में काम कर गये । आयुष्य स्थिति पूर्णकर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए । वहाँ से च्यवकर मोक्ष में गये ।

बन्धुओं ! धन्ना अणगार का तप कैसा था यह आपने सुना है, हमें भी ऐसी साधना कर मानवभव को सार्थक बनाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए । तप अनादिकाल से आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर चिपके चिकने कर्मों को नाबूद (नष्ट) करने की अमोघ औषधि है । तप के बिना आत्मशुद्धि होती नहीं है । तप करने से शरीर सूख जाता है, शरीर का बल कम हो जाता है, परन्तु आत्मा सूखती नहीं है । आत्मा तो तेजस्वी बनती है । उसकी शक्ति बढ़ती है । तपस्वियों का मुख निहारिए, कितना तेज़ है ? तप आत्मा को ओजस्वी और तेजस्वी बनाता है । भयंकर से भयंकर गाढ़ कर्मों को जलाकर साफ करता है । आपत्ति को दूर कर महान संपत्ति दिलाते है । सामान्य मनुष्य को भी महान बनाता है । ऐसी शक्ति तप में है । मैं आपको एक दृष्टान्त देकर समझाती हूँ ।

तप में रही हुई शक्ति

अयोध्या नगरी में धनद नामक सार्थवाह रहता था । उसे धनश्री नामक धर्मपत्नी थी । दोनों मनुष्य बहुत धर्मिष्ठ थे । वे धर्माराधना कर सांसारिक-सुख भोगते हुए सुखपूर्वक दिन बीताते थे । संसार के मन चाहे सुखों की शय्या में सोनेवाले जीव को पता नहीं कि कब इस पुण्य की बाजी पलट जायेंगी और कब सिर पर दुःखों के पहाड़ टूट पड़ेंगे ? इन दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखपूर्वक चलता था । संसार-सुख भोगते हुए एक बार धनश्री गर्भवती हुई । परन्तु उसके गर्भ में किसी पापी जीव ने जन्म लिया । धनश्री का गर्भ रहा तब से धनद की संपत्ति घटने लगी । व्यापार में नुकसान होने लगा । राज्य में उसका सम्मान भी कम होने लगा । इसलिए सुख के सुनहरे सपनों में हिलोरे लेते धनद के हृदय पर बुरे विचारों के हथोड़े पड़ने लगे । धनश्री को भी बुरे विचार आने लगे कि - 'मैं सिर मुँडाई । बुरे वस्त्र पहनकर मिट्टी में लोटुँ, धूल खाऊँ ।' इससे धनश्री समझ गयी कि मेरे गर्भ में कोई महापापी जीव आकर पैदा हुआ है । उसके कारण मुझे ऐसे विचार आते हैं और मेरे पति पर चारों ओर दुःख के बादल घिर रहते हैं ।

❑ भविष्य के जीवन की झलक :

धनश्री सोचने लगी कि – 'अभी तो बच्चे का जन्म भी हुआ नहीं है इससे पहले ही जब हमारे सिर पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े हैं, तो फिर यह गर्भ जब जन्म लेगा तब हमारी दशा क्या होगी ? उसे अनेक प्रकार के विचार आने लगे । धनद को व्यापार में बहुत हानि हुई और सारी संपत्ति समाप्त हो गयी । सिर पर कर्ज़ा बढ़ गया था, इसलिए खानदानी धनद किसी को अपना मुँह दिखा सकती नहीं है । उसे अब बहुत चिन्ता होने लगी । 'अहो ! हमारे ऐसे कौन से बुरे कर्मों का उदय हुआ कि हमारी सारी संपत्ति नष्ट हो गयी ? अब में क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?' उस चिन्ता में धनद बीमार हो गया और दो ही दिनों में मर गया । अब धनश्री को अपने जीवन में कोई रुचि नहीं थी । धन चला गया और धनद भी चला गया । सती स्त्री के लिए उसका पति का चले जाना उसका सर्वस्व चले जाने के बराबर लगता है । उसका संसार शून्य बन जाता है । धन जाने से घर में खाने के लिए अन्न नहीं है, पहनने के लिए कपड़े भी नहीं है । दुःख की कोई सीमा नहीं है, फिर भी धैर्यपूर्वक धनश्री दिन बीता रही है । प्रसूति होने के कुछ दिन पहले से ही धनश्री भी भयानक रोग का शिकार बन गयी, बाद में नौ महीनें होने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया ।

❑ दुःखी पुत्र के सहायता करती वृद्धा :

पुण्य का उदय हो तो रूप (सुन्दरता) मिलता है और पाप का उदय होने पर कुरूप मिलता है । यह पुत्र साक्षात् पाप का पुँज था । उसका मुख भयानक था, आँखों पीली थी, बाल पीले थे और शरीर का रंग काजल जैसा था । उस देखकर सीना फट जाय ऐसा भयानक रूप था । ऐसे भयानक पुत्र को देखकर धनश्री काँप उठी । एक तो रोग से घिरी थी और उसमें ऐसे भयानक पुत्र का जन्म हुआ । इससे वह अधिक दुःखी हो गयी । अतः कुछ दिनों में धनश्री भी अपने पति के पास स्वर्ग-सिधार गयी । अब यह बच्चा निराधार बन गया था । इस अनाथ के सामने अब कोई देखता तक नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति को यही लगता कि – 'यह लड़का दुर्भागी है, वह जब से गर्भ में आया था तब से ही अपने माता-पिता को दुःखी कर दिया था । उसके आगमन से धनद का सुखी संसार सूखा ठूँठ बना था । उसे हम अपने घर में लाये तो हमारी भी यही दशा हो जाय न ?' मुफ्त की मुसीबत कौन लेता ? इस छोटे से कुरूप बच्चे को खिलानेवाला या सँभालनेवाला कोई नहीं है । जो मनुष्य घोर पापकर्म कर आया हो उसे ऐसे दुःख सहने पड़ते हैं । उसे मौत भी जल्द आती नहीं है । रहने मात्र के लिए वह जी रहा है । उसमें

घर के पास एक वृद्ध बुढ़िया रहती थी । उसे इस लड़के को बहुत दया आने लगी । 'अहो ! यह बेचारा अवश्य ही पापकर्म कर आया है, इसलिए बचपन से ही दुःखी हो रहा है, इसलिए उसके प्रति दया करनी चाहिए ।' ऐसा समझकर वृद्धा उसे अपने घर ले गयी । उसे बरामदे में सुलाकर दो टंक दूध आदि पिलाकर बड़ा किया ।

❑ पापोदय से संवर को भिक्षा में मिली केवल मार :

इस बालक को उसके पापकर्म भुगतने थे इसलिए वह धीरे-धीरे बड़ा होने पर बोलना-चलना सिखा । बाद में वह गाँव में भीख माँगने जाने लगा । लोग इसे संवर के नाम से बुलाते थे । संवर गाँव में भिक्षा लेने जाता तो वहाँ भी उसे सज़ा मिलती । उसका शरीर इतना कुरूप था कि उसे देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य होता था । अनेक युवक उसे गेंद की तरह उठाकर उछालकर जमीन पर पटकते, छोटे बच्चे उस पर धूल डालते, कोई कंकड मारता । इस प्रकार संवर को सभी बहुत परेशान करते थे । वह जहाँ जाता वहाँ उसका भाग्य दो कदम आगे ही मिलता । परेशान होकर बेचारा कहीं छुप जाता, फिर भी गाँव में लड़के उसे ढूँढकर परेशान करते, इसलिए एक क्षण की भी उसे शांति नहीं मिलती थी । संवर सोचने लगा कि - 'इन नगरजनों से मैं परेशान हो गया हूँ । मेरी बात कोई सुनता नहीं है, इसलिए क्यों न राजा के पास जाकर अपनी फरियाद करूँ ?' यह सोचकर संवर राजदरबार के पास आया ।

राजमहल के पास राजकुमारों खेल रहे थे । तभी इस कुबड़े को देखकर सब को आश्चर्य हुआ और सोचने लगे कि - 'इस गेंद के साथ खेलने से अच्छा है हम इसके साथ ही खेले । खेलने के लिए यह अच्छा साधन है ।' अतः सभी राजकुमारों इकट्ठे हुए और किसी ने उसका पैर पकड़ा तो किसी ने उसका हाथ पकड़ा । कोई उसके गागर जैसे पेट में लात मारने लगा तो कोई उसे गेंद की तरह उठाकर उपर उछालकर पृथ्वी पर गिराकर मज़ा लेने लगे । बन्धुओं ! इस लड़के ने कैसे घोर कर्म किये होंगे कि जो राजा को अपनी फरियाद करने आया, वहाँ भी उस पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े । अन्त में कुमार एक गधा ले आये । संवर के मुँह पर काजल लगाकर गले में जूतों का हार पहनाकर, सिर पर मटका (सकोरा) उल्टा लगाकर उसका मुकुट पहनाया और कुछ लड़कों ने डिब्बे से वजा-वजाकर सारे गाँव में संवर की वरयात्रा की । मार्ग में कोई उस पर धूल डालता तो कोई पकड़ मारता । यह नया नाटक देखने के लिए लोगों का समूह रोड़ पर इकट्ठे होने लगे । बेचारा संवर तीन-तीन दिनों से भूखा है, इसलिए आँखों चकराने लगी । आँखों रो-रोकर सूज गयी है, मगर उसके दुःख की कहानी कौन सुनता ? एक प्रहर तक सारे गाँव में फिराकर राजकुमार उसे गधे के साथ जंगल में छोड़ आये ।

संवर पर कर्मों का आतंक

देवानुप्रियों ! जीव कर्म बाँधता है, तब उसे मालूम नहीं होता कि ये कर्म उदय में आयेंगे तब मेरी दशा कैसी होगी ? हँस-हँसकर किये गये कर्मों को रो-रोकर भुगतने पर भी पूरा होता नहीं । महल में या जेल में, वन में या नगर में, कर्मराजा उसका पीछा छोड़ते नहीं है । भूख और दुःख से पीड़ित संवर वन में जाकर गधे पर से नीचे उतरकर एक पेड़ के नीचे सो गया था । तभी वहाँ यात्रालुओं का समूह वहाँ से गुजर रहा था । संवर को नीचे सोया देखकर यात्रालुओं को लगा कि यह कोई नरराक्षस है । वह सोने का बहाना कर रहा है । वह अभी हमें खा जायेगा, इसलिए उसे सोया हुआ ही ख़त्म कर देना चाहते हैं । यह सोचकर उसके शरीर पर लकड़ियों के प्रहार से घायल कर दिया । शरीर लहू-लुहान हो गया था फिर भी प्राण बचाने के लिए संवर वहाँ से भागा । वह बहुत दूर निकल गया । एक पेड़ के नीचे बैठकर संवर सोचने लगा कि - 'अहो भगवन् ! मैंने पूर्वभव में कैसे घोर पापकर्म किये होंगे, जो मुझे कहीं भी शांति मिलती नहीं है ? बस, अब मुझे जीवित नहीं रहना है । आत्महत्या कर मर जाऊँ ।'

❑ भाग्योदय से सद्गुरु का सुयोग :

इस प्रकार सोचकर पहाड़ की चोटी पर चढ़कर आत्महत्या करने की तैयारी करता है । तभी उसके कान में मधुर शब्द सुनायी दिया - "हे भाग्यवान् ! तुम इस प्रकार कसमय जीवनलीला क्यों समाप्त करते हो ? इस प्रकार अकारण मर जायेगा तब भी कर्मराजा की क़ैद से मुक्त हो पायेगा नहीं । किये गये कर्म तो भुगतने ही पड़ेगे ।" संवर पहाड़ पर से ऐसे मधुर वचन सुनकर रूक गया । क्योंकि उसकी ज़िन्दगी में उसने पहली ही बार ऐसे आश्वासन से भरे मीठे वचन सुने थे । संवर के लिए ये शब्द अमृत समान थे । ऐसा कौन कहता होगा ? यह देखने के लिए चारों ओर नज़र की तो एक संयमी मुनिराज को देखा । मुनि के मुख पर तप का तेज चमकता था और समता का सागर लहरा रहा था । संवर दौड़ता हुआ संत के पास गया और उनके चरणों में मस्तक झुकाकर लोटने लगा । उसकी आँखों से आंसूओं की धारा बहने लगी । तब संत ने घुमकर पूछा - "भाग्यवान ! तुम आत्महत्या कर अपने जीवन का अन्त क्यों ला रहे हो ?" तब संवर ने कहा - "भगवन् ! मैं भाग्यवान नहीं दुर्भागी हूँ । मुझे जीवन विष जैसा लग रहा है । जहाँ जाता हूँ वहाँ धिक्कार का पात्र बनता हूँ । इसलिए अब मुझे एक क्षण के लिए भी ज़िन्दा रहना नहीं है ।" और संवर ने अपने दुःख की सारी कहानी मुनि को कह सुनायी ।

मुनि ने कहा - "भाई ! मानवजीवन अमूल्य है । तुम्हारे पूर्वकर्म उदय में आये हैं । महान पुरुषों को भी कर्म ने छोड़ा नहीं है । इस प्रकार आत्महत्या कर मर जाने से तो उल्टा नये-कर्म बँधते हैं और महान पुण्योदय से मिला मानवजीवन हार जाते हैं । अतः तुम आत्महत्या करने की बात त्यागकर अपने पापकर्मों को हटाने के लिए आज से धर्माराधना में मन लगा दे ।" तब संवर ने आँखों में आंसू के साथ कहा - "हे भगवन् ! क्या मेरे जैसा पापी जीव पापकर्मों को हटा पायेगा ?" "हाँ, भाई ! तुम अपने पापकर्मों को हटा सकते हो ।" संवर ने आशावादी बनकर पूछा - "भगवन् ! फिर मुझे अपने पापकर्मों को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए ?" संत ने उसे उपदेश देते हुए कहा - "संवर ! संयम और तप के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, इसलिए सुन । घोर पापियों को भी तपरूपी तापी नदी के नीर में स्नानकर पापरूप पंक को भीगाकर शुद्ध बन गये हैं । मन, वचन और काया की शुद्धि से तप करनेवाले को इस भव में और आनेवाले भव (जन्म) में सुख और शांति मिलती हैं । तपरूपी आग में कर्मरूपी ईंधन (लकड़े) जलकर खाक हो जाते हैं । बुरे से बुरे पापकर्म में प्रवर्तित जीव तप की आराधना से पुण्यवान बन जाता है । संवर ! तुम घबरा मत, रो मत । अपने पापकर्मों को नष्ट करने का सुनहरा समय है, उसे खो मत । संयम और तप की उत्तम साधना कर मानवजीवन के अमूल्य पल को सफल बना ले ।"

मुनिराज की अमृतमय मधुर वाणी संवर के हृदय में पैठ गयी । उसे समझ में आ गया कि 'मुझे अपने ही कर्मों ने हैरान-परेशान किया है, मैंने गत जन्म में अनेक पाप किये हैं । बस, अब तो पाप को जलाकर, आत्मा को प्रकाशित करने के लिए इस गुरुदेव के पास ही संयम लेकर उग्र तप की साधना कर लुँ ।' संवर ने गुरुदेव के पास दीक्षा लेकर बहुत ज्ञान-ध्यान सहित तप-यज्ञ प्रारम्भ किया । इन्द्रिय-विजयतप, कषायतप, योगशुद्धितप, श्रेणीतप आदि विविध प्रकार के तप से काया को वश कर पवित्र कर दिया । वर्धमान तप की ओली (साधना) पूर्ण कर उच्च भावना से साधु की बारह प्रतिमाएँ वहन की ।

❑ देवों की हार :

उसके बाद गुरु भगवन्त की आज्ञा लेकर संवर मुनि ने जिनकल्पीपन का स्वीकार किया । उन्हें अब शरीर पर ज़रा भी ममता न रही । उनके शरीर को लहू, माँस आदि सूख गये थे और हड्डियाँ तथा चमड़ी एक-दूसरे के साथ चिपक गये थे, फिर भी आत्मा की शक्ति बहुत थी, मुनि का तप देखकर देवलोक में से देव उनकी परीक्षा करने के लिए आये । मेवे-मीठाई के थाल उनके सामने रखे, सूखे शरीर को अच्छा करने के अनेक प्रलोभन दिये । देवांगनाएँ उनके सामने उ

नृत्य करने लगी, फिर भी मुनिराज उनके ध्यान से चलित न हुए - अड़िग खड़े रहे, अतः परीक्षा करने आये देव भी हारकर मुनि को वन्दन कर चले गये । तप के प्रभाव से मुनि को अनेक प्रकार की लब्धियाँ और शक्तियाँ प्रकट हुई और तप के प्रभाव से आकर्षित होकर देव, दानव और नरेन्द्रों मुनि की सेवा करने लगे । ये मुनि जहाँ विचरते वहाँ से अकाल और उपद्रव दूर भाग जाते थे और जगह-जगह मुनि के यशोगान होने लगे । दूर-दूर से लोगों के समूह उनके दर्शनों के लिए आने लगे । अन्त में अन्तिम समय में अनसन स्वीकार कर काल कर सर्वार्थसिद्ध विमान में गये और एकावतारी बने । भव-समुद्र को पार करने के लिए तप एक नौका समान है । तप किसलिए करना चाहिए, यह आत्मा को खास ध्यान रखना चाहिए । भगवान ने 'दशवैकालिक सूत्र' में फरमाया है - *''नो इह-लोगट्ठयाए तब महिट्ठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए तब महिट्ठिज्जा, नो कित्ति वण्ए, सद्द सिलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा, नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा ।'* मनुष्यलोक में सुख-समृद्धियाँ और लब्धियाँ पाने के लिए नहीं, परलोक के सुख के लिए नहीं, कीर्ति, प्रख्याति (प्रसिद्धि) बढ़ाने या श्लाघा-यश आदि प्राप्त करने के लिए तप नहीं है । एकान्त निर्जरा अर्थात् आठ कर्मो का क्षय कर मुक्ति प्राप्त करने के लिए तप है । ऐसी शुद्ध भावना के साथ तप करेंगे तो आप के कर्मो की निर्जरा होगी ।

पर्युषण में तप की आवश्यकता

पर्युषणपर्व के दिनों में तप करने का सहज ही मन हो जाता है । छोटे-छोटे बच्चे भी आनन्द से, उत्साह से कूदते-नाचते है और कहते हैं कि - 'मैं उपवास करूँगा ।' उसे उपवास करने का कितना उत्साह होता है ? छोटा बच्चा चाहे एक उपवास ही करे परन्तु उसका प्रभाव कितना होता है ? तपनी शक्ति कैसी अलौकिक है ?

❑ तपस्या का प्रभाव :

छोटे आठ वर्ष की आयु के बच्चे को भी उपवास करने का मन हुआ और किया भी । माता ने उसे बहुत समझाया फिर भी वह उसमें अटल रहा । शाम को प्रतिक्रमण कर घर जाकर रात को सो गया । भूख के कारण नींद आ नहीं रही है । उसके मुख पर उपवास की रखाएँ दिखने लगी । उसका जी घबराने लगा । शय्या में पड़ा पड़ा लोट रहा है । माता उसके पास बैठकर सिर पर उसके हाथ फेरती है । जिसने तीन दिन में घर में कदम तक नहीं रखे, वह बाप शराब के नशे में चूर रहता था । उसकी यह बुरी आदत (लत) बढ़ गयी थी । परिणामतः उसका असर परिवार के सारे सदस्यों पर भी होने लगी । किसी कारण वह अपनी पत्नी

और पुत्र को मारता था । उसका पारिवारिक वातावरण बिगड़ गया है । उसके शरीर में रोग हुआ है । मित्र वर्ग भी छूट गया है और धन्धे में भी नुकसान होने लगा है । लड़के का बाप ऐसा था । जबकि लड़के ने संवत्सरी का उपवास किया था । संवत्सरी का दिन होने से बाप ने शाम को शराब नहीं पी थी । वह रात को घर आया । शराब पीना और जुआ खेलना - ये दोनों व्यसन बाप में घर कर गये थे । इसके कारण पैसों से भी ये लोग बर्बाद हो गये थे ।

❑ पुत्र के उपवास से पिता का हृदय-परिवर्तन :

बाप घर आया तब लड़का शय्या पर सो रहा था । माता प्यार से हाथ फेरकर रो रही थी । कहाँ यह लड़का और कहाँ इसका बाप ! 'हे भगवन् ! तू इन्हें सुधार । मेरे लड़के को कुछ नहीं होगा । फूल मेरा मुरझा गया है ।' तभी बाप ने घर में प्रवेश किया । माता बेटे को सहला रही थी । उसे देखी तो आज शाम को उसने शराब नहीं पी थी, इसलिए होश में था । बाप अपने बेटे के पास बैठा । "बेटे ! तुझे क्या हो रहा है ?" आज बहुत दिनों के बाद बाप के मूख से 'बेटा' शब्द सुना । "पिताजी ! आज मैंने उपवास किया है ।" "क्या बात करता है ? उपवास किया है ? तुमने तो कमाल कर दिया ! तुझे बहुत परेशानी होती होगी, उपवास छोड़ दे ।" "पिताजी ! मैं उपवास नहीं छोडुँगा । मैं मर जाऊँगा, मगर रात को खाना-पीना कुछ नहीं करूँगा ।" छोटे लड़के की मक्कमता (अटलता) देखकर बाप स्तब्ध हो गया । उसका कठोर हृदय पिघल गया । उसने कहा - "बेटे ! तुझे आज क्या दुँ ? तुझे क्या चाहिए ?" "पिताजी ! क्या आप मुझे कुछ देना चाहते हो ?" "हाँ, बेटे !" "तो मैं आपके पास यह माँगता हूँ कि आप जीवन पर्यन्त जुआ बन्द कीजिए और क्लब में जाना बन्द कर शराब छोड़ दीजिए ।" इस बच्चे ने कैसा माँगा ? सामान्य बालक तो साइकिल, घड़ी माँग लेगा । परन्तु इस बच्चे ने यह सब न माँगा । माँगा तो यह माँगा कि आप जुआ और शराब से मुक्त हो जाइए । बाप का हृदय पिघल गया । धिक्कार है मेरी आत्मा को ! उसने एक ही क्षण में निर्णय कर दिया । "जा बेटे ! आज से सदा के लिए शराब-जुआ त्यागता हूँ । अब तो खुश न ?" पत्नी पति को सुधारने के अनेक प्रयास करती थी, परन्तु उसकी एक न सुनता था, परन्तु आज बेटे के एक उपवास से उसका पूरा जीवन सुधर गया ।

अतः ज्ञानियों ने कहा है कि - "तप आत्मा को शुद्ध करने का तेज़ाब है । जैसे सोने को तेज़ाब में डालने से शुद्ध बनता है, उसी प्रकार आत्मा को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए तपरूपी तेज़ाब की आवश्यकता है । मशीनरी को साफ करने के लिए पेट्रोल की आवश्यकता है और कपड़ों को साफ करने के लिए गर्म पानी और साबुन की आवश्यकता है । जैसे कपड़ों को या तेल की बहुत चीका

जमे कपड़े को उसका मैल निकालकर साफ करने के लिए सामान्य प्रयोग काम न आते । उसके गाढ़े मैल को निकालने के लिए उस कपड़े को भट्ठे के उबलते पानी में डाल दे और उसमें मैल का निकालनेवाले साबुन, पाउडर आदि पदार्थ डाले, बहुत उबाले तब उस मैले कपड़े का मैल दूर होता है । अनेक समय (कालों) से मैल को अपना माननेवाला कपड़ा स्वयं ही उस मैल को दूर न कर सके तो उसे धोबी निकाल सकता है । कपड़ा धोबी के उबलते भट्ठे में पड़ने के बाद मैल के कारण बुड़-बुड़ आवाज़ करे तो भी धोबी उसकी ओर न देखता है न दया करता है । वह तो मैल से कपड़ा मुक्त न हो तबतक निरपेक्ष भाव से उसे उबलने देता है । अपने कपड़े की ऐसी करुण दशा देखकर उसका मालिक धोबी को भट्ठे से निकाल देने को कहता है, फिर भी धोबी उसकी ओर ध्यान नहीं देता है । उसी प्रकार आत्मप्रदेश में रहे आत्मा की अनन्तकाल के राग-द्वेषरूपी मैल की अत्यन्त गाढ़ी ग्रंथि रूपी इस मैल को दूर करने के लिए, आत्मा रूपी कपड़े से अलग करने के लिए आत्मा को सम्यक्त्व सम्मुख लाकर रखनेवाले गुण रूपी धोबी को कर्म मैल का स्वामी आत्मा उसे विश्राम देने की कहता है, तब भी उसके सामने ध्यान दिये बिना तीव्र सदाचार और तपरूपी भट्ठे के तावड़े (पात्र) में बहुत उबाले और उसमें अनन्तकाल का सम्बन्ध होने के कारण उस ग्रंथि का मालिक आत्मा उस पर शायद दया लाये तो उसके सामने भी उस कुल्हाड़ी जैसे नुकिली नोकवाले तीक्ष्ण परिणाम रूप गुण धोबी नजर तक नहीं करता ।

उस तीव्र तपश्चर्या और सदाचार रूपी भट्ठे के तावड़े में बहुत उबलकर आत्मा रूप कपड़े से उस मैल कर्म रूप ग्रंथि बिलकुल निर्बल हो जाने से वह कपड़ा उस गाढ़े (गहरे) मैल से मुक्त हो । उस मैल के योग से पीड़ित (आत्मा) शान्त हो उसके बाद हितस्वी (हितैषी) धोबी आत्मा रूप कपड़े में से ग्रंथि रूप मैल से आत्मा को सहानुभूतिपूर्वक बाहर निकाले और फिर उसे अनिवृत्तिकरण रूप नदी में डालकर शांत करे । उसके बाद तो आत्मरूप कपड़े को होगा कि 'हाश ! उस प्रकार से आत्मा को ग्रंथि भेद के लिए सदैव परिश्रम और अन्त में प्राप्त होनेवाला सम्यक्त्व 'हाश' (सन्तोष) है, इसके बाद आत्मा को दुर्गति में गिरता बचाये और शुभ स्थान में स्थापित करे, ऐसे लक्षणवाली आत्मा को जिनेश्वरदेव कथित धर्म को प्राप्ति होती है और धर्म पाने के बाद आत्मा इतना समझने लगे कि आप्त पुरुषों के वचन का अनुकरण (अनुसरण) करने में लाभ है ।

देवानुप्रियों ! जो आत्माएँ महान पुरुषों के वचन का अनुसरण करते हैं वे आत्माओं का लाभ पाते हैं । महान पुरुषों का वचन है कि - *'तवसा निर्जरा च ।'* तप करने से कर्म की निर्जरा होती है । अधिक बातें बाद में ।

व्यारव्यान - १७

सावन, कृष्ण पक्ष-१४

राग का दंगा और द्वेष का दावानल

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

पाप को जलाकर पुनित बनने का अगर कोई पर्व हो तो वह है पर्वाधिराज पर्युषणपर्व । पर्युषणपर्व प्रत्येक वर्ष पधारकर हृदय में नयी ताज़गी देता है और संसाराभिनन्दी ज़ीवों को आत्मानन्दी बनाता है । पर्युषणपर्व को कैसी-कैसी उपमा दी है ?

"चौपद में वनचरी बड़ा, खग में गरूड कहलाये,
नदी में गंगा बड़ी, तो पहाड़ में है मेरु बड़ा,
अरे भूपति में भरतेश्वरवाला, तो देवे में हे सुरेन्द्र,
पर्व में पर्युषण बड़ा, ग्रह ग्रहण में चन्द्र मार ।"

चार पैरोंवाले जो प्राणी हैं, उन सभी प्राणियों में सिंह बड़ा है । आकाश में उड़ते पक्षियों में गरुड़ बड़ा है, सारी नदियों में गंगा नदी बड़ी है । पृथ्वी-पट पर जो पहाड़ हैं, उन पहाड़ों में मेरु पहाड़ महान है । भूपति में भरतराजा सब से बड़े हैं । किसलिए ? बारह चक्रवर्ती में वे सबसे पहले चक्रवर्ती हुए और दूसरा कि वे आईना-भवन में केवलज्ञान को प्राप्त हुए ऐसा अन्य चक्रवर्ती में नहीं हुआ । अतः भरत चक्रवर्ती बड़े हैं । देवों में सुरेन्द्र बड़े हैं । सारे ग्रहों में चन्द्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पर्वों में पर्युषणपर्व बड़ा है, इसलिए उसे पर्वाधिराज कहते हैं ।

पर्युषणपर्व अर्थात् प्रेम की सरिता, मनुष्य के मन से बैरभाव के काँटे-कंकड़ को दूर कर प्रेम की सरिता बहाते हैं । यह पर्वाधिराज पर्युषण हमारी आत्मा में लगे कर्मरूपी कीचड़ को धोने के लिए वॉशिंग कम्पनी है । वॉशिंग में धोये हुए कपड़े सबको पहनने अच्छे लगते हैं । उसी प्रकार यहाँ भी आत्मा को धोना है । वीतराग शासनरूपी वॉशिंग कम्पनी में वीतरागी सन्त धोबी बनकर कर्म के मैल को धोने के लिए आह्वान करते हैं । 'हे मुमुक्षु आत्माएँ ! जागिए । वीतराग-वाणीरूपी पानी, सम्यक्त्वरूपी सनलाइट साबून लेकर, समता की सील पर धर्मरूपी लकड़ी से आत्मारूपी कपड़े को धोकर शुद्ध बना दीजिए । पर्युषणपर्व अज्ञान में भटकती आत्माओं को रत्नत्रय का ज्ञान प्राप्त करने की कोलिज (कॉलेज) है और भवरोग को दूर करने का दवाखाना (अस्पताल) है । देह के दर्द को दूर करने के लिए आज हर जगह दवाखाने हैं । परम उपकारी भगवन्त ने भी भवरोग

दूर करने के लिए यह अस्पताल खोला है और सन्तरूपी डॉक्टर भेजे हैं । आपके डॉक्टर तो फीस भी लेते हैं । जबकि सन्त तो 'फ्री ओफ चार्ज' में दवाई देते हैं । यह प्राइवेट अस्पताल नहीं है, मगर जनरल (सार्वजनिक) अस्पताल है । जिसे दाख़िल होना हो, वे हो जाइए और दान, शीयल, तप और भावना की औषधि लेकर भवरोग दूर कीजिए ।

इस पर्युषणपर्व के दिनों में मोह कम हो, विषयों का वमन, कषायों का शमन और इन्द्रियों का दमन हो, यह सोचना है । पर्युषण तो अभी तक अनेक गये, मगर जीव समझा ही नहीं । परन्तु अब जो आये हैं, उसमें जितनी हो सके उतनी आराधना कर लीजिए, तो पर्युषणपर्व सफल होगा । जैसे हो सके वैसे आस्रव का घर छोड़कर संवर के घर में आईए । पापों का प्रक्षालन करने लिए दो बार प्रतिक्रमण कीजिए, अगर शुद्ध भाव के साथ प्रतिक्रमण कीजिए तो उन कर्मों की निर्जरा करने में कारणभूत बनते हैं । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में शिष्य ने भगवन्त से प्रश्न किया कि "हे भगवन्त ! *पडिक्कमणेणं भंते जीवे किं जणयइ ? पडिक्कमणेणं वय छिद्दाणि पिहेइ, पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे । असबल चरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिए विहरइ ।।११।।* प्रतिक्रमण करने से इस जीव को क्या लाभ होता है ?" तब भगवन्त ने फरमाया कि - "प्रतिक्रमण करने से व्रतों में पड़े छिद्र ढक जाते हैं; फिर शुद्ध व्रतधारी होकर आस्रवों को रोकता है । आठ प्रवचनमाता में सावधान हुआ जाता है और जीव शुद्ध चारित्र का पालन करता हुआ समाधिपूर्वक संयमभाव में विचरता है ।" प्रतिक्रमण करने में इतना बड़ा लाभ है, मगर वह प्रतिक्रमण कैसा होना चाहिए ? ऐसा लाभ कब होता है ? प्रतिक्रमण करते समय मन को मन को इधर-उधर भटकने देना नहीं है । 'अनुयोग द्वार सूत्र' में भगवन्त फरमाते हैं कि - "कोई मनुष्य बहुत शुद्ध उच्चार सहित प्रतिक्रमण करता या करवाता हो, परन्तु अगर उसमें उसका उपयोग और भाव का ऐक्य न हो, तो वह द्रव्य-प्रतिक्रमण है मगर भाव-प्रतिक्रमण नहीं है । शुद्ध उच्चार के साथ अगर उपयोग जुड़ जाय तो यह प्रतिक्रमण कर्मों की कालिमा को धोने का साधन बन जाता है ।"

अधिक क्या कहूँ ! पर्युषण प्रतिक्रमण का और प्रत्याख्यान का पर्व है । प्रतिक्रमण अर्थात् पाप से पीछे हटना और प्रत्याख्यान अर्थात् पाप नहीं करने का आत्म संकल्प । इस मंगल दिनों में हम जाने-अनजाने, प्रमाद या अज्ञान से जो कोई पाप, बुरे काम और दुष्कृत्य किये हो तो उसकी निन्दा करनी है । क्योंकि परनिन्दा से आत्मा कर्म से काली बनती है और स्वनिन्दा से आत्मा विशुद्ध और

निर्मल बनती है । स्वनिन्दा और आत्मघृणा कर आत्मा की मलिनता दूर कीजिए और उसके साथ आत्मा को अशुद्ध करनेवाली विचारवाणी और व्यवहार से दूर होते जाईए और पुनः पाप नहीं करूँगा, इसका दृढ़ संकल्प कीजिए । परन्तु अनादिकाल से जीव कर्मबन्धन करता आया है और अभी तक कर्म बाँधता फिरता है, फिर कर्म का मूल (जड़) क्या है ? जीव किस प्रकार बँध (कर्म) से बँधता है यह समझाने के लिए भगवान ने फरमाया है कि -

रागा य दोसोऽवि य कम्मवीयं, कम्मं च मोहप्पभंव वयन्ति ।
कम्भं च जाइ मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइ मरणं वयन्ति ।।

- उत्त. सू., ३२-७

कर्म के बीज रागद्वेष है । कर्म मोह से पैदा होता है । वह कर्म जन्म-मृत्यु का मूल है और जन्म-मृत्यु ही दुःख है । उदा., बीज हो तो बीजारोपण होता है । बाजरे का बीज हो तो बाजरे का ही बीजारोपण हो सकता है । कपास का बीज हो तो कपास का बीजारोपण हो सकता है । बीज के बिना फल (फसल) की प्राप्ति होती नहीं, उसी प्रकार इस संसार में भटकना-आखड़ना क्यों पड़ता है ? राग और द्वेष कर्म के बीज हैं । कर्म के कारण जीव चौगति के चक्कर में भटक रहा है । राग-द्वेषरूपी बीज के कारण संसार नवपल्लवित रहता है । वह राग चाहे संसार का हो, परिवार का हो या धन का हो, परन्तु राग जीव को कर्म-बँध कराता है । राग-द्वेष कर्म का बीज है, कर्म मोह से पैदा होता है । मोहनीय कर्म आठ कर्मों में प्रधान सेनाधिपति है । जिसका सेनाधिपति पकड़ा जाता है, उसकी सेना को भी पकड़ा जाना होता है । मोहनीय कर्म की मूल प्रकृति २८ है । उसमें २५ चारित्र मोहनीय का और तीन दर्शन मोहनीय के हैं । १६ कषाय और नौ (९) नोकषाय - २५ चारित्र मोहनीय का और तीन दर्शन मोहनीय का, ये २८ प्रकृति जीव को संसार में भटकाते हैं । वे जीव को सत्य वस्तु का ज्ञान होने देते नहीं है । मोह के वातावरण में भी जीव समझे तो उसे उपदेश-बोध मिल सकता है ।

आप ब्याहने गये तब चौरी बाँधी थीं । चौरी के चार छोर (दिशा) होती हैं । प्रत्येक दिशा में छोटी-बड़ी कितनी मटकियाँ होती है यह पता है ? (श्रोता-सात) एक दिशा (छोर) पर सात तो चार दिशाओं में कितनी हुई ? २८ । इसमें आप कुछ समझे ? चार छोर के समान चार गति और २८ मटकियाँ समान मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति । यह आप को बोध देता है कि ब्याहने आते है तो ये २८ प्रकृतियाँ आपको चार गति के चक्कर में भटकायेगी, अतः राग, द्वेष और मोह को छोड़ने की आवश्यकता एक श्लोक में कहा है कि -

एते रागद्वेष मोहा उद्यन्तमपि देहिना ।
मूलाद्र मे निकृन्तन्ति, भूपका इव पादपम् ।।

२२२२२२२२२२२२२ - २२२२२२२२२२२२

जिस प्रकार चूहे वृक्ष को काट डालते हैं, उसी प्रकार प्राणियों के विकसित धर्म को - वैराग्य को ये राग-द्वेष तथा मोह जड़मूल से छेद डालते हैं । राग-द्वेष तथा मोह की त्रिपुटी जीवों को निर्धन बना देते हैं । राग-द्वेष जहाँ हो वहाँ मोह होता है, जहाँ मोह है वहाँ राग-द्वेष भी है । जहाँ यह त्रिपुटी मिलती है वहाँ क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति आदि कि जो त्रिपुटी के नौकर हैं वे भी मिलते हैं । वे सभी मिलकर बेचारे जीव के बुरे हाल कर धर्म-वृक्ष के सुन्दर फल खाने देते नहीं है और विषयोंरूपी विषवृक्ष के कटुफल खानो को सिखाता है । अतः जी मूर्छित होकर हेय, ज्ञेय, उपादेय की पहचान कर सकता नहीं है ।

आज का विषय है - 'राग का दंगा और द्वेष का दावानल ।' राग का दंगा कैसा है और द्वेष के दावानल में जीवात्मा कैसे भट्क उठता है और उन दोनों के फल कैसे हैं, यह हमें सोचना है । राग और द्वेष ये दोनों हमारे शत्रु हैं । द्वेष पर विजय पानेवाले और राग पर विजय पानेवाले इन दोनों विजेता में विशेषता किसकी है ? राग पर विजय पानेवाले की । द्वेष पर विजय पाने से अधिक राग पर विजय पाना कठिन है । अतः जगत में वीतरागी विरले हैं । यहाँ आपको शायद प्रश्न होगा कि राग पर विजय पाना कठिन किसलिए कहा है ? उसके प्रतिउत्तर में महापुरुष कहते हैं कि - ''द्वेष का विषय मात्र चेतन है, जबकि राग का विषय जड़ और चेतन दोनों है । इसलिए रागविजेता बनता कठिन है ।''

बहुत सोचने पर पता चलेगा कि द्वेष चेतन पर होता है । द्वेष का कोई भी विषय लेंगे तो वही जीव आयेगा । बच्चा समझदारी के अभाव में शायद खंभे पर गुस्सा होकर लकड़ी भी मार दे मगर खंभे के साथ टकराकर गिरा समझदार मनुष्य तो अपनी असावधानी का दोष देखेगा । समझदार और सयाने मनुष्य कभी जड़ पर द्वेष नहीं रखेंगे । खंभे के साथ टकराकर गिर जाने पर भी उसे खंभे पर दोष का आरोपण करने का विचार सपने में भी नहीं आयेगा । पागल मनुष्य शायद चेतन की तरह जड़ पर द्वेष करे, मगर इससे द्वेष की सीमा चेतन को बेधकर जड़ तक पहुँच सकता नहीं है । द्वेष तो चेतन की सीमा तक ही सीमित है ।

द्वेष का विषय चेतन है, जबकि राग का विषय चेतन और जड़ दोनों है, जड़ वस्तुओं पर राग कर हमने अपनी आत्मा की कम हानि नहीं की है । अनित्य नाशवंत वस्तुओं पर रागकर जीव न जाने कितने कर्म बाँध रहा है । राग और द्वेष ये दोनों आत्मा के महान रोग है । इन दोनों में द्वेष शायद बुरा लगेगा, मगर राग बुरा नहीं लगता है । राग की कतार कितनी लम्बी है ! अरे जड़ वस्तु पर राग भी हमें सोचने पर मज़बूर कर दे ऐसा है । सबसे पहले अतिप्रिय जड़ ऐसे शरीर पर राग । फिर उस शरीर पर पहनने के वस्त्रों पर राग; वस्त्रों में भी मनचाहे रंग पर राग । वस्त्रों को सँभालने की अलमारी और अलमारी को सँभालनेवाले घर पर कितना राग है ? इतना

राग-द्वेष कम करो

कहा जाता है कि - 'जो प्रधान राजा को अनुकूल हो, राजा का कारोबार ठीक तरह से चलाता हो, उस पर राजा के चारों हाथ रहते हैं । और राजा उसे निहाल कर देते हैं । परन्तु कुछ लोग द्वेषभाव-ईर्ष्या के कारण सह नहीं सकते, अतः सुखी को दुःखी करने के प्रयास करते हैं । एक राजा का प्रधान बुद्धिवान, नम्र और विवेकी था । उस पर राजा के चारों हाथ थे । अपनी कार्य-कुशलता से उसने राजा का हृदय जीत लिया था, अतः राजा को प्रधान अपनी साँस और प्राण से भी प्रिय था । राजा प्रत्येक काम प्रधान को पूछकर ही करता । इससे राज्य के अन्य छोटे मंत्रीगण तथा अधिकारियों को ईर्ष्या होने लगी कि - 'महाराजा तो हर समय प्रधान की ही प्रशंसा करते रहते हैं । प्रत्येक कार्य राजा प्रधान को पूछकर ही करते हैं । हमें तो कभी पूछा नहीं है ।' ईर्ष्या के कारण इन सभी प्रधान के विरोध में राजा के कान भरते रहते थे, परन्तु राजा किसी की एक न सुनता था । अतः सभी ईर्ष्यालुओंने मिलकर प्रधान को नीचा दिखाने के लिए एक योजना बनायी । ईर्ष्यालु लोगों में से एक ने कही ऐसा पढ़ा कि - (१) **है...है... और, है (२) नहीं है...नहीं है और नहीं (३) नहीं है और है (४) है और नहीं है ।** वे सब सोचने लगे कि इसका अर्थ क्या है ? किसी को इसका अर्थ समझ में न आया । तो उन्होंने सोचा कि - 'हमारे महाराज के प्रधान बहुत चतुर हैं । वे उसका अर्थ समझाएँगे । और प्रत्यक्ष कर दिखाएँगे । हमें यह अच्छा कार्य मिला है ।' वे सभी राजा के पास जाकर कहने लगे - "महाराज ! यह चार वाक्य हमें कहीं से मिले हैं, परन्तु इसका अर्थ क्या है यह हमें समझमें नहीं आता है, इसलिए हमें इसका अर्थ समझना है और साक्षात्-प्रत्यक्ष देखना है । हम आपको तो ऐसा पूछ नहीं सकते हैं, परन्तु हमारे प्रधानजी बहुत ही बुद्धिमान हैं, बड़े से बड़े मुश्किल सवाल (प्रश्न) को भी सरलता से सुलझा सकते है, इसलिए हमारे इन चार सवालों को हमें प्रत्यक्ष प्रेक्टीकल कर दिखाइए ।"

❑ ईर्ष्यालुओं का प्रपंच :

बन्धुओं ! ईर्ष्या कैसी बुरी चीज़ है ? ईर्ष्याकी आग मनुष्य के गुण को जलाकर खाक कर देती है । किसी के मकान में आग लगी होगी, तो वह पानी से बुझ जायेगी, मगर ईर्ष्या की आग पानी से नहीं बुझेगी । ईर्ष्या भयानक आग है । वह दूसरों का सुख, सौभाग्य, सत्कार, सम्मान देख सकती नहीं है । आज दुनिया दूसरों का सुख देख सकती नहीं है । किसी मनुष्य क उसके कार्य की सफलता के फल-स्वरूप सरकार की ओर से या समाज की ओर से सम्मानित किया जाय, या कोई उच्च पद दिया जाय तो ईर्ष्यालु लोगों से यह देखा नहीं जाता । अतः वह हृदय से जलते रहते हैं ।

उस ईर्ष्यालु लोगों ने महाराज को ऐसी मीठास से बात की कि राजा के दिमाग में बात उतर गयी और मन ही मन सोचा कि - 'बात ठीक है । मैं प्रधान से बात करूँगा ।' दूसरे दिन सभा भरकर राजा बैठे हैं । प्रधानजी भी सभा में आये । राजा के पास अपने आसन पर बिराजमान हुए । फिर थोड़ी-बहुत राजकार्य की चर्चा करने के बाद राजा ने वह बात खोली । उन्हों ने पूछा - "प्रधानजी ! आपको इन चार वाक्यों का प्रेक्टीकल कर दिखाना है ।" प्रधान ने कहा - "महाराज ! कौन से वाक्य हैं ?" तब राजा ने कहा - **(१) "है है और है..., नहीं... (२) नहीं है...और नहीं है, (३) नहीं है और (४) है और, है और नहीं है ।"** इन चारों वाक्यों का अर्थ क्या है यह प्रेक्टीकल (प्रयोग) कर प्रत्यक्ष दिखाइए ।" प्रधानजी बहुत ही अनुभवी थे, परन्तु उन्होंने ऐसा कभी सुना नहीं था, इसलिए वे सोच में पड़ गये कि इसका अर्थ क्या है ? मुझे समझ में नहीं आता है, फिर भी हिम्मत कर कहा - "महाराज ! यह काम थोडा मुश्किल है । उसका अर्थ तो मैं शायद जल्दी दे सकता हूँ, परन्तु प्रेक्टीकल कर दिखाना थोड़ा कठिन है । उसके लिए समय चाहिए, इसलिए मुझे छ महीनों का समय दीजिए ।" राजा ने कहा - "ठीक है, छ महीने की मुदत देता हूँ । मगर आपको कर दिखाना तो पड़ेगा । अगर प्रेक्टीकल कर नही दिखाओगे तो मैं आपके पूरे परिवार को कैद कर दुंगा और आपको तो अपनी इच्छानुसार सज़ा करूँगा । आपका घर-बार, संपत्ति सब कुछ जप्त कर लुँगा ।" यह राजा, बाजा और बन्दर, रीझे तो गाँव दे दे और खीजे तो प्राण ले ले । राजा को प्रधान कितना प्रिय है ! परन्तु आज परिस्थिति कुछ और थी । प्रधान ने कहा - "महाराज ! मैं ठीक-ठीक बताऊँगा ।" प्रधान ने हाँ तो कहा, परन्तु मन ही मन परेशानी होने लगी कि यह क्या ? इसे प्रत्येक्ष मैं कैसे दिखा सकता हूँ ?

❑ प्रधान को चिन्तित देखती पुत्रवधू :

प्रधान इस प्रश्न के उत्तर की खोज में लग गये । मगर इसका कोई उपाय नहीं मिलता । इस बात को लगभग दो महीने बीत गये, परन्तु कोई समाधान (उपाय) नहीं मिलता है । अतः प्रधानजी की चिन्ता बढ़ने लगी । घर से राजभवन जाते और शाम को घर आते, खाते-पीते, बोलते-चलते सब कुछ करते, परन्तु ये सब, उदासीनतापूर्वक करते हैं । प्रधान के पुत्र की बहू के मन में विचार आया कि - 'कुछ दिनों से मेरे ससुरजी बहुत उदास रहते हैं । इसका क्या कारण होगा ? भरपेट खाते भी नहीं है - अवश्य कोई बड़ी चिन्ता में होंगे ।' परन्तु ससुर से कैसे पूछा जाय ? उस जमाने में मर्यादा कितनी होगी ? जो वहू अपने ससुर के आड़े नहीं उतरती थी । उसकी आवाज़ भी ससुर कभी सुन नहीं सकता था, परन्तु आज की बात को कुछ और ही है ।

यह पुत्रवधू बहुत चतुर थी । वह स्वयं तो अपने ससुर को पूछती नहीं, परन्तु सास से कहा - "माजी ! आप माने या न माने मगर पिछले दो महीनों से मेरे ससुरजी किसी परेशानी में हो ऐसा लग रहा है । उनका मुख कितना उदास हो गया है ?" तब सास ने कहा - "पुत्री ! अभी तो तुम बहुत छोटी हो । तुझे क्या पता ? तुम्हारे ससुर राजा के प्रधान हैं । राज्य में तो अनेकों प्रकार की परेशानियाँ आती रहती हैं, इसलिए कभी ऐसा हो जाय तो उदास हो सकते हैं । और कोई कारण नहीं होगा ।" परन्तु बहू ने पुनः कहा - "माजी ! ऐसी बात के लिए भला इतनी अधिक चिन्ता क्यों करते ! और यदि हो भी तो एक-दो दिन की हो सकती है, इतने अधिक दिनों की नहीं हो सकती ।" तब सास ने कहा - "बहू ! तुम्हारी भूल हो रही है । तुम चिन्ता मत करो ।" बहू ने कहा - "माजी ! ठीक है । आपको शायद ऐसा नहीं लगता है तो ठीक है, परन्तु मैं विवाह कर लगभग एक वर्ष से यहाँ हूँ, तब से देखती हूँ कि पिताश्री रोज जब घर आते तब खुशी-उत्साह से आते थे, और साथ में कुछ न कुछ लेकर आते, फिर घर के सभी सदस्यों के साथ प्रेम से बातचीत करते थे और अब घर में आते है और जाते हैं, खाते-पीते हैं, परन्तु उनका मन सदैव उदास और चिन्तातूर दिखता है । अब तो हँसते भी नहीं है, न प्यार से बातचीत करते है, और भोजन भी कम लेते हैं ।"

❑ सास को बिनती करती चतुर बहू :

सास ने कहा - "बहू ! ऐसा कुछ नहीं है । हमें उनके काम में दखलांदाजी नहीं करनी चाहिए ।" परन्तु बहू मान नहीं रही है । वह तो कहती है - "माजी! आप भूल करती हो । पति के सुख में और दुःख में पत्नी को हिस्सेदार बनना चाहिए । पति परेशान हो तब पत्नी को मित्र समान बनकर पति को सलाह देनी चाहिए और उसकी परेशानी, चिन्ता दूर करने के लिए जो हो सके हमें करना चाहिए । अतः माजी ! आप पिताजी को एकान्त में बिठाकर पूछिए ।" परन्तु सास ने बहू की बात ध्यान में न ली । प्रधानजी की चिन्ता दिन-ब - दिन बढ़ने लगी । उसकी भूख मिट गयी और नींद उड़ गयी । क्या करना और किस प्रकार दिखाना...कहाँ जाऊँ... परन्तु घर में किसी से इसके बारे में बात नहीं करते हैं । इस प्रकार चिन्ता में चार महीने बीत गये । अब मात्र दो महीने शेष हैं । प्रधानजी की परेशानी बढ़ने लगी थी । पुनः बहू ने सास से कहा - "माजी ! मेरे ससूरजी के सामने देखा जाता नहीं है, उनका शरीर सूखता जाता है और आप कुछ ध्यान नहीं दे रही है । जिस बरगद की छाया में बैठकर हम खुशहाली मना रहे हैं, उस बरगद की जड़े भीतर से सूखने लगी हैं । अगर जड़े विलकुल सूख जायेगी तो ये डाली और पत्ते किस के सहारे हरे रहेंगे ? हम सोने के शिखर पर बैठे हैं और सुख भोग रहे हैं, परन्तु उस शिखर का स्तंभ टूट पड़ेगा तो फिर हम सबका क्या

होगा ? हमारे जीवन के मूल-समान, आधारस्तंभ-समान पिताजी जहाँ सूखे जाते हो वहाँ हमें खाना-पीना कहाँ से अच्छा लगेगा ? माजी ! मेरी इतनी बिनती सुनिए और पिताजी से पूछिए कि आपको क्या चिन्ता है ?" तब सास ने मुँह फुलाकर कहा - "बहू ! ऐसा करो, आप स्वयं अपने ससुर को पूछ लो, मैं तो नहीं पूछुँगी।"

❑ विवेकी बहू द्वारा ससुर से की गयी बिनती :

बहू ने देखा कि मेरी सास तो शायद पूछेगी नहीं, परन्तु कोई बात नहीं । अब मैं ही स्वयं पूछ लेती हूँ । दूसरे दिन सास और ससुरजी साथ में बैठे थे तब पुत्रवधू ने वहाँ जाकर नम्रतापूर्वक ससुर से पूछा - "पिताजी ! मैं आपसे एक बात पूछुँ ?" बहू घर की कुलदेवी समान पवित्र थी । बोलते समय मानो मुख सें अमृत ढलता हो ! उसकी नम्रता और बोलने की मिठास देखकर ससुरजी ने सोचा कि- 'किसी दिन नहीं और आज मुझे अपनी पुत्रवधू क्या पूछना चाहती है ?' ससुर ने कहा - "पुत्री ! आपको जो पूछना हो खुशी से पूछिए ।" तो बहू ने हिम्मत जुटाकर पूछा - "पिताजी ! क्षमा कीजिएगा । मैं पुत्रवधू होकर आपके सामने खड़ी हूँ, परन्तु मुझे अपनी पुत्री ही मानिएगा । पिताश्री ! आज लगभग चार-चार महीनों से आप शांति से न खाते-पीते हैं, न कुछ बोलते हैं, न सोते हैं । आप घर में आते हो और राजसभा में जाते हो, आप सब कार्य करते हैं, परन्तु आपका मन हमेशा उद्विग्न रहा करता है । आपका मूख चिन्तातुर दिखता है । आनन्द-खुशी का नामोनिशान तक नहीं है । पहले तो आप कितने प्रेम से खुशी से सबके साथ हँसते-बोलते थे । राजसभा में अगर कोई नवीन घटना घटित हुई हो तो आप घर आकर सबसे कहते थे । परन्तु कुछ महीनों से यह सब बन्द हो गया है । इसका कारण क्या है ?" यह सुनकर प्रधानजी ने कहा - "पुत्री ! आप तो अभी बच्ची जैसी हो । आपको कहने से क्या फायदा ? मेरे मन में जो चिन्ता है उसे कोई दूर कर सकता नहीं है ।" इतना कहते हुए प्रधान का हृदय भर आया ।

❑ पुत्रवधू द्वारा दी गयी हिम्मत :

पुत्रवधू ने कहा - "ओ पिताजी ! आप ऐसा क्यों मानते हो कि छोटे बच्चे को कहने से क्या फायदा ? कईबार जो बुजुर्ग नहीं कर सकते हैं वह छोटे बच्चे कर दिखाते हैं । पुरुष कई बार मानते हैं कि हम सब कर सकते हैं, स्त्रियाँ क्या कर सकती है ? परन्तु आप ऐसा मत मानिए । कई बार नर जो नहीं कर सकते उसे नारी ने कर दिखाया है और नारी में से नारायणी बन सकती है । तीर्थंकर पुरुषों को, चक्रवर्तियों और संसार के सर्व महान पुरुषों को जन्म देनेवाली तो स्त्री ही है न ! संसार में स्त्री की पूजा पहले होती है । 'धनतेरस' के दिन आप लक्ष्मीजी की पूजा करते हैं न ? वह भी एक स्त्री जाति की ही है न ? इसलिए स्त्री जाति को निम्न (कोटि की) मत मानिए ।" प्रधान की पुत्रवधू ने आगे कहा

"पिताजी ! मैं भले ही छोटी हूँ, परन्तु मुझे आपकी चिन्ता का कारण तो कहिए ?" तब ससुर ने कहा - "बहू बेटी ! सुनिए । आज हम सुख के सागर में स्नान कर रहे हैं, परन्तु इस सुख का सागर दो महीनों में सूख जानेवाला है । अभी हम सब इस सुन्दर महल में रहते हैं, परन्तु इसे छोड़कर जेल में निवास करने का समय आयेगा ।" पुत्रवधू ने पूछा - "पिताजी ! आप ऐसा किस लिए कह रहे हैं ? इसका कारण क्या है ?"

प्रधान ने कहा - "राजा साहब ने मुझसे चार प्रश्न पूछे हैं । प्रश्नो के उत्तर प्रेक्टीकल कर देने हैं । उसमें क्या करना इसका मुझे पता नहीं चलता है । राजा ने मुझे छ महीनों की मद्दत (अवधि) दी है । उसमें चार महीने की अवधि पूरी हो गई है । केवल दो महीने ही शेष है ।" पुत्रवधू ने कहा - "पिताजी ! आप चिन्ता न करे । प्रश्न क्या है यह आप मुझे कहिए ।" प्रधान ने कहा - "बेटी ! उस प्रश्न में क्या कहना चाहते है यही तो मुझे मालूम नहीं है । मेरा जैसा अनुभवी मनुष्य की बुद्धि भी जब कुछ काम नहीं कर रही है, फिर आप इसका उत्तर कैसे दे सकती हो ?" परन्तु पुत्रवधू ने तो ज़िद्द की कि मुझे कहिए ।" तब प्रधान ने कहा कि - "प्रश्न यह है कि - है...है...और है, नहीं है... नहीं है और नहीं है, नहीं है और है, तथा है और नहीं है । इन चारों प्रश्नों के प्रेक्टीकल से उत्तर देने हैं । इसलिए मैं चार महीनों से पागल की तरह फिर रहा हूँ । पुत्री ! मेरी मति मारी गयी है ।" तब पुत्रवधू ने हँसकर कहा - "पिताजी ! इसमें आप इतनी अधिक चिन्ता क्यों कर रहे हो ? यह तो हम जैसे छोटे बच्चे का काम है । मुझे तो ऐसे प्रश्नों का बहुत शौक है ।" प्रधान ने कहा - "पुत्री ! इसका उत्तर मौखिक नहीं प्रेक्टीकल कर दिखाना है ।" "ठीक है पिताजी ! चिन्ता मत कीजिए । मैं राजा के सामने प्रेक्टीकल कर दिखाऊँगी । मेरे माता-पिता ने मुझे (पहरावनी) दहेज में गहनें और कपड़े तो बहुत दिये हैं । साथ में धर्म के सुसंस्कार भी पहरावनी में दिये हैं । हमे भाई-बहन छोटे थे, तब हमारे माता-पिता हमें ऐसे प्रश्न बहुत समझाते थे, इसलिए मुझे तो कोई चिन्ता नहीं है ।"

देवानुप्रियों ! आज मनुष्य धर्म के संस्कारों को देखता नहीं है । आज तो कन्या और पहरावनी (दहेज) प्रमुख देखी जाती है । आज के माता-पिता भी ऐसा कहते हैं कि - "देखना बेटे ! ससुराल में किसी से दबना मत । (हँसते हैं) हम पहले से ही दब जायेंगे तो सब दबा देंगे । तुझे कोई कुछ कहे तो हम बैठे हैं ।" इस लड़की के माता-पिता करोड़पति थे और साथ में धर्मिष्ठ भी थे, अतः ऐसे संस्कार दिये थे कि - 'अपने ससुराल में सदा प्रेम से रहना । सास-ससुर का विनय करना । शायद तुजे कोई कहे तो सह लेना मगर सामने बोलना मत । सास, ससुर और पति के सुख में सहभागी बनती है, वैसे उनके दुःख में भी सहभागी वनना ।'

❑ पुत्रवधू के उत्तर से प्रधान को शांति :

प्रधान ने कहा - "बेटी ! आप किस प्रकार इन प्रश्नों के उत्तर दोगी । पहले हमारे घर में हम सबके सामने प्रेक्टीकल कर दिखाओ, तब मुझे शांति होगी ।" बहू ने कहा - "पिताजी ! आप बेफिकर रहिए । आप राजा से कह दीजिए कि मैं प्रेक्टीकल से आपके प्रश्नों के उत्तर दुँगा । फिर मैं सब संभाल लुँगी ।" प्रधानने कहा - "परन्तु आप मुझे प्रेक्टीकल कर दिखाओगी नहीं तबतक मुझे श्रद्धा कहाँ से रहेगी ? आप एक प्रश्न का उत्तर तो दीजिए ।" बहू बहुत चालाक थी । उसने सोचा कि - 'अगर मैं इन लोगों को उत्तर बता दुँगी तो उसका कोई महत्त्व रहेगा नहीं । उसकी श्रद्धा बढ़ेगी नहीं ।' जैसे बनिये के बेटे को नवकार मंत्र दिया जाय तो कोई कीमत नहीं रहती है, परन्तु अन्य जाति के मनुष्यों को नवकार मंत्र महान मंत्र लगता है । उस पर उसे अपार श्रद्धा होती है, जबकि बनिये के बेटे के मन में ऐसा लगता है कि इस नवकार मंत्र में क्या है ? यह काम तो मेरा छोटा लड़का भी कर सकता है । स्वयं को जब नहीं होती है तो दूसरों की श्रद्धा भी तोड़ डालते हैं ।

❑ मायके जाकर की गयी तैयारी :

प्रधान की पुत्रवधू ने कहा - "पिताजी ! आप चिन्ता मत कीजिए । मैं राजसभा में आपको बताऊँगी, यहाँ नहीं दिखा सकती हूँ । परन्तु आप मुझे कुछ दिनों के लिए अपने मायके जाने की आज्ञा दीजिए । मैं आठ दिनों बाद वापस आ जाऊँगी ।" सास-ससुर ने बहू को मायके जाने के लिए आज्ञा दे दी । इस पुत्रवधू के पिताजी इतने अधिक सुखी और सज्जन थे कि उनकी सारे नगर में बहुत प्रतिष्ठा थी । सामाजिक क्षेत्र में नेता थे और धार्मिक क्षेत्र में भी नेता थे । उनकी बात स्वयं नगर के महाराजा भी मान्य करते थे । ऐसे वे पवित्र और सज्जन पुरुष थे । पुत्री अचानक आयी देखकर माता-पिता ने पूछा - "बेटी ! तुम अचानक क्यों आयी ?" पुत्री ने माता-पिता को सारी बात बतायी कि - "मेरे ससुरजी को राजा ने चार प्रश्न पूछे हैं, उसका उत्तर प्रेक्टीकल कर दिखाना है । उत्तर नहीं देंगे तो मेरे ससुरजी को सज़ा होगी और पूरे परिवार को जेल में जाना पड़ेगा । इसलिए पिताजी ! प्रश्न का उत्तर तो आपकी कृपा से मैं अच्छी तरह से दे सकुँगी, परन्तु मुझे आपके सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी ।" पिता-पुत्री ने इसके उत्तर में क्या करना यह आपस में समझ लिया और तय कर दिया ।

आठ दिन तक मायके में रहकर प्रधान की पुत्रवधू ससुराल आयी और ससुर से कहा - "पिताजी ! मुझे चार अलमारी चाहिए ।" "पुत्री ! आप अलमारी का क्या करोगी ?" "पिताजी ! प्रेक्टीकल करने के लिए मुझे अलमारी की

आवश्यकता है ।" प्रधान ने पुत्रवधू के कहने अनुसार पीछे की तरफ हवा के आने-जाने के लिए छोटे-छोटे छेद पड़वाकर अलमारियों को तैयार करवायी । जिस दिन प्रश्नों के उत्तर देने है, उसके अगले दिन रात को ही वे चारों अलमारियाँ राजसभा में ठीक मध्य (बीच) में लगा दिये । और उसके पिताजी को आने के समाचार दे दिये थे - उस अनुसार वे आ गये । यह सारी बातें प्रधानजी से उसने गुप्त रखी थी । गुप्त रूप से उसने अलमारियों में जो कुछ करना था वह सब कर दिया । राजा ने अगले दिन सारे नगर में ढिंढेरा पीटवाया था कि - 'प्रधानजी मेरे चार प्रश्नों के उत्तर सभा के बीच में प्रेक्टीकल के साथ देनेवाले हैं ।' अतः सारा नगर देखने के लिए आ पहुँचा । सब के मन में प्रश्न था कि - है है और है, नहीं है... नहीं है और नहीं है । इन सारे प्रश्नों के उत्तर वे कैसे देंगे ? तमाशे का कोई न्योता होता है ? सभी लोग देखने के लिए आने लगे । यहाँ ज़रा देर हो जाय तो आप ऊँचे-नीचे हो जाते हो और यहाँ से जाने के बाद फिर रास्ते में कहीं ऐसा देखने को मिल जाय तो दस की गाडी भी यदि चुक (चली) जाय तो घबराते नहीं हैं । क्यों ठीक हैं न ? (सब हँसते हैं) सारी राजसभा प्रेक्टीकल प्रश्न को देखने के लिए ठसाठस भर गयी है । सारे नगर में कोई घर पर नहीं था । सब कोई देखने के लिए आतुर बैठे थे ।

❑ सभा में लोगों की अधीरता :

कुछ देर बाद राजा-प्रधान सभी आये । राजा ने कहा - "प्रधानजी ! मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।" प्रधान सोचता था कि मेरी पुत्रवधू ने चार बड़ी अलमारियाँ सभा में (खड़ी) रखी है, इसमें क्या रखा होगा ? और वह क्या उत्तर देगी ?' जैसे ही महाराजा ने प्रधान से उत्तर देने को कहा कि तुरन्त पुत्रवधू खड़ी हुई और कहने लगी - "हे हमारे पितातुल्य महाराज ! यह प्रश्न तो मेरे ससुरजी के लिए सामान्य है । उनका बेटा भी इसका उत्तर प्रेक्टीकल कर दे सकते हैं । हमारे घर में तो सभी को आता है, इसलिए मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं ही उसका उत्तर दूँ । हम छोटे ऐसा काम जब हम सँभाल सकते हैं, तो फिर बुजुर्गों को किसलिए परेशानी में डालुँ ? मुझे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का शौख है, अतः मुझे उत्तर देने दीजिए । मेरी भूल होगी तो मेरे ससुरजी सुधार लेंगे ।" राजा ने कहा - "ठीक है, आप उत्तर दीजिए ।" लोगों की अधीरता बढ़ गयी कि इन प्रश्नों के उत्तर क्या होंगे ? आपको भी होता होगा कि ये चार अलमारियाँ यहाँ लाकर क्या करामात की होगी ? सभा में लोगों को देखने की अधीरता आयी है उसी प्रकार आपको भी सुनने की अधीरता आ गयी रही है न ? लीजिए, सुनिए ।

❑ **आश्चर्यपूर्वक सभी की दृष्टि पुत्रवधू पर :**

चतुर पुत्रवधू ने अलमारी पर पहले से बोर्ड लगाये थे । उसमें पहली अलमारी पर लिखा है - है और है । लोग अलमारी के सामने देखते रह गये कि इसमें क्या रखा होगा ? सब के आश्चर्य के बीच प्रधान की पुत्रवधू ने अलमारी का द्वार खोला तो उसमें से अच्छे वस्त्रालंकारों से सज्ज एक पुरुष बाहर निकला । पुत्रवधू ने महाराजा से कहा - ''महाराज ! आप इसे पूछिए कि तुमने जन्म धारण कर कभी दुःख देखा है ? आपको 'है है और है' का उत्तर प्रेक्टीकल से मिलेगा । यह पुरुष और कोई स्वयं प्रधान की पुत्रवधू का बाप था । उन्हों ने राजा से कहा - ''महाराज ! मैंने जन्म धारण कर कभी दुःख देखा नहीं है । दुःख क्या होता है इसका मुझे पता ही नहीं है ।'' राजा ने पूछा - ''इसका कारण क्या है ?'' पुत्रवधू ने कहा - ''महाराज ! उन्हों ने पूर्वभव में बहोत दानपुण्य किया है । दान देते समय कभी पीछे मुड़कर देखा तक नहीं है । साधु-सन्तों की खूब सेवा की है और तप भी बहुत किया है । अतः पुण्य की टंकी भरकर आये हैं । इसलिए पूर्वजन्म में उनके पास बहुत था । पूर्वजन्म में देकर आये हैं इसलिए इस जन्म में उन्हें बहुत कुछ मिला है । इस जन्म में भी सत्मार्ग में धन खर्च करते समय पीछे मुड़कर देखा नहीं है, इसलिए अगले जन्म में भी उन्हें मिलनेवाला है, बीज बोया है तो फल तो मिलनेवाला है । यह तो निःशंक बात है न ? अर्थात् इसका अर्थ है 'है...है...और है ।' यह आपके प्रथम प्रश्न का प्रेक्टीकल उत्तर है ।'' सारी सभा और राजा को बहुत सन्तोष हुआ ।

पहली अलमारी में से ऐसा पुरुष निकला तो लोगों के मन में हुआ कि इस दूसरी अलमारी में क्या होगा ? इसमें किसे छुपाया होगा ? दूसरी अलमारी पर लिखा है **'नहीं है...नहीं है...और नहीं है ।'** दूसरे प्रश्न के उत्तर के लिए दूसरी अलमारी खोली, तो हाथ में मिट्टी का सकोरा (पात्र) लेकर भीख माँगनेवाला एक भिखारी निकला । वह बोलता है - ''दीजिए माई-बाप, दीजिए माई-बाप, मैं चार दिन से भूखा हूँ ।''

गरीबों की सुनो, गरीबों की सुनो वह तुम्हारी सुनेगा,
तुम एक पैसा दे दो, तो दस लाख मिलेगा...गरीबों की सुनो...

''हे धनवानों ! आप इस गरीब की पुकार सुनिए । मुझे एक पैसा देंगे तो आपको भगवान दस लाख रुपये देंगे । आप मेरी पुकार सुनेंगे तो भगवान आपकी पुकार सुनेंगे ।'' लोग सोच में पड़ गये कि यह 'नहीं है... नहीं है...और नहीं है' का उत्तर कैसे होगा ? सभी के आश्चर्य के बीच पुत्रवधू ने राजा से कहा - ''महाराज ! इसे पूछिए कि तुमने अपनी जिन्दगी में कभी सुख देखा है ?'' राजा ने पूछा तो गरीब ने उत्तर दिया - ''महाराज ! मैंने कभी सुख देखा नहीं है ।''

अपार (ज़ोरदार) पापकर्मों के उदय से सपने में भी मुझे सुख के दर्शन होते नहीं है । इतनी उम्र हो गयी है, परन्तु भीख माँग-माँग कर खाता हूँ ।" तब पुत्रवधू ने कहा - "महाराज ! पूर्वजन्म में इसके पास कुछ नहीं था, इसलिए उसने दान-पुण्य कुछ किया नहीं है । अतः इस जन्म में उसे मिला नहीं है, इसलिए दान-पुण्य कर सकता नहीं है, इसलिए अगले जन्म में भी उसे मिलनेवाला नहीं है । अर्थात् इसका अर्थ है 'नहीं है...नहीं है और नहीं है ।' यह आपके दूसरे प्रश्न का प्रेक्टीकल उत्तर हैं ।" दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनकर अब लोग तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए अधीर हो गये कि इन दोनों में तो ठीक ठीक बताया अब तीसरे में कैसे बतायेगा ?

❑ तीसरे प्रश्न के उत्तर को सुनने की प्रजाजनों में अधीरता :

अब तीसरे प्रश्न का उत्तर सुनने की लोगों की अधीरता है । तीसरी अलमारी पर लिखा है - 'नहीं है और है ।' पुत्रवधू ने तीसरी अलमारी खोली तो उसमें से एक संन्यासी बाहर निकले । उन्होंने जैन साधु का परिचय प्राप्त होने पर कंचन-कामिनी का त्याग किया था । स्वयं भिक्षाचरी कर खाते थे । ऐसे पवित्र सन्त थे । पुत्रवधू ने कहा - "महाराज ! इस सन्त से पूछिए कि आपके पास कुछ है ?" राजा के पूछने पर सन्त ने कहा - "महाराज ! हम तो फकीर हैं, हमें पैसा पसन्द नहीं है । रहने के लिए घास की कुटीर है । उसमें बैठकर भगवान का भजन करता हूँ । पहनने के लिए दो भगवे वस्त्र रखता हूँ । मुझे किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं है । ऐसा मैं मस्त सन्त हूँ । मेरे पास कुछ नहीं है, फिर भी आप सभी से अधिक सुखी हूँ । अपनी सारी सभा में किसी से भी पूछिए कि मेरे जैसा कोई सुखी है ? हाँ, जिसने कंचन-कामिनी का मोह छोड़ा नहीं है वे दुःखी है, अन्यथा सच्चे सन्त की तरह कोई सुखी नहीं है ।" पुत्रवधू ने कहा - "महाराज ! देखिए, इस सन्त के पास अभी को एक पाई भी नहीं है । उन्होंने संपत्ति होने पर भी उसका त्याग किया है । तो अगले जन्म में उन्हें बहुत मिलनेवाला है । अर्थात् इसका नाम है - 'नहीं है और है ।' आपके तीसरे प्रश्न का प्रेक्टीकल उत्तर यही है ।" इस प्रकार तीन प्रश्नों का हल मिल गया । अब एक प्रश्न शेष है ।

❑ चौथे प्रश्न का उत्तर :

चौथी अलमारी पर लिखा है - 'है और नहीं है ।' चौथी अलमारी खोलने पर अन्दर से अच्छे वस्त्राभूषणों से सज्ज एक धनवान मनुष्य निकला । पुत्रवधू ने कहा - "महाराज ! इसे आप पूछिए कि आपके पास धन कितना है ? तुमने अपना धन कभी खर्च किया है ? दुःख में किसी को सहायता की है ?" अलमारी से निकलनेवाले धनवान ने उत्तर दिया - "महाराजा ! मेरे पास करोड़ों की संपत्ति

है मगर कौन जाने में उसका खर्च कर ही नहीं सकता हूँ ?'' प्रधान की पुत्रवधू ने समझाया कि - ''बहुत धन होमे पर भी वह स्वयं भरपेट खाता नहीं है और न दूसरों को खाने देता है । अतः अगले जन्म में उसे कहाँ से मिलेगा ? इसलिए महाराज ! - 'है और नहीं है ।' - अर्थात् इस जन्म में बहुत है, परन्तु अगले जन्म में कुछ मिलनेवाला नहीं है । इस प्रकार आपके चौथे प्रश्न - 'है और नहीं है ।' का प्रेक्टीकल उत्तर है ।''

इन चारों प्रश्नों के प्रेक्टीकल उत्तर मिलने से राजा तो बहुत खुश हो गये और पुत्रवधू के गले में नौसेर कीमती रत्नों का हार पहना दिया और कहा - ''पुत्री ! तुम आज से मेरी अपनी पुत्री हो । तुम प्रधान के घर की पुत्रवधू नहीं बलि एक देवी हो । आज तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं ।'' इन चारों उत्तरों को सुनकर सारी नगरी में ये उत्तर प्रसिद्ध हो गये । और लोग अपनी शक्ति अनुसार दान-पुण्य करने लगे । घर घर में प्रधान की पुत्रवधू की प्रशंसा होने लगी कि लड़की है तो छोटी मगर उसकी बुद्धि बहुत ही बड़ी है ।'

उस ईर्ष्यालु टोली को प्रधान का नामोनिशान मिटा देना था । परन्तु यहाँ तो राजा की ओर से उसका और उसके परिवार का सम्मान और बढ़ गया । बन्धुओं ! इन चार पुरुषों को अलमारी में पुरना (बन्द करना) और यह सब करना कोई सामान्य काम न था । परन्तु इस पुत्रवधू के पिता बहुत बड़े सज्जन थे । वे बहुत पवित्र और धार्मिक थे, इसीलिए पुत्रवधू यह कार्य कर सकी । पिता की सहायता से अपने ससुरजी को चिन्तामुक्त किया और परिवार की इज्जत बढ़ायी। प्रधान ने घर जाकर पुत्रवधू की मुक्त मन से प्रशंसा की और धन्यवाद देते हुए कहा - ''पुत्री ! तुमने तो आज मेरी इज्जत बचायी और बढ़ायी है । धन्य है तुम्हारे माता-पिता को !'' तब पुत्रवधू ने नम्रता से कहा - ''पिताजी ! मैंने तो इसमें कुछ किया नहीं है, यह तो आप जैसे बुजुर्गों की कृपा और आशीर्वाद है ।''

बन्धुओं ! प्रधानजी की पुत्रवधू ने प्रधानजी के परेशान भरे और मुश्किल [illegible] को सरलता से सुलझा दिया इसका कारण आप समझे ? पुत्रवधू के [illegible] था । ज्ञान का प्रकाश अज्ञानता के अन्धेरे दूर कर देता है । सिद्धान्त में [illegible] सूर्य की उपमा दी गयी है । सूर्य का उदय होने पर अन्धकार का [illegible] उसी प्रकार मनुष्यजीवन में भी ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होने पर [illegible] नष्ट हो जाता है । घर में लाइट बन्द हो जाय तो बाह्य अन्धकार [illegible] उसे दूर करने का प्रयास करते हो, उसी प्रकार आत्मा पर [illegible] को दूर करने का प्रयत्न करेंगे तो आपके जीवन में [illegible]

आत्मज्ञान का प्रकाश जीवन में सुख, शांति और समाधि का अनुभव कराता है। ऐसा ज्ञान कहाँ से मिलता है यह जानते हो ? अभी आपने सुना कि प्रधान जी की पुत्रवधू को ऐसा ज्ञान कहाँ से मिला था ? उसने बचपन से सत्गुरु का समागम किया था। सत्गुरु के समागम से उसे ऐसा ज्ञान मिला था। और उस ज्ञान के प्रकाश से उसने ससुरजी की परेशानी (उलझन) दूर की और सारे परिवार को भय से मुक्त करवाया। और राजा के पास भी सम्मान-इज्जत प्राप्त किया। ऐसा है ज्ञान का प्रभाव। अब समय हो गया है। अधिक चर्चा बाद में ।

व्याख्यान - १८

सावन - अमावस्या

बिखेरना सीखिए

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

आत्मिक आराधना का आलबेल पुकारता, मुक्ति का मंगल द्वार खोलने के मार्ग की खोज करवाता, हृदय में खुशी का हौज़ छलकानेवाला पर्युषणपर्व हमारे आँगन में आकर बिदा होगा ! पर्युषणपर्व के दूसरे दिन हमें क्या सोचना है ? यह पर्व कोई आशा, तृष्णा या भय से मनाया जाता नहीं हैं। इस महान पर्व को कैसी उपमा दी है ? पर्युषणपर्व को उपमा देते हुए कहा है कि - "सर्व गुणों में विनय गुण, सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत, नियमों में सन्तोष, तत्त्वों में सम्यग्दर्शन, मंत्रों में नवकार मंत्र, दान में अभयदान, रत्नों में चिन्तामणि, राजाओं में चक्रवर्ती, धर्मों में जिनधर्म, चारित्र में यथाख्यात चारित्र, ज्ञान में केवलज्ञान, रसायनों में अमृत, शंख में दक्षिणावर्त शंख - अलंकारों में मुकुट, देवों में इन्द्र, पंछियों में गरुड, पर्वतों में मेरु, नदियों में गंगा, सरोवरों में मान सरोवर श्रेष्ठ माना जाता है, उसी प्रकार लौकिक और लोकोत्तर पर्व सर्व-पर्वों में पर्युषणपर्व श्रेष्ठतम है। यह पर्व कर्म की कगार (ढेला) तोड़ने का अपूर्व सन्देश लेकर आया है। आज का विषय है - 'बिखेरना सीखिए।' कवि ने कहा है कि -

"दानेन प्राप्यते लक्ष्मी: शीलेन सुख संपद: ।
तप: कर्म विनाशाय: भावना भव नाशिनी ।।"

"दान करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है, शीयल व्रत का पालन करने से सुख और संपत्ति मिलती है, तप करने से कर्मों का क्षय होता है और शुभ भावना भाने से भवराशी टूटकर चुर-चुर हो जाती है। इस श्लोक के चार पदों में चार विषय

है। उसमें सबसे पहला दान, दूसरा शीयल, तीसरा तप और चौथा भाव है। ये चारों मोक्ष में प्रवेश करने के भव्य द्वार है, परन्तु आज हमें 'बिखेरना सीखिए' - इस विषय का अनुसरण करते हुए *'दानेन प्राप्यते लक्ष्मीः'* पद पर हम विवेचन करेंगे। लक्ष्मी की ममता घटे तो दान होता है। मन को वश करने से शीयल का पालन होता है, शरीर की ममता घटने से तप होता है और अशुभ विचारों की प्रबलता कम हो जाय तो भावशुद्ध होता है।

पर्युषणपर्व के दिनों में दान, शीयल, तप और भावना इन चारों पर विशेष ज़ोर दिया जाता है और ये चार वचन जो मनुष्यजीवन में अपनाता है, वह मुक्ति के द्वार खोलता है। अनन्तकाल से जीव चतुर्गति संसार में परिभ्रमण कर रहा है। उसका कारण जीव धर्म को भूलकर संसार में मोह में और परिग्रह की ममता में फँस गया है। सचमुच यदि समझे तो परिग्रह सर्व अनर्थों का मूल है और वह जीव को दुर्गति में ले जानेवाला है। एक तत्त्वचिन्तक ने ठीक ही कहा कि - 'धन सुपारी जैसा है।' धन को सुपारी जैसा क्यों कहा है - आप जानते हैं ? सुपारी काटते समय अनेक लोगों की ऊँगलियाँ कट गयी, परन्तु सुपारी खाते समय किसी का पेट भरा नहीं। बोलिए, यह बात सही है न ? आप सुपारी खाते हैं, इसलिए आपको अनुभव होगा कि पाँच-दस सुपारी खा जाइए फिर भी क्या आपका पेट भरता है ? नहीं। इसी प्रकार आप समझिए कि पैसों के पीछे हज़ारों मनुष्य पायमाल (निर्धन) हो गये, अनेकों ने प्राण गँवाये, परन्तु पैसा किसी के पीछे गया है ? नहीं। कहा है न कि -

आप ऐसा मानिए कि इन सब में हमारा कोई नहीं है,
है सारा संसार नश्वर, शाश्वत कोई नहीं है।
जितना अधिक आप को मोह है संयोग में,
उतना ही अधिक दुःख होगा वियोग में ॥ मोह...

याद रखिए स्त्री, पुत्र, परिवार, बंगला, बगीचे इत्यादि के पीछे पागल हुए हो, मगर (उसमें) आपका कोई नहीं है। सब क्षणिक और नाशवंत है। भौतिक पदार्थों के संयोग में जितना सुख और आनन्द दिखता है उससे अधिक दुःख उसके वियोग में है। जिसके संयोग में सुख और वियोग में दुःख हो ऐसा सुख सच्चा सुख नहीं है। लक्ष्मी हाथ से चली जाय, चोरी हो जाय तो दुःख होता है, परन्तु यदि लक्ष्मी को दान में खर्च करोगे तो आनन्द होगा। दान की महिमा अलौकिक है। संसार में दान की महत्ता अनुपम है। प्रत्येक धर्मों में उसका स्थान है और शास्त्र में उसका वर्णन है। दान को अनेक उपमाओं से सम्बोधित किया जा सकता है। दान धर्म का प्रथम सोपान '?' है। दान दारिद्र्य का विनाशक शस्त्र है

दुर्गति के द्वार बन्द करनेवाला अर्गला है । सर्वत्र यश-कीर्ति को फैलानेवाला टेलीफोन है । दान का महत्त्व बताते हुए महापुरुष कहते है कि -

"दान दुर्गति गुण गुण प्रस्तार विस्तारणं,
तेज: संतति धारणं, कृत विपच्छेणी समुत्सारणम् ।
अहं संतति दारणं, भवमहाकूपार निस्तारणं,
धर्म्माभ्युन्नति कारणं विजयते श्रेय: सुखा कारणम् ।।"

- धर्मकल्पद्रुम

दान दुर्गति को रोकनेवाला, गुण के समूह को विस्तृत करनेवाला, तेज़ के समूह को धारण करनेवाला, आपत्ति के समूह को नष्ट करनेवाला, पाप के समूह को तोड़नेवाला, संसार-समुद्र से तारनेवाला और धर्म की उन्नति करनेवाला है । ऐसा दान संसार में विजयी होता है । परन्तु दान करने से पहले परिग्रह की ममता का त्याग करना पड़ता है । त्याग के बिना दान किया जा सकता नहीं है । एक कवि ने भी कहा है कि -

"शतेषु जायते शूर: सहस्रषु च पंडित: ।
वक्ता द्रश सहस्रेषु, दाता भवति वा न वा ।।"

"शूरवीर सौ में एक होता है, पण्डित हज़ारों में एक होता है, वक्ता दस हज़ारों में एक होता है परन्तु दाता (दानवीर) तो शायद ही कोई होता है और नहीं भी होता । दुनिया में सच्चा दाता बहुत दुर्लभ होता है । कोई प्रतिष्ठा या पद के लिए, कोई स्वार्थ के, लिए तो कोई वाह वाह के लिए, तो कोई कीर्ति के लिए दान देता है, परन्तु नि:स्वार्थभाव से दान देनेवाला दाता शायद ही कोई होता है । शास्त्रकार महर्षियों ने दान के पाँच प्रकार बताये हैं, ते इस प्रकार हैं -

अभय सुपत्तदाण अणुकंपा उचिय कित्तियाणं च ।
दोहिपि मोक्खो भणिओ, तिन्नि भोगाइ दियन्ति ।।

(१) अभयदान, (२) सुपात्रदान, (३) अनुकंपादान, (४) उचितदान, (५) कीर्ति-दान । - इन पाँचों दानों में अभयदान और सुपात्रदान मोक्ष के देनेवाले हैं और बाद के तीन दान संसार के पौद्गलिक सुख को देनेवाले हैं ।

(१) अभयदान : संसार के किसी भी जीव को मृत्यु से बचा लेने का नाम अभयदान है । **(२) सुपात्रदान :** सुपात्र साधु-साध्वी अथवा श्रावक को भक्तिभाव- पूर्वक दिया जानेवाला दान सुपात्रदान है । ये दोनों दान मोक्ष-सुख को दिलवाते हैं । **(३) अनुकंपादान :** अनुकंपा, दया की बुद्धि से दु:खी जीवों को दिया जानेवाला दान अनुकंपादान है । **(४) उचितदान :** सगे-सम्बन्धी तथा

मित्रादि को जो दान दिया जाता है वह उचित दान है । **(५) कीर्तिदान :** दाता के गुण गानेवाले भाटचारण इत्यादि को जो दान दिया जाता है, वह कीर्तिदान है । ये तीनों दान संसार के पौद्‌गलिक सुख दिलाते हैं । प्रत्येक धर्म में दान की महत्ता गायी है । तद्‌भव मोक्षगामी श्री तीर्थंकर-प्रभु भी संयम के पुनित पथ पर प्रयाण करने से पहले एक वर्ष पर्यन्त वार्षिक दान देता है । जिस में एक दिन एक करोड़ और आठ लाख स्वर्णमुद्रा का दान देता है । पहले ही ऋषभदेव तीर्थंकर से लेकर यावत् चौबीसवें श्री महावीरस्वामी तीर्थंकर ने भी वार्षिक दान इस प्रकार से दिया था । अतः धन का संग्रह न करते हुए धर्म के कार्यों में और दुःखियों की सेवा में उसका उपयोग कीजिए ।

जिसके जीवन में दान नहीं, वह नादान है । लेना सब से, देना किसी को नहीं, यह कैसा न्याय है ! यह न्याय नहीं है, परन्तु शासनपति प्रभु की आज्ञा के भंग का अन्यायी कृत्य है ? सूर्य का प्रकाश, चन्द्र की शीतलता और आकाश की विशालता यह सब पाने (खरीदने) के लिए क्या मनुष्य के मूल्य का खर्च करता है ? नहीं । समाज (में) से लेना श्री संघ से लेना, विश्व से लेना - यह सब कुछ इस प्रकार से लेना है, फिर तो देना भी पड़ता है न ? अतः 'दान' पर ज़ोर दिया गया है । **'दान अर्थात् स्वार्थ पर अंकुश और परमार्थ में कूच ।'** पेथड़शा, आभड़शा, झांझणशा, खेमाशा इन सभी नौ रत्नों के नाम आज भी प्रकाशित (प्रसिद्ध) हैं । इनके मूल में प्रभाव तो दानधर्म का है न ? दिल की दरियादिल को खोलने की चाभी दान है । दान आदि का दिन जिसे बुरा लगता है वह कायर है । याचक को अपना उपकारी समझने में दानधर्म की सार्थकता है । अन्यथा दान का अहंकार दाता के पतन का कारण बन जाने की संभावना बढ़ जायेगी । दान की महिमा समझने जैसी है ।

दान धर्म की महिमा

एक बार ब्रह्माजी ने सारे देवों को भोजन के लिए निमंत्रण दिया । "आप सब मेरे घर भोजन के लिए पधारिए ।" ब्रह्माजी का निमंत्रण स्वीकार कर सभी देव भोजन के लिए आये । ब्रह्माजी ने सभी का आदर-सत्कार सम्मान कर बिठाया । भोजन के लिए सब उचित स्थान पर बैठ गये । सभी के पात्रों में भोजन परोसा गया, परन्तु ब्रह्माजी ने कहा - "जबतक मैं आप से भोजन करने की आज्ञा न दूँ तबतक कोई खायेगा नहीं ।" सबको लगा कि ब्रह्माजी जल्दी से आज्ञा दे तो अच्छा है । पात्र में सब कुछ परोसा गया, फिर ब्रह्माजी ने कहा - "हे देव ! आप सभी मेरे निमंत्रण को स्वीकार कर यहाँ भोजन के लिए आये इसके लिए मुझे खुशी है, आनन्द है । परन्तु मेरी एक विनती है कि आप सभी पेट भरकर खाइएगा और चाहे तो भोजन के बाद घर भी ले जाइए, परन्तु भोजन करने

समय किसी को कोहनी से हाथ मोड़कर खाना नहीं है । याद रखिए, यह बात आप के सब के लिए हैं ।" कोहनी से हाथ मोड़े बिना भोजन कैसे हो सकता है ? जो जल्दबाजी, गर्म मिज़ाज़ी, आसुरी प्रकृतिवालें देव थे वे मन ही मन कहने लगे - 'वह सब क्या है ? वे अपने आप को क्या समझते हैं ? ऐसा सोचकर गुस्से में आकर भोजन से भरा पात्र ब्रह्माजी के सिर पर मारकर (फेंककर) चले गये । जो समझदार, सयाने और धैर्यवान थे वे सभी बैठे रहे । वे कहने लगे कि - "ब्रह्माजी ने जो शर्त रखी है उसमें कोई रहस्य अवश्य होगा ।" वे एक-दूसरे के सामने मेज पर बैठ गये और एक-दूसरे से मूँह में निवाला रखने लगे । जिससे कोहनी से हाथ मोड़ना भी नहीं पड़ा और सभी ने भर पेट खाया । यह हमें समझाता है कि - 'पहले दीजिए और फिर खाईए ।' यह तो एक रूपक है, इससे हमें क्या समझना है ? पहले दूसरों को दीजिए और फिर खाइए । देवों की यही भावना है, इसलिए वे देव हैं और जिन्हें लेने की भावना हैं वे दानव हैं । पुण्योदय से मिला है तो देना सीखिए, भोजन करने से पहले सोचिए कि मेरे परिवार, कुटुम्ब में कोई दुःखी तो नहीं है ? दुःखियों को याद कर आंसू पोछना सीखिए । जिस के हृदय में असीम करुणा है वह अपना विचार करता नहीं है - अपने बारे में सोचता नहीं है । अपने सुख को त्यागकर भी दूसरों को दुःख दूर करने का प्रयास करेगा । कई बार सामान्य स्थिति होती है फिर भी उसकी दान देने की भावना बहुत विशाल होती है । दानेश्वरी को दान करता देखे तो उस ऐसा लगता है कि मैं ऐसा दान कब करूँगा ? पास में धन के भण्डार भरे हो तब तो मनुष्य अपनी भावना के अनुसार दान कर सकता है । परन्तु जब पैसा न हो तब गरीब अवस्था में भी मनुष्य किस प्रकार दान करता है ? दूसरों को दुःखी देख नहीं सकता है । तब अपने प्राण का बलिदान देने के लिए तैयार हो जाता है । यहाँ एक माघ कवि का दृष्टांत याद आता है ।

दानवीर कवि माघ

एक माघ नामक कवि थे । वे महान कवि थे और साथ में महा दानेश्वरी भी थे । वे बहुत ही धनवान और सुखी थे । पहले जीवन में बहुत धन था, इसलिए मन चाहे सुख भोगते थे । साथ में दान भी बहुत देते थे । कोई याचक उनके आँगन से खाली हाथ न जाता था । परन्तु उनकी पिछली अवस्था (वृद्धावस्था) में पाप का उदय होने पर धन-संपत्ति चली गयी । मनुष्य पहले जब सुखी होता है और बाद में दुःखी होता है, तो उसे बहुत दुःख होता है, परन्तु महाकवि माघ के जीवन में ऐसा न हुआ । जीवन की शाम जैसे-जैसे होती गयी, धन का अन्धकार बढ़ने लगा, फिर भी उनको इसका लेशमात्र दुःख न था । परन्तु अपने आँगन से याचकों को निराश लौटना देख उनका हृदय दुःख से भर जाता

था । कवि की पत्नी माल्हणा देवी भी उनके जैसी ही दानवीर थी । पास कुछ न रहा तब माघ कवि और उनके पत्नी अपने वतन (गाँव) को नमस्कार कर जंगल में चले गये । उनकी दानी के रूप में इतनी अधिक प्रसिद्धि फैली हुई थी कि वे जब जंगल में भटक रहे थे तब भी वहाँ याचकों की कतारे जारी रही । अपने पास जो कुछ था वह सब को दे दिया । अब तो कल क्या खायेंगे इसकी भी चिन्ता थी, फिर भी अपने लिए जरा-सा भी दुःख नहीं था, परन्तु कल याचक आयेंगे तो मैं उन्हें क्या दुँगा उसका उनके हृदय में दुःख है ।

❑ भोजराजा द्वारा कवि के काव्य की कद्र :

कवि की पत्नी ने कहा - ''स्वामीनाथ ! आप तो महान कवि हैं । एकाद् अच्छी कविता लिखिए । काव्य की कद्र करनेवाली धारा नगरी अभी तक बैठी है । तब तक तो धन एका झरना जारी रहेगी ।'' कवि ने कविना की रचना की । उसे लेकर माल्हणा देवी धारा नगरी की ओर रवाना हुई । इस ओर कवि अकेले हो गये । तब वे सोचते हैं कि मैं तो अपने पास जो कुछ भी होता है इस दान में खर्च कर डालता हूँ । परन्तु मेरी पत्नी को क्या यह अच्छा लगता होगा या नहीं ? इस ओर माल्हणा देवी कविता लेकर धारानगरी में राजा भोज के दरबार (सभा) में पहुँची । पण्डितों का समूह बैठा था, वहाँ जाकर माल्हणा देवी ने वह कविता दिखायी । माघ की कविता का नाम पड़ते ही भोजराजा के अंग-अंग में उत्साह फैल गया । उन्होंने एक श्लोक देखा तो उसमें विश्व व्यवस्था के बहाने कवि अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन कर रहे हो ऐसा उन्हें लगा । उसमें लिखा था कि कमल के वैभव वन से बिदा होने पर भोगी भ्रमर चले जाते हैं, जैसे शाम होने पर सूर्य बिदा (अस्त) होता है उसी प्रकार सचमुच विधि की वक्रता और विपाक कैसे विचित्र होते हैं ?

❑ राजा भोज द्वारा दान में दिये गये तीन लाख :

बन्धुओं ! कवि की कविता पढ़कर राजा खुश हुए और उन्होंने कवि-पत्नी माल्हणादेवी को तीन लाख रुपये देकर बिदा किया । इनाम मिलने के साथ कवि-पत्नी से अधिक याचक अधिक खुश हुए, क्योंकि इस कवि-पत्नी की उदारता उनके लिए एक आशा की किरण था । ये कवि-पत्नी राजसभा से बाहर निकली चारों ओर से आये याचकों ने उन्हें घेर लिया । माघ कवि से भी अधिक उनकी पत्नी दानवीर थी । कुछ ही देर में उन्होंने तीन लाख का दान इनाम में दे दिया । माघ कवि माल्हणादेवी की राह देख रहे थे । अपनी पत्नी को खाली हाथ आते देखकर कवि को आश्चर्य हुआ कि - 'क्या इस पृथ्वी पर से सरस्वती के सम्मान बन्द हो गये हैं ?' उन्होंने पत्नी से पूछा - ''देवी ! क्या महाराज भोज से मुलाकात न हुई ?''

माल्हणा देवी ने कहा - "स्वामीनाथ ! महाराज मिले भी और तीन लाख का दान भी मिला, परन्तु मार्ग में जगह-जगह पर खड़े गरीब, अनाथ और अपंग (पंगु) याचको को देखकर मेरा हृदय अपने हाथ न रहा, इसलिए मैंने तीन लाख़ का इनाम दान में खर्च कर दिया ।" पत्नी की उदारता देखकर महाकवि का हृदय मारे खुशी के उछल पड़ा और पत्नी से कहा - "हे देवी ! आज मेरे मन में आपके लिए ऐसी शंका थी कि मैं यह सब जो दान में दे देता हूँ इससे आप हृदय से सम्मत होंगी या नहीं ? मेरा वह भ्रम आपने तोड़ दिया है । सचमुच, आपने एक दानवीर जैसा ही क़ाम किया है । धन को हरजन्म में कमाये मगर धर्म की कमाई करने का अवसर पुनः कब मिलेगा !" पति-पत्नी इस क्षण को अपने जीवन का धन्य पल मानकर आनन्द अनुभव कर रहे थे । तभी दूर से एक गरीब और भूखा - प्यारा याचक आशा से माल्हणादेवी के पास आया और माघ के सामने हाथ फैलाकर खड़ा रहा, परन्तु पास तो कुछ था ही नहीं, अब क्या किया जाय ?

❑ याचक के खाली हाथ लौटने से कवि की आँखों से आंसू :

कवि पत्नी से पूछते हैं - "देवी ! भूखा-प्यासा याचक आया है । कुछ बचा है उसे देने को ?" माल्हणा देवी ने कहा - "हाँ है ।" माघ ने अंजली धरी तो माल्हणा देवी ने उसे आंसूओं से भर दिया । यह देखकर याचक परिस्थिति समझ गया और इस उदारता का प्रशंसा करता हुआ लौट गया । कुछ माँगा नहीं था फिर भी बहुत कुछ मिलने का सन्तोष उसके मुख को तेजस्वी बना रहा था । अपने आँगन से याचक को खाली हाथ लौटता देख माघ की आँखों से आंसूओं की धारा बहने लगी । वह रोते हुए कहते हैं कि - "मेरे आँगन से आये याचक की याचना व्यर्थ गयी ! मैं इतना भी न कर सका ?"

❑ अन्त में प्राण का बलिदान :

कवि कहते हैं कि - "हे प्राणदेव ! तुम मेरी देह में क्यों टिक रही है ? अभी या बाद में भी एक दिन तो इस शरीर को त्यागना है, तो क्यों न अभी चला जाय ! वह याचक जा रहा है, उसके साथ चला जा । तुम्हें ऐसा साथ नहीं मिलेगा ।"

बन्धुओं ! इतिहास कहता है कि इस समय माघ के दिल में बहुत दुःख हुआ और उन्हें इतना बुरा लगा कि उसी समय उनके प्राण चले गये । उनके चले जाने पर मानो इस दुनिया से एक महान, अद्वितीय कवि और दानेश्वरी आत्मा की कमी हुई हो ! कितनी महान थी उनकी दानवृत्ति ! स्वयं के लिए खाना (भोजन) न रहा इसका ज़रा भी दुःख नहीं है, परन्तु दूसरों को दे नहीं सके इसका बहुत दुःख है । यह दुःख कितना प्रबल होगा कि उनके प्राण ही चले गये ! इस संसार में

यदि ऐसी दानेश्वरी आत्माएँ जागृत हो जाय तो मैं नहीं मानती कि इस संसार में कोई गरीब रह जाता । आप ऐसी ममता नहीं छोड़ सकते तो कुछ नहीं परन्तु धीरे-धीरे परिग्रह की ममता जीवन में उतारिए । जिसे परिग्रह की आसक्ति नहीं है उसे दान करने की भावना जगती है और ऐसे दानवीरों के नाम अमर हो गये हैं ।

झंडु भट्ट की उदारता

आज अनेक जगहों पर झंडु फार्मसी की दवाइयाँ मिलती है । अनेक दुकानों पर बोर्ड लगाया होता है कि - ''झंडु फामर्सी की दवाइयों की प्रसिद्ध दुकान ।' उस झंडु फार्मसी की दवाइयाँ बनानेवाला कौन था और उसका जीवन कैसा पवित्र था यह आप जानते हैं ? अनेक वर्षों पहले झंडु भट्ट नामक एक चिकित्सक थे । उनकी आज भी सौरभ फैल रही है । मनुष्य की मानवता का एक जगमगाता दीया था वह । वह दीया जामनगर की पवित्र भूमि में पैदा हुआ था । ये झंडु भट्ट नाड़ी पहचानने में बहुत पारंगत थे । उनका जामनगर के राज्य में 'राजवैद्य' के रूप में सम्मान था । जामनगर के जामसाहेब बहुत दयालु थे । अतः अपने नगर में दर्दियों की अच्छी चिकित्सा हो और लोगों को अच्छी दवाइयाँ वगैरह मिले इसलिए झंडु भट्ट को रखा था । झंडु भट्ट ब्राह्मण जाति (समाज) के थे । अपने धर्म के क्रियाकाण्डों में वे बहुत चुस्त थे । राज्य में राजवैद्य के रूप में बहुत सम्मान होने पर भी अपने धर्म के नियम और क्रियाकाण्ड भूलते नहीं थे । वैद्य के वे सारे गुण उनमें विद्यमान थे । इन्हें राज्य की ओर २०० रु. मिलते थे । २०० रुपयों में उनको चिकित्सा का सारा काम करना होता था । दवाखाना का हिसाब रखने के लिए एक मुनीमजी रखे थे । परिवार में तो दो ही सदस्य थे । २०० रुपये में से मुनीमजी की आमदनी, घर का खर्च, दवाई और दवाई पीसने (बनानेवाले) नौकरों की आमदनी, यह सब कुछ इसी २०० रु. से करना था और प्रजा को मुफ्त में दवाई, सेवा भी मुफ्त, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर आदि भेदभाव किये बिना सबकी समानता से सेवा करते थे ।

उनकी दवाई से अनेक दर्दियों को अच्छा हो गया था । चारों ओर उनकी बहुत कीर्ति फैल गयी थी । लोग दूर-दूर से दवाई देने आते थे । उनकी सेवा से खुश होकर धनवान लोग उन्हें पैसे देने का कहते, तब वे कहते कि - ''नहीं भाई ! मुझे राज्य की ओर से आवश्यक खर्च के रुपये मिल जाते हैं, फिर मुझे आपके रुपयों की क्या आवश्यकता है ? मुझे आपके पैसे लेकर भगवान और राजा का अपराधी नहीं बनना है । मुझे जो कुछ मिलता है उसमें सन्तोष है ।'' झंडु भट्ट के जीवन में कितना सन्तोष होगा ? उन्हें सामने से रुपये मिल रहे हैं, फिर भी लेने की इच्छा नहीं करते । स्वयं धनवान नहीं है, बड़ी मुश्किल से अपना और

माल्हणा देवी ने कहा - "स्वामीनाथ ! महाराज मिले भी और तीन लाख का दान भी मिला, परन्तु मार्ग में जगह-जगह पर खड़े गरीब, अनाथ और अपंग (पंगु) याचको को देखकर मेरा हृदय अपने हाथ न रहा, इसलिए मैंने तीन लाख का इनाम दान में खर्च कर दिया ।" पत्नी की उदारता देखकर महाकवि का हृदय मारे खुशी के उछल पड़ा और पत्नी से कहा - "हे देवी ! आज मेरे मन में आपके लिए ऐसी शंका थी कि मैं यह सब जो दान में दे देता हूँ इससे आप हृदय से सम्मत होंगी या नहीं ? मेरा वह भ्रम आपने तोड़ दिया है । सचमुच, आपने एक दानवीर जैसा ही क़ाम किया है । धन को हरजन्म में कमाये मगर धर्म की कमाई करने का अवसर पुनः कब मिलेगा !" पति-पत्नी इस क्षण को अपने जीवन का धन्य पल मानकर आनन्द अनुभव कर रहे थे । तभी दूर से एक गरीब और भूखा - प्यारा याचक आशा से माल्हणादेवी के पास आया और माघ के सामने हाथ फैलाकर खड़ा रहा, परन्तु पास तो कुछ था ही नहीं, अब क्या किया जाय ?

❑ याचक के खाली हाथ लौटने से कवि की आँखों से आंसू :

कवि पत्नी से पूछते हैं - "देवी ! भूखा-प्यासा याचक आया है । कुछ बचा है उसे देने को ?" माल्हणा देवी ने कहा - "हाँ है ।" माघ ने अंजली धरी तो माल्हणा देवी ने उसे आंसूओं से भर दिया । यह देखकर याचक परिस्थिति समझ गया और इस उदारता का प्रशंसा करता हुआ लौट गया । कुछ माँगा नहीं था फिर भी बहुत कुछ मिलने का सन्तोष उसके मुख को तेजस्वी बना रहा था । अपने आँगन से याचक को खाली हाथ लौटता देख माघ की आँखों से आंसूओं की धारा बहने लगी । वह रोते हुए कहते हैं कि - "मेरे आँगन से आये याचक की याचना व्यर्थ गयी ! मैं इतना भी न कर सका ?"

❑ अन्त में प्राण का बलिदान :

कवि कहते हैं कि - "हे प्राणदेव ! तुम मेरी देह में क्यों टिक रही है ? अभी या बाद में भी एक दिन तो इस शरीर को त्यागना है, तो क्यों न अभी चला जाय ! वह याचक जा रहा है, उसके साथ चला जा । तुम्हें ऐसा साथ नहीं मिलेगा ।"

बन्धुओं ! इतिहास कहता है कि इस समय माघ के दिल में बहुत दुःख हुआ और उन्हें इतना बुरा लगा कि उसी समय उनके प्राण चले गये । उनके चले जाने पर मानो इस दुनिया से एक महान, अद्वितीय कवि और दानेश्वरी आत्मा की कमी हुई हो ! कितनी महान थी उनकी दानवृत्ति ! स्वयं के लिए खाना (भोजन) न रहा इसका ज़रा भी दुःख नहीं है, परन्तु दूसरों को दे नहीं सके इसका बहुत दुःख है । यह दुःख कितना प्रबल होगा कि उनके प्राण ही चले गये ! इस संसार में

यदि ऐसी दानेश्वरी आत्माएँ जागृत हो जाय तो मैं नहीं मानती कि इस संसार में कोई गरीब रह जाता । आप ऐसी ममता नहीं छोड़ सकते तो कुछ नहीं परन्तु धीरे-धीरे परिग्रह की ममता जीवन में उतारिए । जिसे परिग्रह की आसक्ति नहीं है उसे दान करने की भावना जगती है और ऐसे दानवीरों के नाम अमर हो गये हैं ।

झंडु भट्ट की उदारता

आज अनेक जगहों पर झंडु फार्मसी की दवाइयाँ मिलती है । अनेक दुकानों पर बोर्ड लगाया होता है कि - ''झंडु फामर्सी की दवाइयों की प्रसिद्ध दुकान ।' उस झंडु फार्मसी की दवाइयाँ बनानेवाला कौन था और उसका जीवन कैसा पवित्र था यह आप जानते हैं ? अनेक वर्षों पहले झंडु भट्ट नामक एक चिकित्सक थे । उनकी आज भी सौरभ फैल रही है । मनुष्य की मानवता का एक जगमगाता दीया था वह । वह दीया जामनगर की पवित्र भूमि में पैदा हुआ था । ये झंडु भट्ट नाड़ी पहचानने में बहुत पारंगत थे । उनका जामनगर के राज्य में 'राजवैद्य' के रूप में सम्मान था । जामनगर के जामसाहेब बहुत दयालु थे । अतः अपने नगर में दर्दियों की अच्छी चिकित्सा हो और लोगों को अच्छी दवाइयाँ वगैरह मिले इसलिए झंडु भट्ट को रखा था । झंडु भट्ट ब्राह्मण जाति (समाज) के थे । अपने धर्म के क्रियाकाण्डों में वे बहुत चुस्त थे । राज्य में राजवैद्य के रूप में बहुत सम्मान होने पर भी अपने धर्म के नियम और क्रियाकाण्ड भूलते नहीं थे । वैद्य के वे सारे गुण उनमें विद्यमान थे । इन्हें राज्य की और २०० रु. मिलते थे । २०० रुपयों में उनको चिकित्सा का सारा काम करना होता था । दवाख़ाना का हिसाब रखने के लिए एक मुनीमजी रखे थे । परिवार में तो दो ही सदस्य थे । २०० रुपये में से मुनीमजी की आमदनी, घर का खर्च, दवाई और दवाई पीसने (बनानेवाले) नौकरों की आमदनी, यह सब कुछ इसी २०० रु. से करना था और प्रजा को मुफ्त में दवाई, सेवा भी मुफ्त, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर आदि भेदभाव किये बिना सबकी समानता से सेवा करते थे ।

उनकी दवाई से अनेक दर्दियों को अच्छा हो गया था । चारों ओर उनकी बहुत कीर्ति फैल गयी थी । लोग दूर-दूर से दवाई देने आते थे । उनकी सेवा से खुश होकर धनवान लोग उन्हें पैसे देने का कहते, तब वे कहते कि - ''नहीं भाई ! मुझे राज्य की ओर से आवश्यक खर्च के रुपये मिल जाते है, फिर मुझे आपके रुपयों की क्या आवश्यकता है ? मुझे आपके पैसे लेकर भगवान और राजा का अपराधी नहीं बनना है । मुझे जो कुछ मिलता है उसमें सन्तोष है ।'' झंडु भट्ट के जीवन में कितना सन्तोष होगा ? उन्हें सामने से रुपये मिल रहे हैं, फिर भी लेने की इच्छा नहीं करते । स्वयं धनवान नहीं है, बड़ी मुश्किल से अपना और

चिकित्सालय का गुजारा करते हैं, फिर भी उनका तो एक ही सिद्धांत है - नीति से जीना और जीवन में सन्तोष रखना । 'सन्तोषी नर सदा सुखी ।' जिस के जीवन में सन्तोष नहीं है, उसे चाँहे कितना भी धन मिल जाय फिर भी वह सदा के लिए दुःखी ही रहता है ।

गोधन, गजधन, वाजिधन और रतन धन खान ।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धुरि समान ॥

मनुष्य के पास गाय, भेंस, हाथी, घोड़े आदि चाहे कितना भी पशुधन हो, ज़मीन-ज़ागीर हो, हीरे-माणिक, पन्ना आदि जवाहरात और सुवर्णमुद्राएँ आदि हो, परन्तु अगर एक सन्तोषरूपी धन नहीं होगा, तो सब धन व्यर्थ है । जिस के पास एक सन्तोषरूपी धन है, तो उसके मन ये सब धन धूल और मिट्टी समान है, क्योंकि सन्तोष ही मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट धन है, इसलिए आप अपने जीवन में सन्तोषरूपी धन को अपनाइए । आज संसार में जहाँ देखों वहाँ अशांति ही है, शांति कहीं पर भी दिखती नहीं है । चारों और दुःख, दुःख और दुःख है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण एक ही है कि जीवन में असन्तोष की आग जल रही है । असन्तोष के कारण जितना मिला है उतना भी सुख से भोग सकते नहीं है । असन्तोषी जीव किसी का सुख देखकर जल जाता है । वह सोचता है कि - उसके घर में इतनी अधिक संपत्ति है और मेरे घर में कुछ नहीं ? उसके घर पर मोटर-कारें हैं, मेरे घर नहीं ! इसके घर पर चारों दुकाने ज़ोरदार चलती है और मेरे दो दुकानें भी ठीक नहीं चल रही ?' इस प्रकार की असन्तोष की आग में जलता है और स्वयं को सुखी होने पर भी दुःखी मानता है । संयमी साधक को आवश्यक चीज़ मिले, या न मिले फिर भी जीवन में असन्तोष नहीं रखते हैं, उन्हें तो सन्तोष ही होता है । झंडु भट्ट के जीवन में बहुत सन्तोष था । सादगीपूर्ण जीवन बिताते थे और हो सके उतनी लोगों की सेवा करते थे । स्वयं गरीब होने के बाद भी जो बड़े बड़े करोड़पतियों के पास नहीं था, वह सब कुछ इस झंडु भट्ट के पास था । कहा है न कि -

''संतोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शांत चेतसाम् ।
कुतस्तद् धन लुब्धानां मितश्चेत स्च धावताम् ॥''

सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त शांत हृदयी पुरुषों के पास जो सुख है, वह सुख इधर-उधर भटकनेवाले धन के लोभी पुरुषों के पास नहीं है । झंडु भट्ट जैसे सन्तोषी, निखालिस और सेवाभावी वैद्य की बहुत 'वाह-वाह' होती थी, फिर भी वे उनमें कभी अभिमान नहीं आया था । वैद्य के काम-काज से निवृत्त होने के बाद उनकी पत्नी के साथ मिलकर धर्मध्यान करने में प्रवृत्ति हो जाते थे,

इस प्रकार वे अपने दिन बिताते थे । उनका मुनीम भी उनकी तरह सन्तोषी था । वैद्य राजका काम वह पूरी ईमानदारी एवं लगन से करता था । परन्तु कुछ दिनों तक उसके मुख पर उदासीनता देखकर, हृदय में चिन्ता के काले बादल देखकर और जान-बुझकर स्वयं को खुश दिखानेवाले ढ़ोंग को झंडु भट्ट से अधिक दिनों तक छुपा न रहा ।

❑ मुनीम की चिन्ता का कारण पूछते झंडु भट्ट :

झंडु भट्ट मुनीमजी का उदास चेहरा देखकर सोचने लगे कि - 'ये मुनीमजी पिछले बीस-बीस वर्षों से मेरे यहाँ काम कर रहे हैं । मेरे साथ एक घर के सदस्य की तरह रहता है, परन्तु फिर भी उसे कौन-सा दुःख सता रहा है ? वे उदास और चिन्तातुर किसलिए रहते होंगे ? अगर मेरा अपना आत्मीय जन दुःखी हो तो मुझसे आनन्द से कैसे रहा जायेगा ? उनके दुःख का कारण तो मुझे पूछना ही पड़ेगा ।' ऐसा सोचकर झंडु भट्ट ने पूछा - ''मुनीमजी ! मैं पिछले एक महीने से देख रहा हूँ कि आप के मुख पर चिन्ता की रेखाएँ अधिक दिखती है । तो आप की इस चिन्ता का कारण क्या है ?'' तब मुनीम ने कहा - ''कुछ नहीं ।'' बन्धुओं ! यह संसार मुसीबतों का धूरा (ढ़ेर) है, चिन्ता का चौक है, मतलब का मैदान है और कर्म बन्धन का क़ारख़ाना है । संसारवर्ती जीवों को अनेक प्रकार की चिन्ताओं के कीड़े खा जाते हैं । फिर भी वे किसी के सामने उसे अभिव्यक्त कर सकते नहीं हैं । अनेक जीवों की ऐसी स्थिति होती हैं । चिन्ता से बिलकुल मुक्त और सुखी तो मात्र वीतरागी संत ही हैं ।

❑ झंडु भट्ट की गरीबी में अमीरी :

झंडु भट्ट को दिन में तो दर्दियों की सेवा के कारण समय मिलता नहीं था, इसलिए उन्होंने मुनीमजी को रात को बुलाया । रात्रि की नीरव शांति में मुनीम आये, भट्ट ने उन्हें एकान्त में बिठाकर पूछा - ''मुनीमजी ! सदैव हँसते रहनेवाले आपके सुन्दर मुख पर पिछले एक महीने से इस प्रकार उदासी क्यों छा गयी है ?'' भट्टजी का प्रश्न सुनकर मुनीमजी स्तब्ध हो गये और कुछ उत्तर दिये बिना ही मौन बैठे रहे, तब झंडु भट्ट ने पुनः पूछा कि - ''मुनिमजी, आप तो मेरे छोटे भाई जैसे हो । आप को ड़रने की कोई आवश्यकता नहीं है । आपको जो चिन्ता हो, मुझे दिल खोलकर कह दीजिए ।'' पास में है या नहीं है, देना या नहीं देना यह बात और है परन्तु दुःखी को ऐसा आश्वासन देनेवाला कौन है ?

मुनीमजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा - ''भट्टजी ! संसारी-जीवों को चिन्ता तो होगी ही न ! मेरी पुत्रियाँ अब बड़ी हो गयी हैं, उसमें बड़ी पुत्री का इस वर्ष विवाह करना है, परन्तु मेरे पास पैसे नहीं है इसलिए मैं परेशान हो रहा हूँ ।'' मुनीमजी

की बात सुनकर झंडु भट्ट ने कहा - ''आप की पुत्री का विवाह है इसके लिए इतनी अधिक चिन्ता की क्या आवश्यकता है ? मुझे क्यों नहीं कहा ?'' मुनीम ने कहा - ''मैं आप को किसलिए मुसीबत में डालु ? क्योंकि आप को जो कुछ मिलता है, उसमें से बड़ी मुश्किल से आपका काम चलता है, आपके पास कुछ बचता ही नहीं है । फिर आपके साथ बात कर आपको चिन्ता में डालने से भला क्या फायदा ?'' भट्ट ने कहा - ''मुनीमजी ! आपकी चिन्ता का कारण मुझे समझ में आ गया । आपकी पुत्री भी मेरी ही पुत्री है । मैं अपनी पुत्री को कुछ दे सकुँ तो मुझे बडा सन्तोष होगा ।'' मुनीम ने कहा - ''परन्तु पास तो कुछ भी नहीं है ? आप ही अकिचंन हैं, तो मुझे क्या देंगे ?'' भट्टजी ने कहा - ''अपनी शक्ति अनुसार जो मेरे पास होगा मैं उसे दुँगा । आप यहाँ बैठिए ।'' ऐसा कहकर भट्टजी अपनी पत्नी के पास गये ।

पत्नी से जाकर कहा - ''हमारे मुनीमजी की पुत्री हमारी भी पुत्री ही है न ?'' पत्नी ने कहा - ''ऐसा क्यों पूछते हो भला ?'' तब भट्टजी ने कहा - ''पुत्री के विवाह है तो हमें कुछ तो करना पड़ेगा न ?'' पत्नी ने कहा - ''इसमें मुझसे क्या पूछना ? आपको जो उचित लगे आप कीजिए ।'' भट्टजी ने कहा - ''बात तो सच है, परन्तु हमारे घर में क्या है यह आप तो जाननी हैं न ?'' ''नाथ ! पुत्री के विवाह हो तब ऐसा कुछ देखना नहीं होगा । पास में जो कुछ होता है उसे हे देना होता है ।'' बन्धुओं ! इस ज़माने में ऐसी पत्नी मिलना बड़ा ही मुश्किल है । मनुष्य के पास लाखों रुपये हो और उसमें से कुछ है तो इसमें कोई विशेषता नहीं है, परन्तु जिसके पास कुछ भी नहीं है, वे अपना सर्वस्व जब गरीब की सेवा में समर्पित कर दे उसकी महान विशेषता है ।

❑ अपना सर्वस्व - विवाह का पानेतर (साड़ी) दान में :

इस झंडु भट्ट की कितना खानदानी है ? जामसाहब के महीने २०० रु. की आमदनी में दर्दियों की दवाई, मुनीमजी की आमदनी, दवाई पीसनेवाले मज़दूरों की आमदनी और अपना घर-खर्च इसमें से भला क्या बचता ? बड़ी मुश्किल से अपना गुज़ारा (निर्वाह) करते थे, फिर भी झंडु भट्ट की पत्नी उनके जैसी ही उदार थी । उसने कहा - ''नाथ ! हमारे पास और तो कुछ नहीं है, परन्तु मेरा पानेतर, जो विवाह के समय मैंने पहना था, उसके बाद कभी नहीं पहना था । वह पानेतर बहुत मूल्यवान है, तो उसे हम अपनी पुत्री की दे देते हैं ।'' झंडु भट्ट ने कहा - ''मेरी भी ऐसी ही इच्छा थी । सचमुच आप धन्य है ! तुम मेरी पत्नी ही नहीं, सच्ची धर्मपत्नी हो । सच्चे समय में तुम मेरे मन के भाव को ठीक-ठीक समझ गयी ।'' पत्नी ने पियर में सँभालकर रखे पानेतर को निकालकर दौड़ती हुई आयी

और कहा - "मुनीमजी, मैं इस पानेतर का अपनी पुत्री के पहरावनी में देती हूँ ।" झंडु भट्ट की उदारता देखकर मुनीमजी का मस्तक उनके चरणों में झुक गया । झंडु भट्ट के सुख पर खुशी का भाव छलक रहा था । उनकी पत्नी ने भी अपने विवाह के प्रतीकरूप यह पानेतर पुत्री को पहरावनी में देने का पूर्ण आत्म सन्तोष था । सन्तोषी, उदार और सेवाभावी, दयार्द्र चित्तवाले झंडु भट्ट के शुभ गुणों के प्रतीक रूप में 'झंडु फार्मसी' की स्थापना हुई । सादे, सरल और यत्किंचन फिर भी दर्दियों के दर्द का सच्चा निदान करनेवाले वे सेवाभावी संत सबके हृदय में बस गये । वे कैसे पवित्र और सन्तोषी जीव होंगे कि अपनी पूँजी में शेष एकमात्र पानेतर भी खुशी से मुनीम की पुत्री को दे दिया । आप तो अपने स्वधर्मी बन्धु या अपने सगे भाई की ओर ध्यान देनेवाले भी बहुत कम हैं । इस संसार से जाने के बाद भी अगर आपको अपना नाम इतिहास के पन्नों में अमर बनाना हो, तो झंडु भट्ट जैसे उदार बनिएगा । झंडु भट्ट को बिदा हुए न जाने कितने ही वर्ष बीत गये, फिर भी आज उनका नाम गुंज रहा है । अतः ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि-"शील, तप और भाव की पवित्र धरती पर यात्रा करनी हो तो सर्व प्रथम दान का कदम भरना पड़ेगा । **शील का शिखर सर करने से पहले, तप के तेज प्राप्त करने से पहले और भावना की भव्यता को भेटने से पहले हमें नींव का सूत्र याद करना चाहिए** - *'धर्मस्यादि पदं दानं ।'* दान की महिमा अपार है । शुद्ध भाव से दिया गया दान कभी भी व्यर्थ जाता नहीं है । झंडु भट्ट, माघ कवि आदि से हमने सीखा मि दान में कितना अधिक लाभ है । दान देने के बाद भी दान का आनन्द अनोरवा होता है । शालिभद्र के जीव ने पूर्वजन्म में माँग-माँगकर इकट्ठी की गयी खीर मासखमण के तपस्वी संत को उत्कृष्ट भाव से वहोरायी थी । वहोरा ने के बाद भी उसके हृदय में कितना आनन्द है ! परिणामतः दूसरे जन्म में शालिभद्र की रिद्धि प्राप्त की । मुझे ऐसी रिद्धि मिले ऐसे भाव से दान दिया न था, परन्तु उत्कृष्ट भाव से दान दिया था । आप नये वर्ष (साल मुबारक) में शारदापूजन करते हैं, तब चोपड़े में लिखते हों न कि शालिभद्र की रिद्धि मिलना । परन्तु साथ में यह भी लिखते हों कि शालिभद्र ने बहुत ही रिद्धि (ऋद्धि) का त्याग कर संयम लिया, तो आप को भी ऐसे संयम के भाव आये । (सब हँसते हैं ।) ऋद्धि (रिद्धि) तो मम्मण सेठ को भी मिली थी परन्तु उसे उनकी ऋद्धि (रिद्धि) की आसक्ति नरक में ले गयी और शालिभद्र ने अपनी ऋद्धि को त्यागा, तो अनुत्तर विमान में गये और एकावतारी वने । ऐसा अपूर्व है दान की महिमा ! इसलिए इस पर्व के सुवर्णमय दिनों में 'विखेरना (दान देना) सीखिए ।' किसान खेत में भी दाने बोने के लिए बड़ा थेला लेकर जाता है और लौटते समय गाड़े भरकर अन्न लाता है । दान के बारे में बहुत कहा, अव दान के बाद शीयल की चर्चा करेंगे कि उसका कैसा प्रभाव है ?

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकाल से कर्म की जंग से मलिन बनी आत्मा को शुद्ध करने के लिए पर्युषणपर्व के दिन हैं । पर्वपति पर्युषण के आगमन के समय सबके हृदय में जो आनन्द और उमंग की लहरें उमड़ रही हैं, यह सचमुच अवर्णनीय और अनुपम होती है । मंगलमय पुण्य शुभ पर्युषणपर्व प्रति वर्ष आता है और जाता है । यह पर्व एक अनोखा तारक पर्व है । मोह का तारक और दुःख का वारक है । उसकी सुमंगल आराधना से आतम के अणु-अणु पर लगे अनादि के कर्म-दुर्गंध की बदबू नष्ट होती है और कर्म-निर्जरा रूप सुगन्ध का परिमल फैलता है । अमूल्य जगत में बेजोड़, परम पुण्य शुभ पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व पधारे हैं । तो हृदय से उन्हें स्थापित कर अनादि के शत्रुभाव के भँवर को दूर कर हृदय में क्षमा की मधुरता महकाइए और क्रोध की कटुता मिटाइए ।

पर्युषणपर्व यानी आध्यात्मिका से पर्व क्षितिज में खिला प्रकाशमय पर्व । उस प्रकाशमय पर्व का परम प्रकाश यानी क्षमा का भव्य सर्जन । पर्युषणपर्व कल्पतरु पधारे है हमारे हृदय के आँगन में - उनके स्वागत के लिए क्षमा के अशोक फूल बाँधे (लगाये), हृदय की उररूपी चौखट पर आराधना के विभिन्न रंग भरे, हृदय के दीये से तप-त्याग की बाती (ज्योति) जलाये, जिससे अहिंसा के घृत में जलती ज्योत आत्मारूपी कमरे में प्रकाश फैला दे । सुगन्ध के बिना पुष्प जैसे शोभित नहीं होता, उसी प्रकार पर्युषणपर्व की सुन्दरतम् साधना आराधना के उल्लास या उत्साह के बिना कभी शोभित नहीं होती । सर्व पर्वों में शिरोमणि यदि कोई पर्व हो तो वह पर्वाधिराज पर्युषणपर्व हैं । सर्व वस्त्रों में युगलियाँ के वस्त्र श्रेष्ठतम् हैं, वनों में चन्दनवन महा मूल्यवान हैं, रत्नों में वैडूर्य रत्न महामूल्यवान है । तप में श्रेष्ठ तप ब्रह्मचर्य है, उसी प्रकार पर्वों में श्रेष्ठतम् पर्व पर्युषणपर्व है । यह पर्व हमें क्या सन्देश देता है ?

जीवन में ज्ञान गुण बढ़े, परमार्थ का पैगाम बढ़े ।
आलोचना ओढ़नी ओढ़िए, मन-मन्दिर में मैत्री की मूर्ति मढ़िए ॥

जीवन में ज्ञान-गुण को प्राप्त कीजिए, परमार्थ के कार्य कीजिए, पाप की आलोचना कीजिए और मैत्री-भावना के झरने बहाइए । अज्ञान के आविष्कार में

भटकती आलम का एकचित्त से अवलोकन किया जाय तो साधकों के अतिरिक्त समग्र विश्व में अशांति का वायु फैल रहा है । सर्वत्र मुसीबत के अँगारे गिर रहे हैं । इस विश्व में से शांति के सूर से, समाधि के स्वर से और सुख के समीरने तो मानो वनवास न लिया हो ? अशांति की उद्गमभूति कौन-सी ? ईर्ष्या । ईर्ष्या सन्त को शेतान बनाती है । मानव को दानव और वन्दनीय को निन्दनीय बनाता है । ऐसे ख़तरनाक तत्त्व को दूर करने के लिए पर्वाधिराज का दुंदुभि बज रहा है । ईर्ष्या के सामने स्नेह की वर्षा बरसाइए, वैमनस्य के सामने शमनस्य, शत्रुता के सामने मित्रता, दुश्मनी के सामने हृदय की दिव्यता अपनाइए । ऐसे गुणों को प्रकट करने के लिए आलोचना का आहलेह जगानेवाले पर्वाधिराज पर्व पधारे हैं ।

मंगलकारी पर्युषणपर्व की आराधना जन्म-मृत्यु की परम्परा तोड़ने के लिए हैं, अतः आराधना में एकाग्र बनिए । क्लेश, ईर्ष्या, द्वेष आदि कर्म के अणु-परमाणुओं की अति मलिनता विश्व में चारों ओर सनातन पड़ी है । वे मलिन रज चारों ओर छा गयी हैं । अगर आत्म-साधना, आराधना में एकाग्र बने, तो उन मलिन रजकणों से मुक्त होती है और उच्चगति को प्राप्त करती है । मगर इस अनुपम पर्व का लाभ लेना है, तो सेवा कीजिए, स्वधर्मी बन्धु की आराधना कीजिए । दान, शील, तप और भाव की, प्रतिक्रमण कीजिए । संवत्सरी का और क्षमापना कीजिए सर्व जीवों की । पतितपावन वीतराग-प्रभु का शासन मिला । शासन शिरोमणि समान गुरु भगवन्त मिले, शासन के महामूल्यवान पर्व मिले, पर्वों में शिरताज पर्युषणपर्व की सुहानी आत्मतारक आराधना मिली, कैसा महान सुयोग ? कैसा महान पुण्योदय ? तो अब प्रमाद के आवरणों को दूर कर पुण्यमय पर्व का स्वागत कीजिए, उसका सत्कार कर लीजिए ! भावनाविहीन श्रेयस्कारी उत्तमोत्तम तप की आराधना निरर्थक हैं । कर्म परमाणुओं की मलिनता से बचना हो तो भगवन्त की आज्ञारूपी वीतरागवाणी के जल में स्नान कर पवित्रतम पर्व की सुरभि में मस्त (लीन) हो जाईए । मन की मलिनता दूर होगी और आत्मा सुगन्ध से महक उठेगा ।

आज के व्याख्यान का विषय है – 'शील और सौन्दर्य ।' आज का मनुष्य सौन्दर्य के पीछे पागल हुआ है, परन्तु आत्मा के सौन्दर्य को पहचानता नहीं है । देह का सौन्दर्य सच्चा सौन्दर्य नहीं है, फिर भी उस सौन्दर्य की वृद्धि करने हेतु मनुष्य पाप की प्रवृत्ति करता रहता है । शरीर का सौन्दर्य बढ़ाने के पीछे अन्याय-अनीति से धन कमाता है । ज्ञानीपुरुषों ने चार प्रकार के पुरुषार्थ बताये हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । उसमें मोक्ष जीवन का अन्तिम साध्य है और धर्म मोक्षप्राप्ति का साधन है । अर्थ और काम ये दोनों मोक्षप्राप्ति में बाधक हैं । अगर मनुष्य समझे तो धर्म-पुरुषार्थ प्रमुख है और अर्थ तथा काम ये दोनों-पुरुषार्थ गौण है । इसलिए महापुरुषों ने धर्मशास्त्रों की रचना की है । आर्य और

अनार्य में यह भेद है । हमारी आर्य संस्कृति ने धर्म-पुरुषार्थ को प्रधान माना है । तब पाश्चात्य संस्कृति ने काम को साध्य बनाया और अर्थ को साधन माना । इस प्रकार उन्होंने अर्थ और काम को प्रमुख स्थान दिया, जिससे उन्होंने अर्थशास्त्रों की रचना की ।

बन्धुओं ! हमारी आर्य संस्कृति का केन्द्रस्थान मुक्ति है, और उसकी प्राप्ति का स्थान धर्म है । अतः हमारे महर्षियों ने धर्मशास्त्रों की रचना की हैं । परन्तु हमने जीवन में धर्म की प्रवृत्ति कितनी की है इसका विचार करना है । पश्चिम की संस्कृति का प्रमुख ध्येय कामभोग है, इसलिए वे उनके जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में अर्थ का कितना लाभ हुआ इसका विचार करते हैं । इसी प्रकार एक संस्कृति आत्मा की खोज में तन्मय है । जबकि दूसरी संस्कृति एटमबोंब आदि की खोज में तन्मय रहता हूँ । परिणामतः संरक्षक जीवन संहारक बनता गया और जीवन की शांति नष्ट हुई है । जबकि आर्यदेश में पैदा हुआ मनुष्य यही सोचता है कि-'मेरे जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति धर्ममय है कि नहीं ? मेरे जीवन में धर्म का लाभ कितना हुआ ? मेरा आत्मा ऐसे पवित्र पर्युषणपर्व के दिनों में परिग्रह के बोझ से कितना हलका हुआ ? ब्रह्मचर्य के पालन से मेरा जीवन कितना पवित्र हुआ ? मनुष्यजीवन को पवित्र बनाने के लिए परिग्रह परिमाण और स्वदारा सन्तोष ये दो नियम तो अवश्य होने चाहिए । जिसके जीवन में ये दो नियम नहीं है उसका इस संसार में कही स्थान नहीं है । पाश्चात्य संस्कृति की ऐसी हवा लग गयी है कि पूर्व संस्कृति का मनुष्य भी अर्थ और काम को महत्त्व देता हो गया है, इसलिए उसका कितना पतन हो रहा है कि उसे नट-नटियों के फोटो अच्छे लगते हैं । उसके गीत सुनना अच्छे लगते है, जहाँ देखेंगे वहाँ नट-नटियों के फोटों देखने को मिलते हैं । मगर सच्चा सुख प्राप्त करना होगा तो आज का गन्दा वातावरण बदलना होगा और जीवन में संयम अपनाना पड़ेगा । इन दुर्गुणों की दुर्गंध से भरे वातावरण के अणु-अणु में शीयल की सौरभ स्पर्शित होगी तो यह दुर्गंध दूर रहेगी । एक ज़माना ऐसा था कि मनुष्य अपने जीवन को पवित्र रखने के लिए देह और दौलत की परवा करते न थे । आज जीव विषय-वासना के कीड़े बनकर खुश होता है, परन्तु उसे मालूम नहीं है कि जिसके पीछे कामना का कीड़ा बनकर पागल हुआ है, वह मेरा साथ कब तक रखेगा ?

संग का रंग

'रायप्रसेणी सूत्र' में परदेसीराजा का अधिकार (अध्याय) आता है, यह तो आपने अनेकबार सुना है । परदेसीराजा की सूरिकंता नामक सौन्दर्यवान रानी थीं । उसके पीछे परदेसीराजा मुग्ध थे । उनके हृदय में वासना का शासन था । उनके

हृदय में संयम के लिए एक तसु (अणु) जितनी जगह भी न थी । हृदय में क सदाचार के अंकुर दिखते न थे । परन्तु एक बार केशीस्वामी का परिचय होने पर परदेशीराजा परदेसी मिटकर स्वदेसी बने । जिनका जीवन वासना में सराबोर था, उनका जीवन वासना से विरक्त बना और धर्मवान बने, परन्तु उनकी प्रिय रानी सूरिकंता को विश्वास नहीं है कि परदेसीराजा के अणु-अणु में वासना भरी है, जो मेरे पीछे पागल है, वे भला धर्मी कहाँ से बन सकते हैं ? उनके हृदय के दीये में धर्म की ज्योत कहाँ से जलती ? परन्तु अनुभव होने पर यकीन हुआ कि ये तो सचमुच धर्म के रंग में रंग गये हैं, उन्हें संग का रंग सचमुच लगा है ।

पति की रग-रग में धर्म का रंग चढ़ा (लगा) देखकर सूरिकंता ने मन ही मन विचार किया कि - 'मेरे लिए अब यह तो मृत कलेवर (पति का शरीर) है । ये मेरे किसी काम के नहीं है । जो सूरिकंता अपने पति के पीछे प्राण देने के लिए तैयार थी वही सूरिकंता अपना स्वार्थ पूरा होने पर आज प्राण लेने के लिए तैयार हुई । अभी तक परदेशीराजा के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होनेवाली सूरिकंता ने वासना में अन्ध बनकर परदेसीराजा को भोजन में विष दिया । इस समय केशीस्वामी के पास से मिली धर्म की छोटी-सी ज्योत परदेसी के लिए मशालरूप बन गयी । अन्धकारमय जीवन महाप्रकाश के पथ पर लौट आया । उन्हें पता चला कि सूरिकंता ने विष दया है, फिर भी उस विष को वमन करने के लिए कोई दवाई लेने के लिए न गये, परन्तु पौषधशाला में जाकर पौषधव्रत में बैठ गये । विष देकर भी विषैली नागिन जैसी सूरिकंता रूकी नहीं, पौषधशाला में जाकर कहने लगी - "हे प्राणनाथ !" कहकर पति का गला दबा दिया, फिर भी परदेसी सूरिकंता पर जरा भी क्रोधित न हुए बल्कि क्षमाभाव रखा । पौषध में समाधिस्थ मृत्यु को पाकर देवलोक में महान सुख के स्वामी बने ।

बन्धुओं ! देखिए, परदेसीराजा के जीवन में सन्त के सत्संग ने कैसा परिवर्तन करवाया ? इसीलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि - "संग करें तो सन्त का और सज्जन का कीजिए ।" परन्तु आज सन्तों, त्यागियों की बातें किसे पसन्द हैं ? त्यागी की बातें गप्पे लगते हैं और वासनाएँ बढ़ती जाती है । उन वासनाओं से भरी दृष्टि सौन्दर्य को खोजती है । ज्ञान का उपासक, शील का उपासक आज सौन्दर्य का उपासक बन गया है । अतः भोग-विलासी चित्र देखने के लिए पहले से टिकट मँगवा रखता है । ऐसे विलासी चित्र देखकर भोगप्रधान जीवन में उसका अन्धानुकरण करने लगता है । अतः त्याग, शील आदि से प्रकाशित मानवजीवन विलासमय बनता जाता है और मनुष्य भोगों की ओर अभिमुख होता जाता है । शीलहिन मनुष्य कीड़े से किलकिलाते कुत्ते जैसा है । जिसके शरीर में घाव पड़ गये हैं, उसमें कीड़े किलकिलाते हैं, दुर्गंध मारती है, ऐसा कुत्ता जहाँ जाता है वहाँ सब उससे भयभीत रहते हैं और उसे सब जगहों से तिरस्कृत करते हैं । उसी प्रकार

शीलविहीन मनुष्य जहाँ जाता है, वहाँ उसे लोग तिरस्कृत करते हैं । उसका कोई विश्वास नहीं करते है । इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि - "शीलविहीन की जीवन में कोई क़ीमत नहीं है ।" शीयल मनुष्यजीवन का सर्वोपरि शिखर है । मनुष्य में विनय, उदारता, नम्रता, सरलता, ज्ञान आदि चाहे कितने भी गुण क्यों न हो, परन्तु यदि उसका शील (चारित्र) साफ नहीं होगा, तो उसके शेष गुणों की कोई क़ीमत नहीं है । अनेक मनुष्य पहाड़ पर चढ़ने की तालीम लेकर हिमालय जैसे ऊँचे से ऊँचे पहाड़ के शिखर पर चढ़ते हैं, उसी प्रकार हमें भी शीयल व्रत पालने की तालीम लेकर शील धर्म के ऊँचे से ऊँचा शिखर को सर (पार) कर आत्मिक-सुख की प्राप्ति करनी है ।

भूतकाल में लोग लालटेन जलाते थे । आज तो घर-घर में लाइटें आ गयी है । उस लालटेन से भी बोध मिल सकता है । लालटेन में केरोसीन (मिट्टी का तेल) डालकर उसे बाती के द्वारा उपर चढ़ाया जाता है, तब अन्धेरे कमरे में प्रकाश फैलता है, परन्तु यदि लालटेन का तलवा काना (छेदवाला) हो, तो केरोसीन उपर जाने के बजाय ज़मीने में चूस जाता है । जिससे लालटेन अन्धकार नष्ट कर सकती नहीं है । उसी प्रकार अगर मनुष्य शीयल व्रत का पालन करे, तो वीर्य-शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाकर आत्मा का ओज (प्रकाश) बढ़ाकर जीवन को तेजस्वी बना सकता है ।

ब्रह्मचर्य अमृत है । जो मनुष्य ब्रह्मचर्यरूपी अमृत का रसास्वादन करता है, वह मनुष्य हमेशा के लिए अमर बन जाता है । उसका नाम इतिहास के पन्नों में लिखा जाता है । उनका जीवन लाखो वर्षों तक प्रकाश देता है । जिन्होंने ब्रह्मचर्य की महत्ता को समझकर ब्रह्मचर्य का स्वीकार किया है, वे प्रगति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गये हैं । इतने युगों के बाद भी सीताजी का जीवन प्रेरणा दे रहा है । अशोकवाटिका में सती सीताजी अकेली थी, तीनों खण्ड का अधिपति रावण हाथ जोड़कर सीताजी के पास अनुनय-प्रार्थना करता है, परन्तु सीता उसका तिरस्कार करती है, उसका अपमान करती है, उसके प्रलोभनों को ठोकर मारती है । रावण की चमकती तलवार देखकर भी सीताजी ड़रते नहीं हैं । देवानुप्रियों ! सीताजी के पास कोई तलवार, तौप या बन्दूक न थी । उनके पास अगर कोई अद्‌भुत शक्ति हो तो वह थी ब्रह्मचर्य की शक्ति । ब्रह्मचर्य का तेज़ महान है । उसके तेज़ के आगे अन्य सभी तेज निस्तेज बन जाते हैं । ब्रह्मचर्य की शक्ति के आगे सारी शक्तियों का पराजय हो जाता है । मैं आपको चन्दनबाला की चमकती चाँदनी जैसा जीवन कह सुनाती हूँ कि शीयल के लिए सति स्त्रियाँ क्या करती हैं ?

❑ शीयल के लिए धारणी रानी का प्राणत्याग :

जैनशासन में चन्दनबाला नामक साध्वीजी की बात आती है । उस चन्दनबाला ने कितने कष्ट सहे हैं ? चन्दनबाला राजकुमारी थी, परन्तु उसके कर्मोदय से पिताजी युद्ध में मारे गये, तो उसकी माता सतीत्व (शीयल) की रक्षा हेतु अपनी पुत्री को लेकर रथ में बैठकर भाग निकले थे । मार्ग में सारथी की बुद्धि भ्रष्ट होने पर धारणी माता ने जिह्वा काटकर अपने जीवन का अन्त किया था । चन्दनबाला की माता ने सतीत्व की रक्षा हेतु मौत का स्वीकार किया । यह देखकर सारथी का हृदय परिवर्तन हुआ और चन्दनबाला को अपनी बहन मानकर अपने घर लाया, परन्तु सारथी की पत्नी के हृदय में उसके प्रति अलग ही भाव जगा । अतः सारथी ने चन्दनबाला को चौक में ले जाकर खड़ी रखी । ज़रा सोचिए । यह कर्म का कैसा उदय है ? बाज़ार में गुड़-तेल-शक्कर, घी, अनाज, कापड़ आदि चीज़ें बिकती हैं, परन्तु मनुष्य किसी बाज़ार में बिकते हैं ? यहाँ चन्दनबाला को बिकने के लिए खड़ी रखी । यौवन और सौन्दर्य को देखकर एक वेश्या ने उसे खरीदा । चन्दना ने पूछा - "बहन ! आपके घर के आचार-विचार कैसे है ?" तब उसने कहा - "मेरे घर में तो रोज़ नये सिंगार सजने के और नये नये पुरुषों को खुश करना है । यही मेरे घर का आचार है ।" यह सुनकर चन्दनबाला को बहुत दुः हुआ । उसने हृदय के तार प्रभु के साथ जोड़कर प्रार्थना की इसलिए सतीत्व के रक्षक देवों का आसन चलायमान (चलित) हुआ और सती की, सहायता के लिए आये । बन्दर और बिच्छु का रूप लेकर वेश्या को काट डाला, तो वेश्या चीख उठी और बाजार में बेचने के लिए तैयार हो गयी ।

❑ वेश्या के घर से चन्दना धनावाह सेठ के घर :

कुछ देर बाद धनावाह सेठ चौक में आये । उन्होंने इस चन्दना को बिकने के लिए खड़ी देखी । सेठ को बहुत खुशी हुई । मानो अपनी पुत्री न हो ? ऐसा स्नेह उस पर आ गया । उन्होंने चन्दना को खरीदना चाहा । चन्दना ने पूछा - "पिताजी ! आपके घर के आचार-विचार कैसे हैं ?" तब सेठ ने कहा - "पुत्री ! मेरे घर रोज़ सामायिक करना, सुबह-शाम प्रतिक्रमण करना, अष्टमी-पाखी के दिन उपवास, एक़ासणा करना, सत्य, नीति और सदाचार से चलना । यही मेरे घर का आचार है ।" यह सुनकर चन्दना को बहुत खुशी हुई । सेठ उसे खरीदकर अपने घर ले गये । अपनी पुत्री की तरह उसे रखने लगे । चन्दना भी आनन्द से रहकर धर्मध्यान करने लगी । परन्तु उसके कर्म उसे कहाँ चैन से बैठने देते थे ? एक दिन सेठ कहीं से आये और पाँव धोने के लिए पानी माँगा । चन्दनबाला पानी का लोटा लेकर आयी । जैसे ही पैर धोने के लिए जाती है कि तभी सिर के बाल

की एक लट नीचे गिर गयी । सेठ को लगा कि पुत्री के बाल बिगड जायेंगे । यह सोचकर अपने हाथों से चन्दना के बाल की लटे ठीक की । यह दृश्य मूला सेठानी ने देख लिया, तो उसके हृदय में ईर्ष्या की आग जल उठी । उसके हृदय में सेठ पर वहम हुआ कि - 'यह सेठ बाहर से तो इसे पुत्री मानते-कहते हैं, परन्तु वास्तविकता में कपट है ।' इसी वहम के कारण मूला सेठानी को चन्दना के प्रति ईर्ष्या हुई ।

❑ चन्दना पर मूला सेठानी का जुल्म :

एक दिन सेठ कहीं बाहर गये थे । उस मौके का फायदा उठाकर ईर्ष्यालु मूला सेठानी ने चन्दना का सिर मुडवाकर, हाथ-पैर में बेड़ियाँ डालकर, तहखाने में डालकर स्वयं मायके चली गयी । सेठ तीन दिनों बाद वापस लौटे और देखा तो सेठानी घर में नहीं थी । सेठ 'चन्दना...चन्दना...' कर चीखने लगे । इसतरह चन्दना तीन-तीन दिनों से तहख़ाने में भूखी-प्यासी बैठी थी । सेठ "चन्दना... बेटी ! चन्दना..." ऐसा पुकारते हुए पूरे घर को छान डाला, परन्तु कहीं चन्दना को देखा नहीं । बाद में सेठ तहख़ाने में गये । वहाँ चन्दना को देखा । यह दृश्य देखकर सेठ चीख-चीखकर रोते हुए कहने लगे - "पुत्री ! तुम्हारी यह दशा !" इस चन्दनबाला एकाग्रचित्त से 'नमो महावीराय' नाम के जाप जप रही थी । जब से तहख़ाने में उसे डाल दिया था तब से तीनों दिनों से उसने सदैव प्रभु का स्मरण ही किया है । इस नाम-स्मरण के फलस्वरूप चन्दनबाला को क्या मिला ! आपको पता है ? भगवान के नाम-स्मरण का कैसा अचिंत्य प्रभाव है । सुनिए ।

❑ 'महावीराय' जाप-रटन से हुआ चमत्कार :

(१) अपने आँगन में महावीर-प्रभु के पावनकारी कदम हुए (प्रभु पधारे), (२) प्रभु के पाँच महीने और पच्चीस दिनों की उग्र तपश्चर्या के पारणें में साक्षात् अपने हाथों से दान, (३) वहीं पर साढ़े बारह करोड़ सोने की दिव्य वृष्टि, (४) चन्दना प्रभु की प्रथम शिष्या होगी ऐसी इन्द्रराजा द्वारा घोषणा, (५) प्रभु का सर्वज्ञ तीर्थंकर बनकर चतुर्विध संघ की स्थापना करने पर साध्वी समुदाय में चन्दनबाला को प्रथम और प्रमुख शिक्षा के रूप में दीक्षा, (६) उपरांत ३६००० साध्वी परिवार में वडेरापन । प्रभु से प्रतिबोधित हज़ारों साध्वियाँ उसमें वडेरापन करे फिर पूछना ही क्या ?, (७) इस संसार पर अथाह धर्मदान, (८) अन्त में केवलज्ञानी बनी हुई अपनी शिष्या मृगावतीजी को खमाते हुए केवलज्ञान और आयुष्य पूर्ण होने पर उसी भाव (जन्म) में मोक्ष ।

आप सबको समझ में आया कि चन्दनबाला ने 'नमो महावीराय' का जाप जीवन में उतारा था इसलिए वह दुःख में भी सुख का अनुभव करती थी । अब

चन्दना के हाथ-पैर में बेड़ियाँ, सिर पर मुंडन - यह सब देखकर धनावाह सेठ रो पड़े । "पुत्री ! तुम्हारी ऐसी दशा किसने की ?" तब चन्दना ने कहा - "पिताजी ! खुशी के स्थान पर आप शौक किसलिए कर रहे हो ?"

❑ **गुणवान चन्दनबाला की दृष्टि :**

सेठ ने कहा - "पुत्री ! तुम्हारी माता ने यह कैसे दुश्मन का कार्य किया ?" तब चन्दना ने उत्तर दिया - "पिताजी ! उन पर आप क्रोध न करे । उन्होंने तो मुझ पर महान उपकार किया है ।" "अरे ! उसने तो तेरा सिर मुंडवा दिया न ?" "पिताजी ! आप भूल रहे हैं । देखिए, मेरे सिर पर बाल थे तो उस पर कंधी करने और धोने में बड़ी कठिनाई होती थी और समय भी बहुत जाता था । इसलिए उसमें मुझे भगवान के नाम-स्मरण के लिए समय नहीं मिलता था । इसलिए मेरी माता ने मेरे प्रिय प्रभु के स्मरण मे बाधारूप परेशानी दूर की ।" "अरे पुत्री ! तुम्हारे हाथ-पैरों में कैसी लोहे की बेड़ियाँ डाली है ?" तब उसने कहा - "पिताजी ! देखिए, अगर मेरे हाथ-पैर मुक्त होते तो घुमने-फिरने का मन बहुत होता और शरीर की माया में प्रभु की माया कम होती और प्रभु के साथ माया करनी हो तो शरीर की माया ममता मुझे छोड़नी पड़े न ? इसीलिए मेरी कल्याणकारी माता ने शरीर की माया से मुझे मुक्त किया और प्रभु की माया करने की सुविधा कर दी ।" सेठ ने कहा - "परन्तु पुत्री ! तुम्हें तो तीन दिनों और रातों तक भूखा-प्यासा रखा न ?"

चन्दना ने उत्तर दिया - "पिताजी ! खाना-पीना तो पीड़ा है । इतने समय के लिए मैं भगवान को भूल जाती थी, परन्तु मेरी माता ने मेरे प्रभु को एक क्षण को भी भूल न जाऊँ इसकी सुविधा कर दी । कैसी सुन्दर सुविधा ? अन्यथा खाने-पीने में पड़ जाऊँ तो मेरा धर्म भूल जाऊँ ! उस धर्म को न भूल जाऊँ इसके लिए मेरी माता ने मुझे अनुकूलता कर दी है, अतः आप चिन्ता न करें ।" तब सेठ ने कहा - "अरे पुत्री ! तुझे इस अन्धेरे तहख़ाने में डाला न ? उसने यह किस जन्म का बदला लिया ?" "पिताजी ! ऐसा नहीं है । अगर मैं बाहर होऊँ तो घर के काम में जुड़ना पड़े । इसलिए मुझे अपने वीतराग-प्रभु को भजने का इतना समय कहाँ से मिलता ? इसलिए मेरी प्यारी माता ने तो मुझ पर दया कि है कि - 'हे पुत्री ! तुझे अपने भगवान को रटने में विघ्न होता है, इसलिए चौवीसों घण्टे पेट भरकर भगवान का नाम-स्मरण कर ।' ऐसा मानकर तहख़ाने में डाला है । इसमें कुछ बुरा नहीं है । मुझे तो बहुत खुशी हुई है । मैं तो हँस रही हूँ फिर आप किसलिए रो रहे हैं ? जहाँ (जब) पुत्री को आनन्द हो, वहाँ पिताजी को भी आनन्द मानना चाहिए । इसके बजाय आप तो रो रहे हो । आप कृपया कर शांत हो जाइए । यह क्या कर रहे हैं ?" इतना जब चन्दनबाला ने कहा कि सेठ का हृदय हलका फूल जैसा हो गया और उसे हाथ से पड़कर तहख़ाने से बाहर निकालकर घर की दहलीज पर बिठाया ।

चन्दनबाला की दृष्टि कितनी निर्मल और गुणग्राही थी कि उसने दुःख देनेवाली मूला माता को भी अपने प्रत्येक कार्य में अपना उपकारी माना । सिर पर मुंडन, हाथ-पैर में बेड़ियाँ, तीन-तीन दिनों की भूख-प्यास इत्यादि ज़ुल्म के बावजुद उसने प्रभुस्मरण की सुविधा (अनुकूलता) मानी । अहाहा...! कैसी उसकी क्षमा ? दुःखों को खुशी से सहा, परन्तु दुःख को आपत्तिरूप न माना, ईर्ष्या करनेवाली मूला पर भी ज़रा भी दोषारोपण नहीं किया, परन्तु पूर्वजन्म में अपने द्वारा किये गये कर्म उदय में आये होंगे मानकर 'नमो महावीराय' का स्मरण करने लगी, क्योंकि उसे प्रभु के रटन की लगनी इतनी अधिक लगी थी कि जिसने सिर मुंडन, बेड़ियाँ, भूख-प्यास, कैद आदि को भी प्रभु के स्मरण के लिए संपत्तिरूप माने । 'नमो महावीराय' अर्थात् महावीरस्वामी को मेरे नमस्कार है । ऐसा चिन्तन करती हुई भगवान का नाम-स्मरण कर रही थी ।

सेठ ने उसे तहख़ाने से बाहर निकालकर खाने के लिए कुछ देने को सोचा, परन्तु सेठानी सब जगहों पर तालें मारकर गयी थी, इसलिए क्या देते ? अन्त में नौकर ने घोड़े के लिए उड़द के दलहन उबालकर राँधकर रखे थे, उसे एक छाब में निकालकर दिये, परन्तु हाथ में बेड़ियाँ थी, इसलिए कैसे खाती ? अतः बेड़ियाँ तोड़ने के लिए सेठ दौड़ते हुए लुहार को बुलाने गये ।

❑ सती चन्दनबाला की उत्कृष्ट भावना :

इस तरह चन्दनबाला दहलीज पर बैठी हुई सोच रही थी कि – 'अहो ! तीन दिन की उपवासी हूँ । मुझे पिताजी ने खाने के लिए दलहन दिये हैं । अतः इस समय यदि कोई सन्त पधारे तो मैं वहोराकर (देकर) फिर पारणा करूँ ।' इतने दुःख में भी कैसी उत्कृष्ट भावना है ? भगवान महावीरस्वामी अभिग्रह धारण कर पाँच महीने और पच्चीस दिन से भ्रमण कर रहे थे, फिर भी अभिग्रह पूर्ण होता नहीं है । गाँव के राजा, रानी और नगरजन सभी चिन्ता में डूब गये हैं कि प्रभु का पारणा कब होगा ? भक्तजनों की आँखों से आंसू आ गये । इस तरफ चन्दना को भगवान को उत्कृष्ट भाव से वहोरावकर फिर पारणा करने की भावना जगी है, उसकी भावना के बल से भगवान घर-घर भ्रमण करते हुए सेठ के घर पधारे । सेठ बेड़ियाँ तोड़ने हेतु लुहार को बुलाने गये हैं । चन्दनबाला प्रभु का जाप कर रही थी – तभी 'भक्ति के वश भगवान' न्याय के आधार पर स्वयं प्रभु पधारे । स्वयं भगवान को अपने यहाँ पधारते देख उसके आनन्द की कोई सीमा न रही और पागल-सी हो गयी । "पधारिए...पधारिए...मेरे भगवान ! मेरे हृदय के सच्चे भाव से आपका स्वागत करती हूँ ।"

आइए आइए देव मेरे सूने-सूने द्वार, सूना मेरा आँगन ।
रोती-रोती चन्दनबाला बिनती करे, आज...सूने मेरे आँगन ।।

"हे प्रभु ! मेरे आँगन में आज आप पधारे हैं । मेरे घर पर आज मानो सोने का सूर्य उदयमान हुआ हो ! कल्पतरु मिला ।" इस प्रकार आनन्द से मारे खुशी के प्रभु का स्वागत करने के लिए हृदय के उद्गार निकाल रही है । इस तरफ भगवन्त ने देखा तो अभिग्रह पूर्ण होने में एक बोल (वाक्य) की कमी है । अतः वे उस तरफ से वापस लौट गये । यह देखकर चन्दनबाला को बहुत दुःख हुआ और आँखों से गंगा-जमना की धारे बहने लगी । वह रोती हुई क्या कहती है ?

❑ "हे प्रभु ! क्या कमी आयी आपको ?"

"हे प्रभु ! आपको क्या कमी आयी जो मेरे आँगन से आकर लौट गये ? चन्दनबाला के राज-सुख चले गये, माता-पिता से विहीन अनाथ बनीं, बाजार में बिकी, मूला माता ने सिर पर मुंडन करवाया, हाथ-पैर में बेड़ियाँ डाली, तीन दिनों तक भूखा-प्यासा रख तहख़ाने में डाल रखा । इतने सारे दुःख पड़ने पर भी उन सभी दुःखों को प्रभु-स्मरण में सहायक मानकर आनन्द से स्वीकार (सह) लिये थे । इतने सारे दुःखों की झड़ी बरसने पर भी आँखों से आंसू नहीं आने दिये थे, परन्तु आज भगवान स्वयं जब आँगन तक आकर लौट गये तो उससे रहा नहीं गया । वह कह उठी - "मेरे नाथ ! आपको क्या कमी आयी ? मेरे पास मेवे-मिठाई के थाल भरे नहीं हैं । ये रुखे-सूखे दलहन हैं, मगर मेरी भक्ति सूखी नहीं है । हे मेरे प्यारे भगवान ! क्या कमी आयी जो मेरे आँगन तक आकर भी लौट गये ?" इस प्रकार चीख-चीखकर चन्दना को रोती देख प्रभु ने उसकी पुकार सुन ली । मुड़कर देखा तो चन्दनबाला की आँखों से चौधार आंसू बहे जा रहे थे । यह देखकर प्रभु उसके पास गये ।

भगवान में अतिशय का बल होता है और उन्हें करपात्र होता है । अतः भगवान ने करपात्र धरा (रखा) । सती चन्दना ने प्रभु को उत्कृष्ट भाव से उड़द के दलहन वहोराये । वहीं भगवान का अभिग्रह पूर्ण हुआ कि तुरन्त आकाश में देवदुंदुभी बजी - "अहोदानं, अहोदानं" ऐसी देवों ने घोषणा की और साढ़े बारह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं की वृष्टि हुई । जब चन्दना भगवान को वहोराने के लिए तैयार हुई तब धड़ाम से उसके हाथ-पैर की बेड़ियाँ टूट गयी । सिर पर सुन्दर केशकलाप हो गये । प्रत्येक बाल पर मोती भरे थे । हाथ में बेड़ियाँ की जगह पर रत्न से मंडित कंकण बन गये । पैरों में झाँझर बन गये और चन्दनबाला चन्द्र की तरह चमकने लगी ।

देवदुंदुभी का दिव्यनाद और देवों की घोषणा सारी नगरी में फैल गयी और लोग देखने के लिए जमा (इकट्ठे) हुए । सेठ लुहार को बुलाकर आये तो यहाँ यह

चमत्कार देखा । अपनी पवित्र पुत्री के हाथों भगवान का ऐसा उग्र अभिग्रह पूर्ण हुआ, इसलिए उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा । मूला सेठानी को पता चला कि मेरे घर साढ़े बारह करोड़ स्वर्णमुद्राओं की वर्षा हुई है, इसलिए दौड़ती हुई वह स्वर्णमुद्राएँ इकट्ठी करने लगी, तब आकाश से यह देववाणी हुई कि - 'इन स्वर्ण-मुद्राओं की तुम अधिकारिणी नहीं हो । सती चन्दनबाला की दीक्षा में इस धन का सदुपयोग होगा ।" चन्दनबाला को स्वयं को धन की आवश्यकता न थी । उसने सारा धन सेठ को दे दिया । अन्त में भगवान ने तीर्थ की स्थापना की तब चन्दनबाला ने महावीर-प्रभु के पास दीक्षा ली और महावीर-प्रभु के शिष्या मंडल में सब से प्रमुख (वडेरा) साध्वी चन्दनबाला बने ।

बन्धुओं ! आपने सुना न कि चन्दनबाला ने न जाने कितने कष्ट सहे, परन्तु आँखों से आंसू न आने दिये । और सुख-दुःख में समता रख दीक्षा लेकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि उग्र (कठोर) साधना कर आत्मकल्याण कर गये । देखा न कि शीलवान ब्रह्मचारी आत्मा की सुगन्ध कैसी महकती है ! शील की सुगन्ध अलौकिक है । कई बार पतन के मार्ग पर गयी आत्मा भी अपने जीवन को पवित्र बनाकर शील की सुगन्ध फैलाते हैं और शील के लिए कितनी कुरबानी करते (देते) हैं - यह एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ ।

शील के लिए कुरबानी

औरंगझेब बादशाह के समय की बात है । एक नगर में एक रामदुलारी नामक वेश्या रहती थी । उसकी अक्का नामक एक नायिका (सहेली) बहुत चालाक थी । एक बार रामदुलारी वेश्या को एक बेटा हुआ । माता बनी वेश्या बच्चे को लाड़-प्यार में ऐसी मस्त हो गयी कि अब वह अपने धन्धे (व्यवसाय) में असावधान रहने लगी । पराये पुरुषों के सामने प्रेमभरी दृष्टि से देखती तक नहीं है । हावभाव भी नहीं करती है । बस, उसका ध्यान, उसका चित्त अपने एक मात्र पुत्र में ही मस्त रहता था । यह देखकर उसकी नायिका अक्का सोचने लगी कि 'यह रामदुलारी तो उसके बच्चे में ही मुग्ध बन गयी है, मेरा धन्धा ही नहीं करती है । मेरी आमदानी बन्द हो गयी है ।' एक बार रामदुलारी किसी कार्यवश बाहर गयी थी उस समय उसकी नायिका ने छ महीने के फूल-से बच्चे को महल के तीसरे मँजले से फैंक दिया । क्या बच्चा ज़िन्दा रह सकता था ? बच्चा तुरन्त मर गया । रामदुलारी ने आकर अपने बेटे की यह दशा देखी तो उसके हृदय में ज़ोरदार धक्का लगा । अहो...इस संसार में कौन किसका है ? इस दुःखद घटना से रामदुलारी पागल-सी हो गयी । उसने धन्धा बिलकुल छोड़ दिया । रात-दिन बस अपने बच्चे का ही रटण करने लगी । उसकी ज़िन्दगी विष समान हो गयी ।

उस नगर के बाहर एक ब्रह्मचारी सन्त रहते थे । रामदुलारी की सखी उसे एक बार उस सन्त के पास ले गयी । ब्रह्मचारी सन्त के मुख पर ब्रह्मचर्य के तेज और मस्ती देखकर वेश्या तो स्तब्ध बन गयी । सन्त के दर्शन कर उसके सामने बैठ गयी । अतः सन्त ने उसे धर्मोपदेश दिया । यह सुनकर रामदुलारी को हृदय में लगा कि यह संसार असार है । जीवन का सच्चा आनन्द ऐसे महान-त्यागी सन्तों के पास से मिलता है । उसने सन्त से पूछा - "महात्माजी ! जीवन में ऐसा आनन्द और मस्ती कहाँ से मिलती है ?" सन्त ने कहा - "भगवान की भक्ति से ।" उसे लगा कि फिर क्यों न मैं भी आज से नित्य भगवान की भक्ति करूँ ! बस, उसी दिन से रामदुलारी भगवान की मस्त में मस्तानी बन गयी । तीन-चार घण्टे तो वह भगवान की भक्ति में मस्त बनकर मन्दिर में रहती थी ।

भगवान में मस्त बनी रामदुलारी :

जैसे मीरा संसार का मोह छोड़कर श्रीकृष्ण की भक्ति में मस्त रहती थी । आनन्द-विभोर बनकर पैरों में घुंघरू बाँधकर हाथ में करताल लेकर नाचती-कूदती थी, तब उसे संसार का कोई होश नहीं रहता था । उसी प्रकार यह रामदुलारी भी वेश्या मिटकर भगवान की सच्ची दासी बन गयी । नगरजन भी उसे 'भगतिन' कहकर बुलाने लगे । ऐसी रामदुलारी प्रभुमय बनकर प्रभु से लीन रहने लगी । एक बार बादशाह औरंगझेब बड़ी सेना लेकर निकले । वह हिन्दू धर्म का नाश करना चाहता था । अतः जहाँ हिन्दूओं का मन्दिर देखता महादेव, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि किसी भी हिन्दू धर्म के भगवान की मूर्ति देखता तो उसे तोड़कर टुकड़े कर फैंक देता । एक दिन प्रातः काल रामदुलारी महादेवजी के मन्दिर में मस्त बनकर नाच रही थी । उस समय औरंगझेब विराट सेना के साथ महादेव के मन्दिर में घुसा । मन्दिर को तोड़ दिया । शिवलिंग के टुकडे कर डाले और रामदुलारी के सौन्दर्य में मुग्ध हो गया ।

ब्रह्मचारी की खुमारी :

उसे उठाकर औरंगझेब दिल्ली के दरबार में ले गया और कहा कि - "दुलारी ! मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मोहित हुआ हूँ । मैं तुम्हारे प्यार का प्यासा हूँ । मुझे तेरा प्यार चाहिए ।" दुलारी ने कहा - "बादशाह ! अगर तुझे मेरा शरीर चाहिए तो इसमें से आत्मा (जीव) चली जायेगी तब मृत-शरीर मिलेगा परन्तु मेरे जिन्दा रहते तो तुझे यह प्यार (शरीर) नहीं मिलेगा ।" बहुत समझाने पर भी जब वह न मानी तो बादशाह ने उसे चमकती तलवार दिखाकर मार डालने की धमकी दी, तब दुलारी ने कहा - "बादशाह ! मर जाऊँगी अवश्य, परन्तु जबतक इस देह में प्राण
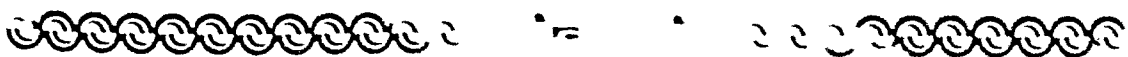
है तबतक तो मैं अपना शीयल (सतीत्व) खण्डित नहीं करूँगी । मेरे जीते जी तो तुम इस देह को छू पाओगे नहीं ।'' व्यवसाय से तो वेश्या है, परन्तु सत्य समझने के बाद उसको चारित्र की कितनी खुमारी है ? वह सोचती नहीं है कि इस बादशाह के आगे मेरी अकेली की क्या बिसात ? वासना के कीड़े बने बादशाह ने उसे कहा - ''दुलारी ! तुम कहो तो मेरी अपनी सारी बेगमों में तुझे प्रमुख बनाऊँ । तुम कहो तो तुम्हारी चरणरज मस्तक पर चढ़ाऊँ । तुम कहो तो तुम्हारा दास बनकर रहूँ, परन्तु अब तू मेरी बात मान जा ।''

❑ शील की रक्षा हेतु खोजा उपाय :

वासना भूखे बादशाह पर फिटकार बरसाती हुई दूलारी ने कहा - ''मैं आपसे प्यार करने के लिए तैयार हूँ, परन्तु एक शर्त पर ।'' बादशाह ने कहा - ''क्या ? जल्दी से कहो ।'' तब दुलारी ने कहा - ''जिस जगह पर महादेवजी का मन्दिर था उसी जगह पर मन्दिर का नवनिर्माण करवा दीजिए ।'' औरंगझेब हिन्दूओं का पक्का दुश्मन था । वह कह उठा - ''दुश्मनों के मन्दिर का नवनिर्माण ? यह मुझसे कभी नहीं हो सकता है । दुलारी ! तुम कुछ और माँग ले ।'' तब दुलारी ने भी सत्तावाही सूर से बादशाह से कह दिया कि - ''तो फिर ऐसे शक्तिहीन नामर्दों को हृदय का प्यार देने की बात मुझसे नहीं होगी । बादशाह ! इतना आप भी समझ लीजिए ।'' वासना के गुलाम बने बादशाह ने अनिच्छा से लाचार बनकर मन्दिर का नवनिर्माण करवाया । इस समय मुस्लिम प्रजाजनों ने हाहाकार मचाया - ''अहो ! बादशाह मुस्लिम बनकर किसलिए हिन्दूओं का मन्दिर बँधवाते हैं ?'' प्रजा ने बादशाह को बहुत समझाया, परन्तु राजा के सामने प्रजा की एक भी न चली । मन्दिर तैयार हो जाने बाद बादशाह ने अपनी मलिन इच्छा को पूर्ण करने की बिनती की, तब रामदुलारी ने बादशाह से कहा - ''अब मुझे अन्तिम बार मेरे भगवान के सामने मन की सच्ची लगन से नृत्य करने दीजिए, फिर यह देह आपको सौंप दुँगी । फिर यह देह आपकी और हृदय का प्यार भी आपका ।'' बादशाह ने यह बात स्वीकार ली ।

❑ चारित्र के लिए प्राण त्यागती दुलारी :

उस दिन पूर्णिमा की रात थी । सोलह सिंगार सजकर दुलारी ने रात के दस बजे मन्दिर में जाकर नृत्य शुरू किया । सामने बादशाह भी गद्दी-तकिया पर बैठ गये । रात बीतती गयी उसी प्रकार दुलारी की भक्ति भी जमती गयी । इस प्रकार प्रातः चार बज गये, दुलारी नृत्य कर थक गयी थी, इसलिए नीचे बैठ गयी और महादेवजी के चरणों में सिर झुकाया । साष्टांग दंड़वत् का अभिनय शुरू किया । ऊँगली पर पहनी विष भरी हीरे की अंगूठी चूसकर रामदुलारी ने महादेव

को साष्टांग प्रणाम किया । उसी समय उसके प्राण चले गये । कुछ देर तक और नमस्कार करती देख बादशाह को लगा कि यह क्यों हिलती-डुलती नहीं है ? उठकर देखा तो रामदुलारी के देह से प्राणपखेरू उड़ गया था । यह देखकर बादशाह के हृदय में बहुत दुःख हुआ । धिक्कार है मेरी कामवासना को ! मैं उसके पीछे पड़ा तब उसे अपने प्राण त्यागने पड़े न ? उसका हृदय काँप उठा । और 'या खुदा !' कहता हुआ औरंगझेब दिग्मूढ़ बनकर दुलारी के निष्प्राण देह के सामने देखता रह गया, और दुलारी चल बसी ।

बन्धुओं ! इस दृष्टांत से मुझे तो आपको एक ही बात समझानी है कि एक बार पतीत बनी । वेश्या भी चौंट लगने पर कैसी पवित्र बन गयी ? शीयल (सतीत्व) के लिए काया कुरबान की, मगर सतीत्व न छोड़ा, शील-धर्म की सौरभ फैलाकर इतिहास के पन्नों पर उसका नाम अमर बना गयी, फूल की सुगन्ध तो पल-दो पल ही टिकती है, मगर चारित्र की सुगन्ध तो युग-युगों तक महकती रहती है । अतः अन्य कुछ न कर सको तो ब्रह्मचर्य का व्रत तो कीजिए । *'तवेसु वा उत्तम बंभचेरं'* । सर्व तपों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है । ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तीर्थ है । ब्रह्मचर्य का एक गुण और अनेक गुणों को खिंच लाता है । ऐसा महान व्रत वीरल आत्माएँ धारण कर सकती है । अतः ऐसे पवित्र दिनों में मासखमण तप न कर सकें तो ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार (स्वीकार) कीजिए । तप करने में शारीरिक शक्ति चाहिए । दान करने में पैसे चाहिए, परन्तु सतीत्व (शीयल) पालन में पैसा या शक्ति की आवश्यकता पड़ती नहीं है । ब्रह्मचर्य पालन में मानसिक शक्ति की आवश्यकता है । 'प्रश्न व्याकरण सूत्र' में भगवन्त ने ब्रह्मचर्य व्रत को कैसी सुन्दर उपमाएँ दी है ?

"तं बंभं भगवन्ते गहगण णकखत्त तारागणं जहा उडुवइ, मणिमुत्तं सिलप्पवाल रत्तरयणा गराणं य जहा समुद्दो वेरुलिओ चेव जहा मणिणं जहा मउडो चेव भूसणाणं वत्थाणं चे व सोम जुयलं, अरविन्द चेव पुप्फ जेदं गोसीसं चेव चंदणाणं हिमवं चेव ओसहीणं, सीतोदा चेव निन्नगाणं, उदही सुजहा सयंभूरमणो, एरावणं, इव कुंजराणं कप्पाणं चेव बंभलोए, दाणाणां चेव अभयदाणं तित्थयरे चेवं जहा मुणीणं वणसु जहा नन्दणवणं पवरं ।"

ब्रह्मचर्य भगवान है । वह ग्रह-नक्षत्र और तारों में चन्द्र समान है । जैसे समुद्र चन्द्रकांतमणि, मोती, प्रवाल, पद्मराग आदि उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से दूसरे अनेक गुण उत्पन्न होते है । अर्थात् ब्रह्मचर्य का व्रत समुद्र के समान है । जैसे सभी मणियों में वैडूर्यमणि, आभूषणों में मुकुट, वस्त्रों में

युगल वस्त्र, पुष्पों में अरविन्द कमल का पुष्प, सर्व चन्दनों में गोशीर्षचन्दन औषधियुक्त, पहाड़ों में मेरु पर्वत श्रेष्ठ है । हाथियों में ऐरावत हाथी, देवलोक में पाँचवाँ ब्रह्मलोक, दान में अभयदान, मुनियों में तीर्थंकर भगवन्त और सर्व वनों में नन्दनवन जैसे श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत श्रेष्ठ है ।

संक्षेप में शील और सौन्दर्य के बारे में बहुत कुछ कहा गया है । सौन्दर्य नहीं होगा तो चलेगा, परन्तु चारित्र (शील) के बिना नहीं चलेगा । अतः सौन्दर्य बढ़ाने के लिए शील निर्मल पालिए (बनाइए), तो जीवन की उन्नति होगी । अधिक बातें अवसर आने पर ।

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

पर्युषणपर्व की आराधना ज़िन्दगी का अमूल्य अवसर है । आज पर्युषणपर्व के पाँचवे दिन का सुनहरा दिन उदय हुआ है । जीवन में छाये घोर अन्धकार और कषायों की धनी झाड़ी के बीच भी मोक्षमार्ग की पगडंडी दिखाकर उस पर चढ़ा देने की ताक़त यह तेजस्वी पर्व में है । आकाश के झरोखे से टिमटिमाते तारों की संख्या की कोई सीमा नहीं है । ये टिमटिमाते तारें भी पृथ्वी पर उनका प्रकाश तो फैलाते हैं, फिर भी उनके नाम-ठाम जानने की किसी को जिज्ञासा होती नहीं है, परन्तु उस आकाश के झरोखे से उदित होता तेजस्वी सूर्य है तो एक, परन्तु संसार सारा उसे जानता है । छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध तक कोई ऐसा मनुष्य नहीं होगा कि जो उसका नाम जानता न हो, क्योंकि उसके बिना संसार में सर्वत्र अन्धकार छा जाता है । हज़ार या लाख पावर के बल्व भी सूर्य की एक किरण के प्रकाश के आगे बिलकुल फीके और निस्तेज बन जाते हैं । मात्र एक दिन भी अगर सूर्य न उगे तो संसार कैसा अन्धकारमय बन जाता है ? चारों ओर अन्धाधुन्ध फैल जाती है । इसलिए सूर्य आकाश में अपना एकच्छत्र साम्राज्य जमा सका है । इस प्रकार पर्युषण महापर्व भी पर्वों के टिमटिमाते तारों के बीच एकच्छत्र साम्राज्य और सत्ता भोगनेवाला प्रकाशमय शुभ पर्व है । यह महापर्व हमारे जीवन के अन्धकार दूर करने के लिए प्रति वर्ष हमारे पास आता है और जाता है ।

सूर्य तो ३६० दिन उदित होकर अस्त होता है, फिर भी उसके अस्त होने के साथ उसका प्रकाश भी उसके साथ चला जाता है । एक रात भी उसके प्रकाश का असर पृथ्वी पर दिखता नहीं है । तब यह महापर्व ३६० दिन में मात्र एकबार आता है, फिर भी उसकी प्रेरणा स्वीकारनेवालों को उसका प्रकाश ३६० दिन मिलता रहता है । अहिंसा और मैत्री इस पर्व की एक महान भेट है । *'आत्मवत् सर्व भूतेषु'* का मुद्रालेख जीवन की दीवार पर नक्काशी कर दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुःख में दुःखी होकर उसके दुःख दूर करने के प्रयास करनें का इस महापर्व का ऐलान है ।

यह महावीर-प्रभु का जन्म पढ़ने का मंगलकारी दिन है । आत्म-स्वभाव की स्मृति कराने हेतु ज्ञानियों ने हमारे लिए आठ दिनों का कार्यक्रम बनाया है । ये आठ-आठ दिनों तक हमें अपने स्वभाव की याद कराते हैं । हमारी आत्मा स्वरूप में निष्कषाय है । उसमें क्षमा आदि अनन्त गुण हैं, परन्तु वे सभी हमारी उलटी प्रकृति के कारण दब गये हैं । प्रभु ने समझाया है कि - "हे आत्मा ! क्रोधादि भाव तेरे अपने नहीं हैं, परन्तु तेरे शत्रु हैं, अतः उससे वापस लौटकर अपने क्षमादि भावों की ओर दृष्टि कीजिए ।" आत्मा के गुणों को समझकर उन क्षमादि गुणों को अपना मित्र बना । साथ में यह भी सोच कि हे जीव ! तेरा अपना स्वभाव अणाहारी है । सिद्ध की अपेक्षा को आहार के बिना अनन्तकाल तक जीने की ताक़त धराने का जीव का स्वभाव है । आहार की आवश्यकता के कारण जीव अनेक प्रकार के पापकर्मों का आचरण कर रहा है । उसमें भी जो आहार (भोजन) में सुख-बुद्धि मानता है, उसने तो आत्मा के गुणों की तबाही कर दी है । आहार-संज्ञा के प्रभाव से जीव अनेक प्रकार की मुसीबतें भुगत रहा है । आहार के इच्छा रूप रोग़ के विकार को मारने के लिए ज्ञानी कहते हैं कि-"इन दिनों में हो सके उतना तप कर हमारी आत्मा के अणाहारी स्वभाव को याद कीजिए ।" आहार-संज्ञा को तोड़ने के लिए तप है । तप करते समय सोचिए कि मैं अपने भूल स्वभाव की ओर जा रहा हूँ तो तप कठिन नहीं लगेगा । परन्तु आत्मा समाधिभाव में झुलेगी (मस्त रहेगी) और आत्मा के अणाहारी स्वभाव को पैदा करने में सहयोगी अद्‌भुत संस्कार मिलेंगे । यह पवित्र पर्युषणपर्व हमें यह समझाता है कि - तुम आत्मा हो। अनन्त सुख, शक्ति और ज्ञान का मालिक है । जड़ में तुम ने सुख माना है, इसलिए तुम उसे भूल गये हो । आज हमें जिसका जन्म दिन पढ़ना है वे हमारे भगवान महावीर देव भी एक समय हमारे जैसे ही थे, परन्तु उन्होंने उस आत्म स्वरूप को प्रकट करने के लिए घोर परिषह-उपसर्गों की भी परवा न की, मगर सामने से निमंत्रण किया कि आइए; मैं आप सब का सत्कार करने के लिए तैयार हूँ । दुःख देनेवालों को अपने उपकारी माने । कठोर तप और संयम का पालन किया । उसके

परिणाम-स्वरूप आज वे स्वभाव के स्वामी बन गये । जिससे हम उन्हें वर्ष भर में तीन-तीन बार याद करते हैं ।

हमारी आत्मा ने तो अभी तक जड़ता में ही लाभ देख है और उसीका सम्मान किया है । राग-द्वेष और मोह को पैसा (प्रोत्साहित किया) और घातीकर्मों को मज़बूत बनाये । इस पर्व के दिनों में हमारे राग-द्वेष और मोह का बीमार करके, कर्मों की जड़ को मूल (जड़) से ही उखाड़ फैंकने का ज़ोरदार पुरुषार्थ करना है । भगवान ने प्रबल पुरुषार्थ कर कर्मशत्रु को जड़ से उखाड़ फैंक दिये, उसी प्रकार कर्मों को दुश्मन समझकर उसे मूल (जड़) से उखाड़े बिना मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकेंगे, अतः आज से ही निश्चय कीजिए कि अगर मुझे ऐसा उत्तम मनुष्यजन्म मिला है, तो हे कर्मराजा ! अब मैं तुम्हारी जड़ें उखाड़कर तुम्हें चुर-चुर किये बिना रहनेवाला नहीं हूँ । जबतक मैं तुम्हें न हटा लूँ तबतक मेरा तुम्हारे साथ झगड़ा है ।

बन्धुओं ! कर्म हमारी आत्मा के स्वरूप को बिगाड़नेवाला है । अनन्तकाल से कर्मों ने हमारे स्वरूप को बिगाड़ा है । उसके कारण हम संसार में भटक रहे हैं । हमें अब अच्छा या बुरा संसार नहीं चाहिए । एक ही विचार कीजिए कि अब जल्दी से मुझे मोक्ष चाहिए । यह बात आप प्रत्येक के दिमाग में ठीक-ठीक बैठ जाय, तो आप सच्चे आत्मावादी बन जायेंगे । आत्मवादी अर्थात् आत्म-स्वरूप के ज्ञाता जो आत्मा के स्वरूप को जानता है, वह लोगों (लौकिक) के स्वरूप को स्पष्ट समझ सकता है । लौकिक स्वरूप को समझनेवाला कर्म के स्वरूप को बता सकता है ।

हमें तीर्थंकर-प्रभु को अरिहंत-प्रभु भी कहते हैं न ? किसलिए ? अरि अर्थात् रागद्वेष आदि शत्रु और हत अर्थात् हनन करनेवाले । उसका नाम है अरिहंत । ऐसे अरिहंत-प्रभु के उपासक कर्म को शत्रु मानते हैं । कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ हो, परन्तु वे सब शत्रु ही है न ? उन सभी कर्मों को रखने जैसे हैं या भगाने जैसे है ? बुरे को भगाना और अच्छे को रखना हैं - ऐसा ही न ? आपने तो ऐसा निर्णय किया लगता है कि जो कर्म दुःख देनेवाले हैं, उन्हें हमें भगाना हैं और जो कर्म सुख देनेवाले हैं, उन्हें हमें रखना हैं । याद रखिए ! सुख देनेवाले कर्म अच्छे लगते हैं, परन्तु अन्त में तो पाप करवाते हैं । किसी दिन एकान्त में बैठकर आत्मा से कहो कि कर्म तो हमारे शत्रु है । वह संसार तो शुभा-शुभ कर्म का नाटक है । उसमें जो फँसता है वह मरता है । बुरे नाटक में उद्विग्न होता है, वह भी मरता है और अच्छे नाटक में राज़ी (खुश) होता है वह भी मरता है । संसार के सुख-वैभव निर्धन करनेवाले हैं, ऐसा लगता है ? आपके पास वहुत पैसे हैं, उसका आपको आनन्द है या दुःख ? जीव को जितना मान-सम्मान आदि प्राप्त करने का

मन है, उतना धर्म जानने का मन है ? कठिन परिस्थिति में भी आप व्यवहार को नहीं भूलेंगे, परन्तु धर्म के बारे में कोई जोख़िम उठाने की ताक़त नहीं है । ज़रा-सा कष्ट पड़ जाय तो धर्म को छोड़ देते हैं, क्योंकि अभी तक जीव को सच्चा आत्मवाद, मोक्षवाद और कर्मवाद समझाया नहीं है । भगवान महावीरस्वामी हमें आत्मवाद, मोक्षवाद और कर्मवाद ठीक-ठीक समझा गये हैं, उन भगवान का जन्म आज हमें पढ़ना है ।

जबतक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती नहीं, तबतक जीव के जन्मों की गिनती होती नहीं है । अनादिकाल से जीव और कर्म का संयोग है । सोना और मिट्टी जैसे अनादिकाल से साथ-साथ रहते हैं, परन्तु प्रयोग करने से दोनों को अलग किया जा सकता है । उसी प्रकार कर्म का संयोग भी अलग किया जा सकता है । दोनों का सम्बन्ध आज-कल का नहीं है, अनादिकाल का है और संसार भी अनादि है, फिर भी उसका अन्त आ सकता है । क्योंकि आत्मा और कर्म का सम्बन्ध है, परन्तु वह सम्बन्ध तादाम्य्य सम्बन्ध नहीं है । अतः उस संयोग का वियोग हो सकता है । भगवान महावीरस्वामी की आत्मा भी हमारी तरह एक बार भवाटवी में भटकता था, परन्तु सम्यक्त्व पाने के बाद उनके भव (जन्म) की गिनती हुई है ।

भगवान ने सम्यक्त्व पाया, उस भव से लेकर महावीर-प्रभु के रूप में जन्म लिया तबतक के भवों का आज पठन किया जाता है । वे सत्ताइस भव बड़े हैं । चरम तीर्थंकर शासनपति भगवान महावीरस्वामी मोक्ष में गये और आज २५०० से अधिक वर्ष हो गये फिर भी उन्हें याद करते हुए हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं । अभी भगवान महावीरस्वामी का शासन जयवन्तु प्रवर्तता है । हमनें जिनके शासन में जन्म लिया हो, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए न ? मुंबई में महाराष्ट्र सरकार का शासन है, तो आप सभी को महाराष्ट्र सरकार के कायदे-कानून का ठीक-ठीक पालन करना पड़े न ? उसी प्रकार भगवान के शासन में व्यवहार करते साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं ने भी उनके शासन को ठीक ठीक वफादार रहना चाहिए । भगवन्त ने साधु-साध्वियों के लिए पाँच महाव्रत और श्रावक-श्राविकाओं के लिए बारह व्रत रूपी धर्म का उपदेश दिया है । उसका अवश्य पालन करना चाहिए । बायोकोमिक्स की बारह दवाइयाँ हैं । वे दवाइयाँ (१२००) बारहसौ रोगों को नाबूद (नष्ट) करती हैं, परन्तु आपके बारह व्रत रूपी बारह दवाइयाँ तो बारहसौ नहीं, बारह हज़ार नहीं, बारह करोड़ नहीं, परन्तु करोड़ों भव के संचित कर्मरूपी रोगों का नाश करती हैं । ऐसे बारह व्रतों का पालन करनेवाला श्रावक अगर आगे बढ़े तो पंचमहाव्रत अंगीकार कर साधु बनकर जल्दी से कर्मों का क्षय कर मोक्ष में जाता है । ऐसा सुन्दर मार्ग भगवान ने बताया है ।

भगवान महावीर का पूर्वभव

भगवान ने हमें ऐसा सुन्दर आराधना का मार्ग बताया है । उन भगवान को भी भगवान बनने से पहले पूर्वभव में कैसी आराधना कर तीर्थंकरपद की प्राप्ति की, यह हमें जानना चाहिए । भगवान महावीरस्वामी के जीव ने महाविदेहक्षेत्र में सुतार (बढ़ई) जाति में जन्म लिया था । उनका नाम वहाँ नयसार रखा गया था । नयसार में लकड़े पहचानने की शक्ति गज़ब की थी । पास में पैसा भी बहुत था । एक बार राजा ने नयसार को बुलाकर कहा कि - "मुझे एक भव्य महल बनाना है । उसके लिए उच्च प्रकार के मज़बूत लकड़े लाने हैं ।" अतः नयसार अपने अनेक सुतारों को लेकर जंगल में लकड़े लेने के लिए निकला । उस ज़माने में आज की तरह सिमैन्ट और कंकड़ों को बोक्सीन भरकर मकान बनते नहीं थे । मकान में लकड़ें का ही अधिक उपयोग होता था । नयसार सुतार सारे सुतारों के नेता थे, अतः अनेक सुतारों को लेकर जंगल में लकड़े लेने के लिए गये । बड़े समूह में मज़दूरों के पास लकड़ें कटवा रहे हैं । स्वयं को तो कैसे लकड़े लेने इसका ध्यान रखना था । लकड़े बहुत बड़े काटने थे इसलिए सभी ने भोजन के लिए रसोई की सामग्री लेकर गये थे । दोपहर भोजन का समय हुआ, तो नयसार ने भोजन से पहले विचार किया कि - 'मुझे किसी अतिथि का लाभ मिल जाय तो उसे खिलाकर खाऊँ, तो मेरा अन्न पवित्र हो जाय ।' स्वयं अपना पेट भरने मात्र में कोई सार्थकता नहीं है ।

❑ जंगल में पवित्र भावना जगाते नयसार :

बन्धुओं ! यह नयसार जैन कुल में जन्मे न थे, फिर भी भावना कितनी उदार थी ? आपने जैन कुल में जन्म लिया है । भगवान ने आप को बारहवें व्रत में भावना भाने को कहा है, परन्तु इनमें से भोजन करते समय कितने श्रावक भावना भाते (जगाते) होंगे कि संत-सतीजी पधारे तो वहोराने का लाभ लेकर भोजन करूँ ? ये तो सुतार थे । जंगल में लकड़े कटवाने गये थे, परन्तु वहाँ भी उन्हें अतिथि को भोजन कराने की भावना जगी । जब अपने उपादान की जागृति होनेवाली होती है तब निमित्त के संयोग भी आसानी से मिल जाते हैं । देखिए, नयसार का कैसा निमित्त मिला कि अनेक मुनिराज विहार करते हुए जंगल से गुज़र रहे थे । जैनमुनि पाद-विहार कर देश-देश विचरण करते हैं और वीर भगवान का सन्देश घर-धर में पहुँचाते हैं । विहार करते हुए एक साधु शारीरिक अस्वस्थता के कारण पीछे रह गये । जंगल में तो अनेक भुलभुलैयावाले मार्ग होते हैं । अतः ये संत मार्ग भूल गये । बीच में अनेक पहाड़ और टेकरियाँ आयी । चारों ओर मार्ग ढूँढने लगे, परन्तु सच्चा मार्ग मिल नहीं रहा था । गर्मी बहुत थी । ठीक दोपहर

हो गयी है ! संत भूख-प्यास से आकुल-व्याकुल हो गये हैं । सख़्त गर्मी में कण्ठ (गला) सूखने लगा । आँखों में अन्धेरे छाने लगे । अब चलने की भी शक्ति न रही थी । अतः मुनि ने सोचा कि - 'सचमुच, मैं मार्ग भूला हूँ । कोई मार्ग दिखानेवाला मनुष्य दिखता नहीं है । पास में कोई गाँव भी दिखता नहीं है । अतः अब सागारी संथारा करना ही मेरे लिए श्रेष्ठ है ।'

बन्धुओं ! महान संत मृत्यु से ड़रते नहीं हैं । साधु जीये तो भी लाभ और कालधर्म पाये तब भी लाभ है । जीये तो संयम की वृद्धि है और मरे तो मोक्ष या देवलोक में जाता है । यह संत संथारा करने की भावना से अच्छी जगह देखकर ज़मीन पूजकर बैठने की तैयारी करते हैं । इस तरफ नयसार कोई अतिथि मिल जाय तो दान देकर भोजन करूँ इस भावना से अतिथि की खोज़ करने निकले । जंगल में चारों ओर दृष्टि करने लगे । खोजते-खोजते नयसार एक टेकरी पर चढ़े, तो नीचे एक मुनि को देखा । मुनि को देखकर नयसार को बहुत खुशी हुई और दौड़ते हुए मुनि के पास आये । मुनि संथारा करने के लिए ***इरिया-वही पडिक्कमे*** हैं, तभी नयसार पहुँच गये और प्रणाम कर कहा -"अहो, हे कृपालु ! आप ऐसे भयानक प्रदेश में कहाँ से आ गये ?"

मुनि ने कहा - "महानुभाव ! विशाल साधु समुदाय के साथ विहार कर जाते समय शारीरिक अस्वस्थता के कारण पीछे रह जाने से मैं मार्ग भूलने से चारों ओर बहुत भटका, परन्तु मुझे जिस गाँव में जाना है वहाँ जाने का मार्ग न मिला और फिरता हुआ इस अटवी (जंगल) में आ पहुँचा हूँ । भूख-प्यास से आकुल-व्याकुल हो गया हूँ, परन्तु मुझे उसका दुःख नहीं है, क्योंकि जैनमुनि ऐसे परिषह हँसते-हँसते सहते हैं, परन्तु मेरा साधु समुदाय मेरी चिन्ता करता होगा इसकी मुझे चिन्ता होती है, अतः भाई ! तुम मेरा मार्गदर्शन करो ।" जिसकी रग-रग में संत की सेवा करने का आनन्द है, ऐसा नयसार कहता है - "प्रभु ! आप का मुख देखकर ऐसा लगता है कि अब आप में चलने की शक्ति नहीं रही । मुख मुरझा गया है । भूख और प्यास आपको पीड़ित कर रही है । तो हमारा तम्बू पास ही है । हम बहुत से लोग जंगल में लकड़े काटने आये हैं । हमारे लिए भोजन बनाया है । काम कर थक जाने के कारण स्नान करने के लिए गर्म पानी भी तैयार है । आप के लिए तो सब निर्दोष (पवित्र) हैं, तो फिर आप पधारिए और मुझे लाभ देकर पावन कीलिए ।

❑ संत का मार्गदर्शन करते हुए सच्चा मार्गदर्शन बननेवाले नयसार :

मुनि नयसार की ऐसी उच्च भावना देखकर उनके साथ गये और निर्दोष आहार-पानी ग्रहण किया । कुछ समय विश्राम कर थकान दूर की और फिर मुनि ने कहा - "भाई ! अब मैं जाता हूँ ।" नयसार ने कहा - "मैं आपको मार्ग

दिखाने आता हूँ।" देखिए, नय सार की भावना कितनी पवित्र हैं ? अपने साथ अनेक मनुष्य होने पर भी स्वयं मार्ग दिखाने गये। वे नजदीक के मार्ग से मुनि को ले गये, क्योंकि वे उस भूमि के जानकर (ज्ञाता) थे। जहाँ उनको जाना था वह गाँव आ गया, अतः कहा - "भाई ! अब मैं जाऊँगा।" परन्तु नयसार भला मुनि को बीच मार्ग में छोड़ दे ऐसे न थे। उन्होंने कहा - "मैं आपको अपने परिवार से मिलाकर ही जाऊँगा।" नयसार ने जहाँ साधुओं का परिवार था वहाँ मुनि को पहुँचा दिया। तब संत ने कहा - "भाई ! मैं इस द्रव्य-अटवी में भूला पड़ा हूँ, उसी प्रकार तुम संसाररूपी भव-अटवी में भूला पड़ा है। तुमने मेरा मार्गदर्शन किया है तो मैं भी तुम्हें मार्ग दिखाता हूँ।" ऐसा कहकर संत ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। नयसार उसे ग्रहण करने लगें। सादी और सरल भाषा में जीव-अजीव आदि नव (नौ) रत्नों के गूढ़ रहस्य समझा दिये। नयसार ने ऐसा उपदेश कभी सुना न था। पहले कभी न सुनी अपूर्व बात सुनने पर उनके जीवन में सम्यक्त्व का सूर्य उदयमान हुआ। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर ६९ क्रोडाक्रोड सागरोपम के अनेक कर्मों का क्षय हो गया। मिथ्यात्व की गांठ छूट गयी। नयसार को स्व-संवेदन से तथा जड़-चैतन्य का स्वरूप समझने पर आत्मा में बहुत खुशी हुई। यह खुशी नयसार में जीवन पर्यन्त टिकी रही।

❑ सच्चा मार्ग पाने पर आत्मा में हुआ प्रकाश :

सुपात्रदान और धर्मोपदेश का श्रवण - ये दोनों वस्तु नयसार के लिए अपूर्व थी। जैन साधु को निर्दोष गौचरी वहोराने में महान लाभ है। वे आपके पास से अल्प (थोड़ा) लेते हैं और महान लाभ देते हैं। शालिभद्र के जीव ने भरवाड़ (अहीर) के जन्म में माँग-ताँग कर बनायी खीर उत्कृष्ट भाव से संत को वहोरायी थी। उसमें कितना महान लाभ पाया ? उसके फल-स्वरूप ढ़ेर सारी ऋद्धि प्राप्त की। मम्मण सेठ ने भी उत्कृष्ट भाव से संत के पात्र में लड्डू वहोराये, परन्तु बाद में अफसोस हुआ, इसलिए साधु के पात्र में से लड्डू पास लेने गया तब संत ने लड्डू परठवी दिये। उत्कृष्ट भाव से वहोराये इसके फल-स्वरूप ढ़ेर ऋद्धि को प्राप्त हुए, परन्तु उसे भोग सके नहीं। आप सभी चोपड़ा-पूजन करते हो, तब 'शालिभद्र की ऋद्धि मिलना' ऐसा लिखते हो, परन्तु 'मम्मण सेठ की ऋद्धि मिलना' ऐसा नहीं लिखते। क्योंकि शालिभद्र को ऋद्धि मिली, परन्तु उसका त्यागकर दीक्षा ली और एकावतारी बने और मम्मण सेठ मरकर नरक में गये।

नयसार की आत्मा में बहिरात्म दशा टली और अंतरात्म दशा आयी। सम्यक्त्व का सूर्य उदयमान हुआ। उसके तेज़ में जीवन को समझते-समझते नयसार ने एक दिन महामंत्र श्री नवकार मंत्र का स्मरण कर देह का त्याग किया और देवलोक में गये। नयसार के जीवन में आयी हुई प्रकाश की एक पलने उसके जीवन को

कोई नया मोड़ दिया और सौधर्म देवलोक में देव बने । देवलोक भी कहाँ किसी को सदा के लिए रखता है ? एक दिन देवलोक का दीर्घआयुष्यकाल पूर्ण हुआ और वे देव विशाल वैभवों से छलकते ऋषभदेव भगवान के पुत्र भरत चक्रवर्ती के घर-आँगन में उनके पुत्र के रूप में जन्म लिया । उसका नाम मरीचि रखा । पिता की रिद्धि-सिद्धि चक्रवर्ती की थी, फिर भी एक दिन जागने की एक पल को मरीचि ने स्वीकार ली और ऋषभदेव भगवान के पास दीक्षा ली ।

भगवान के पीछे-पीछे मरीचिमुनि चारित्र (सती) धर्म की एक के बाद एक जगह को पावन करते करते आगे बढ़ने लगे । परन्तु एक ऐसी प्रमाद की पल आ गयी कि मुनि मोह में फँस गये । गर्मी के दिन थे । बिना जूते पहने चलते समय काँटे-कंकड़-लगे, यह सहा न गया । भगवान का मुनि धर्म तो छत्र की छाया में मानता नहीं है । पैर में जूते पहनने की प्रभु की आज्ञा न थी । संयमीजीवन में जीवन पर्यन्त स्नान हो सकता था और लोच करना - यह सब उसे कठिन लगा । भगवान के मुनिधर्म को तो स्नान के साथ स्नेह न था, विलेपन की तो फिर बात ही क्या ! मरीचिमुनि इस परिषह के सामने टक्कर न ले सके । चारित्र को फँसानेवाले कर्म की फ़ौज प्रबल हुई और मुनि ने नया भेष सजा । हृदय में रही दाक्षिण्यता घर की ओर हठ के कदम भरने को मना कर रही थी, अतः मरीचि-मुनि ने त्रिदंडी सन्यासी को भेष धारण किया । सिर पर शिखा (चोटी) रखी । हाथ में डंडा ! थोड़ा परिग्रह ! भगवे वस्त्र ! छाया के लिए छत्र (छाता) ! चन्दन के सुगन्धी लेप ! अल्प जल से स्नान और पैरों में जूते ! प्रमाद के पल ने मरीचि-मुनि को परेशान किया और उन्होंने इस प्रकार का नया भेष धारण किया, परन्तु उनकी श्रद्धा मजबूत थी इसलिए वे कहते कि - "भगवान का मार्ग सच्चा है, परन्तु मैं ऐसा कठिन सह नहीं सकता हूँ, अतः उस त्रिदंडी का भेष रखकर भगवान के साथ फिरता और भगवान जहाँ बिराजते वहाँ वह उनके समोवसरण के बाहर बैठता और अपने पास जो कोई आता उसे धर्म का उपदेश देकर वैराग्य दिलवाकर भगवान के पास भेजते ।

भगवान से अलग हुए मरीचि विचार से ऋषभदेव के अनुयायी रहे थे । उनका ऐसा नया भेष (शृंगार) देखकर लोग उन्हें धर्म (के बारे में) पूछते । सच्चा संयम तो वे भगवान ऋषभदेव के मुनि संघ में बताते थे । अपनी त्रुटि (भूल) का स्वीकार करते, उनकी आँख में एक छुपा आंसू भी निकल पड़ता । अनेक लोगों को सद्धर्म समझाकर प्रभु के श्रमण संघ में शामिल करते । विहार वे भगवान के साथ करते । कुछ वर्षों तक इस प्रकार चला । आचार से अलग हुए मुनि अभी तक विचार से अलग (मुक्त) नहीं हुए थे । अनेक आत्माओं को उन्होंने प्रभु का संयम-मार्ग दिखाया ।

❑ पुत्र का भविष्य सुनकर भरत चक्रवर्ती को हुआ आनन्द :

सालों बीत गये । विनीता नगरी का उद्यान प्रभु के आगमन से प्रसन्न बन गया । महाराजा भरत प्रभु की धर्म-देशना सुनने आये । तीर्थंकर-प्रभु की वाणी मानो वर्षा का बेशुमार बरसना ! सुनते ही रहे । उठने का मानो मन ही न हो । भगवान की देशना पूर्ण होने के बाद भगवान को प्रणामकर भरत महाराजा ने पूछा - "हे मेरे त्रिलोकीनाथ ! इस समवसरण में कोई ऐसा जीव है कि जिसके भाल में तीर्थंकरत्व के लेख लिखे गये हो !" भगवान ने मरीचि की ओर ऊँगली दिखाते हुए कहा - "हे भरत ! इस समवसरण के बाहर तुम्हारा पुत्र मरीचिकुमार अभी जो त्रिदंडी के भेष में है, वह इस चौबीसवें चरम तीर्थंकर चौबीस वें महावीर-स्वामी के नाम से पहचाना जायेगा ।" अपने पुत्र का ऐसा महान भविष्य ! भरत महाराजा को बहुत आनन्द हुआ । प्रभु ने पुनः कहा - "भरत ! मरीचि महावीर होंगे इससे पूर्व अनेक महान ऋद्धिओं का वे स्वामीत्व प्राप्त करेंगे । पोतनपुर में त्रिपृष्ठ नामक पहले वासुदेव होंगे और महाविदेहक्षेत्र में मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होनेवाले लेख भी मरीचि के ललाट (भाल) पर लिखे हैं ।" यह बात सुनकर भरत महाराजा का हृदय मरीचि में छुपे भविष्य के चरम तीर्थंकर महावीर को वन्दन करने के लिए तरस रहा था । वे मरीचि के पास आकर वन्दन करते हुए बोले - "मरीचि ! आप सन्यासी हो । भगवा आपका भेष है । भरत खण्ड के प्रथम चक्रवर्ती पिता की आप सन्यासी सन्तान हो, इसलिए नहीं, परन्तु आप इस चौबीसवें तीर्थंकर चरम तीर्थंकर चौबीस वें महावीरस्वामी बननेवाले हों, इसलिए में आपको वन्दन करता हूँ । त्रिपृष्ठ वासुदेव और चक्रवर्तीपन आप के चरणों में लोटने (समर्पित होने) वाला है, इसलिए वन्दन नहीं करता हूँ, परन्तु मेरी वंदना तो आप में छुपे महावीर को ही है !"

भरत महाराजा तो इतना कहकर बिदा हो गये । मरीचि भविष्य ऋद्धि के कल्पना-दर्शन को भी पचा न सके । उनके हृदय में मान भरे बोल (वाक्य) गूँजने लगे । 'मैं वासुदेव ! मैं चक्रवर्ती ! मैं तीर्थंकर !' मरीचि खड़ा हो गया । आनन्द की चुटकियाँ और हर्ष (खुशी) को व्यक्त करता हुआ मान-नृत्य (घमण्ड) करते हुए वह बोला - *"आद्योऽहं वासुदेवानाम् !"* वासुदेवों में मैं पहला ! *"पिता मे चक्रवर्तीनाम्"* - चक्रवर्तीयों में मेरे पिता पहले ! *"पितामहो जिनेन्द्राणां"* - तीर्थंकरों में मेरे दादा ऋषभदेव पहले ! *"ममाहो उत्तमं कुलम्"* - अहो मेरा कुल कैसा उत्तम ! फिर मैं चक्रवर्ती होऊँगा और तीर्थंकर भी । इस नृत्य में मरीचि होश खो वैठा, कुल का मद करने से उन्होंने नीचगोत्र नाम-कर्म बाँधा । मानकषाय आ गयी । वाहुवलीजी की कितनी अघोर

साधना ? अरे, उनके शरीर पर बेल लपेटा गयी । पक्षियों ने घोंसले तोड़ डाले, कितनी ज़ोरदार साधना । फिर भी मान का एक अंकुश मैं भगवान के पास जाऊँ तो मेरे भाइयों को मुझे वन्दना करना पड़े न ! इतने मानकषाय के कारण केवलज्ञान रूक गया । जैसे ही मान गया कि तुरन्त केवलज्ञान की ज्योत जलाकर मरीचि में मान आ गया और नीचगोत्र कर्म का बन्धन पड़ा । वह कर्म आगे जाने पर महावीरस्वामी के भव में उदय में आया ।

❑ मरीचि की चलित श्रद्धा की ज्योत :

अनेक वर्ष बीते । भगवान ऋषभदेव का निर्वाण हुआ (पधारे), अब मरीचि के लिए स्वतंत्र विचरण का मार्ग खुला था, परन्तु उसमें रही विचार-श्रद्धा ने उसे भगवान के संत परिवार के साथ रहने दिया, परन्तु एक क्षण ऐसी आयी कि जब मरीचि की विचार-ज्योत आँधी में फँस गयी । मरीचि बीमार हो गये । शिष्य तो उनके साथ था नहीं, सेवा कौन करता ? निर्ग्रंथ साधुओं की आचार-संहिता उन्हे असंयमी मरीचि की सेवा करते हुए रूकती थी । मरीचि के तन में व्याधि की एक आँधी आ गयी और अभी तक स्थिर रही उसकी विचार-ज्योत चलित हो उठी । उसे लगा - 'ये मुनि कैसे हैं ? आँख की शर्म को भी मानो तड़ीपार किया है ! मैंने कितने सारे कुमारों को प्रति बोधकर उनके संघ में शामिल किया है ? आज मैं बीमार हुआ हूँ फिर भी मेरे सामने कोई नज़र तक करता है । अब कोई भी आये तो उसे प्रतिबोधकर (उपदेश देकर) मेरा शिष्य बनाना है !'

एक बार कपिल नामक एक धर्म-जिज्ञासु मरीचि के पास आया । पहले तो उसने ऋषभ संघ में धर्म बताया । डगमगायी विचार-ज्योत अभी तक बिलकुल बुझ गयी नहीं थी । कपिल ने पूछा - "क्या धर्म भगवान ऋषभदेव के साधु-संघ में है, आप के पास नहीं है ?" मरीचि की आँख के आगे अपनी बीमारी ताज़ा हुई तथा तब मुनियों द्वारा की गयी बेपरवाही प्रत्यक्ष हो उठी । कपिल में उसे शिष्यत्व की योग्यता दिखी । पतन के पल में सावधानी खोकर मरीचि ने उत्तर दिया - "कपिल ! यहाँ भी धर्म है और वहाँ भी धर्म है ।" कपिल को तो धर्म की छाप (प्रमाण) चाहिए थी । उसने सच-झूठ की परीक्षा किये बिना भगवे वस्त्र धारण किये। मरीचि का हृदय संतुष्ठ हुआ । छोटे-से लोभ ने मिथ्यात्व के उदय को जगाकर आत्मा को अन्धकार में छोड़ दिया । 'धर्म यहाँ भी है और यहाँ भी है ।' मात्र इतने सत्य मार्ग से विपरीत वचन से मरीचि ने संसार का दीर्घपरिभ्रमण खड़ा किया । जीवन की अन्तिम पल तक भी मरीचि का विपरीत प्ररूपणा का पाप अनालोचित रहा । वहाँ से मरकर चौथे भव में पाँचवें ब्रह्म देवलोक में देव बने ।

ऋषभदेव जैस दादा मिले और उनके पास दीक्षा ली । भरत जैसे पिता मिले और अनुपम संयम मार्ग मिल गया, फिर भी मरीचि का ऊर्ध्व प्रयाण ब्रह्म देवलोक

के आगे आकर रूक गया । इसमें आचार-विचार की ज्योत बुझ गयी और पाप अनालोचित रहा । इस कारण से कोई ऐसा-वैसा योगदान नहीं दिया था । मरीचि के भव में हुई छोटी-सी भूल का गुणा होता चला और मरीचि को इसके बाद कितने ही भवों में सम्यग्दर्शन न मिला । देव को आयुष्यकाल पूर्ण होने पर वह पाँचवें भव में कोल्लाक संनिवेश में लाख पूर्व के आयुष्यवाले कौशिक नामक ब्राह्मण हुए, वहाँ त्रिदंडी भेष धारण किया । छहे भव में थूणा नगरी में पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण के रूप में पैदा हुए । वहाँ त्रिदंडी भेष लिया । ७२ लाख पूर्व का आयुष्य था । मिथ्या-दर्शन की पुष्टी और गुफाओं में रहकर अज्ञान तप करते हुए आयुष्य पूर्ण कर सातवें भव में सौधर्म देवलोक में मध्यम स्थिति के देव हुए (बने) । आठवें भव में ६४ लाख पूर्व के आयुष्यवाले अग्निद्योत नामक ब्राह्मण हुए (बने) । वहाँ त्रिदंडी भेष स्वीकार किया । नौवें भव में ईशान देवलोक में मध्यम स्थिति के देव (बने) हुए । दसवें भव में मंदर नामक संनिवेश में ५६ लाख पूर्व के आयुष्यवाले अग्निभूति नामक ब्राह्मण हुए । वहाँ त्रिदंडी भेष लिया । ग्यारहवें भव में सनत्कुमार देवलोक में मध्यम स्थिति के देव बने । बारहवें भव में श्वेतांबिका नगरी में ४४ लाख पूर्व के आयुष्यवाले भारद्वाज नाम के ब्राह्मण बने । वहाँ त्रिदंडी भेष लिया । तेरहवें भव में महेन्द्र देवलोक में देव बने । चौदहवें भव में राजगृह नगर में ३४ लाख पूर्व के आयुष्यवाले स्थावर विप्र के नाम से ब्राह्मण बने । वहाँ त्रिदंडी भेष धारण किया, पंद्रहवें भव में ब्रह्म देवलोक में देव हुए ।

मरीचि के भव में हुई भूल का गुणा ऐसा तो ज़ोरदार आया कि मरीचि के तीसरे भव से स्थावर ब्राह्मण के चौदहवें भव तक उस जीव को क्रमशः ब्राह्मण जन्म में त्रिदंडी भेष और देवलोक मिलता रहा । इतने काल (समय) में उसे जैन-धर्म का साधुपन दुर्लभ बन गया । कुलमद का कर्म कुछ नष्ट हुआ और १६वें भव में राजगृह नगर में विश्वभूति नामक राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुए । इस भव में जैनधर्म की दीक्षा अंगीकार की । कुछ प्रसंग उपस्थित होने पर उन्होंने वहाँ 'नियाणा' किया कि मेरे तप-संयम का फल हो तो मैं अपूर्व बल का मालिक बनुँ । वहाँ से काल कर (मृत्यु पाकर) सत्तहवें भव में सातवें देवलोक में गये । अठारवें भव में पोतनपुर के प्रजापति नाम से राजा की प्रभावती रानी को कोख से त्रिपृष्ठ कुमार के रूप में जन्म लिया । वासुदेव की माता सात सपने देखती है, इस प्रकार प्रभावती रानी ने सात सपने देखे और त्रिपुष्ठ वासुदेव बने ।

एक बार समाचार आये कि - 'एक ज़वान सिंह ने संहार-लीला प्रारम्भ की है । किसानों ने अनेक प्रयास किये, परन्तु उसमें उन्हें कोई लाभ न हुआ । किसानों के लिए खेतों की रक्षा करना मुश्किल था ।' यह बात सुनकर त्रिपृष्ठ वासुदेव रथ में बैठकर जहाँ सिंह था वहाँ आये । उनके रथ की आवाज़ से सिंह एक बार

उठा । रथ में बैठे त्रिपृष्ठ वासुदेव ने सिंह को युद्ध की चुनौती दी । सिंह सावधान बनकर उठ खड़ा हुआ । सिंह को सामने सीधे ही संग्राम (युद्ध) करने की इस पल को वासुदेव भला कैसे जाने देता ! उन्होंने सतर्क होकर अकेले सिंह पर युद्ध छेड़ा । सिंह के हाथ में शस्त्र कहाँ से होता ? फिर वह ज़मीन पर था । त्रिपृष्ठ को अपनी युद्ध-नीति अन्यायी लगी । वे तुरन्त रथ से नीचे उतर गये । शस्त्रों को फेंककर वे सिंह की ओर दौड़ पड़े । ऐसी वीरता, पराक्रम सिंह को ज़िन्दगी में यह पहली बार देखने को मिले । मेरा नाम पड़ते ही लोग जहाँ-तहाँ भाग जाते थे, वहाँ यह वीर पुरुष तो सामने आया ! सिंह सतर्क बन गया । उसने ज़ोरदार गर्जना की । त्रिपृष्ठ भी सामने चीखा - ''हे वनराज ! बलाबल का निर्णय करने हेतु मैदान में उतर !'' इस प्रकार चीखने से क्या होगा ? सिंह चार-पैरों से कूदा । त्रिपृष्ठा ने भी जुनून से दौड़ लगायी । मनुष्य-पशु के बीच का संग्राम ज़ोरदार था । परन्तु यह तो वासुदेव का बल ! वासुदेव के आगे कौन जीत पाता ? कुछ ही पल में त्रिपृष्ठ के नाखूनवालें पंजे में सिंह का जबड़ा आ गया और वह सिंह खड़ा-का खड़ा फाड़ दिया गया ।

सिंह को लगा कि अरेरे ! मैं एक सामान्य मनुष्य से मरा ? उसे मृत्यु का दुःख नहीं है, परन्तु स्वयं ऐसे-वैसे के हाथों से मरा इसका भारी दुःख था । मनुष्य के पास से मिली हार का दुःख उसे मृत्यु से अधिक पीड़ा दे रहा था । वन का राजा सिंह सिसकियाँ भरता हुआ धूल में मिल गया । त्रिपृष्ठ ने खुशी की चीख भरी । सिसकियों की करुणता से रथ का सारथी पिघल गया । उसने कहा - ''सिंह ! तुम यदि वन के राजा हो, तो यह त्रिपृष्ठकुमार तीनों खण्डों के राजा हैं । तुम खेद मत करो । तुम अच्छे बलवान के हाथों से मरे हो, परन्तु तुम्हारे से हीन बलवान के हाथों से नहीं मरे, अतः उसका खेद मत करो ।'' उसे नवकार मंत्र सुनाये । कुछ देर में तो सिंह ने प्राण छोड़ दिये ।

उन्नीसवें भव में सातवें नर्क में गये । वीसवें भव में सिंह बने । इक्कीसवें भव में चौथे नरक में गये । बाइसवें भव में विमलराजा के नाम से राजा बने । तेइसवें भव में महाविदेहक्षेत्र में मूका नगरी में प्रियमित्र नाम से चक्रवर्ती बने । वहाँ चक्रवर्ती के सुख छोड़कर दीक्षा ली । चौबीसवें भव में सातवें देवलोक में गये । पच्चीसवें भव में नन्द नामक राजकुमार बने । उस भव में उन्होंने संयम लेकर ११ लाख ८१ हज़ार मासखमण किये और ऐसी भावना भाने (करने) लगे कि **'अगर मुझ शक्ति होवे ऐसी तो सवि जीव करूँ शासन रसी ।'** ऐसे भाव-करुणा उछल रही थी । यह भावना नन्दमुनि को ऐसी ज़ोरदार भायी कि वह भावना भवनाशिनी बनकर तीर्थंकरपद को दिलानेवाली वनी । उस भव में भगवान की जीव ने २० बोल (शब्दों) की आराधना कर तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन

किया । समाधि-मरण में मरकर छब्बीसवें भव में दसवें प्राणत देवलोक में पुष्पोत्तरावतंसक नामक विमान में देव के रूप में उत्पन्न हुए ।

❑ देवानन्दा के भाग्य ने ली करवट :

भगवान बड़े २६ भव पार कर सत्ताइसवें भव में माहणकुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहाँ देवानंदा ब्राह्मणी की कोख से जन्म लिया, तब देवानंदा ने एक के बाद एक चौदह महास्वप्न देखे । चौदह स्वप्न देखते ही देवानंदा ब्राह्मणी की ख़ुशी का ठिकाना न रहा । उसने खुशी से विभोर बनकर उसने स्वयं को आये स्वजन की बात पति से की । ऋषभदत्त ब्राह्मण ने कहा - "अहो, देवानंदा ! तुम्हारे स्वप्न का फल बहुत उत्तम है । तुम अवश्य तीर्थंकर-प्रभु की माता बनोगी । तुम महान भाग्यशाली हो । महान पुण्य का उदय हो तब तीर्थंकर-प्रभु की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है ।" देवानंदा के हर्ष का ठिकाना न रहा, वह खुशी से नाच उठी । भगवान ८२॥ रातें देवानंदा के गर्भ में रहे । वहाँ शक्रेन्द्र महाराज का आसन चलायमान हुआ । तब शक्रेन्द्र महाराज को क्रोध आया कि कौन महादुष्ट है कि जो मेरा आसन डोलाकर मेरे सुख में बाधा डाल रहा है ? शक्रेन्द्र की आँख क्रोध से लाल हो गयी । सारे सामानिक देव दौड़ आये और शक्रेन्द्र महाराज को प्रणाम कर कहा - "महाराज ! यहाँ तो आपका कोई दुश्मन दिखता नहीं है ।" तब शक्रेन्द्र महाराज ने उपयोग (ध्यान) लगाकर देखा तो भगवान को भिक्षुक कुल में उत्पन्न हुए देखे, तब उनका क्रोध शांत हो गया । अपने सिंहासन से नीचे उतरकर भगवान जिस दिशा में थे उस दिशा में सात-आठ कदम सामने जाकर भगवान को वन्दन-नमस्कार कर क्षमा माँगी । "अहो प्रभु ! मैंने आपको देखा नहीं और मिथ्या क्रोध किया । आप मुझे क्षमा कीजिए ।" इस प्रकार प्रभु के सामने क्षमा माँगकर विचार किया कि तीर्थंकर भगवान की आत्मा क्षत्रियकुल के अतिरिक्त अन्य स्थान में उत्पन्न नहीं होते और भगवान तो ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए हैं । यह एक आश्चर्य है, अतः तुरन्त हरिणगमैषी नामक देव को बुलाकर आज्ञा की कि "माहणकुंड नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहाँ देवानंदा ब्राह्मिण की कोख में भगवान महावीरस्वामी की आत्मा गर्भ-स्वरूप में रही है, उसका साहरण कर क्षत्रियकुंड नगर में सिद्धार्थराजा के घर त्रिशलारानी की कोख में रखिए और त्रिशला देवी के गर्भ में पुत्री रूप में जो गर्भ है, उसे देवानंदा की कोख में रखिए ।"

बन्धुओं ! ऐसा होने का कारण देवानंदा और त्रिशला के कर्म थे । पूर्वभव में देवानंदा और त्रिशला दोनों देवरानी-जेठानी थी । त्रिशला देवी के रत्न का पात्र देवानंदा ने चोरी कर दिया था । अतः इस भव में रत्न के पात्र से भी अधिक

प्रिय उसके गर्भ का साहारण हुआ । यहाँ शक्रेन्द्र की आज्ञा होने से हरिणगमैषी देव ने उसी प्रकार किया, अतः देवानंदा के मुख से एक के बाद एक स्वप्न निकलकर त्रिशला रानी के पास जाने लगे, तो देवानंदा के हृदय में बहुत दुःख होने लगा कि - "अहो ! यह क्या ? मेरे सारे स्वप्न कहाँ चले जाते हैं ? यह सब क्या हो रहा है ?" ऐसा कहकर रोने और झुरने लगी ।

एक देवानंदा दुःखियारी दुखियारी दुःख के स्वप्न बहुत देखे,
पाया न कुछ बेचारी देवानंदा दुःखियारी,
देव ने ऐसा गर्भ हरने के कारण कन्या ही, दुःख के गहरे सागर में हाथ डुबा दिया
कोमल उसका कलेजा कटा, स्वप्न भयानक आया उसमें,
सुख का स्वप्न भुलाया, उसका नाजुक हृदय टूटा टूटा... एक देवानंदा...

चौदह स्वप्न आये तब देवानंदा बहुत खुशी से झुम उठी थी, परन्तु जैसे ही उसके मुख से स्वप्न निकलकर चले गये तब अत्यंत शोकातुर बन गयी, परन्तु यह तो कर्मराजा के खेल हैं ! कर्मराजा एक क्षण में हर्ष के स्थान पर शोकमय वातावरण पैदा कर देते हैं और जहाँ शोकमय वातावरण हो वहाँ आनन्दमय बना देते हैं ।

❑ भाग्यशाली बनी त्रिशाला माता :

देवानंदा के स्वप्न एक के बाद एक त्रिशला रानी को आने लगे । तो त्रिशला रानी खुश होने लगी । देवानंदा को रुलाया और त्रिशला देवी को खुश किया । त्रिशला देवी रानी चौदह स्वप्न देखकर सिद्धार्थ राजा के पास गये और स्वयं को आये स्वप्न की बात कि "हे नाथ ! मुझे इस प्रकार चौदह स्वप्न आये हैं ।" महाराज स्वप्न की बात हृदय में अवधारकर (उतारकर) कहते हैं कि - "हे त्रिशला देवी ! आप महान बड़भागी हो । आप रत्नकुक्षी हो । आपकी कोख में त्रिलोकीनाथ पधारे हैं । आपने चौदह उत्तम स्वप्न देखे हैं । वह एक-एक स्वप्न सूचित करता है कि आप महान तीर्थंकर-प्रभु को जन्म दोगी ।" यह सुनकर त्रिशला देवी का हृदय मारे खुशी के नाच उठा । तीर्थंकर-प्रभु की माता बनने का सौभाग्य मिले, तो भला किसे खुशी नहीं होती ? सुबह होने पर सिद्धार्थ राजा ने स्वप्नों के फल देखने के लिए स्वप्न-पाठकों को आमंत्रित किया । स्वप्न-पाठक संप (एक होकर) कर आये थे । सब से बड़े स्वप्न-पाठक ने रानी को आये चौदह स्वप्नों की बात सुनकर कहा - "हे महाराजा ! त्रिशला देवी ने जो चौदह उत्तम स्वप्न देखे हैं, वे तीर्थंकर जन्म सूचित हैं । उनके गर्भ में तीर्थंकर की आत्मा उत्पन्न हुई है । हे राजन् ! आप महान भाग्यशाली हो और त्रिशला देवी भी महान भाग्यशाली हैं । उनकी कोख से आप के विशुद्ध वंश में सूर्य के समान

पुत्ररत्न जन्म लेंगे । उस पुत्ररत्न के प्रभाव से आप के कुल में अनन्त (गुणे) आनंद का बढ़ावा होगा । आपके भण्डार में लक्ष्मी की वृद्धि होगी । आपकी राजसत्ता विस्तृत बनेगी । सर्वगुणालंकृत वह पुत्र आप के कुल का उद्धार करेंगा और साथ में समस्त संसार का भी उद्धारक बनेगा । आप का यश, कीर्ति दिगंत में फैलेंगे । चौदह स्वप्नों का यह सामूहिक फल है । अब प्रत्येक स्वप्न का अलग अलग फल सुनिए ।

(१) पहले स्वप्न में चार दंतशूलवाला हाथी देखा, उसके फल-स्वरूप आपका पुत्र संसार में दान, शीयल (सतीत्व), तप और भावरूप चार प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करेगा । (२) दूसरे स्वप्न में हे महारानी ! आपने वृषभ देखा है, इसलिए वह पुत्र धर्म की धुरा को धारण कर भव्यजीवों के हृदयरूपी क्षेत्र में समकित रूप धर्म का बीजारोपण करेगा । (३) तीसरे स्वप्न में सिंह देखने से आपका प्राण-प्रिय वह पुत्र सिंह के समान सात्त्विक वृत्ति को धारण कर संसार के जीवों को सत्त्वशील समझ देकर भव्यात्माओं का रक्षक बनेगा और सबका उद्धारक बनेगा । (४) चौथे स्वप्न में अभिषेक कराती लक्ष्मी देवी को देखा, इसका अर्थ ऐसा होता है कि वह अद्वितीय दानधारा बहाकर स्वयं अकिंचन और निर्मोही बनकर तीर्थंकरपद की अनुपम आत्मिक लक्ष्मी को भोगेगा । (५) पाँचवें स्वप्न में अनुपम पुष्पमाला को देखा, अर्थात् वह पुत्र तीनों भुवनों में माननीय (आदरणीय) और पूजनीय स्थान को पायेगा । (६) छठ्ठे स्वप्न में चमकता चन्द्र देखा, अतः आपका पुत्र सर्वजन-वल्लभ बनकर सर्व संसार का प्रिय पात्र बनेगा । उसका दर्शन सब-को प्रिय लगेगा । (७) सातवें स्वप्न में सूर्य को देखा, वह यह सूचित करता है कि आपका लाड़ला दैदिप्यमान कांति और महातेज से भूषित होगा और सूर्य की तरह प्रतापी बनकर तेज़ बहायेगा । (८) आठवें स्वप्न में अनुपम ध्वजा को देखा, इससे ऐसा सूचित होता है कि वह सुपुत्र धर्मधुरंधर बनकर संसार में धर्म की ध्वजा फहरायेगा । (९) नौवें स्वप्न में कलश देखा, इसका फल यह है कि आपका पुत्र धर्म की पूर्णता को पहुँचेगा । (१०) दसवें स्वप्न में देखे पद्म सरोवर का रहस्य यह है कि आपका पुत्र देवरचित सुवर्णकमल पर प्रदार्पण कर विहार करनेवाला बनेगा । (११) ग्यारहवें स्वप्न में देखे क्षीर-समुद्र का फल यह है कि शक्ति-सम्पन्न आपका वह पुत्र परिपूर्ण ज्ञान का अधिपति सर्वज्ञ बनेगा । (१२) बारहवें स्वप्न में देखे देव विमान की फलश्रुति ऐसी है कि भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिपी और वैमानिक - ये चारों प्रकार के देव उसकी सेवा करेंगे और पूजा करेंगे । (१३) तेरहवें स्वप्न में चमकते रत्नराशि को देखने से उसका फल ऐसा दिखता है कि दिव्य लक्ष्मी से सुशोभित रत्नों से मंड़ित समवसरण में बैठकर श्री तीर्थंकर सूचित अनन्त लक्ष्मी को भोगेगा । (१४) चौदहवें स्वप्न में निर्धुम अग्नि को देखने से

भगवान के जन्म होने के साथ ही सारे आलम में प्रकाश फैल (हो) गया। मनुष्य लोक में तो ठीक, नरक में भी अन्धकार का काला पर्दा फटकर प्रकाश प्रकाश फैल गया और दो क्षण के लिए तो लूटफाट के दुःख बन्द हो गये। वनस्पतियाँ खिल उठी और पृथ्वी पर चन्दन के विलेपन से भी अधिक शीतलता फैल गयी। देवों के हृदय आनन्द से नाच उठे। छप्पन दिक्कुमारियाँ भगवान का जन्म-महोत्सव मनाने आयी। इन्द्रों के इन्द्रासन डोल (हिल) उठे। इन्द्र और करोड़ों देवों ने मिलकर भगवान का हर्षपूर्वक मेरु पर्वत पर ले जाकर स्नान कराकर जन्म-महोत्सव मनाया और फिर पुनः भगवान को उनकी माता के पास छोड़कर देव और दिक्कुमारीयाँ खुशी से आये थे उसी प्रकार स्वस्थानक में चले गये।

❑ भगवान का जन्मोत्सव मनाते सिद्धार्थराजा :

सिद्धार्थराजा ने अपने नगर में बहुत धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया। जन्म के बाद बारहवें दिन माता-पिता, स्वजन और बुआजी सभी ने मिलकर कुमार का वर्धमानकुमार ऐसा शुभनाम रखा। धीरे धीरे वर्धमानकुमार बड़े होने लगे। उनका मुख तो पूर्णिमा के चन्द्र की तरह सुशोभित हो रहा था। इस त्रिशला का लाल सबको हृदय के हार जैसा प्यारा लगता था। वर्धमानकुमार आठ वर्ष के हुए तो देव उनकी कसौटी करने आये। तब वर्धमानकुमार ने अपने अद्वितीय शक्ति से दैवी-शक्तिवाले देव को भी हराया, अतः देव ने खुश होकर महावीर नाम दिया।

माता-पिता ने वर्धमानकुमार को पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा, वहाँ शिक्षक के प्रश्न का समाधान कर शिक्षक को भी आश्चर्यचकित कर दिया। वर्धमानकुमार पढ़-लिखकर युवक बने। तब उनके राजकुमारी यशोधरा के साथ विवाह हुए। परन्तु कुमार तो अनासक्त भाव से संसार में रहते हुए सोचते हैं कि- 'ये सारे सुख के साधन तो दुःख के निमित्त हैं। अब ऐसा कोई दिव्य रसायण खोज लूँ कि जो सारे जीवों के लिए उपयोगी सिद्ध हो।' भगवान २८ वर्ष के हुए, माता-पिता का अन्तिम समय नजदीक (पास) आया देखकर संथारा करवाकर पावन किये। माता-पिता की मृत्यु के बाद भगवान दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए, परन्तु बड़े भाई नंदीवर्धन के आग्रह से दो वर्ष अधिक संसार में रूक गये, परन्तु किस प्रकार रहे ? भाव-साधु की तरह रहे थे।

❑ राजपाट का त्याग करते हुए वर्धमान कुमार :

३० वर्ष से भरयौवन में राजपाट को छुट्टी दी, वैभव-विलासों को ठोकर मारकर वर्धमानकुमार ने संयममार्ग अंगीकार किया। राज्य के बड़े वैभव-सुख उन्हें विषसमान लगने लगे और जंगल की विकट मार्ग प्रिय लगने लगी। जिनकी आँखों में करुणा और प्रेम छलाछल छलकता है, जिनके तन, मन में त्याग और

तप के बाण लगे है, ऐसे माया, ममता और राजपाट-वैभव का त्याग कर गरीब-नवाज़ भगवान महावीर जंगल के विकट-मार्ग में चल निकले । राज-वैभव में बसनेवाले जंगल में बसेरा करने लगे । कहाँ राज-वैभव के सुख-साधन और कहाँ जंगल के वायु ? कहाँ रेशम जैसी शय्या और कहाँ पत्थर की शय्या ! भगवान के मन तो रेशम और पत्थर दोनों समान हैं । संसार त्यागकर प्रभु बाहर की दुनिया को भुलकर हृदय की दुनिया में उतरकर अधिकतर ध्यान में रहने लगे और कठोर तपश्चर्या करने लगे ।

❑ हँसते मुख से कर्म के साथ कष्ट सहते प्रभु :

बन्धुओं ! भगवान ने इस संसार में जन्म लेकर कैसे-कैसे कार्य किये हैं और कितने कष्ट सहे हैं ? संग्राम में विजय प्राप्त करने से पहले रण-यौद्धा को मरजिया (बनकर) ज़ंग खेलने पड़ते हैं, उसी प्रकार सिद्धि के सिंहासन पर बिराजने से पहले संत-पुरुषों को भी मारणांतिक कष्टों से गुज़रना पड़ता है । आत्मिक साम्राज्य कि प्राप्ति के लिए तारक भगवान की जागृति दशा सतर्क बन गयी । उनके सिर पर उपसर्गों के पहाड़ टूट पड़े । परन्तु प्रभु ज़रा-भी चलित न हुए । भगवान को जो उपसर्ग (कष्ट) आये है, उनका वर्णन सुनकर हमारा कलेज़ा काँप जाता है । सुनिए मार्ग भूले भरवाड़ (अहीर) ने भगवान के कान में खिले (खूंटा) डाले, संगमासूर ने कालचक्र रखा (किया), गोशालक ने पागलपन कर तेजुलेश्या की । ऐसे जीवों पर भी भगवान ने ते भावदया की अमृत-वर्षा बरसायी । दृष्टि विष कालेनाग ने पैरों में दंश दिया तो उसे भी मीठे-मधुरे वचनों से कहा - ''समझ...समझ...ओ चंड़कौशिक ! तुम कुछ समझ । दूध से भरे घड़े में विष का एक बूँद पड़े तो दूध भी विष बन जाता है, उसी प्रकार क्रोध-जीवन की सर्वसंपत्ति का विनाश करते हैं । कितने ही जन्मों की बाजी तुम क्रोध में हार गया ।'' भगवान की अमृतसम मीठी-मधुरी वाणी सुनकर दृष्टि-विष चंड-कौशिक सर्प शांत हो गया । वह भगवान के चरणों में झुक गया और अपना जीवन सुधार लिया ।

बड़े-बड़े कठोर हृदय का मनुष्य की आँख के कोने भीगो दे ऐसी भगवान महावीरस्वामी की साधना थी । साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिनों तक उग्र तपश्चर्या की । केवलज्ञान की प्राप्ति तक प्रभु इस भूमि पर पालथी मारकर बैठे नहीं है । साढ़े बारह वर्ष में शांति से एक घण्टे की भी नींद नहीं ली है । नींद और विश्राम त्यागकर मौन की साधना प्रारम्भ की । आत्महित की भावना के साथ विश्व-कल्याण की भव्य भावना थी । अनेक कठोर कसौटियों से पार होने के बाद भगवान महावीर-प्रभु की साधना फलीभूत हुई और वैसाख शुक्ल दसम् के दिन

केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी बने । वैशाख शुक्ल-११ वे के दिन तीर्थ की स्थापना की और संसार के जीवों को तत्त्वज्ञान समझाया । अहिंसा परमो धर्म का मंगल सन्देश किया, 'जीओ और जीने दो' सिद्धांत समझाया । स्वयं आचरण में रखकर संसार के जीवों को समझाया । मैत्री, प्रमाद, करुणा और माध्यस्थ भावना के गूढ़ भावों को समझाकर स्याद्वाद मार्ग भी प्ररूपणा कर संसार के जीवों पर महान उपकार किया है, जिनकी आँखों से अमृत-वर्षा बहती हैं, जिनके प्रत्येक वचन में वात्सल्य के वारिधि से छलकता है, जिनने प्रत्येक वाक्य से विश्व में विमलता फैंल गयी है । जिनके प्रत्येक साये से पवित्रता फैल गयी है, जिनके कदम-कदम पर बहुत प्रेम प्रकट हुआ है, ऐसे महावीर-प्रभु के यशोगान और उनकी कीर्ति की यश-गाथाएँ हमारे जीवन में अनन्य आनन्द और उत्साह देते हैं । लहू के अणु-अणु में नया चैतन्य डालते हैं, इतना ही नहीं परन्तु वे हमारे तन में ताज़गी देते हैं, मन में मस्ती देते हैं और हृदय में आराम देते हैं । ऐसे भगवान का आज हमने जन्म-दिन मनाया है, तो भगवान के जीवन से कुछ न कुछ प्रेरणा लेते जायेंगे । भगवान ने जीवन के बारे में बहुत कहा गया है । हम सब भगवान के दिव्य जीवन का प्रकाश लेकर आत्मकल्याण करे यही भावना । अधिक बातें अवसर आने पर ।

"कोटि-कोटि वन्दन हो शासन सिरताज् शासन पति प्रभु महावीर को ।"

भावना भवनाशिनी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आत्मस्वरूप की पहचान करने के लिए पर्युषणपर्व के मंगलकारी दिन हैं । उसमें से पाँच दिन तो धर्माराधना में व्यतित हो गये । आज छट्ठवें दिन का मंगल प्रभात प्रकट हुआ है । पर्युषणपर्व हमारे महान उपकारी है । क्योंकि जड़ के राग को निर्मूल करने के लिए आत्मा से आवश्यक बल पाने के लिए पर्युषण पर्व हमें सानुकूलता कर देता है । उसका अगर हम विवेकपूर्वक सदुपयोग करें तो हमारा अणमोल समय आत्मा की शुद्धि के लिए सार्थक हो सकता है । इसके लिए इस पर्व को आत्मशुद्धि का अनुपम पर्व माना जाता है । पर्युषणपर्व के दिनों में मनुष्यों के हृदय में शुभ भावना का ज्वार आता है, अतः इस पर्व को लक्ष्य में रखकर व्याख्यान का विषय है - 'भावना भवराशिनी ।'

भावना क्या चीज़ है ? आज आप सब इतनी अधिक संख्या में जल्दी से आकर बैठ गये हो, यह क्या बताता है ? उपाश्रय में नहीं आते वे सभी भी इस पर्युषणपर्व के आठ दिनों में आता है और उत्सुकता से सुनने के लिए बैठ जाते हैं । वह भावना से या भावना के बिना ? आप सभीके हृदय में वीतरागवाणी सुनने की भावना है । यह देखकर आपको भी खुशी होती है और समझ में आता है कि भावना और भक्ति ये अपने हृदय की बात है । मनुष्य यह भूल जाय तो अपना अधिकार भूलता है । संसार में प्राणीमात्र के जीवन-निर्माण की आधारभूमि भावना है । यह भावना दो प्रकार की है - एक प्रशस्त-भावना और दूसरी अप्रशस्त-भावना । प्रशस्त-भावना अर्थात् शुद्ध विचार । यह भावना अपनी जीवनयात्रा को प्रगतिशील बनाने में प्रेरणा देता है और अप्रशस्त-भावना अर्थात् अशुद्ध विचार । वह अपने जीवनपथ को अवरोधक बनाने में प्रेरणा देता है । इस प्रकार हमारे हृदय में घोंट रही भावना हमें ऊर्ध्वगामी और अधोगामी बनने की प्रेरणा देता है, अतः समझिए और हृदय में विचार कीजिए ।

माया ओर ममता ये दोनों मनुष्य को संसार में जकड़ रखनेवाले बन्धन है । यह बन्धन तोड़ने की मनुष्य में जबतक ताक़त पैदा नहीं होती, तबतक वह मज़बूर होकर मोह की गुलामी करता रहता है । जीव जिस पर माया और ममता करता है, वे पदार्थ क्षणभंगुर है, फिर भी मनुष्य उसमें जीवन को व्यर्थ खोता रहता है। उसका मन में अफसोस भी होता नहीं है । क्योंकि आत्मा के ज्ञान से वह अनजान होता है और उस ज्ञान से अज्ञात होने के कारण 'मैं अशरण हूँ,' ऐसा दृढ़ विचार अभी तक उसके हृदय में स्थिर नहीं हुआ होता है । जबतक मनुष्य को माया-ममता से उत्पन्न होनेवाला दुःख, उसकी निरर्थकता और उसके विषाद का ज्ञान होता नहीं है, तबतक वह जीवन साफल्य से दूर-दूर ही रहता है । जिस मनुष्य के हृदय में भौतिक-संपत्ति के प्रति और संसार के प्रति माया, ममता और आसक्ति है, उसकी दशा (स्थिति) कीचड़ में किलकिलाते कीड़े जैसी है ।

बन्धुओं ! जो चीज़े नाशवान हैं, अस्थायी है, उसका मोह अन्त में विषाद छोड़कर जाती हैं । मृगजल से कभी तृषा शांत नहीं होती है, कल्पना के हवामहल रहने योग्य नहीं होते और स्वप्न की सुखड़ी (एक मिठाई) से कभी भूख मिटती नहीं है । उसी प्रकार भौतिक-पदार्थों में से मिलनेवाले सुख चाहे कितने भी अच्छे और सुहावने लगते हो, परन्तु उससे कभी भी शाश्वत-सुख और आनन्द जीव को मिलनेवाला नहीं है । ऐसा समझकर माया और ममता के बन्धन तोड़कर भवराशि के टुकड़े करने की भावना रखिए । मनुष्य की जैसी भावना होती है ऐसा फल मिलता है । अच्छी भावना हो तो अच्छा फल मिलता है और बुरी भावना हो तो बुरा फल मिलता है । अच्छे या बुरे प्रत्येक कार्य का आधार मनुष्य की भावना पर है ।

भगवान ऋषभदेव की माता मरुदेवी ऋषभदेव भगवान के दीक्षा लेने के पश्चात् 'मेरा ऋषभ...ऋषभ' कहकर झुरती थी । 'शर्दी, गर्मी या चौमासे में विचार करती कि मेरा लाल ऐसी ठंक कैसे सहता होगा ! उसे कितनी गर्मी लगती होगी ! चौमासे में वर्षा बन्द न हो और गौचरी न मिले तब वह क्या खाता होगा ?' माता को अपना पुत्र कितना प्रिय है ! पुत्र को माता प्रिय हो या न हो, परन्तु माता को उसका लाल प्रिय ही होता है । मरुदेवी माता अपने पुत्र के पीछे झुरती थी । एक बार ऋषभदेव भगवान केवलज्ञान मिलने के बाद पधारे । देवों ने समवसरण रचा था । मरुदेवी माता हाथी की अंबारी पर बैठकर भगवान के दर्शन हेतु पधारे । भगवान के सामने मेखोन्मेख दृष्टि से देखते रह गये, परन्तु भगवान ने तो उनके सामने भी न देखा, तब मन ही मन थोड़ा-सा क्लुषित भाव आ गया कि - 'अहो ! यह तो मेरा ऋषभ ! मैं ऋषभ...ऋषभ करती हूँ, परन्तु वह तो मेरे सामने देखता तक नहीं है और मुझे बुलाता भी नहीं है ।' दूसरे क्षण वह क्लुषित भाव बदलकर शुभ भावना में जुड़े कि - 'अहो ! मैं कैसा कुविचार कर रही हूँ। वह तो वीतराग बन गया है । वीतराग-प्रभु को राग या द्वेष नहीं होता है ।'

वीतराग-प्रभु के मन तो कौन माता, कौन पिता और कौन पुत्र ! उसे तो संसार के समस्त जीवों के प्रति समान करुणाभाव है । अहो प्रभु ! तुम कैसे और मैं कैसा ? तुमे राग-द्वेष को जीत लिये हैं और मुझमें अभी तक रागद्वेष भरे पड़े हैं । ये बन्धन कब टूटेगा ? हृदय के पश्चात्ताप पूर्वक ऐसी उच्च भावना की सीढ़ी पर चढ़े या हाथी की अंबारी पर बैठे-बैठे उच्चतम भावना के बल से कर्मों के आवरण सहज बार में तोड ड़ाले और केवलज्ञान की ज्योत प्रकटकर मोक्ष में गये । देखिए, भावना में कितना बल है ? दृढप्रहारी, वंकचूल, चिलातीपुत्र ने नरक में जाना पड़े ऐसे क्रूर कर्म किये, परन्तु उनके आयुष्य का बन्ध पड़ा नहीं, तो कुछ निमित्त मिलने पर शुभ भावना के जोर से भयंकर पाप के बन्धन तोड़कर आत्मकल्याण किया । उसी प्रकार इन पुरुषों की कई बातें की बार सुनी होगी और अभी समय नहीं है, इसलिए उसका विस्तार करती नहीं हूँ ।

बन्धुओं ! भावना व्यक्ति के व्यकित्व को नापने का थर्मोमीटर है, क्योंकि व्यक्ति की भावना जैसी होती है वैसे ही उसकी वाणी, व्यवहार और विचार हो जाते हैं । भावना का प्रतिबिम्ब विचारों के स्वच्छ स्थान पर पड़ते है और फिर वहाँ भावना भवनाशिनी का साक्षात्कार हो जाता है । याद रखिए कि हृदय से निकली बात हृदय तक पहुँचती है । पानी की टंकी जितनी ऊँचाई पर होगी, उतनी ऊँचाई तक नल के द्वारा पानी पहुँचा सकती है । उसी प्रकार जो विचार हृदय से निकलता है, वह हृदय को स्पर्श करता है । सद्भाव जीव को ऊर्ध्वगामी बनाता है और दुर्भावना जीव को अधोगामी बनाता है । अतः आपकी भावना पवित्र और निर्मल रखिए ।

अगर आपकी भावना पवित्र और निर्मल होगी तो आपके मुख से वाणी भी निर्मल और मीठी निकलेगी, और भावना मलिन होगी तो वाणी भी कर्कश और कड़वी निकलेगी। पवित्र मनुष्य तपस्वियों को तप करते देखे, दाता को दान करते देखे, तो उसके मन में ऐसी भावना जगती है कि - 'धन्य है इस तपस्वी को! वे ऐसी महान तप-साधना कर कर्मों का क्षय कर रहे है। दाता दान देकर परिग्रह की ममता छोड़ते हैं और पुण्य बाँधते हैं। मुझमें तो दान देने की या तप करने की शक्ति नहीं है। मैं ऐसी साधना कब करूँगा?' ऐसी भावना जागने पर उसकी आँख में आंसू आ जाते हैं। वह तपस्वी दाता के गुण गाता है। उसकी अनुमोदना करता है और शुभ भावना के द्वारा कर्म खपाता है। जबकि कुछ जीवे ऐसे होते हैं कि कोई तप करता हो तो कहेगा कि - 'अरे! महासतीजी का काम ही कहने का है, परन्तु भला हमें तप कर अपना शरीर क्यों सूखाना चाहिए? अभी तो खा-पीकर आनन्द कीजिए!' स्वयं तो कर सकता नहीं है, परन्तु जो करता है उसे रोकने जाता है। ऐसे जीव कर्मों को तोड़ने के बजाय कर्म बाँधते हैं। उसकी भावना दुष्ट होती है। इसलिए उसकी वाणी भी कड़वी होती है।

बन्धुओं! आप सभी को मिसरी खाना तो बहुत अच्छा लगता है न? अगर मिसरी अच्छी लगती है तो भाषा भी मिसरी जैसी मीठी बोलिएगा। अभी तक तो कितनी मिसरी खा गये, जो शरीर में भी मिसरी बढ़ गयी। अरे, मिसरी तो कहाँ तक बढ़ी यह जानते हैं न? खून में और पेशाब (मूत्र) में। क्यों ठीक है न? सभी जगहों पर मिसरी बढ़ी, मगर बोलने में मिठास न आयी। (सब हँसते हैं।) मलिन विचारों से भरा मन आनन्द दे सकता नहीं है। आप बगीचे में जाकर बैठो तो आपका हृदय खुश हो जाता है न? परन्तु बगीचा किसे कहते हैं? जहाँ हरा घास हो, गुलाब, मोगरा, जूही आदि फूल-पौधे हो, उनमें से खुशनुमा (मंद-मंद) पवन आ रहा हो और जामुन, मोसंबी, संतरे, अनार, चीकू इत्यादि फल के पौधे बगीचे की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे हो, पानी के फव्वारे उड़ते हो, पक्षी मधुर स्वर में गान कर रहे हो, ऐसा वातावरण जहाँ हो उसे बगीचा कहते हैं। वहाँ जाकर बैठे तो आपको आनन्द आता है न? परन्तु जहाँ आकड़ा, थूहर, बबूल के पेड़ हो उसे बगीचा कहेंगे? नहीं। वहाँ बैठने का भी मज़ा नहीं आता है न? उसी प्रकार जिसके मन में सुविचारों के सुमन खिले हो, उसमें शुभ भावना के फव्वारे उड़ते हो, ऐसा मन बगीचे जैसा है और जहाँ कुविचारों के आकड़े और थूहर उगे हैं, वह मन विरान जंगल जैसा है। जिस मन में अच्छे और पवित्र विचार आते हैं उनकी वाणी भी मीठी और मधुरी होती है और उसका व्यवहार भी अच्छा होता है। अच्छी भावना व्यवहार में परिवर्तन आती है।

शुभ भावना अशुभ कर्मों को शुभ में परिवर्तित कर सकते हैं। गोशालक मरकर नरक में जानेवाला था, परन्तु मरने से पहले दो क्षण शेष रही तब उसकी विचारधारा में परिवर्तन हुआ। 'अहो ! मैंने भगवान की कितनी अवहेलना की ? मैं सर्वज्ञ न होने पर भी मैं सर्वज्ञ हूँ। मैंने ऐसा अपलाप किया। सर्वज्ञ भगवान की मैंने कितनी घोर अशातना की ? उनका मुझ पर कितना महान उपकार है ? उस तापस ने मुझ पर तेजुलेश्या रखी तब करुणासागर भगवान ने शीतलेश्या रखकर मुझे बचाया, तब मैं पापी ने तो भगवान पर तेजुलेश्या रखी, परन्तु वे तो सच्चे तीर्थंकर हैं। उन्हें लेश्या जला सकी नहीं, परन्तु उनके शिष्यों को तेजुलेश्या रखकर जला दिये। धिक्कार है मुझे !' दो क्षण पहले गोशालक को ऐसा पश्चात्ताप हुआ। तो नरक में जाने के बजाय बारहवें देवलोक में गये। देखिए यह शुभ भावना का बल है। यह तो आत्मा की भावना की हुई।

❑ अशुभ पुद्गल शुभ बन सकती है तो अशुभ भावना शुभ क्यों नहीं बन सकती ? :

अशुभ पुद्गलों को भी प्रयोग के बल से शुभ किया जा सकता है। 'ज्ञाताजी सूत्र' में उसका सुन्दर न्याय (दृष्टांत) दिया है। जीतशत्रुराजा और उसका सुबुद्धि प्रधान घुमने के लिए गये थे। मार्ग में एक खाड़ी आयी। उस खाड़ी का पानी ऐसी बदबू फैला रहा था कि मनुष्य का मानो सिर फट जाय। राजा ने तो नाक पर कपड़ा रखा, परन्तु प्रधान तो तत्त्व दृष्टिवाला था, जैनधर्मी था, अतः समझता था कि-'संसार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील हैं। प्रत्येक पुद्गलों का अशुभ से शुभ और शुभ से अशुभ में संक्रमण होता रहता है। अतः महाराजा को यह प्रयोग कर दिखाना चाहिए।' ऐसा सोचकर प्रधान ने बदबूदार खाड़ी से सौ घड़े भरकर पानी मंगवाया। उसमें से कचरा निकाल डालने पर सौ घड़े में से एक घड़ा पानी ही रहा। वह पानी शुद्ध, स्वच्छ और शीतल बनाया। फिर राजा को भोजन का निमंत्रण दिया। राजा ने भोजन कर पानी पिया, तो प्रधान ने पूछा - "प्रधानजी ! आप ऐसा पानी कहाँ से लाये हो ? यह पानी को कोकाकोला और फेन्टा से भी अधिक मीठा और शीतल अमृत जैसा लगता है। आप अकेले ही ऐसा पानी पीते हो ? मुझे तो कभी देते नहीं हो।" प्रधान ने कहा - "महाराज ! यह तो बदबूदार खाड़ी का पानी है। उसे आप पीए या न भी पीए इसलिए मैं देता नहीं हूँ।" राजा ने प्रधान से कहा - "प्रधानजी ! बदबूदार खाड़ी का पानी ऐसा नहीं हो सकता।" प्रधान ने प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखाया, तब राजा के दिमाग में बात उतरी कि अशुभ से शुभ और शुभ से अशुभ बनता है। ऐसे पुद्गल भी जब अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो सकते हैं, तो क्या भावना अशुभ से शुभ नहीं हो सकती ? जरूर हो सकती है।

❑ भावना का भव्य बल :

बन्धुओं ! शुभ भावना में महान शक्ति है । भावनाभरी भक्ति से भगवान भी भक्त के अधीन बनते हैं । शबरी की श्रीरामचन्द्रजी के प्रति भावभरी कितनी भक्ति थी ? उसकी भावना के बल से एक दिन रामचन्द्रजी उसकी झोंपड़ी में आये और उसके जूठे बेर प्रेम से खाये । यह भावना का बल है । श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता कैसी थी, यह आपको मालूम है न ? परस्पर कैसी उच्चतम भावना थी ? मुट्ठीभर चावल और वह भी कच्चे । उसकी क़ीमत कितनी होगी ? उस ज़माने में मात्र दो पैसों की होगी । क्योंकि उस ज़माने में आज के जैसी भयानक महँगाई न थी, फिर भी उस कच्चे चावल में श्रीकृष्ण को कैसा स्वाद आया था ? आपकी दृष्टि से भले ही चावल की क़ीमत कुछ भी न हो, परन्तु उसका मूल्य श्रीकृष्ण को समझमें आया था । उसकी क़ीमत दूसरे नहीं लगा सकते हैं और उसके स्वाद की मिठास दूसरे नहीं अनुभव कर सकते हैं । क्योंकि उसके पास ऐसा मैत्रीभरा हृदय नहीं होता कि जो सुदामा की मित्र-भावना को समझ सके ।

जहाँ शुद्ध भावना का अभाव होता है वहाँ इच्छा, तृष्णा और कल्पना के घोड़े दौड़ने लगते हैं । परिणामतः संपत्ति का नाश, अनिष्ट का संयोग, इष्ट का वियोग और संस्कृति का विनाश होने पर भव की परम्परा बढ़ जाती है । जिससे भव घटता है वह है सद्भावना और जिससे भव बढ़ता है वह दुर्भावना । भव बढ़ने पर दुःख बढ़ता है और भव घटने पर सुख बढ़ता है । अनादिकाल से चला आ-रहा सुख-दुःख का चक्र सद्भावना और दुर्भावना का परिणाम है । आत्मविकास या आत्मविनाश के साथ उन्नति और अवनति का अगर कोई कारण हो तो वह शुभ-अशुभ भावना है । भावना कर्ममल का नाश कर संसार की परम्परा के घटानेवाला महान रसायन है, अतः महान पुरुष चीखकर कहते हैं कि - **'भावना भवनाशिनी ।'** शुद्ध भावना भवपरम्परा का नाश करनेवाली है और दुर्भावना भवपरम्परा को बढ़ानेवाली है । भववृद्धि का कारण कर्मबन्ध है । इस कर्मबन्ध की न्यूनता या अधिकता का आधार-स्तंभ हमारी भावना, हमारे विचार और हमारे अध्यवसाय कारणभूत हैं । अपनी अंतर्गत जैसी भावना ऐसे प्रकार का प्रायः जीवन बन जाता है ।

भरत चक्रवर्ती को आईने भवन में केवलज्ञान हुआ था । आप भी रोज़ आईने के सामने देखते हो न ? आधा घण्टा तो मात्र बाल सजाने में बीता देते हो और क्या आपकी ऊँगली पर पहनी हुई अंगूठी खो गयी नहीं होगी ? अरे, अंगूठी तो क्या, परन्तु हार तक गुम हुआ होगा, परन्तु आईने के सामने देह की नश्वरता का विचार कितनों को आया ? और भरत चक्रवर्ती की तरह आईने भवन में कितनों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ ? भरत चक्रवर्ती को आईने भवन में केवलज्ञान

प्राप्त हुआ तो आप क्या होटलों में चाय पीते-पीते या थियेटर-नाटक-सिनेमा देखते-देखते केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ? उनकी दादीमाँ मरुदेवी हाथी की अंबारी पर केवलज्ञान पाये, परन्तु आज की माताएँ तो मुझे लगता है कि मोटर में बैठकर, चौपाटी की हवा खाते-खाते केवलज्ञान पाने की इच्छा रखती होंगी न ? (सब हँसते है !) आप अपने अंतरात्मा से पूछ लिजिए कि आपको केवलज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? और मेरी आत्मा क्यों भटक रही है ? अवश्य हृदय से आवाज़ आयेगी कि यह सब भावना का परिणाम है ।

❑ जीवन-बाग कैसा बनायेंगे ? :

बगीचे में पुष्प खिलते हैं और वे पुष्प बगीचे को खुश्बू से भर देते हैं, उसी प्रकार यह मनुष्यजीवन भी एक बगीचा है । उस बगीचे में सुविचार के पुष्प खिलने चाहिए, जिससे जीवनबाग खुश्बू से महकता रहे । क्या आप यह जीवन-घूरा (कूड़े का बड़ा ढ़ेर) बना देने जैसा सस्ता मानते है ? बन्धुओं ! आपके महान पुण्य योग से आपको ऐसा सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ है । अनेक साधनों का सुन्दर मौका आपको मिला है और वह भी मनुष्य जैसे उत्तम जीवन में, फिर तो प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में भावना का आविर्भाव होना चाहिए न ? जितनी मात्रा में भावना का विकास होता जाता है उतनी मात्रा में दुर्भावना का विनाश होता जाता है । बगीचे में बबूल अच्छे नहीं लगते । वहाँ तो सुगन्ध और शीतलता देनेवाले चन्दन आदि के वृक्ष सुशोभित लगते हैं, उसी प्रकार मनुष्य जैसे उच्चतम जीवन में कंटिले बबूल समान दुर्भावना कभी सम्भव नहीं हो सकती । वहाँ तो परमशांति के परिमल प्रसारित (फैलानेवाले) करनेवाले भावना के सुगन्धित चन्दन वृक्ष चाहिए ।

देवानुप्रिय ! आप इतना रट रखिएगा कि हम यहाँ गड़ने नहीं आये, परन्तु उपर उड़ने के लिए आये हैं । आत्मा मरती नहीं है, देह मरती है, शरीर गड़ता है आत्मा नहीं । धूल की ताक़त है कि वह आत्मा को गाड़ सके ? जिसका मिट्टी में ही सर्जन है और मिट्टी में ही विसर्जन होता है, वह आत्मा नहीं, परन्तु देह है । देह को आत्मा मानकर लेना यह कैसी भयंकर भूल है ? एक का मार्ग अधोगामी है और दूसरे का मार्ग ऊर्ध्वगामी है, अतः इस भव में ऐसी भावना रखिए कि भव में अधिक भटकना न पड़े । ऐसे उच्च भव में भी अगर थोड़ी-सी दुर्भावना आ जाती है तो जीव की कैसी दशा होती है ? और वही आत्मा जब पुनः स्वघर में स्थिर होता है और शुभ भावना बढ़ती है तो कर्म से मुक्त बनकर मोक्ष में जाता है । यहाँ एक दृष्टांत याद आता है । पंद्रहवें तीर्थंकर-प्रभु श्री धर्मनाथ भगवान के समय की यह बात है । एक बार धर्मनाथ भगवान समवसरण में बैठकर देशना का अस्खलित प्रवाह बहा रहे थे । भगवान के समवसरण में बारह प्रकार की प्रखदा बैठी थीं । देव, असूर, मनुष्य और तिर्यंच भगवान की अमृत जैसी मीठी वाणी सुनने के लिए आकर बैठ गये थे । भगवान अर्धमागधी भाषा में देशना

फरमाते है; परन्तु प्रत्येक जीव भगवान की वाणी को अपनी-अपनी भाषा में समझ सके ऐसा तीर्थंकर भगवान की वाणी का प्रभाव होता है। भगवान की वाणी में ऐसा सामर्थ्य होता है कि एक-दूसरे के विरोधी प्राणी - यथा, सर्प या गरुड़, बिल्ली और चूहा, सिंह और मृग जो एक-दूसरे को देखते ही उसे पकड़कर मार डालते हैं, ऐसे जीव भी भगवान के समवसरण में जाकर अपने जन्मजात बैर को भूलकर प्रेम से एक-दूसरे के साथ बैठते हैं।

यहाँ सारे जीव बैरभाव को भूलकर एक चित्त से प्रभु की वाणी सुन रहे थे। समवसरण ठठ भर गया है। उस समय गणधर भगवन्त ने समय देखकर भगवन्त से प्रश्न किया - "भगवन्त ! आपके समवसरण में इतने सारे जीव बैठे है, तो इनमें से सबसे पहले मोक्ष में कौन जायेगा ?" भववन्त ने कहा - "देखिए, सामने से वह चूहा आ रहा है, वह आपसे और मेरे से पहले मोक्ष में जानेवाला है।" यह सुनकर गणधर भगवन्त ने पुनः पूछा - "हे प्रभु ! आप क्या बोलते हो ? आपके वचन तो त्रिकाल सत्य ही हो, उसमें मीनमेख नहीं हो सकता परन्तु हमें आश्चर्य होता है कि वह चूहा सबसे पहले मोक्ष में जाएगा ? भगवन्त ! इसमें कुछ समझमें नहीं आता।"

बन्धुओं ! कर्म की स्थिति गहन है। यह किसी से समझा जा सके ऐसा नहीं है। जीव कैसी दशा से कैसी दशा में फँस जाता है और उसका मोक्ष किस प्रकार और कब होता है इस आगम के गहरे भेद को ज्ञानी के अतिरिक्त कोई जान सकता नहीं है। "प्रभु ! चूहे ने ऐसी क्या करनी की कि जो सबसे पहले मोक्ष में जायेगा ? आप कृपया चूहे के भव बताईए ?" भगवन्त ने कहा - "हाँ। उस चूहे के पूर्वभव की बात सुनने जैसी है। मीठी, मधुरी और मेघ ध्वनि जैसी गम्भीर वाणी भगवान ने प्रकट की।

नवकार मंत्र की महत्ता

"हे भव्यजीवों ! विंध्य नामक पहाड की तलहटी में विंध्यवास नामक छोटा-सा संनिवेश है। वहाँ महेन्द्र नामक राजा का शासन था। उनकी तारा नामक रानी थी और ताराचन्द्र नामक एक पुत्र था। एक बार कोई दुश्मन राजा ने बड़ी सेना लेकर विंध्यवास संनिवेश पर हमला कर दिया। दोनों के बीच भयानक युद्ध हुआ। उसमें महेन्द्रराजा की मृत्यु हुई, जिससे सेना भी तितर-बितर हो गयी। तारा रानी को इस बात की जानकारी मिलने पर घबरा गयी। परन्तु हिम्मत कर अपने सतीत्व की रक्षा हेतु और बच्चे को बचाने के लिए उसे लेकर गुप्त मार्ग से जंगल में भाग निकली। तारा चन्द्र को देखकर छिपती-छुपाती चलती हुई एक दिन भरूच तक पहुँच गयी। यह तो राजा की रानी है, परन्तु कर्मोदय ने उसे भटकते कर दिया है। भरूच में कोई उसे पहचानता नहीं। किसके आश्रय में जाती ? उस विचार

में रानी चिन्ता में पड़ गयी । उदासीन वदन से भरूच शहर में प्रवेश किया । तभी सामने से उसने साध्वीजियों का समुदाय आते देखा ।

❑ दुःखित रानी को मिला दिलासा :

बन्धुओं ! साधु-साध्वी तो सबके सगे हैं । उन्हें तो किसी के प्रति राग या द्वेष होता नहीं है । सुखी या दुःखी, अमीर या गरीब सभी उसके मन समान है । यह राजरानी है, मन चिन्ता से व्यग्र है, यह देखकर साध्वीजी ने पूछा कि - "बहन ! तुम कौन हो ? कहाँ से आ रही हो ? और इस प्रकार चिन्तातुर क्यों दिखती हो ?" साध्वीजी के वचन सुनकर रानी ने अपनी सारी बात कह सुनायी । साध्वीजियाँ बहुत गम्भीर थे । उन्हों ने कहा - "बहन ! तुम घबराओं मत । हमारे साथ चलिए ।" यह बात सुनकर रानी की खुशी का ठिकाना न रहा । वह साध्वीजी के साथ धर्मस्थानक में गयी । उस समय भरूच का वैभव बहुत था । साध्वीजी ने संघ के प्रमुख श्रावकों को बुलाकर इस रानी के बारे में बात की । श्रावकों ने कहा - "कोई चिन्ता नहीं । हम उनकी रक्षा करेंगे ।" बाद में रानी और पुत्र को श्रावक के घर ले गये । दोनों खुशी से श्रावकों के घर पर रहने लगे । रानी प्रतिदिन साध्वीजी के पास आकर धर्माराधना करने लगी । साध्वीजियाँ भी उसे बहुत प्रेम से संसार की असारता समझाते थे ।

❑ रानी की आत्म-विचारणा :

गुरुणीदेवी के प्रतिदिन सहवास से तारामती रानी को लगा कि-'इस संसार में कहीं सुख नहीं है । मैंने इस संसार में सुख की छाया देखी और दुःख के प्रतिबिम्ब देखे हैं, प्रत्येक संसारी जीव यहाँ-वहाँ खोजते जाते हैं परन्तु कहीं पर स्थायी सुख मिलता नहीं है ।' ऐसा समझकर रानी को वैराग्य आ गया । उसके हृदय से वैराग्य रस के झरने बहने लगे । अतः उसने संसार का त्याग कर संयम मार्ग का स्वीकार किया । ताराचन्द्रकुमार को भी संसार की विधिगता का ज्ञान होने पर चौदहवें भगवान के शासन में सुनन्द नामक आचार्य भगवान के पास संयम लिया । चौदहवें तीर्थंकर कौन ? अरे चौदहवें भगवान का नाम बोलते समय इतना समय ! परन्तु इसके विपरीत आपसे यह पूछुं कि आपके पाँच पुत्रों में से तीसरे पुत्र का नाम क्या है ? तो आप तुरन्त उत्तर दे देंगे । अपने पुत्र का नाम तो आयेगा, परन्तु पुत्र के पुत्र का नाम भी जल्दी से बोल देंगे, मगर भगवान का नाम बोलते समय इतनी देर ? (सब हँसते हैं ।) कितनी विचारकर फिर बोले कि - "अनन्तनाथ भगवान ।" बस यही बताया है कि आपको संसार के प्रति जितनी रुचि है, उतनी रुचि धर्म के प्रति नहीं है । मगर याद रखिएगा कि संसार स्वार्थ से भरा है ।

ये माता और पुत्र दोनों अनन्तनाथ भगवान के शासन में संयमी जीवन में बहुत सुन्दर आराधना कर रहे हैं । ताराचन्द्रमुनि के जवान बनने पर अभी तक बरा

में रखी उनके मन की पवित्र भावनाएँ एक दिन वासना के झुले से विचलित बन गयी। मन में अनेक प्रकार के विचारों की तरंगें (लहरें) उछलने लगे, परन्तु कुछ बोल सकते नहीं है। यह दुष्ट मन मनुष्य को कब विषय-वासना से मलिन बना देता है यह कहा नहीं जा सकता। मन की गति अति चपल है और इन इन्द्रियों के घोड़े बहुत साहसिक है। अतः उस पर बहुत कन्ट्रोल रखिए। उसे यहाँ-वहाँ भटकने मत दीजिए।

❑ **मुनि की भावना में दुष्ट विचारों का आंदोलन :**

ताराचन्द्रमुनि का मन वासना के बवंडर से मलिन हुआ है। एक बार ताराचन्द्रमुनि कहीं जाते हैं। वासनाओं से भरे विचारों के झुले में झुलकर ताराचन्द्रमुनि प्रकृति के एकेक रमणीय दृश्यों को अपनी अनोखी दृष्टि से देखते हुए जंगलों के मार्ग से आग बढ़े। वहाँ चूहों के टोले को अनेक चूहों के साथ प्यार (क्रीडा) करते हुए देखा। चूहें अपनी अपनी चुहियों के साथ नाचते-कूदते हैं और एक-दूसरे साथ मज़ाक-मस्ती कर रहे है। यह देखकर ताराचन्द्रमुनि का विषय-वासना से विह्वल चित्त और अधिक झूलने लगा और मन में सोचने लगे कि-'अहो ! साधुत्व में एक ही जगह पर बन्धे रहना होगा ? साधुओं के आदेशों (आज्ञा) का पालन करने का, मगर मुक्त होकर विचरण करना भी नहीं मिलता। साधुत्व की दशा तो बन्धन में बन्धे हाथी जैसी है और पिंजरे में फँसे पक्षी जैसी है। पिंजरे में फँसने के बाद पक्षी तड़पता है, झुरता है, परन्तु उसे स्वतंत्र रूप में जंगल की मौज करने को नहीं मिलता, उसी प्रकार साधुत्व में भी ऐसी दशा है। यह भी एक पिंजरा ही है न ? साधत्व (सन्यासी) से तो इन चुहों का जीवन कितना सुन्दर है ? क्योंकि न ही कोई बन्धन और न ही किसी की रोक-टोक और न किसी की गुलामी में रहना। बस मात्र स्वतंत्र रूप में संसार में मौज़ करना है। सन्यासी के लिए तो ऐसी स्वतंत्रता का नाम ही नहीं। ऐसा स्नेह और प्यार भी नहीं, अतः इस चुहों का जीवन सन्यासी से भी श्रेष्ठ है।'

देवानुप्रियों ! सोचिएगा। कहाँ सन्यासी का श्रेष्ठ जीवन ? और कहाँ तिर्यंच चुहों का जीवन ? मगर हृदय में वासना का कचरा मिलाया, तो चुहों का जीवन सन्यासी से श्रेष्ठ लगने लगा। ताराचन्द्रमुनि ठंडील जाकर वापस लौटे और अपने सन्यासीपन की आराधना करने लगे। मन मलिन हुआ। सन्यासीपन छोड़ा नहीं है, परन्तु मन में ऐसे भाव आये इसकी आलोचना की नहीं। मन से बन्धे पाप के परिणाम भी जीव को भुगते बिना चारा नहीं है। ताराचन्द्रमुनि ने सन्यासीपन (साधुत्व) की आराधना करने पर भी मन के अशुभ परिणामों के योग से पूर्व के

पाप की आलोचना न की, अतः वहाँ काल कर कम संपत्तिवाले और अल्प आयुष्यवाले देव बने । देवों की चार जातियाँ हैं - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक । आराधक साधु तो वैमानिक देव में जाते हैं, परन्तु यदि पाप की आलोचना न करे तो विराधक होते हैं और वाणव्यंतर आदि देव होते हैं । देव का आयुष्य कम-से-कम दस हज़ार वर्षों का होता है । यहाँ ताराचन्द्रमुनि कालधर्म पाकर अल्प आयुष्यवाले देव बने ।

देव भव का आयुष्य पूर्ण कर पूर्व में चूहे और चुहियों को किल्लोल (मौज़) करते देख मन में सोचा था कि-'इस साधुत्व पन से तो ऐसा जीवन कितना अच्छा है ? उस पाप-कर्म के योग से उन्हें चूहे योनि में उत्पन्न होना पड़ा ।'' भगवान की वाणी सुनकर सभा आश्चर्यचकित हो गयी । चूहे ने भी अपने पूर्वभव की कहानी सुनी । उसे बहुत पश्चात्ताप होने लगा । उस पाप का पश्चात्ताप उसके हृदय के कमरे में प्रकाश फैला रहा था । आँखों से आंसू बहते थे । अश्रु से भरी आँखों से चूहे ने अपनी भाषा में प्रभु से प्रार्थना करने लगा - ''अहो, हे करुणासिन्धु भगवन्त् ! साधुपन में संयम की वफादारी संभाल न सका, कुविचारों के तूफ़ान में जीवन लुप्त कर बैठा । प्रभु ! अब मेरे उद्धार का कोई मार्ग है ?''

चूहे के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवन्त ने कहा - ''हे भद्र ! कर्म बाँधते समय जीव ने विचार न किया, अब उस कर्म का विपाक (फल) भुगतने का समय आया है, परन्तु अभी तक बाज़ी हाथ में है । सावधान होकर सर्व सावद्य व्यापारों का त्याग यानी अनशन करेगा तो बाज़ी सुधर जायेगी ।'' भगवान की वाणी सुनकर चूहे ने कहा-''भगवन्त् ! मुझे अनशण करवाइए । आज से मैं खाना-पीना सब बन्द कर मौन रूप में रहकर मेरी आत्मा को परमात्मा के ध्यान में स्थापित कर शेष जीवन सुधारूँगा ।'' वहाँ भगवान ने चूहे को अनशन करवाया । अतः अपने पाप का पश्चात्ताप करते हुए चूहा भगवान के समोवसरण से निकलकर अपने स्थान पर गया । चूहे को गये बहुत समय हो गया था । तो उसकी चुहियाँ राह देख रही थी कि अभी तक वे क्यों न आये ? चूहे भी पंचेन्द्रिय है, इसलिए उसे भी मनुष्य की तरह सारी संज्ञाएँ (भावनाएँ) हैं, अतः चुहियों को चिन्ता होने लगी ।

❑ चूहे के भव में की गयी साधना :

दूर से चूहे को आते देख चुहियाँ कुदने लगी और उसके सामने जाकर प्रेम का प्रपात बरसाने लगी, परन्तु चूहा तो अब मस्त योगी जैसा बन गया था, अतः आत्मध्यान में लीन बनकर एक कोने में मौन लेकर नीचा देखकर बैठ गया । अब वह स्नेह के बन्धन में फँसना चाहता नहीं था । उसके हृदयरूपी हौज़ में वैराग्य

के फव्वारे उछल रहे थे । चुहियों ने चूहे को मनाने के लिए बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सफल न हुई । अन्त में चूहा समाधिभाव में ही मृत्यु पाकर मिथिला नगरी में मिथिला-राजा की मिगारानी की कोख से राजकुमार रूप में पैदा होंगे । वहाँ उसका नाम चित्रकुमार रखा जायेगा । वहाँ मुनि के वचन सुनकर उसे जाति-स्मरण ज्ञान होने पर अपने पूर्वभव दिखेंगे और सोचेंगे कि - 'अहो ! मैं साधु के भव में कुवासना में फँसकर कहाँ फैंका दिया गया ? मुझे चूहा बनना पड़ा । वहाँ मुझे भगवान मिले और सच्चा मार्ग दिखाया । उसके प्रभाव से मरकर राजकुमार बना ।' वहाँ सन्त के वचन सुनकर चित्रकुमार चिन्तन करते हुए क्षपक श्रेणी (सीढ़ी) पर चढ़ते हुए भाव-चारित्र प्राप्त करेगा और तुरन्त मोक्ष में जायेगा । इस प्रकार धर्मनाथ प्रभु के शासन में चूहे का जीव सर्वप्रथम मोक्षगामी बनेगा ।"

बन्धुओं ! ऐसे दृष्टांत सुनकर आप समजिए कि भावना से भव का नाश होता है और जीव शिवगति को पाता है । यह बात निःशंक है । शुभभाव में रमणता करनेवाला जीव कर्म का क्षय करता है और अशुभभाव में भटकता जीव कर्म के कीचड़ में तड़प-तड़पकर अपना जीवन बरबाद करता है, अतः शुभ-भावना सरोवर में सदैव स्नान कर जीवन को पवित्र बनाना यही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है ।

अरे, देवलोग में अगर देव की भावना शुद्ध हो तो जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ उसे शुभ निमित्त मिल जाता है । एक देव का प्रसंग (घटना) याद आता है ।

एक बार तीर्थंकर-प्रभु की देशना चल रही थी । तीर्थंकर-प्रभु की देशना सुनने के लिए देव, देवियाँ, मनुष्य, तिर्यंच आदि आते हैं । एक बार एक देव तीर्थंकर-प्रभु की देशना सुनने आया । देशना सुनकर भगवन्त से पूछता है कि - "हे भगवन्त ! मैं यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा ?" तब तीर्थंकर भगवन्त ने उत्तर दिया कि - "तुम यहाँ से मरकर फलाने नगर के बाहर जंगल में बंदर का अवतार प्राप्त करेगा ।" भगवन्त के मुख से यह सुनकर देव तो काँप उठा । उसके मन में बहुत अफसोस होने लगा कि - 'अरेरे... मैं देव मिटकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदनेवाला और हुपाहुप करनेवाला बन्दर बनुँगा ?' देवों को अवधिज्ञान होता है, उसके बल से यह जान सकते है कि - 'मैंने पूर्वभव में अच्छी साधना की तब मैं देव बना, परन्तु यहाँ आकर स्वर्ग के दिव्य कामभोग में मस्त बन गया । सुख में आसक्त हुआ और अपना पुण्य खतम कर ड़ाला । हाय ! अब मैं धर्मविहीन और कूदनेवाला बन्दर बनुँगा ? केवलिज्ञानी भगवन्त के वचन तो तीन कालों में झूठे नहीं होंगे । मैं तो बन्दर होकर बिलकुल धर्महीन वनुँगा और वहाँ से पापकर्म के भाथे बाँधकर अधम दुर्गति में जाऊँगा । वहाँ भी मुझे धर्म तो नहीं मिलेगा, मेरा क्या होगा ?

इस प्रकार देव चिन्तातुर बन गया, परन्तु मन में सोचने लगा कि-'बन्दर बनना तो तय है तो फिर वहाँ भी मुझे धर्म मिल जाय तो कुछ कर लुँ ।' ऐसा सोचकर देव ने अवधिज्ञान के बल से जान लिया कि स्वयं को कहाँ जंगल में बन्दर बनना है । देखिए, यह देव अवधिज्ञान से पूर्वभव और उस भव में की गयी धर्माराधना तथा धर्म के फलरूप मे मिले इन दिव्य-सुखों को प्रत्यक्ष देखता है । अतः उसे तो धर्म की श्रद्धा हो जाती है, परन्तु धर्मक्रिया करने की पच्चक्खाण करने की शक्ति नहीं है, मगर मनुष्य के पास धर्म करने की शक्ति होने पर भी वह धर्म करता नहीं है । मनुष्य गुरु के वचन और शास्त्रों से धर्म तथा उसके कार्यकारण भाव को जान सकता है, इतना ही नहीं, परन्तु वह उच्च कोटि के त्याग, तप, संयम, व्रत, नियम आदि धर्म का आचरण कर सकता है । देवलोक के देव वह कर सकते नहीं है । उस चिन्ताग्रस्त बने देव ने विचार किया कि मुझे परभव में धर्म मिले इसके लिए मैं कुछ कर लुँ । उसने ज्ञान द्वारा जान लिया कि मैं अमुक जंगल में जन्म लेनेवाला हूँ । अतः उसने तो उस जंगल मे जितनी पत्थर की शिलाएँ और जितने वृक्ष के मोटे तने थे उन सभी जगहों पर 'नमो अरिहंताणं' आदि पाँच नवकारमंत्र लिखे और उन्हें रत्नमय बना दिये कि उसके सामने जो देखे उसे तो यही लगे कि नवकारमंत्र लिखकर उसमें बारिक रत्न मानो न भरे हो ! अतः स्वयं जहाँ देखे वहाँ झगमगाते नवकारमंत्र ही दिखते रहते और अपने विमान में भी जहाँ उसकी दृष्टि पड़े वहाँ सभी जगहों पर नवकारमंत्र लिखे, जिससे वह जहाँ भी द्दष्टि करता है वहाँ सर्वत्र नवकारमंत्र दिखते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखता नहीं है, इस प्रकार देव का आयुष्य पूर्ण कर देव वहाँ से च्यवकर उस जंगल में बन्दर बने ।

❑ नवकारमंत्र देखकर जाति-स्मरण ज्ञान हुआ :

बन्दरभाई तो एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदते हुए मौज़-मस्ती से रहने लगे । एक बार बन्दर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदते हुए और हुपाहुप करते हुए वह उस शिला पर गिरा । वहाँ उसने स्वयं द्वारा लिखे नवकारमंत्र देखे । दूसरी शिला पर गया तो वहाँ भी उसने वही देखा । फिर तो अनेक शिलाओं और पेड़ के तनों पर नवकारमंत्र देखे । एक ही प्रकार के अक्षर प्रत्येक जगह देखने पर उसके मन में ऐसा भ्रम होने लगा कि मैंने ऐसा कहीं देखा है । इस प्रकार हुपाहुप करते हुए बन्दर को जाति-स्मरण ज्ञान हुआ । अतः उसे सारी बातें याद आ गयी । स्वयं जिस देवलोक में देव था वहाँ देखा, तो वहाँ भी नवकारमंत्र लिखे पाये, और जंगल में भी जगह-जगह नवकारमंत्र में दिव्य रत्नों का चूरा उसमें भर दिया हो ऐसे प्रकाशमय रूप में लिखा देखा । अहो ! यह तो मैंने ही किया है और वह

भी धर्म पाने के लिए ही किया है । शुभभाव था तो फल मिला । दूसरी ओर उसे खेद हुआ कि-'अहो ! विषय-विलासों में आसक्त बनकर देवभव बरबाद कर मैं यहाँ बन्दर बना ! पशुयोनि में फँस गया ! दूसरी बात में उसे आनन्द हुआ कि मैंने देव भव में नवकारमंत्र लिखे तो मुझे यह देखकर ज्ञान हुआ । आज प्रत्यक्ष दिखता है कि मैं धर्म के बिना देव भव से भ्रष्ट बनकर नीचे पटक दिया गया हूँ । बस, अब मुझे आज से एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदने की, पेड़ के पत्तें, फल, फूल इत्यादि तोड़ने की पाप-प्रवृत्ति को बन्द कर नवकारमंत्र के स्मरण में लग जाऊँ । मैं मनुष्य जैसी साधना तो नहीं कर सकुँगा, परन्तु मुझ से जितना हो सकता है उतना तो मैं अवश्य ले लुँ ।' इस प्रकार सोचकर बन्दर ने वहाँ अनशन किया और नवकारमंत्र के ध्यान में लीन बन गया । वहाँ से आयुष्य पूर्ण होने पर पुनः देवलोक में गया ।

देवानुप्रियों ! इस दृष्टांत से हमें तो यह सार ग्रहण करना है कि शुभ-भावना के बल से अपना धर्म उदय में आये, इसलिए जैसे देव ने अपने विमान में जगह-जगह मंत् लिखवाये । बार-बार उसके दर्शन और स्मरण से बन्दर के भव में भी उसकी आत्मा जागृत हुई, इसी प्रकार आपके जीवन में भी आप नवकारमंत्र को इस प्रकार से लिखे कि परभव में भी उसके संस्कार का असर हो । जो मुसीबत में, अन्तिम समय में और परलोक में बहुत लाभदायी हो - आपके घर में भी नवकारमंत्र कहीं लिखे हैं कि जहाँ दृष्टि पड़े वहाँ नवकारमंत्र गिनने का मन हो जाय ? जिसकी रग-रग में नवकारमंत्र समा गया हो उसका तो उद्धार हो जाता है, क्योंकि नवकारमंत्र सर्व मंत्रों में श्रेष्ठ मंत्र है । नवकारमंत्र हमारे इष्ट देवों तथा गुरु भगवन्तों के नाम-स्मरण का महामंत्र है । उसके जाप से पंच परमेष्ठि के नाम का स्मरण और नमस्कार - ये दो शुभ क्रियाएँ होती हैं । उसके फल-स्वरूप मंगल की प्राप्ति, विघ्नों का नाश, कर्मों का क्षय, संसार में पूज्य ऐसे उत्तमोत्तम व्यक्तियों का विनय इत्यादि अनगिनत लाभ होते है । अतः ज्ञानी भगवन्तों ने अनेक धार्मिक विधानों में से तथा सांसारिक कार्यों के प्रारम्भ में भी नवकारमंत्र का स्मरण करने का फरमाया है । इनमें से कितने श्रावकों का ऐसा नियम है कि मैं नवकारमंत्र का स्मरण किये बिना दूध नहीं पीऊँगा । आप हर क्षण नवकारमंत्र का स्मरण करते रहेंगे तो इस लोक में तो उसके स्मरण के प्रभाव से आपके विघ्नों का नाश होगा । मन में शांति मिलेगी और परलोक में भी महान सुख देनेवाले बनेंगे । देखिए तो सही, उसमें कितनी ताक़त है ?

एक बार एक राजा बड़ी सभा भरकर बैठे थे । साथ में उसकी राजकुमारी भी बैठी थी । उसमें राजा को जोर से छींक आयी, उस समय गाँव के नगर के सेठ

दूर बैठे थे । उनके मुख से 'नमो अरिहंताणं' शब्द निकल गया । सोचिए । इस नगरसेठ के जीवन में नवकारमंत्र का कितना रटण होगा ? कई बार ऐसा हो सकता है कि स्वयं को छींक आये तो 'नमो अरिहंताणं' शब्द बोला जा सकता है, परन्तु दूसरे को छींक आये तो 'नमो अरिहंताणं' बोलना याद नहीं आता । राजा को छींक आयी और नगरसेठ 'नमो अरिहंताणं' बोले - यह सुनकर राजकुमारी को मूर्छा आ गयी, अतः सब के मन में लगा कि यह क्या ? परन्तु राजकुमारी को उस समय जातिस्मरण ज्ञान हुआ । उसने ज्ञान में देखा कि स्वयं पूर्वभव में चील थी । किसी शिकारी ने बाण मारकर उसे बैध डाला, इससे तड़पती हुई ज़मीन पर गिर पडी थी, उस समय एक जैन साधु वहाँ से निकले । उन्हों ने तो उन तड़पती चील के कान में 'नमो अरिहंताणं' सुनाये । उसके प्रभाव से वह चील मरकर राजकुमारी बनी । शीतोपचार करने से राजकुमारी कुछ देर में होश में आयी और स्वयं क्यों बेहोश बनी और पूर्वभव में स्वयं कौन थी यह सारी बातें की, तब सब को लगा कि अहो ! 'नमो अरिहंताणं' शब्द में इतनी अधिक ताक़त कि चील मिटकर राजकुमारी बनी ।

बन्धुओं ! यहाँ यह बात सोचने जैसी है कि चील के जीव ने शुद्ध-भाव से अन्तिम समय में 'नमो अरिहंताणं' सुनाया । उसमें उसने चित्त कैसा ओतप्रोत किया होगा कि एक ही बार सुनने पर याद आ गया कि मैंने ऐसा कहीं सुना है, और उसके प्रभाव से जातिस्मरण ज्ञान हुआ । दूसरा नगरसेठ ने भी जीवन में कैसे रट (उतार) लिया होगा कि किसी को छींक आयी उसमें अपने मुख से 'नमो अरिहंताणं' शब्द निकल गया और वे राजकुमारी के जाति-स्मरण ज्ञान में निमित्तभूत बने ।

देखिए, देव के भव में बन्दर के जीव ने उच्चभाव से अपने देव भव में जगह-जगह नवकारमंत्र लिखे तो अंतकाल तक उसका स्मरण रहा और मरकर बन्दर बना, तो जंगल में भी उसके जगह-जगह शिलाओं पर और पेड़ के तने पर नवकारमंत्र लिखे थे, तो एक ही प्रकार के शब्द जगह-जगह देखे और वह भी तेज़ से जगमगाते देखा तो जाति-स्मरण ज्ञान हुआ, संथारा किया । चील को भी 'नमो अरिहंताणं' पद का श्रवण होने पर जाति-स्मरण ज्ञान हुआ और पूर्वभव देखा । तो उसने भी जीवन पर्यन्त नवकारमंत्र का स्मरण कर अपना जीवन सफल बनाया । अतः 'भावना भवनाशिनी' शुभ और शुद्ध भाव से भव का नाश होता है । अतः भावों की शुद्धि रखिए । अधिक बातें अवसर आने पर ।

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

महान मंगलकारी पर्युषणपर्व का सुवर्ण अवसर हमारे जीवन के आँगन में आ गया है । पर्युषणपर्व अर्थात् क्या ? मुमुक्षु आत्माओं को मुक्ति मार्ग की मंजिल तक पहुँचानेवाला पवित्र पर्व । मनुष्यजीवन की सच्ची सफलता ऐसे पवित्र पर्व को सम्मानपूर्वक सत्कारने में रही है । इस पर्व की महत्ता को समझकर धर्मशील भव्यजीवों को आराधना करने में प्रारम्भ करना चाहिए । जीवन का सार धर्म है, परन्तु आज चारों ओर दृष्टिपात करने पर असन्तोष, अशांति, उद्वेग, ममता और तृष्णा के तांडव का घोर तूफान मचा रहे हैं और पाप का प्रवाह आ रहा है । जबकि पुण्याई काच के बर्तन जैसा दिखावे मात्र की है । प्रतिष्ठा खाक के खिलौने जैसी, संपत्ति पानी में डूबे बताशे जैसी, सकल परिवार स्वप्न जैसा, काया पानी के बुद-बुदे जैसी, ऐसे रद्दी सामान जैसे सुख में राचता मनुष्य यह बात बिलकुल भूल गया कि पूर्व की महान पुण्याई की कमाई के फल-स्वरूप मनुष्यदेह की प्राप्ति हुई है, वह रंगराग और भोगोपभोग या आनन्द-प्रमोद के लिए नहीं है । खाने-पीने या पहनने में दुर्लभ मनुष्य देह की सफलता नहीं है, परन्तु ज्ञानी भगवन्तों ने मोक्षमार्ग की साधना करने के लिए मनुष्यजीवन की महत्ता गाई है ।

आज का विषय है 'मानवता की महक' मानवता की महक कब फैलती है ? मनुष्यजीवन पाकर दया, परोपकार, सत्य, नीति, सदाचार आदि धर्मों के कार्य करे तब ! अन्यथा दीनरूप में जीना और अशरणरूप मे मृत्यु की गहन खाई में गिर जाना । ऐसी घोर यातनाओं को जीव अनादिकाल से भुगतते हुए कुछ भी उत्कर्ष किये बिना, गति, प्रगति या क्रान्ति की केड़ी को प्राप्त किये बिना मरता रहा है । महान पुण्योदय से मनुष्यजन्म मिला । इस देह की सच्ची सफलता धर्म की आराधना कर जन्म-मृत्यु की परम्परा को रोककर मोक्ष प्राप्त करने में हैं । समझिए, जिनेश्वर-प्रभु के शासन के अतिरिक्त संसार में मोक्षप्राप्ति का सफल उपाय अन्यत्र कही नहीं है । जैनशासन में बताये गये अनुष्ठानों की श्रद्धापूर्वक आराधना करनेवाले भव्यजीव सुकृतरूपी परभव का पाथेय प्राप्त कर जल्दी से मोक्ष के सुखों को प्राप्त करता है । इसके लिए मनुष्य सदैव धर्म की आराधना

को लक्ष्य में रखकर स्वयं को मिली शक्ति और सामग्री को सफल बनाने के लिए मंगल पर्व की आराधना करने हेतु कटिबद्ध बनना चाहिए । जीवन की सच्ची संपत्ति धर्म की आराधना है । जीवन के अन्तिम क्षण तक आराधक भाव को जागृत रखना – यह साधना के शिखर पर कलश चढ़ाने समान है ।

ज्ञानी कहते हैं कि – "क्षमा, नम्रता, ऋजुता, निर्लोभता, विवेक आदि सद्गुण इतने अधिक महान है कि जिसकी खुश्बू के आगे कस्तूरी की खुश्बु फीकी है, परन्तु आज मनुष्य को बाहरी प्रतिष्ठा अच्छी लगती है । परन्तु जीवन में सद्गुण की प्रतिष्ठा करनी नहीं है । जीवन में सिद्धि नहीं है, तो प्रसिद्धि कहाँ से मिलनेवाली है ? दुर्गंध से मनुष्य दूर भागता है, परन्तु दुर्गुण से दूर भागता नहीं है । एक व्यवहारिक दृष्टि से देखेंगे, तो घर में सब द्रव्य का संचय करे मगर कचरे का संचय करता है ? नहीं । इसी प्रकार अगर आपको मनुष्यजीवन की महक फैलानी हो तो सद्गुणरूपी पुष्प का संचय कीजिए तो मानवता की महक फैलेगी ।

आपको कैसा फूल अच्छा लगता है ? सुगन्धवाला । मान लीजिए कि आपने एक फूल लिया, दिखने में बहुत अच्छा है, परन्तु सुगन्ध नहीं है, तो क्या करेंगे ? (श्रोतागण से आवाज़ : फैंक देंगे) क्योंकि वह प्लास्टिक का फूल था । ऐसा फूल दिखने में आकर्षक होता है, परन्तु उसमें सुगन्ध नहीं है । उसी प्रकार संसार में मनुष्य तो अनेक हैं, परन्तु अगर उनमें मानवता आदि सद्गुणरूपी सुगन्ध नहीं होगी तो उसकी कोई कीमत नहीं है । हमें बाह्य सुगन्ध की बात करनी नहीं है, परन्तु सद्गुण की सुगन्ध फैलानी है । जैनदर्शन सद्गुण को अपनाता है । वह बाह्य चकाचौंध को मानता नहीं, बल्कि गुण की पूजा करता है । आपको मनुष्यजीवन मिला है, तो परदुःखभंजन, परोपकार, निराभिमानता, सद्गुण, सेवा इत्यादि गुणों का अपनाइए, मगर दूसरों का सुख लूटने का कार्य मत कीजिएगा । जो दूसरों का सुख लूटकर अपने सुख में मस्त रहता है, वह सच्चा मनुष्य नहीं है । ऐसे मनुष्य से तो पशु श्रेष्ठ है ।

एक बार जंगल में एक सिंह का बच्चा इधर-उधर छलाँगे मार रहा था । उस समय अचानक भेरी का नाद सुना और बहुत शोरगुल होने लगा । तब बच्चे ने अपनी माता से कहा – "माँ ! इतनी अधिक आवाज़ और शोर-गुल क्यों सुनाई देते हैं ?" तब माँ ने कहा – "बेटे ! एक राजा दूसरे राजा का राज्य जीतने के लिए बड़ी सेना लेकर युद्ध करने जाता है । उसके पास बहुत बड़ा राज्य है । सुख-समृद्धि की कोई सीमा नहीं है, फिर भी असन्तोषी राजा अपनी जाति के भाई को मारकर उसका राज्य हड़पने के लिए जा रहा है । बेटे ! मनुष्य की अपेक्षा हम बहुत क्रूर प्राणी हैं, मगर मनुष्य से तो हम अच्छे हैं, क्योंकि हम अपनी जातिवालों

भाइयों को नहीं मारते हैं। सर्प, बिच्छू आदि विषैल जन्तु भी अपने जाति भाइयों को नहीं काटते।''

सोचिए ! हिंसक क्रूर प्राणियों को भी अपने जाति का कितना गर्व है ? उसने अपने से मनुष्य को अधिक हल्का और नीच माना है ! सिंह स्वयं शिकार करके खाता है, मगर किसी का शिकार हड़प लेता नहीं है। भूखा मर जायेगा, मगर घास नहीं खायेगा। आज के मनुष्य को किसी का मुफ्त में धन मिल जाय तो खुश हो जाता है। जीवन पर्यन्त बैठे-बैठे खाने जितना मिलने पर भी उसे सन्तोष नहीं है। धन प्राप्त करने के लिए चाहे कितने भी पाप करने पड़े, तब भी रुकता (अटकता) नहीं है। ऐसा असन्तोषी मनुष्य धन पाने के लिए हाय... हाय... करता रहता है। आज जहाँ देखे वहाँ बस हाय... हाय... और हाय... है। राशन में अनाज न मिले तो हाय... हाय ! मनुष्यों को बी.पी.भी. हाय...। समझ में आता है कि, सब जगह पर क्या है ? हाय, हाय और हाय। (हँसते हैं।) मैं आपसे पूछती हूँ कि जब जायेंगे तब साथ क्या ले जानेवाले है ?

आपने कमाये लाखो रुपये, फ्लैट लिया रजवाड़ी (ठाठवाला)
फ्रीज, टी.वी. और फर्निचर है, परदेसी गाड़ी,
साथ क्या आप ले जायेंगे ? बोलिए बोलिए
इकट्ठा किया सब आप यहीं देंगे छोड़, साथ क्या ले जायेंगे ?...?

धनवान बड़े-बड़े फ्लैट (मकान) ख़रीदकर उसमें परदेस के फर्निचर लाते हैं। उसमें टी.वी., फ्रीज़, रेडियो, ऐ.सी. इत्यादि सुख की सामग्री बसाते हैं। घूमने के लिए परदेस की गाड़ी लाते हैं, उसका फ्लैट तो राजमहल जैसा सजा देते है और खुश होते हैं। परन्तु कहिए तो सही कि उनमें से साथ क्या ले जायेंगे ? कुछ नहीं। अगर साथ में कुछ ले जाना नहीं है, तो फिर इसके लिए इतनी सारी धमाल क्यों ? समझिए। पैसों से मनुष्य महान बन सकता नहीं है, परन्तु सद्गुणों की संपत्ति प्राप्त करे तो जीवन की विशेषता है। जिसके जीवन में सद्गुण है, वह बाह्य संपत्ति में फीका पड़ता नहीं है और कोई संपत्ति सहज में मिल जाय तो भी लेने के लिए लालायित नहीं होता। स्वयं दुःख सहता है, मगर किसी का लेता नहीं है। ऐसे पवित्र मनुष्य मानवता की महक फैला (महका) सकते हैं। यहाँ एक दृष्टांत याद आता है।

मानवता की महक

सन् १९४७ में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के दो हिस्से हुए। सरहदी विस्तारों की शांति छीन ली गयी और चारों ओर आग-लूटफाट और अत्याचारों का वातावरण फैल गया। तब धनवान धन छोड़कर, किसान अपनी प्राणप्रिय जमीन छोड़कर

भाग चले । माँ-बेटियों के शीयल (चारित्र्य) लूटे गये और न जाने अनेक छोटे फूल जैसे बच्चों के माता-पिता छीन लिये गये । ऐसा भयानक वातावरण हो गया । उस समय लोग **'जलते में जो बचा वही सच्चा'** उक्ति अनुसार लोग गहने, नकद रकम और ओढ़ने-बिछाने के दो-चार कपड़े लेकर शहर की ओर भागने लगे । लाखों-करोड़ों की संख्या में लोग इधर-उधर भागने लगे । उसमें कोई किसी के यहाँ तो कोई कहीं चले गये । उनमें से एक परिवार भी अपने प्राण बचाने हेतु अपना सर-सामान लेकर भागा । अनेक लोग दिल्ली में आये थे, उसी प्रकार यह परिवार भी दिल्ली में आया । स्टेशन से उतरने पर बाप-बेटे अलग हो गये । लड़का जवान था । भागकर आये निराश्रितों के लिए सरकार ने एक कैम्प खोल रखा था और जनता ने भी उन शरणार्थियों के लिए अन्न, कपड़ा आदि का अच्छा सहयोग दिया था । सारे निराश्रितों को सरकार ने कैम्प में रखा था । अतः निराश्रितों का शिबिर हुआ ।

❑ पिता-पुत्र का मिलन :

जैसे पंछी कोई कहीं से तो कोई कहीं से आकर वृक्ष पर बैठने हैं, उस प्रकार ये निराश्रित इकट्ठे हुए, परन्तु उसे बाप को उसका बेटा रमेश न मिला । रमेश की पत्नी मंजुला तथा माता-पिता 'रमेश-बेटे रमेश...' कहकर उसे खोजते हुए चारों ओर पुकारने लगे । तब अन्य निराश्रितों ने कहा - ''भाई ! आपका पुत्र छोटा तो नहीं है । आप किसलिए इतनी अधिक चिन्ता करते हो ? अभी आयेगा ।'' तब रमेश के बाप ने कहा - ''भाई ! चाहे भले ही वह बड़ा हो, परन्तु बाप के आगे तो सदा छोटा ही है और मेरा रमेश अर्थात् मानो दूसरा श्रवण देख लीजिए । वह मेरी खूब सेवा करता है । वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करता था । उस बेटे को भला कैसे भूल सकता ?'' रमेश के पिताजी 'रमेश.. रमेश' कहकर चीखते हुए गली में घुम रहे थे । तभी रमेश सिर पर थैला लेकर आ पहुँचा और पिता का वात्सल्यपूर्ण स्वर सुनकर दौड़कर पिता के गले लग गया । ''बाबुजी ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये थे ? मैं तो खोजकर थक गया । परन्तु आज आप मिले ।'' पिता-पुत्र प्रेम से गले मिल गये ।

रमेश के पिताजी कहने लगे - ''बेटे ! हम तुम्हारी चिन्ता करते थे । तुम्हारी याद हमें कितना सताती थी यह तो हमारा मन ही जानता है । तुम्हारे बिना हमारे प्राण रूक से गये थे । तुम कहाँ चले गये थे ?'' तब रमेश ने कहा - ''पिताजी ! स्टेशन पर उतरने के बाद मैं थैला लेकर उतरा और देखा तो हमारा थैला बदल गया था । उसकी खोज करते रहा । बहुत जाँच की, परन्तु हमारा थैला चला गया और किसी ओर का थैला आ गया है ।'' इतना कहते हुए रमेश की आँखे डबडबा गयी । तब उसके पिता ने पूछा - ''रमेश ! इसमें [illegible]

कोई आवश्यकता नहीं है । हमारा थैला गया और दूसरा आया न ?'' रमेश ने कहा - ''पिताजी ! उसकी मुझे चिन्ता नहीं है । परन्तु किसी का थैला आ गया इसकी मुझे चिन्ता है ।'' पिता ने कहा - ''इस में चिन्ता कैसी ? हमारा थैला गया और दूसरे का हमारे पास आया तो रख लेने का । हमारे थैले में जो चीज़ है उसका वह खर्च करेगा और उसकी जो चीज़ है उसे हम उपयोग में लेंगे ।'' रमेश ने कहा - ''पिताजी ! पराया माल रखना तो पाप है ।'' ''भाई ! मगर तुम कहाँ चोरी करके लाये हो ? हमने चोरी नहीं की है फिर पाप कैसा ? भीड़ में किसी का थैला आ गया, इसे पाप नहीं कह सकते ।'' रमेश को सन्तोष न हुआ । तब पिता ने पूछा - ''भाई ! उस थैले में क्या है ?'' ''पिताजी ! मैंने थैला खोलकर देखा तो नहीं है, परन्तु थैले का वज़न देखने पर मालूम होता है कि उसमें अच्छी खासी नकद रकम और आभूषण होने चाहिए । उपर से पुराने कपड़े डाल दिये हो ऐसा लगता है ।''

❑ कहाँ पिता की कुद्रष्टि और कहाँ पुत्र की पवित्रता ? :

उसका बाप कहता है - ''बेटे ! तुझ पर भगवान ने दया की, जो घर बैठे धन भेजा है । अतः उसे स्वीकार ले, पागलपन क्यों कर रहे हो ? पैसे होगे तो हम व्यापार करेगे ।'' रमेश ने कहा - ''पिताजी ! आपको दुःख लगे तो माफ कीजिए । आप की बात मेरे गले में उतर नहीं रही है । आपने तो मुझे कई बार ऐसी शिक्षा दी है कि बेटे !-

परधन पत्थर मानिए, परस्त्री मात समान ।
इतना करते हरि ना मिले तो, तुलसीदास जमान ॥

चाहे कितना भी पराया धन आपको मिल जाय, मगर उसे पत्थर मानकर छोड़ देना और परस्त्री को माता और बहन समझना । इतना अगर मनुष्य करे तो उसे भगवान मिले बिना नहीं रहते और न मिले तो तुलसीदास कहते हैं कि 'मैं आपका ज़ामीन बनुँगा ।' इस प्रकार शिक्षा दी है और अभी आप क्या बोल रहे हो ? आप मुझे नरक की खाई में धकेलने का मार्ग बताते हैं ? हम पूर्वजन्म के पाप के कारण घर-गृहस्थी छोड़कर यहाँ-वहाँ भटक रहे हैं । तो अब अधिक पाप क्यों करने चाहिए ?'' बेटे की बात सुनकर बाप समझ गया कि और कहने लगा - ''बेटे ! तुम्हारी बात सही है । हमे थैला तो रखना नहीं है, परन्तु हमारे थैले में क्या था ?'' ''उसमें तो हम सबके एक-एक जोड़ पुराने कपड़े, एक-दो ओढ़ने के कम्बल, बीड़ियाँ बनने की लोहे की तश्तरी, थोड़े पत्ते और तम्बाकू - इतना था । हमारा भले ही गया हो, परन्तु मैंने तो परधन पत्थर समान माना है । इसलिए इसे नहीं रख सकता ।'' उसके पिता ने कहा - ''बेटे ! अब मैं तुम्हें रखने को नहीं कहता, परन्तु यह थैला पुलिस को सौंप दें ।'' तब रमेश ने कहा

- "आज पुलिस का भी विश्वास करने जैसा नहीं है । वहाँ सौंपेगे तो हज़म हो जायेगा और विज्ञापन देंगे तो अनेक मालिक होकर आ जायेंगे और फिर सच्चा मालिक मिलेगा नहीं । इससे अच्छा है हम इसे यही रखे ।" जिसका थैला होगा वह खोजता हुआ प्रमाण देकर ले जायेगा ।" "पिता ने कहा - "ठीक हैं । परन्तु ज़रा देख तो सही कि थैले पर उसके मालिक ने नाम आदि कुछ लिखा है ?" देखा तो हरे रंग की स्याही से **'मनु ग्वालियर'** लिखा था । नाम पढ़कर थैला कौन में रखा और बाप-बेटा मनु की खोज करने लगा । देढ़ महीना बीतने पर भी कोई समाचार न मिले । रमेश की चिन्ता की कोई सीमा न थी । उसे चैन से नींद भी नहीं आती थी । शायद आँख बन्द होती तो तत्काल जाग जाता और उसे थैले को देखकर काँप उठता । 'अहो ! यह अमानत कबतक सँभाले रखूँ ? उसका मालिक मिल जाय तो थैला सौंपकर चिन्ता मुक्त हो जाऊँ ।'

❑ पिता की उलझन :

अब तो उसके पिताजी भी परेशान होकर रमेश से कहने लगे कि - "हमारे सामान लेते समय तुम्हारी आँखें कहाँ गयी थी कि यह मुसीबत उठा लाया ? अब तो उसे ढूँढकर मैं भी थक गया हूँ । तुम पुलिस को सौंप दो और नहीं सौंपना हो तो कुँए में डाल दे, मगर अब इस चिन्ता का समाधान कर ।" "पिताजी ! हमें सँभालते हुए ऐसा हो रहा है तो जिसका थैला खोया होगा उसकी दशा क्या होगी ? उसके बच्चों का क्या होता होगा ? जैसा हमारा वैसा दूसरों का । हम पाँच सौ हज़ार रुपये की पूँजी छोड़कर आये हैं, फिर भी इतना दुःख होता है, तो यह बेचारा मनु तो लाखों की पूँजी छोड़कर आया हो ऐसा लगता है । ऐसे संयोगों में मनु के लिए हमारे हृदय में हमदर्दी होनी चाहिए ।"

❑ धन खोने पर शरीर को धो डालना :

एक दिन रमेश और उसके पिता बरामदे में बैठकर बातचीत कर रहे थे । तभी वहाँ एक अधेड़ उम्र का मनुष्य आकर खड़ा हो गया । उसका शरीर बिलकुल फीक्र (सूख) पड़ गया था, आँखें अन्दर उतर गयी थी और मैले वस्त्र पहने थे । मानो कुछ ढूँढ रहा हो ऐसा लगा । उसे देखकर रमेश के पिता ने पूछा - "भाई ! किस का काम है ?" तब उस मनुष्य ने टूटे-फूटे शब्दों में कहा - "भाई ! मेरा एक थैला डेढ़ महीने से खो गया है । उसे ढूँढ रहा हूँ ।" "भाई ! आपका नाम क्या है ?" "मनु ।" "आप कहाँ के रहनेवाले हो ?" "ग्वालियर को ।" पुनः पूछा - "थैली में क्या भरा था ?" "भाई ! ऊपर से माना पुराने कपड़े आदि भरे हैं, परन्तु सच कहूँ तो उसमें मेरे जीवनभर की कमाई

भरी है और क्या कहूँ ? मैं तो बेहाल बन गया हूँ । बंगले, बाग-बगीचे सब ग्वालियर में रह गया और जो गहने तथा नकद रुपये थैले में भरे थे, वह खो गया । आज मेरे फूल जैसे बच्चें, पत्नी सब तीन-तीन दिनों से भूखे हैं । मेरे तो नसीब फूट गये, कल हमारे घर पर अनेक लोग खाते थे, आज मैं रोटी के एक टुकड़े के लिए घर-घर भटकता हूँ ।'' इतना बोलकर वह रो पड़ा । तब रमेश ने हिम्मत देकर कहा - ''भाई ! आपका थैला कैसा था ?'' उसने कहा - ''वैसे तो पुराना था । हरे रंग की स्याही से उस पर 'मनु ग्वालियर' लिखा है ।'' अतः रमेश ने उसके पास कागज़ पर नाम लिखवाया तो अक्षर थैले के अक्षरों से मिलते आ रहे थे, अतः बाप-बेटे को यकीन हो गया कि यही थैले का सच्चा मालिक है । फिर भी अधिक प्रमाण हेतु पूछा - ''भाई ! थैले में क्या-क्या था ?'' ''मनु ने कहा - ''भाई ! कहने से क्या फायदा ?'' ''भाई हिम्मत रखो, सब कुछ ठीक हो जायेगा ।'' तो मनु में हिम्मत आ गयी । उसने कहा - ''थैले में पैंतीस हज़ार रुपये के गहने, पच्चीस हज़ार के चलन के सिक्के, एक हज़ार नकद रुपये, पाँच सोने की ईंटे और पन्दह सेर चाँदी इतनी पूँजी है ।''

रमेश ने पूछा - ''आपके पास पेटी न थी ?'' मनु ने कहा - ''भाई ! मुझे लगा कि पेटी में सारी जायदाद रखता तो कोई लूट लेंगे'' यह सोचकर सब थैले में भरा और उपर पुराने कपड़े डाल दिये, जिससे लेनेवाला यही समझे कि इसमें पुराने कपड़े भरे हैं ।'' ''ठीक, भाई ! आपने समझकर काम किया है । आप चिन्ता मत कीजिए, भगवान की कृपा से आप का थैला मिल जायेगा, परन्तु एक शर्त पर ।'' इतना सुनकर मनु का हृदय खुशी से नाच उठा और वह बोला - ''भाई ! मेरा थेला यदि मिल जायेगा तो उसमें से आधा हिस्सा आपको दुंगा । आपकी जो शर्त हो, कृपया जल्दी से कहिए ।'' रमेश ने कहा - ''उसमें से हमे एक पैसा भी नहीं चाहिए । शर्त मात्र इतनी है कि आपने जो कहा है इसके अनुसार थैले में से निकालना चाहिए और आप हमारे पर आरोप रखे ऐसा नहीं होना चाहिए ।'' मनु ने कहा - ''भाई ! जो मुझे नया जीवन देगा उसके पैर धोकर पीऊँगा ।'' ''भाई ! आप यह क्या कह रहे है ?'' रमेश ने मनु को भीतर ले जाकर उसका थैला दिखाया । थैला देखते ही मनु के आनन्द की कोई सीमा न रही । वह अपने इकलौते प्रिय पुत्र को छाती से लगा दे इस प्रकार थैले को लिपट पड़ा ।

बन्धुओं ! मनुष्य को पैसे कितने प्रिय हैं ? पैसों के पीछे डेढ़ महीने से मनु पागल बनकर भटक रहा था और मिलने पर उसे कितना आनन्द हुआ ? इसे तो अनुभववाला ही जान सकता है । ज्ञानी कहते हैं कि - ''माया है वहाँ दुःख है ।''

क्या है पैसे में, पीछे दौड़िए मत, पैसे जैसा दुःख देनेवाला कोई नहीं है,
दुनिया में क्या है ।
पैसे ललचाते या पीछे दौड़ाते, धरम को भुलाये, शरीर को ये मुर्झाये ।
पानी हो जाय खून का, जो पैसे पाते, उसी पैसे के पीछे कोई
पागल मत होईए...क्या...

समझिए । पैसा मनुष्य को कितना कुछ करवाते है ? अब इस पैसों के मोह में कबतक बैठे रहेंगे ? मनु ने पैसों से भरे थैले को पाने के लिए कितनी मेहनत की ? अन्त में उसे यहाँ थैला मिला गया । वह रोती आँखों से कहने लगा - ''भाई ! मैंने तो आशा छोड़ दी थी । आपने मुझे मेरी संपत्ति दी है । मैं किन शब्दों में आपका धन्यवाद् करूँ ? सचमुच, आप मनुष्य नहीं देव हो ।'' तब रमेश के पिता ने कहा - ''भाई ! मैं देव नहीं हूँ, परन्तु मेरा पुत्र रमेश देव जैसा है । उसे ही यह थैला मिला था । वह बुद्धि पवित्र रख सका तो आपको अपना थैला वापस मिला ।'' तब रमेश ने कहा - ''भाई ! मैंने कुछ नहीं किया है । यदि उपकार मानना है तो प्रभु का मानिए, मेरा नहीं । मैंने तो मनुष्य के रूप में अपना फ़र्ज पूरा किया है । अब आप अपना सामान सँभाल लीजिए । जिससे मेरे सिर से बोझ कम हो जाय ।'' ''मनु ने जैसे कहा था उसी प्रकार से सारा सामान आदि थैले से निकला । देखते देखते बात चारों ओर फैलने पर लोग इकट्ठे हो गये और रमेश की निःस्वार्थ भावना देखकर खुश होकर प्रशंसा के पुष्प बरसाने लगे । रमेश के मुख पर मानवता का तेज़ झलक रहा था । वही है मानवता की महक ।

बन्धुओं ! रमेश ने गरीब होने पर भी हाथ में आयी लक्ष्मी का स्वीकार न किया । गरीबी में ऐसी निर्लेप भावना रखाना । सरल नहीं है । अपना थैला गया उसका अफसोस न किया, परन्तु पराये का थैला कैसे सँभालकर रखा और सच्चा मालिक मिलने पर सौंप दिया, फिर भी मन में अभिमान का नामोनिशान नहीं । आपको ऐसा थैला मिल जाय तो आप क्या करते ? परधन पत्थर समान कि हाथ में आये तो घर समान मानेंगे ? (सब हँसते हैं ।) आप बहुत चालाक हो ? हँसकर बात बदल देते हो । संक्षेप में आपका जीवन रमेश जैसा पवित्र बनाकर मानवता की महक फैलाइए । रमेश ने परधन पत्थर समान माना तो अपना मन निर्मल रख सका । यह था आर्यदेश का मनुष्य । एक समय का हमारा आर्यदेश कैसा पवित्र था और लोग भी कैसे थे ? कहाँ उस समय के मनुष्य का पवित्र जीवन और कहाँ आज का जीवन ? आज परधन में पत्थर जैसी दृष्टि और परस्त्री के प्रति माता जैसी दृष्टि ये दोनों तत्त्व नष्ट हो गये हैं और धर्म का आडम्बर करनेवाले बढ़ गये हैं । अगर सन्तानों को बचपन से उत्तम संस्कृति का महान आदर्श समझाया जायेगा तो जीवन का विकास अच्छा होगा । भौतिक-सुख की लालसा

के लिए संस्कृति को ख़त्म करना मनुष्य को अच्छा नहीं लगता । भौतिक-सुख के लिए बहने सीताजी के शील (चारित्र्य) की संस्कृति का नाश कर दे और व्यापारी धन कमाने के लोभ के खातिर दानवीर जगडुशाह के आदर्श को खत्म कर डाले, यह कितनी सोचनीय बात है ? दानवीर जगडुशाह कैसे महान कार्य कर मानवता की महक फैला गये यह आप जानते हैं न ? उनके जीवन की एक घटना सुनिए ।

दानवीर जगडुशाह

जगडुशाह जैनाचार्य परमदेवसुरिजी के परम भक्त थे । किसी विशाल ज्योतिषी का ज्ञान रखनेवाले ज्योतिषी से उन्हें ज्ञात हुआ कि 'विक्रम संवत १३१३, १३१४, १३१५ इन तीन सालों में भयानक अकाल पड़ेगा, इसलिए जो उचित लगे वह तैयारी अभी से कर लीजिए ।' यह बात सुनकर जगडुशाह ने जगह-जगह से बहुत अनाज लाकर भर दिया । उसके भण्डार अनाज से छलक गये । समय जाते भयानक अकाल पड़ा । लोग अनाज के बिना तड़पने लगे, तब जगडुशाह ने किसी प्रकार के भेदभाव से पर अपने भण्डार खोल दिये । बड़े-बड़े राजा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए जगडुशाह के पास अनाज लेने हेतु आने लगे । तब जगडुशाह ने कह दिया कि - ''यह अनाज उसके लिए हैं जो शाम को अनाज के बिना मरजानेवाला है ! यह अनाज गरीब प्रजा के मुख में जाना चाहिए, किसी को भण्डार भरने के लिए नहीं है ।'' इस प्रकार शर्त रखकर जगडुशाह ने राजाओं को बहुत अनाज दिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने ११२ दानशालाएँ खोल दी गयी । उन्होंने सब मिलाकर आठ अरब और साढ़े छ करोड़ मन अनाज का किसी भी प्रकार के मूल्य के बिना दान दिया । जब जगडुशाह की मृत्यु हुई तब उनके सम्मान में (शोक में) दिल्ली के बादशाह ने सिर से मुकुट उतार दिया था । संघपति ने दो दिन तक अनाज का त्याग किया था ।

ऐसे पुरुष संसार में जन्म लेकर कैसी महक फैला गये । उनके जीवन की घटनाएँ हमारे समक्ष आर्य संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । मानवजीवन की विशेषता सद्‌गुणों से मानवता की महल फैला जाय तब यह मानवजीवन महान मूल्यवान है । उसका सदुपयोग करना चाहिए । लाखों रुपये का हीरो हो, उससे बंगले, गाडी, मोटर, वैभव आदि प्राप्त किया जा सकता है । परन्तु कोई चने, ममरे खरीदे तो कैसा कहेंगे ? (श्रोतागण : मूर्ख ।) सच कहते हो । यहाँ महान पुरुष समझाते हैं कि - ''यह मनुष्यजीवन ऐसा कीमती है कि जिससे सद्‌गति, ऊँचे त्याग, वैराग्य, संयम और तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जा सके, ऐसे अमूल्य मनुष्य-जन्म से तुच्छ और विषमिश्रित चने-ममरे जैसे विषयों का भिखारी वनकर भौतिक-सुख

की लालसा में जीवन त्याग देनेवाले मनुष्य मूर्ख है और परिणामतः दुर्गतियां में भयानक दुःख का भोक्ता बनकर वह तड़प-तड़पकर मरता है । ऐसी परिस्थिति पैदा होने से पहले मनुष्यजन्म के उत्तम मूल्य रखिए और साधना में प्रबल गतिवान बनिए ।

मनुष्यजीवन पाकर संपूर्ण त्याग न कर सके तो, खैर, व्रतधारी बनिए तथा दया, दान, परोपकार, सेवा ऐसे गुण तो पा सकते है न ? ऐसे गुण जीवन में आ जाय तो भी कल्याण होता है । सचमुच आप में करुणा का प्रवाह (प्रपात) रहता होगा, तो आपकी छाप अवश्य दूसरों को प्रेरणा देंगे । एक घटना कहती हूँ ।

लंदन की एक गली में एक रात चोर इधर-उधर भगदड़ मचा रहा था । पुलिस उसके पीछे पड़ी । सीटी पर सीटी बजाते हुए पुलिस उपस्थित हो गये । रात का समय था, इसलिए गली के सारे मकान बन्द थे । चोर को लगा कि अब तो मेरी हालत खराब हो जायेगी । अब कहाँ जाऊँ ? आगे पीछे पुलिस हैं । उसने एक चर्च के द्वार खुले देखे, तो उसमें घुस गया । वहाँ बहुत शांत वातावरण था । चर्च के फाधर चर्च के मैदान के बीच बैठे थे । उनके सामने कुर्सी में उनके मित्र बैठे थे । सभी चाय पीने में लीन थे । यह देखकर चोर को लगा कि 'चल, मैं भी वहाँ जाकर बैठ जाऊँ तो मुझे भी चाय पीने मिलेगी और कोई मुझे चोर के रूप में पकड़ेगा नहीं ।' ऐसा सोचकर वहाँ जाकर बैठ गया । फाधर को प्रणाम किया । जैसा मनुष्य हो ऐसा विवेक-विनय तो दिखाना ही चाहिए न ? और ठग लोगों को ऐसा आडम्बर बहुत आता है । यह चोर बूट और शूट में सज्ज होकर गया था । किसी को शंका तक न हो कि यह मनुष्य चोर होगा । फाधर ने इस नये मेहमान के लिए चाँदी के कप में जाय मँगवायी । चाय पीने के बाद फाधर तो अपने स्वजनों के साथ बातचीत में रत हो गये । परन्तु उस चोर ने विचार किया कि 'यह समय ठीक है और माल भी अच्छा है । चाँदी के कप है तो फिर क्यों जाने दूँ ?' उस भाई साहब के कोट की जेब भी बहुत बड़ी थी । उसने एक के बाद एक कप जेब में रखे । फाधर तो बातचीत में लीन थे, तभी ये नये मेहमान माल लेकर भाग गये । परन्तु भागकर जाता कहाँ ? आगे उसका स्वागत करने के लिए पुलिस तैयार थी । जैसे ही वह चर्च के दरवाजे से निकला कि तुरन्त पुलिसों ने उसे पकड़ लिया । पहले तो उसके पास माल नहीं था, परन्तु अब तो वह माल सहित पकड़ा गया ।

पुलिस ने उसे दो-चार फटके मारे और कोर्ट में मेजिस्ट्रेट के सामने उसे उपस्थित किया । मेजिस्ट्रेट ने चाँदी के कप देखे । तो उस पर फाधर का नाम लिखा था । मेजिस्ट्रेट ने कहा - "अरे पापी ! तुम कहाँ तक पहुँच गये ? सब जगहों पर तो चोरी करते हो, परन्तु धर्म के स्थान-चर्च को भी न छोड़ा ?" मेजिस्ट्रेट ने

फाधर को बुलाकर पूछा - "आपके यहाँ चोरी हुई है ?" फाधर ने कहा - "मेरे यहाँ चोरी ? नहीं... नहीं... चोरी हुई ही नहीं है ।" पास के पिंजरे में खड़े रखे चोर के सामने दृष्टि कर कहा - "देखिए, इस सज्जन ने आपका कुछ चुराया है ?" फाधर ने उसे पहचान लिया और सारी परिस्थिति समझे गये । मैजिस्ट्रेट ने कहा - "देखिए, ये चाँदी के कप आपके हैं । इस पर आपका नाम लिखा है ।" इस फाधर को देखकर कहा - "अरे ! यह तो अन्याय हो गया ।" मेजिस्ट्रेट ने कहा - "इसमें अन्याय कैसा ? आपके नाम के कप इसके पास से निकले हैं और पुलिस उसे यहाँ पकड़कर लाये हैं ।"

❑ फाधर की करुणा ने किया चोर का जीवन-परिवर्तन :

बन्धुओं ! इस फाधर की विशालता देखिए । चोर को भी कैसे बचा लेने हैं ? उन्होंने कहा - "भाई ! यह व्यक्ति मेरा मित्र है, चोर नहीं । ये कप तो मैंने उसे उपहार में दिये है ।" फाधर के शब्द सुनकर मैजिस्ट्रेट ने कहा - "धन्य है फाधर आपकी दया को !" फाधर कोर्ट से बाहर निकल गये और उस चोर को छोड़ दिया । चोर तो आश्चर्यचकित हो गया कि 'यह क्या ? यह तो मनुष्य है या भगवान ! उसने मुझे चाय पिलायी और मैंने उसके घर में चोरी की, फिर भी मुझ पर कैसी दया की ! मुझे मित्र बनाया । अहाहा ! मैं कैसा पापी और वे कैसे पवित्र ! अगर उन्होंने मुझे मित्र न बनाया होता, तो बड़ी मुसीबत हो जाती ।' जैसे ही पिंजरे से निकला और दौड़कर फाधर के पैरों में गिर पड़ा और अन्तःकरणपूर्वक उनकी माफ़ी माँगी और आंसुओ से फाधर के चरण धो दिये । फिर गदगदित होकर कहने लगा - "आप कितने महान हो ? मैंने आपके यहाँ चोरी की फिर भी आपने महान उदारता दिखाकर मेरे प्राण बचा लिये । आपने तो मुझे नया जीवन दिया है । आपका उपकार तो जितना मानू कम है ।" फाधर ने कहा - "तुम्हारा चहेरा देखने से लगता है कि तुम सज्जन मनुष्य हो । परन्तु परिस्थितिवश यह चोरी कि लगती है ।" उसने कहा - "आपकी बात बिलकुल सही है । मेरी बहन के विवाह का अवसर है और मेरे पास कुछ नहीं है । मैंने अपने सगे - सम्बन्धी और मित्रों से सहायता माँगी, परन्तु किसी ने मुझे सहायता न की, तब विवश होकर मुझे यह पाप करना पड़ा है ।"

फाधर ने कहा - "भाई ! तुम चिन्ता मत करो । तुम्हें कितने रुपयों की आवश्यकता है ? मैं वो रुपये आपको दे दुँगा । परन्तु आज के बाद तुम चोरी नहीं करोगे ।" चोर ने फाधर के समक्ष प्रतिज्ञा की कि - 'अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा ।" उसके बाद फाधर ने उसे जितने रुपयों की आवश्यकता थी उतने दे दिये और चाँदी के कप भी उपहार स्वरूप दिये । चोर खुश होता हुआ चला गया । अब आप सोचिए । फाधर ने पापी को पाप से छुडाने के लिए क्या किया ? क्या

का विषय ऋषिपंचमी के रूप में माना जाता है। वे भी इस दिन निर्जला उपवास करते हैं। संवत्सरी पर्व आषाढ़, शुक्ल पक्ष पूर्णिमा से ४९वे दिन में आता है, आगे-पीछे नहीं आता। उसमें भी रहस्य है। जब काल (समय) बदलता है, वह दिन आषाढ़ की पूर्णिमा का होता है। उस समय संवर्तक नामक विषम वायु चलता है। उसमें पहाड़, पेड़, पत्ते सब साफ हो जाते हैं। जैनधर्म तथा ३६३ पाखण्डी के धर्म, अग्नि, राजनीति सब विच्छेद हो जाते हैं। ऐसा विषमकाल आ जाता है और वह काल जब पुनः बदलता है तब आषाढ़ के शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा का दिन आता है, तब वर्षा आती है। वह बारिश लगातार सात दिनों तक बरसती है। उसमें धरती में रहा क्षार धो जाता है। फिर सात दिन आकाश खुल जाता है। फिर सात दिन दूध की बारिश होती है, फिर सात दिन आकाश खुल जाता है, फिर सात दिन घी की वर्षा होती है, फिर सात दिन आकाश खुल जाता है, फिर सात दिन अमृत की वर्षा होती है। इस प्रकार बारिश गिरने से धरती में रसकस आता है और ४९वें दिन पृथ्वी से अंकुर फूटते हैं, घास उगता है। उस दिन ७२ बील में रहते मनुष्य जो मांस, मच्छ, कच्छ आदि का ही आहार लेते होते हैं, वे बील में से बाहर निकलते हैं, तब यह हरी घास देखकर खुश होते हैं और निर्णय करते हैं कि अब आज से हम मांस नहीं खाएगें। यह घास खाकर रहना पड़ेगा। इस दिन से मांसाहारी लोगों ने जीवों को अभयदान दिया। हिंसा करना बन्द कर दिया। वह दिन संवत्सरी का पवित्र दिन था।

संवत्सरी पर्व अर्थात् मैत्री का मंत्र लेने का पवित्र दिन। बैर की आग बुझानेवाला बन्बा। आत्मशुद्धि करने की पवित्र गंगा और पापों को धोने का स्पेश्यल साबुन। वर्ष में एक बार दर्शन देता वात्सल्य से सराबोर सांवत्सरिक महापर्व! हज़ारो तारों का प्रकाश सूर्य में समा जाता है, वैसे महापर्व का प्रकार बाहर की रोशनी को फीका कर हृदय के अन्धकार का नाश कर दर्शन की दिव्य ज्योत फैलाते हैं। इस पर्व के आगमन होते ही लोगों के मन में नया चेतन, नयी जागृति और भव्य भावना की चमक पैदा होती है। सात-सात दिनों तक साधना करने के बाद क्षमा के नीर (पानी) में स्नानकर आत्मा को पवित्र बनाना है। संपूर्ण भारत में और भारत से बाहर प्रशंसित इस पर्व का स्वागत करने भला कौन-सी आत्मा तैयार नहीं होगी? कोई तप से उसका स्वागत करता, कोई दान से, कोई सतीत्व से तो कोई भाव से इस पर्व का स्वागत करता। जीवन की सब से बड़ी कमाई करने के दिन हो, तो ये महापर्व के दिन है। यह पर्व हमें चीख-चीखकर कहता है कि-'ठीक है, कीजिए मेरी स्वागत, परन्तु यह स्वागत मेरी नहीं है मगर इसमें तो आपका स्वागत समाया हुआ है। उस स्वागत में आपकी साधना है और साधना में आपकी सिद्धि है।' आराधना के अमृत से प्राप्त होता परमात्मा पद, उसका नाम ही है स्वागत। मैं स्वागत का इच्छुक नहीं हूँ, परन्तु आराधना से गुँजते मैत्रीयुक्त प्रेम भाव का पूजारी हूँ। स्वागत की बड़ी-बड़ी बातें

करनेवाले, विवेक की बड़ी-बड़ी हिमायते रचनेवाले भी अगर क्रोध, मान, माया, लोभ की जाल में फँसते रहेंगे, तो ऐसे स्वागत से क्या ? ऐसे स्वागत से आत्मा को क्या लाभ ? अन्यथा मेरा स्वागत अगर सच्ची मित्रता से, सच्चे स्नेह, सन्तोष से, सच्चे तप से, सच्चे दान से, सच्ची शांति से, अपूर्व आराधना से, उपसर्ग और आपत्ति में क्षमा रखकर करेंगे, तो मेरा स्वागत सिद्धि के द्वार खटखटायेगा । संवत्सरी का दिन हमें क्षमा का महान सन्देश देता है । क्षमा मनुष्य को शांत और सहनशील बनाता है । क्षमा आत्मा की अनन्तशक्ति को पहचानने का सन्देश देती है । अपकार पर अपकार करना, अपराध को सज़ा देकर निर्बल बनाना दुर्जन का कार्य है । परन्तु अपकार पर उपकार करना, अपराधी को प्रेम से वश करना और क्षमा से पापी के हृदय का परिवर्तन करना - यह उत्तम पुरुषों का कार्य है । मनुष्य भूल करे, परन्तु उसे हृदय से क्षमा देना दैवी गुण है । किसी के साथ झगड़ा हुआ हो या बैर बन्धा हो, उसे हृदय में संगृहीत रखना - पाशवी वृत्ति है, दैवी वृत्ति नहीं । अपराधी के अपराध को हृदय से निकालकर उसके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना और क्षमा देना - दैवी वृत्ति है । क्षमा जीवन में सत्य की सुवास (सुगन्ध) फैलाती है । अगर उस सुगन्ध में सब आकर्षित हो जाय तो उसमें नयी ताकत और ताज़गी भरी है । जहाँ क्लेश के काँटे, ईर्ष्या के कंकड़ और राग-द्वेष के झाँखर उगे है, वहाँ क्षमा नया उजाला, नया जीवन और नया प्रकाश फैलाती है । इस क्षमापना से पूर्व सन्तोष का झरना बहाकर मीठे-मधुरे पान कराये हैं । क्रिया के सहारे क्षमा की कला ने जीवन के पर्दे पर प्रतिबिम्वित किया है ।

❑ क्षमापना अर्थात् आदान-प्रदान का महापर्व :

आदान अर्थात् लेना और प्रदान अर्थात् देना । हमें आज क्या लेना हैं और क्या देना है । सारे संसार का तमाम (सारा) व्यवहार लेन-देन पर चलता है । बड़े व्यापारियों के पास से छोटे व्यापारी माल खरीदते हैं और छोटे व्यापारियों के पास से ग्राहक माल खरीदते है । मूल्य दिया जाता है और माल खरीदा जाता है । आपकी पुत्री के अच्छे परिवार में विवाह करवाते हो और अच्छे परिवार की पुत्री अपने घर लाते हो, उसी प्रकार से हमने जिस-जिस के साथ वैर किया हो, उनके सामने अंतःकरणपूर्वक क्षमा माँगनी है और जो हमारे पास क्षमा लेने आये उसे प्रेम से क्षमा देनी है । वैर के सामने वैर करने से कभी भी वैर की ज्वाला शांत होनेवाली नहीं है । भगवान महावीर का दिव्य सन्देश हैं कि - 'अवैर से शमे वैर, शमे न वैर से वैर ।' इस मंगलसूत्र को अनन्तानन्त महापुरुषों ने हृदय से स्वीकारा है । विज्ञता से स्वीकारा है और संयम की अनमोल साधना से उसे सम्मानित किया है । यह रत्नमणिका परम पुरुषों का जीवन रसायन है, अनुभव का अमृत है, हृदय की रसकूपिका है, आत्मा का अमृतकुंभ है और अध्यात्म-साधना का बेजोड़ नवनीत है । इस वाक्य के प्रत्येक

शब्द में जीवन सफलता का सुमधुर संगीत बज रहा है । उसके प्रत्येक अक्षर देह से मानो हृदय ऐक्यता का आंदोलन जगाने का वात्सल्य बहाते, प्रेम के सेतु को सुदृढ़ करता क्षमा का महँगा नूर साक्षात् रूप में बह रहा है । बैर की वसुली बैर से नहीं, परन्तु वात्सल्य से हो सकती है, पाशवीयता से नहीं, परन्तु पवित्रता से हो सकता है । दैव्य-वृत्ति से नहीं बल्कि दिव्यता से हो सके, शत्रुता से नहीं मगर स्नेहाण हृदय से हो सके, अतः बैर की आग को बुझाने के लिए अबैर की उपासना कीजिए ।

एक समय का हमारा भारत देश प्रेम का पयोदधि, मैत्री का महासागर, वात्सल्य का वारिधि और क्षमा का निधि माना जाता था । भारत की पवित्र भूमि अर्थात् अबैर की उपवन भूमि, प्रेम की पुनित गंगा । वात्सल्य की वसुधा और क्षमा की सरिता मानी जाती थी । जहाँ वात्सल्य की वसन्त हरियाली चारों ओर महकती थी । जहाँ विश्वमैत्री के रणसिंघे फुँके जाते थे, जहाँ बैरियों का स्वागत वात्सल्य से होते थे । इसी पवित्र भूमि पर आज हिंसा की हिमायते स्पर्धा कर रही है । हिंसा के घोर संग्राम में लाखों, करोड़ों और अरबों निर्दोष प्राणियों का कत्लेआम हो रहा है । अबैर की उपवन भूमि आज बंजर बनकर शून्य, भयानक बैर के वड़वानल में जल रही है । उस बैर की धधकती धरा पर अगर अबैर की आषाढ़ी मेघधारा सींची जाय तो वह धरा ठंडी बन सकती है । हज़ारों हृदय बदलने की, लाखों के दिल के दावानल को बुझाने की अचिंत्य शक्ति इस सूत्र में संगृहीत है । जैसे सूर्य लाखों टन तिमिर का क्षय करता है, एक ही अणुबम करोड़ों का संहार करता है, हिराकणी करोड़ों का मूल्य पा सकती है, उससे अधिक शक्ति यह गौरवशाली शक्ति रख सकती है । हृदय आकाश में चारों ओर फैले बैर और विषाद के घने बादलों को क्षणभर में विलीन कर देता है । भीषण कर्मों के पहाड़ों का प्रत्येक पल में चूर्ण करता है और आँख के झपकते ही जो-जो मनुष्य बाद के जन्म में परमाधामियों के मेहमान बननेवाले थे, उन्हें वह परमात्मा के लाडले राजकुमार बना देते हैं । बैर और वात्सल्य के संघर्षण में आखिर स्नेह की विजय होती है । इतिहास के पन्ने में जल और ज्वाला के जितने संग्राम टाँके (लिखे) गये हैं, उसमें जय जल को मिली है और ज्वाला को पराजय मिली है । क्षमा जल है और बैर ज्वाला है । एक का जीवन प्रशांत है, जब कि दूसरे का जीवन प्रचंड है ।

कहाँ परमार्थमूर्ति भगवान पारसनाथ और कहाँ काजल से घने क्रूरता को फैलानेवाला क्रूर कमठ ! कहाँ क्षमामूर्ति भगवान महावीर और कहाँ तेजुलेश्या छोड़नेवाला तेजोद्वेषी अज्ञ गोशालक ! कहाँ करुणामूर्ति बुद्ध और कहाँ कृतज्ञता के सामने कृतघ्नता करनेवाला अधम शिष्य ! कहाँ मंगलमूर्ति महात्मा गाँधीजी और कहाँ राष्ट्रपिता की जीवन-रोशनी को बुझानेवाला घातकी गोडसे ! कहाँ गुणमूर्ति गुण-सेन और कहाँ आग को फैलानेवाला अधम अग्निशर्मा ! नौ-नौ जन्मों तक प्रचंड वैर

की पहलु को विभिन्न रूप में खेलने के बावजुद और जीवन-मृत्यु के झुलने में झुलाने पर भी परम सामर्थ्य के धारक होने पर भी बैरी के प्रति पलक भी झपकाई नहीं है और जहरीले हृदय के नखशीख तक फैले प्रचंड विष को जो क्षमामूर्ति अमृत के घूँट समझकर खुशी खुशी पानकर पी गये और साथ में बैरी (दुश्मन) के बैर के वायु को शांति भरे, अमृत भरी आँखों (प्रसन्न चित्त) से अमृत का शीतल छिड़काव किया। धन्य-धन्य है उनकी क्षमता को और क्षमा की साधना को ! वे परमार्थदर्शी चाहे तो आँख के झपकते ही उन प्रतिस्पर्धियों को पराजित कर सकते थे, फिर भी मौन के महासागर में यात्रा करते रहे, उसका कारण 'शमे न बैर से बैर।' - यह मंत्र उनके जीवन में जीवन्त था अतः अन्त में बैर का विश्राम बैर से नहीं, शस्त्र से नहीं, सेना से नहीं, परन्तु क्षमा के मंगल संगीत से तथा प्रेम के पीयूष पान से और स्नेह की बाँसुरी के मीठे नाद से करवा सके और विश्व के जीवों को कहते गये -

"बैर से बैर शमे नहीं जग में, प्रेम से प्रेम बढ़ता है जीवन में।"

इस उक्ति के अनुसार बैर का प्रतिशोध बैर से लेंगे तो जीवन में बैरी बढ़ेंगे और प्रेम से लेने जायेंगे तो संसार में आपके प्रेमी बढ़ेंगे। प्रेम, पवित्रता, परमार्थता ये क्षमा की धरती पर अंकुरित पुष्प हैं। क्षमा की अगोचर धरती को ढूँढने का कोई महामंत्र हो तो वह मिच्छामि दुक्कडं है। प्रेम, क्षमा और वात्सल्य की एक महल के साथ तुलना की जाय तो प्रवेशद्वार मिच्छामि दुक्कडं है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि मिच्छामि दुक्कडं क्षमा के प्रयोग-केन्द्र में प्रवेश करने का पासपोर्ट है। इस पासपोर्ट के बिना अगर हम भूल से क्षमा के महल में प्रवेश करेंगे, तो शायद तुरन्त क्रोधरूपी द्वारपाल हमें वापस भेज देगा। परन्तु मिच्छामि दुक्कडं का पासपोर्ट रखा होगा तो क्रोध हमें परेशान नहीं कर सकेगा। मिच्छामि दुक्कडं हमें ऐसा उपदेश देता है कि भूलभरे भूतकाल को भूल जाईए और प्रेमभरे वर्तमान काल को खड़ा कीजिए। शत्रु की शत्रुता भूल जाईए और उसे मित्र मानकर प्रेम से स्वीकार लीजिए।

बन्धुओं ! वैर आत्मा का वैरी है। इस भव में जीव वैर लेकर जाता है तो उसे भवोभव कर्म की करवत (आरा) से कटना पड़ता है। भवोभव में उसे भयभीत रहना पड़ता है। 'दसवैकालिक सूत्र' में भगवन्त ने फरमाया है कि - *"वेराणु बंधाणि महब्भयाणि"* - वैर का अनुबन्ध महान भय का कारण है। अतः हमारा जीवन ऐसा बनाना चाहिए कि सामने 'मारो... मारो...' करता क्रोधी से क्रोधी मनुष्य आया हो वह भी शांत हो जाय। हमारा जीवन देखकर सामनेवाला मनुष्य सुधर जाय। वैर का विसर्जन कर स्नेह का सर्जन करे। ज्वाला की तरह जलनेवाला मनुष्य शीतल जल समान बन जाय। यहाँ एक घटना याद आती है।

बैर का शमन : स्नेह का सर्जन

चितौड़ में एक महान कवि पैदा हो गये । वैसे तो वे चितौड़ के नहीं थे, परन्तु उनका मूल स्थान सौराष्ट्र था । वे दो भाई थे । उसमें बड़ा भाई बहुत शांत था । छोटा भाई थोड़ा उग्र (स्वभाववाला) था । एक बार दोनों भाइयों के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया । बड़े भाई ने छोटे भाई को बहुत समझाया, परन्तु वह किसी प्रकार मानता नहीं और इसके विपरीत ओर अधिक क्रोध कर हाथ में लकड़ी लेकर बडे भाई को मारने के लिए भागा । बड़े भाई को लगा कि-'मेरे इतने समझाने पर भी वह क्यों समझ नहीं रहा है ? और फिर मुझे मारने के लिए आ रहा है ?' अतः उन्हें भी बहुत क्रोध आया ।

❑ अपनी भूल के परिणाम-स्वरूप छोड़ा देश :

क्रोध में आकर छोटे भाई के हाथ से लकड़ी हथिया कर छोटे भाई को मार दी । तुरन्त छोटा भाई गिर पड़ा और मृत्यु की शरण में चला गया । कहावत है न कि **'कौएँ का बैठना और डाली का गिरना ।'** इस प्रकार बड़े भाई से धीरे से लकड़ी मारने पर भी छोटे भाई का आयुष्य पूर्ण हो जाने के कारण मर गया । छोटे भाई की मौत से बड़े भाई को बहुत दुःख हुआ । 'अरेरे... मैंने बड़ा होकर छोटे भाई को मारा ?' भाई के मरने के छ महीने बाद भी उसके मन से अफसोस जाता नहीं है । लोग भी कहने लगे कि - 'बडे भाई ने छोटे भाई को लकड़ी मारकर मार दिया ।' तब बड़े भाई को लगा कि - 'मैं इस गाँव में जबतक रहुँगा, लोग मुझे चैन से रहने नहीं देंगे । फिर छोटे भाई की पत्नी तथा बच्चों के सामने देखा तक न जाता है । इससे अच्छा है मैं यह गाँव छोड़कर ही चला जाऊँ ।' इस प्रकार वह सोचकर सौराष्ट्र छोड़कर अपनी पत्नी तथा बच्चों को लेकर चितौड़ आकर रहने लगा ।

❑ पिता की तरह पुत्र भी बना कविरत्न :

चितौड़ में आकर उसने अपनी चालाकी और शक्ति से चितौड़ की राजसभा में स्थान जमा दिया । कुछ ही समय में उसने 'कविरत्न' की उपाधि-भी प्राप्त कर ली । उसका पुत्र भी बहुत चालाक (श्रेष्ठ) कवि बना । समय जाने पर उसके पिता की मृत्यु हुई । परन्तु पिता से भी पुत्र अधिक चालाक कविरत्न बनने से राजा का वह प्रिय बन गया । राजा के पास उसका इतना अधिक सम्मान हो गया कि राजसभा में जाने के लिए राज्य से पालकी लेकर सेवकगण उसे लेने जाते और घर छोड़ भी जाते । उसके घर में नौकर-चाकर और बावर्ची राज्य की ओर से रखे गये थे और चौकीदार भी पहरा देते थे । इतने सुख-वैभव में ये कवि रहते थे । फिर भी उसमें जरा-सा भी अभिमान न था । क्रोध तो उसे जीवन में कभी आया ही न था, ऐसा पवित्र कवि था । चारों ओर उसकी बहुत प्रशंसा होती थी ।

❑ **बैर लेकर रहेंगे :**

दूसरी ओर उसके पिता की लकड़ी लगने पर जो छोटा भाई मर गया था उसके दो पुत्र थे । वे भी बड़े होकर कवि बने । एक दिन दोनों पुत्रों ने अपनी माता से कहा - "माँ ! हम बड़े हो गये, परन्तु अभी तक अपने पिता को हमने देखा नहीं है, तो वे क्या हमारे बचपन में ही छोटी उम्र में चल बसे थे ? क्या उन्हें कोई रोग हुआ था ?" तब माता ने उत्तर दिया - "बेटे ! तुम्हारे पिताजी स्वयं नहीं मरे थे, परन्तु उनके बड़े भाई ने लकड़ी मारकर उनकी हत्या कर दी थी ।" यह सुनते ही ज़वान पुत्रों का खून खौल उठा । बस, अब तो चाहे कुछ भी हो जाय, हम अपने पिता की मौत का बदला अवश्य लेंगे । माँ ! वे रहते कहा हैं ?" तब माता ने कहा - "उन्हें यहाँ से गये तो बहुत वर्ष बीत चुके, वे अभी तक यहाँ आये नहीं हैं । परन्तु मैंने सुना है कि वे चितौड़ में जाकर रहते हैं । वहाँ वे बहुत बड़े कवि बने हैं ।" यह सुनकर छोटे भाई के पुत्र चितौड़ आये ।

❑ **बैर का प्रतिशोध लेने चितौड़ में आगमन :**

देखिए, बैर क्या काम करता है ? बैर का प्रतिशोध लेने के लिए सौराष्ट्र छोड़कर चितौड़ आये और एक मकान में रहने लगे । कुछ दिनों में राज्य के लोगों से सम्बन्ध बाँध लिया और चितौड़ की राजसभा में वे बड़े संगीतकार के रूप में रहने लगे । यहाँ चाहे कितने भी कवि आ जाते राज्य के कवि से बढ़कर न आते थे । क्योंकि किसी में बुद्धि हो, शक्ति हो, परन्तु साथ में अभिमान, क्रोध, लोभ आदि भी होते, जबकि ये कविरत्न तो बहुत सुशील, निराभिमानी और निर्लोभी थे । उनकी दृष्टि में ईर्ष्या न थी । राज्य में कोई नया कवि आता तो उसका प्रेम से स्वागत करता । इन नये संगीतकारों को भी प्रेम से बुलाते है । उसे पता नहीं कि ये दोनों मेरे चाचा के बेटे हैं और अपने पिता की मौत का प्रतिशोध लेने के लिए आये हैं । परन्तु वे दोनो भाई तो स्वयं जिस कार्य के लिए आये हैं इसके लिए मार्ग खोज रहे थे । वहाँ के प्रमुख लोगों से पूछा कि-'ये बड़े कवि कौन हैं ? उनके पिताजी कौन थे ?" पूछने पर पता चला कि उनके पिता को मारनेवाला तो मर गया, परन्तु यह उसका पुत्र यहाँ बहुत बड़ा कविरत्न है ।" बस, अब तो किसी प्रकार हम उसे मार डालेंगे और उसे मारने के उपाय खोजने लगे । परन्तु यह तो अकेला कभी घर पर जाता ही नहीं था । घर आने-जाने के लिए वाहन और चारों ओर सिपाहियों का पहरा था, फिर उसे कैसे मारते ? उसके घर के आसपास भी पहरा है । अब क्या किया जाय ? वे दोनों भाई परेशान होने लगे ।

बन्धुओं ! जिसके पेट में पाप होता है वह जलता है । जिसके पेट में पाप नहीं है उसे क्या चिन्ता ? कविरत्न को इस बात का कोई ख्याल ही नहीं था । एक

बार पाखी का पवित्र दिन था, इसलिए उसने सेवकों से कहा कि - "आज मुझे पालकी में नहीं बैठना है । मैं पैदल ही घर जाऊँगा ।" तब उसके सिपाहियों ने कहा - "साहब ! हम आपको घर तक छोड़ने आये ?" तब कवि ने कहा - "भाई ! छोड़ने आने की आवश्यकता नहीं है । मैं चला जाऊँगा ।" कवि के बहुत कहने पर सिपाहियाँ साथ में न गये । पवित्र कविरत्न निर्भयता से घर जा रहे थे । उन दोनों भाइयों ने देखा कि कवि अकेला जा रहे है तो दोनों उसके पीछे चलने लगे । मार्ग में एक गली का रास्ता आया । उस रास्त में लोगों का आना-जाना कम है । इस मौके का लाभ लेकर वे दोनों सामने आ गये और कहा - "हे पापी ! खड़ा रह । हमारे पिताजी को तुम्हारे पिता ने मार डाले हैं, हम इसका प्रति शोध लेने आये हैं । अब तुझे ज़िन्दा नहीं जाने देंगे ।" दोनों ने तलवार निकालकर कहा - "अब मरने के लिए तैयार हो जा ।"

❑ कविरत्न की हितशिक्षा :

कविरत्न ने कहा - "भाई ! मेरे और तुम्हारे पिताजी के बीच किन संयोगों में झगडा हुआ होगा, उसका मुझे या तुम्हें पता नहीं है । भाई ! हम सब भाई हैं । हमें भूतकाल के बैर की परम्परा रखनी नहीं है । अगर आप मुझे मारेंगे तो मेरे बेटे आपके प्रति बैर रखेंगे और आपको मारेंगे । आपके बेटे मेरे बेटों को मारेंगे । इस प्रकार बैर की परम्परा चलती रहेगी । फिर हमें ऐसी परम्परा चलाने की क्या आवश्यकता है ? हम भाई-भाई बनकर प्रेम से रहते है आप मेरे घर चलिए ।"

❑ बैरी भाइयों का क्रोध :

प्रतिशोध लेने आनेवाले चाचा के लड़के कहने लगे - "तुम्हारा तत्त्वज्ञान हमें सुनना नहीं है । अपना ज्ञान अपने पास ही रहने दे । तेरा बाप तो हमारे बाप को मारकर बड़ा आदमी बनने यहाँ आकर बसा था और अब तुम बड़े ज्ञानी बनकर हमें उपदेश देने लगे हो ? बचने के सारे मार्ग बन्द है, हम तुझे ज़िन्दा कहाँ छोड़नेवाले हैं ?" देखिए, कविरत्न की बात कितनी सुन्दर और समझने जैसी है । बाप ने जो किया सो किया, परन्तु हम भी इस प्रकार बैर रखेंगे तो परिवार में बैर की परम्परा चली आयेगी और महान कर्मों का बन्धन होगा । इस बैर की परम्परा इस भव और परभव में भी आत्मा के लिए महान दुःखदायी सिद्ध होगा । यह तो एक और एक दो जैसी बात हुई न ? परन्तु जिसके हृदय में बैर की आग सुलग रही है उसे ऐसी सच्ची और अच्छी बात भला कहाँ से गले उतरती ? बैर न्याय की बात समझने नहीं देता; और उपर से नये पापकर्म करवाता है । जबकि मैत्रीभाव सामनेवाले के अन्याय की बातें भी न्याय से समझ लेता है और अन्य अनेक गुणों को प्रकट करता है ।

❑ **कवि का मित्रभाव :**

कविरत्न ने कहा - ''मेरे भाइयों ! अभी भी मैं आप से कहता हूँ कि कुछ समझिए और बैर की (प्रतिशोध) की बात छोड़ दीजिए ।'' तब वे दोनों भाई कहने लगे - ''हमें तुम्हारी खोखली बातें सुनकर यह मौका खोना नहीं है । हम तो तुम्हें मारकर ही चैन लेंगे ।'' तब कवि ने कहा - ''क्या आपके हृदय में जली प्रतिशोध की आग किसी प्रकार शांत नहीं होगी ?'' ''नहीं । हम तो तुझे मारनेवाले हैं, इसमें ज़रा भी देर होगी नहीं ।'' तो कवि ने कहा - ''देखिए भाइयों ! आपको मुझे किसी भी प्रकार मारना ही हो तो मैं आपको मार्ग दिखाता हूँ । अभी आप मुझे मारेंगे तो कोई न कोई देख जायेगा और आप पकड़े जाओगे । फिर मैं तो कभी अकेला घर से राजसभा या राजसभा से घर आता-जाता नहीं । मैं वाहन में ही जाता हूँ और मेरे घर के बाहर पुलिस-पहरा देते हैं, इसलिए आप मुझे मार नहीं सकेंगे । इसलिए आप ऐसा कीजिए कि आज रात दस बजने के बाद इस गाँव के बाहर शंकर भगवान का मन्दिर है वहाँ तलवार लेकर आना । मैं भी वहाँ आकर खड़ा रहुँगा । आप खुशी से मुझे मार डालिएगा ।'' तब वे दोनों भाई कहने लगे कि - ''अब तुम हम से डर गये हो और किसी भी प्रकार यहाँ से भागने के लिए मार्ग खोज़ रहे हो, परन्तु हम तुम्हें भागने देंगे नहीं ।'' तब कवि ने कहा - ''भाई ! मैं आपको ठगने के लिए नहीं कह रहा हूँ, परन्तु यदि मुझे मारकर ही तुम्हारी आत्मा को शांति मिलनेवाली हो और बैर की परम्परा का विसर्जन होता हो, तो मैं अभी मरने के लिए तैयार हूँ । मुझे मरने का डर नहीं है, परन्तु मुझे अभी मारने में आपको ही जोखिम है । मेरी मौत के बाद आप किसी मुसीबत में फँस जाओं, इसलिए मैं आपको एक मार्ग दिखाता हूँ । आप श्रद्धा रखिए । मैं अवश्य आज रात शंकर भगवान के मन्दिर में पहुँच जाऊँगा और आप खुशी से निर्भयता-पूर्वक मार सकेंगे ।''

बन्धुओं ! कवि की समझदारी कितनी सुन्दर है ? अपनी मौत से भी अगर वैर की परम्परा रूकती हो तो मरने के लिए तैयार हैं । क्या आज कोई मनुष्य ऐसा मैत्री-भाव रख सकता है ? वे दोनों भाई कहने लगे - ''तुम रात को शंकर के मन्दिर में सामने से (मर्ज़ीसे) मरने के लिए आ जाय ऐसा हमें विश्वास नहीं है । परन्तु तुम पवित्रता की बहुत बातें कर रहे हो तो आज कसौटी हो जाय ।'' ऐसा कहकर दोनों भाई चले गये । कविरत्न तो घर आये । भोजन आदि पूर्ण कर अपनी पत्नी को एकांत में बुलाकर कहा - ''मैं आज एक दिव्य सन्देश लेकर आया हूँ ।'' पत्नी ने कहा - ''नाथ ! ऐसा तो क्या सन्देश लाये हो कि आज आप के मुख पर अलौकिक आनन्द दिखता है ?'' तब कवि ने कहा - ''मेरे चाचा के दो लड़के अपने पिता की मौत का प्रतिशोध लेने आये हैं और इस प्रकार घटना हुई है । बोलिए, अब

आपकी क्या इच्छा है ? क्या हमारी परम्परा में बैर रखना है या बैर की परम्परा रोक देनी है ?'' तब पत्नी ने कहा - ''स्वामीनाथ ! बैर तो विष जैसा है । हमें किसी के साथ बैर नहीं रखना है ।'' कवि ने कहा - ''अगर आप को बैर न रखना हो तो मेरा मोह छोड़ना पड़ेगा । मैं आज रात उनको वचन दिये अनुसार मरने के लिए शंकर के मन्दिर में जानेवाला हूँ । आपकी आज्ञा है न ?'' तब पत्नी ने कहा - ''पति तो सती स्त्री का सौभाग्य है । पति को अपनी मर्जी से भेजते हुए किस पत्नी को दुःख न होगा ? फिर भी आप अगर बैर के बीज को नष्ट करने के लिए अपना बलिदान दे रहे हैं तो मैं खुशी से आज्ञा देती हूँ ।'' इतना कहकर दुःखित हृदय से पति को बिदा किया । कवि तो दस बजने से पहले निश्चित स्थान पर पहुँच गये । वे दोनों भाई तो ऐसा मानते थे कि क्या वह आयेगा ? वह तो कहीं भाग गया होगा, फिर भी चलो देख लेते हैं । दोनों भाई तलवार लेकर वहाँ आ पहुँचे ।

❑ कविरत्न का शौर्य :

दोनों भाइयों को देखकर कवि कहने लगे - ''हे मेरे प्रिय भाइयों ! मैं आ गया हूँ । अब आप कहो इस प्रकार खड़ा हो जाऊँ । आप अपनी तलवार हाथ में लेकर अपना कार्य जल्दी ही पूर्ण कीजिए और अपनी आत्मा को शांति दीजिए ।'' सोचिए इस कवि में कितना शौर्य होगा ? मरने के लिए हम लोग काँप उठते हैं और यहाँ तो बैर की आग शांत करने की कितनी तैयारी है ! क्या उनको बचना होता तो वे बच न सकते थे ? क्या उनमें शौर्य न था ? वे राजा को बहुत प्रिय थे । भाइयों ने मार्ग में रोका तो पता चल गया था कि ये प्रतिशोध लाने आये हैं । वे चाहते तो राजा को बात कर उन्हें जेल में डाल सकता था ।

❑ प्रतिशोध लेने आनेवालों की निर्दयता :

कविरत्न मरने के लिए हँसते मुख से आकर खड़े हैं । मौत के मुख में खड़े हैं, परन्तु मुख पर अद्‌भुत प्रसन्नता है । वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि-''हे प्रभु ! मेरे बलिदान के बाद मेरी परम्परा में बैर न रहे और शांति हो । वे पवित्र बने ऐसी उन्हें सद्‌बुद्धि देना ।'' ऐसा कहकर नवकार मंत्र के स्मरण में लीन हो गये । क्षमा का कैसा अद्‌भुत फल मिलता है यह सुनिए ।

जैसे ही वे दोनों भाई कविरत्न को मारने के लिए तलवार उठाते है कि तभी दूर से घोड़े की टाप की आवाज़ सुनायी दी । तीव्र गति से घोड़े दौड़ते हुए पास आ रहे हो ऐसा लगा । दोनों भाई डर गये कि कोई मनुष्य घोड़े पर बैठकर यहाँ आ रहा हैं । अब अगर हम इसे मार डालेंगे तो मारकर भाग नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे पास घोड़े भी नहीं है कि उस पर बैठकर भाग जाय । आनेवाला तो हमे पकड़कर मार डालेगा । इस धवराहट में उनके हाथ गिर गये और गुस्सा होकर कविरत्न से

कहने लगे कि - "हे पापी ! तुमने हमें ऐसा कहा था कि मैं अकेला आऊँगा, परन्तु तुमने तो हमें धोखा दिया है ! अपने इन चाचों को गुप्त रूप से आने को कह होगा । तुम्हें जितनी ठगबाजी (धोखेबाजी) करनी हो कर लो, परन्तु एक बात अवश्य समझ लेना कि हम तुम्हें मारे बिना नहीं रहेंगे ।" कविरत्न ने कहा - "भाइयों ! मैंने किसी को गुप्त रूप में बुलाया नहीं है । किसी से कुछ बात की नहीं है और कौन आ रहा है यह भी पता नहीं है ।" तब वे दोनों कहने लगे कि - "तो फिर अभी अन्धेरे में कौन आ रहा है ? चोर होकर शाहूकार की बात करता है ?" इस प्रकार बात हो रही थी तभी दो घोड़े सामने आकर खड़े रह गये । एक घोड़ा खाली था और दूसरे घोड़े पर से कविरत्न की पत्नी उतरी । यह देखकर कविरत्न पूछते हैं कि -"आप अन्धेरी रात में यहाँ अकेले क्यों आयी ?"

❑ कविरत्न की पत्नी की समझदारी और उदारतापूर्वक उत्तर :

कविपत्नी बहुत शांतिपूर्वक मधुर स्वर से कहने लगी - "स्वामीनाथ ! आप तो मुझे सारी हकीकत समझाकर हमारे परिवार की परम्परा में बैर का विषम दावानल सुलगता न रहे उसे शांत करने यहाँ चले आये । उस समय मुझे आपके वियोग का दुःख हुआ, परन्तु मैंने अपने मन को दृढ़ कर दूसरे क्षण विचार किया कि-'अहो ! मैं कितनी भाग्यवान हूँ कि बैर के विषम दावानल को शांत करने के लिए अपनी जान का बलिदान देनेवाले उदार और पवित्र पति की पत्नी बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ । ऐसे परमेश्वर समान पति तो किसी पुण्यवान स्त्री को मिलते है ।" देखिए, यह कविपत्नी भी उदार है । अब इतनी भयानक रात को वह अकेली यहाँ क्यों आयी इसकी बात करती हुई कहती है - "स्वामीनाथ ! आपको मैंने आज्ञा तो दी और आप यहाँ आये, परन्तु बाद में मुझे लगा कि - 'मेरे पति तो बैर का दावानल शांत करने के लिए खुशी से देह का बलिदान देंगे इसमें कोई शंका नहीं है, परन्तु ये मेरे दो लाड़ले देवरों के पास तो घोड़ा या अन्य वाहन तो होगा नहीं । फिर वे इनको मारकर अन्धेरे में कहाँ जायेंगे ? पैदल तो चलकर कितने दूर जा सकेंगे ? अभी चार-पाँच घण्टों का समय तो बीत जायेगा । मन्दिर का पूजारी पूजा करने आये और अन्य लोग दर्शन हेतु आयेंगे और अगर उन्होंने शव को देख लिया तो राजा को पता-सूचना मिल जायेगी । आप तो राजा को बहुत प्रिय हो । अतः राजा आपका वध करनेवाले की खोज करवायेंगे और मेरे देवर पकड़े जायेंगे और राजा उन्हें फाँसी दे देंगे । बाद में उनके और हमारे सन्तानों के बीच में पुनः बैर पैदा हो जायेगा । आप के बलिदान के बाद भी अगर बैर की परम्परा जारी रही तो इसका क्या अर्थ ?' ऐसा विचार मुझे जल्दी में न आया, परन्तु आपके जाने के बाद मुझे यह विचार आया तो मैं डर गयी कि-'मेरे दो देवरों का क्या होगा ?' इसलिए उन्हें मृत्यु के मुख से बचाने के लिए ये दोनों घोड़े लेकर मैं आयी हूँ । जिससे आप को

आपकी क्या इच्छा है ? क्या हमारी परम्परा में बैर रखना है या बैर की परम्परा रोक देनी है ?'' तब पत्नी ने कहा - ''स्वामीनाथ ! बैर तो विष जैसा है । हमें किसी के साथ बैर नहीं रखना है ।'' कवि ने कहा - ''अगर आप को बैर न रखना हो तो मेरा मोह छोड़ना पड़ेगा । मैं आज रात उनको वचन दिये अनुसार मरने के लिए शंकर के मन्दिर में जानेवाला हूँ । आपकी आज्ञा है न ?'' तब पत्नी ने कहा - ''पति तो सती स्त्री का सौभाग्य है । पति को अपनी मर्जी से भेजते हुए किस पत्नी को दुःख न होगा ? फिर भी आप अगर बैर के बीज को नष्ट करने के लिए अपना बलिदान दे रहे हैं तो मैं खुशी से आज्ञा देती हूँ ।'' इतना कहकर दुःखित हृदय से पति को बिदा किया । कवि तो दस बजने से पहले निश्चित स्थान पर पहुँच गये । वे दोनों भाई तो ऐसा मानते थे कि क्या वह आयेगा ? वह तो कहीं भाग गया होगा, फिर भी चलो देख लेते हैं । दोनों भाई तलवार लेकर वहाँ आ पहुँचे ।

❑ कविरत्न का शौर्य :

दोनों भाइयों को देखकर कवि कहने लगे - ''हे मेरे प्रिय भाइयों ! मैं आ गया हूँ । अब आप कहो इस प्रकार खड़ा हो जाऊँ । आप अपनी तलवार हाथ में लेकर अपना कार्य जल्दी ही पूर्ण कीजिए और अपनी आत्मा को शांति दीजिए ।'' सोचिए इस कवि में कितना शौर्य होगा ? मरने के लिए हम लोग काँप उठते हैं और यहाँ तो बैर की आग शांत करने की कितनी तैयारी है ! क्या उनको बचना होता तो वे बच न सकते थे ? क्या उनमें शौर्य न था ? वे राजा को बहुत प्रिय थे । भाइयों ने मार्ग में रोका तो पता चल गया था कि ये प्रतिशोध लाने आये हैं । वे चाहते तो राजा को बात कर उन्हें जेल में डाल सकता था ।

❑ प्रतिशोध लेने आनेवालों की निर्दयता :

कविरत्न मरने के लिए हँसते मुख से आकर खड़े हैं । मौत के मुख में खड़े हैं, परन्तु मुख पर अद्‌भुत प्रसन्नता है । वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि-''हे प्रभु ! मेरे बलिदान के बाद मेरी परम्परा में बैर न रहे और शांति हो । वे पवित्र बने ऐसी उन्हें सद्‌बुद्धि देना ।'' ऐसा कहकर नवकार मंत्र के स्मरण में लीन हो गये । क्षमा का कैसा अद्‌भुत फल मिलता है यह सुनिए ।

जैसे ही वे दोनों भाई कविरत्न को मारने के लिए तलवार उठाते है कि तभी दूर से घोड़े की टाप की आवाज़ सुनायी दी । तीव्र गति से घोड़े दौड़ते हुए पास आ रहे हो ऐसा लगा । दोनों भाई डर गये कि कोई मनुष्य घोड़े पर बैठकर यहाँ आ रहा हैं । अब अगर हम इसे मार डालेंगे तो मारकर भाग नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे पास घोड़े भी नहीं है कि उस पर बैठकर भाग जाय । आनेवाला तो हमे पकड़कर मार डालेगा । इस धबराहट में उनके हाथ गिर गये और गुस्सा होकर कविरत्न से

कहने लगे कि – "हे पापी ! तुमने हमें ऐसा कहा था कि मैं अकेला आऊँगा, परन्तु तुमने तो हमें धोखा दिया है ! अपने इन चाचों को गुप्त रूप से आने को कह होगा । तुम्हें जितनी ठगबाजी (धोखेबाजी) करनी हो कर लो, परन्तु एक बात अवश्य समझ लेना कि हम तुम्हें मारे बिना नहीं रहेंगे ।" कविरत्न ने कहा – "भाइयों ! मैंने किसी को गुप्त रूप में बुलाया नहीं है । किसी से कुछ बात की नहीं है और कौन आ रहा है यह भी पता नहीं है ।" तब वे दोनों कहने लगे कि – "तो फिर अभी अन्धेरे में कौन आ रहा है ? चोर होकर शाहूकार की बात करता है ?" इस प्रकार बात हो रही थी तभी दो घोड़े सामने आकर खड़े रह गये । एक घोड़ा खाली था और दूसरे घोड़े पर से कविरत्न की पत्नी उतरी । यह देखकर कविरत्न पूछते हैं कि –"आप अन्धेरी रात में यहाँ अकेले क्यों आयी ?"

❑ कविरत्न की पत्नी की समझदारी और उदारतापूर्वक उत्तर :

कविपत्नी बहुत शांतिपूर्वक मधुर स्वर से कहने लगी – "स्वामीनाथ ! आप तो मुझे सारी हकीकत समझाकर हमारे परिवार की परम्परा में बैर का विषम दावानल सुलगता न रहे उसे शांत करने यहाँ चले आये । उस समय मुझे आपके वियोग का दुःख हुआ, परन्तु मैंने अपने मन को दृढ़ कर दूसरे क्षण विचार किया कि-'अहो ! मैं कितनी भाग्यवान हूँ कि बैर के विषम दावानल को शांत करने के लिए अपनी जान का बलिदान देनेवाले उदार और पवित्र पति की पत्नी बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ । ऐसे परमेश्वर समान पति तो किसी पुण्यवान स्त्री को मिलते है ।" देखिए, यह कविपत्नी भी उदार है । अब इतनी भयानक रात को वह अकेली यहाँ क्यों आयी इसकी बात करती हुई कहती है – "स्वामीनाथ ! आपको मैंने आज्ञा तो दी और आप यहाँ आये, परन्तु बाद में मुझे लगा कि – 'मेरे पति तो बैर का दावानल शांत करने के लिए खुशी से देह का बलिदान देंगे इसमें कोई शंका नहीं है, परन्तु ये मेरे दो लाड़ले देवरों के पास तो घोड़ा या अन्य वाहन तो होगा नहीं । फिर वे इनको मारकर अन्धेरे में कहाँ जायेंगे ? पैदल तो चलकर कितने दूर जा सकेंगे ? अभी चार-पाँच घण्टों का समय तो बीत जायेगा । मन्दिर का पूजारी पूजा करने आये और अन्य लोग दर्शन हेतु आयेंगे और अगर उन्होंने शव को देख लिया तो राजा को पता-सूचना मिल जायेगी । आप तो राजा को बहुत प्रिय हो । अतः राजा आपका वध करनेवाले की खोज करवायेंगे और मेरे देवर पकड़े जायेंगे और राजा उन्हें फाँसी दे देंगे । बाद में उनके और हमारे सन्तानों के बीच में पुनः वैर पैदा हो जायेगा । आप के बलिदान के बाद भी अगर वैर की परम्परा जारी रही तो इसका क्या अर्थ ?' ऐसा विचार मुझे जल्दी में न आया, परन्तु आपके जाने के बाद मुझे यह विचार आया तो मैं डर गयी कि-'मेरे दो देवरों का क्या होगा ?' इसलिए उन्हें मृत्यु के मुख से बचाने के लिए ये दोनो घोड़े लेकर मैं आयी हूँ । जिससे आप को

मारकर ये दोनों इन घोड़ों पर बैठकर कहीं भाग जाय । जिससे हमारे लड़कों को भी पता न चले कि मेरे पिताजी को किसने मारा है और मारनेवाले कहाँ गये ? और मैं आपके शव का यहीं अग्नि-संस्कार कर उस चिता में स्वयं जल मरूँगी, क्योंकि हे स्वामीनाथ ! सती स्त्री के पति के चले जाने पर संसार में उसका कोई नहीं रहता । अपने सौभाग्य के चले जाने पर मेरे मुख पर कभी उदासीनता न आये । मुझे उस विषय में हमारे बच्चें या अन्य कोई पूछ ले और विवश होकर दो शब्द मेरे मुख से निकल जाय तो बड़ा अनर्थ हो जाय । वह सब मैं जब जिन्दा होऊँगी तो होगा न ? इससे अच्छा यह है कि मैं भी आपके पीछे-पीछे आपके साथ आऊँ तो बैर की बात यहीं समाप्त हो जाय । कोई पूछे भी नहीं और कोई जान भी न पाये तथा बच्चों को भी मालूम न हो कि और न उनके हृदय में प्रतिशोध का बीजारोपण हो ।''

पत्नी का उत्तर सुनकर कविरत्न तो खुशी से फुले न समाये । इन्होंने अपनी पत्नी को धन्यवाद किये कि - ''वाह ! क्या तुम्हारी बुद्धि है ? बैर के कर्ज चुकाने में इतनी उदारता ! हमारा मन चाहा कार्य सफल हो, बैर का सदा के लिए अन्त हो जाय और ये दोनों भाई क्षेमकुशल उनके घर पहुँचकर आनन्द से रहे । सचमुच ! तुम सती हो, तुम नारी नहीं नारायणी हो ।'' बहुत-बहुत धन्यवाद दिये । फिर उन दोनों भाइयों के सामने दृष्टि कर कहने लगे - ''भाइयों ! अब यह तलवार लेकर अपना कार्य जल्दी से पूर्ण करो ।''

पति-पत्नी के बीच हुई बातचीत सुनकर दोनों भाई आश्चर्यचकित हो गये - 'अहाहा... हम जिसे मारने आये हैं वे हमें बचाने के लिए कितनी अनुपम उदारता दिखा रहे हैं ? प्रतिशोध के सेतु को दूर कर मित्रता की रक्षा करने के लिए कितना बलिदान देते हैं ? अगर उन्हें बचना होता तो किसी प्रकार से भी बच सकते थे । राजा के जिन पर चारों हाथ हो उन्हें क्या मुसीबत हो ? हमें पकड़ा देने में वे समर्थ थे । फिर भी वे कैसे उदार और सज्जन हैं ? जबकि हम कैसे बदमाश, लूटेरे, पापी और हत्यारे हैं ? धिक्कार है हमारे जीवन को !' पति-पत्नी की उदारता देखकर दोनों भाइयों के हृदय में जागृत प्रतिशोध की ज्वाला शांत हो गयी । बैर का क्रोध उतर गया और हाथ से तलवार फैंक दी । उनकी आँखों से चौधार आंसू बहने लगे । पवित्र आत्मा की पवित्रता कठोर पत्थर को पिघला सकती है ।

❑ दो भाइयों का पश्चाताप और रुदन :

मारने आनेवाले दोनों भाई भाई-भाभी के चरणों में गिर पड़े और चीख-चीखकर रोने लगे - ''अहो, बड़े भाई और भाभी ! आप तो हमारे माता-पिता समान हो । हम अधम पापी हैं । कहाँ आपकी क्षमा-उदारता और कहाँ हमारी अधमता ? हम दोनों गुंडे बनकर आपको मारने के लिए आये हैं । आपने राजा को सूचना दी होती तो

हमें जीवनभर जैल की सज़ा हो सकती थी या फाँसी की सज़ा भी हो सकती थी, फिर भी आपने ऐसा कुछ भी न किया और हमारे परिवार की परम्परा से बैर का अन्त लाने हेतु अपना जीवन कुरबान करने की उदारता दिखाकर हम जैसे नीच और पापियों पर आप दोनों ने बहुत बड़ा मित्रभाव रखकर वात्सल्य के झरने बहाये है। उसमें भी हमारी भाभीजी की उदारता और उनकी दीर्घदर्शिता को तो कोटि-कोटि धन्यवाद ! आप दोनो देव समान हो, हम मनुष्य के रूप में राक्षस हैं।'' इतना कहकर दोनों अपने पाप का पश्चात्ताप करते हुए रो पड़े। भाई-भाभी के चरणों में गिरकर कहने लगे - ''हम पापी, क्रूर जीने के लायक नहीं हैं। हम जैसे पापियों के कारण इस पृथ्वी पर बोझ बढ़ गया है। हम इस भूमि का बोज हल्का करने के लिए आत्महत्या कर मर जायेंगे।'' इतना कहकर दोनों भाई तलवार लेकर अपने गले पर मारने के लिए तैयार हो गये। तभी कविरत्न ने उनके हाथों से तलवार ले ली और हृदय के सच्चे स्नेह से प्रेमपूर्वक मीठे शब्दों से समझाकर शांत किया।

दोनों भाइयों से कविरत्न ने कहा - ''भाई ! हम आत्महत्या नहीं कर सकते। आत्महत्या तो बहुत बड़ा पाप है। **आत्महत्या से जीवन का अन्त आयेगा, पापों का नहीं।** पापकर्मों का नाश करने के लिए मनुष्यजन्म जैसा और कोई जन्म नहीं है। मनुष्यजन्म में दान, शीयल (सतीत्व), तप और भाव तथा परोपकार, संयम आदि सुकृत्य कर पाप का अन्त लाया जा सकता है। हे मेरे भाई ! अब आप रोइए मत। आप भी देव जैसे बन गये हो। क्योंकि आपके हृदय से बैर चला गया है और आपके हृदय में मित्रभाव आ गया है। हमारे बीच जो कुछ हुआ उसे यही गाड़ देना है। हमारे चारों के अतिरिक्त ओर कोई नहीं जानेगा। अब हम साथ रहेंगे। मैं राजा से कहकर आपको किसी अच्छे पद पर बैठा दुंगा और हम सब मैत्रीभाव रखकर, सुसाधना के सुकृत्यकर मानवजीवन को सफल बनायेंगे।'' कवि की पत्नी कहने लगी - ''देवरजी ! आपके भाई जो कह रहे हैं यह सत्य है। वे तो साक्षात् देव का अवतार हैं। उनका हृदय विशाल है। हम से ज़रा भी जुदाई मत रखना। अपने बड़े भाई के साथ रहकर जितने हो सके उतने गुण लीजिए। देखिए ! आपके भाई के सहवास से तथा उनके प्रभाव से मेरा जीवन कितना बदल गया ! मैं विवाह कर आयी थी तब बैर की आग को शांत कर मैत्रीभाव पैदा करने अपने प्राणों का बलिदान देने तैयार हो सकुँ इतना आत्मबल मुझमें न था। मैं तो पत्थर जैसी थी, परन्तु आपके भाई ने तराशकर मुझे मनोहर मूर्ति जैसी बना दी। आपके जीवन की भी अच्छी परवरिश होगी। अब हम सब अपने घर जाते हैं।'' ऐसा कहकर कवि की पत्नी ने रोते होते दोनों भाइयों को खड़ा किया। वे कहने लगे - ''हमें तो अपना मुख दिखाते हुए भी शर्म आ रही है। हम तो अपने देश में चले जायेंगे।'' भाई-भाभी कहने लगे - ''नहीं, तुम ऐसे नहीं जा सकते हो।

जो हो गया सो हो गया । उसे भूल जाइए और कुछ भी हुआ नहीं है ऐसा समझ लीजिए । बैर-भाव को जलाकर, कषाय, द्वेष को दूर कर हृदय फूल जैसा कोमल बनाकर, एक-दूसरे को खमाकर (माफ कर) जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करे ।''

❑ कविरत्न की उदारता :

कविरत्न दूसरे दिन अपने दोनो भाइयों को राजा के पास ले गये और कहा - ''हे महाराज ! ये दोनो संगीतकार मेरे चाचा के बेटे हैं । जो रिश्ते में मेरे भाई हैं । हम बहुत वर्ष पहले देश छोड़कर यहाँ आये हैं, इसलिए उन्हें मैं पहचान नहीं पाया । कल ही उनसे परिचय हुआ । अतः मैं आपसे एक नम्र अनुरोध करता हूँ कि आप मेरे इन दोनों भाइयों को किसी अच्छे पद पर आसिन्न कीजिए ।'' कविरत्न के लिए राजा को बहुत सम्मान था - अतः इन दोनों भाइयों को अच्छे खानदान का मान ऊँचे संगीतकार के पद पर स्थापित किया । देखिए, कविरत्न की महानता !

बन्धुओं ! विचार कीजिए । मैत्रीभावना का कैसा सुखद परिणाम आया ? कवि-रत्न के हृदय में मैत्रीभावना ने कैसा स्थान जमाया होगा ? उनकी रग-रग में और रोम-रोम में मैत्रीभावना का कैसा झंकार हुआ होगा कि स्वयं में बचने की ताक़त होने पर भी बचने का कोई उपाय न किया तथा कुल परम्परा में बैर का अन्त लाने के लिए अपना जीवन मुसीबत में डालकर अपने ही भाई के हाथों तलवार के एक प्रहार से मरने के लिए तैयार हुए । उनकी पत्नी भी कैसे विशाल हृदयवाली कि पति के सच्चे प्रेम के प्रतीक रूप पति का प्यार प्रिय मैत्रीभाव स्वयं अपनाकर देवरों को उनका कार्य पूर्णकर किसी प्रकार की असुविधा न हो तथा उनके सिर पर कोई मुसीबत न आये इसके लिए दो घोड़े लेकर आयी और स्वयं भी भविष्य में घोखा न कर बैठे, इसके लिए पति की चिता में जलकर मरने के लिए तैयार हो गयी । इस पति-पत्नी को कैसी भव्य उदारता ! धन्य है ऐसी आत्माओं को !

हमें भी चेतनदेव को जागृत करने की आवश्यकता है कि ''हे चेतनदेव ! क्षमा अमर बनानेवाला अमृत है और बैर भवोभव में मारनेवाला विष है ।'' कहा है कि - *''नरस्य भूषणं रूपं, रूपस्याभूषणं गुणः ! गुणस्य भूषणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभूषणं क्षमा ।''* मनुष्य का भूषण रूप है और रूप का भूषण गुण है, क्योंकि मनुष्य चाहे कितना भी सौन्दर्यवान क्यों न हो, परन्तु उसके जीवन में गुण न हो तो गुण से विहीन सौन्दर्य फीका लगता है, इसीलिए इस श्लोक में कहा है कि रूप का भूषण गुण है और गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है, क्योंकि ज्ञान के बिना गुण प्रकट होता नहीं है और ज्ञान न हो तबतक क्षमा आती नहीं है । उसे ज्ञान बिना मालूम नहीं पड़ता कि क्षमा से क्या लाभ होता है ? *''क्षमया क्षीयते कर्म !''* जवकि ज्ञान द्वारा जीव को ज्ञात होता है कि क्षमा रखने से जीव कर्म का क्षय करता है । ज्ञान द्वारा आत्मा यह बात समझ सकती है कि -

नहि वेरेन, वेरानि सम्मन्तीध कदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ।।

इस संसार में कभी भी बैर से बैर शांत नहीं होता है । अग्नि में लकड़े डालने से आग बुझती नहीं है, परन्तु बढ़ती है; उसी प्रकार बैरी के साथ बैर की परम्परा जारी रखने से बैर बढ़ता जाता है । परन्तु बैर के सामने अबैर अर्थात् 'मैत्रीभाव' रखने से बैर शांत होता है । अतः संवत्सरी के दिन एक छोटा-सा सूत्र - *'वेर मइज्झं न केणइ !'* आपके हृदय में लिख दीजिए कि आज से मुझे किसी के साथ नया बैर बाँधना नहीं है और जिसके साथ पुराना बैर है उसका विसर्जन (नष्ट) कर मैं स्नेह का सृजन करूँ । ऐसा भाव प्रत्येक आत्मा के हृदय में जागे तो संवत्सरी पर्व मनाया सफल हो जाय और इस दावानल से सुलगता संसार स्वर्गसमान बन जाय तथा भाव-विशुद्ध होकर आत्मा निर्भय बनती है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में गौतमस्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि - "हे भगवन्त ! क्षमापना करने से जीव को क्या लाभ होता है ? तब भगवान ने कहा - "हे गौतम *खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ, पल्हायणभावमुवगए य सव्व पाणभूय जीवसत्तेसु मित्तीभाव मुप्पाएइ, मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काउण निब्भण्भवइ ।* क्षमापना करने से चित्त की प्रसन्नता होती है । चित्त प्रसन्न हो तो चित्त से उद्‌वेग, खेद, विषाद चला जाता है । चित्त की प्रसन्नता से प्राणीमात्र से मैत्रीभाव रखकर भावविशुद्धि कर जीव निर्भय बनता है । अतः आप सभी सर्व जीवों के साथ क्षमापना कर पवित्र बनिएगा । बैर का विसर्जन कर स्नेह का सर्जन (सृजन) करने की सुनहरी घड़ी (क्षण) है । आप इतना समझ लीजिए कि **बैर में मुसीबत है, स्नेह में साधना है, बैर में विकृति है और स्नेह में संस्कृति है, बैर में भँवर है और स्नेह में कमल है, बैर में वकालत है और स्नेह में स्वीकार है । बैर में वियोग है, स्नेह में संयोग है । बैर में विसर्जन है और स्नेह में सृजन है ।** अतः आप सभी हृदय के प्रत्येक कोने से क्रोधादि कषायों को निकालकर क्षमा के पवित्र नीर में स्नान कर पापों का प्रक्षालन कर आत्मा को पवित्र और निर्मल बनाइएगा । क्षमा के विषय में बहुत कुछ कहा गया है ।

तन मन वचन के ताप समाकर, बैर-भाव बिसारे,
संवत्सरी का प्रतिक्रमण कर, क्षमायाचना करे,
भवोभव का भ्रमण टालने इसी भव से उगारे,
कषायों की कालिमा धोकर, आत्मा को उज्ज्वल बनाये ।'

यह सुनकर जीवन से बैर-भाव के काँटे निकालकर सच्ची क्षमापना करे यही भावना ।

धन तेरस

अनन्त ज्ञानियों ने फरमाया है कि-"यह मनुष्यजन्म एक ऐसा जन्म है कि जिसे पाकर उचित सामग्री मिलने पर जीव सर्वथा पापरहित जीवन जीना चाहे तो जी सकता है। सर्वथा पापरहित जीवन जीना (यह) अन्य किसी गति में नहीं है। चारगति में मनुष्यगति और देवगति को उत्तम गति माना गया है। परन्तु देवभव को प्राप्त आत्माएँ चाहे तब भी सर्वथा पापविहीन जीवन जीने की साधन-सामग्री उनके पास नहीं है, क्योंकि वह सर्वविरतिपन या देशविपरतिपन अंगीकार कर सकते नहीं है, परन्तु मनुष्य चाहे तो चारित्र अंगीकार कर खुशी से पापविहीन जीवन जी सकता है। अरे ! संसार में भी उपयोग (संयम) रखे तो धर्म है। यहाँ उपस्थित बहनें रसोई (भोजन) पकाते समय सोचे कि-'अहो ! पाप करने के लिए मेरा जीवन नहीं है।' यह रसोई करते समय छकाय जीव की हिंसा होती है, परन्तु निर्दोष भिक्षा से निर्वाह करना और संयम की साधना करना मेरे जीवन के लिए श्रेष्ठ है। संसार में उसे काम करना पड़ता है, तब भी उसमें पाप का भय है, इसलिए प्रत्येक वस्तु में जन्तु नहीं है न, यह जाँच लेती हैं। लकड़े और कोयले को भी जाँच लेती है। इस प्रकार पाप से बचने के लिऐ उपाय करे और मन ही मन चिन्ता करें कि मैं भगवान द्वारा कहे गये धर्म मार्ग की एकान्त में आराधना करनेवाली नहीं हुई हूँ, इसलिए मुझे ये पाप करने पड़ रहे हैं। ऐसी बहनों की गोद में पलनेवाले बच्चे भी फिर कैसे संस्कारी बनेंगे ?

बन्धुओं ! अगर जीवन सफल बनाना हो तो अपनी ओर दृष्टि करने की आवश्यकता है। ज्ञानमय आत्मा हमें प्रत्येक मिनट चेतावनी देती है कि तुम कैसा जीवन जीते हो इसका साक्षी परमात्मारूपी आत्मा तुम हो। केवलज्ञानी भगवन्त देखते हैं, परन्तु स्वयं को ज्ञाता के दृष्टा परिणामों की धारा में साक्षीरूप बनना पड़ता है। हमेंशा अपनी कार्यवाही का निरीक्षण कीजिए तो पता चलेगा कि मैं उपदेश सुनता हूँ, वीतराग शासन को प्राप्त किया है, परन्तु हृदय में दया और अहिंसा के संस्कार मेरे में क्यों नहीं आते हैं ? दीन-दुःखियों को देखकर अनुकंपा का प्रपात मेरे हृदय में क्यों नहीं बहता है ? मेरे पास अनाज के कोठार (भण्डार) भरे हैं। लक्ष्मीदेवी की कृपा है और पुण्य का उदय ज़ोरदार है। इतना सब कुछ होने पर भी अहो, मेरे नवकारमंत्र को जपनेवाले स्वधर्मीबन्धु दुःखी हो, उनकी आँखों में आंसू हो तब मैं

उनके आंसू पोंछना क्यों नहीं सीख सका ? सचमुच, मैंने सुना तो बहुत, परन्तु अपने जीवन में आचरण न किया । भगवती अहिंसा कहती है कि अपने आपको अभय देनेवाला दूसरों को अभय दे सकता है । अहो ! आज देखा जाता है, सुनायी देता है कि पशुओं की बेख़बर (बेशुमार) क़त्लेआम हो रही हैं । आप पशुओं के बाज़ार से निकलो और उस क़त्लखाने को देखे तो आपका हृदय वेदना से भर जाना चाहिए । 'अहो प्रभु ! मेरे पास धन है, शक्ति है, तो क्यों न मैं कसाई का हृदय परिवर्तन करूँ और इन प्राणियों को बचाऊँ । इन गूँगे प्राणियों की वेदना को रोकना मेरा परम कर्तव्य है ।' ऐसा आपके हृदय में होता है ?

आज कौन-सा दिन है ? 'धन तेरस' का । धन तेरस, काली चौदस, नया वर्ष और भाई दूज - ये पाँच दिन पवित्र माने गये हैं । इन दिनों में कोई न कोई नयी बात हो गयी है, इसलिए इसकी महिमा है । आज धन तेरस का दिन क्यों मनाया जाता है ? जब भगवान महावीरस्वामी पर गोशालक ने तेजुलेश्या छोड़ी, तब भगवान के मुख से शब्द निकल गये थे, "हे गोशालक ! तुम ये क्या कर रहे हो ? तुम्हारी तेजुलेश्या मुझे नहीं जला सकेगी । मैं इस पृथ्वी पर और भी सोलह वर्ष विचरण करनेवाला हूँ, परन्तु आज से सातवें दिन तेरी मृत्यु होगी ।" इस समय जो उपस्थित थे उन सभीने भगवान के शब्द याद रख लिये । क्योंकि भगवान तो सर्वज्ञ हैं । उनका वचन तो सत्य ही होता है । उनकी वाणी में फ़र्क हो ही नहीं सकता है । इस बात को सोलहवाँ वर्ष आया और भगवान का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में बीता तब नौ-मल्ली और नौ-लच्छी - ये अठारह राजा राज्य-वैभव छोड़कर आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष चौदस तथा अमावस्या छट्ठ पौषध करने पावापुरी में आये थे । अठारह देश के राजा उनके परिवारों के साथ हाथी-घोड़े सब लेकर आये तो मनुष्य तो अनेक होंगे ही ! और आवाज़ भी बहुत होगा यह स्वाभाविक है । चौदस और पाखी के पौषध करने हो, तो तेरस के दिन जाना चाहिए, अतः ये अठारहों देश के राजा पावापुरी में आये । उस समय गायों के झुंड (गोधन) जंगल से चारा चरकर पावापुरी में जा रहे थे । इतने सारे लोगों को मार्ग में आता देख, गाये मारे ड़र के भागने लगी, इसलिए इन दिन का नाम 'धण तेरस' रखा गया । परन्तु आपको धन बहुत प्रिय है, इसलिए 'धण तेरस' के दिन को 'धन तेरस' का दिन बना दिया ।

आज के दिन हमारे अनेक श्रावक बन्धु दहलीज पर कुमकुम के साथिया बनाकर धन की पूजा करके आये होंगे । रुपयों को दूर से धोने से या पूजा करने से धन नहीं मिलेगा । सच्ची लक्ष्मीपूजा तो लक्ष्मी का सदुपयोग करने से होता है, क्योंकि लक्ष्मी को तिजोरी में बन्द रखेंगे तो वह भी परेशान हो जाती है - ऊब जाती है ।

लक्ष्मी का सदुपयोग

एक दिन इन्द्र लक्ष्मी से कहने लगे - "हे लक्ष्मी ! तुम्हारी एक फरियाद आयी है ।" तब लक्ष्मी ने कहा - "मैं कोई फरियाद आये ऐसा जीवन जीती नहीं हूँ, मेरे चारित्र में किसी प्रकार का कोई कलंक नहीं है, या न ही मुझ में कोई कमजोरी है कि जिससे मेरे लिए कोई फरियाद आये ।" तब इन्द्र ने कहा - "नगर, राष्ट्र और देश के लोग ऐसा कहते हैं कि लक्ष्मी में स्थिरता का गुण नहीं है ।" देवानुप्रियों ! आप भी यही कहते हैं न ? परन्तु आपने भी लक्ष्मी को बन्द (क़ैद) करने के लिए कोई कम प्रयास तो किये नहीं है । तिजोरी लाये, बड़े तालें लगाये, और फिर तालें भी कैसे ! गोदरेज का सही न ! अरे, इससे अधिक क्या कहूँ ? उसे स्थिर करने के लिए इलेक्ट्रिक के पावर भी रखे । अरे ! दरवाज़ों पर गोलियों से भरी बन्दूक और खुली तलवार लेकर खड़े रहनेवाले पहरेदार भी रखे । यह सब किसलिए किया ? लक्ष्मी को स्थिर रखने के लिए न ? इन्द्र ने कहा - "हे लक्ष्मी ! लोग तुम्हारे लिए इतना कुछ करते हैं फिर भी तुम स्थिर रहती नहीं हो न ? यही तेरे लिए फरियाद है ।" लक्ष्मी ने कहा - "मैं तो प्रत्येक घर में रहने को तैयार हूँ, परन्तु मुझे स्थिर रखने की कला उन्हें आती नहीं है । मैं संसार की १०० शर्तें पूर्ण करती हूँ, परन्तु वे मेरी तीन शर्तें भी पूर्ण कर सकते नहीं है । पहली शर्त यह है कि जिसके घर में बुजुर्ग हो उसका सम्मान करना, प्रामाणिक जीवन जीना और न्याय-नीति से धन पाना, यही है मेरी पहली शर्त । मेरी दूसरी शर्त यह है कि जिसके जीवन में सत्य और सदाचार हो, जिसका हृदय दुःखी को देखकर काँप (दुःख से) उठता हो, जिसके घर में सदा एकता का दीया जलता हो, प्राणीमात्र पर दया करता हो, उस घर में मैं रहती हूँ । मेरी तीसरी शर्त यह है कि जो कभी जुआ न खेलता हो, शराब न पीता हो, परमिट्टी न खाता हो, परस्त्री का त्यागी हो, व्यसनों का गुलाम न हो, उसके घर में मैं स्थिर रहती हूँ । परन्तु किसी की ईर्ष्या करता न हो, क्योंकि अनेक लोगों में ऐसी आदत होती है कि - वे पराये का अच्छा देख सकते नहीं है । तो उसके घर में मैं स्थिर नहीं रहती ।"

लक्ष्मी के भाग्य दान से खुलता है । परोपकार में जितनी लक्ष्मी का खर्च होता है, वही लक्ष्मी की सच्ची पूजा है, अन्यथा लक्ष्मी को इकट्ठा करने में कोई कोई विशेषता नहीं है । आप तो लक्ष्मी कैसे पाये, लक्ष्मी कैसे इकट्ठी की जाय - इसमें ही जीवन की विशेषता समझते हो । आपके मन में जितनी धनकी विशेपता है उतनी धर्म की नहीं है । भरतराजा को एक साथ तीन खुशखबरें आयी - (१) आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । (२) भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । (३) उसकी पटरानी ने पुत्र को जन्म दिया । ये तीनों खुशखबर एकसाथ आयी । अब

आप सत्य कहिए । कौन-से खुशख़बर को पहले स्वीकारेंगे ? मान लीजिए कि आपकी इस राजगृही नगरी में ही आपको ये तीनों खुशख़बर मिल जाय तो आप किसे इनाम देंगे ? कौन-सी खुशख़बरी सुनकर आपका हृदय खुशी से नाच उठेगा ? (सब हँसते हैं ।) संसारी जीवों की दृष्टि संसार की ओर ही होती है । ज़रा सिद्धांत में दृष्टि कीजिए। भूतकाल के महाराज प्रभु पधारने के खुशख़बर को सुनकर हर्ष से नाच उठते थे ।

श्रेणिक जैसा महाराज उद्यानपालक से कह रखता कि-"मेरे तारणहार प्रभु आये कि तुरन्त मुझे सूचना देना ।' जब-जब प्रभु उद्यान में पधारते तब-तब वनपालक राजा को खुशख़बर देने जाता, तब राजा श्रेणिक क्या करते ? प्रभु के आगमन के समाचार सुनकर तुरन्त वे सिंहासन से खड़े हो जाते और प्रभु जिस दिशा में बिराजमान होते उस दिशा में सात-आठ कदम चलकर प्रभु को त्रिकाल वन्दन करते । राजा का उस समय का उत्साहभाव देखकर वनपालक आश्चर्यचकित हो जाता । वन्दन करने के बाद राजा पूछते कि - "हे वनपालक ! मेरे प्रभु को उतरने की आज्ञा दी ? उन्हें शोभित हो ऐसे पाट इत्यादि दिये हैं न ?" आदि पूछते और प्रभु आगमन के खुशख़बर की खुशी में एक मात्र सिर पर मुकुट रखकर अंग पर पहने सारे सातसेरा, नौसेरा, अठारहसेरा, हीरे और सोने के हार, बाजुबंद आदि आभूषण वनपालक को दे देते, जिसे उसकी ज़िन्दगी का दारिद्र्य टल जाता । अतः वनपालक पर ऐसा प्रभाव हुआ कि मैंने भगवन्त के आगमन के समाचार दिये तो मैं निहाल हो गया, तो फिर उस प्रभु की हृदय में भावपूर्वक भक्ति की जाय तो क्या-क्या नहीं मिल सकता ? अनेक वनपालक राजा की भक्ति देखकर धर्मज्ञान पा जाते । अन्य धर्मी को अगर जैनधर्म का ज्ञान प्राप्त करवाना हो तो परिग्रह की ममता छोड़नी पड़ती है । अनेक आत्माएँ अभी भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं कि जो दूसरों को धर्म प्राप्त कराने के लिए अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते हैं ।

आज 'धन तेरस' के दिन से आपकी दीपावली शुरू हुई । यह पर्व मात्र जैनों में ही नहीं अपितु विश्वभर में आनन्द, उत्साह और आशा का प्रकाश फैलानेवाला सर्वमान्य एक पर्व है । पर्व वही गर्व लेने लायक कहा जा सकता है जो धर्म के साथ सम्बन्ध रखता हो । यह दीपावली पर्व भी संसार में एक महत्त्वपूर्ण और मांगलिक पर्व माना जाता है । उसके आदि में निमित्तभूत - महान मंगलभूत प्रभु महावीर और अनन्त लब्धिनिधान गुरु गौतमस्वामी हैं । एक का निर्वाण और दूसरे का केवलज्ञान इस पर्व के पीछे यह रहस्य छूपा हुआ है, परन्तु अफसोस की बात यह है कि सब यह पर्व धीरे धीरे आध्यात्मिक मिटकर भौतिक बनता जाता है । यह पर्व आयेगा तो सारे घरों की साफसूफी होने लगेगी, परन्तु आत्मघर को संभालनेवाले, उसे स्वच्छ करनेवाले दिखते नहीं है । घर-घर में दीये जले दिखते हैं परन्तु आत्मघर के अघोर अन्धकार दूर करने की किसी को इच्छा तक भी कभी होती नहीं है । पूर्व

वर्ष का लेखा-जोखा निकालकर लेन-देन पूर्ण कर नये चोपड़े से शुरूआत होती है, परन्तु जीव के चोपड़े में कर्म का कर्ज़ा कितना है और धर्मराजा का कितना ? इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है ।

जिस भगवान के निर्वाण से दीपावली का जन्म हुआ है, उस भगवान ने संसार के लिए कितना कुछ किया, इतना हम अपने आपके लिए भी करने के लिए तैयार नहीं है । भगवान ने केवलज्ञान न पाया तबतक साढ़े बारह और पंद्रह दिनों तक भूख लगाकर खाया नहीं, नींद लाकर सोये नहीं और भूमि पर पालथी मारकर बैठे भी नहीं है । केवलज्ञान पाने के बाद हजारों जीवों का उद्धार किया, इतना हीं नहीं परन्तु जीवन की अन्तिम क्षण (घड़ी) तक सोलह प्रहर देशना का प्रपात बहाकर अन्त में प्राण छोड़े । अघातीकर्मों का क्षय कर निर्वाण (मृत्यु) को प्राप्त किया । संसारभर में प्रकाश फैलानेवाला एक महान भावदीपक बुझ गया । उसकी याद में लोगों ने दीये जलाये और दीपावली की शुरूआत हुई । भगवान के विरह से गुरु गौतम ने अनित्यता का स्वर सुना और उस सूर में से उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । तब से शुरू हुई दीपावली, तो आज दिन तक अखण्ड रूप से चली आ रही हैं परन्तु उसके पीछे जो आध्यात्मिकता थी वह बुझाने (खोने) लगी है । उस आध्यात्मिकता को पुनः जगाने के लिए सन्त चुनौती देते हैं, परन्तु उस चुनौती को स्वीकारनेवाला आज कौन है ?

वे महान सन्त जीवों को चुनौती देकर कहते हैं - "इस दीपावली के दिनों में आपको लिखना हो तो चाहे भले ही चोपड़े के पहले पन्ने में लिखिए कि-'गौतम-स्वामी की लब्धि मिलना, धन्ना शालिभद्र की ऋद्धि मिलना, अभयकुमारी की बुद्धि मिलना, परन्तु इतना मिलने मात्र से ही मिल जाय - इतनी सस्ती यह लब्धि, ऋद्धि या बुद्धि नहीं है, मगर याद रखना कि उसके लिए जीवन को साधना में पिरोना (लीन करना) पड़ेगा । आराधना में आगे लाना होगा और विराधना से वापस मोड़ना पड़ेगा । शालिभद्र की ऋद्धि को हम याद करते हैं, परन्तु शालिभद्र हुए कैसे ? यह बात याद की है ? शालिभद्र जैसे दानेश्वरी बनने के भाव जगे हैं ? एक भक्त कहता है -

"आपने दान-पुण्य कुछ किया नहीं और साधी ना कोई सिद्धि,
तब भी तेरे पास माँगे हम, शालिभद्र की रिद्धि ।"

हे प्रभु ! हमने दान-पुण्य कुछ भी नहीं किया है और न कोई सिद्धि भी साधी है, फिर भी तुम्हारे पास माँगते हैं कि मुझे शालिभद्र की रिद्धि मिलना । बन्धुओं ! जिस दिन शालिभद्र जैसा त्याग और दानवृत्ति आयेगी उस दिन बिना लिखे शालिभद्र जैसी रिद्धि मिल जायेगी । गौतमस्वामी की लब्धि को हमने याद किया, परन्तु गौतम स्वामी ने कितने छट्ठ-अट्ठम कैसे अनन्य भाव से भगवान की सेवा की और किस प्रकार लब्धियाँ प्राप्त की यह सोचा है ? हम तो मात्र नाम लिखकर सब प्राप्त करना

चाहते हैं परन्तु गौतम स्वामी जैसा बनना नहीं है । ऐसा होने का भाव रखना नहीं है और लब्धियाँ प्राप्त करनी हैं - यह कैसे मिलेगा ?

धर्म की आराधना करना

धन तेरस, काली चौदस और दीपावली ये तीनों दिन धर्म की आराधना करने के लिए हैं । हो सके तो अट्ठम करना चाहिए । यदि न हो सके तो छट्ठ और यह भी न हो सके तो आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष की अमावस्या - भगवान की निर्वाण-तिथि के दिन उपवास तो अवश्य करना चाहिए । अठारह देश के राजा राज्य छोड़कर छट्ठ पौषध करने हेतु बैठ गये थे । आपको राज्य का शासन तो नहीं सँभालना है न ? घूघरा, घारी, सिवई, नाजुक लापसी का भोजन करने से, दीये जलाने से दीपावली मनायी नहीं कही जायेगी । आत्मप्रदेश पर अनादिकाल से आठ कर्म के आवरण आ गये हैं, उसे उखाड़कर ज्ञान का दीपक प्रगटाने (जलाने) से सच्ची दीपावली मनायी कही जायेगी । जैनधर्म के सारे पर्व लोकोत्तर पर्व हैं । उन पर्वों में आरम्भ-समारम्भ नहीं होता, खा-पीकर, ओढकर आनन्द करना नहीं है बल्कि इन दिनों में आरम्भ-समारम्भ कम कर आत्मा की उपासना करनी है ।

भरतराजा ने तीन खुशख़बरों में भगवान ऋषभदेव के केवलज्ञान की खुशख़बर को प्रथम महत्त्व दिया । अपनी दादी से कहते हैं - "हे माता ! आप 'मेरा ऋषभ, मेरा ऋषभ' कहकर रोती हो, आँखों के जल सूखा दिये हैं । वे केवलज्ञानी भगवान ऋषभदेव स्वामी पधारे हैं । चलिए, हम भगवान के दर्शन के लिए जाय ।" संसार में माता का वात्सल्य अलौकिक होता है । सब कुछ खरीदा जा सकता है, परन्तु माता का वात्सल्य नहीं खरीदा जा सकेगा । ऋषभ का नाम सुनकर मरुदेवी का हृदय मारे खुशी से छलक गया । वे तुरन्त वहीं खड़े हो गये । भरत महाराज हाथी की अंबारी पर मरुदेवी माता को बैठाकर ऋषभदेव प्रभु के दर्शन हेतु आते हैं ।

"गयावाल अंबारी पर माताजी आये, न तो प्रभुजी 'माँ' कह बुलाते ।
कौन-माता, कौन पुत्र ? स्वार्थी संसार, मरुदेवी माता पूछती है -
'कहाँ है मेरा लाल' ।"

देवों ने समोवसरण की रचना की है । सिंहासन पर प्रभुजी विराजमान हैं । देव महोत्सव कर रहे हैं । यह देखकर मरुदेवी माता को लगा - 'अहो ! मैं तो ऋषभ...ऋषभ करती हूँ, परन्तु ऋषभ को कितने वैभव में बैठा है ? वह तो मेरे सामने देखता भी नहीं है ।' क्षणिक मोह परेशान करता है । दूसरे ही क्षण माता ने विचार किया - 'मुझे अपने पुत्र का मोह है । वह तो संसार-त्यागी साधु बन गये हैं । उनके लिए संसार की सभी माताएँ मरुदेवी है । उन्हें किसी के प्रति राग या द्वेष नहीं है । मोह का उछाल (उत्साह) बैठ गया है । कौन माता और कौन पुत्र ! संसार में

आता है न ? भले ही उनके माता-पिता एक ही हैं, परन्तु उनके कर्म अलग हैं । यह एक सच्ची कहानी है ।

पाप-पुण्ण का खेल

एक माता की कोख से जन्मे दो भाई थे । दोनों भाइयों में दूध-मिसरी जैसा प्रेम था । एक-दूसरे के बिना वे रह सकते नहीं थे । एक भाई कहीं गया हो तो दूसरा खाना तक नहीं खाता था, ऐसा उनमें प्रेम था । ये दोनों बड़े हुए तो माता-पिता ने खानदान परिवार की कन्याओं के साथ विवाह करवा दिये । विवाह के बाद कुछ ही समय में माता-पिता का देहान्त हो गया । दोनों भाई प्रेम से रहते थे, इसलिए माँ-बाप सन्तोष लेकर स्वर्ग में गये । परन्तु कुछ समय बाद दोनों भाइयों में परस्पर विवाद होने लगे । छोटी-छोटी बातों में एक-दूसरे लड़ पडने लगे । देवरानी-जेठानी राई-मेथी की तरह तड़तड़ करने लगे । दोनों भाइयों के बीच ऐसा ही प्रेम है, परन्तु स्त्रियों के रोज के झगड़ों से तंग आकर दोनों भाग जुदा हो गये । जबतक लोग साथ रहते हैं, तबतक पता नहीं चलता कि लक्ष्मी किसके पुण्य की है । कई बार ऐसा भी होता है कि घर में एक सदस्य की पुन्नाई (पुण्य का प्रभाव) हो इसके प्रभाव से पुरा परिवार शांति से खा-पीकर चैन से रहता है । उस सदस्य के चले जाने पर बाद में सब दुःखी हो जाते हैं । तब सबको समझमें आता है कि जानेवाली आत्मा पुण्यवान थी ।

❑ पुण्य से सुख और पाप से दुःख :

ये दोनों भाई जुदा हो गये इसके कुछ ही समय छोटे भाई की सारी लक्ष्मी चली गयी । वह गरीब बन गया । बडे भाई की पुन्नाई बहुत थी, इसलिए उसे घर में तो लक्ष्मी पानी के पुर की तरह बहने लगी । उसके पास पहले जितना था उससे भी अधिक धन होने (बढ़ने) लगा । उसके यहाँ तो वैभव की आतिशबाजी होने लगी, जबकि छोटे भाई का पुण्य खत्म होने पर बेहाल-सा हो गया और अपने पास के किसी गाँव में जाकर झोंपड़ी बाँधकर रहने लगा । वहाँ रहकर आधा मन (१० कि.ग्रा.) अनाज सिर पर उठाकर बेचने लगा । उसमें से जो रुपये-दो रुपये मिलते उसमें से मेह्र (चावल-आदि मिलाकर) बनाकर खा लेता । तो कभी-कभी चने लाकर खाता । दो लड़के और एक लड़की मिलाकर तीन सन्तानें थी । इस प्रकार दुःखी अवस्था में दिन बिताने लगे । दीपावली के दिन आये, उनके शरीर पर पहने कपड़े भी फट गये थे, मगर जहाँ खाना ही बड़ी मुश्किल से मिलता हो, वहाँ कपड़े तो भला कहाँ से लाते ?

❑ कर्मराजा का खेल :

बन्धुओं ! कर्मराजा का खेल कैसा है ! बड़े भाई के घर पैसों की कोई कमी नहीं है । उनके पुराने कपड़ों से और लोग अपना तन ढाँकते हैं मगर अपने छोटे भाई

तो स्वार्थ की सगाई है । राग छूट जाने पर क्षपकश्रेणी से लेकर शुक्लध्यान धरते घातीकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष को प्राप्त हुए । भगवान ऋषभदेव के तीर्थ की स्थापना करने से पहले ही मरुदेवी माता मोक्ष में गये, अतः वे अतीर्थ सिद्ध कहलाये । आपको लगेगा कि मरुदेवी माता बिना दीक्षा के हाथी की अंबारी पर केवलज्ञान को पा गये तो हमें क्यों नहीं होगा ? परन्तु बन्धुओं ! भावचारित्र के बिना केवलज्ञान नहीं होगा । चाहे फिर दीक्षा नहीं ली थी, परन्तु मोहनीय पर विजय पाया ! इसके अतिरिक्त मरुदेवी माता ने पूर्वभव में कैसी आराधना की है और भाव के योग्य भाव चारित्र आया तबही केवलज्ञान प्राप्त किया है । आपको तो लड्डू खाने है और मोक्ष में जाना है । यह कहाँ से होगा ?

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि – 'भरत चक्रवर्ती धन तेरस के दिन छ खण्ड की साधना कर आये थे । वे भरत चक्रवर्ती आईना भुवन में केवलज्ञान प्राप्त कर गये थे । वै कैसे हलुकर्मी जीव थे । धन की पूजा करने से धन नहीं मिलता, परन्तु धर्म की आराधना करने से अशुभकर्म बन्धेंगे (होगे) और शुभकर्म बाँधे जायेंगे । अन्त में शुभ से शुद्ध बनकर मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होगी ।

महान पुरुष महत्त्वपूर्ण सन्देश दे गये हैं कि – "हे मानवों ! आप सुख से जीओ और दूसरों को सुखपूर्वक जीने दीजिए । आपके पुण्योदय से आप सुखी हो तो आपकी शक्ति अनुसार स्वधर्मी को सहायता कर सुखी कीजिए, परन्तु इस दीपावली के दिनों में आप भी मेवे-मिष्टान्न खाकर जलसा करें और अपने स्वधर्मी बन्धु, पड़ौसी भूखा रहते हो, घर के कोने में बैठकर रोते हो ऐसा नहीं होना चाहिए । ऐसी दीपावली सच्ची दीपावली नहीं है । आप सब पुण्यवान हो । मैं देखती हूँ कि सभी अपनी शक्ति अनुसार गरीबों को कुछ देते हैं । जिसमें दूसरों को देने की वृत्ति है वह देव है और अपने पास होने पर भी दूसरों से हड़प लेने की वृत्ति है, वह दानव है । देव बनिए मगर दानव कभी मत बनिए । अगर अपने पास होने पर भी दूसरों से लेने की वृत्ति रखेंगे तो वह पचेगा नहीं, अतः हृदय को विशाल बनाईए । आप सुख भोगे और आपका पड़ौसी भाई दुःखी हो यह कैसे चलेगा ? महावीर-प्रभु के शासन में जन्मे श्रावकों के हृदय में तो दया के झरने बहते हो, वे दुःखियों को नहीं देख सकते हैं । आप मजे से फूल की शय्या में सोते हो और आपके स्वधर्मी भाई को तन ढ़कने के लिए फटा-पुराना कपड़ा भी नहीं है, खाने के लिए सेर जुआर नहीं है । उसके बच्चे खाने के लिए रोते हैं । यह सब देखकर आपकी नींद उड जानी चाहिए । आपके हृदय में ऐसा होना चाहिए कि यह सब कुछ मुझे मिला है वह पुण्य से मिला है । लक्ष्मी का मिलना और न मिलना ये तो पाप-पुण्य के खेल है । एक ही घर में और एक ही माता की कोख से जन्मे चार पुत्र हो तो उसमें चारों भाइयों के पुण्य समान नहीं होते । एक भाई के यहाँ पैसों की कमी नहीं हो और दूसरे के घर में रूखी-सूखी रोटी के भी लाले पड़ते हो । इसका कारण क्या ? यह तो आपको समझ में

आता है न ? भले ही उनके माता-पिता एक ही हैं, परन्तु उनके कर्म अलग हैं । यह एक सच्ची कहानी है ।

पाप-पुण्ण का खेल

एक माता की कोख से जन्मे दो भाई थे । दोनों भाइयों में दूध-मिसरी जैसा प्रेम था । एक-दूसरे के बिना वे रह सकते नहीं थे । एक भाई कहीं गया हो तो दूसरा खाना तक नहीं खाता था, ऐसा उनमें प्रेम था । ये दोनों बड़े हुए तो माता-पिता ने खानदान परिवार की कन्याओं के साथ विवाह करवा दिये । विवाह के बाद कुछ ही समय में माता-पिता का देहान्त हो गया । दोनों भाई प्रेम से रहते थे, इसलिए माँ-बाप सन्तोष लेकर स्वर्ग में गये । परन्तु कुछ समय बाद दोनों भाइयों में परस्पर विवाद होने लगे । छोटी-छोटी बातों में एक-दूसरे लड़ पडने लगे । देवरानी-जेठानी राई-मेथी की तरह तड़तड़ करने लगे । दोनों भाइयों के बीच ऐसा ही प्रेम है, परन्तु स्त्रियों के रोज के झगड़ों से तंग आकर दोनों भाग जुदा हो गये । जबतक लोग साथ रहते हैं, तबतक पता नहीं चलता कि लक्ष्मी किसके पुण्य की है । कई बार ऐसा भी होता है कि घर में एक सदस्य की पुन्नाई (पुण्य का प्रभाव) हो इसके प्रभाव से पुरा परिवार शांति से खा-पीकर चैन से रहता है । उस सदस्य के चले जाने पर बाद में सब दुःखी हो जाते हैं । तब सबको समझमें आता है कि जानेवाली आत्मा पुण्यवान थी ।

❑ पुण्य से सुख और पाप से दुःख :

ये दोनों भाई जुदा हो गये इसके कुछ ही समय छोटे भाई की सारी लक्ष्मी चली गयी । वह गरीब बन गया । बडे भाई की पुन्नाई बहुत थी, इसलिए उसे घर में तो लक्ष्मी पानी के पुर की तरह बहने लगीं । उसके पास पहले जितना था उससे भी अधिक धन होने (बढ़ने) लगा । उसके यहाँ तो वैभव की आतिशबाजी होने लगी, जबकि छोटे भाई का पुण्य खत्म होने पर बेहाल-सा हो गया और अपने पास के किसी गाँव में जाकर झोंपड़ी बाँधकर रहने लगा । वहाँ रहकर आधा मन (१० कि.ग्रा.) अनाज सिर पर उठाकर बेचने लगा । उसमें से जो रुपये-दो रुपये मिलते उसमें से महेर (चावल-आदि मिलाकर) बनाकर खा लेता । तो कभी-कभी चने लाकर खाता । दो लड़के और एक लड़की मिलाकर तीन सन्तानें थी । इस प्रकार दुःखी अवस्था में दिन बिताने लगे । दीपावली के दिन आये, उनके शरीर पर पहने कपड़े भी फट गये थे,. मगर जहाँ खाना ही बड़ी मुश्किल से मिलता हो, वहाँ कपड़े तो भला कहाँ से लाते ?

❑ कर्मराजा का खेल :

बन्धुओं ! कर्मराजा का खेल कैसा है ! बड़े भाई के घर पैसों की कोई कमी नहीं है । उनके पुराने कपड़ों से और लोग अपना तन ढाँकते हैं मगर अपने छोटे भाई

और उसके परिवार के लिए तन ढाँकने का भी कपड़ा नहीं है । दीपावली के दिनों में बड़े भाई के घर तो विध-विध प्रकार के मिष्टान्न बने हैं, जबकि छोटे भाई के घर चुटकी भर चने के भी लाले है । लोगों के घर मिठाईयों के बोक्स आते देख बच्चें अपने माता-पिता से कहने लगा - "माँ-पिताजी ! सबके घर में बर्फी-पेड़ें हैं और हमारे घर क्यों नहीं है ? लोग तो कैसे नये-नये कपड़ें पहनकर घुमने जाते हैं, फिर हमारे पास क्यों नये कपड़े नहीं है ? हमें भी घुमने जाना है और मिठाई खानी है । अच्छे-अच्छे कपड़ें पहनने हैं ।" इस प्रकार कहते हुए रोने-बिलखने लगे । तब माँ-बाप ने कहा - "बेटों ! रोहिए मत । तुम्हारे लिए मिठाई मँगवाई हैं, परन्तु अभी तक आयी नहीं है, कपड़े भी दर्जी के घर सीने के लिए दिये हैं, वे आयेंगे तब तुम्हें पहनायेंगे मेरे बेटों ! शांति रखिए । रोहिए मत ।" इस प्रकार वे समझाने के प्रयास करते हैं, परन्तु बच्चे कबतक समझते ? बच्चों को समझा-समझाकर दो दिन निकाले, परन्तु बच्चे कबतक धैर्य रखते ? पिछले तीन दिनों से तो महेर और चने भी मिले नहीं है । तीन दिनों से बिलकुल भूखे बच्चें रोने-बिलखने और तड़पने लगे कि-'हमें तो मिठाई ही खानी है ।' किसी प्रकार भी बच्चें जब शांत न हुए तब पत्नी ने कहा - "नाथ ! इन बच्चों का मुख मुझसे देखा नहीं जाता । आप कुछ भी कर बड़े भाई के पास जाईए । वे दयालु हैं, अवश्य हमें सहायता करेंगे ।"

❑ भाई की बेहाल दशा देखकर बड़े भाई का दुःखी हृदय :

बड़े भाई के पास जाते हुए भी शर्म आये ऐसी निर्धन अवस्था है, परन्तु दुःख के कारण भाई के पास जाने के लिए तैयार हुआ । बड़ा भाई दुकान पर बैठा है । छोटे भाई को दूर से आता देख उसे लगा कि अवश्य यह मेरा छोटा भाई ही है । परन्तु उसकी ऐसी दशा हुई कैसे ? छोटे भाई की दशा देखकर बड़े भाई का हृदय काँप उठा । वह खड़ा होकर छोटे भाई के सामने गया । अपनी दुकान में बिठाकर पूछता है कि - "मेरे प्रिय भाई ! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? तुम्हरा चेहरा देखकर मालूम होता है कि तुम्हारी दशा बहुत बुरी हो गयी है । इतनी बुरी हालत में भी मुझे याद न किया ?" तब छोटे भाई ने कहा - "बडे भाई ! मेरे दुःख की तो कोई सीमा ही नहीं रही । मैंने अकेले रहकर जाना कि आपका मुझ पर बहुत स्नेह था । अब मुझे समझ में आ गया कि पुण्य तो आपका ही है । आपके पुण्य से ही हम सुख भोगते थे । परन्तु पत्नियों के क्लेश (ईर्ष्या) के कारण अलग होना पड़ा, परन्तु अब हमारे पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं है । आपसे अलग हो जाने के बाद ही मेरी ऐसी दशा हुई है । पिछले तीन दिनों से पुरा परिवार भूखा है । और दीपावली के दिनों के कारण पड़ौसियों के यहाँ मिठाई, नये कपड़े देखकर बच्चे तकरार करते हैं ! परन्तु भाई जहाँ सेर बाजरे के लाले हो, वहाँ मैं उन्हें मिठाई कहाँ से दूं ?" इतना कहते हुए छोटा भाई बेहोश होकर गिर पड़ा ।

बन्धुओं ! गरीबी तो तिनके से भी हलकी होती है । आज इस संसार में जितनी तिनके की क़ीमत है उतनी भी गरीब मनुष्य की क़ीमत नहीं है । जो गरीबी के दुःख सहता है, वही जान सकता है कि गरीबी के दुःख कैसे है ! जो मनुष्य मिठाई खाकर सोये और मिठाई खाकर जागता हो, उसे भूख का दुःख कैसा हो - इसका क्या पता ? यह तो अनुभवी ही जान सकता है ।

"धनवान मौज़ करते हैं, दुःखी आँसू गिराते हैं,
किसी अनुभवी से पूछना, वे कैसे जीवन जीते हैं ।"

आप सभी पुण्यवान हो, क्योंकि प्रत्येक संस्थाओं में दाता दरियादिली से दान देते हैं । इसलिए लोगों को कुछ न कुछ फायदा अवश्य होता है और अनेक गरीब परिवारों का निर्वाह होता है, परन्तु आप देश की ओर दृष्टि करेंगे तो ज्ञात होगा कि वहाँ कोई राहत मिलती नहीं है । ऐसे अनेक परिवार हैं कि जो भयानक गरीबी से पीड़ित हैं उनको कोई देखनेवाला भी नहीं है । एक ज़माना ऐसा था कि गरीब खानदान परिवार की स्त्रियाँ घर में बैठकर अनाज पीसकर पेट पालती थीं । हाथों से कारचोबी (गूथने) का काम कर पैसे कमाती थी । मगर आज तो पीसने के मशीन (चक्की) आ गये हैं और कारचोबी के लिए भी मशीन आ गये हैं, इसलिए गरीबों की आजीविका बन्द हो गयी है और गरीब परिवार बेरोज़गार बन गये हैं । उनकी दशा देखकर हम काँप उठते हैं । ऐसे गरीब परिवारों के सामने दृष्टि करना ।

❑ **करुणावन्त बड़ा भाई :**

छोटा भाई अपने दुःख की कहानी कहते हुए चक्कर खाकर गिर पड़ा । बड़े भाई ने उसे पानी छिड़ककर स्वस्थ किया और सिर पर हाथ रखकर कहा - "मेरे भाई ! तुम घबराओ मत । मैं तुम्हें पैसे देता हूँ । उसे लेकर घर जा और अपने बच्चों तथा पत्नी को भोजन दे ।" ऐसा कहकर बड़े भाई ने जेब में हाथ डाला । देखिए, कर्म की कठिनाई ! बड़े भाई के जेब में सामान्यतः हजार-दो हजार रुपये तो मिल ही जाते, परन्तु आज तो केवल पाँच रुपये ही निकले । "अरेरे - भाई ! आज जेब में नकद रुपये भी नहीं है । परन्तु कोई बात नहीं । मैं तुम्हें चिट्ठी लिखकर देता हूँ उसे लेकर घर जा । तुम्हारी भाभी तुझे रु. ५००० देगी, उसे लेकर तुम घर जाना और भोजन करके जाना ।" तब छोटे भाई ने कहा - "बड़े भाई ! मैं भोजन के लिए तो नहीं रूकुँगा ! क्योंकि मेरी पत्नी और बच्चें भूखों मरते हो और मैं भला कैसे खाता ? मेरे गले से निवाला कैसे उतरता ?" बड़े भाई ने कहा - "ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा । वैसे तो मैं भी तुम्हारे साथ घर पर आता, परन्तु आज मुझे एक आवश्यक काम है, इसलिए जाना पड़ेगा । मैं काम पूर्ण कर आधे घण्टे में घर आता हूँ । तुम्हारे पास समय हो तो रूक जाना, अन्यथा पैसे लेकर बाद में

और उसके परिवार के लिए तन ढाँकने का भी कपड़ा नहीं है । दीपावली के दिनों में बड़े भाई के घर तो विध-विध प्रकार के मिष्टान्न बने हैं, जबकि छोटे भाई के घर चुटकी भर चने के भी लाले है । लोगों के घर मिठाईयों के बोक्स आते देख बच्चें अपने माता-पिता से कहने लगा - "माँ-पिताजी ! सबके घर में बर्फी-पेड़ें हैं और हमारे घर क्यों नहीं है ? लोग तो कैसे नये-नये कपड़ें पहनकर घुमने जाते हैं, फिर हमारे पास क्यों नये कपड़े नहीं है ? हमें भी घुमने जाना है और मिठाई खानी है । अच्छे-अच्छे कपड़ें पहनने हैं ।" इस प्रकार कहते हुए रोने-बिलखने लगे । तब माँ-बाप ने कहा - "बेटों ! रोहिए मत । तुम्हारे लिए मिठाई मँगवाई हैं, परन्तु अभी तक आयी नहीं है, कपड़े भी दर्जी के घर सीने के लिए दिये हैं, वे आयेंगे तब तुम्हें पहनायेंगे मेरे बेटों ! शांति रखिए । रोहिए मत ।" इस प्रकार वे समझाने के प्रयास करते हैं, परन्तु बच्चे कबतक समझते ? बच्चों को समझा-समझाकर दो दिन निकाले, परन्तु बच्चे कबतक धैर्य रखते ? पिछले तीन दिनों से तो महेर और चने भी मिले नहीं है । तीन दिनों से बिलकुल भूखे बच्चें रोने-बिलखने और तड़पने लगे कि-'हमें तो मिठाई ही खानी है ।' किसी प्रकार भी बच्चें जब शांत न हुए तब पत्नी ने कहा - "नाथ ! इन बच्चों का मुख मुझसे देखा नहीं जाता । आप कुछ भी कर बड़े भाई के पास जाईए । वे दयालु हैं, अवश्य हमें सहायता करेंगे ।"

❑ भाई की बेहाल दशा देखकर बड़े भाई का दुःखी हृदय :

बड़े भाई के पास जाते हुए भी शर्म आये ऐसी निर्धन अवस्था है, परन्तु दुःख के कारण भाई के पास जाने के लिए तैयार हुआ । बड़ा भाई दुकान पर बैठा है । छोटे भाई को दूर से आता देख उसे लगा कि अवश्य यह मेरा छोटा भाई ही है । परन्तु उसकी ऐसी दशा हुई कैसे ? छोटे भाई की दशा देखकर बड़े भाई का हृदय काँप उठा । वह खड़ा होकर छोटे भाई के सामने गया । अपनी दुकान में बिठाकर पूछता है कि - "मेरे प्रिय भाई ! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? तुम्हरा चेहरा देखकर मालूम होता है कि तुम्हारी दशा बहुत बुरी हो गयी है । इतनी बुरी हालत में भी मुझे याद न किया ?" तब छोटे भाई ने कहा - "बडे भाई ! मेरे दुःख की तो कोई सीमा ही नहीं रही । मैंने अकेले रहकर जाना कि आपका मुझ पर बहुत स्नेह था । अब मुझे समझ में आ गया कि पुण्य तो आपका ही है । आपके पुण्य से ही हम सुख भोगते थे । परन्तु पत्नियों के क्लेश (ईर्ष्या) के कारण अलग होना पड़ा, परन्तु अब हमारे पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं है । आपसे अलग हो जाने के बाद ही मेरी ऐसी दशा हुई है । पिछले तीन दिनों से पुरा परिवार भूखा है । और दीपावली के दिनों के कारण पड़ौसियों के यहाँ मिठाई, नये कपड़े देखकर बच्चे तकरार करते हैं ! परन्तु भाई जहाँ सेर बाजरे के लाले हो, वहाँ मैं उन्हें मिठाई कहाँ से दूँ ?" इतना कहते हुए छोटा भाई बेहोश होकर गिर पड़ा ।

है, परन्तु मेरे भाई ने नीचे जो लिखा है इसे पढ़िए । भाई ने तो रु. ५००० देने को लिखा है, परन्तु मुझे पाँच हजार रुपये नहीं मात्र १०० रु. दीजिए, उसे भी मैं कुछ काम करके आपको लौटा दुंगा । परन्तु अभी मेरी पत्नी-बच्चें तीन दिनों से भूखे हैं, उनके लिए कुछ ले जाऊँ और उनकी भूख शांत करूँ ।'' तब भाभी ने कहा - ''देवरजी ! आपकी बात सही है, परन्तु बात यह है कि अभी घर में एक रुपया भी शेष नहीं है । कल ही पैसों की आवश्यकता पडी थी, इसलिए आपके भाई घर से सारे पैसे ले गये हैं, फिर मैं आपको सो रुपये भी कैसे दे सकती हूँ ?''

❑ देवर को बरामदे से बाहर निकालती भाभी :

देवर समझ गये कि भाभी को कुछ देने की मर्ज़ी नहीं है । वह बहुत निराश होकर घर से बाहर निकला । उसे लगा कि मेरे भाई ने मुझे बैठने को कहा है, तो बाहर एक पत्थर पर जाकर बैठा । भाभी समझ गयी कि उसके भाई की राह देखता होगा । अतः बाहर आकर कहने लगी - ''भाई ! ये दीपावली के दिन हैं । मुझे बाहर किसी कार्यवश जाना है । इसलिए खड़े हो जाईए ।'' देवर ने कहा - ''भाभी ! आप खुशी से घर बन्द करके जाईए । मैं अकेला यहाँ बैठा रहुँगा ।'' तब भाभी ने कहा - ''मुझे कम्पाउन्ड का भी दरवाज़ा भी बन्द करना है । अगर खुला छोड़कर जाऊँ तो कुत्ते बिगाड देंगे । लोगों के बच्चें भी आकर कचरा डालते हैं, अतः आप यहाँ से खड़े हो जाईए । और किसी और जगह पर जाकर बैठिए ।'' भाभी ने देवर को चौखट में भी बैठने न दिया । देवर समझ गया कि मेरे ज़ोरदार (बहुत) पापकर्मों का उदय है । अब तो जो होना होगा वह हो जायेगा मगर यहाँ बैठने में ठीक नहीं है । अपनी भाभी ही जब दुःखी स्थिति में मुझे सहायता देती नहीं है तो फिर और कहाँ जाऊँ ! वह तो उठकर चलने लगा और घर पहुँच गया । भूख से बिलखते बच्चें राह देख रहे थे कि मेरे पिताजी मिठाई लेकर आते होंगे । तभी पिताजी को आते देख उन्हें पकड़ लिया । ''पिताजी ! हमारे लिए बरफी-पेंड़ें लाये ?'' तब बाप ने अपने बच्चों को छाती से लगाकर कहा - ''बेटे ! कुछ ही समय में बापुजी आपके लिए बहुत-सारी मिठाई और अच्छे अच्छे कपड़े लेकर आते हैं । आप सो जाईए । आयेंगे तो तुम्हें उठा ऊँगा ।'' ऐसा कहकर बच्चों को समझाकर सुला दिया ।

❑ दुःख के कारण जीवन का अन्त :

फिर पत्नी से सारी बात की । पत्नी ने कहा - ''अब तो बच्चों के सामने देखा भी नहीं जाता । इससे अच्छा है हम मर जाते । ऐसा जीवन जीने का क्या अर्थ है ?'' दोनों पति-पत्नी ने कुएँ में गिरकर मर जाने का निश्चय किया । बच्चों को भूखे-प्यासे घोर निद्रा में सोते छोड़कर दोनों पति-पत्नी घर से बाहर निकले । 'लड़कों बच्चों का पुण्य होगा तो कोई सज्जन मिल जायेंगे, नहीं तो हमारे पीछे मर जायेंगे ।' ऐसा सोचकर आधी रात को गाँव के पास गहरा कुआँ था, उसमें गिर पड़े

आना ।" इतना कहकर बड़ा भाई अपने काम से बाहर गये और छोटा भाई चिट्ठी लेकर उसके घर गया ।

❑ धनवानों को पूजती भाभी :

भाभी ने देवर को दूर से आते देखा । वह समझ गयी कि यह भिखारी कुछ माँगने ही आया लगता है, परन्तु मुझे उसको कुछ देना ही नहीं है, क्योंकि अगर एक बार उसे दुँगी तो बार-बार आयेगा । परन्तु इसके बजाय अगर देवर धनवान होता तो भाभी ऐसा न सोचती और उसे प्रेम से बुलाती । आज जहाँ देखो वहाँ पैसों का मान हैं । मेहमान आये तो घरवाली अपने पति से पूछती है कि-"मेहमान कैसे हैं ?" तब पति कह दे कि - "थर्डक्लास ।" तो उसके लिए रोटी और छाछ बनते है । सेकन्डक्लास हो तो दाल-चावल, सब्जी और रोटी बनती है तथा फर्स्टक्लास हो तो उसके लिए मिष्टान्न और चाट बनते हैं । बोलिए, ऐसे करते हैं न ? (सब हँसते हैं ।) उसे एक दिन रूकना होगा तो आप उसे बलपूर्वक और एक दिन रखेंगे, परन्तु उस गरीब को रूकना होगा तब भी उसे रोकेंगे नहीं । वह कब यहाँ से चला जाय इसकी राह देखते रहेंगे । ये सब कर्मों के खेल हैं । जीव को अपने कर्म ही उसे दुःखी और सुखी करते हैं । अतः कहा है कि **'कर्म की पहेली है अलबेली, उसे पाना नहीं है सरल ।'** मनुष्य संसार में सारी पहेलियों को सुलझा सकता है, मगर कर्म की पहेली को सुलझाना बड़ा मुश्किल है । कर्म मनुष्य को राय से रंक बनाते हैं और रंक से राजा । ज्ञानीपुरुष कर्म की विचित्रता को समझकर संसार की मोहमाया में फँसते नहीं है । यह छोटा भाई अपने बड़े भाई की चिट्ठी लेकर उनके घर गया । भाभी के पास जाकर खड़ा रहा, परन्तु भाभी ने ऐसा न कहा कि-'आईए देवरजी !' सौफा खाली पड़ा था, परन्तु छोटे भाई को लगा कि मैं सौफे पर बैठुँगा तो भाभी को अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए समझकर नीचे बैठा । तब देवर के मन में हुआ कि मेरे कर्मों ने मुझे गरीब बना दिया है । जीव ! गरीबी में तुम किसलिए मान की इच्छा करते हो कि भाभी मुझे बुलाये तो बोलुँ, और न बुलाये तो मुझे ही मान छोड़कर भाभी को बुलाना चाहिए ।

❑ देवर की नम्रता और भाभी की कठोरता :

ऐसा सोचकर देवर ने खड़े रहकर ही नम्रता से कहा - "भाभी ! मेरे भाई ने यह चिट्ठी दी है इसे आप पढ़िए ।" भाई ने चिट्ठी में पहले लिखा था कि-'मेरे भाई को पहले भोजन देना और रु. ५००० देना ।' चिट्ठी पढकर भाभी ने कहा - "भाई ! मैं आपको अवश्य भोजन कराती, परन्तु आज हमारे घर के सभी लोगों को बाहर भोजन के लिए जाना है ।' इसलिए रसोईघर वन्द है, फिर मैं आपको कैसे खिला सकती हूँ ?" देवर ने कहा - "भाभी ! कोई बात नहीं । मुझे भोजन नहीं करना

है, परन्तु मेरे भाई ने नीचे जो लिखा है इसे पढ़िए । भाई ने तो रु. ५००० देने को लिखा है, परन्तु मुझे पाँच हजार रुपये नहीं मात्र १०० रु. दीजिए, उसे भी मैं कुछ काम करके आपको लौटा दुंगा । परन्तु अभी मेरी पत्नी-बच्चें तीन दिनों से भूखे हैं, उनके लिए कुछ ले जाऊँ और उनकी भूख शांत करूँ ।'' तब भाभी ने कहा - ''देवरजी ! आपकी बात सही है, परन्तु बात यह है कि अभी घर में एक रुपया भी शेष नहीं है । कल ही पैसों की आवश्यकता पडी थी, इसलिए आपके भाई घर से सारे पैसे ले गये हैं, फिर मैं आपको सो रुपये भी कैसे दे सकती हूँ ?''

❑ **देवर को बरामदे से बाहर निकालती भाभी :**

देवर समझ गये कि भाभी को कुछ देने की मर्ज़ी नहीं है । वह बहुत निराश होकर घर से बाहर निकला । उसे लगा कि मेरे भाई ने मुझे बैठने को कहा है, तो बाहर एक पत्थर पर जाकर बैठा । भाभी समझ गयी कि उसके भाई की राह देखता होगा । अतः बाहर आकर कहने लगी - ''भाई ! ये दीपावली के दिन हैं । मुझे बाहर किसी कार्यवश जाना है । इसलिए खड़े हो जाईए ।'' देवर ने कहा - ''भाभी ! आप खुशी से घर बन्द करके जाईए । मैं अकेला यहाँ बैठा रहुँगा ।'' तब भाभी ने कहा - ''मुझे कम्पाउन्ड का भी दरवाज़ा भी बन्द करना है । अगर खुला छोड़कर जाऊँ तो कुत्ते बिगाड देंगे । लोगों के बच्चें भी आकर कचरा डालते हैं, अतः आप यहाँ से खड़े हो जाईए । और किसी और जगह पर जाकर बैठिए ।'' भाभी ने देवर को चौखट में भी बैठने न दिया । देवर समझ गया कि मेरे ज़ोरदार (बहुत) पापकर्मों का उदय है । अब तो जो होना होगा वह हो जायेगा मगर यहाँ बैठने में ठीक नहीं है । अपनी भाभी ही जब दुःखी स्थिति में मुझे सहायता देती नहीं है तो फिर और कहाँ जाऊँ ! वह तो उठकर चलने लगा और घर पहुँच गया । भूख से बिलखते बच्चें राह देख रहे थे कि मेरे पिताजी मिठाई लेकर आते होंगे । तभी पिताजी को आते देख उन्हें पकड़ लिया । ''पिताजी ! हमारे लिए बरफी-पेंड़ें लाये ?'' तव वाप ने अपने बच्चों को छाती से लगाकर कहा - ''बेटे ! कुछ ही समय में वापुजी आपके लिए बहुत-सारी मिठाई और अच्छे अच्छे कपड़े लेकर आते हैं । आप सो जाईए । आयेंगे तो तुम्हें उठा ऊँगा ।'' ऐसा कहकर बच्चों को समझाकर सुला दिया ।

❑ **दुःख के कारण जीवन का अन्त :**

फिर पत्नी से सारी बात की । पत्नी ने कहा - ''अब तो बच्चों के सामने देखा भी नहीं जाता । इससे अच्छा है हम मर जाते । ऐसा जीवन जीने का क्या अर्थ है ?'' दोनों पति-पत्नी ने कुएँ में गिरकर मर जाने का निश्चय किया । बच्चों को भूखे-प्यासे घोर निद्रा में सोते छोड़कर दोनों पति-पत्नी घर से बाहर निकले । 'लड़कों बच्चों का पुण्य होगा तो कोई सज्जन मिल जायेंगे, नहीं तो हमारे पीछे मर जायेंगे ।' ऐसा सोचकर आधी रात को गाँव के पास गहरा कुआँ था, उसमें गिर पड़े

और अपने जीवन का अन्त किया । सुबह में बहने कुएँ पर पानी भरने आने लगी । कुँए पर नजर करने पर दो मृत्युदेह देखे । लोगों को इस बात का पता चला । इस ओर सुबह होने पर बच्चें जगे, परन्तु अपने माँ-बाप को न देखा तो "ओ माँ, ओ पिताजी ! आप हमें छोड़कर कहाँ चले गये ?" ऐसा कहकर बिलख-बिलखकर रोने लगे । आस-पास के पडौसी आ पहुँचे और आस-पास खोज की तो उनके माँ-बाप न मिले और उनको यह समाचार मिले कि कुँए में दो मृतदेह तैर रहे हैं । लोगों ने जाँच की तो पता चला कि इन्हीं बच्चों के माँ-बाप कुँए में गिरकर मर गये हैं । लोगोंने उसके बड़े भाई को सूचना दी । बड़ा भाई दौड़ता हुआ आया । अपने छोटे भाई-भाभी की यह अवदशा देखकर धडाम से नीचे गिर गया । घर में छोटे भाई ने चिठ्ठी लिखी थी कि - "मेरे पितातुल्य भाई ! आपके भरोसे बच्चों को छोड़ा है । आप उनका पालन-पोषण कीजिएगा । आपकी चिठ्ठी लेकर भाभी के पास गया था, परन्तु भाभी ने कुछ न दिया । मैं तो मात्र उनकी चरणरज मस्तक पर चढ़ाकर वापस लौटा हूँ ।"

❑ छोटे भाई की चिठ्ठी पढ़कर हिंमत हारे बड़े भाई :

छोटे भाई के यह शब्द पढ़ते ही बड़े भाई को बहुत दुःख हुआ । अहो ! मेरी तिजोरी में चाहे लाखों रुपये हो, परन्तु अब किस काम के ? जहाँ मेरे भाई-भाभी के बच्चें खाये-पीने बिना तड़पते हो और भाई-भाभी को गरीबी से तंग आकर कुँए में गिरकर जान दी । इसमें मेरी ही भूल है न ? मैंने उसका ध्यान नहीं रखा इसलिए उसकी यह अवदशा हुई न ? दुनिया में सब कुछ मिलेगा मगर मेरा भाई नहीं मिलेगा । बड़े भाई ने बहुत आर्तनाद किया और उनके शर्वो की अन्तिम क्रिया पूर्ण कर बच्चों को लेकर अपने घर आया तो सेठानी कहने लगी - "इस मुसीबत को कहाँ से ले आये ? मैं कोई नौकरानी नहीं हूँ कि ये सारी मज़दूरी करूँ ।" तब सेठ ने कहा - "अगर तुम्हें मज़दूरी लगती हो, तो मुझे ज़िन्दा रहना नहीं है । अगर तुम इन बच्चों को सँभालोगी तो ही ज़िन्दा रहूँगा । अन्यथा मैं मर जाऊँ उसके बाद आप सब सुख-चैन से रहना । तुमने मेरे भाई को सहायता न की इसलिए यह दशा हुई न ?" सेठानी ने कहा - "आपका भाई आया ही नहीं है ।" परन्तु सेठ समझ गये कि सेठानी झूठ बोल रही है । परन्तु अब कोई उपाय नहीं है । अन्त में सेठानी को भी स्पष्ट हो गया कि अगर सेठ मर जायेंगे तो मेरे जीवन में क्या सुख रहेगा ? अतः देवर के बच्चों को प्रेम से पालने लगी । बच्चों को बड़ा कर उन्हें व्यवस्थित उचित कार्य में लगा दिये ।

संक्षिप्त में मुझे तो आपको इतना ही कहना है कि आपको धन मिला है तो आपका उसका सदुपयोग करना । आज धन तेरस के दिन लक्ष्मी की पूजा करने से लक्ष्मी नहीं मिलेगी, परन्तु दान में देने से - खर्च करने से आपका पुण्य बढ़ेगा, अतः मन विशाल कर धन का सदुपयोग करेंगे तो ही आपने धन तेरस मनायी है ऐसा माना जायेगा । अधिक बातें समय आने पर ।

व्याख्यान - २५

आश्विन मास

अमावस्या - 'दीपावली'

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शनी, करुणासिंधु, शासनपति चरम तीर्थंकर भगवान महावीर-स्वामी ने संसार के जीवों के एकांत हित के लिए आगमवाणी की प्ररूपणा की, जिसमें शाश्वत-सुख का छलकता महासागर सदैव बह रहा है । इस वाणी के जल में शुद्ध भाव से जो आत्मा स्नान करे वह अमर हो जाता है और क्या कहूँ ? जो जिनवाणी के जल बिन्दुओं का छिड़काव स्वीकार करे, वह आत्मा पवित्र बन जाती है । परम प्रभु की वात्सल्यमयी वाणीरूपी पवित्र गंगा के किनारे खड़ा रहे और उसका एक भी जलकण स्पर्श जाय, तो भी उष्णता को हर ले और शीतलता प्रदान कर दे । ऐसा है वीतराग बनाने का वीलपावर रखनेवाली वीतरागवाणी का अपूर्व प्रभाव आत्मा के संपूर्ण गुणों को जिन्होंने खिलाये हैं, जिन्होंने सर्व दुर्गुणों को दफनाकर सद्गुणों का प्रकाश जीवन में फैलाया है और अज्ञान के अन्धेरे दूर कर केवलज्ञान रूपी सूर्य जिस के जीवन में प्रकाशित हुआ है ऐसे प्रभु की वाणी आज शास्त्ररूप में हमारे सामने है । जिस सिद्धांत में आत्मकल्याण के अमोघ उपाय बताये हैं, परन्तु आगम में गहन अवलोकन न करे तबतक कहाँ से मिलेगा ? आत्म-चिंतवणा करने से आत्मा को स्वयं की शक्ति का ज्ञान होता है और मोह उतर जाता है ।

बन्धुओं ! हमारे भगवान ने आत्म-चिंतवणा कर कर्मशत्रुओं को दूर कर केवलज्ञान प्रकट किया था । केवलज्ञान पाने के बाद भगवान ने अनेक जीवों को उद्धारे हैं और अन्त में आयुष्य पूर्ण होने पर अघातीकर्मों का क्षय कर आश्विन मास के अमावस्या की पिछली रात में मोक्ष में पधारे । उस पर्व को हम दीपावली के रूप में मनाते हैं । आज दीपावली का पवित्र दिन है । अवनि के आँगन में आये इस दीपावली ने सभीके हृदय में नूतन भावना के समीर दुलार करने लगे, उत्साह की महक फैलायी, जहाँ देखो वहाँ बस आनन्द-आनन्द और आनन्द । इन दिनों में बच्चे, युवक, नर-नारी सभी अच्छे-अच्छे वस्त्रों से देह को सजाकर, रस की मधुरता का अनुभव करने के लिए खान-पान की महफ़िल उड़ाते हैं । रंगबिरंगी रंगोली से आँगन को सजाते हैं । जगह-जगह द्वार और आँगन में झगमगाते दीये जल रहे हैं । सबके हृदय में एक ही गुंजन - 'भाई ! आज तो दीपावली आयी, नये-नये सन्देश आयी,

महफिल और मौज्-मस्ती की, आनन्द की निशानी।' ऐसे जीव मानते हैं कि रंगराग की मस्ती और आनन्द से मनाना यही है दीपावली। दीपावली अर्थात् पैसों का खर्च। दीपावली यानी देह-शृंगार की स्पर्धा और खानपान की मजलिस। ऐसी दीपावली मनाने से देह को और मन को आनन्द हो, परन्तु आत्मा की तो दीपावली के बजाय होली होती है। दीपावली के आगमन से आपको जो आनन्द होता है, वह आनन्द क्षणिक है, नश्वर है। वास्तविक रूप में दीपावली का अर्थ जीव समझे तो 'दि' वाले (दिन उबारे) वही दीपावली आज जहाँ नज़र डालते हैं वहाँ इसका मर्म भुलाया गया है, भावना भुला दी गयी है।

दीपावली के निर्माण में हेतु-भूत कौन थे, यह तो आप को मालूम है न ? शासनपति त्रिलोकीनाथ श्री महावीर-प्रभु का निर्वाण और गौतमस्वामी का केवलज्ञान। चरम तीर्थंकर महावीर-प्रभु विश्व के बन्धन से मुक्त बन सदैव बिदा लेकर मोक्ष लक्ष्मी से वरे, अजर-अमर पद को प्राप्त किया, संसार के सर्वांगी (संपूर्ण) सुख को छोड़कर अलौकिक सुख प्राप्त किया और उनके पट्टशिष्य गौतमस्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त किया। विश्व के उपकारक, उद्धारक, करुणासागर, मार्गदर्शक, संसार के प्रांगण (आँगन) से अदृश्य हो, विश्व-वात्सल्य के झरने का अमृत बन जाय, परमार्थ का पखेरू उड़ जाय, तब क्या संसार के जीवों की आँखों में आंसु नहीं होगे ? शोक की गहरी छाया नहीं होगी ? होगी ही। प्रभु तो वीतराग बन गये। उन्होंने रागादि शत्रुओं का नाश किया, परन्तु दूसरे जीव तो छद्मस्थ थे। प्रभु के आधार-स्तंभ माननेवाले थे। अतः शासन के तेजस्वी रत्न विलय होगा, आधार-स्तंभ टूट जाने का आघात (शोक) सहने को समर्थ न बने सके यह स्वाभाविक है। वे सच्ची राह पर गये और सच्चे पंथ का मार्ग दिखाते गये। आत्मा की कमाई कर दूसरों को उपाय बताते गये। देह गई, परन्तु शासन छोड़ गये। उपदेश धारा गई मगर वचनबिन्दु छोड़ गये।

भगवान ने अन्तिम देशना पावापुरी में दी है। भगवान एक बार ग्रामानुग्राम विचरते हुए पावापुरी नगरी को पावन करने के लिए शेषकाल में पधारे। भगवान का आगमन होते ही पावापुरी की जनता भगवान के दर्शन करने के लिए उमड़ पड़ी। पावापुरी के हस्तिपालराजा के साढ़े तीन करोड़ रोम-खिल उठे। अहो ! आज मेरे आँगन में सोने का सूर्य उगा। मेरी पावापुरी नगरी प्रभु के पवित्र पदकमलों से पावन हो गयी। मेघ गाजे और मोर नाचे - इस प्रकार हस्तिपालराजा के मन का मयूर नाचने लगा और तत्काल परिवार-सहित प्रभु के दर्शन हेतु पधारे। बहुत भावपूर्वक प्रभु को वन्दन-नमस्कार कर देशना सुनने के लिए बैठ गये। एक चित्त से प्रभु की देशना सुनी। हस्तिपालराजा को मालूम था कि ये प्रभु का अन्तिम चातुर्मास है। अतः मन ही मन सोचा कि प्रभु के अन्तिम चार्तुमास का हमें लाभ

मिले तो जीवन सफल बन जाय । मैं प्रभु से बिनती करूँ । बाद में देशना पूर्ण होने के बाद हस्तिपालराजा प्रभु को चातुर्मास के लिए बिनती करने खड़े हो गये; अतः पावापुरी की जनता भी खड़ी हुई और सभी प्रभु के चरणों में मस्तक झुकाकर प्रार्थना करने लगे ।

बन्धुओं ! जो हलुकर्मी और मोक्षगामी जीव होते हैं, उनके जीवन में विनय, नम्रता, सरलता, क्षमा आदि गुणों का समन्वय होता है । आज तो विनय को निर्वासित कर दिया है । धन कमाने के लिए बहुत विनय दिखाते हो । अपनी ऑफिस में कोई बड़ा व्यापारी आ जाय, तो आप अपनी कुर्सी या गद्दी पर बैठे हो तो तत्काल खड़े हो जाते हैं न ? उसके सामने जाईए, आदर-सत्कार करते हो, परन्तु आप दीवानखाने में बैठे हो और साधु-संत आपके घर पधारे तो कितना विनय करेंगे ? संसार के सुख के लिए उपयोगी विनय आपको तारेगा नहीं ।

भगवान ने अपनी अन्तिम देशना में सबसे पहले हमें विनय सिखाया है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' का प्रथम अध्ययन विनय के बारे में है । विनय तो अपने बैरी (दुश्मन) को वश करने का वशीकरण है, विनयवंत हस्तिपालराजा प्रभु से बिनती करने उठे तो प्रजा भी उठ खड़ी हुई । दीनदयाल ! मेरे त्रिलोकीनाथ ! इस सेवक की नम्र प्रार्थना को आप स्वीकार कीजिए । राजा प्रभु से क्या प्रार्थना करते हैं ?

थे अब को चौमासो स्वामीजी अठे करोजी,
थें पावापुरी से पग आधोमति धरोजी ।
हस्तिपाल राजा विनय दो कर जोड़
पूरी कीजिए प्रभु मेरे मन की इच्छा ।
शीश नमाय खड़े जोड़ी हाथ,
करुणासागर वांछो कृपाजीनाथ, थें अब को ॥

हस्तिपालराजा प्रभु के सामने देखकर कहते हैं - "हे करुणासिन्धु ! आप मेरी प्रार्थना का स्वीकार कर इस अन्तिम चातुर्मास में पावापुरी के आँगन में बिराजिएगा । आपके चातुर्मास से हमें महान लाभ होगा । भव्यजीव आत्मा का कल्याण करेंगे । मैं आपको इस बार यहाँ से दूर जाने नहीं दुँगा । यह लाभ हमें ही दीजिए ।" हस्तिपालराजा प्रभु से बिनती करते समय आँखों से छोटे बच्चे की तरह आंसु बहा रहे हैं । छोटा बालक अपनी माता के पास कुछ लेना हो तो टूटी-फूटी भाषा बोलकर माता का हृदय पिघला देता है, उसी प्रकार हस्तिपालराजा भी छोटे बच्चे की तरह भगवान से अनुनय करता है ।

जिस भूमि में महान पुण्य हो, वहाँ शासनपति तीर्थंकर-प्रभु का चातुर्मास होते हैं । जहाँ तीर्थंकर-प्रभु विराजमान हो, वहाँ उपद्रव, रोग, शोक दूर हो जाते हैं और

शांतिमय, आनन्दवर्धक, वातावरण फैल जाता है । हस्तिपालराजा ने प्रभु से ज़ोरदार बिनती की, भगवान तो केवलज्ञानी थे । उन्होंने आपने ज्ञान द्वारा जाना कि मेरी देह इसी भूमि में ही नष्ट होनेवाली है । मेरे लिए इस भूमि को यह अन्तिम स्पर्श है । ऐसा जानकर भगवान के हस्तिपालराजा की बिनती का स्वीकार किया । प्रभु का चातुर्मास पावापुरी में होगा, यह जानकर राजा और प्रजा के हृदय में आनन्द छा गया, समय जाते ही भगवान पावापुरी के आँगन में चातुर्मास के लिए पधारे । श्रावक-श्राविकाओं के आनन्द की कोई सीमा न रही । प्रभु के पुनित पदार्पण से पावापुरी नगरी गूँज उठी है । भव्यजीव प्रभु की वाणी के घूँट पीते हुए तृप्त नहीं हो रहे है, प्रभु का चातुर्मास हुआ उसका आनन्द है और साथ ही प्रभु का यह चरम चातुर्मास है । अब हमें भरतक्षेत्र में अरिहंत-प्रभु का वियोग होगा इसका अत्यन्त दुःख है, क्योंकि अरिहंत-प्रभु का वियोग सहना पड़े, यह भला किसे अच्छा लगेगा ? भगवान की अन्तिम देशना सुनने १८ देश के राजा वहाँ आये थे ।

भगवान ने अन्तिम छट्ठ तप कर सोलह प्रहर तक अखण्ड देशना सुनायी थी । 'उत्तराध्ययन सूत्र' और 'विपाक सूत्र' भगवान की अन्तिम वाणी है । भगवान की वाणी सुनकर १८ देश के राजा और गाँव की जनता खुश हो रही हैं । सभीके हृदय में आनन्द है और साथ ही एक प्रकार का दुःख भी है कि हमारे भगवान अब मोक्ष में पधारनेवाले हैं । वर्तमान में भगवन्त के संयोग का आनन्द और भविष्य में होनेवाले वियोग की कल्पना भव्यजीवों के हृदय में दुःख पहुँचाता है । वैसे तो सामान्य रूप से प्रतिदिन भगवान की देशना दो प्रहर की होती है, परन्तु भगवान का निर्वाहकाल करीब आया, इसलिए भगवान ने काली चौदस और अमावस्या इन दो दिनों तक लगातार सोलह प्रहर तक दिव्य देशना दी है, आज के तर्कवाद के युग में कुछ लोग ऐसा तर्क करते है कि-'सुननेवाले इतने अधिक समय तक कैसे बैठे रहे ? क्या उन्हें थकान का अनुभव नहीं हुआ होगा ? नींद आयी होगी नहीं ?' इस शंका का समाधान करते हुए महापुरुष करते हैं कि -

''भगवान की वाणी के अतिशयों को जो जानता न हो और मानता न हो, उसे ऐसा प्रश्न नहीं होता । क्योंकि **जिनेश्वर देवों की धर्मदेशना अर्थात् अनुपम प्रकार का सुन्दरतम् संगीत ।** ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि भगवान की देशना माल-कोश राग में और अर्धमागधी भाषा में होती है । भगवान के सूर अत्यंत मधुर होते है । देव उसमें दुदुंभी के सूर मिलाते हैं । आज आप सभीको मनचाह छाया-गीत या कोई गायक मनचाहे गीतों के सूर की सरगम छेड़ दे, तो घण्टों तक आप शांत और स्वस्थ चित्त से बैठे रहे न ? वहाँ आपको थकान लगती है ? नींद आती है ? नहीं । तो फिर जहाँ तीर्थंकर भगवान की वाणी की सुमधुर सूर नीलकते हो उसकी तो बात ही क्या करें ?

भगवान की देशना सुननेवाले सबको ऐसा ही लगता है कि भगवान मुझे ही
कह रहे हैं और सब अपनी-अपनी भाषा में भगवान को समझ सकते हैं । सभीके
संशय एक-साथ दूर होते हो, ऐसी वाणी का अतिशय जिन्होंने धारण किया हो, ऐसे
तीर्थंकर-प्रभु की देशना सुननेवाले लगातार सोलह प्रहर तक बैठे रहे इसमें आश्चर्य
करना जैसा क्या है ? संगीत में क्या कम ताक़त है ? अगर मल्हार राग गाते आता
हो, वह गायक तो भयानक गर्मी में भी बारिश ला सकता है । दीपक राग गाते आता
हो, उसका गायक घोर अन्धकार में भी दीपक जलाकर प्रकाश फैला सकता है ।
संगीत में इतनी ताक़त है । तो भगवान की देशना रूप संगीत तो उच्चतम कोटि
का है । भगवान की वाणी के अतिशयों का जिन्हें ज्ञान न हो उसे परेशानी हो यह
सम्भव है, परन्तु जो भगवान के अतिशयों को जानते हो, मानते हो, उन्हें ऐसी शंका
होती ही नहीं हैं कि सुननेवाले सोलह प्रहर तक कैसे बैठ सकते हैं ?

भगवान की वाणी का प्रभाव ही ऐसा है कि चंचल स्वभाव के जीव अचंचल
बन जाते है और स्वाभाविक परस्पर बैर वृत्तिवाले जीव जैसे कि सर्प और मयूर, बिल्ली
और चूहे, मृग और सिंह आदि अपने जन्मजात स्वाभाविक बैरभाव को भूलकर एक-
दूसरे के पास बैठकर भगवान की देशना सुनते हैं । वह स्थान ही ऐसा होता है कि
जहाँ जानेवाले हिंसक जीव भी अपनी स्वाभाविक बैरवृत्ति भूल जाते हैं । समवसरण
जैसा स्थान और भगवान की दिव्य देशना इन दोनों का योग श्रोताजनों को घण्टों
तक रोक रखे, इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है । अढ़ारह देशों के राजा, पावापुरी
की जनता तथा दूसरे अनेक लोग आये थे । सभी सभी भगवान के मुख से बहती
अमृतवाणी सुनने में लीन हुए हैं । इन्द्रों देवों और मनुष्यों सबके हृदय में एक ही दुःख
था कि अब हमारे भगवान मोक्ष में पधारेंगे ? हमें अरिहंत-प्रभु का वियोग होगा ?
देखते ही देखते दो दिन तो बीत गये । सोलह प्रहर अखण्ड उपदेश-धारा बहाते हुए
आश्विन मास की अमावस्था की पिछली रात को हमारे शासन नायक भगवान महावीर
स्वामी सभीको छोड़कर मोक्ष में पधारे (सिधाये) । जिस रात भगवान मोक्ष में विराजे,
उस रात भगवान के पट (प्रमुख) शिष्य गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, अतः
एक ओर अरिहंत भगवान महावीरस्वामी के वियोग का दुःख और दूसरी ओर गौतम
स्वामी के केवलज्ञान महोत्सव का आनन्द । भगवान का निर्वाण महोत्सव और गौतम
स्वामी का केवल महोत्सव ये दोनों महोत्सव मनाने के लिए देव आये थे । इस समय
पावापुरी में हर्ष और शोक दोनों अवसर उपस्थित हुए थे ।

आश्विन मास के अमावस्या की रात पिछले प्रहर में भगवान मोक्ष में गये हैं ।
दीपावली के पवित्र दिन में भगवान ने क्या किया, भगवान कैसा जीवन जी गये
और हमें क्या दे गये उसका विचार करना है । व्यापारी भी विक्रम के दीपावली के
दिन की रात में बैठकर सालभर की कार्यवाही की समाप्ति करते हैं और [illegible]
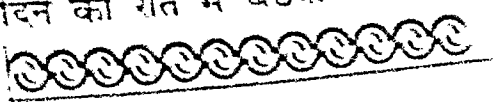
का तथा लेन-देन का वार्षिक विवरण करते है । इस दुर्लभ व्यापार की नुकसानी की भरपाई के साथ नफा का विवरण तो सामान्य से सामान्य व्यापारी भी निकाल सकता है, मगर आत्मा की नुकसानी और नफा की ओर जीव बिलकुल अनजान और बेपरवाह रहा है । वह बेपरवाही कबतक रखेंगे ? सोचिए । भगवान ने इस संसार में जन्म लेकर सर्व प्रथम तो राज-संपत्ति का त्याग कर संयम लिया । संयम लेकर संस्कार की कार्यवाहिनी समाप्ति कर दी और उग्र तप-साधना कर नुकसानी का बदला (मुआवज़ा) चुका दिया और आत्म-संपत्ति के साथ टपकता नफा का विवरण देखा । इसलिए घातीकर्म का क्षय कर सर्वज्ञ बने । सर्वज्ञ बने तब आत्मा की अनन्त समृद्धि के स्वामी बने ।

एक बार भगवान की आत्मा भी दूसरे जीवों की तरह भवाटवी में भटकता नुकसानी पर नुकसानी करता था, क्योंकि मोह और अज्ञान में फँसा जीव भवरूपी बाज़ार में भटकता है और गलत (बुरा) व्यापार करता रहता है । नरक, तिर्यंच जैसे हलके भवों में से छुटकर बड़ी मुश्किल से मनुष्यभव प्राप्त कर सका । यहाँ भी मोह में फँसकर आत्म-समृद्धि प्राप्त करने के अनमोल मौके को स्पर्धा में लगा देता है। महान पुण्योदय से यहाँ कुछ समझने की शक्ति मिली । धर्माराधना करने का सब योग मिला, तो आत्म-समृद्धि प्राप्त करने का अनमोल मौका माना जायेगा, परन्तु जीव मोह-मूढ़ता में फँसा, इसलिए वह मौका भी बरबाद हो जाता है और जीवन के अन्त में परिणाम-स्वरूप अपार-नुकसानी का विवरण मिल सकता है । प्रभु की आत्मा ने पहले ऐसे नुकसानी के विवरण निकाले थे, परन्तु संयम लेने के बाद साढ़े बारह वर्ष और पंद्रह दिन में केवलज्ञान की ज्योत जलाकर अनेक जीवों को तारकर २५१३ वर्षों से पहले भगवान ने ऐसी दीपावली मनायी कि जिसमें सर्व नुकसानी का विवरण कर केवल शुद्ध नफे का विवरण निकाला । चार गति के जन्म-मृत्यु के कर्जदार चोपड़े (चिट्ठे) चुकता कर दिये । मनुष्यजन्म के अद्वितीय बाजार में किये गये धूम व्यापार को अन्त में नफा-नुकसान के विवरण में समस्त दोष टालकर अनन्त गुणों का नफा बताया । सोचिए कि कैसा यह धन्य दिन है ? कैसी है यह धन्य दीपावली ? कैसा धन्य इस भगवान का निर्वाण कल्याणक ?

"जुग-जुग जीओ चिर जीओ, महा पवित्र यह दिन दीपक ।"

भगवान ने तो ऐसी दिव्य दीपावली मनायी, परन्तु आप कैसी दीपावली मनाते हैं ? आपकी दीपावली यानी अनेक जीवों की हिंसा कर घर की झाड़-पोंछ (सफाई) करने की और इन्द्रियों के घोड़े मदमस्त बन जाय ऐसे मिष्टान्न भोजन करने का और अच्छे वस्त्राभूषण पहन-कर घुमने-फिरना नाटक-फ़िल्म देखना यही न ? यह तो आप लौकिक दीपावली मना रहे हो । लोकोत्तर दीपावली का महत्त्व अभी समझे नहीं है । ऐसी दीपावली मनाकर आप नफा नहीं नुक़सान करते हैं । अगर आपको

नफा चाहिए तो भगवान के जीवन की ओर दृष्टि कीजिए । उन्होंने ऐसी दीपावली मनायी कि अब उन्हें जन्म-मृत्यु की पीढ़ी चलाने की आवश्यकता नहीं है । उन्होंने तो जैसे व्यापारी व्यापार-धन्धा बन्द कर (दुकान) कोठी समेट लेता है, उसी प्रकार उन्होंने तो सारे संसार की कोठी समेट ली । आपकी दुकान में जैसे सौदे के लिए शतरंज बिछाये जाते हैं, उसी प्रकार इस संसार में आस्त्रव की शतरंज बिछायी थी । उस पर कर्मबन्धन के सौदे होते थे । वह शतरंज भगवान ने उठा ली और चतुर्गति के भ्रमण-रूप संसार मात्र की समाप्ति की । अनजाने में उस आत्मा ने अपनी बरबादी करनेवाली और मूल्यवान शक्तियों का व्यय करनेवाली पर-पुद्गल के खेल बहुत किये थे, परन्तु भगवान ने मानवभव पाकर उसका अन्त किया । ऐसे भगवान के उत्तम जीवन की ओर दृष्टि कर ऐसा जीवन जीओं कि इस संसार की शतरंज उठ जाय । सारे दुःखों का अन्त आ जाय और आत्मा अनन्त-सुख का भोक्ता बन जाय ।

बन्धुओं ! भगवान ने निर्वाण का ऐसा सुन्दर विवरण (परिणाम) निकाला कि उसमें संसार की समस्त जंजाल की समाप्ति कर नुकसानी चुका दी । तब अन्त में नफा किसका पाया यह आप जानते हैं ? चार अनन्ता और चार अक्षय का विचार अनन्ता यानी क्या ? (१) अनन्तज्ञान (२) अनन्तदर्शन (३) अनन्तवीर्य (४) अनन्त-सुख । अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शन में भूत-भविष्य और वर्तमान में अपने सहित प्रत्येक जीव कहाँ-कहाँ उत्पन्न हुए, कैसे पाप किये, कैसे पुण्य किये और उसके कारण कैसे-कैसे सुख-दुःख भोगे - ये सब साक्षात् देख सकता है । अनन्तवीर्य अर्थात् उनकी शक्ति भी अनन्त होती है, परन्तु अब उस शक्ति का उपयोग होता नहीं है, क्योंकि भगवान पर-पुद्गल के अधीन नहीं है । उनका सुख भी अनन्तु । वह सुख कैसा है ? सर्व जीवों के विषय-सुख से भी अनन्त गुना होता है । विषय-सुख तो परिमित और पुद्गल के पराधीन होते हैं । तब आत्मा का सुख - ये तो विषय निरपेक्ष और सहज सुख होता है । अब चार अक्षय अर्थात् (१) अक्षय स्थिति अजरामरता अर्थात् जन्म-जरा और मृत्यु का नामोनिशान होता नहीं है । (२) अक्षय आत्म-स्वरूप में रमणता । सिद्ध भगवन्तों की रमणता आत्मा के स्वरूप में होती है । (३) अक्षय अरूपीपन : जबतक शरीर था तबतक अरूपी रूप आत्मा को कर्मवश बार-बार नये-नये रूप धारण करने पड़ते थे । आठों कर्मों के क्षय होने पर वे अरूपी बन गये । अब रूप-परिवर्तन का कार्य बन्द हो गया । (४) अक्षय अगुरुलघुपन अर्थात् जैसे ऊँच-नीचपन की ओर मुझे कोई झंझट नहीं, ऐसे चार अनन्त और चार अक्षय का भगवान ने मुनाफा पाया ।

भगवान ने आज के मंगल दिन में अनन्तानन्त काल से चली आ रही कर्म संसार की प्रवृत्ति की समाप्ति की और धर्म का धड़ाके (जोरों) से व्यापार कर मुनाफे में चार अनन्ता और चार अक्षय का विवरण (लेखा-जोखा) निकाला, इसी प्रकार आप

भी पाप-प्रवृत्ति कम कर आत्म-गुणों का लेखा-जोखा (विवरण) कभी निकालते हो ? अगर ऐसा विवरण निकलते हो तो समझ लीजिए कि एक दिन निहाल हो जायेंगे । परन्तु अगर वास्तविक रूप में आपको नुकसान ही होता हो, तो अब कल से नूतन वर्ष से नये चोपड़े लिखना और आत्म-गुणों की वृद्धि हो ऐसे सुकृत्य का व्यापार करना । जिससे आनेवाली दीपावली में मुनाफ़े में आत्म-गुणों का विवरण निकाले । अगर पापस्थानक के चरखे कम कर डालेंगे तो फिर नुकसानी का सूत बहुत नहीं निकलेगा (मिलेगा) । अतः उसका फायदा (मुआवज़ा) भी बहुत नहीं करना पड़ेगा । भगवान तो अनन्त लाभ पाकर मोक्ष में गये तब उनका वियोग होने से हमें बड़ी कमी हुई है, परन्तु उनको तो अनन्त कमाई हो गयी । वे जिस स्थान पर बिराज गये, बहाँ किसी बात की कमी नहीं है । कोई चीज़ प्राप्त करना शेष नहीं है, तब हम वहाँ बैठे हैं, वहाँ तो उधार की सीमा नहीं है । जहाँ दृष्टि करे वहाँ तो बस कमी का खड्डा गहरा लगता है । सब कुछ अधूरा लगता है, तब मोक्ष में कुछ अधूरा नहीं है।

ऐसे भगवान के निर्वाण-कल्याण के पवित्र दिन अति ऊँचे विवरण (लेखा-जोखा) निकालनेवाले भगवान महावीरस्वामी के सेवक क्या मात्र नुकसानी का विवरण निकालकर खुश होंगे ? जन्मो-जन्म के पापकर्मो की समाप्ति करनेवाले और अनन्त-आत्म-संपत्ति प्राप्त करनेवाले परम तारक त्रिशलानन्दन के अनुयायी उनमें से ज़रा-सी भी कमाई किये बिना मात्र नुकसानी का ही लेखा-जोखा निकालकर खुश होंगे ? नहीं । तो क्या करेंगे ? आज के दिन यही विचार कीजिए कि मेरे तारक भगवान ने दीपावली के दिन संसार की पीढ़ी (कोठी) उठा ली, तो मैं भूतकाल के कषायों की पीढ़ी को उठा लूँ ! मेरे प्रभु ने कर्म की नुकसानी भर दी, तो मैं भी कुछ करूँ ! उन्होंने अनन्त गुणों के मुनाफ़े निकाले, तो मैं भी कुछ अंश में आत्मिक गुणों का मुनाफा निकालुँ । ऐसी भावना रखेंगे और ऐसी दीपावली मनायेंगे तो एक दिन भगवान जो स्थान और सुख पाये, वे उसे पाने के लिए हमारी आत्मा भाग्यशाली बन सकेगी ।

महाराजा विक्रम के जीवन का एक प्रसंग आज के पवित्र दीपावली पर्व के साथ जुड़ा हुआ है । उस समय गरीब प्रजा साहूकार के त्रास (जुल्म) से दबी हुई थी । चक्रवृद्धि ब्याज की प्रपंचलीला ने किसानों की जमीन भी उन्होंने ले ली थी । किसान बहुत परेशान थे । महाराजा विक्रम ने दीपावली के दिन सभी का कर्ज़ा चुका दिया और प्रजा को ऋणमुक्त किया । व्यापारियों के पुराने चोपड़े ले लिये । तब से दीपावली के दिन से नये चोपड़े लिखने के रिवाज़ शुरू हुआ । आज तो **'साँप गये और निशान रह गये ।'** कर्ज़ा कोई चुकाता नहीं है, मगर नये चोपड़े सभी लिखते हैं । आपको नये चोपड़े लिखकर मंगल करना हो, तो एकाद गरीब का कर्ज़ माफ करना, तो नया वर्ष मंगलमय बनेगा ।

अनेक दिनों की मेहनत ने आज आपके चोपड़े स्वच्छ कर नफा-नुकसान का विवरण निकाला होगा, परन्तु आत्मा का विवरण निकाला है कि मैंने कितने सत्कार्य किये और सद्गुण अपनाकर दुर्गुण दफनाये ? मेरी आत्मा कितनी पवित्र हुइ ? पुराने चोपड़े स्वच्छ कर आज अनेक भाई शारदा-पूजन करेंगे, परन्तु सच्चा शारदा पूजन कौन सा यह जानते है ? ज्ञानी कहते हैं कि-"हृदयरूपी चोपड़े में जिनवाणी रूप सरस्वती मैया की पूजा कीजिए ।" शारदा पूजन कर चोपड़े में सबसे पहले लिखेंगे कि अभयकुमार की बुद्धि मिलना, धन्ना शालिभद्र की ऋद्धि मिलना, गौतमस्वामी की लब्धि मिलना और केवन्ना सेठ का सौभाग्य मिलेगा । बनिए के बेटे बहुत चालाक होते हैं । माँगने में आपने कुछ शेष न रखना, परन्तु साथ में यदि इतना विचार किया कि यह सब माँगता हूँ मगर अभयकुमार जैसे मुझ में गुण है ? धन्ना शालिभद्र ने क्षणभर में ऋद्धि का त्याग किया । आप एक भी चीज़ का त्याग करते हो ? गौतमस्वामी जैसा आप में विनय है ? सभी चीज़ें उत्तम चाहिए, तो आपको भी उत्तम बनना पड़ेगा, अन्यथा कोई चीज़ मिलनेवाली नहीं है ।

हमारी बहनें घरों में से काली चौदस के दिन क्लेश (कचरा) बाहर निकाल फेंकेगी । घर में टूटी-फूटी मिट्टी की कुल्हिया, हँडिया सब गली के बाहर फेंक आयेंगे । यह सब द्रव्य दीपावली है । सच्चा क्लेश तो तभी निकाला माना जायेगा कि जब हमारे कषाय कम हो । कषाय जाने से ही सच्चा क्लेश जाता है । आप तो अभी क्लेश को गली के बाहर छोड़ आये कि तभी बहू से ज़रा नुकसान हो गया, तो पुनःक्लेश (कज़िया) शुरू हो जाता है । यह आपकी सच्ची दीपावली नहीं है । दीपावली के दिन ज्ञान के दीपक जलाना है । भगवान का निर्वाण हुआ और गौतमस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ इसी प्रकार हमें दीपावली पर्व को मनाना चाहिए । इस सम्बन्ध में एक बालिका ने किस प्रकार दीपावली मनायी है उसकी कहानी कहती हूँ ।

एक करोड़ाधिपति सेठ को दो पुत्रियाँ थी । भूतकाल में बहुत ही छोटी-सी आयु में पुत्र-पुत्रियों का विवाह करवा देते थे । इस सेठ की दोनों पुत्रियों की सगाई बचपन में ही कर दी । उसमें छोटी पुत्री के बाप से भी उसका ससुर अधिक धनवान थे । उसने पुत्रवधू को सवालाख के गहना दिये था । हीरे, माणिक, मोती, पन्ना, सोना आदि के विविध गहने बनवाये थे । वह समझता था कि पुत्र की बहू को दिया गहना तो वापस मेरे घर में ही आनेवाला है न ? पुत्र चौदह वर्ष का है, पुत्री ग्यारह वर्ष की है, मगर बहुत चालाक है ।

❑ पुण्य मिटने पर रोटी और नोकरी के लाले :

कर्म की गति विचित्र है । इस लड़के के बाप को धन्धे में नुकसान हुआ । धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ गयी कि रहने के लिए घर भी न रहा, खाने को अन्न न

रहा । सेठ सभी तरह से बरबाद हो गये । दुःख में लड़के की माता भी चल बसी, अब बाप और बेटा दो ही रहे, ज्ञानी ने कहा है कि - "धन, यौवन, पुत्र, परिवार सभी अस्थिर है । उसमें राचने जैसा नहीं है ।" यह बात अक्षरसः सत्य है । सेठ की ऐसी दशा आ गयी कि रोटी के भी लाले पड़ने लगे । सुबह में खाया हो तो शाम को क्या खायेगा इसकी भी चिन्ता थी । गाँव में नौकरी करने जाते है, परन्तु कोई रखता नहीं है । भटकते हुए एक सेठ के घर जाते है और सेठानी से कहते हैं कि- "बहन ! मैं आप के घर के बर्तन साफ करूँगा, झाडू लगाऊँगा, कपड़े धोऊँगा, आपके वच्चों को साफ-सूफ करूँगा, परन्तु मुझे नौकरी में रखिए । मुझे पैसे भी मत दीजिएगा, केवल अपने घर के सदस्यों के फटे-पुराने-कपड़े देना और मैं तथा मेरा पुत्र खा सके उतना भोजन दीजियेगा ।" दया आने पर सेठानी, बाप-बेटे को नौकरी पर रखती है । परन्तु तीन ही दिन हुए थे कि एक दिन रसोइये से लड़के बुझाने में थोड़ी-सी कमी रह गयी ।

❑ करोड़पति बने कण बीननेवाले :

अहो ! कर्म क्या करते हैं ! इस सेठ को वहाँ से मार कर निकाल दिया ! पापी ! तेरे कदमों से ही मेरे घर में आग लगी ।" जहाँ-जहाँ नौकरी के लिए जाते वहाँ ऐसी ही होता है । जिस नौकरों को उसने आश्रय दिया था वे नौकर धनवान बन गये थे, वे भी कोई सामने देखते नहीं है । हज़ारों गरीबों को पालनेवाले आज कंगाल बनकर भटकता है, परन्तु कोई आश्रय देता नहीं है । जो धर्मशाला उसने बँधवाया था उस धर्मशाला में गये, तो वहाँ बसे निराधार लोगों ने भी सेठ को रहने के लिए जगह देते नहीं है; फिर भी धर्मशाला के चौखट पर बाप-बेटा रहते है । उन्होंने निर्णय किया कि अब हमें किसी के यहाँ नौकरी भी नहीं करनी है । अनाज का समय (सीझन) था, अतः बाप-बेटा सुबह अनाज के पीठे में जाते है । जहाँ अनाज के गाड़े रखे रहते थे, अनाज तौला जाता था, वहाँ अनाज के दाने गिरते थे, वहाँ यह बाप-बेटा धूल के पोटले बाँधकर ले जाते और उसे छानकर उसमें से सेर-दो सेर जो अनाज के दाने निकलते उसे पीसकर उसकी राब बनाकर पी जाते थे ।

❑ गरीब बाप-बेटे के प्रति लड़की की करुणा :

इस तरफ समधी-लड़की का बाप 'अपना समधी गरीब हो गया है' यह जानकर उसकी वृत्ति बदल गयी । गरीब के घर में लड़की का विवाह नहीं करने है, इसलिए कोई पूछता तो कहता कि 'हमने तो सगाई तोड़ दी है ।' इस लड़की को अकेली बाहर जाने भी नहीं देता है । परन्तु एक दिन हुआ ऐसे कि छोटी लड़की ने प्रातः जल्दी से उठकर दासी से कहा - "हम आज घुमने जाते है" और किसी को कहे बिना दासी को लेकर यह लड़की घुमने के लिए निकल पड़ी । अनायास ही यह

लड़की जहाँ वह बाप-बेटा धूल के पोटले बाँधते थे, वहाँ जा पहुँची । वृद्ध को देखकर कहा - "बापुजी ! आप इस मिट्टी को पोटले किसलिए बाँधते हो ?" गरीब वृद्ध सेठ के कानों में यह शब्द सुनायी दिये - 'अहो ! जहाँ चारों ओर मेरा तिरस्कार होता है, मुझे सभी कुत्ते की तरह धिक्कारते हो, वहाँ मुझे पिताजी कहनेवाला कौन है ? आँख उपर कर देखा । लड़का या लड़की एक-दूसरे को पहचानते नहीं था, परन्तु बाप तो पहचानता है । सेठ इस लड़की को पहचान गये । "बेटे ! हमारे कर्मों के कारण मिट्टी के पोटले बाँध रहे हैं ।" "परन्तु बापुजी ! आप इस मिट्टी का क्या करेंगे ?" "बहन ! खाने के लिए कण नहीं है ? इस मिट्टी से जो अनाज के दाने निकलेंगे, उसे पीसकर राब बनाकर पी लेंगे ।"

❑ **दुःख में दिलासा देती लड़की :**

लड़की ने कहा : "बापुजी ! ऐसा करने से अच्छा है कुछ मज़दूरी करे तो पेट भी भरेगा ।" "बहन ! हमारे कर्मों के कारण हमें कोई मजदूरी भी नहीं मिलती है ।" लड़की ने कहा - "मेरे पिताजी बहुत दयालु है । वे गरीबों का दुःख देख सकते नहीं है । आप मेरे साथ चलिए ।" वृद्ध ने कहा - "पुत्री ! तुम्हारा बाप कैसा भी दानी हो, धनवान हो, दयालु हो और हज़ारों को आश्रय देता हो, परन्तु हमारे लिए वे दयालु नहीं है । हमें आँगन में खड़े भी नहीं रहना देंगे ।" लड़की ने कहा - "बापुजी ! मैं आपकी मर्मकारी भाषा मैं समझ सकती नहीं हूँ, परन्तु मुझे आशा है कि मेरे पिताजी आप को निराश नहीं करेंगे ।" बलपूर्वक लड़की उन्हें घर ले जाती है और अपने पिता से कहती है - "पिताजी ! आप तो बहुत दयालु हो । किसी का दुःख देख सकते नहीं हो । तो इस गरीब बाप-बेटे को हमारी दुकान में नौकरी पर रख लीजिए न ? जिसे उनकी आजीविका चलती रहे ।"

❑ **धन के नशे ने जमाई को मरवाया धक्का :**

बाप-बेटे को देखते ही सेठ पहचान गया । यह तो मेरा समधी और जमाई है । उन्हें देखकर बाप की आँखें क्रोध से लाल हो गयी । वह अपनी पुत्री से कहने लगे - "ऐसे तो अनेक भिखारी चले आयेंगे । निकाल दे यहाँ से । मुझे तो उनका मुख भी देखना नहीं है ।" ऐसा कहकर कुछ दिया तो नहीं, परन्तु उपर से लड़के को धक्कामार दिया और कटु वचन कहने लगा । यह देखकर लड़की सोच में पड़ गयी । यह क्या ! मेरा बाप किसी गरीब का दुःख देख सकता नहीं है, इसके बजाय आज ऐसा तिरस्कार ? सचमुच ! इस वृद्ध की बात सच हुई । बाप बेटा विदा हो गये । लड़की ने कहा - "पिताजी ! आप कैसे दयालु हो इसका मुझे आज ही पता चला । आज आप इतने अधिक क्रूर क्यों बन गये !" पिता ने कहा - "तुम मुझ से कुछ मत पूछ, चली जा यहाँ से ।" लड़की सोचती है कि अवश्य ही कुछ विषय

रहा । सेठ सभी तरह से बरबाद हो गये । दुःख में लड़के की माता भी चल बसी, अब बाप और बेटा दो ही रहे, ज्ञानी ने कहा है कि - "धन, यौवन, पुत्र, परिवार सभी अस्थिर है । उसमें राचने जैसा नहीं है ।" यह बात अक्षरसः सत्य है । सेठ की ऐसी दशा आ गयी कि रोटी के भी लाले पड़ने लगे । सुबह में खाया हो तो शाम को क्या खायेगा इसकी भी चिन्ता थी । गाँव में नौकरी करने जाते है, परन्तु कोई रखता नहीं है । भटकते हुए एक सेठ के घर जाते है और सेठानी से कहते हैं कि- "बहन ! मैं आप के घर के बर्तन साफ करूँगा, झाड़ू लगाऊँगा, कपड़े धोऊँगा, आपके वच्चों को साफ-सूफ करूँगा, परन्तु मुझे नौकरी में रखिए । मुझे पैसे भी मत दीजिएगा, केवल अपने घर के सदस्यों के फटे-पुराने-कपड़े देना और मैं तथा मेरा पुत्र खा सके उतना भोजन दीजियेगा ।" दया आने पर सेठानी, बाप-बेटे को नौकरी पर रखती है । परन्तु तीन ही दिन हुए थे कि एक दिन रसोइये से लड़के बुझाने में थोड़ी-सी कमी रह गयी ।

❑ **करोड़पति बने कण बीननेवाले :**

अहो ! कर्म क्या करते हैं ! इस सेठ को वहाँ से मार कर निकाल दिया ! पापी ! तेरे कदमों से ही मेरे घर में आग लगी ।" जहाँ-जहाँ नौकरी के लिए जाते वहाँ ऐसी ही होता है । जिस नौकरों को उसने आश्रय दिया था वे नौकर धनवान बन गये थे, वे भी कोई सामने देखते नहीं है । हज़ारों गरीबों को पालनेवाले आज कंगाल बनकर भटकता है, परन्तु कोई आश्रय देता नहीं है । जो धर्मशाला उसने बँधवाया था उस धर्मशाला में गये, तो वहाँ बसे निराधार लोगों ने भी सेठ को रहने के लिए जगह देते नहीं है; फिर भी धर्मशाला के चौखट पर बाप-बेटा रहते है । उन्होंने निर्णय किया कि अब हमें किसी के यहाँ नौकरी भी नहीं करनी है । अनाज का समय (सीझन) था, अतः बाप-बेटा सुबह अनाज के पीठे में जाते है । जहाँ अनाज के गाड़े रखे रहते थे, अनाज तौला जाता था, वहाँ अनाज के दाने गिरते थे, वहाँ यह बाप-बेटा धूल के पोटले बाँधकर ले जाते और उसे छानकर उसमें से सेर-दो सेर जो अनाज के दाने निकलते उसे पीसकर उसकी राब बनाकर पी जाते थे ।

❑ **गरीब बाप-बेटे के प्रति लड़की की करुणा :**

इस तरफ समधी-लड़की का बाप 'अपना समधी गरीब हो गया है' यह जानकर उसकी वृत्ति बदल गयी । गरीब के घर में लड़की का विवाह नहीं करने है, इसलिए कोई पूछता तो कहता कि 'हमने तो सगाई तोड़ दी है ।' इस लड़की को अकेली बाहर जाने भी नहीं देता है । परन्तु एक दिन हुआ ऐसे कि छोटी लड़की ने प्रातः जल्दी से उठकर दासी से कहा - "हम आज घुमने जाते है" और किसी को कहे बिना दासी को लेकर यह लड़की घुमने के लिए निकल पड़ी । अनायास ही यह

लड़की जहाँ वह बाप-बेटा धूल के पोटले बाँधते थे, वहाँ जा पहुँची । वृद्ध को देखकर कहा – "बापुजी ! आप इस मिट्टी को पोटले किसलिए बाँधते हो ?" गरीब वृद्ध सेठ के कानों में यह शब्द सुनायी दिये – 'अहो ! जहाँ चारों ओर मेरा तिरस्कार होता है, मुझे सभी कुत्ते की तरह धिक्कारते हो, वहाँ मुझे पिताजी कहनेवाला कौन है ? आँख उपर कर देखा । लड़का या लड़की एक-दूसरे को पहचानते नहीं था, परन्तु बाप तो पहचानता है । सेठ इस लड़की को पहचान गये । "बेटे ! हमारे कर्मों के कारण मिट्टी के पोटले बाँध रहे हैं ।" "परन्तु बापुजी ! आप इस मिट्टी का क्या करेंगे ?" "बहन ! खाने के लिए कण नहीं है ? इस मिट्टी से जो अनाज के दाने निकलेंगे, उसे पीसकर राब बनाकर पी लेंगे ।"

❑ दुःख में दिलासा देती लड़की :

लड़की ने कहा : "बापुजी ! ऐसा करने से अच्छा है कुछ मज़दूरी करे तो पेट भी भरेगा ।" "बहन ! हमारे कर्मों के कारण हमें कोई मजदूरी भी नहीं मिलती है ।" लड़की ने कहा – "मेरे पिताजी बहुत दयालु है । वे गरीबों का दुःख देख सकते नहीं है । आप मेरे साथ चलिए ।" वृद्ध ने कहा – "पुत्री ! तुम्हारा बाप कैसा भी दानी हो, धनवान हो, दयालु हो और हज़ारों को आश्रय देता हो, परन्तु हमारे लिए वे दयालु नहीं है । हमें आँगन में खड़े भी नहीं रहना देंगे ।" लड़की ने कहा – "बापुजी ! मैं आपकी मर्मकारी भाषा मैं समझ सकती नहीं हूँ, परन्तु मुझे आशा है कि मेरे पिताजी आप को निराश नहीं करेंगे ।" बलपूर्वक लड़की उन्हें घर ले जाती है और अपने पिता से कहती है – "पिताजी ! आप तो बहुत दयालु हो । किसी का दुःख देख सकते नहीं हो । तो इस गरीब बाप-बेटे को हमारी दुकान में नौकरी पर रख लीजिए न ? जिसे उनकी आजीविका चलती रहे ।"

❑ धन के नशे ने जमाई को मरवाया धक्का :

बाप-बेटे को देखते ही सेठ पहचान गया । यह तो मेरा समधी और जमाई है । उन्हें देखकर बाप की आँखें क्रोध से लाल हो गयी । वह अपनी पुत्री से कहने लगे – "ऐसे तो अनेक भिखारी चले आयेंगे । निकाल दे यहाँ से । मुझे तो उनका मुख भी देखना नहीं है ।" ऐसा कहकर कुछ दिया तो नहीं, परन्तु उपर से लड़के को धक्कामार दिया और कटु वचन कहने लगा । यह देखकर लड़की सोच में पड़ गयी । यह क्या ! मेरा बाप किसी गरीब का दुःख देख सकता नहीं है, इसके बजाय आज ऐसा तिरस्कार ? सचमुच ! इस वृद्ध की बात सच हुई । बाप बेटा बिदा हो गये । लड़की ने कहा – "पिताजी ! आप कैसे दयालु हो इसका मुझे आज ही पता चला । आज आप इतने अधिक क्रूर क्यों बन गये !" पिता ने कहा – "तुम मुझ से कुछ मत पूछ, चली जा यहाँ से ।" लड़की सोचती है कि अवश्य ही इस विषय

में कुछ गड़बड़ है । मैं कल ही उस वृद्ध के पास जाऊँगी और पूछुँगी कि आप जो कहते थे वही हुआ तो इसका भेद (रहस्य) क्या है ? यह बात आप जानते हैं ?

❑ पिताजी द्वारा किये अपमान की माफी माँगती लड़की :

"दुःखित-हृदयी बालिका सोचती है कि - 'अहो ! मेरे पिताजी सारे गाँव में दानवीर के रूप में सुप्रसिद्ध है । किसी का दुःख देख सकते नहीं है और आज ऐसा क्यों हुआ ? दूसरे दिन सुबह होते ही अनाज के पीठे (बाज़ार) में जहाँ बाप-बेटा धूल छानकर अनाज के दाने चुन रहे हैं, वहाँ आकर दो हाथ जोड़कर कहने लगी - "बापुजी ! मैं आपको बलपूर्वक अपने घर ले गयी और मेरे पिता ने आप दोनों का बहुत अपमान किया है, इसके लिए मैं आप से माफी चाहती हूँ । परन्तु साथ में एक बात पूछना चाहती हूँ कि हे बापुजी ! मेरे पिताजी किसी का तिरस्कार करते नहीं है, गरीब को आश्रय देते हैं और आपके लिए ऐसा अनुचित व्यवहार किया है तो क्या आपको मेरे पिताजी के साथ कोई बैर या झगड़ा है ? अन्यथा ऐसा नहीं हो सकता ।"

❑ गरीबी से अधिक गुणवान पुत्रवधू को खोने का दुःख :

बालिका की बात सुनकर वृद्ध की आँखों में आंसू आ गये । "बापुजी ! आप रोइए मत । जो सत्य हो, मुझे कहिए ।" वृद्ध ने कहा - "पुत्री ! क्या बात कहूँ ? मैं भी तुम्हारे बाप से भी अधिक धनवान था । तुम्हारा बाप मेरा समधी है । यह मेरा सुख-वैभव में पला इकलौता पुत्र है । इसकी माता को अपने पुत्र का विवाह करने की बहुत इच्छा थी । बचपन से ही उसकी सगाई तुम्हारे घर में हुई है ।" लड़की ने कहा - "क्या ! मेरे पिताजी आपके समधी ? आपके पुत्र की सगाई हमारे घर पर हुई है ? क्या ? मेरी बड़ी बहन के साथ सगाई हुई थी ?" वृद्ध ने कहा - "नहीं !" "तो हम तो दो ही बहने हैं । मेरे साथ सगाई हुई है ?" "हाँ, पुत्री ! मेरे इस बेटे के साथ तुम्हारी सगाई हुई है । मैंने सगाई में सवा लाख रुपये के गहना दिया है, परन्तु हमारे कर्मोदय से लक्ष्मी नष्ट हो गयी । उसके दुःख मे मेरी पत्नी भी मर गयी और इससे अधिक नुकसान यह हुआ कि तुम्हारे जैसी गुणवान पुत्रवधू मेरे घर में न आयेगी ।

❑ यह पुत्रवधू आपकी है और सदैव आपकी ही रहेगी :

हमारी ऐसी कंगाल स्थिति हो जाने से तुम्हारा बाप तुम्हारी सगाई तोड़ डालना चाहता है । हम लोग तुम्हारे बाप को दुश्मन जैसे लगते हैं । हमारे पर क्रोध करने का ओर कोई कारण नहीं था ।" लड़की १५ वर्ष की थी, परन्तु सब कुछ समझती थी । इसलिए जैसे ही उसे पता चला कि ये मेरे ससुर और ये मेरे पति हैं, तो

वह शरमा गयी । फिर भी हिम्मत से कहने लगी - ''बापुजी ! आप चिन्ता न करे । यह पुत्रवधू आपकी है और सदैव आपकी ही रहेगी, परन्तु आपको एक काम करना होगा । पहले तो मैं अपने पिताजी को समझाऊँगी । परन्तु यदि न माने तो कुछ दिनों बाद मेरी बड़ी बहन का विवाह है, उस दिन आपके पुत्र को विवाह-मंडप में भेज दीजिएगा, मैं कुछ भी करके उसके साथ आऊँगी ।'' लड़के ने कहा - ''तुम्हारा बाप इस प्रकार हमारा तिरस्कार करता है, धक्के मारता है, अतः मुझे तेरे घर नहीं आना है ।'' लड़की जितनी चालाक और शूरवीर थी उतना लड़का न था । परन्तु दोनों में से एक चालाक हो तो काम चल सकता है ।

❑ जीवन में पति एक ही होता है :

लड़की घर आयी । बाप पर बहुत गुस्सा है । बाप से कहती है - ''हे पिताजी ! आपने मुझे अभी तक कहीं अकेली घुमने-फिरने जाने न देते थे, इसका रहस्य मैं अब समझ गयी हूँ । आपने उनके लड़के के साथ बचपन में मेरी सगाई की है । इस बात को तोड़ देना चाहते हो क्या ? यह आप की मानवता है क्या ? जीवन में पति तो एक ही होता है ।'' नेमनाथ राजुल के साथ विवाह करने गये थे । मंडप में पहुँचे कि पशुओं की पुकार सुनी । तब सारथी से पूछा - ''हे सारथी ! ये पशु करुण स्वर में किसलिए पुकारते हैं ? और इतने सारे पशुओं को पिंजरे में किस लिए डाले हैं ?'' तब सारथी ने कहा - ''आप के विवाह के निमित्त इन सारे पशुओं का वध कर बारात को खिलाना है, इसलिए पशु करुण-स्वर में रुदन करते हैं और कहते हैं कि सभी चाहे भूल जाय, मगर हे दयालु नेम ! आप भूल मत कीजिए ।'' तभी नेमजी समझ गये । उन्होंने विचार किया कि 'मेरे विवाह में क्या इतने सारे पशुओं कत्लेआम होगा । मुझे ऐसा विवाह नहीं करना हैं ।' नेमनाथ ने रथ वहीं रोक दिया । इस बात की सूचना राजेमती को मिली, तब रोने लगी । उस समय राजेमती के पिता ने कहा - ''पुत्री ! तुम किसलिए रो रही हो ? कुँआरी (अविवाहित) कन्या को तो सौ वर (पति) और सौ घर ।'' तुझे नेमनाथ से भी अच्छे और सुन्दर वर से विवाह करवाऊँगा ।'' तब राजेमती ने कह दिया कि-''पति तो एक ही होता है । मुझे इस जीवन में दूसरा पति नहीं चाहिए । जो नेमनाथ का मार्ग वही मेरा मार्ग ।'' इतना कहकर राजेमती ने दीक्षा ली ।

❑ कर्तव्य भूले पिताजी के सामने पुत्री की चुनौती :

''पिताजी ! आप का समधी गरीब हो गया तो आपको उसका हाल पूछने का भी कर्तव्य नहीं है ? आपने उन्हें धक्का मारकर भगा दिया । क्या यह आपको अच्छा लगता है ? पिताजी ! आप उन्हें बुलाकर दो-पाँच हज़ार रु. दो और छोटी-सी दुकान

करवा दीजिए तथा अठारह वर्ष की उम्र हो जाय तब मेरा उनके साथ विवाह करवा दीजिए । अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो मैं अपनी बहन के विवाह के दिन उनका हाथ पकड़कर उनके साथ भाग जाऊँगी ।'' बाप तो पुत्री के वचन सुनकर कान पकड़ गया और क्रोध में आकर कहने लगा – ''लड़की ! तुम क्या समझती हो ? मैंने उसके साथ तुम्हारी सगाई की ही नहीं है । तुझे ऐसे कान किसने भरे ?'' ''पिताजी ! मुझे किसी ने भरमाया नहीं है । मैं सत्य कहती हूँ कि उन्होंने सवा लाख के गहने दिये हैं । यह सब आप पचाकर बैठ गये हो ।'' बाप ने पुत्री की बात पर अधिक ध्यान न दिया । वह समझता था कि यह अज्ञान दशा में बोल रही है । भला वह ऐसा कर सकती है ?

❑ विवाह का सन्देश :

कुछ दिनों बाद बड़ी लड़की के विवाह का समय नजदीक आ गया । छोटी लड़की ने अपने ससुर को गुप्त रूप से कहला भेजा कि 'कल मेरी बड़ी बहन का विवाह है । आप उसके पाणिग्रहण के समय अपने पुत्र को एक जोड़ कपड़े लेकर भेज दीजिएगा ।' ससुर ने कहा – ''पुत्री ! एक जोड़ कपड़े की भी मुसीबत है ।'' तब लड़की ने कहा – ''आप जिस धर्मशाला में रहते हो उसी धर्मशाला में कुछ लोगों को मैंने अपने पुराने कपड़े अनेक दिये है, उनके पास से माँगकर ले आइएगा फिर मैं सँभाल लुँगी ।'' लड़का जाते हुए काँप रहा है, परन्तु लड़की के हठाग्रह के कारण बड़े बहन के विवाह-मंडप के आगे जाकर एक कोने में खड़ा हो गया । लड़की ने देखा और दासी के पास गुप्त रूप से फटे-पुराने कपड़े मँगवाकर पहन लिये । हीरे-माणिक के आभूषण उतार डाले । सभी लड़की के विवाह के तैयारी में पड़े हैं । ठीक बहन के पाणिग्रहण के समय ही यह लड़की सबके सामने गरीब लड़के का हाथ पकड़कर चली गई । माताने बहुत पुकारा परन्तु वह खड़ी न रही ।

❑ पिता को हुआ अपनी भूल का पश्चात्ताप :

वह उस लड़के के साथ धर्मशाला में आकर बैठी । सबसे पहले तो उसने इस बाप-बेटे से यह पूछा कि – ''आप जैन हो ! आप नवकार मंत्र का स्मरण करते हो या नहीं ?'' बाप-बेटे ने कहा – ''नहीं ।'' तब लड़की ने कहा – ''आपने तो धर्म को तिलांजली दे दी है और अपने हाथों ही अपने दुःख को न्योता दिया है । कैसी भी विषम परिस्थिति में धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए । आज से प्रतिदिन आप नवकार मंत्र का स्मरण कीजिए ।'' लड़की तो चली गयी । बाप को तो लज्जा की कोई सीमा न रही । सुबह होते ही जहाँ जमाई और पुत्री धर्मशाला में बैठे हैं, वहाँ लड़की के पिता आये और कहा – ''बेटी ! अब तुम, मेरे समधी और जमाई को

लेकर घर चलो । मैं सारी व्यवस्था कर दुँगा । मेरी बड़ी भूल हो गयी ।'' ''लड़की ने कहा - ''पिताजी ! मैंने आपसे कितनी बार कहा, परन्तु आपने मेरी एक न सुनी । अब मैं आपकी अवहेलना कर यहाँ आयी तो संसार की लज्ज़ा के कारण यहाँ आये हो । एक गरीब समधी को आश्रय देना यह आपका फर्ज़ नहीं है ?'' ''बेटी ! मुझे माफ कर । अब ऐसा नहीं होगा ।'' ''पिताजी मुझे माफ कीजिए । मुझे अब आपके घर नहीं आना है । हमारे क़िस्मत में जो सुख-दुःख लिखा होगा, वह भुगत लेंगे । मगर आप इतना याद रखिएगा कि धनवानों को धन के नशे में गरीबों का दुःख दिखता नहीं है । आपको लक्ष्मी का नशा है ।''

जहाँ धनवान की मौज़ है, वहाँ गरीब का रुदन है,
जहाँ धनवान की हास्य है, वहाँ गरीब की हाय है ।

बन्धुओं ! इस दीपावली के दिन में धनवान के घर हलवे के पेकेटों का ढ़ेर लगता होगा और गरीब के घर मिठाई के एक टुकड़े के भी लाले हैं । इस भयानक महँगाई में दीपावली आने पर अनेक गरीब के घर लहू के अधहन रखे जाते होंगे । बारह महीनों के लेन-देन चुकाने होते हैं, कहाँ से लायेंगे और क्या करेंगे और क्या खायेंगे इसकी चिन्ता में बेचारे सोख (लिये) जाते हैं । तब धनवानों के घर मिठाइयों के डिब्बे भरे होते हैं । ढ़ेर सारे पटाखें फूटते होते हैं । आपके पटाखों की आग से न जाने कितने जीवों को परेशानी होती हैं ! जैन के बच्चे पटाखें (आतिशबाज़ी) नहीं फोड़ सकते हैं । आपको धड़ाके करने हो तो तप-त्याग के गोले-बारूद द्वारा कर्म के धड़ाके कर डालिए ।''

❑ कर्मोदय से करोड़पति की कन्या के सिर पर काष्ट के बोझ :

पुत्री ने अपने पिता से कहा - ''पिताजी ! आपके घर लक्ष्मी का वैभव है । आपको पता नहीं है कि गरीब की परिस्थिति क्या है ! लक्ष्मी ही अनर्थ करानेवाली है । हमें आपके सहारे नहीं रहना है । दो हाथ और दो पैर हैं, मेहनत-मजदूरी कर जो कुछ मिलेगा उसमें सन्तुष्ट होंगे ।'' बाप निराश होकर चला गया । लड़की ने कहा - ''बापुजी ! अब हम इस धर्मशाला में नहीं रहेंगे ।'' गाँव के बाहर एक घास की झोंपडी बाँधकर तीनों रहने लगे । ''पिताजी ! हमें किसी के पास भीख माँगकर नहीं खाना है । आप बाप-बेटे जंगल में जाकर लकड़े काट लाईए । मैं आपके साथ लकड़े बेचने आऊँगी और घर में बैठकर जो काम होगा करूँगी ।'' बाप-बेटा लकड़े के गट्ठर काट लाते हैं, उसमें से तीन गट्ठर बनाकर गाँव में बेचने जाते हैं । करोड़ाधिपति की पुत्री जिसने किसी दिन दुःख देखा नहीं है, वह सिर पर लकड़े के गट्ठर लेकर बेचने जा रही है । यह देखकर सारे गाँव में हाहाकार मच गया ।

करवा दीजिए तथा अठारह वर्ष की उम्र हो जाय तब मेरा उनके साथ विवाह क
दीजिए । अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो मैं अपनी बहन के विवाह के दिन उ
हाथ पकड़कर उनके साथ भाग जाऊँगी ।'' बाप तो पुत्री के वचन सुनकर त
पकड़ गया और क्रोध में आकर कहने लगा - ''लड़की ! तुम क्या समझ
हो ? मैंने उसके साथ तुम्हारी सगाई की ही नहीं है । तुझे ऐसे कान किसने भरे
''पिताजी ! मुझे किसी ने भरमाया नहीं है । मैं सत्य कहती हूँ कि उन्होंने स
लाख के गहने दिये हैं । यह सब आप पचाकर बैठ गये हो ।'' बाप ने पुत्री क
बात पर अधिक ध्यान न दिया । वह समझता था कि यह अज्ञान दशा में बोल र
है । भला वह ऐसा कर सकती है ?

❑ **विवाह का सन्देश :**

कुछ दिनों बाद बड़ी लड़की के विवाह का समय नजदीक आ गया । छोटी लड़की ने अपने ससुर को गुप्त रूप से कहला भेजा कि 'कल मेरी बड़ी बहन का विवाह है । आप उसके पाणिग्रहण के समय अपने पुत्र को एक जोड़ कपड़े लेकर भेज दीजिएगा ।' ससुर ने कहा - ''पुत्री ! एक जोड़ कपड़े की भी मुसीबत है ।'' तब लड़की ने कहा - ''आप जिस धर्मशाला में रहते हो उसी धर्मशाला में कुछ लोगों को मैंने अपने पुराने कपड़े अनेक दिये है, उनके पास से माँगकर ले आइएगा फिर मैं सँभाल लुँगी ।'' लड़का जाते हुए काँप रहा है, परन्तु लड़की के हठाग्रह के कारण बड़े बहन के विवाह-मंडप के आगे जाकर एक कोने में खड़ा हो गया । लड़की ने देखा और दासी के पास गुप्त रूप से फटे-पुराने कपड़े मँगवाकर पहन लिये । हीरे-माणिक के आभूषण उतार डाले । सभी लड़की के विवाह के तैयारी में पड़े हैं । ठीक बहन के पाणिग्रहण के समय ही यह लड़की सबके सामने गरीब लड़के का हाथ पकड़कर चली गई । माताने बहुत पुकारा परन्तु वह खड़ी न रही ।

❑ **पिता को हुआ अपनी भूल का पश्चात्ताप :**

वह उस लड़के के साथ धर्मशाला में आकर बैठी । सबसे पहले तो उसने इस बाप-बेटे से यह पूछा कि - ''आप जैन हो ! आप नवकार मंत्र का स्मरण करते हो या नहीं ?'' बाप-बेटे ने कहा - ''नहीं ।'' तब लड़की ने कहा - ''आपने तो धर्म को तिलांजली दे दी है और अपने हाथों ही अपने दुःख को न्योता दिया है । कैसी भी विषम परिस्थिति में धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए । आज से प्रतिदिन आप नवकार मंत्र का स्मरण कीजिए ।'' लड़की तो चली गयी । बाप को तो लज्जा की कोई सीमा न रही । सुबह होते ही जहाँ जमाई और पुत्री धर्मशाला में वैठे हैं, वहाँ लड़की के पिता आये और कहा - ''वेटी ! अव तुम, मेरे समधी और जमाई को

लेकर घर चलो । मैं सारी व्यवस्था कर दुँगा । मेरी बड़ी भूल हो गयी ।'' ''लड़की ने कहा - ''पिताजी ! मैंने आपसे कितनी बार कहा, परन्तु आपने मेरी एक न सुनी । अब मैं आपकी अवहेलना कर यहाँ आयी तो संसार की लज्ज़ा के कारण यहाँ आये हो । एक गरीब समधी को आश्रय देना यह आपका फर्ज़ नहीं है ?'' ''बेटी ! मुझे माफ कर । अब ऐसा नहीं होगा ।'' ''पिताजी मुझे माफ कीजिए । मुझे अब आपके घर नहीं आना है । हमारे क़िस्मत में जो सुख-दुःख लिखा होगा, वह भुगत लेंगे । मगर आप इतना याद रखिएगा कि धनवानों को धन के नशे में गरीबों का दुःख दिखता नहीं है । आपको लक्ष्मी का नशा है ।''

जहाँ धनवान की मौज़ है, वहाँ गरीब का रुदन है,
जहाँ धनवान की हास्य है, वहाँ गरीब की हाय है ।

बन्धुओं ! इस दीपावली के दिन में धनवान के घर हलवे के पेकेटों का ढ़ेर लगता होगा और गरीब के घर मिठाई के एक टुकड़े के भी लाले हैं । इस भयानक महँगाई में दीपावली आने पर अनेक गरीब के घर लहू के अधहन रखे जाते होंगे । बारह महीनों के लेन-देन चुकाने होते हैं, कहाँ से लायेंगे और क्या करेंगे और क्या खायेंगे इसकी चिन्ता में बेचारे सोख (लिये) जाते हैं । तब धनवानों के घर मिठाइयों के डिब्बे भरे होते हैं । ढ़ेर सारे पटाखें फूटते होते हैं । आपके पटाखों की आग से न जाने कितने जीवों को परेशानी होती हैं ! जैन के बच्चे पटाखें (आतिशबाज़ी) नहीं फोड़ सकते हैं । आपको धड़ाके करने हो तो तप-त्याग के गोले-बारूद द्वारा कर्म के धड़ाके कर डालिए ।''

❑ कर्मोदय से करोड़पति की कन्या के सिर पर काष्ट के बोझ :

पुत्री ने अपने पिता से कहा - ''पिताजी ! आपके घर लक्ष्मी का वैभव है । आपको पता नहीं है कि गरीब की परिस्थिति क्या है ! लक्ष्मी ही अनर्थ करानेवाली है । हमें आपके सहारे नहीं रहना है । दो हाथ और दो पैर हैं, मेहनत-मजदूरी कर जो कुछ मिलेगा उसमें सन्तुष्ट होंगे ।'' बाप निराश होकर चला गया । लड़की ने कहा - ''बापुजी ! अब हम इस धर्मशाला में नहीं रहेंगे ।'' गाँव के बाहर एक घास की झोंपडी बाँधकर तीनों रहने लगे । ''पिताजी ! हमें किसी के पास भीख माँगकर नहीं खाना है । आप बाप-बेटे जंगल में जाकर लकड़े काट लाईए । मैं आपके साथ लकड़े बेचने आऊँगी और घर में बैठकर जो काम होगा करूँगी ।'' बाप-बेटा लकड़े के गट्ठर काट लाते हैं, उसमें से तीन गट्ठर बनाकर गाँव में बेचने जाते हैं । करोड़ाधिपति की पुत्री जिसने किसी दिन दुःख देखा नहीं है, वह सिर पर लकड़े के गट्ठर लेकर बेचने जा रही है । यह देखकर सारे गाँव में हाहाकार मच गया ।

बाप ने पुनः अपनी पुत्री से घर आने के लिए प्रार्थना की, परन्तु लड़की बाप के घर जाने को तैयार नहीं है।

इस प्रकार जात-मेहनत से पैसे इकट्ठे कर लड़की ने नयी साडी, चोली और घघरी आदि लाकर जिसने दिये थे उसे ये कपड़े दे दिये । लड़की चारचोली-गूँथना आदि काम करती है । लकड़े के गट्ठर बेचती है । उसमें कुछ रुपये खाने-पीने में खर्च होते हैं तो कुछ बचाती है । इस प्रकार उसके पास पच्चीस रुपये इकट्ठे हो गये । बाद में पीपरमेंट लाकर ससुर को छोटे बच्चों स्कूल के पास बेचने के लिए बिठाती है, पति को भी कोई काम बता देती है और आनन्द से तीनों लोग रहते हैं । बाप और बेटा बहू को घर की देवी ही मानते हैं । वे जो कुछ करते है, उसे पूछकर ही करते हैं । इस प्रकार तीन महीने बीत गये ।

❑ पिता, पुत्र और पुत्रवधू अट्ठम की साधना में :

धन तेरस, काली, चौदस और वीर निर्वाण - दीपावली का दिन आया । लड़की ने कहा - "बापुजी ! मैं तेरस, चौदस का पाखी का अट्ठम करनेवाली हूँ ।" ससुर ने कहा - "बेटी ! कहाँ तुम्हारे बाप के घर में वैभव-विलास, अच्छे-अच्छे खान-पान और कहाँ मेरे घर की सूखी रोटी और दाल ! मैं तुम्हें अट्ठम करने नहीं दुँगा ।" लड़की ने कहा - "मैं तो अट्ठम तप की आराधना अवश्य करूँगी ।" बाप-बेटे ने कहा - "तो फिर तुम्हारे साथ हम भी अट्ठम करेंगे ।" लड़की और लड़के की उम्र अभी छोटी है, अभी तक, वे इस संसार के मोह में पड़े नहीं है, वे तीनों बाप और भाई-बहन की तरह रहते हैं । लड़की समझदारीपूर्वक बिना किसी आकांक्षा के अट्ठम तप कर पद्मासन लगाकर झोंपड़ी में ध्यान में बैठ गयी । बाप-बेटा पद्मासन कर सके इसके आदी न थे, अतः अट्ठम कर उसके साथ बैठकर नवकार मंत्र का जाप करने लगे । ये तीनों अट्ठम तप की आराधना में जुड़ गये हैं । शुद्ध भाव से प्रभु का स्मरण करते हैं । इस प्रकार तीसरे दिन की रात पूर्ण होने आयी । उसी समय एक चील ने झोंपडी के छपरे पर एक मरा हुआ साँप लाकर फेंका । बाप-बेटे की अट्ठम होने से झोंपड़ी में बहुत गर्मी लगने पर बाहर सोये थे और बहू झोंपड़ी में ध्यान में लीन थी । यह साँप देखकर लड़का कहने लगा - "पिताजी ! यह साँप हमारी झोंपड़ी पर आकर गिरा है । उसे पकड़कर फेंक दूँगी ।" बाप ने कहा - "बेटे ! हमारा उपवास है । बहू को पूछे विना कुछ नहीं कर सकते ।"

❑ अट्ठम तप का चमत्कार :

दोनों बाप-वेटे भीतर आये । वहू का ध्यान पूर्ण हुआ था । ससुर ने पूछा - "वेटी ! हमारी झोंपड़ी पर एक चील विपैला साँप फेंक गयी है, तो उसे उठा ले !"

बहू ने कहा - "बाबुजी ! वह साँप हमें क्या नुकसान पहुँचा रहा है ? उसे वहीं रहने दीजिए ।" बहू ने मना किया तो साँप वही पड़ा रहा । सुबह होते ही एक चमत्कार हुआ । एक चील चांच में मूल्यवान हीरे का हारे लेकर जा रही थी । उसकी नज़र उस मरे हुए साँप पर पड़ी, अतः उस हार को झोंपड़ी पर छोड़कर साँप लेकर चली गई । हार पर सूर्य की किरणें पड़ लगी । हार बहुत चमकने लगा । बाप की नज़र कुछ समय बाद झोंपड़ी पर पड़ी । उन्होंने साँप के स्थान पर एक चमकीले हार को देखा । बाप ने बेटे को हार दिखाया । वह दौड़ता हुआ बहू के पास आया और कहने लगा - "बेटी ! हमारी झोंपड़ी पर साँप के स्थान पर हीरे का हार पड़ा है । अगर आप आज्ञा दे तो हार ले ले ।"

❑ गरीबी में भी बहू की निर्लोभता :

बहू ने कहा - "बापुजी ! क्या कह रहे हों ? मगर वह हार हमारी झोंपड़ी पर आकर गिरा है, इसलिए हमारा नहीं है । हम से वह लिया नहीं जायेगा ! आप उस साँप को लेने गये थे ? अगर साँप को उठाया होता तो लेकर फेंक देते या झोंपड़ी में लाते ? जब साँप को घर में न लाये और हार लाने की बात क्यों करते हो ? श्रावक को पराया धन चाहिए ही नहीं । सच्चा श्रावक परधन पत्थर मानकर और परस्त्री के मात तथा बहन मानकर रहते हैं । मुझे तो लगता है कि आपने पराये लोगों की संपत्ति हथिया ली होगी, इसीलिए गरीब हो गये हो ।" बाप-बेटा कहने लगा - "हमारी झोंपड़ी पर से कोई ले जायेगा तो ?" "आपको क्या करना है ? जिस का होगा वह ले जायेगा । हमारे घर में वह हार नहीं चाहिए ।" बहू ने दोनों को बहुत समझाया, परन्तु उन्हें बहू के शब्द अच्छे न लगे । मना किया इसलिए हार तो ले नहीं सकते, परन्तु झोंपड़ी के बाहर जाकर कोई हार ले न जाय इसलिए ध्यान लगाकर पहरा देने बैठे । पिछले मार्ग से कुछ देर बाद राज्य की ओर से ढिंढोरा पीटाया । सैनिक ढिंढोरा पीटते हुए इस झोंपड़ी के पिछले मार्ग के पास आये और कहा कि - "राजा की महारानी का हार खो गया है, उसे जो खोज लायेगा उसे राज्य की ओर से इनाम दिया जायेगा ।" यह सुनकर ससूर ने बहू से कहा - "बेटी ! यह हार राजा की रानी का है । राज्य की ओर से ढिंढोरा पीटा जा रहा है कि जो हार खोज़ लायेगा उसे बड़ा इनाम दिया जायेगा । तो वह हार, हम राजा को दे आये ?" तब बहू ने कहा - "ठीक है, राजाजी को हार दे आईए ।" बाप-बेटा हार लेकर राज्य में जाने के लिए तैयार हुए तो बहूने अपने पति से पूछा - "हार तो बापुजी दे आयेंगे, आपको साथ जाने की आवश्यकता नहीं है !" पति ने कहा - "पिताजी वृद्ध हैं । इस हार के बदले में इनाम मिलनेवाला है । शायद पिताजी कम माँग ले तो ! मैं साथ जाऊँ तो अच्छा होगा ।"

बाप ने पुनः अपनी पुत्री से घर आने के लिए प्रार्थना की, परन्तु लड़की बाप के घर जाने को तैयार नहीं है।

इस प्रकार जात-मेहनत से पैसे इकट्ठे कर लड़की ने नयी साडी, चोली और घघरी आदि लाकर जिसने दिये थे उसे ये कपड़े दे दिये । लड़की चारचोली-गूँथना आदि काम करती है । लकड़े के गट्ठर बेचती है । उसमें कुछ रुपये खाने-पीने में खर्च होते हैं तो कुछ बचाती है । इस प्रकार उसके पास पच्चीस रुपये इकट्ठे हो गये । बाद में पीपरमेंट लाकर ससुर को छोटे बच्चों स्कूल के पास बेचने के लिए बिठाती है, पति को भी कोई काम बता देती है और आनन्द से तीनों लोग रहते हैं । बाप और बेटा बहू को घर की देवी ही मानते हैं । वे जो कुछ करते है, उसे पूछकर ही करते हैं । इस प्रकार तीन महीने बीत गये ।

❑ पिता, पुत्र और पुत्रवधू अट्ठम की साधना में :

धन तेरस, काली, चौदस और वीर निर्वाण - दीपावली का दिन आया । लड़की ने कहा - "बापुजी ! मैं तेरस, चौदस का पाखी का अट्ठम करनेवाली हूँ ।" ससुर ने कहा - "बेटी ! कहाँ तुम्हारे बाप के घर में वैभव-विलास, अच्छे-अच्छे खान-पान और कहाँ मेरे घर की सूखी रोटी और दाल ! मैं तुम्हें अट्ठम करने नहीं दुँगा ।" लड़की ने कहा - "मैं तो अट्ठम तप की आराधना अवश्य करूँगी ।" बाप-बेटे ने कहा - "तो फिर तुम्हारे साथ हम भी अट्ठम करेंगे ।" लड़की और लड़के की उम्र अभी छोटी है, अभी तक, वे इस संसार के मोह में पड़े नहीं है, वे तीनों बाप और भाई-बहन की तरह रहते हैं । लड़की समझदारीपूर्वक बिना किसी आकांक्षा के अट्ठम तप कर पद्मासन लगाकर झोंपड़ी में ध्यान में बैठ गयी । बाप-बेटा पद्मासन कर सके इसके आदी न थे, अतः अट्ठम कर उसके साथ बैठकर नवकार मंत्र का जाप करने लगे । ये तीनों अट्ठम तप की आराधना में जुड़ गये हैं । शुद्ध भाव से प्रभु का स्मरण करते हैं । इस प्रकार तीसरे दिन की रात पूर्ण होने आयी । उसी समय एक चील ने झोंपडी के छपरे पर एक मरा हुआ साँप लाकर फेंका । बाप-बेटे की अट्ठम होने से झोंपड़ी में बहुत गर्मी लगने पर बाहर सोये थे और बहू झोंपड़ी में ध्यान में लीन थी । यह साँप देखकर लड़का कहने लगा - "पिताजी ! यह साँप हमारी झोंपड़ी पर आकर गिरा है । उसे पकड़कर फेंक दूँगी ।" बाप ने कहा - "बेटे ! हमारा उपवास है । बहू को पूछे बिना कुछ नहीं कर सकते ।"

❑ अट्ठम तप का चमत्कार :

दोनों बाप-बेटे भीतर आये । बहू का ध्यान पूर्ण हुआ था । ससुर ने पूछा - "बेटी ! हमारी झोंपड़ी पर एक चील विषैला साँप फेंक गयी है, तो उसे उठा ले !"

बहू ने कहा - ''बाबुजी ! वह साँप हमें क्या नुकसान पहुँचा रहा है ? उसे वहीं रहने दीजिए ।'' बहू ने मना किया तो साँप वही पड़ा रहा । सुबह होते ही एक चमत्कार हुआ । एक चील चांच में मूल्यवान हीरे का हारे लेकर जा रही थी । उसकी नज़र उस मरे हुए साँप पर पड़ी, अतः उस हार को झोंपड़ी पर छोड़कर साँप लेकर चली गई । हार पर सूर्य की किरणें पड़ लगी । हार बहुत चमकने लगा । बाप की नज़र कुछ समय बाद झोंपड़ी पर पड़ी । उन्होंने साँप के स्थान पर एक चमकीले हार को देखा । बाप ने बेटे को हार दिखाया । वह दौड़ता हुआ बहू के पास आया और कहने लगा - ''बेटी ! हमारी झोंपड़ी पर साँप के स्थान पर हीरे का हार पड़ा है । अगर आप आज्ञा दे तो हार ले ले ।''

❑ गरीबी में भी बहू की निर्लोभता :

बहू ने कहा - ''बापुजी ! क्या कह रहे हों ? मगर वह हार हमारी झोंपड़ी पर आकर गिरा है, इसलिए हमारा नहीं है । हम से वह लिया नहीं जायेगा ! आप उस साँप को लेने गये थे ? अगर साँप को उठाया होता तो लेकर फेंक देते या झोंपड़ी में लाते ? जब साँप को घर में न लाये और हार लाने की बात क्यों करते हो ? श्रावक को पराया धन चाहिए ही नहीं । सच्चा श्रावक परधन पत्थर मानकर और परस्त्री के मात तथा बहन मानकर रहते हैं । मुझे तो लगता है कि आपने पराये लोगों की संपत्ति हथिया ली होगी, इसीलिए गरीब हो गये हो ।'' बाप-बेटा कहने लगा - ''हमारी झोंपड़ी पर से कोई ले जायेगा तो ?'' ''आपको क्या करना है ? जिस का होगा वह ले जायेगा । हमारे घर में वह हार नहीं चाहिए ।'' बहू ने दोनों को बहुत समझाया, परन्तु उन्हें बहू के शब्द अच्छे न लगे । मना किया इसलिए हार तो ले नहीं सकते, परन्तु झोंपड़ी के बाहर जाकर कोई हार ले न जाय इसलिए ध्यान लगाकर पहरा देने बैठे । पिछले मार्ग से कुछ देर बाद राज्य की ओर से ढिंढोरा पीटाया । सैनिक ढिंढोरा पीटते हुए इस झोंपड़ी के पिछले मार्ग के पास आये और कहा कि - ''राजा की महारानी का हार खो गया है, उसे जो खोज लायेगा उसे राज्य की ओर से इनाम दिया जायेगा ।'' यह सुनकर ससूर ने बहू से कहा - ''बेटी ! यह हार राजा की रानी का है । राज्य की ओर से ढिंढोरा पीटा जा रहा है कि जो हार खोज़ लायेगा उसे बड़ा इनाम दिया जायेगा । तो वह हार, हम राजा को दे आये ?'' तब बहू ने कहा - ''ठीक है, राजाजी को हार दे आईए ।'' बाप-बेटा हार लेकर राज्य में जाने के लिए तैयार हुए तो बहूने अपने पति से पूछा - ''हार तो बापुजी दे आयेंगे, आपको साथ जाने की आवश्यकता नहीं है !'' पति ने कहा - ''पिताजी वृद्ध हैं । इस हार के बदले में इनाम मिलनेवाला है । शायद पिताजी कम माँग ले तो ! मैं साथ जाऊँ तो अच्छा होगा ।''

बहू ने कहा - "यह हार देकर हमें इनाम नहीं लेना है । जो वस्तु जिस की है, उसे लौटा देना तो मनुष्य का कर्तव्य है । उसके अवेज में इनाम ले ही नहीं सकते हैं । हम मेहनत कर खायेंगे, हराम का एक पैसा भी न चाहिए ।" बाप-बेटे का मन बहुत व्यथित हुआ । बहू सभी बातों में समझदार और सुशील हैं, मगर एक इस बात में नासमझ है । वह समझती ही नहीं है कि हमारी निर्धनावस्था में ऐसा सुन्दर मौका मिला है । राजा इनाम देंगे तो हमारी ज़िन्दगी का दारिद्र्य टल जायेगा । परन्तु हठाग्रही बहू मानती ही नहीं ।

❑ सेठ की नीति, राजा की प्रसन्नता और बहू की निर्लोभता :

वृद्ध गरीब सेठ हार लेकर राजा के पास गये । राजा ने कहा - "सेठ ! हार कहाँ से और कैसे लाये ? क्या आपने चोरी तो नहीं की है न ?" सेठ ने विचार किया कि-'राजा को हार देने में भी दुःख है । मेरी पुत्रवधू का सिद्धांत सच्चा है ।' वृद्ध ने कहा - "महाराज ! मैंने चोरी नहीं की है, परन्तु सत्य हकीक्त यह है कि पिछली शाम को हमारी झोंपड़ी पर एक चील मरा हुआ साँप फेंक गई थी और सुबह में दूसरी चील यह हार लेकर झोंपड़ी पर से जा रही थी कि उसकी नज़र साँप पर पड़ी, इसलिए उसने हार झोंपड़ी पर फेंक दिया और साँप को लेकर चली गयी । हार देखने पर हमारा मन तो ललचाया, परन्तु मेरी पुत्रवधू ने मना किया, इसलिए मैंने हार लिया नहीं और आपकी आज्ञा से नगर में यह ढिंढोरा सुना तो मैं आपको आपका हार देने आया हूँ ।" सत्य बात राजा के दिमाग में उतर गयी कि बात यही हुई है कि महारानी प्रातः स्नान करने के लिए गयी तब हार दासी को हाथ में दिया था । दासी उसे पलंग पर छोड़कर किसी काम से बाहर गयी थी, तब चील हार उठा ले गई होंगी । बहुत खोजने पर भी जब न मिला तो ढिंढोरा पिटवाया । गरीबावस्था में भी ऐसी नीति देखकर राजा खुश हुए और सेठ से कहा कि - "हे सेठ ! माँगिए, जो चाहे मैं देने के लिए तैयार हूँ । मैं आप पर बहुत खुश हूँ ।" राजा के शब्द सुनकर गरीब सेठ का हृदय पिघल गया । परन्तु बहू ने मना किया है । कैसे माँग सकता है ? "महाराज ! मुझे कुछ नहीं चाहिए ।" राजा ने कहा - "हाथ में आया अवसर क्यों खो रहे हो ? आप एक समय करोड़ाधिपति थे, परन्तु अभी कर्मोदय से गरीब हो गये हो और फलाने सेठ की पुत्री ने अपने बाप को छोड़कर आप के बेटे से विवाह किया है । यह सब मैं जानता हूँ । आपकी जो इच्छा हो यह निःसंकोच माँग लीजिए ।" सेठ ने कहा - "मेरे घर की कुलवधू ने मना किया है । यह सब मेरी निर्लोभता नहीं, मेरे घर की देवी का प्रभाव है ।"

❑ पुत्रवधू के दर्शन की राजा को इच्छा :

राजा ने पूछा - "सेठ ! आप के घर की देवी कौन है ?" सेठ ने कहा - "महाराज ! मेरे घर की देवी और कोई नहीं स्वयं मेरी पुत्रवधू है ।" "फिर तो मुझे उनके दर्शन करने हैं । ऐसी गरीबी में भी उसकी ऐसी भावना है और आप भी बहू के कथानुसार अड़िग रहते हो, इसके लिए आपको भी धन्यवाद है । आपकी उस पवित्र पुत्रवधू के दर्शन करने हैं, इसलिए मैं पालकी भेजता हूँ । उसमें बिठाकर आप की पुत्रवधू को यहाँ ले आईए ।" ससुर ने आकर बहू से सारी बात की । बहू ने कहा - "हमारे से पालकी में नहीं बैठा जायेगा । जो दो हाथों से दान करे और गरीबों के दुःख दूर करे वहीं पालकी में बैठ सकता है । मैं पैदल चलकर राजा के पास आती हूँ ।"

❑ न चाहिए नश्वरलक्षी, चाहिए अहिंसा का हमें सहारा, निर्वाण दिन में नगरी में धर्मस्थान :

पुत्रवधू, ससुर और बेटा तीनों जन राजा के पास आते हैं और राजा के चरणों में प्रणाम करते हैं । राजा ने कहा - "हे देवी ! मुझे आप के दर्शन करने हैं । तुम्हारी निर्लोभ वृत्ति देखकर मैं आप पर प्रसन्न हुआ हूँ । तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो । तुम मेरी पुत्री जैसी ही हो और मैं तुम्हारा बाप हूँ ।" बहू ने कहा - "महाराज ! मुझे कुछ नहीं चाहिए । जो लक्ष्मी विनश्वर स्वभाववाली है, उस पर इतनी ममता क्यों ।" राजा ने बहुत कहा तब बहू ने माँगा - "अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो मैं आप से यही माँगती हूँ कि जबतक आप की हयाती रहे (जिन्दा हो) तबतक जितने गाँवों में आप का शासन हो उतने गाँवों में हिंसा नहीं होनी चाहिए । ऐसी मेरी इच्छा है । आप ऐसा ऐलान करवा दीजिए ।" राजा ने कहा - "तथास्तु बेटी ! तुमने बहुत सुन्दर माँगा है, परन्तु इसमें तुम्हारी गरीबी कहाँ टलेगी ? अतः तुम्हारी गरीबी दूर हो ऐसा कुछ माँग ।" बहू ने कहा - "महाराज ! हम गरीब है ही नहीं । दो हाथ मिले हैं, दो पैर मिले हैं, जात-मेहनत कर खाते हैं, फिर हम गरीब कहाँ है ? परन्तु आप दूसरा वचन माँगने को कह रहे हैं तो मैं यह माँग तो हूँ कि दीपावली के दिन से पिछली रात को महावीर-प्रभु का निर्वाण हुआ है । तो उस दिन आप के राज्य में बहुत तप, त्याग और धर्म-ध्यान होना चाहिए ।" यह सुनकर राजा तो चलित से रह गये । "क्या इस लड़की की उत्तम भावना है ?" यह सुनकर लड़की राजा के चरणों में गिर पड़ी । राजा ने कहा - "बेटे ! तुम आज से मेरी बेटी है । तुम्हें जब भी मेरी जरूरत पड़ जाय तब मेरे पास आ जाना ।"

राजा ने पुनः वचन माँगने को कहा, परन्तु बहू ने तो पैसे, घर, धन कुछ न माँगा तो बाप-बेटा मन ही मन कहने लगे कि-'यह बहू तो सुशील है, फिर भी ना समझ है । अधिक नहीं तो एक बंगला और व्यापार कर सके उतने रुपये माँगे होते तो अच्छा

होता । बहू बाप-बेटे के भाव जान गई । बहू ने ससुर से कहा - "बापुजी ! आपको धन ही चाहिए न ? चलिए, मैं आपको जितना चाहिए उतना धन दिलाऊँगी । बात यह थी कि जब बहू अट्ठम कर ध्यान में बैठी थी, तब उसे ऐसा भ्रम हुआ था कि किसी देव ने उसे कहा था कि-'तुम्हारे ससुर का लकड़े और गोबर भरने का बाडा है उसमें तुम्हारी सास ने बड़ी ताम्रकुण्ड भरकर रत्न गाड़ रखे हैं । इस बात की किसी को जानकारी नहीं है और रत्न अभी तक ज्यों के त्यों पड़े हैं । आप वहाँ जाकर खोदिएगा तो रत्न मिलेंगे ।

❑ बहू ने दिखाया सुख का भण्डार :

बहू ने कहा - "बापुजी ! आप जिस मकान में रहते थे । उस मकान में पास में लकड़े भरने का बाडा था । वह ज़मीन अभी बंजर पड़ी है । वह हमारी ही है न ?" ससूर ने 'हाँ' कहा ! "तो चलिए और मैं बताऊँ वहाँ खोदिए । मेरी सास ने अमूल्य रत्न छुपाये हैं ।" वहाँ आकर जमीन खोदी तो वहाँ से रत्नों से भरा बड़ा ताम्रकुण्ड निकला । यह देखकर बाप-बेटा तो खुश हो गये । बहूने कहा - "बापुजी ! अब तो आपको शांति मिली न ?" "बेटी ! मुझे तो बहुत ही आनन्द हुआ है । परन्तु तुझे इस बात की जानकारी कैसे मिली ?" बहू ने कहा - "मुझे अट्ठम तप में ऐसा भ्रम हुआ था । मेरी अभी आपको कहने की इच्छा न थी, परन्तु मैंने राजा के पास कुछ माँगा नहीं और आपको माँगने न दिया आपके हृदय में बहुत दुःख हुआ होगा । इसलिए मौन बताया ।

सेठ ने कहा - "ये रत्न मेरे ही है, परन्तु मैं तो मानता था कि उसे किसी ने चोरी कर लिया होगा । परन्तु तुम्हारी सासुजी ने अच्छी बुद्धि दिखाकर बाड़े में उसे छुपा दिये, तो हमें मुसीबत के समय में उपयोगी सिद्ध हुए ।" बेटे ने सही समय पर ये रत्न बेचे तो पैसों की भरमार हो गयी । बंगले तैयार हो गये और व्यापार शुरू कर दिया ।

बन्धुओं ! यह सारा प्रभाव धर्म का है । जिस के हृदय में धर्म का वास हैं, उसके घर में लक्ष्मी का वास होता है । जिस के घर में धर्म नहीं है, उसके घर में लक्ष्मी का वास नहीं है । धर्मविहीन घर स्मशान जैसा है । सागर में सारी नदियाँ समा जाती है, परन्तु नदी में समुद्र समाता नहीं है । धर्मसमुद्र है । उसमें धन, वैभव, अनुकूल संयोग रूपी नदियाँ समायी हुई है । धन मिलना तो पुण्य के अधीन है । इस बालिका को अट्ठम तप में देव के कहे अनुसार ज़मीन में खोद से रत्न मिले । उन रत्नों में से पाँच रत्न वेचे और उस पैसों से अपने जो मकान थे, उन मकानों के दुगने रुपये देकर मकान वापस ले लिये । आज का संसार पैसों को अधिक महत्त्व देने

लगा है। जिनके घर में पैसों की भरमार हैं, वे दुनियाभर की चीजें घर में बैठकर देख सकते हैं और दुनियाभर की यात्रा कर सकते हैं। यह सब पुण्य की लीला है।

❑ धर्म के प्रभाव से खुशहाली, धर्म के अभाव में कहर :

बालिका से राजा ने इच्छानुसार वचन माँगने को कहा तब उसने अहिंसा माँगी कि जबतक आपकी आन बरतती (शासन चलता) हो, तबतक गाँव में हिंसा नहीं होनी चाहिए। दूसरा यह माँगा कि दीपावली वीर निर्वाण के दिन छोटे बच्चों से लेकर वृद्धों को धर्म-ध्यान करना चाहिए और धर्म-ध्यान से वीर निर्वाण का दिन मनाया जाय, परन्तु उस दिन आरम्भ-समारम्भ नहीं होना चाहिए। उसने अट्ठम किया तब उसके मन में किसी प्रकार की कोई आकांक्षा न थी। उसने शुद्ध भावना से तप किया था। अपने ससूर तथा पति से कहा - ''देखिए ! यह सब धर्म का ही प्रभाव है, पुण्य का प्रभाव है। सुख में खुश होने जैसा नहीं है और दुःख में रोने जैसा नहीं है।'' जिस के घर में ऐसी देवी जैसी पुत्रवधू हो उसके तो भाग्य ही खुल जाते हैं। ऐसी बहू को पूछे बिना आप कुछ करते ? नहीं। इस सेठ ने अपनी घर-गृहस्थी बसा दी। अपनी कोठी भी खरीद ली। अब उनके पुण्य का उदय था, अतः जो लोग उनके पैसे और माल (सामान) दबाकर (छुपाकर) बैठ गये थे, वे लोग भी सामने से पैसे वापस देने आने लगे और व्यापार में भी चारों ओर से लाभ, लाभ और लाभ होने लगा। पहले थी उससे भी अधिक इज्ज़त और पैसे सेठ के घर में आ गये। लोग चारों ओर से वाह वाह करने लगे।

❑ पुण्य का अस्त और पाप का उदय :

ईश्वर की लीला (कला) न्यारी है। समय-समय के रंग बदलते है। पुत्री के घर दिन-ब-दिन सुख-संपत्ति बढ़ने लगी और उसके बाप के यहाँ पुण्य ख़त्म होने पर पापकर्म का उदय हुआ। उसे व्यापार में नुकसान होने लगा। धीरे-धीरे लक्ष्मी देवी भी रवाना हो गई और जैसी समधी की दशा थी ऐसी ही दशा उसकी हो गई। रोटी के भी लाले पड़ने लगे। उन्हें पता चला कि पुत्री के घर धन-संपत्ति बेशुमार है, परन्तु अब कैसे जा सकते थे ? दूसरों के पास सहायता माँगते हुए भी शर्म आती है और सोचते है कि मैं जाऊँ और कोई मुझ से कह दे कि कल सुबह अपने गरीब समधी को तुमने आश्रय नहीं दिया और जमाई को धक्का मारा था, यह इसी का फल है। अब तुझे कौन आश्रय देगा ? कहीं जाने का रास्ता न दिखा तो बालिका के पिता, माता, भाई और भाभी चारों सदस्य विष के कटोरे भरकर पीने के लिए तैयार हो गये हैं।

❑ उपकार पर उपकार की भावना :

इस तरफ पुत्री को पता चला कि मेरे पिताजी की स्थिति नाजुक हो गई है। पुत्री और जमाई दौड़ते हुए आये। ये चारों तो कटोरे भरकर पीने जा ही रहे थे कि उन्होंने आकर फेंक दिये और कहा - "पिताजी ! यह क्या कर रहे हैं ? आप चलिए हमारे घर। हमारे घर-संपत्ति, लक्ष्मी सब आपका ही है। आप ज़रा भी संकोच मत रखिए।" "पुत्री ! यह बाप किस मुँह से तेरे घर आये ? मैं पापी ने समधी को गरीबावस्था में सहायता न की और जमाई को धक्का मारकर निकाल दिया है और कुछ सहायता भी न की, परन्तु उन्होंने सगाई में जो सोने के गहने दिये थे उसे भी न दिया था। उनका धन मैं पचाकर बैठ गया हूँ। सचमुच उसका फल मुझे आज भुगतना पड़ रहा है। पुत्री ! मुझे तुम्हारे घर नहीं आना है।" पुत्री ने तो अपने माता-पिता के प्रति प्रेम होता है इसलिए कहा, परन्तु जमाई का जिसने अपमान किया था वह स्वयं भी आज ससुर से कहता है - "बापुजी ! इसमें आपका दोष नहीं है। दोष हमारे कर्मों का ही है। हम अभी अगर सुखी हुए हैं, खोयी संपत्ति तथा इज्जत पायी है, तो इसमें हमारी कोई बुद्धि या चातुर्य नहीं। यह सारा प्रभाव आप की पुत्री का है। आपकी सन्तान के प्रभाव से जिसके घर सुख-वैभव छाया हो, उसके माता-पिता भी धन्यवाद के अधिकारी हैं। हमारे घर-बार, धन सब आपका ही है। आपके चरण में झुककर कहता हूँ कि हमारी बिनती का स्वीकार कर हमारे घर चलिए।" पुत्री और जमाई चाहे कितना भी आग्रह क्यों न करे, परन्तु जानेवाले को तो संकोच होगा ही न !

❑ प्रहार करनेवाले के प्रति परोपकार :

पुत्री ने कहा - "पिताजी ! आपके जमाई और समधी बहुत विशाल हृदयवाले हैं। आपको ताने नहीं मारेंगे।" जमाई लाख रुपये नकद साथ में लाया था। उसे ससुर के चरणों में रखकर दिया। ससुर ने कहा - "मेरे लिए पुत्री की लक्ष्मी लहू के बराबर है।" तब पुत्री ने कहा - "आपका जो कर्ज़ हो उसे हम चूका देंगे और आप इस पैसों से व्यापार कीजिए। आपके पास पैसे आ जाय तब दे दीजिए।" इस प्रकार पिता को आश्वासन दिया और चार जीव विष पीने से बच गये। साथ ही साथ पुत्री ने अपने पिता से कहा - "पिताजी ! आप नियम लीजिए कि चाहे कैसे भी अमीर बनेंगे, परन्तु लक्ष्मी के मद में मस्त नहीं होगें और दुःख में ड़रेंगे नहीं। आँगन में आनेवाले हमदर्दी की सहायता करेंगे। न्याय से लक्ष्मी आती है तभी मनुष्य सुखी होते हैं।"

बालिका ने धर्म की ध्वजा फहरायी और पितृकुल और स्वशुरकुल को उज्ज्वल बनाया। इसका नाम है सच्ची दीपावली मनाना। धन धोने से या पटाखे फोड़ने से या दीये जलाने से दीपावली की सार्थकता नहीं है। अधिक बातें बाद में।

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

महा मंगलकारी दीपावली के पवित्र दिन चल रहे हैं । आप सभी ने कल नूतन वर्षाभिनन्दन किये और अन्योन्य शुभकामनाएँ दी । ऐसे पवित्र दिन आत्मा को नूतन सन्देशे देते हैं । हे चेतन ! नूतन वर्ष यानी जीवन की एक डायरी । प्रत्येक वर्ष उसके फर्मे (ढाँचा) हैं । प्रत्येक दिन उसके पन्ने हैं और प्रत्येक अक्षर कार्य है । काग़ज़ की डायरी तभी सुन्दर और सुशोभित लगती है कि जब उसके कर्मे स्वच्छ और सुन्दर हो । फर्मे तभी सुन्दर बनते हैं कि उसके पन्नों पर सुन्दर-सुरेख और स्वच्छ हो । उसी प्रकार नूतन वर्ष अर्थात् ३६० पन्नों की एक छोटी-सी सुन्दर डायरी । इस डायरी को कैसे सँभालेंगे ? उसमें क्या लिखे ? क्या चित्रांकन करे ? उसका क्या करना ? मात्र उसे सँभालकर रखना या फाड़ डालना या फिर उसे एक आदर्श डायरी बनानी है ? क्या किया जाय यह आपके हाथ की बात है । इस डायरी में सब कुछ लिखा जाता है । वर्ष की एक भी बात ऐसी नहीं होगी कि जो उसमें लिखी न जाती हो । जीवन में काले कर्म किये हो वह भी लिखे जाते हैं और किसी को आर्थिक मुसीबत में अन्तिम समय में सहायता कर शुभकर्म उपार्जित किये हो वे भी लिखे जाते हैं । किसी भोले ग्राहक के गले पर छूरी फेरी हो ऐसे अहवाल (वृत्तांत) भी लिखे जाते हैं और किसी दो-दो, तीन-तीन दिन के भूखे भिखारी की भूख मिटाकर उसके हृदय के पाये आशीर्वाद के आह्वाल भी लिखे जाते हैं ।

❑ जीवन-डायरी को बिगाड़ना है या सुधारना है ? :

बन्धुओं ! आपको अपनी जीवन-डायरी को सुशोभित बनानी हो तो जीवनरूपी डायरी के पन्ने - सत्कार्यों की रंगोली भरिए, सद्भावना के सप्तरंगी चित्र बनाइए, परोपकार, प्रेम, परमार्थ और क्षमा के सौरभ से जीवन महकता बनाइए, ज्ञान के दीपक जलाइए, तप के तोरण बँधवाइए । सारा वर्ष भले ही बीत जाय, परन्तु इस आदर्श डायरी में, आदर्श किये गये कर्मों की नोट को लिखकर जीवन पर्यन्त आँख के सामने रखकर उसका चिन्तन कीजिए । प्रत्येक मनुष्य अगर अपनी इस डायरी को केन्द्र में रखकर उसके प्रत्येक पन्नें को सुन्दर बनाने का प्रयास कीजिए, उसके एक-एक पन्ने पर जाने-अनजाने कोई काला दाग़ लग जाय इसके लिए पूर्ण सावधानी रखे तो आत्मा का उत्थान अवश्य होता है । इस जीवन डायरी को सँभालकर रखना

है या फेंक देना है ? बिगाड़ना है या सुधारना ? यह सब अपने हाथ की बात है। इसी जीवन रूपी डायरी के जितने पन्ने फट गये उतने फट गये परन्तु अब जो पन्नें शेष है उन्हें काले कर्मों से कलंकित कर बिगाड़ने नहीं है। इतना निर्णय तो सभी को करना चाहिए। इस नूतन वर्ष में इतना निर्णय कर लीजिए कि मेरी जीवनरूपी डायरी को मैं आदर्श संस्कार और सद्‌गुणों से अवश्य सुशोभित बनाऊँगा।

आज 'भाई दूज' का दिन है। आज के दिन का नाम 'भाई-दूज' क्यों रखा गया ? आज भाई बहन के घर जाता है। वैसे तो ऐसा रिवाज़ है कि बहन भाई के घर जाय। छोटे-बड़े त्यौहारों में भाई बहन को अपने घर भोजन के लिए बुलाता है। परन्तु भाई बहन के घर भोजन के लिए जाता नहीं है। परन्तु आज 'भाई-दूज' के दिन बहन भाई को भोजन के लिए बुलाती है। इसका कारण क्या ? यह प्रथा कब से शुरू हुई, भगवान महावीरस्वामी मोक्ष में गये तब से। भगवान तो त्यागी थे, इसलिए उन्हें संसार से स्नेह-सम्बन्ध न था। त्यागी पुरुष संसार छोड़ देते हैं, फिर उन्हें सगे-स्नेहियों के प्रति अनुराग नहीं होता है। परन्तु उनके सगे-सम्बन्धी, माता-पिता, भाई-बहन आदि को ऐसा लगता है कि 'यह हमारा पुत्र है, भाई है, बहन है।' इसी प्रकार भगवान मोक्ष में गये तब उनके बड़े भाई नंदीवर्धन और बहन सुदर्शना को बहुत दुःख होता है। मोक्ष में पधारने का आनन्द तो हुआ, परन्तु इस पृथ्वी पट से उनका वियोग हुआ न ? उनका हृदय बहुत दुःखी हुआ। अतः बहन ने अपने भाई नंदीवर्धन को अपने घर बुलाया और भाई भी शोक को छोड़ने के लिए बहन के घर गये। बहन भाई को सेवई का भोजन करवाया। तब से इस दिन को 'भाई-दूज' कहा जाता है।

रक्षाबन्धन के दिन भाई बहन को अपने घर खिलाता है और बहन भी भाई को खुशी से राखी बाँधती है, तब भाई अपनी हैसियत के अनुसार बहन को कुछ न कुछ देता है। यह भाई का प्रसंग है। आज भाई-दूज के दिन (प्रसंग) बहन भाई को हिम्मत देती है। भाई सुखी हो तो बहन के दुःख में सहायक बनता है, उसी प्रकार कई बार ऐसा भी होता है कि बहन अधिक सुखी हो और भाई गरीब हो, ऐसे समय में बहन द्वारा भाई को शक्ति अनुसार सहायता करनी चाहिए। तभी भाई-बहन का स्नेह सच्चा कहा जाता है। 'भाई-दूज' से सम्बन्धित एक कहानी है।

भाई-दूज की कहानी

संपतराय नामक एक गर्भश्रीमंत सेठ थे। पुण्योदय से उनके यहाँ पानी की बाढ़ की तरह लक्ष्मी आती थी। सेठ के पास संपत्ति थी और साथ में जीवन में धर्म भी बहुत था। सेठानी भी ऐसे ही थे। उन्हें चार पुत्र थे। इज्ज़त भी बहुत थी। इसलिए सेठ-सेठानी को किसी बात की कमी न थी। सेठ के घर अनेक लोग अमानत के रूप में रुपये, गहने आदि रखते। सेठ लोगों को मना करते कि मुझे पैसों की

आवश्यकता नहीं है परन्तु कोई वृद्ध या गरीब हो ऐसे लोग कहते कि - "सेठ ! आपको चाहे आवश्यकता न हो, परन्तु हमारे इतने रुपये रखिए । हमारा उस पर आश्रय (भरोसा) है । आपके घर में हमारी पूँजी सलामत रहेगी ।" तो सेठ लोगों के रुपये रखते और व्याज देते थे । संपतराय सेठ न्याय, नीति को कभी छोड़ते नहीं है । उनके आँगन से भिक्षुक कभी खाली हाथ जाते न थे । अतिथि को दान दिये बिना उन्हें चैन पड़ता नहीं था । साधु-संतो की भक्ति तो उनके जीवन में ताने-बाने की तरह बुनी (फैली) है ।

❑ नीति से व्यापार करने के लिए पिता की पुत्रों को शिक्षा :

सेठ के पुत्र भी ऐसे ही संस्कारी थे, लड़के बड़े हुए । सेठ ने उन्हें व्यवसाय सिखा दिया और कोठी पर बिठाया तथा विवाह करवा दिये । लड़के अब धंधा करने लगे । समय अपना कार्य करता है । मनुष्य चाहता है कुछ और कर्मराजा करते हैं कुछ और । सेठ के लड़के व्यापार-धंधा करने लगे । पैसे ऐसी वस्तु है कि मनुष्य होंश खो बैठता है । लड़कों ने अधिक धन कमाने के लिए थोड़ी अनीति करने जाते, परन्तु सेठ तुरन्त समझाते कि - "पुत्रों ! हमारे पुण्य से बहुत कुछ मिला है । अन्याय, अनीति कर आप धन कमाओंगे तो आपको उसका पाप भुगतना पड़ेगा । पैसों से मौज़-मज़ा उडाने, माल खाने सभी आयेंगे, परन्तु मार-खाने कोई नहीं आयेगा । पाप के पोटले बाँधकर पैसे पाओगे तो वह पाप आपके खाते में लिखा जायेगा । वह पैसा शायद यही ख़त्म हो जायेगा, परन्तु पाप ख़त्म नहीं होगे । उसमें कोई हिस्सेदार नहीं बनेगा ।" यह समझाते एक बार लड़कों ने बड़ा धंधा किया और उसमें जबरदस्त नुकसान हुआ । ज़िससे घर-बार, आभूषण आदि सब बेचने का समय आया । सेठ समझ गये कि-'अब मेरे ज़ोरदार पाप-कर्म का उदय हुआ है । कुछ शेष बचेगा नहीं । मेरे पाप का उदय होगा तो मैं तो दुःख सह लुँगा, परन्तु जिसकी अमानत मेरे घर पर रखी है, उन ग़रीबों का क्या होगा ? उनकी रकम (पैसे) चुका दुँ ।" ऐसा सोचकर सेठ दुकान में जो माल था उसे बेचकर जिसकी अमानत थी उन्हें देने लगे ।

❑ आजीविका से अधिक कर्ज चुकाने की सेठ को चिन्ता :

बन्धुओं ! मनुष्य के पुण्य का उदय हो तब सब मिलने आते हैं, सब साथ देते हैं, परन्तु पुण्य का सूर्य अस्त होता है तब कोई साथ देता नहीं है । सगे-स्नेही और रिश्तेदारों ने जाना कि, अब सेठ निर्धन हो गये हैं, तो अब कोई उनके पास भी आता नहीं है । सेठ समझते हैं कि यह संसार स्वार्थ से भरा हुआ है । परन्तु अपने मन के भाव पवित्र थे । वे तो अपनी पत्नी तथा पुत्रों से कहते - **"समय समय बलवान है नहीं पुरुष बलवान ।"** सेठ को मैं क्या खाऊँगा और क्या पीऊँगा, घर-बं बिक जायेंगे तो कहाँ रहुँगा इसकी चिन्ता नहीं है, परन्तु जिसकी अमानत पड़ी

सभी को कर्ज़ चुका दिया जाय तो मेरे सिर पर कर्ज़ न रहे - यही चिन्ता रहती थी । फिर भी हो सके उतने उपाय कर सेठ ने सबको बुलाकर जिस के रुपये थे यह देने लेगे । सभीके रुपये दे दिये, मगर एक विधवा माता के दस हज़ार देना रह गये । परन्तु अब सेठ के पास कुछ नहीं रहा है, फिर कैसे देते ।

❑ विश्वास से पूँजी (संपत्ति) रखनेवाले के साथ विश्वास कैसे हो सकता है ?

उस विधवा को भी पता चल गया कि सेठ ने सभीको उनके रुपये दे दिये हैं, इसलिए वह भी सेठ के पास रुपये लेने गयी । दीपावली के दिन आकर कहने लगी-"सेठ ! मेरे जीवनभर की पूँजी दस हज़ार रुपये हैं । मेरे पास और कोई संपत्ति नहीं है । मैं कठोर परिश्रम कर खाती हूँ, परन्तु जब हाथ-पैर न चले तब पास में कुछ हो तो खा सकते हैं । यह सोचकर आपके यहाँ पूँजी रखी है । परन्तु अब तो भाई-दूज का दिन आता है । तब मुझे अपने भाई को मेरे घर बुलाना है । मेरे भाई की परिस्थिति खराब हो गयी है । ये पैसे मुझे अपने भाई ने ही थोड़े-थोड़े कर के दिये है, तो उसके दुःख में मैं सहायता करूँ न ?" सेठ के पास अब एक पैसा भी न था । भला कैसे दे सकते ? बहुत चिन्तातुर बन गये, परन्तु वृद्धा से कहा - "माजी ! मैं आपको कल कुछ भी करके आपके पैसे दे दुंगा ।" वृद्धा ने कहा - "ठीक है, मैं कल आऊँगा ।" सेठ चिन्ता में पड़ गये कि अब दस हज़ार रुपये कहाँ से लाऊँ ? सेठ को कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा है । ऐसे समय में सग-सम्बन्धी के पास हाथ-फैलाना व्यर्थ है । क्योंकि स्वयंने जिसे अच्छी स्थिति में हज़ारों रुपये दिये थे वे भी सामने देखते नहीं है । संसार के सम्बन्धों में सदैव ज्वार-भाटा आता रहता है, परन्तु इस गरीब विधवा ने मेरे घर ज़िस विश्वास से रुपये रखे थे और मैं लौटा न दूँ तो मेरा जीवन व्यर्थ (धूल) है ।

❑ कर्ज़ा रखकर जीने से अच्छा है मर जाऊँ :

अनेक विचार कये, परन्तु है ही नहीं तो कहाँ से लाते ? ऐसे जीने से तो अच्छा है जीवन का अन्त करे । ऐसा सोचकर सेठ रात को गुप्त रूप से चले गये । गाँव से बाहर एक खेत में कुँआ था वहाँ आये । फिर सोचा कि इस कुँआ में गिरकर मर जाऊँ । आसपास कोई नज़र तो नहीं आ रहा है न ? उसकी जाँच की । कोई दिखा नहीं तो कुँए के किनारे पर आये । तभी अचानक कोई मनुष्य आ पहुँचा और कह उठा - "भाई ! आप कौन हो ? इस कुँए के किनारे क्यों खड़े हो ?" सेठ कुछ बोले नहीं । तब वह मनुष्य सेठ के पास आया और ध्यान से देखने पर सेठ को पहचान गया और कहने लगा - "सेठ ! आप किसलिए इस कुँए के किनारे पर खड़े हो ?" सेठ मौन रहे परन्तु उस मनुष्य ने पूछा तव सेठ ने कहा - "भाई ! मुझे व्यापार में वड़ा नुकसान हुआ है । नुकसान पूरा करते हुए मेरा सारा व्यवहार (पैसा)

नष्ट हो गया । आज तक मैंने स्वयं को बहुत संभाला, परन्तु अब यह सम्भव नहीं है । एक विधवा माजी मेरे घर में दस हज़ार रुपये अमानत के रूप में दिये हैं, उसे देना अभी तक शेष है । माजी को आवश्यकता हुई है, इसलिए माँग रही है । कल सुबह लेने आनेवाले हैं । परन्तु मैं किसी प्रकार से देने में असमर्थ हूँ । गरीब विधवा का कज़ा रखने से अच्छा है मैं मर जाऊँ । सचमुच, अब मैं हिम्मत हार गया हूँ ।'' इतना कहते हुए सेठ की आँखों से आंसू गिर पड़े ।

❑ उपकारी के उपकार का बदला चुकाता हुआ सुतार :

आनेवाला मनुष्य सुतार था । बहुत समय पहले सेठ ने उसे सहायता की थी । उस उपकारी को देखकर सुतार को भूतकाल में किया गया उपकार याद आया । उसने कहा - ''सेठ ! आप चिन्ता मत कीजिए । अभी मेरे ससुर ने मेरे मकान का दूसरा मँजला बनाने के रु. १५ हज़ार दिये हैं । मकान का मँजला बाद में होगा । मैं आपको उसमें से १० हज़ार रुपये देता हूँ ।'' सेठ ने कहा - ''भाई ! तुम अपना मकान बना । तुमने अपनी पत्नी और ससुर से पूछा ?'' तब सुतार ने कहा - ''सेठ ! आप इस मकान की चिन्ता मत कीजिए । मकान तो बाद में बँधेगा, परन्तु आपके जैसे उपकारी सेठ के उपकार का बदला चुकाने का लाभ फिर नहीं मिलेगा । मकान की चिन्ता से अधिक मनुष्य की चिन्ता है । आप की इज्ज़त रह जायेगी । प्राण बचेंगे तो मेरे लिए मकान के मंजले से भी अधिक आनन्द है ।'' ऐसा कहकर सुतार सेठ को अपने घर ले गया और दस हज़ार रुपये नकद दिये । उसे लेकर सेठ रात में ही विधवा माजी के घर दे आये ।

विधवा माजी की अमानत चुका दी गयी । अतः शेठ को खुशी हुई । फिर स्वयं बहुत मेहनत करने लगे । दुःख में भी धर्म और प्रामाणिकता न छोड़ी । एक-दो वर्ष में मुश्किल दिन बीत गये । फिर सेठ के पुण्य का उदय हुआ और थे उससे भी अधिक सुखी बन गये, अतः उस सुतार को बुलाकर सेठ ने उसे दस हज़ार रुपये दे दिये । तब सुतार ने कहा - ''सेठ ! मुझे डबल (दुगुने) रुपये नहीं चाहिए ।'' सेठ ने कहा - ''भाई ! तुमने तो मुसीबत के समय में मेरी लाज रखी है, इसलिए तुम्हें पैसे लेने ही चाहिए ।'' सुतार ने कहा - ''मैंने कुछ नहीं किया है । आप का ही प्रभाव है । मैंने तो एक मनुष्य के रूप में अपना फ़र्ज निभाया है ।'' परन्तु सेठ ने बहुत कहा तब अपने दस हज़ार रुपये लिये । ऐसे मनुष्य मनुष्य-जीवन पाकर सुगन्ध फैलाकर अपना जीवन सफल बना जाते हैं । उस वृद्धा ने भी अपने भाई को सहायता कर भाई-दूज का दिन सफल बनाया ।

देवानुप्रियों ! हमें क्या करना है ? पाँच पवित्र पर्व में भाई-दूज के दिन का स्थान महत्त्वपूर्ण है । पारिवारिक जीवन में सहानुभूति के भाव तंतुओं को उलझनों में डाले

सभी को कर्ज़ चुका दिया जाय तो मेरे सिर पर कर्ज़ न रहे - यही चिन्ता रहती थी । फिर भी हो सके उतने उपाय कर सेठ ने सबको बुलाकर जिस के रुपये थे यह देने लेगे । सभीके रुपये दे दिये, मगर एक विधवा माता के दस हज़ार देना रह गये । परन्तु अब सेठ के पास कुछ नहीं रहा है, फिर कैसे देते ।

❑ विश्वास से पूँजी (संपत्ति) रखनेवाले के साथ विश्वास कैसे हो सकता है ?

उस विधवा को भी पता चल गया कि सेठ ने सभीको उनके रुपये दे दिये हैं, इसलिए वह भी सेठ के पास रुपये लेने गयी । दीपावली के दिन आकर कहने लगी-''सेठ ! मेरे जीवनभर की पूँजी दस हज़ार रुपये हैं । मेरे पास और कोई संपत्ति नहीं है । मैं कठोर परिश्रम कर खाती हूँ, परन्तु जब हाथ-पैर न चले तब पास में कुछ हो तो खा सकते हैं । यह सोचकर आपके यहाँ पूँजी रखी है । परन्तु अब तो भाई-दूज का दिन आता है । तब मुझे अपने भाई को मेरे घर बुलाना है । मेरे भाई की परिस्थिति खराब हो गयी है । ये पैसे मुझे अपने भाई ने ही थोड़े-थोड़े कर के दिये है, तो उसके दुःख में मैं सहायता करूँ न ?'' सेठ के पास अब एक पैसा भी न था । भला कैसे दे सकते ? बहुत चिन्तातुर बन गये, परन्तु वृद्धा से कहा - ''माजी ! मैं आपको कल कुछ भी करके आपके पैसे दे दुँगा ।'' वृद्धा ने कहा - ''ठीक है, मैं कल आऊँगा ।'' सेठ चिन्ता में पड़ गये कि अब दस हज़ार रुपये कहाँ से लाऊँ ? सेठ को कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा है । ऐसे समय में सग-सम्बन्धी के पास हाथ-फैलाना व्यर्थ है । क्योंकि स्वयंने जिसे अच्छी स्थिति में हज़ारों रुपये दिये थे वे भी सामने देखते नहीं है । संसार के सम्बन्धों में सदैव ज्वार-भाटा आता रहता है, परन्तु इस गरीब विधवा ने मेरे घर ज़िस विश्वास से रुपये रखे थे और मैं लौटा न दूँ तो मेरा जीवन व्यर्थ (धूल) है ।

❑ कर्ज़ा रखकर जीने से अच्छा है मर जाऊँ :

अनेक विचार कये, परन्तु है ही नहीं तो कहाँ से लाते ? ऐसे जीने से तो अच्छा है जीवन का अन्त करे । ऐसा सोचकर सेठ रात को गुप्त रूप से चले गये । गाँव से बाहर एक खेत में कुँआ था वहाँ आये । फिर सोचा कि इस कुँआ में गिरकर मर जाऊँ । आसपास कोई नज़र तो नहीं आ रहा है न ? उसकी जाँच की । कोई दिखा नहीं तो कुँए के किनारे पर आये । तभी अचानक कोई मनुष्य आ पहुँचा और कह उठा - ''भाई ! आप कौन हो ? इस कुँए के किनारे क्यों खड़े हो ?'' सेठ कुछ बोले नहीं । तब वह मनुष्य सेठ के पास आया और ध्यान से देखने पर सेठ को पहचान गया और कहने लगा - ''सेठ ! आप किसलिए इस कुँए के किनारे पर खड़े हो ?'' सेठ मौन रहे परन्तु उस मनुष्य ने पूछा तव सेठ ने कहा - ''भाई ! मुझे व्यापार में वड़ा नुकसान हुआ है । नुकसान पूरा करते हुए मेरा सारा व्यवहार (पैसा)

नष्ट हो गया । आज तक मैंने स्वयं को बहुत संभाला, परन्तु अब यह सम्भव नहीं है । एक विधवा माजी मेरे घर में दस हज़ार रुपये अमानत के रूप में दिये हैं, उसे देना अभी तक शेष है । माजी को आवश्यकता हुई है, इसलिए माँग रही है । कल सुबह लेने आनेवाले हैं । परन्तु मैं किसी प्रकार से देने में असमर्थ हूँ । गरीब विधवा का कज़ा रखने से अच्छा है मैं मर जाऊँ । सचमुच, अब मैं हिम्मत हार गया हूँ ।'' इतना कहते हुए सेठ की आँखों से आंसू गिर पड़े ।

❑ उपकारी के उपकार का बदला चुकाता हुआ सुतार :

आनेवाला मनुष्य सुतार था । बहुत समय पहले सेठ ने उसे सहायता की थी । उस उपकारी को देखकर सुतार को भूतकाल में किया गया उपकार याद आया । उसने कहा – ''सेठ ! आप चिन्ता मत कीजिए । अभी मेरे ससुर ने मेरे मकान का दूसरा मँजला बनाने के रु. १५ हज़ार दिये हैं । मकान का मँजला बाद में होगा । मैं आपको उसमें से १० हज़ार रुपये देता हूँ ।'' सेठ ने कहा – ''भाई ! तुम अपना मकान बना । तुमने अपनी पत्नी और ससुर से पूछा ?'' तब सुतार ने कहा – ''सेठ ! आप इस मकान की चिन्ता मत कीजिए । मकान तो बाद में बँधेगा, परन्तु आपके जैसे उपकारी सेठ के उपकार का बदला चुकाने का लाभ फिर नहीं मिलेगा । मकान की चिन्ता से अधिक मनुष्य की चिन्ता है । आप की इज्ज़त रह जायेगी । प्राण बचेंगे तो मेरे लिए मकान के मंजले से भी अधिक आनन्द है ।'' ऐसा कहकर सुतार सेठ को अपने घर ले गया और दस हज़ार रुपये नकद दिये । उसे लेकर सेठ रात में ही विधवा माजी के घर दे आये ।

विधवा माजी की अमानत चुका दी गयी । अतः शेठ को खुशी हुई । फिर स्वयं बहुत मेहनत करने लगे । दुःख में भी धर्म और प्रामाणिकता न छोड़ी । एक-दो वर्ष में मुश्किल दिन बीत गये । फिर सेठ के पुण्य का उदय हुआ और थे उससे भी अधिक सुखी बन गये, अतः उस सुतार को बुलाकर सेठ ने उसे दस हज़ार रुपये दे दिये । तब सुतार ने कहा – ''सेठ ! मुझे डबल (दुगुने) रुपये नहीं चाहिए ।'' सेठ ने कहा – ''भाई ! तुमने तो मुसीबत के समय में मेरी लाज रखी है, इसलिए तुम्हें पैसे लेने ही चाहिए ।'' सुतार ने कहा – ''मैंने कुछ नहीं किया है । आप का ही प्रभाव है । मैंने तो एक मनुष्य के रूप में अपना फ़र्ज निभाया है ।'' परन्तु सेठ ने वहुत कहा तब अपने दस हज़ार रुपये लिये । ऐसे मनुष्य मनुष्य-जीवन पाकर सुगन्ध फैलाकर अपना जीवन सफल बना जाते हैं । उस वृद्धा ने भी अपने भाई को सहायता कर भाई-दूज का दिन सफल बनाया ।

देवानुप्रियों ! हमें क्या करना है ? पाँच पवित्र पर्व में भाई-दूज के दिन का स्थान महत्त्वपूर्ण है । पारिवारिक जीवन में सहानुभूति के भाव तंतुओं को उलझनों में डाले

बिना गूँथ रखने में ऐसे पर्व महान योगदान देते हैं। श्रमण भगवान महावीरस्वामी के निर्वाण से दुःख के सागर में डूबे दीवर्धन को उनकी बहन सुदर्शना ने सांत्वना देकर दुःखी मन को ममता भरा दिलासा देने के लिए अपने घर बुलाकर विरह की वेदना से मुक्त करवाया था। सम्बन्धों के संसार में परस्पर सांत्वना बहुत महत्त्व का कार्य करती है। सम्बन्धों को नाज़ुक रखने के लिए समझदारी की आवश्यकता है। ग़लत फहमी से सम्बन्धों में हरारे पड़ जाती है। संसार की राह पर फूलों से अधिक काँटे हैं। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि काँटों से अधिक फूल के घाव कठोर होते है। पराये की अपेक्षा से अधिक अपनी उपेक्षा कठिन लगती है। इसीलिए कहा जाता है कि सम्बन्धों को सँभालकर रखिए। कौन-सा सम्बन्ध क़ब उपयोगी सिद्ध हो यह कहा नहीं जा सकता।

रक्षाबन्धन के दिन बहन के प्रति भाई को कैसा भाव होता है यह बात की तो जाती है, परन्तु आज के भाई-दूज के दिन भाई के प्रति बहन का कैसा भाव (स्नेह) होना चाहिए यह बात करनी है। कहा है न कि -

'जंगल में शोभित जैसे सुन्दर बेल, खारे समुद्र में प्यारी लगे, मीठा जल,
रूनझून करती आयी भाई-दूज, अखण्ड रखने भाई बहन का प्रेम।'

दूज का चन्द्रमा एक दिन पूर्णिमा का चन्द्र बनता है और सोलहों कलाओं से खिल उठता है। उसी प्रकार बहन और भाई भी बचपन से एक दिन बड़े होने पर स्नेह का सरोवर छलक पड़ता है। भाई-दूज अर्थात् दुःखी हाल में आये भाई तो सुखी बहन द्वारा भाई को यथाशक्ति सहायता करना। इस संदर्भ में आपने एक दृष्टांत तो सुना न ? सचमुच संसार के सर्व सम्बन्धों में निःस्वार्थ और पवित्र सम्बन्ध हो तो बहन और भाई का है। भाई के लिए और बहन के लिए भाई स्नेह का सरोवर है। भाई और बहन का स्नेह अर्थात् मानो खारे समुद्र में मीठा जल। जंगल में वृक्ष के साथ लिपटी मनोहर बेल। आज के दिन बहन आपने भाई को अपने घर भोजन के लिए बुलाती है और जीवन का अनमोल आनन्द अनुभव करती है। आज के दिन बहन अपने भाई को अपने घर बुलाकर प्रेम से खिलाते हुए मन में ऐसी भावना रखती है कि मेरे हीरे जैसा भाई सदैव तन से तंदुरस्त रहे, मन से पवित्र रहे और धन से समृद्ध बने। पाँचों इन्द्रियों पर विजय पाकर काम-क्रोधादि कषायों रूप महारोग़ से मुक्त बनकर कुल को उज्ज्वल बनाये। बहनों ! आप ऐसी भावना रखती हो न ?

एक सुखी परिवार में जन्मे भाई और बहन की बात है। बहन के विवाह नहीं हुए थे। तब तो भाई-बहन का स्नेह मानो दूध में मिसरी की तरह था। बहन बड़ी थी और भाई छोटा। सुखी-परिवार में माता-पिता ने बहन के विवाह करवाये, फिर भाई का भी विवाह हो गया। विवाह के कुछ समय बाद माता-पिता का देहान्त

हो गया । भाई और बहन के बीच का रिश्ता बहुत ही मजबूत था, परन्तु संसार के स्नेह के सम्बन्ध को बाँध कब और कैसे टूट जाय, यह नहीं कहा जा सकता । सारा संसार स्वार्थ की शृंखला से बँध हुआ है । बहन और भाई दोनों पुण्योदय से सुखी थे, परन्तु एक समय ऐसा आ गया कि भाई के जीजाजी के पूरे वेग से चलनेवाले धंधे में भयंकर धक्का लगने से धंधा चौपट हो गया । आज के मनुष्य के लिए पैसा ही सर्वस्व है । पैसा चले जाने पर मनुष्य को ठेस पहुँचती है । बाह्य संसार में भी जहाँ देखो वहाँ धन के मान-सम्मान हैं । पैसा हो तबतक सब सगे हैं, अन्यथा पैसा चले जाने पर सगे और स्नेही भी दूर भाग जाते हैं । अनुभवियों ने भी सच ही कहा है कि **'वसु बिना नर पशु !'** बन्धुओं ! 'वसु' अर्थात् क्या ? आपको पता है ? (श्रोतागणों में से आवाज : वसु अर्थात् धन ।) देखिए, यहाँ जोर से बोले ! यहाँ यह सिद्ध होता है कि आप को धन कितना प्रिय है ? धन के लिए जीव कितनी धमाल मचा देता है ? आज के जीवों के सम्बन्ध धन और धनवानों के साथ हैं । जबकि आध्यात्मिक संसार में ज्ञानियों के अंदाज कुछ अलग ही है । ज्ञानी कहते हैं कि - *"धर्मेण हीना पशुभि: समाना ।"* मनुष्य के पास चाहे कितना ही धन क्यों न हो मगर जीवन में धर्म न हो तो ज्ञानियों के मन इसकी कोई कीमत नहीं है । ज्ञानियों के लिए धर्महीन चक्रवर्ती भी दया के पात्र है । धर्महीन मनुष्य पशु-समान है । यहाँ भी यही हुआ ।

❑ पैसे और पति जाने पर निराधार बहन :

बहन के घर पापकर्म का उदय होने पर धन, घरबार सब कुछ चला जाने पर उसके पति को बहुत ही दु:ख हुआ और पति थोड़ी-सी बीमारी में ही इस क्षणभंगुर संसार से बिदा हो गया । पैसा गया, पति गया और फिर जेठ-जेठानी ने घर से उसे निकाल दिया । अत: दु:खी बहन घर के पास एक छोटी-सी झोंपड़ी बाँधकर एक पुत्र और पुत्री को लेकर रहने लगी । बन्धुओं ! कर्म जीव को न जाने कैसे-कैसे खेल खिलाता है ? पुण्य-पाप की बाजी कब बदलती है और फिर न जाने कौन-सी परिस्थिति में कहाँ रख दे । जिसके घर में सुख-वैभव बेसुमार था, आज उसी बहन के सिर पर भयानक दु:ख आ पड़े हैं । बिलकुल निराधार-सी हो गयी है । फूट-फूट कर रोती बहन आज रोटी के एक टुकड़े की महोताज है ! उसका भाई तो बहुत सुखी था । अपने जीजाजी की मौत का तो भाई को पता था, परन्तु आंतरिक कलह का पता न था । खानदान बहन ने अपने दु:ख की बात कभी अपने भाई से न की थी । छोटे-छोटे फूल से बच्चें भूखे-प्यासे मुरझाने लगे और 'माँ, कुछ खाना दे... बहुत भूख लगी है' के शब्दो से माँ को अनुनयविनय करते हुए उसे रुला रहे हैं । माता को मन ही मन लगता कि-'मेरा भाई तो सुखी है, फिर क्यों न मैं पत्र लिखकर अपने दु:ख दर्द की कहानी सुनाऊँ । यह सोचकर उसने अपने भाई को पत्र लिखा ।

❑ ननद का पत्र भाभी के लिए रद्दी :

'ओ मेरे प्यारे भैया ! मेरे कर्मों ने मेरी यह अवदशा की है । तुम्हारे भानजे तड़प रहे हैं, रोटी का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं हो रहा है । तुम तो बहुत दरियादिल हो । गरीब के हमदर्द हो । दुःखी के आंसू पोंछनेवाले हो । आज तुम्हारी यह बहन निराधार बन गयी है, तो अपनी दुःखी बहन की सहायता के लिए अवश्य आना । अब तो तुम्हारे सिवा मेरा कोई आसरा नहीं है ।' इस प्रकार बहन ने पत्र लिखा है । परन्तु यह पत्र भाई के पास पहुँचने से पहले भाभी के हाथों लग गया । भाभी ने पत्र पढ़कर रद्दी में फेंक दिया । उसने मद में आकर पत्र फाड़ दिया, क्योंकि उसे पता नहीं कि धन के मद में तुमने अपनी नन्द का हृदय फाड़ डाला है । भाई का प्रत्युत्तर न आने पर बहन ने दूसरे पत्र लिखा और वह भी भाभी के हाथ लगा । भाभी ने दूसरा पत्र भी फाड़ दिया ।

इस तरफ बहन के छोटे-छोटे बच्चें अपनी माँ से कहते हैं कि - "माँ ! हमारे स्कूल के सारे बच्चें छुट्टियों में अपने मामा के घर जानेवाले हैं, तो क्या हम सब अपने मामा के घर नहीं जायेंगे ?" माता बेचारी क्या बोलती ? उसकी आँखों से तो सावन... भादो बरस रहा है । अहो ! मैंने भाई को दो-दो बार पत्र लिखे, परन्तु भाई - कुछ उत्तर ही नहीं दे रहा है । परन्तु यहाँ तो भाई को कहाँ पता है कि बहन के पत्र आये हैं और श्रीमतीजी ने फाड़कर फेंक दिये हैं । भाभी मन ही मन समझती है कि-'वह दुर्भागी, पुण्यहीन ननद मेरे घर आयेगी तो मेरा घर (नष्ट) कंगाल हो जायेगा ।' इस ओर भानजे अपने मामा के घर जाने के लिए रो रहे हैं । तभी पास घर से उनकी चाची निकली और कटुवाणी के काँटे चुभाने लगी । ज्ञानी कहते हैं कि-"छाती में गोली लगी होगी तो ऑपरेशन द्वारा निकाला जा सकता है और उसके घाव भी कुछ समय भर जायेंगे परन्तु वचन के घाव भरते नहीं है । ढाई इंच की जिह्वा पाँच फूट के मनुष्य का कभी-कभी तो प्राण भी हर लेती है ।"

❑ चाची ने मारे तानें :

बच्चों का बोलना और चाची का निकलता । चाची ने सब सुन लिया । फिर कहने लगी - "बच्चों ! तुम लोग पृथ्वी पर सिर फोड़ेंगे तब भी तुम्हारे मामा-मामी तुम्हें बुलाये या खिलाये ऐसे नहीं है । ऐसे मामा-मामी को याद कर तुम किसलिए रो रहे हो ?" ये शब्द झोंपड़ी में बैठी बहन ने सुने । बहन को अपने भाई के प्रति बहुत प्रेम होता है, इसलिए वह सब कुछ सह सकती है, मगर भाई के विषय में कटुवचन नहीं सुन सकती है । अतः बहन बाहर निकली और कहने लगी - "भाभी ! आप मेरे भाई को ऐसे-वैसे शब्द मत बोलिए । मेरा भाई तो बहुत दयालु और दरियादिल है, वह अवश्य हमें बुलायेंगे और अपने भानजों को

सँभालेंगे ।'' जेठानी के शब्द सुनकर बहन के हृदय को बहुत ठेस लगी थी । बहन तीसरा पत्र लिखती है ।

''अपनी बहन के दुःख की सुन यह बात, दुःख तो आ गया हुएँ निराधार आज,
जेठानी ताने मारती, कौन तुझे बुलाये आज, भानजे तड़पते, सहायता करो आज ।''

'हे मेरे प्यारे भैया ! तुम्हें दो-दो पत्र लिखे, परन्तु तुम्हारा कोई उत्तर नहीं है । मुझे तुम्हारी साड़ी या कोई वस्तु नहीं चाहिए । मात्र मुझे तुम्हारा मीठा स्नेह और आदर चाहिए । यहाँ मेरी जेठानी मुझे तानें मारती है के तेरा भाई तुझे कहाँ बुलाता है ? इसलिए मेरा यह पत्र पढ़कर तुम मुझे अवश्य बुलाना और मेरे जीवनभर के ताने मिटाना । पाप के उदय से मेरी यह दशा हुई है । मेरी यह करुण कहानी सुनकर मेरे भाई हमें अवश्य बुलाना ।' बहन ने पत्र लिखा । बच्चों ने कहा - ''लाओं माँ ! हम पत्र डाकख़ाने में डाल आते हैं ।'' बच्चें पत्र डालने जाते हैं, परन्तु पहुँच सकते नहीं हैं । अतः दो इंटें रखकर पत्र डालते हैं । बच्चों को श्रद्धा है कि यह पत्र पढ़कर मामा हमें अवश्य बुलायेगें । यहाँ मामा तो अनेक बैठे हैं । धर्मीष्ठ आत्मा को अपनी पत्नी के अतिरिक्त संसार की सभी बहनें माता और बहन समान हैं । तो उनके सन्तानों के आप मामा हुए कि नहीं ? संत-सतीजियों के भी संसार के जो भाई हैं वे बड़े पिता समान और छोटे भाई समान है ।

❑ बहन का पत्र देखकर आंसुओं से छलकी भाई की आँखें :

बहन का पत्र पहुँच उस समय भाई घर से बाहर निकल रहा है तभी पोस्टमेन आया । उसे पूछता है कि ''भाई ! पत्र है ?'' डाकिये ने कवर दिया । भाई ने बहन के हस्ताक्षर पहचान लिये । पत्र पढ़ते समय आँखों से आंसू गिरने लगे । 'अहो ! मेरी बहन पहले कैसी धनवान और सुखी थी ! उसके धन से उसने न जाने कितने ही गरीबों के आंसू पोंछे हैं । एक स्वभाव के कारण देवरानी-जेठानी के बीच झगड़ा हुआ, इसलिए अलग हुए । व्यापार में बहुत नुकसान हुआ और अन्त में काल ने मेरे जीजाजी को भी छीन लिया । अहो ! मेरी बहन की आज यह दशा है ? मैं कैसा हतभागी कि मैंने अपनी (सगी) बहन के समाचार तक न लिये ? भाई घर में गया । जाकर बहन के घर जाने की तैयारी करता है । तब उसकी पत्नी पूछती है - ''कहाँ जाने की तैयारी कर रहे है ?'' भाई ने कहा - ''बहन का पत्र आया हैं । वह बहुत दुःखी है । भानजें मामा के घर आने के लिए रो रहे हैं, इसलिए मैं उन्हें लेने जाता हूँ ।'' यह सुनकर जैसे गुफा में से सिंह और बाघ चिल्लाते है इस प्रकार भाभी साहिबा चिल्ला उठी । ''किस की आज्ञा से जा रहे हो ?'' भाई ने कहा - ''मुझे किस की आज्ञा लेनी है ?'' भाभी ने कहा - ''घर की मालकिन मैं हूँ ।'' बात भी

सही है । आज अधिकतर घर बहनों के नाम से लिखे गये हैं । भाभी की बात सुनकर भाई ने कहा - "तुम कुछ मत बोलो । कर्म की दशा ही निराली है । तुम हमारे पुराने दिन याद कर । बहन - बहनोई ने हमारे लिए बहुत कुछ बलिदान दिया है । उनका तो महान उपकार है । फूल जैसे बच्चें क्या ले जायेंगे ?"

यह तो ४० वर्ष पहले ही कहानी है । आज तो अनेक घरों में यह स्थिति देखी जा सकती है । अनेक बहनें रोती हैं कि मैं भाई के होते हुए भी भाई के बिना अनाथ हूँ । आपकी बहन आपका बंगला या गहनें नहीं ले जायेगी, इसलिए बहन को प्रेम से बुलाना, निराधार बहनों के आंसू पोंछना । पत्नी का हुक्म होते ही पति साहब तो खड़े रह गये । भाई तो बेचारे पत्नी के हुक्म के आगे कुछ बोल न सके । भाई बाज़ार में जाकर आंसू गिराता है और मन ही मन परेशान होता हैर कि अब क्या करूँ ?

❑ आशा से निकले बहन-भानजों का लौटना :

इस तरफ बहन ने बच्चें बहुत रो रहे हैं । "हमें तो मामा के घर जाना हैं । सब लोग जाते है तो हम क्यों नहीं जा सकते ?" बच्चों ने (हठ) ज़िद्द न छोड़ी तो माता ने कहा - "रोहिए मत, मैं तुम्हें ले जाऊँगी ।" भाई का गाँव पाँच मील दूर था । अतः उसने सोचा कि-'क्यों न मैं बच्चों को लेकर अपने भाई के घर जाऊँ ।' बहन बच्चों को लेकर जाती है । भाभी ने दूर से देखा कि मेरे ननद दो भानजों को लेकर आ रही है, तो घर के द्वार बन्द कर दिये । द्वार बन्द होते देख बहन की आँखों से आंसू आ गये । अहो कर्मराजा ! क्या तुम्हारे खेल है ? क्या तुम्हारी विचित्रता है ? सुख के समय में प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाली भाभी आज मुझे देखकर द्वार बन्द कर देती है । माता ने अपने बच्चों से कहा - "बच्चों ! तुम्हारी मामी की मर्ज़ी नहीं है कि हम उनके घर जाय । इसलिए हमें जाना नहीं है । हम अपने घर जाते हैं ।" और रोते बच्चों को लेकर माता लौट आयी । झोंपड़ी बन्द कर फूट-फूटकर रोने लगी ।

दिनों और महीनों बीतते गये । इस ओर भाई दुकान में बैठे हैं । उसके कर्म की दशा बदलती है । भाई बैठा है तभी वहाँ एक पत्र आया कि व्यापार में भारी नुकसान हुआ है । परदेस में कोठी नष्ट हो गयी है । भाई तो यह पत्र लेकर घर आया । उसने पत्नी से कहा - "देख ! तुमने मेरी बहन और भानजों को घर के आगे से ही लौटा दिये इसीका फल आज मिल गया है । रूई में लिपटी आग छिपी नहीं रहती फिर पाप कहाँ से छिपा रहता ! व्यापार में भारी नुकसान हुआ है । कोठी नष्ट हो गयी है । पैसे भरने के लिए अव कोई साधन नहीं है । किसी का हृदय जलाए तो हमारा भी जलता है । वहन के निःश्वास हमें लगे हैं" और भाई दुःख के मारे वेहोश गिर पड़े ।"

है "ओ मेरी प्यारी बहना ! तेरा भाई दुर्भागी और पुण्यहीन है। मेरी लाखों की संपत्ति लूट गयी है। अब जीवन का अन्त किये बिना और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए जाते-जाते तुझे अन्तिम आशीर्वाद देता हूँ कि-"तेरा भाई तो अब इस दुनिया से बिदा ले रहा है, परन्तु मेरे भानजों को सँभालना और सुखी रहना।' इतना कहकर विष का प्याला पीने जाता है। तभी बहन उसके हाथों से प्याला ले लेती है। भाई के तो होंश उड़ गये हैं। अब इज्ज़त बचाना भी मुश्किल है।

बहन कपड़े में बाँधकर संपत्ति (रुपयों) से भरा घड़ा लेकर आयी है, उसे भाई को देती है और कहती है - "मेरे भाई ! तुम इसे ले लो और अपनी आबरू बचा लो। इस बहन के होते हुए अपने भाई को मरने नहीं देगी।" बहन की कितनी उदारता और उसकी कितनी भव्य भावना ? जिस बहन और भानजों को आते देख भाभी ने घर के दरवाज़े बन्ध किये थे, उसी बहन ने उन सारी बातों को भुलकर बस यही भावना रखती है कि अपने दुःखी भाभी को किसी भी प्रकार सहायता करनी चाहिए। बहन ने अपने लिए कुछ न रखते हुए संपत्ति से भरा पूरा घड़ा भाई को अर्पित किया।

❑ बहन ने मात्र धन ही नहीं जीवन भी दिया :

भाई पूछता है - "बहन ! यह क्या ?" तब बहन ने कहा - "तुम्हारे जीजाजी ने ज़मीन में इसे छिपाकर रखा होगा। परन्तु जबतक पाप का उदय हो तबतक रत्न भी कंकड़ बन जाते हैं। अब मेरे पुण्य का उदय हुआ होगा और तुम्हारे भानजों ने कहा कि-'मामा ने हमें कुछ न दिया ?' तब उनको समझाने के लिए मैंने कहा कि-'तुमने (मामा ने) हमें बहुत कुछ दिया है और उसे ज़मीन में गाड़ दिया है।' ऐसा कहकर ज़मीन खोदी तो उसमें से यह घड़ा मिला और तभी भाई ! तुम्हारी इस दशा के समाचार मिले तो इसे लेकर तुम्हारे पास आयी हूँ। तुम इसे ले लो और अपनी जाती इज्ज़त और कोठी को बचा लो।" भाई को लेते हुए दुःख तो बहुत है कि - 'मैंने तो अपनी बहन को मधुर स्नेह और आदर-सत्कार भी नहीं दिया है, फिर भी आज उसने अपने शुद्धभाव से अपनी सारी जायदाद मुझे देकर दुःख में सहायता करने आयी।' यह दिन 'भाई-दूज' का था। धन्य है ऐसी बहन को ! भाई ने संपत्ति लेकर अपनी इज्ज़त बचायी। भाई ने अपनी पत्नी से कहा - "देखा ! इस बहन ने मुझे क्या दिया ? मात्र धन ही नहीं, स्वयं मुझे मृत्यु के मुख से बचाया है। इसीका नाम हैं 'भाई-दूज।'" दोनों भाई-बहन अब सुखपूर्वक जीने लगे। भाभी ने बहन को तिरस्कृत किया था, फिर भी बहन को भाई के प्रति कैसा प्रेम है ! सभी ने आदर्श जीवन जीकर आत्मकल्याण किया। अधिक भाव अवसर आने पर।

ज्ञानपंचमी

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

आज 'ज्ञानपंचमी' का पवित्र दिन है । भगवान ने 'दशवैकालिक सूत्र' में फरमाया है कि - *"पढमं नाणं तओ दया ।"* जीव ने ज्ञान प्राप्त किया होगा तो उसे जीव अजीव का ज्ञान होगा । जीव-अजीव का ज्ञान होगा तो जीवों की दया पाल सकेगा, परन्तु जिसमें ज्ञान नहीं है वह दया किसकी पालेगा ? हजारो सूर्य के प्रकाश से अधिक ज्ञान का सूर्य महा तेजस्वी है । सूर्य का प्रकाश तो दिन में होता है, जबकि ज्ञान तो रात और दिन सदाकाल प्रकाशित रहता है । ज्ञान से अज्ञान का अन्धकार दूर होता है । विभाव में जानेवाली आत्मा को स्व-भाव में स्थिर करनेवाला कोई हो तो वह है ज्ञान । ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है । आपके कॉलेज का ज्ञान, व्यापार का ज्ञान यहीं रह जायेगा, परन्तु आत्मा का ज्ञान तो परभव में भी साथ जाता है । ज्ञान मिथ्यात्व को हटाता है । द्रव्य अन्धकार जितना आत्मा का अहित नहीं करता उतना आत्मा रहे भाव अन्धकाररूपी अज्ञान आत्मा का अहित करता है । ज्ञान के बिना वस्तु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता नहीं है । जिसके अज्ञान का अन्धकार नष्ट नहीं हुआ है ऐसी आत्माएँ अपना अहित करनेवाली हैं । सारी जिन्दगी अशुभकर्म करने में बीता देती है । जब अन्तकाल नज़दीक आता है तब उसे पछतावा होता है । जीवन पर्यन्त किये गया पाप उसे याद आते हैं । 'अहो प्रभु ! मैंने जीवन में कोई सत्कार्य किया ही नहीं है । सच्चे मुक्ताफल को छोड़कर कल्चर में मोहित हुआ, मणि पाने जाते हुए फणीधर को भी मिला । न खानेवाला खाया, परन्तु गम न खाया । बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ भी प्राप्त की मगर मनुष्यभव की ऊँचे से ऊँची डिग्री प्राप्त कर मुझे क्या करना है यह ज्ञान न रखा । सारा जीवन पराये के दोष देखे, मगर स्वदोष न देखे । फिर बाद में पछताने से क्या फायदा ?' ज्ञानी कहते हैं कि-"जितना आयुष शेष है उतने में आप अपनी बिगड़ी बाजी को सुधार लीजिए ।"

भगवान महावीर का हमें पवित्र सन्देश है कि-"आत्माओं ! आप मनुष्यजन्म प्राप्त कर अपने हृदय में ज्ञान का दीपक जलाइए ।" ज्ञान का दीपक जलाकर हमारे आध्यात्मिक जीवन का मार्ग सरल बनाना है, क्योंकि ज्ञानरूपी मशाल नहीं होगी तो जीवन की अन्धेरी रात में आगे बढ़ पायेंगे नहीं । अज्ञान अन्धकार स्वरूप है । जबकि ज्ञान प्रकाश स्वरूप है । आप प्रकाश करने के लिए लालटेन जलाते हो, तो उसमें लालटेन, बाती, मिट्टी का तेल (कैरोसीन), दीयासलाई सब चाहिए । लाइट करने के

लिए बल्ब, स्वीच, पावर आदि की आवश्यकता होती है तब प्रकाश मिलता है। जबकि ज्ञान ऐसा प्रकाश है कि उसे तेल या बाती की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान स्वतः प्रकाशमान है। उसे अन्य प्रकाश की जरूरत नहीं है। ज्ञानी का प्रकाश तो सूर्य के प्रकाश से भी श्रेष्ठ है। सूर्य तो आँखोंवालों को ही प्रकाश देता है, जबकि ज्ञान आँखोवाले को ही नहीं अपितु आँखहीन (अन्धे) को भी प्रकाश देता है।

एक बार एक अन्ध-यात्री अन्धेरी रात में लालटेन लेकर रास्ते से गुजर रहा था। सामने दो चार मसखरे अल्लड युवक आये और मजाक में कहने लगे - ''सूरदास ! आप तो आँखों से देखते नहीं है फिर भी लालटेन लेकर क्यों निकले हो ?'' सूरदास ने उत्तर दिया - ''बात सही है भाई ! मैं तो आँखों से अन्ध हूँ, परन्तु तुम्हारे जैसे, जो आँखों से देखते हैं, वे भूल से अन्धेरे में मुझसे टकरा न जाय इसलिए लालटेन लेकर निकला हूँ।'' आँख के अन्धे को तो संसार सारा देख सकता हैं। परन्तु ज्ञान के अन्धेपन को तो ज्ञानी ही देख सकते हैं। यह अन्धेरा जिसे हैं, वे अन्ध होने पर भी स्वयं अपने को देखता मानते हैं और देखनेवाले को अन्धे। वे स्वयं तो दुर्गति के गड्ढे में गिरते हैं, परन्तु जो उसके साथ टकराते है उसे भी दुर्गति में गिरा देते है, अतः ज्ञान पाने की बहुत आवश्यकता है।

आज हमारे जैन समाज में दिन-ब-दिन ज्ञान का अभाव बढ़ता जा रहा है। और नहीं तो आप इतना तो अवश्य कीजिएगा कि आपके बच्चें सामायिक, प्रतिक्रमण, छकाय के बोल, नौ तत्त्व सीखे बिना न रहे। इतना ज्ञान तो अवश्य दीजिएगा। जैसे आप बच्चों को स्कूल और कॉलेजों में पढ़ने में जितना ध्यान रखते हो, उसे भी अधिक ध्यान जैनशाला में भेजने का रखिए। अगर आपके बच्चों को धर्म का ज्ञान प्राप्त होगा तो आपको सुख से रहने देंगे, अन्यथा अगर ज्ञान नहीं होगा तो आपके साथ प्रेम से नहीं रह सकेंगे। अतः सन्तानों को ज्ञान देने की बहुत सावधानी रखिए। ज्ञान तो आँख-समान है। आप कहते हैं न कि-**"आँख बिना अन्धेरा।"** - संसार में आँख है तो सब कुछ है। आँख की शर्म लगती है। आँख गई उसकी शर्म गई। अगर आपको द्रव्य-आँख के बिना भी इतना दुःख होता है तो फिर भाव-आँख - ज्ञान के बिना कितना दुःख होना चाहिए ? सुभाषितकार भी कहते हैं कि - *"ज्ञानं जगल्लोचनम्"* - ज्ञान दुनिया की आँख है। हमारे जैन शास्त्रों में 'बृहद्कल्पभाष्य' में भी कहा है कि *"सूयं तइयं चक्खू"* सूत्र ज्ञान तीसरा चक्षु है। दो नेत्र तो प्रत्येक मनुष्य के पास होते हैं, परन्तु ज्ञान तीसरा नेत्र है। ज्ञान के द्वारा जीव संसार के स्वरूप को समझ सकता है। शुभाशुभ कर्मों का बन्धन किस प्रकार होता है और किस प्रकार वे बन्धन टूटते हैं, यह बात ज्ञान द्वारा समझी जा सकती है। परन्तु जीवात्मा ज्ञान के अभाव में अनन्तकाल से दुःखमय संसार में भटक रहा है। उसे स्वप्न में भी सुख के दर्शन नहीं होते हैं। भगवान फरमाते हैं -

निकलता नहीं है । उसी प्रकार ज्ञान के बिना मन का मैल भी जाता नहीं है । कोयला वस्तुतः काला होता है, परन्तु आग में गिरते ही जलकर उसकी खाक सफेद (श्वेत) बन जाती है । उसी प्रकार हमारी आत्मा भी अगर ज्ञानसरोवर में सदैव स्नान करे तो उज्ज्वल बन जाय और जन्मों के फेरे टल जाय । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९ वे अध्ययन में कहा है कि - *"जहा सूई ससुत्ता पडियावि न विणस्सइ तहा जीवे ससुत्ते संसारे न विणस्सइ ।"* जिस प्रकार धागे से पिरोई सुई हाथ से गिर जाय तो भी खो जाती नहीं है, उसी प्रकार सम्यक्-ज्ञानरूपी धागे में पिरोई आत्मा चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण करता नहीं है, अतः जीवन में ज्ञान की बहुत आवश्यकता है । ज्ञान प्राप्त करने से जीव को क्या लाभ होता है ? *'नाण संपन्नयाएणं जीवे सव्व भावाहिगमं जणयइ ।'* ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य प्रत्येक पदार्थों के भाव को जानता है । *'णाणेय य मुणी होई ।'* - ज्ञान द्वारा मुनि हुआ जा सकता है और ज्ञान से सर्व पदार्थों को जान सकते है । अतः आगे बढ़कर कहते हैं कि - *"सव्वजगुज्जोय करं नाणं णाणेण नज्जए चरणं ।"* ज्ञान विश्व के सारे रहस्यों को जान सकता है । 'गीता' में कहा है कि - *'ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुते क्षणात्"* - ज्ञानरूपी अग्नि कर्मरूपी काष्ठों को क्षणभर में भस्म कर देता है । और *'नाणेण जाणइ भावं'* ज्ञान द्वारा आत्मा सर्व भावों को जान सकता है ।

पीयुषम् समुद्रोत्थं, रसायनमनौषधम् ।
अनन्या पक्षमैश्वर्य, ज्ञानमाहर्मनीषिणः ।।

ज्ञान समुद्र के बिना प्राप्त अमृत है, औषधहीन रसायन है और किसी को भी अपेक्षा न रखनेवाला ऐश्वर्य कहा है ।

❑ सच्चा ज्ञान कौन-सा ? :

जैसे विज्ञान में बताया गया है कि अमुक प्रकार के भोजन से अमुक विटामीन मिलता है । A. B. C. D. E. आदि विटामीन के भेद है । उसी प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से विटामीन E अर्थात् Education ऐज्युकेशन यानी ज्ञान । ज्ञान दो प्रकार के हैं : एक भौतिक-ज्ञान और दूसरा आत्मिक-ज्ञान । आज भौतिक-ज्ञान बहुत बढ़ा, परन्तु पढ़ाई के साथ समझदारी भी चाहिए और चुनाई (विकास) चाहिए, जो अभी तक नहीं आया है । विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करेगा और मात्र डिग्रियाँ का बोझ दिमाग में बढ़ायेगा, परन्तु उसका व्यवहार नहीं सुधरेगा तो वह सच्चा ज्ञान नहीं है । सच्चा ज्ञान तो तब कहा जायेगा कि जब जीवन (के भीतर) में उतारा जाय और आत्मा की अनुभूति करवाये । एक वार सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाय तो जड़-चेतन का भेद विज्ञान बन जाता है । यह ज्ञान मृत्युंजय बनने की शक्ति रखता है । आत्मा की स्वस्थता

खड़ी करता है । इस अमृत का पान करनेवाला अमर बन जाता है । ज्ञान अनमोल रसायन है । अनेक औषधों का मिश्रण करे तब रसायण बनता है । परन्तु ज्ञान-रसायन औषधहीन रसायन है । अन्य रसायन किसी रोग का नाश करे या न करे, मगर इस रसायन को जीवन में उतारेंगे तो भवरोगों का नाश हो जायेगा । ज्ञान का रसायन पीने से कायर से वीर और वीर से महावीर बनेंगे । ज्ञान का ऐसा ऐश्वर्य है कि जिसे कोई अपेक्षा नहीं है । ज्ञानियों को किसी का भय (ड़र) रहता नही है । ज्ञान को चोर-लूटेरे लूट सकते नही है । ज्ञान तो जैसे खर्च करोगे वैसे बढ़ता जाता है । ज्ञान जीवन में प्रकाश देनेवाला है ।

❑ ज्ञान और धन की तुलना :

धन मीरास (विरासत) में मिलता है मगर ज्ञान विरासत में नहीं मिलता है । उसकी तो स्वयं साधना करनी पड़ती है । धन को संभालना पड़ता है, तब ज्ञान ज्ञानी को सँभालता है, उसकी रक्षा करता है । धन पाप का उदय होने पर कभी-कभी खत्म हो जाता है, परन्तु ज्ञान कभी खत्म नहीं होता है । धन दुश्मन खड़े करता है, जबकि ज्ञान मित्र खड़े (पैदा) करता है । धन मर्यादित है, ज्ञान अमर्यादित है । धन में नशा है, ज्ञान में सदैव जागृति है । धन में प्रमाद है, ज्ञान में अप्रमाद है । आत्मिक-ज्ञान के पास भौतिक-ज्ञान की कोई कीमत नहीं है । आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा के अनन्त-माधुर्य का ज्ञान, अनन्त-सामर्थ्य का ज्ञान । यह ज्ञान रूप विटामीन जो अपनाता है, उसके जीवन का विकास होता है । ज्ञान की जो अशातना करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है ।

जीव ज्ञानावरणीय कर्म कितने प्रकार से बाँधता है ? छ प्रकार से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है : (१) नाण पडिणीयाए - ज्ञानी को गलत कहे । (२) नाण निन्हवणाए - ज्ञानी के उपकार को भूल जाय (३) नाण आसायणाए - ज्ञानी की अशातना करे । (४) नाण अंतरायेण - ज्ञान में उलझन करे । (५) नाण पउसेणं - ज्ञानी पर द्वेष करे । (६) नाण विसंवायणा जोगेणं - ज्ञानी के साथ झूठे (गलत) झगडे - बैर करे । ये छ प्रकार से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है । पाँच तथा दस प्रकार से भुगतता है ।

अनेक बार अज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान से क्या लाभ होता है ? इससे कुछ हमारा भला होता नही है । ज्ञानी दुःखी होते हैं और अज्ञानी भी दुःखी होते हैं । ज्ञानी भी मरते हैं और अज्ञानी भी मरते हैं । अतः हमें ज्ञान प्राप्त करने की उलझन में पड़ना (फँसना) नहीं है ऐसा कहनेवाला ज्ञान की अशातना करता है, इसलिए उसे ज्ञानावरणीय कर्म बँधते हैं । ज्ञानावरणीय कर्म बँधने के अनेक कारण है । कोई मनुष्य सम्यग्ज्ञानी होने पर भी उसे कोई कहे कि इसमे तो कोई ज्ञान नहीं है । वह क्या समझता है ? ऐसे तो मैंने अनेक ज्ञानी देख लिये हैं । ऐसा कहनेवाला ज्ञानी

की अशातना करता है । इस प्रकार ज्ञानीजनों का विनय न करे, उनकी अशातना करे, निन्दा करे, ईर्ष्या करे, उनका अपमान करे, उनके प्रति द्वेष, झूठे-झगडे-क्लेश करे, वह विशेष प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है । कोई उपार्जन करता हो, स्वाध्याय करता हो, उसे किसी न किसी प्रकार से बाधा खड़ी करे अथवा तो ज्ञान प्राप्त करने के साधन पुस्तक, ठवणी आदि को गिराने, ठोकर मारने या कहीं भी भटकते रखना आदि ज्ञान के साधनों की अशातना करने से जीव ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है, इसके कारण जीव को परभव में मूढ़ता, जड़ता, बहरापन, गूँगापन इत्यादि की भारी सज़ा भुगतनी पड़ती है । अतः ज्ञानावरणीय कर्म बँधे ऐसे कारणों से दूर रहिए । जो जीव ज्ञान की अशातना कर ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है उसकी कैसी अवदशा होती है यह एक दृष्टांत द्वारा समझाती हूँ ।

ज्ञानावरणीय कर्म बाँधनेवाले की अवदशा

एक धनवान सेठ थे । बहुत ही पुण्यवान और धर्मिष्ठ । पूर्व के प्रबल पुण्योदय से अपार (बेशुमार) लक्ष्मी मिली थी । इस सेठ के दो पुत्र भी थे । पुत्र भी बहुत सौन्दर्यवान थे । दोनो अभी किशोरावस्था में थे । एक दिन दोनो बालक खेलते हुए गाँव के बाहर बगीचे में चले गये । वहाँ जैनमुनि को देखा । सन्त को देखकर दोनों भाई चरणों में गिर पड़े । सन्त ने उन्हें उपदेश दिया । 'अहो ! भव्यजीवों ! यह संसार दावानल जैसा है । उनमें कही राचने जैसा नहीं है ।'' बच्चों के कोमल मानस पर सन्त के उपदेश का गहरा (सुन्दर) असर हुआ । 'अहो ! ये सारी संपत्ति जूठन जैसी है ? हमारे पूर्वज छोड़ गये, उसे हमारे पिताजी भोग रहे हैं । पिताजी वह जूठन हमें देंगे । इस प्रकार अनन्तकाल से ऐसी परंपरा चली आ रही है ।' वैराग्यवंत बने दोनों पुत्रों ने माता-पिता की आज्ञा लेकर दीक्षा ली ।

❑ बड़ा भाई होने पर भी छोटे भाई के ज्ञान का सम्मान :

दीक्षा लेकर दोनों भाइयों ने गुरुचरण में अपनी जीवननैया समर्पित कर दी । गुरु की आज्ञा अर्थात् प्राण है ऐसा समझते थे । कभी भी गुरुआज्ञा से विरुद्ध चलते न थे । गुरु के सानिध्य में रहकर कर्म का ज्ञानाभ्यास करने लगे, परन्तु बड़े भाई के गाढ़ ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है । वह बहुत मेहनत करता है, मगर ज्ञान प्राप्त कर सकता नहीं है । तब वे मुनि कठोर तपश्चर्या करने लगे । ज्ञान पढ़नेवाले सन्तों की सेवा करने लगे । भगवान ने अनेक प्रकार से संयम का पालन करने को कहा है । तो मैं भी इसी प्रकार समताभाव में रहकर ज्ञान पढ़नेवाले का विनय करूँगा, वैयावच्च करूँगा, तप कर अपने कर्मों को खपाऊँगा और छोटे भाई का ऐसा क्षयोपशम है कि गुरु थोडा समझाते, उसमें से भी बहुत कुछ ग्रहण कर लेता है । पूर्व (भूतकाल) में ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया है, उसने गुरु के पास रहकर

बहुत ज्ञान प्राप्त किया । उसकी योग्यता देखकर गुरु ने अलग-अलग विचरने की उसे आज्ञा दी । 'बहुत ज्ञान और शुद्ध संयम ।' अर्थात् सोने में सुहागा मिला है । यह सन्त जहाँ-जहाँ पधारते और उपदेश देते, वहाँ भक्तजनों की भरमार (भीड) रहती । सन्त की वाणी मनुष्यों के हृदय में जल्दी से उतर जाती । अनेक आत्माएँ धर्म प्राप्त कर लेते थे । अनेक व्रतधारी बन जाते और अनेक तो वैरागी बनकर दीक्षा ले लेते । उनके ५०० शिष्य हुए । जिसके पास ज्ञान हो उसके पास सभी आते हैं । बड़े भाई के पास ज्ञान नहीं है, अतः उनके पास कोई आता नहीं है । उनके पास एक भी शिष्य न था, फिर भी अजीब समभाव था । स्वयं बड़ा होने पर भी अपने छोटे भाई का खूब आदर करते । मन ही मन हर्षित होते हैं कि-'अहो ! मेरे भाई में कितना ज्ञान है ? उसके ज्ञान के प्रभाव से न जान कितने संसारी जीव पार उतर आये हैं ?' इस प्रकार वह अपने छोटे भाई की प्रशंसा करते ।

५०० शिष्यों के गुरु (छोटे भाई) अपने शिष्यों को बहुत ज्ञान पढ़ाते (सिखाते) हैं । संयम की साधना कराते है, शिष्यो के संशय का समाधान करते हैं तथा पूरे दिन सूत्र-सिद्धांत का पठन देते हैं । श्रावक भी गुरु के पास ज्ञान प्राप्त करने आते थे । कैसे भी सेवक चाहे कैसे भी कठिन प्रश्न पूछते मुनि उसे ठीक-ठीक समझकर समाधान करते । आनेवाला संतुष्ट होकर जाता । कोई भी मनुष्य या कोई भी शिष्य कभी भी प्रश्न पूछते तब भी गुरु कंटालते नहीं, जरा सा भी प्रमाद नहीं ।

❑ शिष्यों के बार-बार पूछने पर गुरु का ज्ञान के प्रति अभाव :

एक दिन हुआ ऐसा कि आहार (भोजन) कुछ अधिक और भारी खा लिया था । उस रात को गुरु को बहुत नींद आने लगी थी । आँख खोलना भी मुश्किल हो रहा था । गुरु ने कहा - "शिष्य ! आप स्वाध्याय कीजिए, मैं विश्राम करता हूँ ।" और गुरु सो गये । शिष्य स्वाध्याय करने बैठे । खूब मननपूर्वक स्वाध्याय करते थे । स्वाध्याय करते समय बीच में एक गाथा का पद विस्मृत हो गयी, बहुत याद किया, परन्तु किसी प्रकार याद नहीं आ रही थी । शिष्य परस्पर सोचते हैं कि-'गुरुजी से पूछते हैं । परन्तु गुरुजी तो सो गये हैं । अगर जगायेंगे तो अशातना होगी ।' तब दूसरे शिष्यों ने कहा - "हमारे गुरुदेव तो कृपासिंधु हैं । जब जाते हैं तब हमें कभी उन्होंने मना नहीं किया है । फिर उन्हें जगाने में क्या आपत्ति है ?" यह सोचकर गुरु को जगाया और वन्दन कर विनयपूर्वक शिष्यों ने पूछा - "गुरुदेव ! इस गाथा का पद याद नहीं आ रहा है । आपको शाता (याद) हो तो कृपया कहिए ।" गुरु ने बहुत शांतिपूर्वक शंका का समाधान किया और पुनः सो गये । कुछ समय बाद दूसरे शिष्य आये । इस प्रकार शिष्यों की पृच्छा जारी रही । दूसरी ओर नींद हराम हो गई । थोड़े-बहुत प्रश्नों का समाधान किया तबतक तो कुछ न हुआ, परन्तु यह तो बहुत बड़ा

समुदाय था और सामान्यतः ऐसा भी हो सकता है किसी दिन किसी को शंका हो जाय तो किसी को विस्मृति हो जाय, इसलिए सब कोई पूछने आने लगते, अतः बार-बार निद्रा में बाधा पहुँचने से गुरु को क्रोध आ गया - 'अरे ! सारे दिन का थका-पका अभी सोया हूँ तब भी शिष्य सुख से सोने नहीं दे रहे हैं ! मैंने ज्ञान पाया तब ये सभी मुझे परेशान कर रहे है न ? इससे बेहतर है मैं अज्ञान रहता । बड़े भाई ने ज्ञान नहीं पाया है, इसलिए उन्हें कोई परेशानी नहीं है । वे कैसे चैन से सोते हैं । बस, अब मुझे बोलना ही नहीं है और किसी को ज्ञान भी नहीं देना है ।' ऐसा निर्णय कर गुरु मौन हो गये ।

❑ क्रोध ने बुझाई ज्ञान की ज्योत :

इस गुरु ने कभी क्रोध नहीं किया है, इसलिए शिष्यों को भला क्या पता कि आज गुरु के मन में क्रोध आया है, इसलिए हम न जाय । भद्रिक भाव से शिष्य आते हैं, परन्तु गुरु किसी को उत्तर देते नहीं है । उपर से मौन धारण बैठे हैं । हृदय में बुरे परिणाम है कि बस, ज्ञान मिथ्या है । ज्ञान पर अभाव हुआ । वर्षों के पाये ज्ञान को क्रोध ने भस्म कर दिया । अन्त में सुबह हुई । शिष्यों ने पूछा - "गुरुदेव ! गौचरी के लिए कहाँ जाय ?" कोई पूछता है - "हम पढ़ाई करे, स्वाध्याय करे, वैयावच्च करे, क्या करे ?" परन्तु गुरु तो किसी को उत्तर देते नहीं हैं । शिष्य बहुत अनुनय करते है - "गुरुदेव ! हमारा क्या अपराध है ? हमसे जो भूल हुई हो उसे कृपया कहिए । हम क्षमा माँगते हैं । परन्तु आप आज अपने मुख से अभी रसधारा क्यों बहाते नहीं है ?" मगर बस...मौन...गुरु ने तो मौन छोडा ही नहीं । ग्यारह दिनों तक वे मौन रहे । इस प्रकार कषाय में जुड़ने से सम्यक्त्व वम कर बारहवें दिन क्रोध-कषाय की आलोचना किये बिना, आयुष्य पूर्ण होने पर खराब परिणाम में काल-धर्म को प्राप्त हुए ।

ग्यारह दिनों में वर्षों की साधना लूट गई । साधु की गति तो देवगति की होती है, परन्तु मिथ्यात्व आ गया और क्लुषित अध्यवसाय में मृत्यु होने से साधुत्व का होश खो बैठे । मरने के बाद राजा के घर राजकुमार रूप में जन्म लिया । संयम बहुत पाला था, इसलिए सुख तो बहुत मिला । सौन्दर्य तो देव जैसा था । परन्तु गूँगा था । दो-तीन वर्ष का हुआ मगर बोल नहीं सकता था । राजकुमार के लिए क्या कमी हो सकती है ? चाहे उतने वैद्य, डाक्टर बुलवाये, परन्तु कुमार को कोई बुलवा न सका । इस प्रकार करते हुए राजकुमार ग्यारह वर्ष का हुआ । और बारहवाँ वर्ष में प्रवेश करने की तैयारी है । उस दिन गाँव में अवधिज्ञानी सन्त पधारे ।

देवानुप्रियों ! ग्यारह दिनों तक क्रोध के कारण मौन रहे थे । ग्यारह दिनों उन्हों ने ज्ञान न दिया । उसका दुष्परिणाम यहाँ ग्यारह वर्षों तक भुगतने पड़े । देखिए, अब

कैसा योग मिलता है ? सारा गाँव सन्त की वाणी सुनने के लिए उमड़ पड़ा है । राजा भी अपने पुत्र-परिवार को साथ लेकर सन्त-दर्शन को आते हैं । देशना सुनने के बाद महाराज ने गुरु से पूछा - "हे प्रभु ! आप महान ज्ञानी हो । यह मेरा इकलौता पुत्र है । ग्यारह वर्ष का हुआ है । अनेक उपचार करवाये मगर वह कुछ बोल नहीं सकता है । तो यह इसके कौन-से कर्म के उदय से इसकी यह अवदशा हुई है ! कृपया आप कहिए ।" गुरु ने अवधिज्ञान का उपयोग रख देखा ।

❑ पूर्वभव सुनने पर राजकुमार को हुआ पश्चात्ताप :

अब कुमार का पूर्वजन्म कहते हैं कि - "हे राजन् ! आपका राजकुमार पूर्वजन्म में साधु था । ५०० शिष्यों के महान गुरु और विद्वान आचार्य थे । शुद्ध संयम का पालन किया था, इसलिए राजकुमार ने अनुपम सौन्दर्य पाया ।" और आगे जो घटना घटित हुई थी, इसे सुनाया । एक कषाय के कारण उसकी यह स्थिति हुई । कुमार गूँगा था, परन्तु कानों से सुन सकता था, अतः गुरु की बात बहुत ध्यानपूर्वक सुन रहा था । इसलिए यह बात सुनकर राजकुमार पछताने लगा । अहो ! मैंने ऐसा उत्तम चारित्र लेकर ऐसा किया ? उनके बड़े भाई तप, वैयावच्च द्वारा कर्म खपाकर मोक्ष में गये । यह भी गुरुमुख से सुना । अहो ! मेरे भाई ने तप कर वैयावच्च कर कर्म खपाकर ध्येय की सिद्धि कर गये और मैंने बहुत ज्ञान पाकर भी ऐसा किया ? भीतर हलचल मच जाने पर उसकी वाणी खुल गयी । गुरुदेव को वन्दन कर पूछता है - "गुरुदेव ! अब मैं क्या करूँ कि जिससे मुझे ज्ञान मिले ?" गुरु ने कहा - "कार्तिक महीने की पंचमी से लेकर प्रत्येक महीने की शुक्ल पक्ष की पंचमी को उपवास करना । ज्ञान के ५१ गुण हैं । जिससे ५१ लोगस्स का काउसग्ग, ५१ वंदणा और 'नमो नाणस्स ।' इस प्रकार २० मालाएँ गिनना । जिससे तुम्हारे ज्ञानावरणीय कर्म के आवरण खिस ने (हटने) लगेंगे और पूर्व का सारा ज्ञान प्रकट हो जायेगा ।"

गुरु के कहे अनुसार इस कुमार ने साढ़े पाँच वर्ष तक इस प्रकार साधना की । ज्ञान की भक्ति, ज्ञान और ज्ञानी का सम्मान किया, अतः उसके ज्ञानावरणीय कर्म का पर्दा हट गया । बहुत ज्ञान प्राप्त किया । पूर्वजन्म का प्राप्त सारा ज्ञान प्रकट हो गया । अब उसे राज्य के सुखों में आनन्द नहीं आ रहा है । सम्यग्दृष्टि होने पर वीतराग वचन पर श्रद्धा जगी और वह कह उठा कि-"सर्वज्ञ कथित ज्ञान तो तीनों कालों में समान ही रहता है । इस भव में पाया सम्यग्ज्ञान विफल (व्यर्थ) होता नहीं है । आत्मज्ञान परभव में भी साथ आता है । आपकी संपत्ति में परिवर्तन होगा, उसके मूल्यांकन में बढ़ावाया कमी होगी, परन्तु भगवन्त के वचन का मूल्यांकन कभी घटते-बढ़ते नहीं है । सर्वज्ञ का सिद्धांत अचल है । तीनों काल में संसार में सुख नहीं है ।" वरदत्तकुमार पिता की आज्ञा लेकर साधु वन गया और शुद्ध चारित्र निभाकर मोक्ष में गये ।

इस प्रसंग के बाद से 'ज्ञानपंचमी' की आराधना प्रारम्भ हुई है । आप ज्ञानपंचमी के दिन 'लाभपंचमी' का दिन मानते हैं । अर्थ के पूजारी तो अर्थ की ही उपासना करे न ? आप श्रमणोपासक हो । निरंतर उपासना तो धन की ही करते हो; अतः मुझे तो लगता है कि आपका नाम श्रमणोपासक के स्थान पर धनोपासक रखना चाहिए । (सब हँसते हैं ।) मेरे भाइयों और बहनों ! आज के दिन ज्ञान की खूब आराधना कीजिएगा ।

ज्ञान कभी बाहर से आता नहीं है और ज्ञान कोई बाहरी वस्तु भी नहीं है । जैसे मिसरी में मिठास का गुण है वह बाहर से आता नहीं है, उसी प्रकार ज्ञान आत्मा का गुण है । सद्गुरु ज्ञानावरणीय कर्म हटाने के उपाय हमें बताते हैं । कर्म के बन्धन काटकर, अन्धकार को टालकर जीवन में ज्ञान की रोशनी फैलानेवाले गुरु ही सच्चे गुरु हैं । अगर आपको भवसागर तैरने का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना हो तो सद्गुरु का समागम कीजिए । दीपक जलता होगा तो उसमें कुछ हो सकता नहीं है । उसी प्रकार ज्ञानी-गुरु ज्ञानदीप प्रकट कर (जला) सकते हैं ।

आज संसार में ज्ञान बहुत बढ़ गया है । और गुरु भी बहुत बढ़ गये हैं । स्कूलो और कॉलेजों में ज्ञान देनेवाले अध्यापकों को भी आप गुरु मानते हैं, मगर वे गुरु तो विविध विषयों का ज्ञान देते हैं और उस ज्ञान से विश्व विद्यालय की बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त होती हैं । अच्छी नौकरी मिलती है, उच्च पद मिलता है, परन्तु उस ज्ञान से मनुष्य सच्चा मनुष्य बन सकता नहीं है, आत्मविकास साध सकता नहीं है । आत्मशक्तियाँ जागृत हो सकती नहीं है, ऐसी अनेक विद्याओं को जानकर और विविध भाषाओं का ज्ञाता सच्चा ज्ञानी कहलाता नहीं है, क्योंकि शब्दज्ञान या भाषाओं के ज्ञान से आत्मा का कल्याण होता नहीं है । इतिहास, भूगोल, न्यायशास्त्र तथा अलंकारिक भाषा बोलने से या लिखने से कोई लाभ होता नहीं है । हाँ, विषय की जानकारी अवश्य मिलती है । मगर ज्ञान का फल विरति है, सदाचार है । उसकी प्राप्ति न हो तो वह ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं है । अभी तक इस संसार में जितने महान पुरुष बन गये उन्होंने सद्ज्ञान, सच्चारित्र से, कर्मों की निर्जरा कर मोक्षगति प्राप्त की है । एक संस्कृत कहावत है - *"सर्व पदा हस्तिपदे निमग्ना:"* - हाथी के पैर में सभी पैर समा जाते हैं, उसी प्रकार सदाचार में सारी पवित्रता और सारे गुणों का समावेश हो जाता है ।

देवानुप्रियों ! आज के ज्ञानदाता, ज्ञानार्थी, विद्यार्थी को विद्वान बना देते हैं । शिक्षक-बैरीस्टर, वकील, मैजिस्ट्रेट, इंजीनियर आदि पदवियाँ प्राप्त कराते हैं, परन्तु उसे सदाचारी बना सकते नहीं है । वह पुस्तक तोताज्ञान देता है, परन्तु आचरण करने का ज्ञान देते नहीं है । इसका कारण यही है कि खुद स्वयं उसका आचरण करते

नहीं है, तो फिर दूसरों के पास कैसे करवा सकते हैं ? आज जो ज्ञान दिया जाता है, वह ज्ञान नहीं वरन् एक प्रकार की शिक्षा है । वह ज्ञान भौतिक-सुख प्राप्त करने में सहायक बनता है । उन ज्ञानदाता शिक्षकों का चारित्र ऐसा शुद्ध होना चाहिए कि जो गूँगे शिक्षकों का कार्य करे । शिक्षक कुछ बोले नहीं, परन्तु उन्हें देखकर विद्यार्थी जागृत बन जाय । जो ज्ञान निर्बलों को सताने की, धन का गुलाम बनाने और भोग-विलास में डूबने की प्रेरणा दे, वह शिक्षा सच्ची नहीं है, फिर उसे ज्ञान कैसे कह सकते हैं ? आपको लगेगा कि स्कूल और कॉलेजों में दिये जानेवाले उच्च ज्ञान को भी जब ज्ञान न कहा जाय तो फिर ज्ञान किसे कहें ? संक्षेप में सच्चा ज्ञान यह है कि जो ज्ञान से मुक्ति प्राप्त हो । सच्ची विद्या तो वह है - *'सा विद्या या विमुक्तये ।'* जिस विद्या से मुक्ति मिलती है और जन्म-मरण के दुःखों से जीवों को मुक्ति (मोक्ष) मिलती है । सच्चा ज्ञान वस्तु के स्वरूप की पहचान करवा सकता है । सम्यग्दृष्टि प्राप्त होने से उसमें विवेक जागृत होती है और विवेक आने से वह आत्मा विषयों से विरक्त बनती है । शायद संभवतः घोर कर्मों के कारण उसे त्याग न सके, तो भी आसक्त बनता नहीं है, जैसे किसी मनुष्य को जेल में डाला हो तो वह जेल में रहता है, काम करता है, खाता है, पीता है, फिर भी उसके मन में ऐसी भावना रहती है कि कब इस जेल में से मुक्त हो जाऊँ । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा पूर्वकर्म के उदय से संसार का त्याग न कर सके, मगर उनके मन में निरन्तर ऐसी भावना रहती है कि कब संसार से मुक्त हो जाऊँ ।

बन्धुओं ! ऐसे भाव जगाये उसीका नाम है ज्ञान । ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? ज्ञान विनय से होता है । आज ज्ञान बढ़ा है, परन्तु विनय को तो निर्वासित कर दिया है । आपको किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना होगा तो विनय पहले चाहिए । संभवतः ज्ञानावरणीय कर्मों का अच्छा क्षयोपशम हुआ हो तो विनय के बिना ज्ञान मिल जाय तब भी वह लम्बे समय तक टिकता है । उसे प्राप्त करने के बाद कुछ समय में भूला दिया जाता है । आप गुरु के पास या बुजुर्गों के पास ज्ञान (लेने) के लिए जाओ तो पहले विनय करना चाहिए । जो शिष्य गुरु के वचन का उल्लंघन करता है, वह अविनीत शिष्य है । शिष्य चाहे कितना भी ज्ञानी हो, परन्तु अपने गुरु के आगे तो छोटा बालक है । जो शिष्य गुरु की आज्ञा में रहता है, वह गुरु चाहे कितने भी कठोर शब्द कहे तब भी समताभाव से सहता है और सदैव प्रसन्न रहकर गुरु की सेवा करता है, यही सच्चा ज्ञानी है । वह मुक्ति के योग्य है ।

एक सन्त के आश्रम में उनके अनेक विद्यार्थी शिष्य विद्याभ्यास के लिए रहते थे । अनेक शिष्य विद्याभ्यास कर गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपने घर चले गये । परन्तु एक शिष्य बारह वर्ष तक गुरु के आश्रम में रहा, परन्तु गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण न हुआ, अतः गुरु के हृदय में बहुत दुःख हुआ । उन्होंने शिष्य से कहा

- "तुम इतने वर्षों से मेरे पास रहे, परन्तु था-वैसा-का-वैसा ही रहा । तुमने न तो शास्त्र ज्ञान पाया या न तो कुछ कंठस्थ किया । तुम कबतक ऐसे रहोगे ? मुझे तुम्हारी बहुत चिन्ता हो रही है ।" तब शिष्य ने बहुत नम्रतापूर्वक कहा - "गुरुदेव ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए । मैं आपके पास इतने वर्षों तक रहने पर भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर सका नहीं हूँ । उसका मेरे हृदय में बहुत दुःख है, परन्तु वृद्धावस्था में सेवा करने के लिए किसी-न-किसी की आवश्यकता होगी न ! मैं आपका एक सेवक हूँ । ऐसा मानकर मुझे आपकी सेवा करने के लिए अपने पास रखिए । मुझ पर इतनी कृपा करे ।" शिष्य का विनय देखकर गुरु का हृदय पिघल गया और स्वयं मौन हो गये ।

इस प्रकार दिन बितते चले । यह शिष्य खूब प्रेम से गुरु की सेवा करने लगा । एक दिन गुरुजी स्नान करते थे तब शिष्य गुरु की पीठ मल-मलकर धो रहा था । धोते-धोते शिष्य के मुख से अचानक ऐसे शब्द निकल गये कि-'मन्दिर तो बहुत सुन्दर है, परन्तु उसमें भगवान तो दिखते नहीं हैं ।' गुरु ने यह वचन सुन लिये । उन्हें लगा कि यह शिष्य मुझ पर ऐसे शब्द कह रहा है । अतः क्रोधायमान होकर कहने लगे - "दुष्ट ! तुम मेरे आश्रम में रहकर मेरा ही अपमान करता है ? बस, अब तू मेरे आश्रम से चला जा ।" इतना कहकर शिष्य को गुरु ने आश्रम से बाहर निकाल दिया । परन्तु यह क्या ! शिष्य के मुख पर जरा भी दुःख की रेखाएँ न दिखी । पहले की तरह प्रसन्न वदन से आश्रम के बाहर निकल गया और आश्रम के पास एक झोंपडी बाँधकर रहने लगा । परन्तु दिन में कभी एक बार गुरु के दर्शन कर जाता था ।

❑ खड़े रहिए और पीछे देखिए :

एक दिन रोज के नियमानुसार गुरु के दर्शन करने शिष्य आया । तब गुरु तो किसी ग्रंथ के पठन में लीन थे । इस समय एक मक्खी खिड़की के द्वार पर रहे काच से बाहर का दृश्य देखकर काच के साथ बार-बार अपना सिर कूटती स्वयं अपने आप दुःखी हो रही थी । क्षणभर शिष्य गुरु के पीछे खड़ा रहकर बोला - "खड़े रहो और पीछे देखिए ।" गुरु अपने पीछे खड़े शिष्य के वचन सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और शिष्य के शब्द पर सोचने लगे कि-'यह शिष्य ऐसा किसलिए कह रहा है ?' क्षणभर मौन रहकर फिर शिष्य से पूछा - "तुम किसलिए बोले ?"

शिष्य ने कहा - "गुरुदेव ! यह मक्खी काच से बाहर जाने के लिए परेशान हो रही है और स्वयं अपना सिर काच के साथ कूटकर दुःखी हो रही है, परन्तु वह यह नहीं जानती कि यहाँ मेरे लिए जाने का मार्ग नहीं है । मैं जहाँ से आयी हूँ वहाँ से मुझे वापस लौट जाना चाहिए ।" शिष्य की बात सुनकर गुरुजी कहने लगे -

"वत्स ! मैं अभी तक भ्रम में था कि तुम इतने वर्षों तक यहाँ रहकर भी कुछ सीखे नहीं हो, परन्तु अब मुझे समझमें आता है कि तुमने जो कुछ सीखा है और जो ज्ञान प्राप्त किया है ऐसा ज्ञान अभी तक मेरा एक भी शिष्य प्राप्त नहीं कर सका है ।"

देवानुप्रियों ! आपको समझमें आता है कि इस शिष्य की बात में क्या रहस्य है ? वह शिष्य यह बताना चाहता था कि चाहे कितना भी ज्ञान प्राप्त करो, कितना भी स्वाध्याय करो, परन्तु जबतक बाह्य पदार्थों पर से दृष्टि उठाकर आत्मा की ओर दृष्टि नहीं करेंगे, स्वरूप में रमणता नहीं रखोगे, तबतक सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होनवाली नहीं है और कर्मों से मुक्ति मिलनेवाली नहीं है । अतः सद्ज्ञान-आत्मज्ञान को प्राप्त करे यही भावना । अधिक भाव अवसर आने पर ।

व्याख्यान - २८

उन्नति का मार्ग

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी भगवन्तों ने अनन्तकाल से संसार में भटकते जीवों को उन्नति का मार्ग बताया है । भगवन्त फरमाते हैं कि-"पशु-पक्षी, मनुष्य सभी गति तो करते हैं, परन्तु उन्नति तो कोई वीरल पुरुष ही करते है । आज भौतिकवाद का युग चल रहा है । व्यापारी कहते है कि हमने व्यापार में उन्नति की है । मशीनवाले कहते है हमने मशीनरी में उन्नति की है । मिले, फैक्टरियाँ और कारखानेवाले कहते है कि हमने भी उन्नति की है । प्रत्येक मनुष्य कहता है कि हमने अपने क्षेत्रमें उन्नति की है, विकास किया है, आगे बढ़े है ।

आज के युग में मनुष्य अनेक प्रकार के धन्धे कर रहा है । गेहूँ, बाजरा, तुवर, मूँग, दलहन (मोठ), चने इत्यादि अनाज व्यापारी बेचते थे, जबकि आज तो गेहूँ का, चने का, बाजरे का आटा बाजार में तैयार मिलता है । इसलिए बहनों को अनाज पीसाने जाने की खिटपीट दूर हो गई । अरे ! घर में रखनेवाली चक्की भी आ गयी । पहले के जमाने में अचार स्वयं बनाते थे, अभी भी बनाते हैं, परन्तु किसी को घर पर न बनाना हो तो अचार, पापड और चटनी सब तैयार मिलता है । मसालें स्वयं कूटने या पीसने पड़ते थे, इसके बजाय सभी प्रकार के मसालें तैयार मिलते हैं । कपड़े सीले हुए तैयार मिलते हैं । मुझे तो लगता है कि रोटी और सब्जी भी तैयार मिल जाय तो उसे भी लाकर खाने के लिए तैयार हो जायेंगे (हँसते हैं ।)

अहमदाबाद में एक बहन कहती थी कि अभी दाल बनानी न हो तो 'चन्द्रविलास' होटल से तैयार दाल ला देते है। 'चन्द्रविलास' की दाल भी बहुत स्वादिष्ट और खाने जैसी है। आटा-मसाले और दाल तैयार खाने लगे है, परन्तु आपको पता है कि उस आटे में कैसा सड़ा हुआ अनाज डाला होगा और न जाने कितने ही जीव पीस गये होंगे ? वह आपके पेट में जायेगा तो मन के परिणाम कैसे होंगे ? मसालों में से भी कैसे जन्तु निकलते हैं ? हमारे साधु को पतरे साफ करने के लिए चने का आटा लाना पड़ता है। ऐसा पूछकर लाये कि थैले का तैयार आटा तो नहीं है न ? घर का पीसाया हुआ आटा पूछकर लाते है, फिर भी उस आटे को फैलाकर उस पर कटोरा घुमाकर और चम्मच से हल्के हाथ से देखा जाय तो कभी-कभी सक्ष्म जन्तु दिखते है। उस तैयार थेले में आटे में जन्तु होते हैं ! ऐसा तैयार आटा और मसाला खाते समय सोचिएगा कि ऐसी तैयार चीजें खाते समय मेरे लिए परलोक में कर्म के ढेर खड़े हो जायेंगे। उन कर्मों को भुगतने की तैयारी आपकी है ?

भौतिक दृष्टि से ये सब उन्नति दिखती है, परन्तु आत्मा की दृष्टि से तो गति हैं। उन्नति तो उसे कहते है कि जहाँ जाने के बाद पुनः गति न करनी पड़े ! पहले के जमाने में अनेक विधवा और निराधार बहनें चक्की पीसकर, लोगों के घर पानी भरकर, मसालें कूटकर अपना निर्वाह करती थी। आज उनका आश्रय टूट गया है।

कुँए के किनारे गये और घर-घर में नल आ गये,
दमयंती के पति नल गये, मगर बहुतों के घरों में नल आ गये।

गेहूँ, बाजरा पीसने के लिए बहुतों के घरों में इलेक्ट्रिक चक्कियाँ आ गयी है। पहले पानी भरने के लिए कुँए और नदी, तालाव, में जाना पडता था, परन्तु आज तो नल खोलो और पानी पानी, पानी के एक बिन्दु में अनेक जीवों की हिंसा होती है, क्या इसे उन्नति कहेंगे ? यह उन्नति नहीं, पतन है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति को चाहता है। मनुष्य मात्र उन्नति के लिए, क्रांति-उत्क्रांति और विकास के लिए प्रयत्न करते है। आज सभी कह रहे है कि हम उन्नति की दिशा में आगे बढ़ रहे है। सचमुच विज्ञान ने भौतिक क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की है। दिन-प्रतिदिन विज्ञान आगे बढ़ रहा है। प्रतिदिन नई-नई खोजे हो रही है। करोडों रूपयों का खर्च कर संसार के राष्ट्र वैज्ञानिक स्पर्धाओं में एक-दूसरे को हराने के प्रयत्न करते है। मानव रॉकेट, उपग्रह और अंतरिक्ष वाहनों से आकाश में उड रहे है। सचमुच, सच्चे अर्थ में कहे तो आज के मनुष्य को जमीन पर चलना तो आता नहीं है और चन्द्रलोक में पहुँचने की वातें करते है। मनुष्य जमीन पर कहाँ खड़ा है और कहाँ उसके पैर है, उसका उसको ज्ञान नहीं है ? परन्तु वह चन्द्रलोक और मंगल ग्रह पर रहने का सोच रहा है। यह कितने आश्चर्य की वात है ?

विज्ञान की आँधी में मनुष्य अपना घर भूल जाता है । विकास और उन्नति के सच्चे मार्ग को भूलकर न जाने वह किस टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर जा रहा है और फिर समझता है कि उन्नति की ओर आगे बढ़ रहा है ! अब यह सोचना है और समझना है कि उन्नति का सच्चा मार्ग कौन-सा है ? अभ्युदय का राजमार्ग कौन-सा है ? मनुष्य को यह सोचने और समझने का सुअवसर मिला है । संसार के प्रत्येक प्राणियों को एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यंच पंचेन्द्रिय तक के पशुपक्षियों को यह विवेकशक्ति प्राप्त हुई नहीं है । मनुष्य का अहोभाग्य है कि उसे सोचने और समझने की अनुपम शक्ति प्राप्त हुई है । एकेन्द्रिय आदि प्राणी अकाम निर्जरा के कारण दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय बनते है और फिर उन्नति के पथ पर आते है । परन्तु उसकी यह उन्नति समझदारीपूर्वक नहीं है । उन्नति के लिए क्या करना चाहिए, इसे समझे बिना अकाम निर्जरा अथवा भवितव्यता के बल पर वह आगे बढ़ता है, परन्तु मनुष्य में सोचने की शक्ति अद्‌भुत है । जिसके कारण वह सोच-विचार, चिन्तन-मनन कर अपनी उन्नति का मार्ग प्रस्तुत कर सकता है । मनुष्य में कोई दान करे, कोई शीयल पाले, कोई तप करे, कोई यह सब करता है, इसकी अनुमोदना करता है । कोई अन्तःकरणपूर्वक मन में शुभ भावना करता है कि मैं यह सब कब करूँगा ? और समय आये तब कर लेता है, वही सच्ची उन्नति करता है । जैन हो उसके जीवन में दया भरपूर होती है । अरे ! कुछ मनुष्य ऐसे भी होते है कि जो जैन न हो, एक-दूसरे को कभी देखा भी न हो, फिर भी दूसरों के प्रति कितनी सहानुभूति बताते हैं ?

एक बार बड़े धनवान सेठ अपनी गाडी लेकर समुद्र के किनारे पर घुमने के लिए गये । उस समय एक सज्जन समुद्र के किनारे पर घुम रहा था और चारों ओर दृष्टि करता था, यह देखकर उस सेठ को मन ही मन लगा कि 'यह सज्जन दुःखी लगता है, और समुद्र में गिरकर आत्महत्या करना चाहता हो ऐसा लगता है, परन्तु मुझे देखकर संकोच अनुभव कर रहा है । मनुष्य मरने के लिए कब आयेगा ? किसी को मरना पसन्द नहीं है, परन्तु वह जब चारों ओर से दुःख से घिर जाता है, तब मरने का विचार करता है । तो मुझे उसे मरने नहीं देना चाहिए ।' ऐसा सोचकर सेठ रु. २५ हजार का चैक तथा अपना नाम-पता उस मनुष्य को देकर तुरन्त रवाना हो गये । तुम कौन हो ? तुझे क्या दुःख है ? ऐसा कुछ भी पूछने को खड़े न रहे । वह सज्जन धनवान थे । वे समुद्र के किनारे मरने नहीं, घुमने आये थे और घुमते हुए यह देख रहे थे कि-'अहो ! अभी समुद्र में ज्वार-भाटा तो उछल नहीं रहे है, पानी कैसा शांत है ? उसी प्रकार मेरे जीवन से विषय-विकार के मौजे (तरंग) शांत हो जाय, लोभ का कभी भी ज्वार न आये, तो मेरा जीवन कितना पवित्र बन जाय ?'

यह सज्जन ऐसे विचार में मग्न था । तभी उस दयालु सेठ ने उसकी गोद में रु. २५ हजार का चैक और अपने नाम-पता का कार्ड देकर चले गये । इसे लगा

कि न कोई पहचान, न कोई जानकारी या न कोई सूचना - फिर भी मुझे वे सज्जन प्रेमपूर्वक जब रुपये देकर गये हैं, तो मुझे ले लेने चाहिए, ऐसा मानकर वे अपने घर आये और उस सेठ के कार्ड को अपने टैबल के काँच के नीचे रख दिया । प्रतिदिन सुबह उठकर कार्ड के सामने देखकर वह सज्जन सोचता कि-'ओ दयालु ! ओ दाता ! क्या तुम्हारी दया और उदारता ! तुम्हारे जैसा मैं कब बनुँगा ?' यह मनुष्य धनवान तो था मगर कंजूस बहुत था । परन्तु इस सेठ का धन घर में जब से आया इनके जीवन में परिवर्तन आ गया । हो सके उतनी दुःखियों की सेवा करने लगे । मेरे बन्धुओं ! आप खा-पीकर मौज करते है, मगर कभी अपने पडौसी की खबर लेते है कि आपको क्या दुःख है ? और उसका दुःख कभी दूर करते है ? रोज उस सेठ का कार्ड देखते और उनके गुणों का चिन्तन करते है । इस प्रकार करते हुए लगभग दश वर्ष बीत गये । एक बार उसने वर्तमानपत्र में समाचार पढ़े कि इस नाम की कोठी डूब रही है । देखा तो जिसका कार्ड है वही सेठ है । अहो ! ये तो वही महान, पवित्र, दया की मूर्ति, प्रेम का मंदिर, मेरा भला करनेवाले सेठ है । मुझे २५ हजार रुपयों का चैक दिया तथा कार्ड दिया, परन्तु उन्हों ने यह न कहा कि तुझे जरूरत पड जाय तो मेरे घर आना । ऐसा लाखों का मालिक आज मुसीबत में आ गया है !

वह सज्जन सावधान हुआ और चैकबुक तथा सेठ का कार्ड लेकर पता पूछते हुए सेठ की कोठी पर आया । कोठी पर मुनीम उदास होकर बैठे है । कोठी डूबने की तैयारी में है, इसलिए सेठ कोठी पर आते भी नहीं है, वे घर पर है । तब वह सज्जन उस सेठ के घर जाते है । द्वार पर द्वारपाल खड़ा है । वह उन्हें अन्दर जाने से रोकता है और समझा कि यह कोई लेनदार है और सेठ अभी कर्जा चुका सकते नहीं है, और अगर वह सज्जन अन्दर जायेंगे तो सेठ को दुःख होगा, इसलिए जाने से मना करता है । तब उस सज्जन ने कहा - "भाई ! मैं इस सेठ के नाम का कार्ड लेकर आया हूँ; और मुझे उनका खास काम है । मुझे अन्दर जाने दो ।" तब पहेरेदार सेठ से जाकर पूछता है कि - "एक सज्जन आपके नाम का कार्ड लेकर आया है और आपसे मिलना चाहता है । उसे अन्दर आने दूँ ?" सेठ ने कहा - "ठीक है, आने दो ।" वह अन्दर जाकर सेठ को प्रणाम कर कहता है कि-"आपने दश वर्ष पहले मुझे समुद्र किनारे यह कार्ड और २५ हजार रुपयों का चैक दिया था और कहा था कि तुझे जरूरत पड जाय तो मेरे घर आना । तो सेठजी ! मैं आया हूँ ।" सेठ को लगा कि-'यह व्यक्ति मेरे पास सहायता-हेतु आया है । मैं उसे क्या दूँ ?'

सेठ ने कहा - "भाई ! तुम थोड़े देर से आये । मैंने तुमसे कहा था और तुम आये भी, परन्तु तुम्हें देने जैसा मेरे पास कुछ नहीं है । मुजे माफ करो ।" आनेवाले सज्जन ने कहा - "सेठ ! आपने तो मुझे वहुत दिया है । मेरे जीवन का उद्धार किया है । मैं ऐसा लोभी था कि चमडी टूटे पर दमडी न जाय । कभी किसी गरीब के

आंसू पोंछे नहीं है । मेरे हृदय में दया का एक बुन्द भी नहीं थी, परन्तु आपका धन मेरे घर मे आया, तब से मेरे हृदय में दया के झरने बहा दिये और मेरा जीवन परिवर्तन हो गया । ऐसे मशीन में अशुद्ध पदार्थ शुद्ध होकर बाहर निकलते हैं, मैले कपड़े मशीन में डालने से स्वच्छ होकर बाहर आते हैं, उसी प्रकार आपके जीवन में रही नीति के प्रभाव से मेरा जीवन पवित्र बन गया है । मैं आपके पास कुछ माँगने नहीं अपितु आपसे मिलने तथा आपके पवित्र दर्शन कर पावन बनने आया हूँ । परन्तु मैं आपसे एक बात पूछता हूँ कि मैं जब इस घर में प्रवेश कर रहा था, तब आपके हाथ में काँच का छोटा-सा प्याला था । आप उसे मुँह में लगाने की तैयारी में थे कि तभी मुझे देखकर उसे छुपा दिया, तो ऐसे करने का कोई कारण है ?" सेठ ने कहा - "भाई ! यह तुझे जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।" तब सज्जन ने कहा - "कृपया जो हो मुझे निःसंकोच कहिए । मैं इसे जाने बिना जानेवाला नहीं हूँ ।" और वह वहीं अड्डा जमाकर बैठ गया । बहुत पूछा गया तब सेठ ने उत्तर दिया - "भाई ! मैं अपने जीवन का अन्त करने के लिए हाथ में विष का प्याला लेकर उसे पीने के लिए बैठा था और तभी तुम आ गये ।" सज्जन ने कहा - "आपको इस प्रकार जीवन का अन्त भला क्यों करना पड़ रहा है ?" सेठ ने कहा - "भाई ! मैं अब दुनिया को अपना मुँह दिखाने लायक रहा नहीं हूँ । मुझे तो बाहर निकलते भी शरम आ रही है । मैंने आजतक किसी का हृदय दुखाया नहीं है ? जो मिला वह मैंने दिया है । परन्तु अब किसी को देने के लिए मेरे पास एक पैसा भी बचा नहीं है, इसलिए मैं बहुत परेशान हूँ ।"

आनेवाले सज्जन ने कहा - "सेठ ! आप क्यों परेशान हो रहे हैं ? मैं हूँ न आपके साथ ? आप सुखी थे तबतक तो मैं न आया, परन्तु रोज आपका कार्ड देखता था । आपका नाम तो मेरे हृदय में छप-सा गया था । परन्तु वर्तमानपत्र में आपके विषय में समाचार पढ़कर यहाँ आया हूँ ।" बन्धुओं ! आपके सगे-स्नेही देश में रहते हो, वे सुखी हो तब आप प्रेम से कभी-कभी पत्राचार करते रहे है और साथ में यह भी लिखते हैं कि आपको जो चाहिए मँगवाइएगा, परन्तु वही सज्जन जब मुसीबत में फँस जाय तब पत्र लिखते हैं ? या फिर बन्द कर देते है । जब सगे-स्नेही सुखी हो, तब उसके समाचार-खबर न लो तो चल सकता है, परन्तु दुःख के समय उससे मिले, समाचार पूछे तो उसका हृदय कितना आशीर्वाद देता ?

❑ निःस्वार्थ भाव से की गयी भक्ति का फल :

वह सज्जन कहने लगा - "सेठ ! बोलिए, आपको कितने रुपयों की आवश्यकता है ?" सेठ ने कहा - "भाई ! पाँच-पचास हजार से काम होनेवाला नहीं है ।" "सेठ ! आप कहिए, कितने रुपये हो जिससे आपकी परेशानी दूर हो जाय । आप

निःसंकोच कह दीजिए ।" सेठ ने कहा - "पचास लाख रुपये मिले तो मैं समाज में पुनः लिज्जत से खड़ा रह सकता हूँ ।" उस सज्जन ने तुरन्त रुपये पचास लाख का चैक लिख दिया । सेठ तो आश्चर्यचकित हो गये । यह क्या ? कितनी उदारता ? सेठ ने कहा - "भाई ! तुमने तो आज मुझे मरने से बचाया है । किसी मनुष्य को दुःख के समय देव अचानक सहायता कर दे और उसे जो आनन्द होता है, ऐसा ही आनन्द मुझे आज हो रहा है ।"

देवानुप्रियों ! अगर आपको ईश्वर ने कुछ दिया है तो कृपया उसे आप किसी को देना सीखिए । लाखों-कराड़ों की संपत्ति यही रह जायेगी । समय आने पर पैसे भी काम में नहीं आयेंगे । गाड़ी में आप यात्रा करते हो और उस समय हाथ में अंगूठी हो या जेब में दस-पंद्रह हजार रुपयों का थैला हो । खाने के लिए भोजन और पीने के लिए पानी नहीं रखा है और घनघोर जंगल में गाड़ी रुक जाय, तो रुपयों से भरा थैला काम में आयेगा ? वह रुपये आपकी भूख या प्यास नहीं मिटायेंगे, परन्तुर रूखी-सूखी रोटी का टुकड़ा तथा पानी का लोटा आपकी भूख-प्यास दूर करेंगे । इस भव में किसी को तृप्त करेंगे तो आपको कोई तृप्त करेगा । कहावत है कि **'जैसी करनी वैसी भरनी । जैसा बोओगे वैसा काटोगे ।'** आप पूर्वजन्म में उगाकर आये हो, तो इस जन्म में काट रहे हो, परन्तु इस जन्म में नहीं बोऐंगे तो दूसरे जन्म में कहाँ से काटेंगे ?

आत्मा को उन्नति के पथ पर ले जाने के लिए धर्म की आवश्यकता है । परभव में सुख के लिए भी धर्म की आवश्यकता है । खाना-पीना और मौज-मज़ा उड़ाना कोई उन्नति का मार्ग नहीं है, परन्तु धर्माराधना कर मोक्ष में जाने का पुरुषार्थ करना उन्नति का मार्ग है । गुलाब का फूल आप चाहे उस पौधे से तोड़कर सुघेंगे, तो सुगन्ध देगा और पैरों से कुचल डाले, धूल में मसल डाले या पानी में डालकर उबाल दीजिए, तब भी वह आपको सुगन्ध ही देता है, और दूसरों को क्या देते हो ? उसके बारे में सोचिएगा । भगवान ने फरमाया है कि-"लाखों-करोड़ों के दान करने से भी अधिक महत्त्व संयम का है ।" कहा कि -

"प्रतिमास करे दान जो लाख गाय का,
इससे श्रेष्ठ संयमी, चाहे भले ही कुछ न दे ।"

जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख गायों का दान देता है, उससे अधिक संयमी पुरुष चाहे भले ही कुछ न देते हो फिर भी वे श्रेष्ठ है, क्योंकि संयम पथ उन्नति का पथ है । यहाँ तो एकांत निर्जरा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और संसार में तो तो कदम-कदम पर पाप है, पाप के अतिरिक्त कुछ नहीं है । संयमी पुरुष कितने

जीवों को अभयदान देते हैं । पंचमहाव्रतधारी सन्त कितने सन्तोषी होते हैं ! आज का मिला तो कल की चिन्ता नहीं । आज न मिले तो भी आनन्द । जरा भी ग्लानि नहीं । भाव बढ़े और घटे, कोई चिन्ता नहीं । चाहे कितने भी अच्छे भोजन-पानी और वस्त्र मिले तब भी ज़रूरत से अधिक संग्रह करने की कोई वृत्ति नहीं । और आपको तो यदि थोडा मिल जाय तो और अधिक प्राप्त करने की भावना जगती है। *"जहा लाहो तहा लाहो लोहो पवड्ढइ ।"* - जैसे लाभ मिलता जाता है वैसे वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है ।

❑ **करोड़पति बनने की अभिलाषा :**

पहले के जमाने में एक धनवान सेठ थे । आज तो दो-पाँच लाख के मालिकों का तो कोई महत्त्व नहीं है । करोड़पति हो उसे धनवान कह सकते है । पैसों की कीमत थी । एक रुपये का अनाज मिलता था । एक रुपये का चार सेर घी मिलता था । दूध-सब्जी सब कुछ सस्ता मिलता था । उस समय सेठ के पास ९९ लाख और निन्यानवे हजार रुपये थे । उसे लगा कि अब एक हजार रुपये मिल जाय तो करोड़पति बन जाऊँ और मेरे बंगले पर करोड़पति की ध्वजा फहरेगी । उसे अब करोड़पति बनने की लालसा जगी । देखिए, पैसों का लोभ लगा, परन्तु मन ही मन लगा कि मैं श्रावक बना हूँ तो अब साधु बन जाऊँ और पंच परमेष्ठि में मेरा नम्बर लगाऊँ । ऐसी अभिलाषा होगी तो आत्मा उन्नति के पथ पर जायेगी और पैसे कमाने की लालसा पैदा होगी तो अवनति के पथ पर जायेगा । सेठ करोड़पति बनने के लिए बहुत मेहनत करता है, जिस प्रकार से उसने निन्यानवे लाख और निन्यानवे हजार रुपये प्राप्त कर लिये । अब मात्र एक हजार रुपये शेष थे । वह एक हजार पाने के लिए सदैव मेहनत करता है, परन्तु करोड़पति बनना उसके भाग्य में न था, अतः एक हजार पाने जाता और दो हजार खो देता, दो हजार पाने जाता तो पाँच हजार खो बैठता है, मगर करोड़पति बनने का सपना पूर्ण होता नहीं है । अनेक ज्योतिषियों के पास भाग्य देखा । मानताएँ (मनौती) रखी, परन्तु करोड की भूख न मिटी, तब उसे लगा कि अब उपाश्रय में जाऊँ और साधु से बात पूछु कि जिससे कुछ लाभ हो जाय ।

देवानुप्रियों ! यह सेठ जैन थे परन्तु कभी उपाश्रय में जाकर सन्त के दर्शन करते न थे । कभी दान देने का नाम भी लिया न था । गरीब को देखकर उसका हृदय कभी पिघला नहीं था । कंजूस तो ऐसा कि इतनी संपत्ति होने पर भी किसी को एक पैसा भी न दे । स्वयं भी सुख से न खाता । जैसे खेत में अनाज पकता तब पुतला बनाता है । बांस लगाकर उसे मनुष्य जैसे कपड़े पहनाता, उस पर मटका उलटा रखकर बाँध देता, इसलिए पक्षी उसे देखकर यही मान ले कि कोई मनुष्य खड़ा

है । उस डर से बेचारे पक्षी भाग जाते । कहने का आशय यह है पुतला स्वयं तो खाता नहीं और दूसरों को खाने देता नहीं है । यह सेठ भी ऐसे ही कंजूस थे । स्वयं न खाते तो भला दूसरों को कहाँ से देंगे ? जो देना चाहता है वह तो गरीबों को ढूँढ-ढूँढकर देता है और जिसे कुछ भी नहीं देना है वह दुःखी को देखे पर आँखों फेर लेता है ।

एक बार एक गरीब मनुष्य जमीन पर गिरे दाने चुन रहा था । उसी समय भोजराजा वहाँ से निकले और इस गरीब को दाने चुनते देखा । तब राजा को जरा सत्ता की मग़रूरी आ गई और कहने लगे - **"नीचे गिरे दाने खाय ऐसा न जनिए मात ।"** - "हे माता ! इस प्रकार नीचे गिरे दाने चुनकर खाता हो, उसे तो जन्म देना, न देना समान है । मेरे राज्य में ऐसा कौन दुःखी है कि उसे दाना-दाना चुनकर खाना पड़ता है ?" राजा के शब्द गरीब बच्चे ने सुने । उसने राजा के सामने कुछ छुपाया नहीं कि मैं राजा को सत्य बात कहुँगा तो मुझे सजा देंगे । उसने राजा से निःसंकोच होकर कहा - **"संपत्ति होने पर भी दुःख न हरे, ऐसा न जनिए मात ।"** - "जिसके पास लक्ष्मी है, वैभव है, हाथी, घोड़ों पर घुमते है, फिर भी किसी के दुःख मिटाते नहीं है, ऐसे पुत्र को जन्म देने से अच्छा है - हे माता ! तुम बाँझ रहो तो अच्छा है ।" ये शब्द सुनकर राजा तो घोड़े (पर) से उतर गये, अपनी भूल समझ गये और लड़के के पास जाकर कहने लगे - "बेटे ! तुम्हारी बात सही है । राजा जैसा राजा होकर मैंने तुम्हारी खबर न ली, तब तुझे भूमि पर गिरे दानें चुन-चुनकर खाने पड़ रहे न ?" उस लड़के को राजा ने निहाल कर दिया । यह था राजा भोज । विक्रम राजा परदुःखभंजन थे । अपना सुख खोकर भी दूसरों के दुःख दूर करते थे । आज विक्रम संवत चलता है, वे कैसा उच्च जीवन जीयें होंगे कि चोपड़े में उनका नाम लिखा जाता है !

जैन समाज में भी कैसे-कैसे दानवीर पैदा हो गये हैं ! खेमो-देदराणी, जगडूशाह, भामाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल । ऐसे रत्न भारत में अपना नाम अमर कर गये है । आज का मनुष्य पाँच-पच्चीस हजार रुपये उपाश्रय में दे तो शर्त करता है कि मेरे नाम की तख्ती रखनी होगी ! भाई ! आपका नाम पत्थर में लिखवाना है, तो मरकर पत्थर ही बनेंगे । इसलिए समझदारी से लक्ष्मी का मोह छोड़ दीजिए ।

❑ *आत्म-जागृति के लिए गुरु की आज्ञा :*

सेठ को लक्ष्मी बहुत प्रिय थी । एक पैसा भी सत्कार्य में खर्च करने का मन भी न होता, ज्योतिषी और भुवों के इलाज काम न आये, तब जैन साधु के पास आये और सन्त से कहने लगे - "महात्माजी ! मेरे पास इतने पैसे हैं । मैंने अनेक प्रयत्न किये मगर

अभी तक करोड़पति बन न सका, इसलिए कृपया कहिए कि कोई तंत्र या अन्य कोई उपाय है ?" तब सन्त ने कहा - "भाई ! करोड़पति बनने की मेहनत किसलिए करते हो ? जितना मिला उसमें सन्तोष मान, क्योंकि एक दिन यह सब छोड़ जाना है । मान लो कि तुम्हारे भाग्य में करोड़पति बनना लिखा होगा, तो बनेगा और तुम्हारे बंगले पर ध्वजा लहरायेगी । परन्तु वह ध्वजा तो यहीं रह जायेगी, इससे अच्छा है तुम आत्मा की ध्वजा लहरा !" सेठ ने कहा - "महात्माजी ! आप ऐसा क्यों कह रहे हो ?" तब सन्त ने कहा - "सेठ ! आपको लक्ष्मी का अत्यन्त मोह है परन्तु सप्ताह में किसी एक दिन कभी भी आपके घर पर बीजली गिर पडेगी ।" सेठ ने कहा - "कोई बात नहीं । मैं घर छोड़कर ओर कहीं रहने चला जाऊँगा ।" सन्त ने कहा - "सेठ ! आप अन्यत्र जायेंगे तो वहाँ भी मुसीबत तो आप पर है ही ।" यह सुनकर सेठ तो फीके पड़ गये और पत्ते की तरह काँपने लगे । उसे इतनी श्रद्धा थी कि ऐसे त्यागी सन्त ऐसा कभी नहीं कहेंगे, और कहेंगे तो ज्ञानी होंगे वहीं कह सकेंगे तथा वह भी भविष्य के परिणाम को ध्यान में रखकर कहेंगे ।

सेठ को अब मौत का डर लगने लगा, क्या मुझ पर बीजली गिरेगी और मैं मर जाऊँगा ? सेठ के करोड़पति बनने के सपने चूर-चूरकर हो गये । शरीर सूख गया और आँखों से आंसू बहने लगा । बहु चिन्तित हो गये, खाना-पीना भी छोड़ दिया और पूरे दिन रोते रहते हैं । बस, अब मैं मर जाऊँगा ? सेठानी पूछती - "है स्वामीनाथ ! आप किसलिए रो रहे हैं ?" तब सेठ ने कहा - "सप्ताह में किसी एक दिन हमारे घर पर बीजली गिरनेवाली है और मैं उसमें मर जानेवाला हूँ ।" सेठ को घर-कोठी कुछ याद नहीं आ रहा है । आँखों के सामन मात्र मौत की छाया ही दिखती है ।

सेठ अब तो कोठी पर भी नहीं जाते है । तब लोग उनके मुनीम से पूछते है कि "सेठ कोठी पर क्यों नहीं आते है ?" तब सेवकों ने कहा - "सेठ के घर पर बीजली गिरनेवाली है, इसलिए नहीं आ रहे हैं ।" यह बात सारे गाँव में फैल गई । तीन दिन तो चले गये । सेठ की मुसीबत की कोई सीमा नहीं है । सेठानी ने बहुत समझाकर सेठ को कोठी पर भेजा । सेठ आया तो सारे कर्मचारी और सेवक कोठी से नीचे उतर गये । सेठ ने पूछा - "अरे ! मैं आया और आप सब क्यों चलने लगे ?" तब सभी ने कहा - "सेठजी ! आप पर बीजली गिरनेवाली है, इसलिए जहाँ आप होंगे वहाँ हम नहीं और हम होंगे वहाँ आप नहीं । बीजली आप पर गिरेगी तो साथ में हम भी मारे जायेंगे ।" सेठ घर लौट आये । सेठ कोठी से उतरे कि सभी कर्मचारी गण कोठी में जा बैठे ।

❑ मृत्यु के भय से लोगों का चला जाना :

चारों ओर बात फैल गई कि सेठ पर बीजली गिरनेवाली है । गली के लोग सोचने लगे कि-'सेठ तो कहीं आते-जाते नहीं है, तो अब बीजली गिरेगी तो उनके बंगले पर गिरेगी और साथ में हमें भी नुकसान होगा । इससे अच्छा है कि हम माल-सामान-संपत्ति लेकर पाँच-छ दिन अपने सगे-सम्बन्धियों के घर चले जाय ।' इस प्रकार सारे मोहल्लेवालों ने यह निश्चय किया । पचास घरों का मोहल्ला बिलकुल खाली हो गया । गली के कुत्ते भी चले गये । पशुओं को भी शंका है कि ये लोग चले जायेंगे तो हमें खाने को कौन देगा ? इसलिए वे भी चले गये । पचास घरों का मोहल्ला बिलकुल खाली हो गया । मात्र अकेले सेठ का घर खुला था । सेठ का बंगला भूत-महल जैसा दिखने लगा । सेठ के परेशानी की कोई सीमा नहीं है ।

बन्धुओं ! आप जिस संसार को हलवे जैसा मीठा मान रहे हैं, परन्तु देखिएगा कि वह संसार मीठा है या कड़वा ? सेठानी को लगा - 'इतनी सारी लक्ष्मी है । अगर सेठ पर बीजली गिर जाय और सभी उसमें फँसकर रह गये तो इसे भोगेगा कौन ? इससे अच्छा है मैं दोनों बच्चों को लेकर अपने मायके चली जाऊँ ।' ऐसा सोचकर सेठ के पास आकर कहने लगी - "स्वामीनाथ ! आप पर बीजली गिरनेवाली है । भगवान करे और न गिरे, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं इन दोनों बच्चों को लेकर आप आज्ञा दे तो चार दिन अपने मायके जाऊँ । अगर हम सब मर जायेंगे तो लक्ष्मी कौन भोगेगा ?" सेठानी के इन शब्दो को सुनकर सेठ तो पैरों से लेकर सिर तक काँप उठे । अहो ! इस संसार की माया कैसी है ? मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? यह कौन कह रहा है ? "सेठानी ! कुछ तो विचार कीजिए ? चार-चार दिनों से मैं तडप रहा हूँ । सारा मोहल्ला खाली हो गया है । ऐसी स्थिति में आप अगर साथ होगी तो मुझे हिम्मत रहेगी । पत्नी तो पति की अर्धांगिनी है । सुख-दुःख में उसे साथ ही रहना चाहिए । और आप कहती है कि मैं अपने मायके चली जाऊँ, यह ठीक नहीं है ।" सेठानी ने कहा - "सब कुछ ठीक हो जायेगा । आप चिन्ता मत कीजिए । मैं तो अपने दोनों बच्चों को लेकर चली जाऊँगी और पाँच दिनों के बाद वापस आऊँगी ।" ऐसा कहकर सेठानी मायके चली गयी ।

सेठ ने सोचा - 'अहो ! मैं मानता था कि मेरी पत्नी सिर्फ मेरी ही है । उसे मुझ पर कितना प्रेम है ? जिसके लिए कालाबाजार करके लाखों रुपये इकट्ठे किये, जिसे अपना सर्वस्व माना, वही दुःख के समय मुझे अकेला छोड़कर चली गई । इस संसार में कोई किसी का नहीं है ।' सेठ अकेले पड गये । सोचा कि मुनीमजी को बुलाऊँ । फिर मुनीमों को बुलाया और कहा कि "आप चारों मुनीमों में से जो चार

दिन तक मेरे पास रहेगा उसे मैं प्रतिदिन एक लाख रुपये दुँगा ।" मुनिम ने कहा - "पच्चीस लाख दोंगे तब भी हमें आपके पास रहना नहीं है ।" अन्त में नौकरों से पूछते है मगर वे भी स्पष्ट मना करते हैं । वे भी कहते है कि - "जब आपकी श्रीमतीजी आपको छोड़कर चले गये, तो हम क्यों साथ रहे ? आपके पास रहने के लिए आये और बीजली गिर जाय, तो आपके साथ हम भी मर जायेंगे, फिर लाखों रुपयों से क्या लाभ ?

नौकरों और मुनीमों में से कोई सेठ के पास रहना चाहता नहीं है । अब सेठ बहुत परेशान हो गये, रोने लगे । अहो ! संसार कैसा विचित्र है ! और स्वार्थ से भरा है ! मैं मानता था कि ये सब मेरे हैं; परन्तु अब मुझे सन्त के वचन समझमें आ रहे है कि इस संसार मैं कौन किसका है ? इस स्वार्थ से भरे संसार में कोई किसी का नहीं है ।

कोई किसी का नहीं है रे (२) व्यर्थ में मरते सब मेरा मेरा करके,
यह मेरा पुत्र और है ये मेरा बाप, यह मेरी पत्नी और मेरी माता
स्वार्थ के बिना कोई प्रीत नहीं करता, नहीं कोई कभी किसी का...।

सेठ की तडपन बढने लगी । आँखों से सावन-भादो बरस रहा है । क्या किया जाय इसका पता नहीं है । मन परेशान हो रहा है, हृदय उलझ रहा है, उस समय क्या हुआ ?

❑ परोपकारी मित्र :

गाँव में सेठ का एक जुहार मित्र रहता था । उस सेठ को उसके साथ और कोई सम्बन्ध न था । मात्र मार्ग पर मिलने पर दोनों परस्पर जुहार करते थे, हाथ मिलाते । जुहार मित्र को पता चला कि मेरा मित्र सेठ किसी मुसीबत में है । जुहार मित्र धनवान नहीं बहुत गरीब था, परन्तु धर्म के स्वरूप को ठीक-ठीक समझा था । सुख में आगे-पीछे दौड़े और दुःख में सामने भी न देखे ऐसा स्वार्थी न था । उसे लगा कि जब सेठ इतनी मुसीबत में है तो मुझे जाना चाहिए । अतः अपनी पत्नी को बताकर जाने के लिए तैयार होता है, तब उसकी पत्नी उसे कहती है कि - "स्वामीनाथ ! उस सेठ की पत्नी तो मायके चली गई और फिर आप मुझे क्या विधवा बनाना चाहते है ?" जुहार-मित्र ने कहा - "मनुष्य-मनुष्य को दुःख में सहायता नहीं करेगा तो भला ओर कौन करेगा ? तुम चिन्ता मत करो, कुछ होनेवाला नहीं है ।" ऐसा कहकर जुहार-मित्र सेठ के घर जाने के लिए निकलता है । मार्ग में सब उसे कहते है कि - "भाई ! तुम किसलिए जा रहे हो ? सेठ तुम्हारा मित्र है तो तुझे इतने वर्षों में एक पैसा भी क्यों नहीं दिया ? तुम मत जाओ ।" अनेक लोग मित्र को लौट जाने को कहते हैं, परन्तु किसी की

❑ मृत्यु के भय से लोगों का चला जाना :

चारों ओर बात फैल गई कि सेठ पर बीजली गिरनेवाली है । गली के लोग सोचने लगे कि-'सेठ तो कहीं आते-जाते नहीं है, तो अब बीजली गिरेगी तो उनके बंगले पर गिरेगी और साथ में हमें भी नुकसान होगा । इससे अच्छा है कि हम माल-सामान-संपत्ति लेकर पाँच-छ दिन अपने सगे-सम्बन्धियों के घर चले जाय ।' इस प्रकार सारे मोहल्लेवालों ने यह निश्चय किया । पचास घरों का मोहल्ला बिलकुल खाली हो गया । गली के कुत्ते भी चले गये । पशुओं को भी शंका है कि ये लोग चले जायेंगे तो हमें खाने को कौन देगा ? इसलिए वे भी चले गये । पचास घरों का मोहल्ला बिलकुल खाली हो गया । मात्र अकेले सेठ का घर खुला था । सेठ का बंगला भूत-महल जैसा दिखने लगा । सेठ के परेशानी की कोई सीमा नहीं है ।

बन्धुओं ! आप जिस संसार को हलवे जैसा मीठा मान रहे हैं, परन्तु देखिएगा कि वह संसार मीठा है या कड़वा ? सेठानी को लगा - 'इतनी सारी लक्ष्मी है । अगर सेठ पर बीजली गिर जाय और सभी उसमें फँसकर रह गये तो इसे भोगेगा कौन ? इससे अच्छा है मैं दोनों बच्चों को लेकर अपने मायके चली जाऊँ ।' ऐसा सोचकर सेठ के पास आकर कहने लगी - "स्वामीनाथ ! आप पर बीजली गिरनेवाली है । भगवान करे और न गिरे, परन्तु मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं इन दोनों बच्चों को लेकर आप आज्ञा दे तो चार दिन अपने मायके जाऊँ । अगर हम सब मर जायेंगे तो लक्ष्मी कौन भोगेगा ?" सेठानी के इन शब्दो को सुनकर सेठ तो पैरों से लेकर सिर तक काँप उठे । अहो ! इस संसार की माया कैसी है ? मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? यह कौन कह रहा है ? "सेठानी ! कुछ तो विचार कीजिए ? चार-चार दिनों से मैं तडप रहा हूँ । सारा मोहल्ला खाली हो गया है । ऐसी स्थिति में आप अगर साथ होगी तो मुझे हिम्मत रहेगी । पत्नी तो पति की अर्धांगिनी है । सुख-दुःख में उसे साथ ही रहना चाहिए । और आप कहती है कि मैं अपने मायके चली जाऊँ, यह ठीक नहीं है ।" सेठानी ने कहा - "सब कुछ ठीक हो जायेगा । आप चिन्ता मत कीजिए । मैं तो अपने दोनों बच्चों को लेकर चली जाऊँगी और पाँच दिनों के बाद वापस आऊँगी ।" ऐसा कहकर सेठानी मायके चली गयी ।

सेठ ने सोचा - 'अहो ! मैं मानता था कि मेरी पत्नी सिर्फ मेरी ही है । उसे मुझ पर कितना प्रेम है ? जिसके लिए कालाबाजार करके लाखों रुपये इकट्ठे किये, जिसे अपना सर्वस्व माना, वही दुःख के समय मुझे अकेला छोड़कर चली गई । इस संसार में कोई किसी का नहीं है ।' सेठ अकेले पड गये । सोचा कि मुनीमजी को बुलाऊँ । फिर मुनीमों को बुलाया और कहा कि "आप चारों मुनीमों में से जो चार

दिन तक मेरे पास रहेगा उसे मैं प्रतिदिन एक लाख रुपये दुंगा ।'' मुनिम ने कहा - ''पच्चीस लाख दोंगे तब भी हमें आपके पास रहना नहीं है ।'' अन्त में नौकरों से पूछते है मगर वे भी स्पष्ट मना करते हैं । वे भी कहते है कि - ''जब आपकी श्रीमतीजी आपको छोड़कर चले गये, तो हम क्यों साथ रहे ? आपके पास रहने के लिए आये और बीजली गिर जाय, तो आपके साथ हम भी मर जायेंगे, फिर लाखों रुपयों से क्या लाभ ?

नौकरों और मुनीमों में से कोई सेठ के पास रहना चाहता नहीं है । अब सेठ बहुत परेशान हो गये, रोने लगे । अहो ! संसार कैसा विचित्र है ! और स्वार्थ से भरा है ! मैं मानता था कि ये सब मेरे हैं; परन्तु अब मुझे सन्त के वचन समझमें आ रहे है कि इस संसार मैं कौन किसका है ? इस स्वार्थ से भरे संसार में कोई किसी का नहीं है ।

कोई किसी का नहीं है रे (२) व्यर्थ में मरते सब मेरा मेरा करके,
यह मेरा पुत्र और है ये मेरा बाप, यह मेरी पत्नी और मेरी माता
स्वार्थ के बिना कोई प्रीत नहीं करता, नहीं कोई कभी किसी का...।

सेठ की तडपन बढने लगी । आँखों से सावन-भादो बरस रहा है । क्या किया जाय इसका पता नहीं है । मन परेशान हो रहा है, हृदय उलझ रहा है, उस समय क्या हुआ ?

❑ परोपकारी मित्र :

गाँव में सेठ का एक जुहार मित्र रहता था । उस सेठ को उसके साथ और कोई सम्बन्ध न था । मात्र मार्ग पर मिलने पर दोनों परस्पर जुहार करते थे, हाथ मिलाते । जुहार मित्र को पता चला कि मेरा मित्र सेठ किसी मुसीबत में है । जुहार मित्र धनवान नहीं बहुत गरीब था, परन्तु धर्म के स्वरूप को ठीक-ठीक समझा था । सुख में आगे-पीछे दौड़े और दुःख में सामने भी न देखे ऐसा स्वार्थी न था । उसे लगा कि जब सेठ इतनी मुसीबत में है तो मुझे जाना चाहिए । अतः अपनी पत्नी को बताकर जाने के लिए तैयार होता है, तब उसकी पत्नी उसे कहती है कि - ''स्वामीनाथ ! उस सेठ की पत्नी तो मायके चली गई और फिर आप मुझे क्या विधवा बनाना चाहते है ?'' जुहार-मित्र ने कहा - ''मनुष्य-मनुष्य को दुःख में सहायता नहीं करेगा तो भला ओर कौन करेगा ? तुम चिन्ता मत करो, कुछ होनेवाला नहीं है ।'' ऐसा कहकर जुहार-मित्र सेठ के घर जाने के लिए निकलता है । मार्ग में सब उसे कहते है कि - ''भाई ! तुम किसलिए जा रहे हो ? सेठ तुम्हारा मित्र है तो तुझे इतने वर्षों में एक पैसा भी क्यों नहीं दिया ? तुम मत जाओ ।'' अनेक लोग मित्र को लौट जाने को कहते है, परन्तु किसी की

बात पर ध्यान दिये बिना वह तो सेठ के पास पहुँच गया । ऐसे दुःख के समय अपने मित्र को अपने घर आया देखकर सेठ ने उसे गले से लगा दिया । "अहो मित्र ! तुम आ गये ?" "सेठ ! सही समय पर न आऊँ तो मित्र कैसा ? अब आप परेशान मत होईए, रोईए मत । अब आपको समझ में आता है न कि संसार कैसा विचित्र है ? सारे मोह और रंगराग नाटक-समान है । आप ममता छोड़ दीजिए । बीजली गिरनेवाली थी वह गिर गई । फिर अब किसलिए डर रहे हो ?" सेठ ने कहा - "कहाँ गिरी है ?" "सेठ ! वह बीजली गिरनी होगी तब गिरेगी, मगर यह आपकी पत्नी जो आपको छोड़कर चली गई, यह बीजली नहीं तो और क्या है ? अब आपके समझ में आता है न कि इस संसार में कोई किसी का नहीं है । धन की लोलुपता के पीछे किसी दिन सन्तो की वाणी सुनी नहीं, दान भी किया नहीं और ब्रह्मचर्य भी न पाला, परन्तु अन्तिम समय में जीव के लिए धर्म ही एक मात्र शरणभूत है । धर्म आराधना करने से दुःखों के पहाड भी बिखर जाते हैं । अभी भी बचने का रास्ता है । अगर आपको बचना हो तो अट्ठम तप कर नवकारमंत्र की धून लगा दीजिए ।" सेठ ने अट्ठम तप किया । वैसे तो उपाश्रय में कभी आते न थे, एक उपवास भी किया न थता, फिर भी अट्ठम लगाकर बैठ गये । मित्र ने ऐसा सुन्दर समझा दिया कि सेठ के दिमाग में सारी बात उतर गई और मृत्यु का भय भुला दिया । ज्ञानी का समागम होने पर जीवन परिवर्तन हो जाता है । आप भी मित्रता करे तो ऐसा करना कि जो सही समय पर काम आये ।

सेठ नवकारमंत्र के ध्यान में मस्त बन गये । तीसरा दिन भी आ गया । रात हुई, लोग छत पर चढ़कर देखने लगे कि कहाँ बीजली गिरती है ? रात के बारह बज गये । बीजली होने लगी । बीजली भी सेठ के मकान पर हो रही है - अवश्य सन्त महात्मा की बात सत्य होगी । अभी दोनों मर जायेंगे । लोग कहने लगे - "उसका मित्र देखिए, व्यर्थ में मरने गया है ।" कड़ाके और चमकारे से बीजली हो रही है, बहुत आवाज़ होता है, परन्तु सेठ को कुछ पता नहीं है । ठीक रात को दो-तीन बजे बीजली गिरी । कहाँ गिरी ? सेठ के मकान की छत पर गिरी। थोडा-सा भाग टूट गया, धडाका जोरदार हुआ मगर सेठ को कुछ पता नहीं है ।

❑ नवकारमंत्र और अट्ठम तप का चमत्कार :

लोग मानते हैं कि सेठ और उसका मित्र दोनों जल कर खाक हो गये होंगे । सुवह होने पर सव सेठ के मकान में दौड़ आये और देखते हैं तो दोनों प्रभुभक्ति में, ध्यान लीन है । क्या हुआ इसका ज्ञान नहीं है । सेठ जागृत हुए । आपत्ति आई मगर वच गये । सेठ ने कहा - "मित्र ! सचमुच तुमने मुझे आपत्ति से वचाया

है । चार-चार दिन खाया-पीया नहीं और आर्तध्यान और रौद्रध्यान किया, परन्तु तुम्हारे आने के बाद तीन दिन कहाँ बीत गये इसका पता ही न चला । अब मुझे समझ में आ गया कि यह संसार कैसा है ?"

सेठ की आँखें खुल गई । अब करोड़पति बनने की लालसा छूट गयी । बस अब तो जो धन है उसे शुभ कार्यों में खर्च कर डालुँ, अब मुझे संसार में रहना नहीं है । पाँच लाख रु. 'मानव-राहत' में, पाँच लाख रु. 'शिक्षा-विभाग' में, पाँच लाख रु. गरीबों की सेवा में आदि भिन्न-भिन्न खातों में कुल मिलाकर पचास लाख रु. धार्मिक ट्रस्टो में खर्च कर डाले और मित्र से कहने लगे - "मित्र ! तुमने मुझे सही समय पर सहायता की है । मुझे बचाया है, अतः ये पच्चीस लाख रुपये तुम ले जाओ ।" मित्र ने कहा - "भाई ! मैंने कुछ विशेष कार्य नहीं किया है, केवल अपना फर्ज निभाया है । मुझे एक पैसा भी नहीं चाहिए ।"

सेठनी का मायका दूर न था । पता चला कि बीजली गिर गई और सेठ बच गये तथा पचास लाख रुपयों का दान दे दिया है । यह सुनकर सेठानी दौड़ती हुई आई और कहने लगी - "स्वामीनाथ ! मैं तो अभी छोटी हूँ । मेरे दो छोटेछोटे बच्चे हैं और आप इतने सारे रुपयें दान में क्यों खर्च कर डाले ? आप बच गये और मेरी मानताएँ फलिभूत हुई । मैंने अंबाजी माता की मानता रखी थी । मिठाई, घी, तेल और गुड़ की मैंने मानता रखी है । स्वामीनाथ ! आपका कभी बाल भी बांका नहीं होगा ।" (सब हँसते हैं ।)

सेठ ने कहा - "सेठानी ! मैंने आपको भटकते नहीं किया है, इनमें से शेष ४९ लाख रुपये हैं, उसे आप रखों और घर संभालिए । अब मुझे ज्ञात हो गया है कि संसार में किसी का कोई नहीं है ।" सेठानी ने कहा - "स्वामीनाथ ! आपके बिना मैं जी नहीं सकुँगी ।" सेठ ने कहा - "आपको मेरे प्रति कितना प्रेम है यह मैंने जान लिया है । मेरे प्रति यदि आपको सच्चा प्रेम होता तो मुझे यों अकेला छोड़कर न जाती । तुम सब स्वार्थ के सगे हो । अब मैं तुम्हारे मोह में नहीं फसूँगा ।" इतना कहकर सेठ गुरु के पास जाकर साधु बन गये ।

देवानुप्रियों ! सेठ समझ गये और जीवन में उन्नति की । सन्त का समागम हुआ तो उन्नति के पथ पर प्रयाण हुआ । आप भी अपने जीवन में विशेष उन्नति करें । अनेक आत्माओं ने सन्त का समागम कर जीवन को उन्नति के पथ पर मोड़ा है । जीवन में से विषय और विकार के विष उतरे, ब्रह्मचर्य का पालन हो, सत्य, नीति और सदाचार जीवन में आये, तप करने का मन हो और ऐसा लगे कि अब जल्दी ही कर्मों की ज़ंजीरों को तोड़कर मोक्ष में जाना है, तो उन्नति के पथ पर जा सकेंगे । अधिक भाव अवसर आने पर ।

व्याख्यान - २१

कर्म का स्वरूप

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी जिन्हों ने राग की आग को बुझाकर संसारसागर की थाह (गहराई) प्राप्त कर शाश्वत-सुख के स्वामी बने हैं । ऐसे तेजस्वी तारक तीर्थंकर परमात्मा ने संसार के जीवों के उद्धार के लिए आगमवाणी प्रकाशित (प्रस्तुत) की । अनादिकाल से जीव विषय-कषायों के वश होकर कर्मबन्धन कर रहा है । कषाय रात-दिन आत्मिक-धन लूट रहे हैं । जैसे कोई व्यक्ति धन लेकर जंगल से गुजर रहा हो और मार्ग में लूटेरे न मिल जाय, इसकी सावधानी रखते हुए जल्दी से जंगल से निकल जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी कहते हैं कि -"विषय और कषायरूपी लूटेरे तुम्हारा आत्मिक-धन लूट न जाय उसकी क्षण-क्षण में सावधानी रखकर सांसारिक जंगल को पार कर जा । कषाय को पुष्ट करनेवाले है, तो वह विषय और उसकी सामग्री, अतः विषयों के प्रति विराग भाव आये, विषय जीव को विष जैसे लगे, तो चारों कषाय फीके (निर्बल) पड़ जाय । उसे सिंचन न मिले तो उसका वृक्ष कहाँ से बढ़ेगा ? तब संसार की नींव भी हिल जायेगी और संसार सुख के राग से भी वीतराग के वचन प्रति अधिक राग होगा । संसार अर्थात् क्या ? *"संसरणं इति संसारः ।"* फिसलना (सरकना) इसका नाम संसार, कहाँ से फिसलना है ? एक भव से दूसरे भव में, एक पुद्गल से दूसरे पुद्गल पर, एक कर्म के उदय से दूसरे कर्मोदय पर, एक प्रवृत्ति से दूसरी प्रवृत्ति पर, सुख से दुःख पर और दुःख से सुख पर । इसीका नाम संसार । इस प्रकार कर्म से वशित (वश) होकर संसार में भटकना इस जीवो को अनन्त पुद्गल परावर्तन काल व्यतीत हो गया तो भी अबतक आरा क्यों नहीं आता ?

ज्ञानी भगवन्तों ने भी यही फरमाया है कि यह जीव चारों गति में जो दुःख भुगत रहा है उसका प्रमुख कारण पूर्वभवों में विषय सुखों की आसक्ति में लुब्ध (पागल) बनकर जीव ने पाप किये हैं उसका यह भयानक परिणाम है । धर्म-अधर्म को नहीं जाननेवाले निर्दयी लोग निरन्तर अधर्म के रत रहते है । रसलोलुपी माँसाहारी कैसे अधम पाप करते हैं, धन के लोभी मनुष्य वन में दावानल जलाते हैं, पृथ्वी खोद डालते हैं, पानी के वाँध वनाते हैं और वनस्पति का सर्वनाश कर देते हैं । अनेक मनुष्य वड़े वड़े आरम्भ कर जीवों की हत्या कर देते हैं मगर उन्हें हृदय में दुःख

नहीं होता और वे जीव परिग्रह के पीछे ऐसे तो पागल हुए हैं कि धर्म करना तो उन्हें सुझता ही नहीं है ।

देवानुप्रियों ! महाआरम्भी और महा-परिग्रही मनुष्य ऐसे पाप के कीचड़ में फँस गये हैं और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का ऐसा शोषण करते है कि पाप करने के बाद उसे उसके (अपने) पाप का पश्चात्ताप भी होता नहीं है । फिर ऐसे जीव पाप से भला पीछे हटते ? किसी दिन गुरु के पास जाकर अपने पाप का प्रकाशन (प्रायश्चित्त) करते हो ? फिर जो पाप कर लिए हैं, परन्तु अब नये पाप न हो इसके लिए प्रत्याख्यान करते है ? बस, रात-दिन एक ही धून सवार है कि मनचाहा खाना खाऊँ, कुछ भी करके पैसे लाऊँ और निरंकुश बनकर रंगराग में रत रहूँ । यह एक ही रट है न । यह कार्यवाही आत्मा को पापों से भारी बना रही है । तब भी आश्चर्य कस बात यह है कि ऐसे घोर पाप करने पर भी पाप को पापरूप मानते नहीं है । वह यही मानते है कि हम जो कुछ कर रहे हैं वह सब सही है । ऐसे घोर पापों के प्रति जरा भी नफरत या संकोच नहीं । दूसरों को भी उन पापों को करना सिखाते हैं । कैसा घोर अज्ञान ? ऐसे अज्ञानी जीव कर्मोदय के समय रोते हैं, तडपते है, चीखते है और पुराने कर्म खपाते हुए नये कर्म बाँधते है । परिणामतः उनका संसार घटता नहीं बल्कि विकसित होता है ।

इस विषय में ज्ञानी आत्माओं की दृष्टि कैसी होती है ? ज्ञानीपुरुष क्या कहते है ? - "एक कर्म के उदय से दूसरे कर्म के उदय पर खिसकना इसीका नाम संसार है ।" प्रत्येक क्षण संसार में वस्तु के पर्याय बदलते हैं । अभी शाता का उदय हो और घण्टे के बाद फिर अशाता का उदय होता है । आज मनुष्य बड़ा धनवान होता है और कल पुण्योदय खत्म होने पर पाप के उदय से आज का करोड़पति कल रोड़पति (गरीब) बन जाता है, और पुण्योदय जगने पर रोड़पति करोड़पति बन जाता है । आज आपका लाभांतराय कर्म टूटा, तो लाभ मिल जायेगा परन्तु इसके साथ भोगांतराय का उदय होगा, तो मिला है उसे भी भोग सकेंगे नहीं । बहुत पुरुषार्थ कर ज्ञानावरणीय को दबाया हो, तभी अचानक दर्शनावरणीय का उदय होने पर आँखों पर धुंधलापन छा जाय, दिखना बन्द हो जाता है उसी प्रकार अभी किसी मनुष्य का यशोकीर्ति नामकर्म का उदय चलता हो, तब चारों दिशा में उसका यश फैला हो वहाँ अचानक अपयश नामकर्म का उदय हो जाता है । ऐसा आप नहीं देखते ? नहीं जानते ? मैं आपको सीताजी का दृष्टान्त देकर समझाती हूँ ।

सीताजी को कर्मराजा ने कितने प्रहार किये हैं ? जनकदुलारी और राजा रामचन्द्रजी की पत्नी महारानी सीताजी को कर्मराजा ने तीन-तीन बार प्रहार किये ? वैसे तो कहा जाय तो अनेक, फिर भी प्रमुखतः तीन, फिर भी दुःख के प्रसंग में भी उन्हों ने किसी के दोष देखे नहीं है । अशुभ ध्यान किया नहीं है, परन्तु प्रत्येक समय

(सुलटी) खतौनी की, तो जीवन में धर्मध्यान आ सका। कर्म ने जोरदार तीन प्रहार किये इसे हम देखते है।

❑ सीताजी को कर्मराजा का पहला प्रहार :

सीताजी को कर्मराजा ने पहला प्रहार यह किया कि सीताजी विवाहकर ससुराल आये तब उनके मन में यह आनन्द और उत्साह था कि मैंने कैसे पुण्य किये होंगे, मेरा कैसा सद्भाग्य की किसी कन्या को न मिले ऐसे रामचन्द्रजी जैसे पवित्र, यशस्वी पति मुझे मिले ! सीताजी अपने-आपको महान भाग्यवान मानते। ऐसे पवित्र पति मिलने से अपने जीवन को धन्य मानते और गौरव अनुभव करते। मैं उनके साथ सुख से महल में रहकर जीवन बीताऊँगी, परन्तु कर्म ने ऐसा प्रहार किया कि ले तुम्हें राजमहल में आनन्द करना है ? तो अब उसे ठीक ठीक बता दूँ। कर्मराजा ने सीताजी का आनन्द और हर्ष टिकने दिया नहीं। तत्काल कैकयी के वचन से राम को १४ वर्ष वनवास दिलवाया। रामचन्द्रजी के कर्मों का उदय हुआ तो कैकयी को ऐसी मति (बुद्धि) सुझी, अन्यथा ऐसी मति न होती। राम ने सीताजी से कहा - "आप यहाँ महल में रहिए।" परन्तु पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहनेवाली सती सीताजी महल में न रहे, अपितु राम के साथ जंगल में गये। वनवास मिला फिर भी कैसा उत्तम विचार किया ? 'भले ही महल गये, परन्तु मेरे पति तो मेरे साथ है न ? मैंने महल या सुख-सुविधा से कहाँ विवाह किया है ? मैंने तो अपने पति से विवाह किया है। और वे पति तो मेरे पास है।' जिनके साथ मैंने हृदय का सम्बन्ध बाँधा है वे यदि सलामत है, तो सब सलामत है।' इस प्रकार मन मनाया तब कर्मराजा ने कहा कि - "मैं तुझे अपने पति के साथ सुख से कहाँ रहने दुंगा ?" कर्म ने दूसरा प्रहार किया।

❑ कर्मराजा का दूसरा प्रहार :

कर्मराजा ने कहा - "तुम मानती हो कि मेरे पति तो मेरे साथ सलामत है न ? तो ले, मैं तुझे यकीन दिला दूँ। कर्म ने रावण की मति भ्रष्ट करवाई। रावण वहाँ आया और सीताजी का अपहरण कर उठा ले गया। इस प्रहार में कहाँ उसके पति सलामत रहे ? तुम अपने पति में आनन्द, सन्तोष मानती थी, तो ले अब राम को तेरे पास रहने नहीं दुंगा। छ-छ महीनों तक अशोकवाटिका में रखा। रावण ने उसे अपनी पत्नी बनाने के अनेक प्रयत्न किये, मगर ये तो महान सती थे। जरा भी चलित न हुए। अगर उनमें इस समय सच्ची समझदारी न होती तो दुःखी होकर आर्तध्यान, रौद्रध्यान करते। यह स्थिति ऐसी थी कि आर्त-रौद्रध्यान हुए बिना न रहे, तब ऐसा विचार आ जाय कि कैकयी का दिनमान उठ गया कि मेरे पति को राजगद्दी मिलने के समय वनवास भेजा ? मेरे पति को वनवास मिला तो मेरी यह दशा हुई न ? परन्तु उन्होंने ऐसा विचार न किया। धर्मध्यान किया। धर्मध्यान आता है, तब

आत्मा दुःख में भी सुख मानती है । उन्होंने कैकयी या राम का दोष न देखा, बल्कि कर्म का दोष देखा । दुःख में सुख माननेवाली सीताजी को कर्म ने कहा कि - "मैं तुझे सुख से रहने नहीं दूँगा । देख, दिखा दूँ तीसरा प्रहार ।"

❑ कर्मराजा का तीसरा प्रहार :

रावण को पराजित कर सीताजी को लेकर राम अयोध्या में पधारे, सीताजी को राजरानी का पद मिला, सुख का समय आया । मन में लगा कि अब मेरे दुःख के दिन गये और सुख के दिन आ गये । तभी कर्म ने तीसरा प्रहार किया । ले तुम मानती हो न कि अब मेरे सुख का समय आया, दुःख का समय गया, तो उन सारे दुःखों को लाँध जाय ऐसा दुःख देता हूँ । जब सीताजी को रावण से छुडाकर रामचन्द्रजी अयोध्या ले आये, उस समय अयोध्या में बसनेवाले एक धोबी की पत्नी बाहर (मायके) गई थी । कुछ देर से वह आई तो उसके पति ने कहा कि - "लंका में छ-छ महीनों तक रावण के यहाँ रहकर आई सीता को वह रामला रख सकता है, मैं नहीं । मैं तुझे नहीं रखूँगा । क्या सीता अभी भी सती होगी ?"

"सती सीता सुख से सोते, धोबी कड़वे वचन उच्चारे,
सीता को छोडा वनवास, वचन-कुवचन में... वचन वदे...।"

यह बात रामचन्द्रजी के कानों तक पहुँची । प्रजाजनों की शंका का समाधान करने हेतु श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी को गर्भवती होने पर भी जंगल में भेज दिया । गर्भवती स्त्री की लोग दया करते, मगर यहाँ तो प्रजाजनों के आक्षेप के कारण राम ने सीताजी की दया न की । सारथी को आज्ञा की । रथ में बिठाकर सारथी सीताजी को घने जंगल में ले गया । सीताजी को इस अवस्था में जंगल में भेजते हुए सारथी का हृदय काँप उठा । आँखों में आंसू भर आये । सीताजी रथ से उतरे तब दुःखित हृदय से सारथी सीताजी से पूछता है - "माताजी ! श्रीरामचन्द्रजी को कोई सन्देश देना है ?" तब सीताजी ने क्या उत्तर दिया यह सुनिए । "श्रीरामचन्द्रजी से कहिएगा कि अज्ञान प्रजा के वचन से गर्भवती मुझे वन में भेजा तो ठीक है । **मुझे छोड़ा तो भले ही छोड़ा, पर ऐसा उत्तम धर्म मिला है, उसे मत छोड़ना ।** मेरे जैसी सीता अनेक मिल जायेगी, परन्तु ऐसा वीतराग धर्म बार-बार नहीं मिलेगा ।" कितना मीठा सन्देश दिया, मगर ऐसा न कहा कि मुझे विना किसी अपराध किये जंगल में भेज दिया । क्या सीताजी का धैर्य ? दुःख में भी धर्मसन्देश कहलवाये. संसार में सुख में तो सभी धर्म करते है, परन्तु दुःख के पहाड टूट पड़े हो, ऐसे सम[illegible] में धर्म टिकाए रखे इसीका नाम है सच्ची समझदारी । सुख तो सबको चाहिए- [illegible] दुःख में भी सुख का अनुभव करे वही सच्चा मनुष्य है । वही धर्म को सच्[illegible] है । ऐसी महान आत्माएँ दुःख का निमित्त पाकर भी कल्याण कर [illegible]

सीताजी समताभाव से जंगल में दिन बीताने लगे । लव और कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया । दोनों पुत्र बड़े भी हुए । अन्त में कर्म पूरे होने पर श्रीरामचन्द्रजी उन्हें ढूँढकर अयोध्या में ले आये । फिर भी अभी कर्म क्या करवाता है ? लोगों ने कहा कि यह सब हुआ तो ठीक, परन्तु हम तो सीताजी को सच्चे तभी मानेंगे जब आप अग्नि-परीक्षा दे ।

❑ सीताजी के कर्म की अग्निपरीक्षा और उसमें पाई ज्वलंत विजय :

लोकोपवाद से बचने के लिए सीताजी की अग्निपरीक्षा की । सीताजी को अग्निकुंड में बिठाकर अग्नि जलाई तब उनके सतीत्व के प्रभाव से अग्नि का बड़ा कुंड शीतल पानी से भर गया और सीताजी स्नान करने लगे और अग्निकुंड देव का विमान बन गया । बीच में सीताजी और आस-पास दोनों पुत्र लव और कुश विमान में शोभित हो उठे । उसी समय श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा - "सीताज ! मुझे माफ कीजिए । आप तो सती हैं । अब आपके दुःखों का अन्त आ गया । अब अयोध्या के महलों (इमारतों) को पावन कीजिए ।" तब सीताजी ने कहा - "स्वामीनाथ ! अब मुझे महल में नहीं आना है । मुझे महल जेल जैसा लगता है । जिस कर्म ने मुझे तीन-तीन बार ठगा, उसके सामने मुझे युद्ध करना है ।"

देवानुप्रियों ! सीताजी को एक भव में तीन-तीन बार दुःख आया, अन्त में सुख का समय आया और श्रीरामचन्द्रजी स-सम्मान महल में पधारने को कहते है, तब आनन्द न हुआ । परन्तु क्या बोले - "शुभकर्म मुझे प्रलोभन देते हैं, परन्तु स्वामीनाथ ! इन कर्मो ने मुझे तीन-तीन बार छला है । मेरे भाग्योदय से मुझे आप जैसे पवित्र पति मिले, परन्तु मुझे कर्म ने वन में भेज दिया । वहाँ पति के साथ रहकर मुझे आनन्द करने न दिया और रावण मुझे उठा ले गया । वहाँ से मुक्त होकर अयोध्या में आई । पटरानी का पद मिला । अयोध्या के महलों में सुखपूर्वक जीवन बीताती हुई गर्भवती अवस्था में अचानक मेरे कर्म ने मुझे जंगल की राह पर भेज दिया । और फिर पुनः अग्नि परीक्षा हुई । इस प्रकार बार-बार मुझे कर्म ने छला है । अब तो मैं सावधान हो गई हूँ, मुझे अब धोखा नहीं खाना है, क्योंकि इन कर्मो ने मुझे तीन-तीन बार ऐसे प्रहार किये कि अब राजमहल में रहकर मुझे कर्म के प्रहार नहीं खाने है । आप मुझे माफ कीजिए । अनन्त जन्मों में मैंने स्वयं ही क्रूर कर्मराजा की कैद से मुक्त होने और शाश्वत सुख को पाने के लिए चारित्र अंगीकार करूँगी और अहिंसा, संयम और तप के शस्त्र लेकर कर्मो को प्रहार करूँगी और सदा के लिए कर्मों को रवाना कर दूँगी ।"

सीताजी का उत्तर सुनकर राम अनुनय करते है - "सीताजी ! आप ऐसा मत कीजिए ।" अयोध्या की प्रजा तड़पने लगी, रोने लगी कि - "हे महासती ! हमारी माता ! आप हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ?" सभी पैरों में गिर जाते है, परन्तु सीताजी

लालच में नहीं आते । अगर दुःख में दीक्षा ली होती तो कोई ऐसा कहता कि दुःख सहना पड़ा, इसलिए दीक्षा ली, परन्तु यहाँ तो आनन्द ही आनन्द है, फिर भी कितने ऊँचे भाव है ? बोलिए देवानुप्रियों ! इस स्थान पर आप होते तो आप क्या करते ? आप तो यही कहते न कि दीक्षा बाद में लेंगे, फिलहाल ऐसे सम्मान-सुख मिले तो भला कौन उसे छोड़ता ? सीताजी ने कहा -"हे राम ! अब मेरा और आपका सम्बन्ध पूर्ण हुआ ।" ऐसा सम्बन्ध तो हमने अनेकबार बाँधा है, अतः आप रोहिए मत, कर्म के स्वरूप को समझिए ।

❑ यह सब प्रभाव आपका :

श्रीरामचन्द्रजी कहते है - "सीताजी ! आप ऐसा क्यों बोल रही हो ? अन्यथा हमने आपका महान अपराध किया है, आप पर अपकार किये हैं, फिर भी आप हृदय विशाल कर हमारे अपराध को माफ कीजिए, हमारे पर रूठिए मत ।" तब सीताजी ने कहा - "यह आप क्या कह रहे हैं ? आप अपकारी कैसे ? आप तो मेरे महान उपकारी हो । देखिए, मेरे हृदय में आप थे, इसलिए तो आग का पानी हुआ । मेरे हृदय में आपके स्थान पर कोई ओर होता, तो आग का पानी न होता, बल्कि सीता की खाक हो जाती । मेरे हृदय में आपके स्थान के कारण आग पानी हो गया, और मैं न जल सकी । यह आपका मुझ पर क्या कम उपकार है ?" कैसी सीधी दृष्टि ? कर्मराजा ने तीन-तीन बार भयानक प्रहार किये फिर भी जरा भी आर्तध्यान या रौद्रध्यान न किया, अपितु धर्मस्थान किया । महान आत्माओं की यह विशेषता है कि कर्मबन्ध के स्थान में कर्मों से मुक्ति पाता है ।

बन्धुओं ! सीताजी को संसार-सुख के कित-कितने प्रलोभन मिले, श्रीरामचन्द्रजी जैसे महाराजा पैरों में गिरे, अयोध्या में प्रजा रोती, चीखती और बिनती करे, यह सामान्य प्रलोभन है ? फिर भी उन्होंने तो तत्त्व दृष्टि पाकर मन को दृढ़ बनाकर अपना निश्चय अटल रखा और श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और प्रजाजनों के सामने ही अपने सिर के बाल की लट उतारकर राम के पास डालने लगे । यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी को मूर्च्छा आ गई । थोड़ी देर बाद होश आया, बहुत रोने लगे । उस समय लक्ष्मणजी कहते है - "बड़े भाई ! आप यह क्या कर रहे है ? मेरी भाभी इस स्नेह भरे संसार को छोड़कर संयमी बनते हैं, तो हमें उनका दीक्षा-महोत्सव मनाना है ।" अन्त में सीताजी संयम लेते हैं । संक्षेप में - चाहे कुछ भी हो जाय, परन्तु जिसमें तत्त्वज्ञान है, वह सच्चे और झूठे दोनों प्रसंगो में समान (तटस्थ) रह सकता है । सीताजी में तत्त्वज्ञान था तो ज़ोरदार दुःख के प्रसंगों में भी धैर्य रखा और कर्म के बन्धन तोड़ डाले और कई अज्ञानी जीव छोटे-से कारणों में और सामान्य दुःखों में भी आर्तध्यान और रौद्रध्यान में जुड़कर गाढ़ (घोर) कर्म बाँधते हैं, इसके फलस्वरूप नरम और तिर्यंच गति का आयुष्य बाँधते है ।

उन अज्ञानी पापी जीवों को पता नहीं है कि मेरे द्वारा किये गये घोर पाप-कर्मों के कटुफल के रूप में नरक में अनगिनत वर्षों तक घोरातिघोर पीड़ादायक वेदना भुगतनी पड़ेगी । बन्धुओं ! प्रिय पुत्र और प्राणप्यारी पत्नी के खातिर आपने भयानक पाप किये, परन्तु वे पुत्र और सगे-सम्बन्धी तो आपके मर जाने से फिर स्मशान में जलाकर, नदी-किनारे स्नान कर घर चले जायेंगे और इस जीव को अकेले को अधम गतियों में जाकर दुःख की भट्ठी में सेकना पड़ेगा । उसका जीव को ज्ञान है ? अतः कुछ समझिए । अगर नरक और तिर्यंच गति में न जाना हो तो पाप की प्रवृत्ति करने से पीछे हटिए । नरक में जीव कैसे-कैसे स्थानों में उत्पन्न होता है और कैसे भयानक दुःख सहता है, यह मैं आपको संक्षेप में समझाती हूँ ।

❑ नरक में नारकी जीव को उत्पन्न होने का स्थान कैसा भयानक होता है :

नरक में नरकावास घोर अन्धकार से भरे होते हैं । कहीं अति उष्ण और कहीं अति शीत होते हैं, और उसमें मेद-मज्जा-चर्बी-खून-पीब-मांस आदि अरुचि पदार्थ यहाँ-वहाँ फैले रहते है । वज्र जैसे मुखवाले पक्षी हैं, कि जो नरक में जीवों को नुकीली चोंच मारते रहते हैं, वहाँ सँकरी नलीवाले मुँह की कुंभी में उत्पन्न होना पड़ता है । उसमें से बाहर निकलते हुए कितनी मुसीबत होती है । परमाधामी देव उस नारकी को कुतर-कुतरकर बाहर निकालते है । बाहर निकला कि सामने भयानक सिंह और शिकारी कुत्ते उसे काट-खाने को तैयार खड़े होते है । 'सूत्रकृतांग सूत्र' का पाँचवां अध्ययन पढ़े तो पता चले कि नरक में कैसी रौ-रौ वेदना जीव भुगतते है ।

परमाधामी पापी जीवों को नरक में उबलते रस में डालते है, आग में जलाते है और आरी से काटते है । मृगापुत्र ने उसकी माता के पास नरक के दुःखों का वर्णन किया है, यह भी आपने अनेक बार सुना होगा, यह पढ़ते हुए काँप जाते है । फिर जीव ने वे दुःख कैसे सहे होंगे ? वह सिंह उसे फाड खाता, चबा जाता, इसके बाद तुरन्त ही परमाधामी उबलते ताँबा और सीसा के धधकते रस में डालकर उबालते है । फिर बाहर निकालकर नुकीले दाँतेवाली आरी से चीरता है, यंत्र में पीसता है, धधकती भट्ठी की आँग में डाल देता है । वे परमाधामी देव संसार में जिसे बड़े बड़े दुःख कहते हैं, उस सारे दुःखों को नारकी के जीवों पर वर्षा बरसाते है । मल-मूत्र-पीब-लहू-श्लेष्म इत्यादि अति बदबुदार बिभत्स पदार्थों से भरी कुंभी (एक नरक) में डाल देता है और उसमें उस बेचारे के हाथ-पैर आदि अंग गल जाते हैं । फिर पुनः वे अंग जहाँ विकसित होते हैं तब कुंभी में समाते नहीं । कुंभी में दवने से जैसे ही मुँह बाहर निकाले कि तभी परमाधामी क्या कहते है ? "अरे, उन पापियों को मारिए, काटिए, छेदिए, भेदिए, फाड़िए, पकड़िए" - ऐसा कहते हुए वे जीवों को पकड़कर भाले, तलवार, वरछी आदि लेकर टूट पड़ते हैं । खड्ग द्वारा काट-काटकर और भाले

से चुबाते है । कैसी तीव्र वेदना होती होंगी ? शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालते है, उन छेदे हुए अंगोपांग पारे की कणिकाओं की तरह इकट्ठे हो जाते है और जैसे ही पूरा शरीर बन गया कि तुरन्त उसकी पीठ में शूल चुभाकर शूली पर उसे बिठाते है । ऐसी तीव्र वेदना विलंबरहित नरक में जीव भुगतता है । देवानुप्रियों ! नारकी के दुःखों का ख्याल करना ।

एक के बाद एक - मार पडने से वेदना की कोई सीमा नहीं रहती । लकड़ी के प्रहार, तलवार के घाव, भयानक गर्मी आदि वेदनाओं से अति त्रस्त नारकों बेचारे निर्धन बनकर करुण स्वर में रोते हुए बिनती करते है कि - "हे स्वामी ! हमारे पर कृपा कीजिए । हम बहुत दुःखी हो गये हैं । हमें बहुत पीडा हो रही है । हम हाथ जोडकर आपसे प्रार्थना करते है कि हमने ऐसा भयानक कौन-सा अपराध किया है ? क्या पाप किये है कि आप हमें ऐसा भयानक दुःख दे रहे है ?"

ये बेचारे गरीब जीवों नम्रतापूर्वक पूछते है, तब परमाधामी फुफकारते हुए, उसके सिर पर हथौडा मारते हुए कठोर स्वर में कहते है - "हे नादान ! तुम्हें पूर्वभव में तुम्हारे धर्मगुरुओं ने कहा था कि किसी जीव को मारना नहीं, मारेंगे तो मरना पड़ेगा, झूठ मत बोलना, चोरी मत करना, परस्त्रीगमन मत करना, परिग्रह में आसक्त मत होना, काँदा-कंदमूल मत खाना, रात्रिभोजन मत करना । ऐसे पाप करेंगे तो आपको नरक में जाना पड़ेगा । ऐसे-ऐसे दुःख भुगतने पडेंगे, परन्तु गुरु की हित-शिक्षा तो तुम्हें भायी नहीं । जब पूर्वभवों में तुम जीवों को मार डालते थे, चीर डालते थे और उसके मांस की जियाफत (दावत) का मज़ा लेते थे, तब यह नहीं पूछते थे कि मैंने ऐसा क्या अपराध किया है कि मुझे इन जीवों को मारना पड़ रहा है ? और अब पूछ रहा है कि मैंने क्या अपराध किया है ?

जब चाहे उतने झूठ बोलता था, चोरियाँ कर लोगों के हृदय जला रहा था, परस्त्रियों में मोहित बनकर दूसरे युवकों की स्त्रियों के साथ भोग करता था, कच्ची ककडी को काटकर उस पर नमक और नीबू चढ़ाकर काँटे में भराकर (फँसाकर) खुशी-खुशी खाता था, आलू की सब्जी खाता था, मदिरा के प्याले मजे से पी रहा था । ऐसे-ऐसे तो अनेक पाप करते समय तो तुझे होंश नहीं था और अब पूछता है कि मैंने क्या पाप किया ? परधामी ऐसे ताने मारते है । ऐसे ताने मारते मारते भी उनके हाथ (मुँह) बन्द नहीं रहते । एक-एक पाप की याद दिलाता जाता और उसके शरीर पर बड़े भारी लोहे के हथौंडे के प्रहार करता जाता है । इसलिए उन तानें सुनने जितना समय भी शस्त्र-प्रहार की भयानक पीडा बन्द नहीं होती है ।

फिर उसे सुनाने जाते है कि-"हे दुष्ट ! तुम पूर्व में जब महान लोभ में फँसा तब न जाने कैसे कैसे पाप के धन्धे करता था ? शिकार खेलकर मृग जैसे भोले प्राणी को निर्दय बनकर उन्हें मारता था । धन के ढ़ेर पर गहरी मूर्च्छा करता था ।

२२२२२२२२२२२२२२ • - • २२२२२२२२२२२२ •

से अकड़कर चलता था और दूसरों की पेट भरकर निन्दा करता था । तब तुझे अपने पाप का विचार करने का समय न था । गुरुवचन में तुझे श्रद्धा न थी और पापी ! अब किसलिए पूछता है कि मैंने क्या पाप किया है ? मूर्ख होने पर भ्‍ण अपने आपको पण्डित मान राग, द्वेष और मोह में फँसकर (ग्रसित होकर) कहता था कि वेद के बिना अन्य कौन-से शास्त्र प्रामाणिक हैं ? ऐसा कहकर पवित्र संयमी मुनियों की निन्दा करता था । नास्तिक बनकर धर्म-स्वर्ग-नरक-मोक्ष जैसी कोई चीज ही नहीं है, बस खा-पीकर मौज़ कीजिए, ऐसा बकवास करता था । उस समय तुझे गुरु सच्चा मार्ग दिखाते हुए कहते कि - "भाई ! ऐसे घोर (भयानक) पाप तुम्हें नहीं करने चाहिए । ऐसे वचन तुम नहीं बोल सकते । उस समय अभिमान आकर रौफ से गुरु की बात का मजाक उड़ाता था और अब गरीब बनकर क्यों रो रहे हो ?" उपर्युक्त कटुवचन सुनाते हुए दुष्ट देव उनके शरीर के छोटे छोटे टुकडे कर आकाश में उछालते हैं । उसे चील जैसे पक्षी तोड़-तोड़कर खाते है । नरक के जीवों के आत्म-प्रदेश उन अंगो में भी फैले होतें हैं । अतः वे जीव भयानक वेदना अनुभव करते है । और हाय-हाय ! करते हुए विलाप करते हैं, फिर भी परमोधामियों को कहाँ दया है ? उन अंगो को पुनः साँधकर (सिलकर) अखण्ड शरीर बनने पर धधकती अग्नि में डालकर तपाते हैं ।

नरक में नारकी भूख और प्यास से बहुत दुःखी होते है, और रोते हुए कहते है - "हे स्वामी ! हम जल रहे हैं । हमें बहुत प्यास लगी है ।" तब परमाधामी कहते है - "अरे ! पानी लाइए " ऐसा कहकर उनके मुँह खोलकर तांबा और सीसे का धधकता लावा डालते है । असह्य दाह से चीख उठे नरक के दुःखी जीव कहते है - "बस ! हमारी प्यास मिट गई, अब हमें पानी नहीं पीना है । हमें माफ कीजिए ।" तब भी परमाधामी मुँह में सँड़सा डालकर मुँह खोलकर गले तक नली डालकर उसमें गर्म गर्म सीसे का लावा डालते है और "भूख लगी हो तो लीजिए" कहकर उसीके शरीर को काटकर उसके टुकडे तलकर उन्हें खाने के लिए देते है । ऐसी अतुल (असह्य) वेदना वे जीव वहाँ सहते है ।

ऐसे त्रास (जुल्म) से परेशान होकर नारकी वहाँ से चारों दिशाओं में दौड़ते है । दौड़ते-हुए आगे जाते है । तभी पानी से भरी नदी देखते है । हाश ! अब पानी पीकर अपनी तृषा शांत करेंगे और शीतल होंगे । वह नदी को पानी से भरी मानता है, परन्तु वह तो तांबा, सीसा और पीब के रस से भरी होती है । प्यास और गर्मी से आकुल-व्याकुल जीव शीतलता प्राप्त करने की आशा से उस नदी में कूद पडते है, तभी पूरे शरीर में जलन होने लगती है । नदी के प्रवाह मे खिंचते जाते है । उसमें से निकलने का प्रयास भी करते है, परन्तु मानो गोंद के कीचड़ में फँस न गये हो ? इस प्रकार उसमें से बाहर निकल सकते नहीं है । कुछ समय तक उस नदी में खिंचाते हुए बड़ी मेहनत से बाहर निकलते है कि फिर पुनः परमाधामी 'मारो, काटो, पकड़ो' की चीखें

लगाते है । 'वैतरणी' नदी से बड़ी मुश्किल से बाहर निकले जीव नदी के किनारे पर स्थित रेत को ठंडी (शीतल) मानकर उसमें लोटते हैं परन्तु वह रेत तो भड-भूँजा द्वारा चने आदि सेंकने के लिए तपाई रेत से भी अधिक तृष्ण होती है । वे जीव उसमें चने की तरह सेककर खाक बन जाते है ।

बन्धुओं ! इस नरकगति के त्रास ऐसे-वैसे नहीं है । ये कोई कल्पित बातें नहीं है । इन दुःखों को भुगतने का समय न आये, इसके लिए सावधान रहिएगा । इतने कष्ट भुगतने मात्र से कार्य पूरा नहीं होता । उष्ण (गर्म) रेत में सेंके गये नारक शांति पाने के लिए सामने दिख रहे वृक्षों से घिरे घने वन में दौड़ते है । उन वृक्षों के पत्तों के धार (किनारा) तलवार और भाले की तरह नुकीले होते है । जैसे ही उस वृक्ष को नीचे जाकर बैठते है कि तभी उपर से नुकीले धारवाले पत्ते गिरते हैं । उससे अंगोपांग छेद जाता है । सिर फट जाता है, तब 'बचाओ बचाओ' की चीखें लगाते है । दौड़ा-दौड़ा करते है, परन्तु उस विषम वन में से ऐसे ही भला निकल पाते ? जैसे ही वे दौड़ते जाते है कि उपर से धड़ाधड़ शस्त्र जैसे पत्ते और फल शरीर पर गिरते हैं । यहाँ तो ज़रा-सा कोई कटुवचन कह दे या किसी को किसी की कुहनी लग (छू) जाय तो भी गुस्सा हो जाते है । तो फिर नरक की घोर पीड़ा भुगतते समय क्या होगा ? ये जीव वहाँ से भागकर खुले मैदान में दौड़ जाते है । वहाँ जोरदार वायु शुरू होता है । उस वायु में बड़ी-बड़ी शिलाओं जैसे पत्थर उनके सिर पर आ गिरते है । उन पत्थरों के गिरने से उनके हाथ टूट जाते है, आँखें फूट जाती है, कान कट जाते है । वायु भी अग्नि की ज्वाला जैसा गर्म होता है । जंगल का छोर आता ही नहीं है । भगवान ने फरमाया है कि - "यहाँ जब तुमसे एक वचन का प्रहार सहा नहीं जा रहा है, तो ऐसी शिला जैसे पत्थरों की वर्षा होगी तब क्या करोगे ? यहाँ तो अल्प दुःख सहोगे तो महान निर्जरा होगी ।"

पत्थरों का मार सहते हुए त्रस्त होकर दौड़ता है तो सामने एक बहुत बड़े पहाड की गुफा देखी । अतः उन्हें लगता है कि हाश ! इसमें घुस जाय तो इस पत्थर के घाव से बच जायेंगे । बेचारे बचने के लिए प्रयास करते है, परन्तु उनके अशुभकर्म ही ऐसे होते हैं कि जहाँ जाते वहाँ दुःख ही मिलता है, अतः यह जीव गुफा में घुसते है कि तभी उपर बड़ी शिला टूट पडती है । उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं । वेदना की कोई सीमा नहीं है । 'अरे ! हम यहाँ कहाँ आकर फँस गये ?' महामुसीबत से खड़े होकर गुफा से बाहर निकलने के लिए दौड़ते हैं, तभी गुफा की वज्र जैसी दो दीवारे आमने-सामने से आ गिरती है । उसमें ये जीव फँस जाते है और शरीर रोटी जैसा बन जाता है ।

बन्धुओं ! इस जीव ने नरक में ऐसे महान कष्ट सहे हैं । महान पुरुष इन दुःखों का वर्णन कर हमें सावधान करते है । कहने का आशय यह है कि नरक के दुःख

यहाँ के दुःखों से अनन्त गुने अधिक है । उसकी अपेक्षा अगर हम सोचे तो यहाँ के दुःख की कोई विसात नहीं है ! यहाँ आपको गर्मी लगे तो पंखे डलवाते हो, एरकंन्डिशन कमरे बनाते हो, परन्तु वहाँ की गर्मी के लिए तो ज्ञानी कहते हैं कि वहाँ के जीवों को लाकर यहाँ की अग्नि की बड़ी भट्ठी में सुलाया तो उसे लगेगा कि मुझे बर्फ की पटिया (गद्दी) पर सुलाया हो ऐसी शीतलता का अनुभव होता है । चैन से छ महीने की नींद आ जाती है । गर्मी की वेदना इतनी भयंकर है; तो मारकाट-छेदन-भेदन की पीडा की तो बात ही क्या करनी ? इस नरक के दुःख अगर आपको ध्यान में रहे तो आपको यहाँ के कष्ट कुछ नहीं लगेगे और आपको ऐसा लगेगा कि अभी सारी सुविधाएँ है, तो अब मैं धर्म का आचरण करूँ । ज्ञानादि गुणों को जीवन में अपना लूँ । इन्द्रियों का दमन कर लूँ । कषायों को दबा दूँ । अभी से शुभ स्थिति में अगर धर्म नहीं करूँगा तो जबतक दुःख की झड़ियाँ बरसेगी तब मैं क्या कर सकूँगा ? और इस मनुष्यभव में जो धर्मध्यान करने की सामग्री मिलती है, वह अन्यत्र कहाँ मिलनेवाली है ?

इस नरक के दुःख आपको प्रत्यक्ष दिखते नहीं हैं, अतः आपको पाप करने का मन होता है । यहाँ आप एक सामान्य अपराध करते हो तो जेल में जाना पड़ता है । हथकड़ी पहननी पड़ती है । पुनः ऐसा अपराध करते नहीं है । हम आपसे कहते है कि - 'देवानुप्रियों ! धर्मध्यान कीजिए ।' तो आप बहाना करते है कि साहब ! मेरे पास समय नहीं है । कामधन्धे की बहुत दौड-धूप है । मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है । यहाँ कैसे बहाने करते हो ! नरक में ऐसे बहाने नहीं चलेंगे । ब्रह्मदत्त जैसा चक्रवर्ती अपनी प्राणप्रिय पटरानी कुरुमती की आसक्ति में फँसा । और मरकर नरक में गया । वहाँ उसे यहाँ के कौन-से बहाने ने बचाया ? नरक में जाकर चीखने लगा कि - 'हे कुरुमती ! मुझे बचाओ !' परन्तु यहाँ कुरुमती उसे बचाने न गई ।

समझदारी सहित जो आत्मा सहती है, वह कर्मों की निर्जरा करती है और नरक में स्थित मिथ्यात्वी अज्ञान अवस्था में कर्म के बन्ध करते हैं । सीताजी ने चाहे कैसे भी कष्टों को भी हँसते हुए सहकर आर्तध्यान-रौद्रध्यान न किया और धर्मध्यान किया, तो जीवन को अमर बना गये । महान पुरुषों और सतियों के जीवन से प्रेरणा लेकर हम दुःख का सहर्ष स्वीकार करना सीखे मगर सामना नहीं करेंगे । एक बात निश्चित है कि हम अल्प पुण्य लेकर आये है, अतः संसार के तमाम संयोग या संसार के तमाम मनुष्य हमें किसी काल (समय) सर्वथा अनुकूल बननेवाले ही नहीं है, संसार के जीव संयोगों को परिवर्तित करने जाते हैं । और इससे असमाधि में सारा जीवन बीता देते है । परन्तु संसार पिता के मार्ग से चलनेवाला अपने मन के झुकाव को ही फेर देता है । इस प्रकार जीव को जिनाज्ञान में जोड़कर जीवन जीने की कला सीखिए । अधिक अवसर आने पर ।

में बीताऊँ, उनकी यह भावना बहुत पवित्र थी, परन्तु कुल परंपरा यह थी कि राजा की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र का राज्याभिषेक कर उसे राजा बनाया जा सकता है। इस कुल-परंपरा में परिवर्तन उनके कुलगुरु की आज्ञा के बिना नहीं होता था। उनके कुलगुरु वशिष्ठ ऋषि थे। दशरथराजा ने कुलगुरु वशिष्ठ को बुलवाकर उनकी यह समस्या प्रस्तुत की। बहुत सोचने के बाद वशिष्ठ ऋषि ने कहा - "चार वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र और ब्राह्मण - गुरुगण को बुलवाकर अगर यह बात अच्छी लगे तो आप राम को तिलक कर राजा बना सकते है।" प्रत्येक धर्म में गुरु का स्थान तो आगे हैं। यहाँ इस बात में यह बताते हैं कि अगर गुरु को यह बात पसन्द आ जाय, तो फिर कार्य करने में हिक्कत (परेशानी) नहीं है, गुरु जो कहते हैं, वह आगे-पीछे का विचार कर के कहते हैं।

आज का दिन भी हमारे परम उपकारी, जीवन-रथ के सारथी, शासन के चमकते सितारे **स्व. आचार्य बा.ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब की** गुण-गाथा गाने का पवित्र दिन है। पूज्य गुरुदेव का जन्म हुए संवत २०४२ के कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष-११ के दिन को आज सौ वर्ष पूरे हुए, इसलिए 'जन्म शताब्दी' का महान दिन है। इस पृथ्वी के पट पर अनेक जीव जन्म लेते हैं और मरते हैं, परन्तु दुनिया उन्हें याद करती है, उनके गुण गाती है कि जिन्हें जीवन जीना आया है। वे जीवन जी गये और हमें जीवन जीने की कला सिखा कर गये, तो उनके गुणों की सौरभ आज भी महक रही है। आज हम पू. गुरुदेव को याद कर उनके गुणों का स्मरण करते हैं, क्योंकि उनका मुझ पर अनन्त-अनन्त उपकार हैं। इस पंचम आरे में तीर्थंकर या केवली भगवन्त, मनःपर्यवज्ञानी या परम अवधिज्ञानी कोई नहीं है। हमारे लिए यदि कोई आधारभूत हो तो जिनवाणी और जिनवाणी का मंथन कर सत्य समझानेवाले गुरु भगवन्त हैं। संत जीता-जागता तीर्थ है। अगर गुरुदेव मिले न होते तो यह जीवन-नैया भवसागर में कहीं भटकती होती। सागर में खड्डे-टेकरे-चट्टानों के साथ नौका टकरा न जाय इसके लिए दीप मीनार यह सूचित करता है कि इस ओर ख़तरा है, अतः सावधानी रखिए। हमारा यह जीवन एक नौका-समान है। यह नैया क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चट्टानों के साथ टकराते रहते हैं। गुरु भगवन्ते दीप-मीनार बनकर हमें सूचित करते हैं कि- "हे, आत्माओं ! आप इस रास्ते मत जाईए।" वह नौका अगर चट्टानों के साथ टकरा जाय और टूट जाय तो नौका में बैठे लोगों का एक भव बिगड़ता है, परन्तु हमारी जीवननौका अगर कषायोंरूपी चट्टानों से टकरा गई तो भवोभव बिगाडता है।

मेरी नैया माँगे सहारा सहारा किसी न किसी दिन आशा है पहुँचेंगे किनारे.
मेरी जीवन-नैया मेरे भरोसे, आँधी भयंकर चढ़ी है आकाश,
हो... बार-बार क़्या वे उछल रहे नीर खारे... मेरी नैया...!

नौका कितनी भी अच्छी हो, परन्तु नाविक न हो तो नौका तैर सकेगी नहीं, उसी प्रकार यह जीवन एक नौका है और गुरुदेव उसके नाविक हैं । यह आत्मा अज्ञान की आँधी में फँस गयी थी, उसे गुरुदेव ने ज्ञान का प्रकाश दिया । मिथ्यात्व की ग्रंथी को तोड़कर सम्यक्त्व पाने की राह दिखाई । सच कहुँ तो गुरुदेव जीवन में के सच्चे मार्गदर्शक हैं । घड़ा मिट्टी में से बनता है, परन्तु वह बना कैसे ? कुम्हार मिट्टी लाता, उसमें पानी डालकर उसका पिंड बनाता, फिर उसे चाका (चक्र) पर चढ़ाता, चाके को घुमाता और घड़े का आकार बनाता । अन्त में कच्चे घड़े को अग्नि में पकाता तब घड़े की क़ीमत होती है । हीरा खान में पड़ा हो तबतक उसका मूल्य नहीं होती । ज़ोहरी उस कच्चे माल को ले आये, उसे घिसवाये, सान पर चढ़ाये और उसमें पासा (आकार) बनाये, तब उस हीरे का मूल्य अनेक-गुना बढ़ जाता है । सर्कस में जंगली जानकर कैसे आश्चर्यजनक करामाते दिखाते हैं ? अगर उन जानवारों को ट्रेनींग देकर अभ्यास न करवाया हो, तो उनका विकास (शिक्षा) हो सकता नहीं है और पराक्रम दिखा सकते नहीं हैं ।

❑ गुरु अर्थात् नूतन जीवन के नवनिर्माता :

बस, इसी प्रकार गुरुदेव शिष्यों के जीवन का नवसर्जन करते हैं, उसे शिक्षित करते हैं । अज्ञान, असंस्कारी जीवन को घिस-घिसकर सुसंस्कारी, गुणवान और पराक्रमी बनाते हैं और उसके जीवन का नवंनिर्माण करते हैं । वाल्मिकी ऋषि का पूर्वजीवन कैसा था ? वह भयानक लूटेरा था । अज्ञान, असंस्कारी और निरंकुश था । दूसरे जीवों को परेशान करता था, परन्तु उसे भाग्योदय ने जंगल में पवित्रता की मूर्ति समान नारद से मुलाकात (भेट) हुई । पहले तो उनके सामने उदंडता भरा व्यवहार किया, मगर नारद ऋषि ने समयोचित उपदेश दिया, तो उसकी आँख खुल गयी । उसका हृदय-परिवर्तन हो गया । वह नारदमुनि का शिष्य बन गया; समय जाते ही वह ब़ाल्मिकी ऋषि बन गया । यह सारा प्रभाव गुरुदेव नारदऋषि का था । परदेसीराजा का जीवन कितना असंस्कारी, अज्ञान-(अशिक्षित) और हिंसामय था ! एक बार गुरु केशीस्वामी का समागम हुआ तो उनका पापमय जीवन पवित्र बन गया । गुरुदेव ने उन्हें संस्कारी बनाया । उनकी शिक्षा ऐसे हुई कि अपनी पत्नी ने उन्हे विष दिया फिर भी उस पर क्रोध या गुस्सा न किया । उसका दोष न देखा बल्कि कर्म का उदय मानकर कैसी अपूर्व क्षमा रख सके । गुरुदेव ने शिष्य के जीवन का कायाकल्प करते हैं ।

सच्चे गुरु वही है कि जो अन्धकार में से प्रकाश में लाये । कभी शिष्य भूल करे तो गुरु उसे प्रायश्चित्त देकर उसे सत्य समझाकर उसकी आत्मा की शुद्धि कराते हैं । परदेसीराजा तीसरा नमोत्थ्थुणं बोलते हुए क्या कहते हैं - "अहो, हे गुरु भगवन्त ! आप यदि मुझे मिले न होते तो मेरी क्या गति होती ? आज इस उपसर्ग

में भी, मुझे जो क्षमा रही है यह मेरी नहीं आपकी है, यह पावर (ताक़त) आपका है।'' बन्धुओं ! आपके घर में जो लाइट जल रही है, वह किससे जलती है ? पावर हाउस के साथ कनेकशन जुड़ा है, तो चाहे कितने भी दूर होंगे तब भी लाइट जल उठेगी और पावर हाउस के पास में झोंपड़ी होगी मगर कनेकशन जुड़ा नहीं होगा तो पास में बसने पर भी अन्धेरा रहेगा। इसी प्रकार पू. गुरुदेव की आज्ञा, उनकी शिक्षा के साथ यदि कनेकशन जोड़ा होगा, तो हमारा जीवन प्रकाशित हो उठेगा और कनेकशन जुड़ा नहीं होगा तो उनके सानिध्य मे बसने पर भी इस जीवनरूपी झोंपड़ी में अन्धेरा रहनेवाला है। ऐसे गुरुदेव का अनन्त-अनन्त उपकार हैं।

जिस गुरुदेव ने हमारे संसार में डूबती नौका को किनारे पर लाकर संयम के सागर में तैरता किया है, उस गुरुदेव के उपकारों को कैसे भुलाया जा सकता है ? माता-पिता का, सेठ का उपकार इस जन्म (भव) तक सीमित है मगर गुरुदेव का उपकार तो भवोभव तक है। माता-पिता तो मात्र जीवन देते हैं, जबकि गुरुदेव तो सुन्दर तरीके से जीवन जीने की कला सिखाते हैं। परन्तु ये सारे भाव जीवन में कब आते ? शिष्य में विनय गुण हो तो। जिस शिष्य में विनय का गुण प्रधान है, उसमें निरहंकारता, नम्रता, मृदुता, सरलता, सेवा, भक्ति और समर्पण भाव आते हैं। विनय से कीर्ति, शास्त्र-ज्ञान और जल्दी से मोक्ष की प्राप्ति होती है, विनय शिष्य के जीवन-महल की नींव हैं। अगर उसके जीवन-महल की विनय की नींव मजबूत है तो उसमें सेवा, दया, क्षमा, समता आदि सद्गुण आनेवाले हैं। कहा है कि - *"विनयायता स्व गुणाः सर्वे।"* समस्त गुण विनय के अधीन है। विनय से मनुष्य संसार में भी लोकप्रिय बन जाता है। विनय का महत्त्व बताते हुए 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है कि -

तहेव सुविणीअप्पा, लोगंसि नरनारीओ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महायसा॥

- अ.-९, उ.-२, गा.-९

संसार में जितने नर-नारी हैं, वे सुख-सम्पन्न, समृद्ध और महायशस्वी दिखते हैं। गुरुदेवों को विनय-भक्ति से उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कौन शिष्य ऐसा हो कि जो गुणों से समृद्ध, महायशस्वी न बना हो ? अर्थात् बनता ही है ? विनय तो एक ऐसा आभूषण है कि जिससे शिष्य का जीवन, गुण, ज्ञान, यश आदि से प्रकाशित हो उठता है। उसके कारण सारे गुण खिल उठते हैं। मेरे जीवन में अमी वर्षा बरसानेवाले असीम उपकारों की वर्षा करनेवाले पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.स. में विनय का ऐसा अद्भुत गुण था। जैनशासन के नभोमंडल में अनेक तेजस्वी हीरे और वीर जैसे प्रकाशित रत्नों ने संयम और तप की साधना द्वारा इस पृथ्वी पर

प्रकाश फैलाया है । उसमें पू. गुरुदेव रत्नचन्द्रजी म.सा. भी जैनशासन के तेजस्वी रत्न थे । नाम जैसे ही गुण उनमें थे । रत्न अपनी किरणें चारों ओर फैलाते हैं उसी प्रकार पू. गुरुदेव ने सम्यक्-संयम की साधना, ज्ञान की आराधना और दर्शन की दिव्यता द्वारा संयम की सुनहरी किरणें चारों ओर फैलायी हैं । आज पू. गुरुदेव का नाम-स्मरण करते हुए रोम-रोम में आनन्द होता है । उस गुरुदेव के जीवन में गुणों का सागर हिलोरे ले रहा था । उनके गुणों का वर्णन करने की मुझ में शक्ति नहीं है फिर भी उनके प्रति भक्ति, उनके अनन्त उपकार मुझे उनकी गुणगाथा गाने के लिए प्रेरित करती हैं । पू. गुरुदेव सचमुच गुरुदेव थे । उनके जीवन में शास्त्रों का, थोकड़ा का, संस्कृत का और न्यायदर्शन का ज्ञान अद्भुत था । वृक्ष की छाया तले विश्राम हेतु बैठनेवाले पथिक के तन, मन से ताप शांत हो जाते हैं, उसी प्रकार पू. गुरुदेव के संयम का, ब्रह्मचर्य का अद्भुत प्रभाव जिस पर पड़ता है उसे अपूर्व शांति और शीतलता का अनुभव होता था ।

पू. गुरुदेव ने मुझे संयममार्ग का जो स्पष्ट, सरल और सर्वोच्च कोटि का मार्गदर्शन दिया है उसे भवोभव भुलाया जा सकता नहीं है । पू. गुरुदेव का जन्म साबरमती नदी के पास खंभात तालुका में स्थित गलीयाणा गाँव में हुआ था । उस गाँव में अधिक आबादी क्षत्रियों की हैं । इस गाँव में बसनेवाले पिता जेताभाई और रत्नकुक्षी माता जयाकुँवर बहन की कोख में संवत्-१९४२ के कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष-११ के पवित्र दिन पू. गुरुदेव का जन्म हुआ था । जिस भूमि में जिस माता की कोख में ऐसे नररत्न पैदा होते हैं, वह भूमि और माता भी धन्य बनती है । **'पुत्र के लक्षण पारणे में'** - इस कहावत के अनुसार, बच्चे का ललाट भाल की रेखाएँ भविष्य के शौर्य की भविष्यवाणी करती थी । उनका नाम रवाभाई था । जैसे छोटे से रव ज़ितने हीरे में भी तेज़ होता है उसी प्रकार इस छोटे से रवाभाई के मुख पर क्षत्रिय के तेज झलकते थे, तथा बहनें जब मथने बैठती तब मथानी बीच में रहना और जैसे दही और पानी अलग करते है, उसी प्रकार जिसके जीवन में बचपन से संसार और संयम की भेद-रेखा समझनी है । ऐसा पुत्र दूज के चन्द्र की तरह बढ़ने लगा । वे दो भाई और एक बहन थे, पाँच वर्ष की आयु माता की ममता और पिता का प्रेम सदा के लिए खो बैठे, फिर चाचा-चाची के आश्रय में बड़े होने लगे ।

❑ सतीजी के स्तवन ने सरजी सद्भावना :

वे अच्छी-खासी ज़मीन-जायदादवाले थे । उनका धर्म स्वामिनारायण का था । उनको पैतृक जैनधर्म नहीं मिला था, फिर भी जैनशासन को समर्पित होकर कैसी सुन्दर साधना और कार्य किये हैं, यह आप आगे सुनेंगे । रवाभाई के जीवन में बचपन से नम्रता, विनय, काम करने का ज़ोश (उत्साह) आदि ऐसे गुण थे कि चाची-चाचा

के भी वे बहुत प्रिय बन गये । उनका खेती-बाड़ी का धन्धा था । चाचा-चाची के प्रत्येक कार्य में साथ-सहकार देते थे । खेती के काम के लिए रवाभाई को अनेकबार वटामण जाना पड़ता था । वैराग्य की प्रथम बोआई वटामण में हुआ था । एक बार किसी कार्यवश वे वटामण में गये थे । वटामण में जिनके घर उतरे थे उनके पास में जैन उपाश्रय था । उस मसय वहाँ खंभात संप्रदाय के एक विद्वान सतीजी पू. मोंघीबाई महासतीजी बिराजमान थे । प्रतिक्रमण करने के बाद आध्यात्मिक भावों से भरपूर एक सुन्दर स्तवन गाया । यह स्तवन रवाभाई ने सुना । उन्हें बहुत पसन्द आ गया । उन्होंने पूछा - "चाचा ! ऐसे मधुर स्वर में भाववाही गीत कौन गा रहा है ?" "भाई ! हमारे पास में जैन उपाश्रय है, वहाँ सतीजी ऐसे सुन्दर गीत गा रहे हैं ।" "चाचा ! हम वहाँ नहीं जा सकते हैं ?" "सूर्यास्त के बाद हम नहीं जा सकते, सुबह में सूर्योदय के बाद जा सकते हैं ।" "हम सुबह में वहाँ जायेगे ?" "हाँ ।" रवाभाई को तो स्तवन सुनने की लगनी लगी । कब सुबह हो और मैं उपाश्रय में जाऊँ !

❑ पाप से भयभीत आत्मा :

रवाभाई रात को सो गये । प्रातः हुआ और रवाभाई जागे । सचमुच उनके जीवन में अज्ञान का अंधकार दूर होनेवाला होगा और सत्य ज्ञान का सुनहरा प्रभाव (प्रातः) प्रकट होनेवाला होगा, इससे उनको स्तवन सुनने की लगनी लगी । रवाभाई सुबह में उपाश्रय में गये, सतीजी को वन्दन कर कहा - "आप रात में जो स्तवन बोलते थे, यह मुझे सुनना है ।" रवाभाई की भावना देखकर सतीजी ने भजन गाया । यह सुनकर उनका हृदय हर्ष के हिलोरे लेने लगा । "आप दूसरा सुनाइए ।" दो-तीन भजन सुने, फिर कहने लगा, "कृपया, आप मुझे कुछ समझाइए ।" उनकी जिज्ञासा देखकर सतीजी ने कहा - "तुम्हें चिंटी (चिंऊँटी), मच्छर, खटमल आदि किसी जीव को मारना नहीं है । हरे पेड़ के पत्ते, फल-फूल तोड़ने नहीं है । इन सब से बहुत पाप लगता है ।" सतीजी का उपदेश उसके हृदय में जड़ (लिखा) गये । उसकी आत्मा गहरे विचार में डूब गई कि सतीजी तो कहते हैं कि संसार के सभी कार्यों में पाप हैं । सच्चा सुख तो इस त्यागी संतों का है । अतः मुझे भी ऐसा सुख प्राप्त करना है । उनकी आत्मा पाप से भयभीत हुई ।

❑ जहाँ परिग्रह वहाँ पाप :

रवाभाई तो दूसरे दिन घर गये । जाकर चाचा-चाची से कहने लगे - "अव मुझे इस संसार में रहना नहीं है । इस पापमय संसार से छूटने के लिए जैनधर्म की दीक्षा लेनी है ।" उनके चाचा-चाची ने कहा - "हमारा धर्म स्वामिनारायण का है । अगर तुम्हें दीक्षा लेनी है तो स्वामिनारायण धर्म का साधु वन । इसके लिए गढ़डा जाकर

दीक्षा ले ।'' रवाभाई को तो एक ही लगनी थी कि मुझे दीक्षा लेनी है । वे गढ़डा गये । जाकर वहाँ के प्रमुख महंत से मिले और पैरों में गिरकर कहने लगे - ''मुझे आपके जैसा बनता है ।'' रवाभाई को देखकर महंत को लगा कि यह लड़का तेजस्वी है, अतः अपने पास बुलाकर पूछा - ''तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? किसलिए महंत बनना है ?''

स्वामिनारायण पंथ के गुरुजी, गढ़डा शहर में आकर बसे, उस पंथ (संप्रदाय) के महंत ने कहा - "अपना हिस्सा लेकर आइए ।

महंत ने रवाभाई से पूछा - ''आपका धंधा क्या है ? जायदाद कितनी है ?'' रवाभाई ने अपनी सारी बातें बता दी, तब महंत ने कहा - ''अगर तुम्हे हमारे जैसा बनना है तो अपने हिस्से की जो जायदाद (संपत्ति) हो, उसे इस गद्दी को सौंप दे, तो तुम्हें दीक्षा मिलेगी ।'' अभी तो आयु मात्र १३ वर्ष की है, फिर भी उनकी बुद्धि कितनी है ? उन्होंने क्या विचार किया ? वे महासतीजी को कहते थे कि-''साधु पैसों को छू नहीं सकते, वाहन में बैठ नहीं सकते और ये साधु तो पास में पैसे रखते हैं । वाहन में बैठते हैं । जहाँ परिग्रह है, पैसा है, वहाँ पाप है । यह त्याग सच्चा नहीं है । यहाँ आत्मा का कल्याण कैसे होगा ?'' तेरह वर्ष के बच्चे में कैसा आत्म-मंथन ! वहाँ उनका मन रमा नहीं, अतः वापस आकर चाचा-चाची से कहने लगे - ''मुझे स्वामिनारायण संप्रदाय की दीक्षा लेनी नहीं है । मुझे तो जैनधर्म की दीक्षा लेनी है ।'' ऐसा कहकर वटामण पधारे । महासतीजी के पास जाकर कहने लगे - ''कृपया मुझे आपका चेला (शिष्य) बनाईए, अब मुझे संसार में रहना नहीं है ।'' सतीजी ने कहा - ''भाई ! हम तो साध्वीजी हैं । [illegible] नहीं रह सकते । अगर आपको दीक्षा लेनी है, तो हमारे गुरुदेव पू. [illegible] के पास खंभात जाईए ।''

❑ **दृढ़ वैरागी बने सच्चे संयमी :**

रवाभाई तो गुरु के आश्रय में पहुँच [illegible] - ''गुरुदेव ! मुझे अपना शिष्य बनाईए । [illegible] ने कहा - ''तुम्हारी भावना बहुत सर्वोत्तम है । [illegible] पहले जैनधर्म का थोड़ा (समय) अभ्यास [illegible] है । दीक्षा तो मोम के दाँत से लोहे के [illegible] पूर्ण तैयारी चाहिए । त्याग के [illegible] तैयारी है । अब मुझे एक [illegible] तो आप के चरणों में मेरी [illegible] सानिध्य मुझे सिद्धि के [illegible]

की माया से मुक्त करवायेगा । आपकी शरण मुझे सत्य की राह पर ले जायेगा । आपके चरण का निवास मुझे आत्मा का प्रकाश प्रदान करेगा ।'' पू. गुरुदेव भावि के छुपे रत्न को पहचान गये कि-'यह आत्मा हलुकर्मी है । वह शासन का रत्न बनेगा ।' रवाभाई ने पू. गुरुदेव के सानिध्य में कुछ दिनों में सामायिक, प्रतिक्रमण सीख लिये । थोकड़ा आदि कंठस्थ किये । वे गुरुदेव से कहने हैं - ''गुरुदेव ! अब मुझे जल्दी से दीक्षा दीजिए ।'' चाचा-चाची की आज्ञा प्राप्त कर ली और संवत् १९५६ के 'वसन्त पंचमी' के दिन खंभात में भव्यतापूर्ण उनका दीक्षा महोत्सव मनाया गया । रवाभाई के गुण देखकर गुरुदेव ने उनका संयमी नाम **'बा. ब्र. पू. रत्नचन्द्रजी महाराज साहब'** रखा । पू. गुरुदेव छगनलालजी म.सा. क्षत्रिय थे और पू. रत्नचन्द्रजी म. सा. भी क्षत्रिय थे ।

दीक्षा लेने के बाद रत्नचन्द्रजी म.सा. पू. गुरुदेव का बहुत विनय करते और उनकी सेवा-भक्ति में सदैव कार्यरत रहते । गुरु-आज्ञा में तो इतने सारे अर्पण हो गये थे कि बस, गुरु-आज्ञा ही मेरा खास (साँस) और वही मेरा प्राण है । वे कभी भी गुरुदेव से दूर रहते नहीं है । उस गुरु-शिष्य को देखकर भगवान महावीरस्वामी और गौतमस्वामी की जोड़ी याद आ जाती ! पू. गुरुदेव के सानिध्य में रहकर संस्कृत, प्राकृत का बहुत अभ्यास किया । साथ में आगम का ज्ञान भी बहुत पाया ।

अर्पणता अजीब नमूना, जिससे पाया ज्ञान खज़ाना,
क्षमा की बेजोड़ मूर्ति गुरुजी, देशा देश में पाये प्रसिद्धि ।

विनय और क्षमा का गुण तो बेजोड़ था । गुरु-शिष्य के बीच क्षीर-नीर जैसा अथाह प्रेम था । संवत् १९९५ के बैसाख, कृष्ण पक्ष-१० के दिन पू. गुरुदेव श्री छगनलालजी म.सा. के कालधर्म (देहान्त) होने से गुरुदेव को बहुत दुःख हुआ । गुरुवियोग बहुत असह्य है । पू. गुरुदेव के कालधर्म होने के बाद खंभात संप्रदाय का नेतृत्व पू. गुरुदेव रत्नचन्द्रजी म.सा. के हाथ में आया । 'खंभात संघ' ने उन्हें आचार्य का पद प्रदान किया, उसी वर्ष गुरुदेव का चातुर्मास साणंद बना ।

❑ जीवन महल में नक्काशी करनेवाले पारंगत कलाकार :

पू. गुरुदेव की ओजस्वी, प्रभावशाली वाणी सुनकर भव्यजीव तप-त्याग के रंग में रंग गये । सचमुच ये चातुर्मास मेरे लिए तो महान याद बन गया । उस चातुर्मास में पू. गुरुदेव ने वीतरागवाणी की ऐसी अमीधारा बरसायी कि मेरे जीवन-रूपी क्षेत्र में वैराग्य का बीजारोपण हुआ । पू. गुरुदेवने उस बीज को सिंचकर आत्मा के क्षेत्र में बहुत विकसित बनाया । पू. गुरुदेव के वैराग्य-रस के झरने बहाती बेशुमार (मुशलधार) वाणी की वर्षा से मेरे हृदय-वीणा के तार झनझना उठे । वे मेरे जीवन के सच्चे कलाकार बनकर जीवन के सच्चे मार्गदर्शक बने । ऐसे तारणहार, जीवन-

नौका के सच्चे खिवैये (नाविक) पू. गुरु भगवन्त का मुझ पर महान उपकार है। ऐसे ज्ञानदाता, संयमदाता, अनन्तानन्त उपकारी गुरुदेव के लिए क्या कहूँ ? उनके गुण इस जिह्वा से गाये नहीं जा सकते हैं और पेन से लिखे नहीं जा सकते हैं। ऐसे उत्तम महान आत्मार्थी साधन थे। कषायों की कुड़ेदानी मैं और अज्ञान के अन्धकार में भटकते मुझे तथा मेरी गुरु बहन पू. जसुबाई महासतीजी के वैराग्य-वारी का सिंचन कर तप-त्याग के बगीचे में आत्मा का सच्चा दिग्दर्शन करवाकर संवत् १९९६ के बैसाख महीना, शुक्ल पक्ष-६, सोमवार के दिन इस गुरुदेव ने सच्चे जीवन का प्रकाश देकर पाँच महाव्रतरूपी अमूल्य रत्न दिये हैं। इस प्रकार को कैसे भुलाया जा सकते हैं ? पू. गुरुदेव ने संयमीजीवन का अमूल्य दान किया, इतना ही नहीं संयमीजीवन की अनेक कलाएँ उस गुरुदेव ने सिखायी हैं। वात्सल्यता और प्रसन्नता का प्रपात सदैव उनके हृदय से बहता था। उनके जीवन-बाग में सदैव गुणपुष्पों की पमराट (सुगन्ध) फैलती थी। निर्मल जल जैसा जीवन-प्रवाह छोटे-बड़े सभी को आनन्दित कर देता। उनके गुण वैभव की तो बात ही क्या करे ? क्षमा, सरलता की तो साक्षात् मूर्ति देख लीजिए ! ऐसे गुणसागर पू. गुरुदेव के प्रभावशाली प्रवचनों से जैन-जैनत्तर धर्म पा गये हैं। अधर्मी धर्मी बन गये हैं। उनकी शांत मुखमुद्रा देखकर क्रोध से धम-धम करता आया मनुष्य भी पानी जैसा शीतल बन जाता। पू. गुरुदेव अजमेर के साधु सम्मेलन में पू. गुरुदेव छगनलालजी महाराज साहब के साथ गये थे और वहाँ सुन्दर योगदान दिया था तथा इस मुम्बई नगरी में चातुर्मास कर जनता को बहुत जागृत किया था।

❑ **मृत्यु-महोत्सव का आनन्द :**

सुरत में हर्षदमुनि को दीक्षा देने के बाद सुरत, कठोर आदि चातुर्मास कर संवत् २००४ में पू. गुरुदेव खंभात की ओर आते थे, तब मार्ग में किसी ने पूछा कि - "आप का यह चातुर्मास कहाँ है ?" "मेरा यह अन्तिम चातुर्मास खंभात में है।" ऐसा उन्होंने विहार में कहा था। मुझे अहमदाबाद चातुर्मास की आज्ञा दी तब कहा कि-"मैं आपको यह अन्तिम आज्ञा देता हूँ।" उनके शिष्य फुलचन्दजी म.सा. के ३५ उपवास भादो, शुक्ल पक्ष-१० के दिन पूर्ण होते थे। उन्होंने कहा - "गुरुदेव ! मुझे शाता है। ४१ उपवास कराईए न !" तब कहा कि - "मैं आपको यह अन्तिम पारणा करवाता हूँ।" उस चातुर्मास में गुरुदेव ने बाल-मरण और पण्डित-मरण 'उत्तराध्ययन सूत्र' का पाँचवां अध्ययन पढ़ा। मानो स्वयं को पण्डित-मरण में मरना होगा, इसलिए ही यह अध्ययन लिया होगा, अन्यथा हर चौमासे में लगभग भगवती का अधिकार पढ़ते। पू. गुरुदेव को तो अपना अन्तिम समय सुझ (याद) आया था, अतः स्वयं ये सारी तैयारियाँ कर ली थी। भादो, शुक्ल पक्ष-१० के दिन अपने शिष्यों को बहुत उपदेश दिया। उस दिन प्रतिक्रमण के बाद रात को नौ बजे शर्दी

की लहर आ गयी । हृदय पर असर होने लगा । उन्होंने संघ से कह दिया कि - "मेरे चारित्र में ज़रा भी दाग़ लगना न चाहिए । यह विशेष ध्यान में रखना ।"

अन्तिम समाधि अपूर्व ही झलकती, परम शांति के शब्द उच्चरते,
स्वरूप दशा की मौज् को लूटे, समाधि भाव से देह की छूटे ।

पू. गुरुदेव तो स्वरूप दशा की मौज़ को लूटते, आत्म शांति में झुलते समाधि भाव में स्थिर हुए । अपने शिष्यों से कहा - "आप स्वाध्याय नवकार मंत्र बोलिए ।" अन्त में सर्वजीवों को खमाकर यावत जीवन का संथारा कर चार ऊँगलियाँ उठाकर यह संकेत किया कि यह नश्वर देह चार बजे छूटनेवाला (मुक्त) है । 'पू. गुरुदेव का स्वास्थ्य बिगड़ा है' यह समाचार मिलते ही खंभात की जनता रात में ही पू. गुरुदेव के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ी । आत्मभाव के हिंडोले में झुलते हमारे संयमीजीवन के सच्चे सुकानी, माता जैसा वात्सल्य और पिता जैसा प्रेम देनेवाले पू. गुरुदेव भादो, शुक्ल पक्ष-११ के दिन प्रातः चार बजे नश्वरदेह को त्यागकर सबको रोते छोड़ इस क्षणभंगुर (फानी) दुनिया से चिर-बिदा लेकर चले गये । त्रंबावटी की तिजोरी में स्थित रत्न नष्ट हुआ । स्तंभनपुरी का स्तंभ टूट गिरा । खंभात में हाहाकार मच गया । प्रातः अहमदाबाद में इस भयानक दुःख समाचार मिले । सुनते ही कलेजा चुर-चुर हो गया । अरे ! हृदय के आकाश में चमकता चाँद क्या अस्त हो गया ? बरगद के विश्राम, प्रेरणा के पीयूष पिलानेवाले, हमें निराधार छोड़कर गुरुदेव चले गये ? रत्न-समान तेजस्वी, ओजस्वी आचार्य गुरुदेव के इस अवनी को अलविदा कर चले जाने पर जैनशासन में बहुत बड़ी खाई पड़ गयी है । गुरुदेव तो चले गये, मगर गुणों की सुगन्ध छोड़ गये हैं ।

पू. गुरुदेव न मिले होते तो यह जीवन-नौका इस भीषण संसार में कहीं भटक रही होती । इस संसार से डूबती नौका को बाहर निकालकर संयमीजीवन की अनमोल भेट (उपहार) देने वाले, मुरझानेवाली जीवनबाड़ी को अभीवर्षा के सिंचन से नवपल्लवित करनेवाले, अज्ञान के आलम में भटकते जीवन को ज्ञान का प्रकाश देनेवाले, मिथ्यात्व के महावन में भटकती अबुध बाला को सच्चा मार्गदर्शन देनेवाले, संसार के शृंगार उतारकर, संयम के साज-सजाकर मोक्षमार्ग के सोपान कर चढ़ानेवाले, अनन्त-अनन्त उपकारी गुणनिधि पू. गुरुदेव के उपकारों को कैसे भुलाया जा सकता है ? आज अरिहंत प्रभु की अनुपस्थिति में गुरु यह जीवन के आधार हैं ।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं, इसलिए गुरुदेव को कोटि-कोटि नमस्कार है । गुरु द्वारा परम गुरु-समान प्रभु की प्राप्ति हो सकती है । गुरु की उपेक्षा

संसार में मेहमान की तरह रहिए

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अहिंसा के अवतार, अनन्तकरुणा के सागर, तीर्थंकर परमात्मा ने भव्यजीवों का भवभ्रमण रोकने के लिए आत्मकल्याण का राहबरी मार्ग दिखाते हुए फरमान किया है कि-''हे भव्यजीव ! अगर आपको सच्चा सुख प्राप्त करने की लगनी लगी हो तो सबसे पहले अठारह पाप-स्थानक से लौट आईए । आस्रव का घर छोड़कर संवर के घर में आइए । मिथ्यात्व के अन्धकार दूर कर सम्यक्त्व की सर्चलाइट का प्रकाश प्राप्त कीजिए । जबतक अठारह पाप का त्याग नहीं करेंगे, आस्रव का घर नहीं छोडेंगे और सम्यक्त्व का प्रकाश प्राप्त नहीं करेंगे, तबतक मोक्ष का राहबरी (पथिक) मार्ग नहीं मिलेगा, भवभ्रमण नहीं टलेगा और सच्चा-सुख भी नहीं मिलेगा । सच्चा-सुख तो मोक्ष में है । इस संसार का सुख दुःखमिश्रित सुख है । बड़े छ-छ खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती हो फिर भी उनके सुख के पीछे दुःख की ज्वालाएँ तो जली होती है । देखिए जहाँ जन्म है, वहाँ मरण का तिनका है । संयोग का सुख है, वहाँ वियोग का तिनका है । ऐसा संसार का स्वरूप समझकर आप संसार से अलिप्त रहिए, उदासीन भाव से रहिए । मैं आप सब से पूछती हूँ कि-''आप संसार में किस प्रकार से रहते हैं ?'' आसक्त भाव से रहते हैं या अनासक्त भाव से रहते हैं ? आपके जीवन पर से तो मुझे ऐसा लगता है कि आपको संसार में ठीक तरह से रहना भी नहीं आता है । जिस संसार में रहना आता है वह जब चाहता है तब संसार से मुक्त हो सकता है । दस श्रावक संसार में रहे थे मगर उन्हें रहना न आया, तो संसार में रहकर एकावतारी बन गये ।

बन्धुओं ! जल्दी से मोक्ष प्राप्त करने का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ अगर कोई मार्ग हो तो त्यागमार्ग है, परन्तु अगर आप त्यागमार्ग को अपना सकते न हो और संसार में रहना पडे, इस प्रकार अनिच्छा से रहते हो, तो कैसे रहोगे ? अतिथि की तरह रहोगे । **'संसार में मेहमान बनकर रहिए मगर मालिक बनकर मत रहिए ।'** मेहमान बनकर किसलिए रहना है ? यह मैं आपको समझाती हूँ । सुनिए, उदा. स्वरूप मेहमान और मालिक दोनों घर में प्रवेश करते हैं, तो दोनों में फ़र्क है या नहीं ? अतिथि मेहमान बनकर रहता है, मालिक बनकर नहीं । मेहमान तो मज़े से रहता है । मालिक के सिर पर बोझ होता है । आपके घर में मेहमान आ जाय

और रात को घर की दीवार टूट जाय, तो मेहमान को कोई चिन्ता होगी ? चिन्ता तो घर के मालिक को ही होगी न ? उसकी नीन्द हराम हो जाय परन्तु मेहमान तो आराम से सोता है । और वह तो सुबह होने पर चलना बनता है । घर का मालिक दूध माँगे तब पानी भी देर से मिलता है, जब मेहमान तो पानी माँगे तो कैसर के दूध का ग्लास (प्याला) हाजिर हो जाता है । मालिक के मन में ममता का भाव होता है जबकि मेहमान को ममता होती नहीं है, अतः वह घर छोडते समय उदास या दुःख होता नहीं है । इसीलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि-"हे भव्य-जीवों ! आप संसार में मेहमान की तरह रहिए । फिर देखिऐ, कैसा आनन्द आता है ? हमारे परम उपकारी भगवन्तों ने भी मनुष्य को संसार में रहना पडे तो किस प्रकार रहना चाहिए इसके लिए मार्गदर्शन देते हुए कहा है कि - *"जहा पोम्भं जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा ।"* - जैसे कमल कीचड़ में और पानी में उत्पन्न होता है मगर वह पानी में लेपाता (फँसता) नहीं है, परन्तु वह पानी और कीचड़ से अलिप्त रहता है, वैसे जल मल और भँवर से भरे संसार के सरोवर में प्रत्येक मनुष्य को कमल की तरह अलिप्त रहना चाहिए । तीर्थंकर भगवन्त और दूसरे महापुरुष भी इस संसार सरोवर के कीचड़ में उत्पन्न हुए थे, परन्तु उनको जीवन जीने की कला आयी थी । इसलिए संसार में रहे, तबतक मेहमान बनकर रहे और निकलने का मन हुआ तब संसार छोड़कर निकल गये । आप सभी क्यों निकल सकते नहीं है, उसका एक ही कारण है कि आप मेहमान बनकर रहते नहीं है, परन्तु मालिक बनकर बैठ गये हैं । आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा ये चार संज्ञाओं ने ऐसा साम्राज्य जमाया है और उसके पाश में ऐसे जकड़ लिए है कि उससे छूटना मुश्किल है । जीव उससे छूटने जाता है कि तभी वे संज्ञाएँ ऐसा सताती है कि जीव बाहर निकल सकता नहीं है; फिर भी न छुटा जाय ऐसा नहीं है । अगर न छूट सकते हो तो महापुरुष कैसे छूट सकते ? अफसोस की बात है कि आप इतना सारा सन्तों का समागम करते हो, व्याख्यानवाणी सुनते हो, सामायिक आदि धर्मक्रियाएँ करते हो, उपवास, आयंबील आदि तप करते हो, फिर भी ममता छूटती नहीं है । मेहमान बनकर रहना सीखते नहीं, परंतु याद रखिए कि - **'जहाँ ममता है वहाँ मार है, जहाँ विषय कषाय और ममत्व है वहाँ संसार है ।'** आप और हम वीतराग-भाव प्राप्त करने के लिए इतनी सारी मेहनत कर रहे हैं, मगर यदि वीतरागत्व न आता हो तो समझ लेना कि अभी ममत्व की सड़न मूल से नाबूद हुआ नहीं है । मूल में ही सड़न हो वहाँ वीतराग भाव का वृक्ष कैसे नवपल्लवित होगा ? आप संसार में रहो, तो जिह्वा की तरह रूखे-शुष्क बनकर नीरस-भाव से रहिए । नौका सागर के पानी में रहती है, मगर सागर का पानी नौका में भर न जाय इसकी नाविक बहुत सावधानी रखता है । सावधानीपूर्वक सागर की सफ़र करता है, तो क्षेमकुशल सामने किनारे पहुँच जाता है । इसी

प्रकार ज्ञानी कहते है कि - **"आप संसार में रहे हो, मगर आपमें संसार का प्रवेश न होने दीजिए ।"** संसार आपमें प्रवेश न कर जाय इसके लिए आत्मरूपी नाविक को सावधानी रखनी चाहिए ।

यह संसार काजल की कोठरी जैसा है । अगर आपमें उसे छोडने का सामर्थ हो तो छोडने जैसा है । शायद अगर न छोड़ सको तो उसके अनेक रास्ते महान पुरुषों ने बताये है । उसमें से ही यह एक सरल मार्ग है कि संसार में *"वसनीयं अतीथिवत्"* अतिथि की तरह बसना । महानपुरुषों के हृदय का ध्वनि ऐसा है कि **'इस धरती की धर्मशाला में मालिक नहीं बल्कि मेहमान बनकर रहिए । संसार में रहो मगर रमो (लीन) नहीं; विश्व में बसो मगर हँसो नहीं ।'** मेहमान बनकर रहने का संदेश यही है कि ममता त्याग कर रहिए । मालिक ममता का प्रतीक है, जबकि मेहमानवृत्ति ममत्व के अभाव की प्रतीति कराता है । मेहमान बनकर आया मनुष्य सात माले की आलीशान इमारत को छोड़कर जाय तो भी उसे दुःख या खेद न होगा ? नहीं । वह समझता है कि मैं उसका मालिक हूँ ही कहाँ ? मैं तो मेहमान बनकर आया हूँ, फिर दुःख किसलिए होगा ? सन्त राजभवन जैसे उपाश्रय छोड़कर जाता है, तो उसे खेद होगा ? नहीं । क्योंकि वह मालिकी रखते नहीं है । मेहमान सात माले के बंगले को क्षणभर में छोड़ सकता है, जबकि मालिक को उसका टूटा-फूटा घर छोड़ने का विचार आये तो भी वह काँप उठता है । क्योंकि मेहमान महल में रहता है, मगर रमता नहीं है, जबकि मालिक उसके टूटे-फूटे घर में रहने के साथ रमता है । एक में मम का अभाव है, जबकि दूसरे में मम की मोहिनी ठूस-ठूसकर भरी है ।

बन्धुओं ! आत्मा स्वभाव में आये तब उसे अपना ज्ञान होता है । देवों को भी दुर्लभ ऐसा मनुष्यजन्म प्राप्तकर मनुष्य ने आत्मा का विचार करना है । आत्मा का विचार अर्थात् आत्मा में सलामती स्वभाव में रहने में है । विभाव मे जाने से जीव की आपत्ति की कोई सीमा नहीं रहती । जो आत्मा सदा स्वभाव में रहता है, वह महान सुखी बनता है और विभाव में जाय तो दुःख की सीमा ही नहीं रहती है । अवधू सदा मगन में रहना । स्वभाव में मग्न रहना आत्मा के लिए मंगलकारी है । और विषय- कषायादि भाव में जाना अमंगलकारी है । अतः बन्धुओं ! प्रतिदिन सुबह में उठकर आत्मस्वरूप की भावना भानी (होनी) चाहिए कि-'अहो ! मैं ज्ञान, दर्शन, चारित्रमय अनन्तशक्ति का स्वामी आत्मा हूँ । मुझे इस पुद्गल का संग क्यों ? मुझे इस पर पुद्गल का संग किसलिए करना चाहिए ? चेतन का पूजारी अचेतन की पूजा करेगा ? उसके पीछे पागल होगा ? इस जड़ शरणागति का स्वीकार करूँगी तो मैं जीव मिटकर शिव कब और कैसे बन सकुंगा ? विषय-

कषाय में मग्न बनकर जड़ का दास बन गया हूँ । मैं जड़ का दासत्व छोड़े बिना आत्मा का उत्थान कैसे होगा ?

देवानुप्रियों ! बोलिए । आपको २४ घण्टों में ०। (पा) घण्टा भी ऐसी चिन्ता होती है ? नहीं । परन्तु जड़ की चिन्ता कितनी ? चौबीस घण्टों में एकाद घण्टा भी कषाय से अलिप्त रहते है ? ऐसे पवित्र वीतराग भुवन में आकर भी कषाय का त्याग होता है ? उपाश्रय में आये और सन्त ने सामने न देखा । जी न कहा तो मन में कैसे भाव जगेंगे ? कितनी दूर से दौड़कर दर्शन करने आया, परन्तु महासतीजी ने मेरे सामने भी न देखा ! क्या उपाश्रय में जाने जैसा है ? धर्मस्थानक में आकर भी क्षमादि गुणों का कितना पालन होता है ? सच कहुँ तो अभी कषाय का ड़र लगा नहीं है, इसिलए कषाय का जरा-सा निमित्त मिलते ही कषाय का नाटक रचते हैं । कषाय से बचानेवाले स्थान मे आकर भी कषाय-रूपी कसाई से बचने का प्रयत्न नहीं करते हैं तो समझ लेना कि जहाँ नाममात्र कषाय नहीं है ऐसा अकषायी स्थान मोक्ष हमारे से बहुत दूर है । मात्र मोक्ष की बातें करने से, मोक्ष की माला जपने से मोक्ष नहीं मिलेगा, परन्तु मोक्ष के साधनभूत क्षमादि धर्म के पालन से मोक्ष मिलता है । सामान्य कारण में कषाय आ जाता है तो निर्वाण आपके पास नहीं आयेगा । वाघ-भेडिया-सिंह-बिच्छू आदि जंगली और विषैले पशुओं के भय से भी अधिक विषय-कषायोंरूपी जंगली और विषैले पशुओं का हमें भय होना चाहिए । समकिती आत्मा कषायभीरू हो, वह विषय-कषायरूपी शत्रुओं से सावधान रहे । विषय-कषाय का सेवन उसे खटके । वह सदा ऐसा चाहता हो कि अब इस विषय-कषाय से मुक्त होऊँ तो अच्छा । और जो वो विषय-कषाय से मुक्त हुए हो, उसका सच्चा सेवक बनकर रहे । जो विषय-कषाय का त्याग करने का उपदेश दे वह समकिती आत्मा को बहुत अच्छा लगता है । विषय-कषाय से बचने का जिसमें से उपदेश मिलता है ऐसे शास्त्रों पर उसे बहुत मान हो । ऐसे शास्त्र सुने, पढ़े और आचार मे उतारे, परन्तु विषय-कषाय का पोषण करनेवाले शास्त्र सुने या पढ़े नहीं । विषय-कषाय बढ़े ऐसे निमित्तों से दूर रहने का प्रयत्न करे । जिससे विषय-कषाय मन्द हो ।

बन्धुओं ! मित्रता करें तो उसके साथ करो कि जिसके विषय-कषाय मन्द हुए हो, परन्तु आपने तो ऐसे के साथ मित्रता की है कि आपका मोह मरे नहीं, परन्तु आपको रोज़ मोह के मार पड़ते रहे । मोह को मारना यानी विषय-कषाय को मारना । आत्मा को अकषायी बनाने और अपने स्वभाव में लाने इस मनुष्यभव प्राप्त कर जोरदार पुरुषार्थ करना पडेगा और भगवान के वचनों पर श्रद्धा रखनी पड़ेगी । इन विषय-कषायरूपी शस्त्रुओं को जीतने के लिए आत्मा में अनन्तशक्ति

पड़ी हुई है । परन्तु आत्मा ने अपनी शक्ति का ख्याल किया नहीं है । पाँच इन्द्रियों के विषय को वश होकर ऐसा पराधीन बन गया है कि अनन्तशक्ति होने पर भी इन्द्रियों के हुक्म के अधीन बन गया है और उसकी गुलामी करता है । जैसे कोई करोडो़ की संपत्ति का स्वामी बड़ा धनवान सेठ है । किसी रोग के कारण उसके शरीर की शक्ति मन्द हो गयी, याददास्त कम हो गयी, अब हिसाब में लेन-देन में याद रहता नहीं है, अतः लड़के कोठी के मालिक बन गये । सारा हिसाब-किताब और तिज़ोरी सँभाल ली । पिता के कब्जे में कोई संपत्ति रही नहीं । अब पिता को पान खाने का मन हुआ, अगर धर्मादा में दो पैसे खर्च करने का मन हुआ । उस समय लडके के पास पैसे की माँग की, परन्तु लडका एक दमडी भी देता नहीं है । पैसे के लिए बाप बिनती करता है, मगर लडका दे नहीं तो उस समय सेठ को कितना दुःख होगा ? क्योंकि काला-बाजार कर करोडों रुपये स्वयं कमाया है । अपनी संपत्ति है मगर लड़के दबाकर बैठ गये है, क्योंकि सत्ता लड़के के हाथ में आ गयी है ।

अब दूसरी तरह से सोचे । किसी सेठ की कोठी बहुत अच्छी चलती है । पैसों की कमी नहीं है । पैसा बढ़ा तो सेठ प्रमाद में पड़ गये । खाना-पीना-घुमना-फिरना और विषयों में मौज़ करना, अतः कोठी का सारा संचालन मुनीमों ने संभाल लिया । फिर सेठ की दशा कैसी हो यह जानते है न ? सेठ की दशा पराधीन बन जाय और दशा ऐसी हो जाय कि संपत्ति और कोठी सेठ की, मगर हुक्म मुनीमों का चलता है । सेठ को कोई काम हो तो स्वतंत्र रूप से अपनी मर्जी अनुसार न कर सकते थे, क्योंकि उन्हें मुनीमों की राय लेनी पडती है । पैसा अपना मगर पूछना पड रहा है मुनीमों को । यह कैसी पराधीन दशा है ?

हमारी आत्मा की दशा उस बाप और सेठ से भी बुरी है । आत्मा अनन्तशक्ति का स्वामी है । बड़े चक्रवर्ती या इन्द्र से भी महर्धिक है । पाँच इन्द्रिय और मन ये सब इसके नौकर है । आत्मा जो हुक्म देती है, उसे उन्हें उठाना पडता है, परन्तु आत्मा की दशा ऐसी हो गयी है कि स्वयं अपने स्वरूप का ज्ञान भूलकर पुद्‌गल की पूजा में औप पर के झमेले में पड़ (फँस) गया है । अपनी शक्ति का होश खोकर प्रमाद में गिर गया अतः पाँच इन्द्रियोंरूपी पाँच मुनीम कहों या बेटे कहो उन्होंने सत्ता की लगाम (बागडोर) हाथ में ले ली है । इसलिए आत्मा स्वयं सत्ताधीश चक्रवर्ती का चक्रवती, इन्द्र का इन्द्र होने पर भी इन्द्रियों की हकूमत के अनुसार उसे चलना पडता है, उनकी मेहरबानी हो तो चेतनराजा अपनी इच्छा अनुसार कर सकता है ।

चेतनदेव विचार करे कि आज मुझे व्याख्यान सुनने के लिए जाना है मगर कान की मेहरबानी न हो तो नही जा सकते । कान कहे कि - रेडियो और टी.वी.

पर छायागीत सुनना है, अतः व्याख्यान में जाना नहीं है । चेतनदेव कहे कि मुझे सन्तदर्शन करने जाना है मगर नयन कहते हैं कि मुझे टी.वी., वीडियो पर फिल्म देखना है, चेतन कहे, मुझे आज उपवास, आयंबील करना हैं, परन्तु रसेन्द्रिय कहता है नहीं...नहीं । उपवास करूँगा तो अशक्ति आयेगी, आयंबील का भोजन भाता नहीं है, आज तो मज़ेदार भोजन खाना है । इसलिए उनका हुक्म होते ही चेतनराजा बैठ गये । इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय आत्मा पर हकूमत चलाती हैं । बोलिए, शक्ति होने पर भी सत्ता है ? मालिकत्व खो दिया है न ? कितने अफसोस की बात है ? सिका कोई दुःख है ? अपनी शक्ति का स्वयं अच्छे कार्य में सदुपयोग न कर सके । कितनी पराधीनता है ?

❑ पाँच इन्द्रियरूपी पाँच ट्रस्टी :

कई बार अपनी जायदाद का ट्रस्ट बनाते हैं । मान लीजिए कि कोई मनुष्य के पास २५ लाख रुपये हैं । उसका ट्रस्ट बनाया । पाँच ट्रस्टी बनाये । 'स्वयं जीये तबतक अपनी और स्वयं मर जाय बाद में पत्नी की ।' इस प्रकार जायदाद ट्रस्टी को सौंप दी । जायदाद अपनी होने पर भी पैसे लेने हो तो ट्रस्टी के हस्ताक्षर चाहिए । उस जायदाद का मालिक मर गया फिर वह जायदाद पत्नी की न ? पति के मर जाने के बाद ट्रस्टियों की नियत बिगड़ गयी, तो स्वयं मालिक बनकर बैठ गये । उस स्त्री को पैसों की आवश्यकता पड़ जाय, तब ट्रस्टी के पास जाकर याचना करती है, मगर पैसे देते नहीं है । ऐसा भी हो सकता है न ? ट्रस्टी अच्छे हो तो कोई परेशानी नहीं, परन्तु घूसखोर निकले तो उस बहन की बुरी दशा होती है । पैसे होने पर भी भीख माँगने का समय आता है । पति की कमाई है, मालिकी खुद की है, फिर भी स्वयं भीख माँगती है और ट्रस्टी मौज़ करते हैं । आप इन पाँच इन्द्रियोंरूपी पाँच ट्रस्टी आत्मा की अनन्तशक्ति के मालिक बनकर मौज़-मजा करते हैं और माल-मलीदा उडा रहे है और अनन्तशक्ति का स्वामी शहंशाह का शहंशाह आत्मदेव-भौतिक सुख के टुकड़े की भीख माँग रहा है । अनन्तकाल से इन्द्रियों के गुलाम बने चेतनदेव को अब जागृत कीजिए और गुलामी से मुक्त कीजिए । चेतनदेव को गुलामी से मुक्त बनाने के लिए कटिबद्ध बनिए । आत्मा को जागृत बनाने का यह सुनहरा समय है । अगर आत्मा जागृत नहीं बनेगी, सावधान नहीं बनेगी, तो कर्मरूपी सेना उसे घिर लेगी । कर्म की फौज़ कितनी बड़ी है यह आप जानते हैं ?

❑ प्रजा से सेना अधिक हो सकती है ? :

बोलिए, प्रजा से सेना अधिक हो सकती है ? प्रजा अधिक हो या सेना ? (श्रोतागण से आवाज़ : प्रजा से सेना कम होती है ।) इस संसार मे ऐसा एक भी

राज्य नहीं है कि जिसमें प्रजा से सेना अधिक हो, परन्तु यहाँ कर्मराजा का राज्य (शासन) ऐसा जबरदस्त है कि प्रजा से अधिक सेना बढ़ जाता है । कैसे ? यह सुनिए । आत्मा के प्रदेश अनगिनत है और एक-एक आत्म-प्रदेश पर अनन्तानन्त कर्म वर्गणा (प्रेतात्मा) के पुद्गल हैं, बोलिए, कर्मराजा की सेना कितनी बड़ी है । किसी राज्य में प्रजा के एक-एक मनुष्य की रक्षा करने हेतु एक-एक सिपाही रखा जाय, तो भी प्रजा सिर उठा सकती नहीं है, तो हमारी एक आत्मा के एक प्रदेश पर अनन्तकर्म की वर्गणारूप कर्मराजा के अनन्त सिपाही थाना डालकर बैठे है । अब आत्मा सिर उठा सकेगी ? अब अगर आत्मा समझे कि इतनी बड़ी कर्म की फौज मेरे पीछे पडी है तो मैं क्या देखकर इस संसार में मौज मानकर बैठा रहा हूँ !

देवानुप्रियों ! अब आपको मेरी बात समझमें आती होगी कि कर्मशस्त्रु को हटाने के लिए कटिबद्ध बनना चाहिए । इतनी बड़ी कर्मराजा की फौज हमारे पीछे पड़ी है और अभी सतर्क नहीं होंगे तो वह सेना बढ़ती जायेगी । कर्म बाँधकर पैसा पाते हो और मौज-मजा उडा रहे हो, मगर यह आपके पैसे, घरबार सब सदा के लिए टिकेगा इसका यकीन है ? याद रखिए, अन्त में धन आपका नहीं है । 'आचारांग सूत्र' में भगवान ने फरमाया है -

"तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ, तंपि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरन्ति, रायाणो वा से विलुंपति, णस्सति वा से विणस्सति वा से अगार दाहेण वा से डज्झइ / अ.-२

गृहस्थ के पास लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से बहुत धन हो इसके लिए घर में चीज-वस्तुएँ भी बहुत बसायी, विविध प्रकार के उपकरण प्रचुर मात्रा में इकट्ठे किये । उसे देखकर जीव हर्षित होता है कि-'मैंने कितना सारा बसा लिया है ! अहो !' मेरे पास बंगला कितना सुन्दर है ? ऐसा फर्निचर किसी के घर में नहीं होगा । मगर ज्ञानी कहते हैं कि-उन साधनों में से रिश्तेदार हिस्सा माँगते हैं, अथवा चोर लोग संपत्ति को लूट जाते हैं अथवा राजा छीन लेता है अथवा व्यापार में नुकसान होने पर नष्ट होता है । मकान में आग लगे और जल जाते हैं, नदी में बाढ़ आये और खिंचे चले जाते हैं । कुछ समय पहले साबरमती नदी में बाढ़ आयी थी, उस समय साबरमती के किनारे पर बँधे बंगले नष्ट हो गये थे । मेहनत कर इकट्ठा किया धन, सोना, गहने, कपड़े सब कुछ बाढ़ में खिंच (नष्ट हो) गया और लोग निर्धन बन गये । भूख-प्यास सहकर, काल-अकाल की परवा किये बिना इकट्ठा किया हुआ सारा धन इस प्रकार चले जाने पर मनुष्य रोता है, चीखता

है और पश्चात्ताप करता है । बन्धुओं ! यह सब तो आप प्रत्यक्ष देखते है न ? ऐसा देखकर भी आपका भविष्यकाल सुधारना हो तो वर्तमानकाल सुधारिए । संपत्ति तो इस प्रकार चली जायेगी मगर उसे प्राप्त करते समय बाँधे (किये) गये कर्म तो आपको भुगतने ही पड़ेंगे । अतः समझकर मोह-ममता छोड़ दीजिए । घरबार-जायदाद पर से ममता छोड़कर सोचिए कि-'मैं एक मुसाफिर हूँ, इस धर्मशाला में ठहरा हूँ ।' ऐसा मानेंगे तो सारी मुसीबतें चली जायेगी ।

❑ समझकर रहिए : यह मेरा घर नहीं धर्मशाला है :

एक बादशाह था । उस बादशाह के आलीशान महल में फ़कीर ने आकर बसेरा किया । बादशाह का सिपाई आकर कहने लगा : "सांई ! इधर क्यों डेरा लगाया ? इधर से चले जाओ । इधर से जाकर और कहीं डेरा लगाओ ।" सांई ने कहा - "हम तो यहीं डेरा लगायेंगे ।" तब सिपाही ने जाकर बादशाह से कहा - "एक सांई आया है । यहाँ डेरा लगाया है ।" बादशाह ने आकर फकीर को निकाला । इससे अच्छा होता वह समझकर निकल गया होता तो राजा निकालते ? संक्षेप में हमें तो इसमें से यही समझना है कि जैसे कोई मुसाफिर यात्रा करने के लिए निकला और जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ वह धर्मशाला में ठहरा । उस धर्मशाला को कमरा मानकर बैठ गया, मगर कबतक ? धर्मशाला छोड़ने के बाद क्या आपकी मालिकी रहनेवाली है ? नहीं । बिलकुल नहीं । ज्ञानी कहते है कि-"यह जीव भी एक मुसाफिर है । एक गति से दूसरी गति में जाता है । वहाँ घरबार सब बसाता है और 'मेरा' मानकर ममत्व जमाकर बैठ जाता है ।" मगर कबतक ? जबतक आयुष्य पूर्ण नहीं हुआ तबतक । आयुष्य पूर्ण होगा तो फिर उस फ़कीर की तरह एक क्षण भी रहने नहीं दिया जायेगा । फ़कीर तो बादशाह के सुन्दर महल में बहुत रहना चाहता था, परन्तु जाना पड़ा न ? जीव की भी यह दशा है । आयुष्य पूर्ण होते ही यहाँ रहना होगा तब भी एक क्षण के लिए भी कोई रहने नहीं देगा । साथ कुछ ले जा सकोगे नहीं । साथ तो केवल शुभाशुभ कर्म आयेंगे ।

शरीर के लिए, धन और परिवार के लिए अठारह पापों सेवन किया, कषाय किये, मिथ्यात्व किये । ये सब कुछ भुगतने है किसे ? कर्म तो करनेवाले को भुगतने पड़ते हैं । माल खाने तो सभी आयेंगे, मगर याद रखिएगा कि मार खाने को कोई नहीं आयेगा । एक घर में १० सदस्य है । उसमें से एक सदस्य सब्जी काटने बैठा, उसकी उँगली कट जाय, खून निकले, वेदना हो, यह सब किसे भुगतना पड़ेगा ? सब्ज़ी तो सब खायेंगे, परन्तु वेदना तो अकेले सब्जी काटनेवाले को ही भुगतनी पड़ती है, परन्तु खानेवाले को वेदना भुगतनी पडती नहीं है । अतः याद रखिए कि परिवार कि लिए चोरी की और पकड़े जायेंगे, तो जैल में आपको

जाना पड़ेगा, मगर खानेवाले को जाना नहीं पड़ता है। ऐसा प्रत्यक्ष देखते है और अनुभव करते हों कि कर्म करनेवाला दुःख भुगतता है, दूसरों को भुगतना पडता नहीं है। उसके सिर पर कोई जोखिम भी रहता नहीं है, अतः सोचिए - ऐसी जोखिमवाली जिम्मेदारी सिर पर लेकर पाया और लौटा भी देना होगा। वहाँ मार खाना होगा, अगर ऐसा विचार जीव को आयेगा तो आसक्ति छूटेगी और अनासक्त भाव आयेगा। अतः ज्ञानी कहते हैं कि-**"आसक्ति है वहाँ आक्रंद है, जहाँ ममता है वहाँ सज़ा है और जहाँ ममता नहीं है वहाँ आनन्द है।"** यह बात अनुभवसिद्ध है। समझिए, उदा - स्वरूप - आप प्रदर्शन देखने के लिए अनेकबार गये होंगे। आप घर में जो स्वप्न में भी नहीं देखी होगी ऐसी चीजें वहाँ दृष्टिगत होगी। प्रदर्शन में कुछ चीजें तो बहु मूल्यवान होती है। ऐसी चीजें देखने के बाद भी आप हँसते मुख से वहाँ से बिदा हो जाते है न ? इसका कारण क्या ? आप समझे ? जब आपने प्रदर्शन देखने के लिए प्रवेश किया तब आपमें एकमात्र प्रेक्षक-भाव था। मालिकी का भाव नहीं था। प्रेक्षक-भाव में ममत्व का अंश (तत्त्व) होता नहीं है, इसलिए लाखों रुपये के खर्च से तैयार किये गये प्रदर्शन को हँसते मुख से आप छोड़ सकते हैं। इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि- "इस संसार में मेहमान बनकर बसना आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं, परन्तु संसार के सुखों के उपर स्वामीत्व प्राप्त करने का अमोघ उपाय है, क्योंकि मालिक को तो संसार-सुख पाने के लिए भटकना पड़ता है, जबकि संसार के सुख मेहमान के पीछे भटकते होते हैं। संसार के सुख प्रतिबिंब जैसे है। जब प्रतिबिंब की ओर पीठ कर मनुष्य चलने लगता है तो प्रतिबिंब पालतु कुत्ते की तरह पीछे-पीछे चला आता है। क्यों, ठीक है न यह बात ? अब आपको समझमें आता है कि संसार छोड़ने जैसा है और शायद संसार में रहना पड़े तो मेहमान बनकर रहने जैसा है।

देवानुप्रियों ! जो आत्मा संसार में मालिक बनकर रहती है, वह प्रत्येक क्षण कर्मबन्धन करती है। जब वे बाँधे कर्म उदय में आते हैं और दुःख भुगतने पड़ते हैं, तब 'हायवोय' करता है। कर्म भुगतते समय चाहे कितने ही ऊँचे-नीचे हो, मगर इससे कर्म आपको छोड़नेवाले नहीं है। शायद किसी कोर्ट में केस होगा, तो वकील की जेब भरनी पडेगी और केस आपके पक्ष में आ जायेगा। आपकी जीत होगी तो आप वकील को खुश कर देंगे और उसको शावाशी देकर उसका उपकार मानेंगे कि आपके कारण मैं जीत गया। पैसे देकर भी उपर से उसका उपकार मानेंगे, मगर समझ लेना कि यह जीत आपको पाप के पिंजरे में फँसानेवाली है। परन्तु भगवान के पटशिष्य गौतमस्वामी ने तो हमारे लिए ऐसी सुन्दर वकालात की

है कि उनके नियम का पालन करे तो कर्मराजा की कोर्ट में हम जीत जायेंगे, परन्तु उसमें दृष्टि करने का हमें समय ही कहाँ है ? आपका इतना भी नियम है कि ऐसे महापुरुषों का मुझे उठकर तुरन्त स्मरण करना चाहिए ?

बन्धुओं ! ऐसा अमूल्य अवसर पाकर आप प्रमाद मत कीजिए बल्कि वीतरागवाणी सुनकर जीवन में उतारिए । ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि - **"संसार जैसा कोई राग नहीं, जिनशासन जैसी कोई औषधि नहीं है और व्रत पच्चक्खाण जैसा कोई परेजी नहीं है ।"** यह संसार आपको रोग समान लगता है ? रोगरूप लगे तब नाबूद करने का मन होगा न ? महान पुण्य का उदय है कि संसार रोग नाबूद करने के लिए जिनशासन की औषधि मिली है । जिनशासन में जिनेश्वर-प्रभु की आज्ञा का पालन करने के लिए जिनवचन में दूध और मिसरी की तरह एकाकार बन जाईए । दूध में मिसरी मिले तो मिठास आये और नमक मिलाया जाय तो दूध फट जाय, उसी प्रकार आप भी मिसरी जैसे बनिएगा परन्तु नमक जैसे मत बनना । जिनशासन भवरोग नाबूद करने की अकसीर औषधि है । आप को और हम सभी को औषधि तो मिल गयी है, परन्तु साथ में परेजी (परहजी) तो पालनी पडेगी न ? डायाबिटीस का रोग होता है, तो डॉक्टर डी.बी.आई. रेस्टोनोन आदि जो-जो गोलियाँ कहे, उसे खानी पडती है और डॉक्टर के कहे अनुसार परेजी भी पालनी होती है न ? डायाबिटीस के दर्दी शक्कर नहीं खा सकता है । वह डॉक्टर के कहे अनुसार दवाई नियमित रूप से ले, मगर सुबह होते ही बरफी, पेडें खाने लगे तो डायाबिटीस से मुक्ति मिलती क्या ? नहीं । जिसके शरीर में कोलेस्ट्रोल (चर्बी) बढ़ती हो, वह घी, दूध या तली हूई चीजें खा सकता है ? नहीं । अगर वह खायेगा तो रोग बढ़ता ही जायेगा न ? फिर बेचारी दवाई क्या करती ? (सब हँसते है ।) दर्द को अगर दूर करना हो, तो दवाई नियमित लेनी पड़ेगी और परहेजी (परेजी) भी कठोरतापूर्वक पालनी होगी । तभी नीरोगी बन सकेगे, उसी प्रकार संसार-रोग नाबूद (दूर) करने के लिए जिनशासन रूप औषधि मिली है तो तप, त्याग आदि व्रत-नियमरूपी पहरेजी पालनी पड़ेगी, तभी भवरोग दूर होगा । जिनशासन पाकर जिनशासन को वफादार रहिए, परन्तु संज्ञा के गुलाम मत बनिए । खंधकमुनि के ५०० शिष्य, गजसुकुमालमुनि, खंधकमुनि आदि महान पुरुष कसौटी में समभाव रख, क्षमा के पाठ सीखकर जिनशासन को वफादार रहकर नीरोगी अवस्था को प्राप्त कर गये । यह तो साधु की बात हुइ परन्तु इन जिनशासन में श्रावक भी कैसे अटल थे । कामदेव श्रावक, आनन्द श्रावक, अर्हनक श्रावक आदि श्रावको की देव ने कैसी कठोर परीक्षा की है, फिर भी श्रद्धा से, क्षमा से जरा भी चलित हुए नहीं, अपितु उनके श्रावकपन में संपूर्ण वफादार

रहे हैं । धर्म को अपने प्राण से भी अधिक मानकर पालन किया और क्षमा के पाठ सीखाए हैं । क्षमामूर्ति ऐसी आत्मा को धन्य है ।

चातुर्मास पूर्णाहुति के दिन सन्त-सतीजी क्षमापना करते हैं । ज्ञानी कहते है कि-''जो जीव क्षमारूपी कल्पवृक्ष की छाया में बैठते हैं, वे मनवांछित (मनचाहे) फल को प्राप्त करते है, और जो क्रोध-कषायादि विषवृक्ष के नीचे जाकर बैठते हैं, वे उसके विष के प्रभाव से भव की परम्परा बढ़ाकर जन्मोजन्म तक दुःख भुगतते हैं । इसलिए प्रभु ने उपदेश दिया है कि-''मोक्ष के इच्छुक जीवों को विषय परिस्थिति में भी क्षमारूपी कल्पवृक्ष का आश्रय छोडना चाहिए नहीं ।'' क्षमा धर्म महान है । जो विषम परिस्थितियों में क्षमा छोड़ते नहीं है उसके चरणों में देव झुकते हैं । भूतकाल में क्षमावान साधु और श्राविकों की परीक्षा करने के लिए देव आते और उसे अनेक प्रकार के कष्ट देकर चलित करने के प्रयत्न करते थे, परन्तु वे क्षमाधर्म से विचलित होते नहीं थे । कहा है कि - *"क्षमा खड्गं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ?"* क्षमारूपी तलवार जिस व्यक्ति के हाथ में होती है, उसका शत्रु क्या बिगाड सकते है ? कुछ नहीं । संक्षेप में, क्षमा के आगे बड़े-बड़े बलवान शत्रु भी झुक जाते है । क्योंकि साधक आत्माएँ जब आत्म-साधना करने में प्रवृत्त होते हैं तब उसके मार्ग में आक्रमण करनेवाले कषायरूपी शत्रुओं को जीतने के लिए सर्वप्रथम क्षमारूपी तलवार हाथ में रखता है । जिसके पास क्षमारूपी शस्त्र है उसके सामने कोई टिक सकता नहीं है ।

देवानुप्रियों ! क्षमा में महान शक्ति है । क्षमा महान उत्तम गुण है । साधु के दशयति धर्म में भी क्षमा को प्रथम धर्म कहा है । अतः साधक आत्माएँ, कोई छोटा-मामूली अपराध हुआ हो तब भी उसकी तुरन्त क्षमा माँगते है । अपराध की क्षमा माँग लेने से हृदय हल्का बन जाता है । आत्मा में आह्लाद्भाव आता है । सर्व जीवों के प्रति मैत्रीभाव पैदा होने पर एक-दूसरे के प्रति विश्वास पैदा होता है । अतः क्षमापना करनी है । भगवान महावीर ने श्रमणों क 'बृहद्कल्प सूत्र' के चौथे अध्ययन में स्पष्ट आज्ञा दी है कि - 'हे साधक ! अगर कोई श्रमण के साथ किसी कारणवश तेरा झगडा हो जाय, तो तुझे उसकी क्षमायाचना कर लेनी चाहिए । क्षमायाचना न हो तबतक तुम्हें आहार-पानी न लेने चाहिए । शौचादि क्रियाएँ भी तबतक नहीं करनी चाहिए ।' घर में आग लगती है तब उसका मालिक पहले आग बुझा देता है और फिर भोजन के लिए बैठता है । घर में आग लगी हो तब स्वयं भोजन करने बैठ जाय तो लोग उसे 'मूर्ख' कहकर बुलाते है । उसी प्रकार जिसके हृदय में क्रोध की प्रचंड ज्वालाएँ सुलग रही हो, जिसकी आँखें क्रोध से लाल हो गयी हो और जिसकी खून गरम पानी की तरह उबल रहा हो, इसके

लिए ऐसे समय भोजन या अभ्यास करना उचित होगा ? नहीं । बाइबिल के पुराने क़रार में महात्मा ईसु कहते हैं - "आप प्रार्थना करने देवमन्दिर में जाते हो, वहाँ पहुँचने के बाद आपको याद आ जाय कि मुझे अमुक पडौसी के साथ मतभेद हुआ है तो मन्दिर के दरवाजे से ही आप लौट जाना । पहले जाकर उस पड़ौसी से सुलेह कर बाद में आना । इसके बाद ही देव को भेट धरना ।"

मनुष्य जब सामनेवाले मनुष्य के साथ बैर लेने की वृत्ति निकाल देता है और अपने पर किये गये अपराधों को माफ करने की हिम्मत करता है, उस समय उसकी आत्मा प्रबल शक्तिमान हो जाती है । इतनी प्रबल शक्ति का भूतकाल में उसे कभी अनुभव हुआ होता नहीं है । भगवान् महावीर ने कहा है कि-"जिसके साथ तुम्हें बैर बँधा हो उसे तुम्हें क्षमा देनी चाहिए, फिर भले ही वह तुम्हें सम्मान देता हो या न देता हो, तुम्हें उसने क्षमा दी हो या न दी हो, परन्तु तुम्हें उसके कृत्यों के प्रति ध्यान नहीं देना है । तुम्हें तुरन्त ही उसकी क्षमा माँग लेनी चाहिए ।" क्षमा के महत्त्व का स्वीकार करते हुए आध्यात्मिक प्रकरण में लिखा है कि 'एक मनुष्य वर्षों तक तप करता है और दूसरा मनुष्य एक कड़वा वचन शांति से सह लेता है, उस मनुष्य को जो फल मिलता है, वह वर्षों तक तप करनेवाले के फल से भी अधिक होता है । जिसके साथ हमारा अनबन हुआ हो, या झगडा हुआ हो, उससे क्षमा माँगनी चाहिए । हृदय पर जमे कालेपन की पवडी को उखाड़कर हृदय को स्वच्छ दर्पन जैसा बनाना है । भूतकाल का कोई भी कड़वा स्मरण अंतःकरण के एक कोने में न रह जाना चाहिए । हृदय पवित्र और निर्मल बनाना चाहिए ।

पृथ्वी को भी क्षमा कहा जाता है । धरती पर छिलके, लकड़े और गौबर जैसी चीजें गिरती है । इन चीजों को धरती धीरे-धीरे अपने स्वरूप में बदल देता है । यह सारी चीजों का मूल स्वरूप अदृश्य हो जाता है । ठीक उसी प्रकार विकृत संयोगों को भूलकर पराये द्वारा पहुँचाये गये कष्टों को मन से निकाल दे । उसका जरा सा भी अहित नहीं चाहता, इसीका नाम है क्षमा । **'क्षमा कायरों का नहीं, वीरों का भूषण हैं ।** जो कायर है वह क्षमाशील नहीं होता है । यहाँ वीर का अर्थ मजबूत शरीरवाला या वाणीवीर नहीं है परन्तु दृढ मनोबलवाला आत्मवीर ऐसा होता है । जो क्रोध का प्रसंग होने पर भी क्रोधायमान होता नहीं है, गालियों का उत्तर मधुर हास्य से देता है । इसके लिए ही आर्यऋषिओं ने कहा है - "शक्तिशाली मनुष्य की क्षमा ही सच्ची क्षमा है । कायर किसी दिन क्षमा दे सकता नहीं है । सबल ही क्षमा दे सकता है ।" क्षमा मनुष्य को सहनशील और शांत बनाती है । क्षमा अपनी अनन्तशक्ति को पहचानने का सन्देश देती है । क्षमा कहती है कि उपकार पर अपकार करना, अपराधी को सजा कर निर्बल बनाना -

यह कार्य तो दुर्जनों का है । अपकार करनेवाले पर उपकार करना, अपराधी को प्रेम से वश करना और क्षमा तथा प्रेम से हृदय-परिवर्तन करवाना - यह कार्य उत्तम पुरुषों का है । इस पर एक दृष्टांत है - सुनिए ।

संपत्ति की भागीदारी हुई है हमारी नही

एक माता के दो लाडले पुत्र साथ में ही रहते थे, साथ खाते-पीते और साथ ही सोते थे । ऐसा एक दूसरे का परस्पर प्रेम था । समय जाते ही दोनों भाई बड़े होते हैं । दोनों भाइयों की माता बचपन में ही चल बसी थी । उसमें छोटा भाई तो उस समय बहुत ही छोटा था और बड़े भाई में थोड़ी समझदारी आयी थी । बडे भाई के विवाह हो गये थे । माता मरते समय कह गयी थी कि-''सारी जायदाद के दो हिस्से करना, परन्तु एक हमारा बगीचा है, उसमें फलफूल बहुत होते हैं । वर्ष में दस हजार रुपयों की आय है । इसे मेरे छोटे बेटो को देर देना । उसका हिस्सा मत करना ।'' छोटा भाई बड़ा हुआ । उसके विवाह करवाये। समय जाते पिता वृद्ध हो गया । बाप ने कहा - ''बेटे ! मैं आपको हमारी जायदाद के हिस्से कर दूँ । जिससे बाद में कोई झगडा न हो ।'' भाइयों ने कहा -''पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हो ? हम दोनों भाई जब एक है तो हिस्से कैसे ?''

भाई-भाई के बीच प्रेम हो - यह स्वाभाविक है । परन्तु देवरानी-जेठानी भी दो बहनों की तरह मिल-झुलकर रहती है, किसी को एक-दूसरे के प्रति अविश्वास नहीं है । छोटे भाई की पत्नी को बारह वर्षों के बाद सीमंत है, इसलिए वह राखी बाँधकर प्रसवकाल हेतु अपने मायके जाती है । इस छोटी बहू का नाम सुशीला है । जैसा नाम है वैसी ही उसमें गुण है । जाते-जाते अपने पति से कहती है - ''मैं जा रही हूँ । आप भाई-भाभी का विनय कभी भुलना नहीं ।'' पति ने कहा - ''तुम क्या कह रही हो ? बड़े भाई तो मेरे पिता समान है और भाभी मेरे लिए माता समान हैं । तुम इसकी चिन्ता मत कर ।'' यह सुनकर सुशीला को सन्तोष हुआ । मायके जाने के कुछ दिनों बाद दीपावली के दिन आये । जेठानी अच्छे कपड़े पहनकर उपाश्रय में गयी । वहाँ अनेक स्त्रियाँ उसे पूछने लगी कि ''हमने सुना है कि आप दोनों की संपत्ति की भागीदारी हो गयी है । क्या यह बात सही है ?'' जब बहुत पूछा जाता है तब जेठानी उत्तर देती है कि - ''हमारी संपत्ति की भागीदारी हुई है, हम दोनों बहनों की नहीं । हम तो साथ ही रहते हैं । हमारे घर में भागीदारी जैसा कुछ भी नहीं है ।'' स्त्रियों ने फिर पूछा - ''जब भागीदारी कर दी गयी है फिर उस बगीचे का क्या किया है ? उससे तो अच्छी कमाई होती है ।'' स्त्रियों को इस विषय में कोई स्वार्थ नहीं है और बगीचे में संतरे, मोसंबी,

चीकू, आम आदि जो फल हैं, उनमें से एक भी उन्हें मिलनेवाला नहीं हैं, फिर भी देखना यह है कि अज्ञानता को लेकर जीव अनर्थादंड में कहाँ फँस जाता है ? जेठानी ने कहा - "उस बगीचे का हिस्सा हुआ ही नहीं है । मेरी साँस ने मरते समय कहा था कि छोटे भाई को बाग दे देना, अतः उसे हमने छोटे देवरजी को उपहर रूप में दे दिया है ।"

❑ स्त्रियों का जेठानी को उकसाना :

जहाँ चार चोटियाँ मिलती है, वहाँ क्या होता है ? सामनेवाले का घर ही तोड़ देते हैं न ? या और कुछ ? जेठानी से वे स्त्रियाँ कहती है - "आप तो बहुत ही भोली हो । साल में दस हजार रुपयों की आय होनेवाला बगीचा उपहार स्वरूप देना चाहिए ? फिर तुम्हारा विवाह पहले हुआ है । सास की सेवा पहले तुमने की है । इसलिए बगीचा तुम्हें ही मिलना चाहिए ।" जेठानी ने कहा - "हमारे घर में ऐसी अलगता (जुदाई) नहीं है । आप कृपया ऐसा मत बोलिए । हमारे संस्कार बिगड जायेंगे ।" स्त्रियों की बात ध्यान में न ली । जेठानी दूसरे दिन गयी । दूसरे दिन भी वही बात शुरू हो गयी । तीसरे दिन भी वही बात । एक ही बात कान में पडती रहे, तब मनुष्य के मन पर असर होता है, इस न्याय से जेठानी के मन में भी यह बात घुस गयी । मैं तो कहती हूँ बहनें ! उपाश्रय में आकर दो सामायिक करते हो तो एक ही करना मगर ऐसे धन्धे (कार्य) मत करना । किसी के घर का शांत वातावरण मत बिगाडिएगा ।

❑ मारे नहीं चाहिए बगीचा, मुझे चाहिए आपका प्रेम :

देवर घर पर आया । भाभी का उदास मुख देखकर वह कहने लगा - "भाभी ! मैं रोज आता हूँ तब आप प्रसन्न ही होती हो । फिर आज आप इतनी उदास क्यों हैं ? आज आपको क्या हो गया है ?" जब बहुत कहा तब भाभी ने उत्तर दिया - "मैं आपसे एक बात पूछती हूँ । मुझे झगडा नहीं करना है । हमारा बगीचा आपको हमने उपहार स्वरूप दिया है । पिताजी के मृत्यु के समय उन्हें शांति मिले इसलिए हमने हाँ कह दिया था, परन्तु न्याय से देखा जाय तो इसमें हमारा भी हिस्सा है ।" देवर ने कहा - "भाभी ! आप बड़ी हैं और यह बगीचा भी आपका ही है ।" इतना कहकर देवर चला गया । शाम हुई । जेठानी के पति घर आये और देखा तो पत्नी का मुँह फुला हुआ था । पति ने पूछा - "तुम्हें आज क्या हुआ है ?" पत्नी ने कहा - "कुछ नहीं । परन्तु यह बगीचा हमें ही मिल[illegible] चाहिए ।" पति ने कहा - "तुम्हें ऐसा विचार कैसे आया ? हम बड़े हैं । ऐ[illegible] तुम्हें शोभा नहीं देती ।" इस प्रकार बड़ा भाई अपनी पत्नी को बहुत [illegible]

मगर वह मानती ही नहीं । तभी छोटा भाई आता है और कहने लगा - "भाई-भाभी माफ कीजिए । मुझे यह बगीचा नहीं चाहिए । आप कहे तो घरबार सब आपको दे दूँ, हम आपके दास बनकर रहेंगे ।" भाई नम्रता बताता है । बड़ा भाई कहता है - "तुम ऐसा क्यों कह रहे हो ? मैं तेरी भाभी को समझा लुँगा ।" छोटे भाई ने कहा - "भाई ! हमारे कारण आप दोनों के बीच झगडा नहीं होना चाहिए ।" इन दोनों में और कोई झगडा नहीं है । कभी लड़े-झगडे भी नहीं है, परन्तु लोगों ने ऐसी बात फैला दी कि बड़ा भाई छोटे भाई का घरबार-जायदाद सब ले लेनेवाला है । लोग दो-तरह की बातें करते हैं । कोई छोटे से कुछ कहता है, कोई बड़े से कुछ और कहता है । इसीमें दोनों भाइयों में दरार पड गयी । लोगों के बहकाने पर दोनों भाई ऐसे बहक गये कि छोटा भाई कहने लगा - "अब कुछ भी हो जाय, बगीचा नहीं दुंगा ।" बड़ा कहता है - "मैं बगीचा लेकर ही रहुँगा ।" इस प्रकार के वाद-विवाद में दोनों भाई एक-दूसरे का खून करने के लिए तैयार हो गये ।

❑ धन का मोह छोड क्लेश रोकने आयी सुशीला :

इस बात की जानकारी छोटे भाई की पत्नी सुशीला को मिली । सुशीला ने बेटे को जन्म दिया है । तीन महीने का पुत्र है, परन्तु समाचार सुनकर अपनी माता के पास आकर कहने लगी - "माँ ! मुझे अपने ससुराल भेज दो ।" माता ने कहा - "बेटी ! बारह वर्ष बाद पुत्रजन्म हुआ है । तुम्हें ऐसे ही खाली ही खाली हाथ भेज देंगे ? पाँचवें महीने में पहरावनी देकर बाद में तुम्हें भेजेंगे ।" "नहीं माता ! मुझे अभी जाना होगा ।" माता ने पूछा - "क्यों ?" बेटी ने उत्तर दिया - "मेरी पड़ोसन ने आकर मुझसे कहा है कि मेरे पति ओर मेरे जेठजी एक-दूसरे का खून करने तैयार हुए हैं । जब मेरे घर में ऐसा क्लेश हो वहाँ पहरावनी (कपड़े, धन आदि) का क्या करना ? मुझे अभी भेज दो । एक बगीचे के लिए यह झगडा हुआ है । मुझे नहीं चाहिए बगीचा । एक समय मेरी सारी ज़मीन-जायदाद अपने जेठ के चरणों में धर दुंगी, मगर हमें तो भाई का प्रेम चाहिए माँ ! तेरे घर के गहने देने पड़ेंगे तो दुंगी, मुझे कोई आपत्ति तो नहीं है न ? तुम्हारा जमाई होश खो बैठे हैं ।" सुशीला ने जेठ के विषय में ऐसा कुछ भी न कहा । माता ने कहा - "बेटी ! तुम खानदान की बेटी है, इसलिए घर में कोई झगडा या मुसीब्त मत रखना । चाहे तो और यहाँ से ले जाना ।"

❑ सुशीला के सद्‌गुणों से खूनी का हृदय - परिवर्तन :

जो नवकारमंत्र को समझता हो उसके घर में झगडा नहीं होना चाहिए । धर्म करनेवाले जब लड़ते है, तव लोग उन्हें वदनाम नहीं करते वरन् धर्म को वदनाम

करते हैं । देखा न धर्म के पूतले क्या कर रहे हैं ? यहाँ माता ने पुत्री को बहुत शिक्षा दी, और नौकर के साथ पुत्र को लेकर सुशीला पति के घर आती है । भाई को बहुत क्रोध है । सुशीला रात के ग्यारह बजे आकर दरवाजा खटखटाने लगी । घर में खून करनेवाला तैयार रखा है । दरवाजा खटखटाया तो सुशीला के पति ने खूनी से कहा - "देखा न ! आया लगता है । एक ही घाव में उसे मार देना ।" ये शब्द सुशीला ने सुने, वह समझ गयी कि क्रोध बहुत बुरी चीज है। अतः सतर्क होकर आयी और कहा - "स्वामीनाथ ! मैं सुशीला हूँ । घर की मालकिन हूँ ।" सुशीला की आवाज सुनकर वह चौंक गया । "कौन सुशीला ?" दरवाजा खोला, और सुशीला को देखकर कहता है - "तुम ऐसे, अचानक बच्चे को लेकर क्यों चली आयी ? मुझे तो बेटो को ठाठबाठ से घर लाना था । अब वह खून करने की बात को भूल गया और सुशीला के साथ बातें करने लगा । सुशीला एक शब्द भी बोलती नहीं है । तब वह कहता है - "सुशीला ! तुम मेरे साथ क्यों बोल नहीं रही है ? मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दे रही ?" पत्नी ने कहा - "आपने बोलने जैसा कुछ रखा है ? सचमुच मैं बदनसीब हूँ और यह बच्चा भी बदनसीब है कि जिसके आते ही घर में झगडा शुरू हो गया । आप यह क्या लेकर बैठो हो ? जैन का बेटा होकर अपने ही भाई का खून करने का सोच रहे हो ?" खून करनेवाला भी घर में ही था । उसे देखकर सुशीला ने पूछा - "तुम कौन हो ? आपको जरा भी विचार न आया ? और खून करने निकल पड़े ?" सुशीला के सद्‌गुण देखकर खूनी चौक गया । पास आकर कहने लगा - "अब आप मुझे पाँच हजार रुपये देंगे तब भी मुझे खून करना नहीं है ।" कसाई का कठोर हृदय भी सुशीला के वचनों से पिघल गया ।

❑ सुशीला और उसके पति का बड़े भाई के घर क्षमापना करने जाना :

सुशीला पति से कहती है - "हमें अपनी सारी संपत्ति भी देनी पड़ेगी तो भाई के चरणों में दे देंगे, मगर किसी भी तरह हमें अपने बड़े भाई का प्रेम चाहिए, बेर नहीं । इसलिए चलिए, अभी चलिए, हम भाई-भाभी की क्षमा माँगने जाये ।" पति ने कहा - "तुम जो कहो वह मैं करने को तैयार हूँ, परन्तु जिस भाई का खून करने मैं तैयार हुआ, उनके पास माफी माँगने नहीं जाऊँगा । यह कार्य मेरे लिए बहुत कठिन है ।" परन्तु बलपूर्वक उसकी पत्नी उसे भाई के घर लेकर जाती है । बेटे को घर पर रखा । खून करनेवाले कसाई का हृदय-परिवर्तन हो गया है । अपना इकलौता बेटा उसे सौंपकर पति-पत्नी बड़े भाई के घर आये । दरवाजा खटखटाया । परन्तु सुशीला जितनी सद्‌गुणी थी, उसकी जेठानी नहीं थी । अगर जेठानी में सद्‌गुण होते तो ऐसी नौबत आती ही नहीं । दरवाजे पर आवाज़

आने से बड़ा भाई भी कहने लगा - "अवश्य मेरा खून करने आया है ।" उसने भी एक हजार रुपये देकर खूनी खड़ा किया था । वह खूनी से कहने लगा - "जैसे ही वह आये कि तुम उसके एक प्रहार से दो टुकडे कर डालना ।" सुशीला ने अपने पति से कहा - "आप मुझसे तीन फूट दूर रहना । कुछ हो जाय तो पहले मैं और बाद में आप ।"

❑ सुशीला के मीठे सुर ने जगाया जेठ में स्नेह :

सुशीला मधुर स्वर में कहने लगी - "बड़े भाई ! हमें माफ कीजिए । इतनी देर रात में आपकी नींद में बाधा बनने आये हैं ।" सुशीला की आवाज़ सुनकर बड़ा भाई ने कहा - "देखा ! तुझे सुशीला जैसा बोलना भी आता है !" पुनः सुशीला ने कहा - "बड़े भाई ! मैं स्वयं सुशीला हूँ ।" उसे लगा - 'इतनी रात में सुशीला कहाँ से आती ?' परन्तु दो-तीन बार बोलने पर बड़े भाई समझ गये कि अवश्य सुशीला ही है । "अहो, सुशीला ! तुम यहाँ ?" और जेठ उठ खड़ा हुआ । तब उसमें राक्षसवृत्ति भरी हुई थी, परन्तु जैसे ही सुशीला के शब्द सुने कि उसके हृदय से दुष्ट भावना चली गयी । सद्‌गुण में कितनी शक्ति है ? जेठ बेहोश होकर गिर पड़ा है । सचमुच हृदय में रहे शल्य (शत्रु) को निकालनेवाली आलोचना ही है । भूतकाल में तो राजा बाहर जाते तब अपने साथ वैद्य-हकीम साथ में ले जाते थे । परन्तु अब तो सेठ परदेस जाते है तो उनके साथ डॉक्टर होते हैं । आपके बाह्यरोग से बचने के लिए डॉक्टर को साथ रखा मगर जन्म-जरा और मृत्यु के रोग से बचानेवालो डॉक्टर साथ में नहीं आता, वाहन में नहीं बैठता । ठीक है, आपके गुरु आपके साथ चाहे भले ही न आये, मगर उनको दी गयी हित-शिक्षाएँ, वीरों के वचन तो आपके साथ आते है न ? (नहीं ।) इसे तो भूल जाते है । आपको अपने स्टोर और घर का नाम याद रहता है । दीपक स्टोर, वीराणी सदन आदि सब याद रहता है । अपने पुत्र-पुत्री का नाम भी भूलते नहीं है, परन्तु गुरु के वचन भूल जाते हैं !

❑ भाइयों के टूटे हृदय को जोड़नेवाली सती सुशीला :

सुशीला ने नम्र स्वर में जेठ को बिनती की । अभी उसका प्रत्यक्ष मुख देखा नहीं है । मात्र उसके वचनों को सुनकर जेठ के हृदय में इसका असर हुआ । सुशीला जेठ के घर में आयी । दरवाजा खोला और दोनों बड़े भाई के चरणों में गिर पड़े । छोटा भाई कहने लगा - "भाई ! मैंने बहुत बड़ी भूल की है ।" दोनों ने पश्चात्ताप के आंसुओं से भाई-भाभी के पैर धो दिये । जेठ ने कहा - "मुझे तो आप दोनों की माफी माँगनी चाहिए ।" दोनों भाइयों की आँखों में आंसु हैं । छोटा भाई कहने लगा - "यह सारा प्रभाव सुशीला का है । सुशीला

न आयी होती तो सचमुच मैं आज क्या कर बैठता ?" जेठानी की मति भी सुधर गयी । जेठ ने कहा - "यह सारा प्रभाव सुशीला का है । आज से यह बगीचा और सारी संपत्ति तुम्हें अर्पित कर देता हूँ ।" सुशीला ने कहा - "बड़े भाई ! माफ कीजिए । इस माया ने हमें लड़ाया है । भाई-भाई का खून करने के लिए तैयार हुआ । इसलिए अब मुझे नहीं चाहिए ।" बड़े भाई की पत्नी ने कहा - "अब मुझे भी नहीं चाहिए ।" दोनों ने समझकर महाजन को सौंप दिया । कहने का आशय यह है कि परिवार में एक मनुष्य सद्‌गुणी होता है, तो वह परिवार का उद्धार कर देता है । आज लोंकाशाह की पुण्यतिथि है । अतः उनके विषय में कुछ चर्चा करेंगे ।

लोंकाशाह की पुण्यतिथि

भूतकाल में लोंकाशाह नामक एक महान पुरुष पैदा हो गये । उनका हमारे पर बहुत उपकार है । जब साधु यति हो गये और अराजकता फैल गयी, तब इस महान पुरुष ने जैन समाज में से अराजकता दूर कर समाज को सच्चा ज्ञान दिया है । उनका उपकार भूले भुलाया जा सकेगा नहीं । इस महान पुरुष का जन्म अरहटवाड़ा गाँव में संवत् १४८२ में कार्तिक, शुक्ल पक्ष - पूर्णिमा के दिन हुआ था । 'कार्तिक पूर्णिमा' का चन्द्र तेजस्वी होता है, उसी प्रकार लोंकाशाह भी बहुत तेजस्वी बने ।

उनकी माता का नाम गंगाबहन और पिता का नाम हेमाभाई था । लोंकाजी जब बड़े हुअे तब उनका विवाह हुआ । उनकी पत्नी का नाम सुदर्शना था । समय बीतने पर उनके यहाँ एक पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ । पुत्र का नाम पूनमचन्द्र था । वे आनन्द से रहते थे । कुछ समय बाद धन्धा समेटकर अहमदाबाद में आये और आभूषणों का व्यवसाय शुरू किया । वह जवाहिरात (आभूषण) परखने में बहुत पारंगत था । एक बार महंमदशाह के जवाहिरात का मूल्य करना था । महंमदशाह ने अहमदाबाद के प्रत्येक जोहरी को अपने यहाँ बुलवाया और निरीक्षण करने हेतु जवाहिरात दिया, मगर कोई इसका मूल्य बता सके नहीं । ये तो नये नये थे इसलिए पीछे बैठे थे । अन्त में महंमदशाह ने कहा कि - "इस जवाहिरात को पहचान (परख) सके ऐसा कोई पारंगत है ?" तब लोंकाशाह उठकर आगे आये और एक-एक रत्न हाथ में लेकर कहने लगे - "इसका मूल्य एक लाख रु. है और इसका मूल्य करोड़ का है तथा यह रत्न ऐबवाला है । उसे रखने से राज्य में हानि होगी । कुल को हानि होगी आदि बातें कही ।

लोंकाशाह की जवाहिरात परखने की शक्ति देखकर महंमदशाह ने उन्हें तिजोरी के उपरी अधिकारी बनाये । बहुत समय तक वहाँ नौकरी की । महंमदशाह का पाटण गाँव में खून हुआ । इस घटना के बाद लोंकाशाह को मन ही मन विचार आया कि बादशाह इतनी सारी ऋद्धि वैभव छोड़कर चले गये ! एक दिन सब को इस प्रकार अवश्य जाना है । अतः इसमें मोह करने जैसा नहीं । इस असार संसार में कोई आनन्द नहीं है । हम इस वैभव को नहीं छोड़ेंगे तो पुण्य खत्म हो जायेगा और हमें छोड़कर चले जायेंगे और जीवन के छोर तक पुण्य होता तो वैभव, विलासों को छोड़कर हमें जाना पडेगा अतः हमें स्वेच्छा से ही क्यों न छोड़ना चाहिए ?

इस प्रकार वैराग्य भावना उत्पन्न होने से राज्य की नौकरी छोड दी । पत्नी से आज्ञा लेकर वे पाटण में आये । वहाँ उन्हें ने जैनधर्म की दीक्षा लेकर सुमति विजय नामक आचार्य के पास शास्त्रों का पठन शुरू किया । जैसे-जैसे शास्त्रों का पठन करते गये वैसे-वैसे आत्मदशा प्रकट होने लगी और भगवान ने क्या कहा है और आज के यतिधर्म के नाम से ठकोसले चला रहे हैं । कितनी सारी संकुचितता आ गयी है ? उन्हों ने निर्णय किया कि भगवान के शास्त्र में जिस प्रकार से सत्य हकीकत हो, उसकी प्रस्तुति तो करनी ही चाहिए । उन्हों ने जैनधर्म के सिद्धांत लोगों के समक्ष प्रस्तुत किये और सत्य-स्थिति का ज्ञान कराया और ४५ पुरुषों को दीक्षा दी । उन्होंने संसार के कोने-कोने में विचरण कर जैनधर्म का उद्धार किया । उन्हों ने लोगों को सत्य समझाया । अतः जो लोग संकुचितताचारी हो गये थे, बाबाशी (माया-सुख) भोग रहे थे, उन्हें ईर्ष्या हुई ।

अतः ईर्ष्यालु लोगों ने उन्हें विष दिया । वे समझ गये कि मुझे विष दिया गया है, फिर भी किसी के प्रति द्वेषभाव न रखा । महात्मा गाँधी को गोडसे ने गोली मारी, फिर भी उन्होने मुख में 'हे राम !' यही शब्द उच्चारण किया । लोग कहने लगे कि "उसे तो फाँसी पर चढा देना चाहिए ।" परन्तु मरनेवाली आत्मा ने उसकी ओर समभाव की दृष्टि से ही देखा, उसी प्रकार लोंकाशाह ने भी स्वयं को विष देनेवाले के प्रति भी समभाव रखा है । किसी पर भी क्रोध न किया । वे १५४१ में स्वर्ग सिधाये । इस प्रकार लोंकाशाह ने जैनशासन में बहुत बड़ी क्रान्ति की है । उनके जीवन में बहुत-बहुत विशेषताएँ थी और उनके जीवन का इतिहास बहुत लम्बा है । परन्तु मैं इतना ही कहती हूँ कि उनके जीवन से यत्किंचित् गुण प्राप्त कर मनुष्यजीवन प्रकाशित करें, यही भावना । आज चातुर्मास की पूर्णाहुति का दिन है ।

(आज के दिन पू. महासतीजी श्रीसंघ को खमाये और श्रीसंघ पू. महासतीजी के साथ क्षमापना करे ।)

व्याख्यान - ३२

बैसाख, शुक्ल पक्ष-६ बुधवार — दि. १४-५-८६

'पूज्य गुरुणीमैया ने दीक्षा जयंती के पवित्र दिन स्वमुख द्वारा दी गई अन्तिम देशना' (मलाड़ - मुंबई)

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज मेरी दीक्षा जयंती निमित्त नानाविध सतीजीयाँ सभी अपनी-अपनी शक्ति अनुसार बोले, गुण गाये, परन्तु सचमुच कहुँ तो इसमें मेरा कुछ ही नहीं है । मुझमें गुण गाने जैसा क्या है ? यह सब प्रभाव, तेज़ और सब से बड़ा उपकार हो तो मेरे गुरुदेव का है । अगर गुरुदेव मिले न होते तो यह आत्मा कहाँ होती ? 'ठाणांग सूत्र' के तीसरे ठाणे में भगवन्त ने तीन प्रकार के ऋण बताये है - इसमें सब से प्रथम ऋण माता-पिता का है । दूसरा मुसीबत में हाथ पकड़नेवाले सेठ का है और तीसरा ऋण संसार की सीढ़ी छुड़ाकर, कल्याण के पथ पर चढ़ानेवाले गुरुदेवों का है ।

जिस माता ने नौं-नौं मास अपने गर्भ में रख पोषण किया, जन्म दिया और जिस पिता ने प्रेम से जीवन में धर्म का बीजारोपण किया है, ऐसे माता-पिता ने स्नेहपूर्वक संस्कारों का सिंचन किया है, उनका महान उपकार है । अगर उन्हों ने बचपन में धर्म के संस्कारों का सिंचन किया न होता तो इस स्थिति तक पहुँचते नहीं । हम छोटे थे तब माता-पिता हमें समझाकर जैनशाला में भेजते थे । जैनशाला जैन संस्कार के जीवन के शिक्षा की मजबूत नींव है, उच्च आदर्शों का आलय है, संस्कारों का संस्कारधाम है, वैराग्य विरति के बीजारोपण का वैराग्यभुवन है । हम जैनशाला में न जाते तो वे हमें पैसो की लालच देते । अभी आपकी सन्तान स्कूल में न जाता हो तो आप उसे लालच देकर कहते हैं कि तुम स्कूल में जाओ, तुम्हें जो चाहिए हम देंगे, और आप उसे जो चाहेगा उसे ला देते हैं । आपकी सन्तान स्कूल में पढ़ाई में कमजोर हो तो आप ट्युशन के पैसे खर्चकर पढ़ाते हैं मगर किसी दिन जैनशाला के लिए सन्तानों को प्रोत्साहन देते हैं ? बच्चों को स्कूल भेजते समय आप कितने पैसे देते हैं ? (श्रोतागण से आवाज़ : पाँच-दश रुपये की नोट) देते हैं, जबकि जैनशाला में भेजने के लिए क्या देते हैं ? (सभा : मौन ।) जब हम छोटे थे उस जमाने में तो पाई, आधे और पैसे का चलन था । हमें जैनशाला में भेजने के लिए माता-पिता एक पाई खर्च करने देते

थे, तो तीन सहलियाँ मिलकर तीनों पाई से एक पैसा इकट्ठा कर उस एक पैसे का नास्ता ले आती । बड़ी पुड़िया आती, तो हम मिल-बाँटकर खाते । इस प्रकार रोज पैसे इकट्ठे कर खौ-खौ खाते और आनन्द-मौज़ करते ।

बन्धुओं ! मुझे तो आपको आज यही बात समझानी है कि जो माता-पिता अपनी सन्तानों के जीवन में उच्च संस्कारों का सिंचन कर शिक्षा देते हैं, उन माता-पिताओं की बाद की जिन्दगी सुखमय व्यतीत होती है । अगर आपको बाद की जिन्दगी में सुख चाहिए, तो अपने सन्तानों के जीवन में धर्म का सिंचन कीजिए, अन्यथा बाद में जिन्दगी बिगड जायेगी । संस्कारहीन सन्तान वृद्धावस्था के किनारे पर पहुँचे हुए माता-पिता की कैसी दशा करते हैं, इसका तो आपको अनुभव है न ? कुछ सन्तान अपने वृद्ध माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़ आते हैं । यह असर साधु-संस्था तक पहुँची है । कुछ सन्तान माता-पिता को एक-एक भाई के घर महीने-महीने तक बाँट लेते हैं और कुछ तो एक भाई के घर माता होती तो दूसरे के घर में पिता हो । इस प्रकार वृद्धावस्था में जुदा रखते हैं । उनकी आधी दर्जन सन्तानें अच्छी लगती है, मगर माता-पिता बोझरूप बन पडते हैं । इसका प्रमुख कारण धर्म के संस्कारों को कमी का है । जो माता-पिता कष्ट सहकर भी सन्तानों के जीवन की अच्छी परवरिश करते हैं, उसके फलस्वरूप वृद्धत्व में सुख, शांति और समाधि का लाभ प्राप्त करते है । अन्तिम समय भी सुधरता है । जो सन्तान माता-पिता का जीवनभर बहुत सेवा कर अन्तिम समय में धर्मज्ञान प्राप्त कर उनका परभव सुधारते हैं, वहीं सन्तान माता-पिता के ऋण से मुक्त हो सकते हैं । मेरे सांसारिक माता-पिता ने मुझे बचपन में धर्म का सिंचन किया, नवकारशी करवाते, जैनशाला में भेजते, गाँव में गुरुवर पधारते, तब दर्शन करने और व्याख्यान सुनाने भेजते थे । उसके फल-स्वरूप संसार की असारता समझ ली गई और हृदय की उपजाउ भूमि में वैराग्यभाव का बीजारोपण हुआ और दीक्षा लेकर इतनी कक्षा तक पहुँच सके । अतः माता-पिता का यह महान ऋण हमारे सिर पर है ।

दूसरा ऋण उपकारी सेठ का है । जब मनुष्य अपनी आजीविका के लिए काम-धंधा खोजता है, तब उसे किसी न किसी आधार की आवश्यकता होती है । एकेन्द्रिय वनस्पति में भी बेल को चढ़ाने के लिए बाड़ चाहिए । आप कहते हैं न कि - बाड़ के बिना बेल नहीं चलती । क्यों ठीक है न ? (सब हँसते है ।) इसी प्रकार इस संसार में भौतिक क्षेत्र में या आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के आधार की आवश्यक्ता रहती है । आप इतने सारे बैठे है, इसमें से अनेक सज्जन ऐसे कहते होंगे कि-'मुझे मेरे पिताजी आगे लाये है । कोई कहे कि मेरे चाचा, साला, बहनोई । कोई कहे कि मेरे मित्र या दूर के सगे-सम्वन्धी ने मेरा हाथ पकडा तव

हम इतने आगे आये । उनका हम पर महान उपकार है । अन्यथा हम इतने उच्च कक्षा (श्रेणी) तक न पहुँचते । सज्जन मनुष्य जिन्दगी में उपकारियों का उपकार कभी भी भूलते नहीं है और अनेक ऐसे कृतघ्नी मनुष्य होते हैं कि उपकारी का उपकार समय आने पर भूल जाते हैं । उस उपकारी के उपकार के ऋण से आप मुक्त कब बन सकते है ? जिन्हों ने आपका हाथ पकड़ा हो और आगे आये हो, वही आपके उपकारी सेठ या सगे-सम्बन्धी के पाप-कर्म के उदय होने से और गरीब बन जाय तब उन्हें सहाय कर ऊँचे लाये तो ही उनके ऋण से मुक्त बन सकते हैं ।

यह दो उपकार की बात हुई, अब तीसरे प्रकार का ऋण हमारे गुरुदेवों का है । हमारे गुरुदेवों का हम पर महान उपकार है । मनुष्य सारे ऋणों से मुक्त हो सकता है, परन्तु गुरुजनों के ऋण से कभी भी मुक्त हो सकता नहीं है । ज्ञानी-पुरुष तो यहाँ तक कहते हैं कि-''जीवन पर्यन्त शिष्य-गुरु की सेवा करे और अपनी चमड़ी के जुते बनाकर पहनाये, तब भी गुरु-ऋण से मुक्त हो सकता नहीं है ।'' सचमुच ! इसी प्रकार अनन्तान्त उपकारी **बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब** का मुझ पर महान उपकार है । इसका मैं किन शब्दों में वर्णन करूँ ?

आप मेरे अनन्त उपकारी उपकारी, गुरुजी मेरे अनन्त उपकारी उपकारी
गँदे वन में मेरे लिए लिए (२) पावन पगदंडी अपने बनाई - गुरुजी...
यह दुनिया तो अन्धेरा एक वन, किरण न कहीं हो न दर्शन नहीं,
झाँकता रहूँ और भटकुँ यहाँ वहाँ, अन्धे जैसा करूँ मैं व्यवहार,
अनुकंपा जगी आपको आपको (२) सच्ची दिशा आपने दिखाई - गुरुजी...

गुरु किसे कहेंगे ? 'गु' अर्थात् अन्धकार और 'रु' अर्थात् दूर करनेवाले । जो हमारे अज्ञानतिमिर को दूर कर ज्ञान-रोशनी प्रकट करे, विषाद के बादल हटा दें वही सच्चे गुरु हैं । मेरे अज्ञानरूपी अन्धकार-भरे जीवन में ज्ञान की सर्चलाइट प्रकट कर संयम के साज-सजाकर आराधना में उज्ज्वल और साधना में सज्ज बनानेवाले सम्यग्ज्ञान का साक्षात्कार करवानेवाले, लोहे को सुवर्ण में परिवर्तित करनेवाले, वात्सल्य द्वारा सहायता और उष्मा बक्षनेवाले अगर कोई हो तो मेरे पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा. और गुरुणीदेव पू. पार्वतीबाई महासतीजी है । पू. गुरुदेव मेरे संयमीजीवन के शिल्पी है, जीवन-बाग के माली है । उन्होंने वीतरागवाणी के वारि का सिंचन कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र-रूपी त्रिरत्न को तेजस्वी बनाने की बहुत मेहनत की है । संयम-साधना का छोटे-बड़े सभी कार्य माता की जैसे सिखलाये हैं । उसमें से मैं आपको एक-दो उदाहरण दूँ ।

मैंने सोलहवें साल में दीक्षा ली थी । संयमीजीवन में बिलकुल नई थी । तब पू. गुरुदेव अहमदाबाद में बिराजमान थे । में गौचरी कर आई । पू. गुरुदेव को रहने का उपाश्रय और हमारे रहने का उपाश्रय पास-पास था । अतः पू. गुरुदेव को गौचरी बताने गई । गौचरी में दाल ढल (गिर) जाने से झोली रस से तर हो गई थी । यह देखकर पू. गुरुदेव हँसते हुए मुझ से कहने लगे - ''अहो शारदा आर्याजी ! आपको इतनी अधिक भूख लगी है जो रास्ते से ही दाल पीते-पीते आये !'' (सब हँसते हैं ।) दाल का सारा पानी छलक जाने से पत्तर में दाल का मावा ही रहा । अतः गुरुदेव मुझ से कहने लगे - ''देखिए आर्याजी ! बड़े पत्तर दाल का छोटा पत्तर रखने से दाल ढल जाय तो बड़े पत्तर में ढ़लती जिससे दाल व्यर्थ न जाय और झोली भी गंदी न हो ।'' ऐसा मुझे प्रेम से हँसते हुए समझाते।

एक बार गौचरी जाकर आने के बाद पू. गुरुदेव को दिखाने गई । पत्तर रखकर छोटी-सी खिड़की की जाली थी वहाँ जाकर मैं बैठ गई । गुरुदेव नीचे आसन बैठे थे । उन्होंने मेरे सामने देखकर हँसते हुए कहा - ''शारदा आर्याजी ! क्यों आप बहुत थक गयी हैं जो आकर तुरन्त जाली के पास बैठ गये ?'' फिर भी बालक-बुध्धि में मुझे ऐसी समझ न आई कि मैं गुरुदेव से ऊँचे स्थान पर बैठी हूँ, इसलिए मुझे ऐसा कह रहे हैं । फिर गुरुदेव ने मधुर वाणी में कहा - ''आर्याजी ! हमारे गुरुदेव या गुरुणी या हमारे बुजुर्ग पूज्य नीचे स्थान पर बैठे हो तब हमसे उनसें ऊँचे स्थान पर नहीं बैठना चाहिए ।'' मैं तत्काल नीचे उतर गई । उपकारी गुरुदेव ने मुझे ऐसे विनय के पाठ पढ़ाये हैं ।

अहमदाबाद में एक बार मेरे गुरुणी मेरा लोच करने बैठे । मेरी आयु छोटी और सिर के बाल घने, अतः लोच बहुत परेशानीवाला सिध्ध होता था । लोच करते समय पू. गुरुणी की ऊँगलियाँ फट गई खून निकलने लगा । दूसरे हमारे महासतीजी बैठे तो उनकी भी यह दशा हुई, मगर किसी तरह बाल निकलते (उठते) ही नहीं थे । फिर महादेव के पास आठ कोटि उपाश्रय में दरियापुरी संप्रदाय के पू. नाथीबाई महासतीजी आदि ठाणाएँ बिराजमान थे । उनको बुलाने गये, तो उनकी शिष्या पू. जशवंतीबाई महासतीजी को भेजा । वे पधारे । महामुसीबत से आठ-नौ घण्टों बाद लोच पूर्ण हुआ । पास के उपाश्रय में ही पू. गुरुदेव बिराजमान थे । उनको इस बात का पता चला । मैं दूसरे दिन पू. गुरुदेव के दर्शन करने हेतु गई तब पू. गुरुदेव ने प्रेम से पूछा - ''लोच बहुत मुश्किल लगा ? इतने घण्टे हुए ? शारदा आर्याजी ! संयम-साधना के प्रत्येक कार्य स्वयं ही करना सीख-जाईए व्याख्यान बाद मुझे सामने बिठाना । दूसरे भाई-बहनों को भी बिठाये और महाराज का सिर में से बाल की लट पकड़कर मुझे कहा-''देखिए ! इस प्रकार लट पकड़ी

जा सकती है । इस प्रकार बाल निकाले जा सकते हैं ।" सब ठीक-ठीक बताया और फिर कहा - "देखिए... अब ऐसा लोच आपको स्वयं ही करना है ।" मैंने कहा - "तहेत् गुरुदेव !" और उनके सामने प्रत्यक्ष मैंने स्वयं कर दिखाया । जो अभी तक स्वयं ही और तीव्र गति से होता है । ऐसे थे उपकारी गुरुदेव ! वे माता की तरह प्रेम से सब सीखाते और कभी-कभी तो कसौटी भी करते ।

एक बार मैं गौचरी में जाते समय पू. गुरुदेव को वन्दन करने के लिए गई, तब कहने लगे - "आर्याजी ! आज गौचरी में फेणिया ले आना ।" मैंने कहा - "तहेत् गुरुदेव ! ले आऊँगी ।" परन्तु मैंने तो कभी 'फेणिया' नाम सुना ही नहीं था । जितने घर गई वहाँ सब से पूछा कि - "बहन ! 'फेणिया' क्या हैं ?" तो सब कहने लगे - "महासतीजी ! फेणिया क्या है ? फेणिया नहीं है ।" अनेक घर जाकर पूछा । गौचरी लाकर वापस लौटी फिर भी फेणिया मिला ही नहीं । मुझे किसी ने ऐसा भी कहा - "महासतीजी ! आप गाँव के लगते हैं । 'फेणी' को आप 'फेणिया' कहते हैं ।" मैंने कहा - "बहन ! हम गाँव के है, यह बात सच है, परन्तु फेणी किसे कहते हैं, इसका मुझे पता (ज्ञान) है । अनेक लोग फेणी कहते हैं और 'मीठा साटा' भी कहते हैं । हम उसे 'मीठा साटा' कहते है ।" फेणिया न मिला तो हृदय में इतना अधिक दुःख हुआ कि पू. गुरुदेव ने कभी मुझे ऐसा नहीं कहा कि यह चीज़ लाना, आज प्रथम बार फेणिया मँगवाया, परन्तु मैं ला न सकी ! गौचरी कर उपाश्रय में आई । पू. गुरुदेव पूछते हैं-"फेणिया लाये ?" मैंने कहा - "गुरुदेव ! अनेक घरों में पूछा, परन्तु मुझे फेणिया न मिला ।" यह सुनकर गुरुदेव ने ज़रा हँसकर कहा - "ठीक है, आप यहाँ बैठिए, मैं अभी फेणिया ले आता हूँ ।" तब मुझे लगा कि मैंने घर-घर माँगा, परन्तु मुझे जो फेणिया न मिला, वह पू. गुरुदेव कहते हैं कि अभी ले जाता हूँ ! तो गुरुदेव कहाँ से अभी ले आयेंगे ? (सब हँसते हैं ।) गुरुदेव तो पत्तर लेकर चल निकले और टुकड़ा लेकर आये और कहा - देखिए ! यह फेणिया है ।" देखा तो गुड़ था । तब मैंने कहा - "गुरुदेव ! आपने मुझे गुड़ ले आना ऐसा कहा होता तो मैं गुड़ ले आती न ? (सब हँसते हैं ।) यह सुनकर गुरुदेव भी हँसे और कहा - "ऐसा कहा होता तो आप ले आते, परन्तु यहाँ तो आपकी कसौटी करता था कि साधुत्व में गौचरी के लिए अलग भाषा होता है, इसकी भी जानकारी आप को है ?

देवानुप्रियों ! ऐसे थे मेरे जीवन-नौका के सुकानी पू. गुरुदेव । उनका मुझ पर अनन्त उपकार है । उस उपकार का ऋण मैं कभी भी चुका पाऊँगी नहीं । उनके गुणों का और उपकारों का किन शब्दों में वर्णन करूँ ?

अनन्त अनन्त उपकार है गुरुजी तुम्हारा हो गुरुजी तुम्हारा...
दिक्‌भ्रम होकर भटक रही थी पाया शरण तुम्हारा... अनन्त...

अनन्तकाल से भव-वन में भटकती मेरी आत्मा को तारनेवाले ऐसे रत्नसम, ओजस्वी, तेजस्वी बा. ब्र. पू. रत्नचन्द्रजी महाराज साहब ने मुझे वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा दी और पू. गुरुणीदेव श्री पार्वतीबाई महासतीजी ने मुझे विनय-विवेक सीखाया । ज्ञान-ध्यान-अभ्यास से प्रवृत्ति करवाई, मेरे जीवन का सुन्दर विकास किया है । उनका जितना उपकार मानूँ उतना कम है । देखिए, इस संयममार्ग में कैसा आनन्द है, कैसी खुशहाली है । गुरु भगवन्तों की आज्ञा अनुसार संयममार्ग का पालन करे तो कर्म की निर्जरा होती है . केवल लाभ-लाभ और लाभ है । ऐसा मज़े का यह मार्ग है, आपको मन हो रहा है ? इस संयममार्ग को तो समकिती देव भी चाहते है । सुख-वैभव मे मस्त होकर रहनेवाले देव भी वहाँ बैठे-बैठे क्या चिंतवना (चिन्तन) करते हैं ?

ऐसा अवसर हमें कब मिलेगा,
कब पायेंगे आर्यनर अवतार,
सर्व दुःखों का अन्त करने का स्थान जहाँ
जिन शासन में लेंगे संयम भार...ऐसा...।

हे भगवन्त ! हम इस अविरति के बन्धन से कब मुक्त होंगे और मनुष्यभव पाकर सर्व कर्मों को तोड़ने के लिए उत्तम साधनरूपी संयममार्ग कब अंगीकार करेंगे ? देवलोक के देव भी वहाँ बैठकर ऐसी चिंतवना (प्रार्थना) करते हैं । संयम-मार्ग को चाहते हैं । देवलोक के सुख उन्हें खलते (दुःखी करते) हैं । जबकि आप को हमने इस संयममार्ग की इतनी सारी श्रेष्ठता समझाते हैं, फिर भी आप देवलोक के सुखों की अभिलाषा करते हैं और मुक्ति का मार्ग संयम आपको (खटक) रहा है । और संसार मिसरी के टुकड़े जैसा मीठा लगता है । परन्तु बन्धुओं ! सोचिए । यह आपका संसार कैसी मुसीबतों से भरा हुआ है । सात जुड़ते हैं और तेरह टुटते हैं, ऐसा यह संसार है । कभी भी संसार के कार्य पूर्ण होते नहीं है, हुए भी नहीं है और होनेवाले भी नहीं हैं । **'प्रारम्भ किये कार्य सदा अधूरे रह जाय, इसीका नाम है संसार ।'** यह एक न्याय देकर समझाती हूँ ।

एक गाँव में एक अहीर रहता था । उसके पास सौ गाये थीं । आपको जैसे अपनी सन्तानें प्रिय होती है, उसी प्रकार किसानों को उसके बैल और अहीर को उसकी गायें प्रिय होती हैं । उसे खिलाते, पिलाते और प्रेम से सहलाते है । यह अहीर अपनी गायों को छोड़कर कहीं जाता नहीं है, परन्तु एक दिन ऐसी घटना

घटित हो गया कि उसके ससुर का देहान्त हो गया, तो उसे लौकिक-कार्य हेतु जाना पड़ रहा था। दूसरे (अन्य) अच्छे प्रसंग में शायद मनुष्य न जाय तो चले सकता है, परन्तु ऐसे दुःख के अवसर पर तो जाना ही चाहिए न? ठीक है न? यह तो आपका व्यवहार है। इस अहीर को जाये बिना चले ऐसा नहीं था। उसने विचार किया कि-'मेरी सौ गायें किसे सौंपकर जाऊँ?' वहाँ उसका एक मित्र आ पहुँचा। अतः अहीर ने मित्र से पूछा - "भाई! तुम मेरा एक काम करोगे?" मित्र ने पूछा - "भाई! क्या काम है? खुशी से कह दे।" तब उसने कहा - "कल मुझे अपनी ससुराल मृत्यु-अवसर पर जाना है, तो तुम मेरी सौ गायों को एक दिन के लिए सँभालेगा?" मित्र ने कहा - "ठीक है, खुशी से जा।" मित्र ने कहा - "परन्तु सँभालुँगा ऐसा नहीं, मैं कहुँ ऐसा करने का वचन दे।" "क्या करना है?"

वह अहीर अपने मित्र से कहता है - "देख तुम्हें पूर्वदिशा में फ़लाँ जंगल में बहुत सारी हरी घास है, पानी पीने के लिए तालाब है और वहाँ एक बड़ा विशाल बरगद का वृक्ष है, वहाँ तुम्हें सुबह से मेरी सौ गायों को लेकर चराने जाना पड़ेगा। मेरी गाय बारह बजे चारा भरपेट चर ले, पानी पी ले उसके बाद बरगद के नीचे छाये में सौ की सौ गाये बैठ जाय, इसके बाद ही तुम्हें भोजन के लिए बैठना होगा। बोल! इतनी बातें कबूल हैं?" मित्र ने कहा - "ठीक है, तुम्हें वचन देता हूँ, मैं इसी प्रकार करूँगा।" यह सुनकर अहीर बहुत संतुष्ट हुआ। दूसरे दिन वह ससुराल गया। उसका मित्र गायें लेकर चराने के लिए जंगल में गया। बारह बजे तक गायों को बहुत चरायी, पानी पिलाया और हाँककर बरगद के वृक्ष के नीचे ले आया। उसकी भाषा में टिटकारी कर सारी गायों की बिठाने लगा। अतः उनमें से ९९ गायें तो बैठ गयी, परन्तु एक गाय ऐसी सिरदर्द थी कि बैठ ही नहीं रही थी। दोपहर के बारह बज़े हैं। पेट में भूख कड़ाके से लगी है, प्यास से आकुल-व्याकुल हो गया है, क्योंकि आप की तरह सुबह में चाय-खाखरा, पूड़ी, गाँठिया, साटा के टीफीन-बोक्स भरकर गया न था। गरीब मनुष्यों को तो रोटी और हरी मिर्ची-छाछ खाना होता है, परन्तु वह भी दोपहर बारह बजे और मेहनत मज़दूरी भी खूब करनी होती है, फिर भूख तो लगेगी ही न! इसे भूख-प्यास बहुत लगे है। परन्तु वह एक गाय अभी तक बैठ नहीं रही थी। अतः परेशान होकर एक डंडा मारा तब वह गाय इतने ज़ोर से बैठी कि उसकी आवाज़ से वे ९९ गायें जो शांति से बैठी थी वे मारे ड़र के खड़ी हो गयी। (सब हँसते हैं।)

बन्धुओं! इस अहीर को कितनी भूख लगी है। परन्तु वह आपकी तरह बनिया नहीं है। यदि आप इसकी जगह पर होते तो क्या करते? (मौन) बनिया तो कुछ

भी नहीं कहेगा । (सब हँसते हैं ।) ठीक है लीजिए, तब मैं ही इसका उत्तर दे देती हूँ । आप तो ऐसा हिसाब कर लें लेंगे कि पहले ९९ बैठी थी और बाद में एक, तो सौं तो हो ही गयी न ? और खाने कि लिए बैठ जाते, परन्तु यह अहीर का मित्र ऐसा न था । (सब हँसते हैं ।) वह तो वचन का पालन करनेवाला था । वह तो बेचारा ९९ को बिठाये, तब एक न बैठती और एक बैठती तो ९९ खड़ी हो जाती थी । इस प्रकार सारा दिन गया, मगर सौं गायें एक साथ न बैठी और वह बेचारा सुखपूर्वक भोजन न कर सका ।

देवानुप्रियों ! यह तो अहीर का न्याय है । परन्तु उसकी हमें आप के संसार के साथ तुलना करनी है । यह संसार जन्म, जरा और मृत्यु के दुःख से भरा हुआ है । जिसमें आधि-व्याधि और अनेक प्रकार की उपाधियों (मुसीबतों) से मनुष्य घिरा हुआ ही रहता है । उसे आत्मा के लिए आराधना करने का भी समय मिलता नहीं है । मेरे जैसे तो ताना मार दे कि फलाना भाई या बहन ! अब बहुत गई और थोड़ी रही ज़िन्दगी का भरोसा नहीं है । जीवन-दीपक की ज्योत कब बुझ जायेगी इसका किसे पता है ? बन्धुओं ! अभी तक में हमारी आत्मा ने अनन्त बार जन्म धारण किये और इस लोक से बिदा ली, उसे ज्ञानी ने मृत्यु कहा, मगर अब इस भव में ऐसी आराधना का उपाय खोजिए कि जिसका नाम मृत्यु के बजाय मुक्ति बन जाय । ऐसा समझकर धर्म की आराधना कर लीजिए । तब क्या कहते है ? 'महासतीजी ! अभी तो बहुत समय है, फिलहाल तो हमें धन कमाने दीजिए । अभी यह काम शेष है, यह अधूरा है, फिर चैन से धर्म की आराधना करेंगे ।' परन्तु ज्ञानीपुरुष क्या कहते हैं ? ज़रा सोचिए -

"समझ लीजिए सब सयाने, नहीं आयेगे साथ पैसे ।
किसलिए रहे हो पर में परेशान, जाना है जरूर छोड़ भरी थाली ।"

आपने कठोर परिश्रम किया, भूख-प्यास सहे, सच्चे-झूठे, काले-सफेद, अन्याय-अनीति-अधर्म कर किसी भी तरह से वै धन कमाईए, चाहे कितनी भी बड़ी इमारते बनवाईए, आधुनिक कक्षा का उसमें फर्निचर, टी.वी. फ्रीज़ सब बसा दीजिए, परन्तु साथ में क्या ले जायेंगे ? कहिए तो सही ? थाली में भिन्न-भिन्न भोजन तरह-तरह का भोजन और तरह-तरह के व्यंजन (खाद्य पदार्थ) परोसे गये हैं, उसमें से खुशी से एक टुकड़ा लेकर मुँह में डालने जाये और आयुष्य का तेल ख़त्म हो गया तो ? आप के परोसे हुए भोजन भी यहाँ पड़े रहेंगे और जाना पड़ेगा ।

इस संसार में एक के बाद एक मुसीबतें आती ही - जाती हैं । जैसे वह अहीर बेचारा एक गाय को बिठाने जाते कि तभी दूसरी ९९ गाये खड़ी हो जाती और

९९ गायें बैठती तब एक खड़ी हो जाती । इसी प्रकार आपको कितनी चिन्ताएँ हैं ? पाँच लड़कियाँ है । उसमें एक का विवाह हुआ, दूसरे की तैयारी है । दूसरी को ससुराल भेजा, तो तीसरी तैयार है । उसका गौना पूरा हुआ न हुआ वहाँ गोद-भराई की तैयारी करनी होती है । फिर ससुराल अच्छा मिला तो ठीक, अन्यथा ठीक नहीं, तो बेटी आयेगी रोती हुई घर में । कभी भी बेटी का बाप शांति से 'हाश्' कर बैठ सकता नहीं है । तथा घर में आज यह चाहिए और कल यह चाहिए । अब कुछ नहीं चाहिए । ऐसा कोई कहता नहीं है और मनुष्य द्वारा मन चाहे कोई कार्य पूर्ण होते नहीं है, अधूरे ही रहते हैं । क्योंकि *'इच्छाउ आगास समा अणंतया'* मनुष्य की आशाएँ आकाश की तरह अनन्त है । यह भगवान का वचन है । कभी भी इच्छाओं का अन्त आनेवाला नहीं है, ऐसा समझकर तृष्णा छोड़कर तृप्ति के घर में आईए । अव्रत का साथ छोड़कर व्रत में आईए, परिग्रह की ममता छोडिए ।

वीरप्रभु की वाणी का वीलपावर आप को हमेंशा मिलता ही जाता है, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि अभी तक आप की संसार की प्रति आसक्ति क्यों कम नहीं हो रही है ? सुनसुनकर पत्थर जैसे बन गये हो । जैसे बारिश बेशुमार बरस रही हो, तब आप सभी रेईनकोट पहनकर बाहर निकलते हो, इसलिए भीगते नहीं हो । वोटरप्रूफ हो, उसे पानी का असर होता नहीं है, फायरप्रूफ (अग्नि शामक) हो उसे आग का असर होता नहीं है । उसी प्रकार प्रवचनप्रूफ बन गये हैं उन्हें वीतराग भगवान की चाहे कितनी भी अच्छी वाणी सुनने को मिले, उसकी उस पर कोई असर नहीं होता है । मृगशलीया पत्थर पानी में कितना समय भी क्यों न रहे, परन्तु बाहर निकाले तो कुछ ही क्षण में सूखा (कोरा) । तो क्या आप भी ऐसे तो नहीं है न ? (सब हँसते हैं ।) यह अपने हृदय से पूछिएगा कि मेरा नम्बर किसमें है ? दूसरी एक बात कहती हूँ । वर्तमान समय में पाँच प्रकार की घडियाँ मिलती है । एक प्रकार की घड़ी ऐसी है कि उसे चोबीसों घण्टे चाबी देनी पड़ती है । दूसरे प्रकार की घड़ी को सप्ताह में एक बार देनी पड़ती है । तीसरे प्रकार की घड़ी को महीने में चाबी भरनी पड़ती है और चौथे प्रकार की घड़ी जो सेल (पावर) से चलती है, उस सेल को एक वर्ष में बदलता पड़ता है और पाँव वें प्रकार की घड़ी को चाबी देनी ही पड़ती नहीं है । उसें 'ओटोमेटिक घडी' कहा जाता है । इन पाँचों प्रकार की घड़ियों में से आप को कौन-सी घड़ी अच्छी लगती है ? (श्रोतागण : पाँचवें प्रकार की ओटोमेटिक घड़ी - चाबी देने की चिन्ता ही नहीं, हमेंशा चलती ही रहे ।) (सब हँसते हैं ।) इन पाँचों प्रकार की घड़ियों का न्याय (दृष्टांत) हमारी आत्मा पर देखना है । आप को सभीको ओटोमेटिक घड़ी अच्छी

लगती है, परन्तु आपका नम्बर कौन-से प्रकार की घड़ी में है, उसका बहुत विचार कीजिएगा। आपको वीतराग-प्रभु की वाणी की चाबी रोज़ भरनी पड़ रही है या फिर सप्ताह, महीना और वर्ष में चाबी देनी पड़े ऐसे हैं ? भगवान के संत प्रतिदिन वीरवाणी की चाबी देते हैं, परन्तु मेरे भाई-बहनों से संसार का राग छूटता नहीं है, आयुष्य क्षणिक है। जीवन-दीपक की ज्योत कब बुझ जायेगी इसका पता नहीं है, अतः समझकर आराधना करने में लग जाईए तो अवश्यमेव कल्याण होनेवाला है।

आज मलाड़ संघ के आँगन में दीक्षा जयंती निमित्त सात दिनों की आराधना करवायी है। आज मेरे अकेली की नहीं बल्कि तीन-तीन महासतीजियों की दीक्षा जयंती है। मेरी तो है ही, परन्तु साथ में हमारी कमलाबाई तथा सुरेखाबाई की भी आज दीक्षा-जयंती है। संगीताबाई की भी दिनांक अनुसार आज है। वे संयम में सुदृढ़ बनकर महावीर का शासन शोभायमान कर आत्मकल्याण साध सके ऐसी हृदय की भावना। अब समय बहुत हो गया है। बाहर से अनेक संघों के भाई पधारे हैं उनको तथा श्री मलाड़ संघ के भाइयों को भी दो शब्द बोलने हैं। साथ में मलाड़ संघ के मंत्री सेवाभावी श्री नटवरभाई को अनेक जानकारी देनी है, इसलिए अब मैं अपना व्याख्यान यही पर पूर्ण कर रही हूँ। अधिक भाव अवसर आने पर।

(व्याख्यान के बाद पू. महासतीजी ने ५१ भाई-बहनों को अखन्ड अट्ठम के पच्चक्खाण स्वमुख से दिये। फिर 'मलाड़ संघ' के मंत्री श्री तथा मुम्बई तथा परा से पधारे हुए श्री संघ के नेतागणों ने पू. महासतीजी ४६ वर्ष पूर्ण कर संयम-पर्याय के ४७वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं, इसलिए हृदय की अभिनन्दन वर्षा बरसाकर अनेक-अनेक शुभकामनाएँ व्यक्त की थी। उसके बाद जीव छोड़ने की बात हुई तब उसमें १३५ जीवों को छोड़ने-छोड़ना तप हुआ। व्याख्यान में सब के सामने पू. महासतीजी ने कहा कि-"इन जीवों का इस सप्ताह में ही प्रारंभ किये गये साधना-सप्ताह-तप समारोह के दिनों में अभयदान मिल जाना चाहिए।" तब संघ के भाइयों ने कहा - "जी हाँ महासतीजी !" इस प्रकार दीक्षा-जयंती का दिन मनाया। अन्त में पू. महासतीजी ने सबकी धारणा अनुसार पच्चक्खाण दिये और सवा बारह बजे मंगलमय मांगलिक सुनाया। तब किसी को पता भी न था कि यह अंतिम प्रवचन पच्चक्खाण और अन्तिम मांगलिक सबके सामने सामूहिक रूप में हमें सुनाया जा रहा है।)

समाप्त